UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186828
UNIVERSAL
LIBRARY

OSU LIBRARY UNIVERSITY LIBRARY

गणितानुयोग

[जैनागमों में वर्णित भूगोल-खगोल का संकलन और वर्गीकरण]

संकलनकर्ता :

मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

अनुवादक :

डा० मोहनलाल महता, एम. ए., पी-एच. डी.

सम्पादक :

पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल

आगम-अनुयोग प्रकाशन, सांडेराव [राजस्थान]

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रकाशक :
आगम-अनुयोग प्रकाशन, सांडेराव (राजस्थान)

संकलनकर्त्ता :
मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

संस्करण : **प्रथम**

वीराब्द : २४९५

मूल्य : २५ रु० **(डाकव्यय पृथक्)**

प्राप्तिस्थान :
आगम-अनुयोग प्रकाशन, बांकलीवास, सांडेराव (राजस्थान) Via फालना

मुद्रक :
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

Agama-Anuyoga-Publication Series No. 1

GANITĀNUYOGA

[Selection and classification of Geographical and Astronomical data from Jaina Sutras]

Compiled by

Muni Kanhaiyalal 'Kamala'

Translated by

Dr. Mohanlal Mehta, *M. A., Ph. D.*

Edited by

Pt. Shobhachandra Bharilla

Agama-Anuyoga Publication, Sanderao (Rajasthan)

Publisher : Agama-Anuyoga Prakashan, Sanderao (Raj.)

Compiled by : Muni Kanhaiya Lal 'Kamala'

Edition : First

Virabda : 2495

Price : Rs. 25/- (Postage extra)

Available at : Agama-Anuyoga Prakashan
Bankliwas, Sanderao (Raj.) Via Phalna

Printers : Vedic Yantralaya, Ajmer.

न नायपुत्ता परमत्थि नाणी

श्रमण भगवान महावीर की निर्वाण-सार्द्धद्विसहस्राब्दी के उपलक्ष में

जयइ जगजीवजोणी-वियाणओ जगगुरू जगाणंदो,
जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भगवं ।।
जयइ सुआणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ।।

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स ।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाइजसो दंसण-णाणसीले ।।

• • • •

गिरिवरे वा णिसहाऽऽययाणं, रुयए व सेट्ठे वलयायताणं ।
तओवमे से जगभूइपण्णे, मुणीण मज्झे तमुदाहु पण्णे ।।

• • • •

रुक्खेसु णाए जह सामली वा, जंसि रइं वेदयंति सुवण्णा ।
वणेसु वा णंदणमाहु सेट्ठं, णाणेण सीलेण य भूइपण्णे ।।

• • • •

जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे, णागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे ।
खोओदए वा रसवेजएंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ।।

• • • •

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा ।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो, णिव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ।।

समप्पणं

णियनामेणं जेणं, महप्पणा पुज्जमामि-दासेणं,
सव्वं जयइ पयडिओ, दंसणरयणं अणेगन्तो ॥१॥
जिणमुयणिम्मलमोओ, सुगविखओ जेण सूरिपवरेणं,
लिहिऊणं सुत्ताणि य, अणेगवारं अणेगाणि ॥२॥
तस्स महेसिवरस्स हि, सिस्स-पसिस्सक्कमेणऽणुग्गहिओ।
गणितानुयोगमत्थं, अप्पेइ सभत्तिं—
—मुणी 'कमलो' ॥३॥

प्रकाशकीय निवेदन

समस्त जैनागमों मे से चरणानुयोग आदि चारों अनुयोगों का चार विभागों मे संकलन एव उनका विषयानुक्रम से वर्गीकरण करने का प्रयास, आगम-साहित्य के इतिहास मे एक नूतन, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी प्रयास है। यह प्रयास जितना महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है, उतना ही जटिल, श्रमसाध्य और सूक्ष्म अध्ययन की अपेक्षा रखने वाला है। हर्ष है कि पण्डितरत्न **मुनि श्री कन्हैयालालजी म० सा० 'कमल'** ने इस गुरुतर कार्य को अपने हाथ मे लिया और लगातार कई वर्षों तक सलग्न रहकर इसका अधिकांश सम्पन्न किया। मुनिश्री के इस पुण्य-प्रयास को देखकर हमारे मन मे यह सकल्प जागृत हुआ कि मुनिश्री के तत्त्वावधान मे ही चारों अनुयोगों का प्रकाशन हो।

सर्वप्रथम चरणानुयोग का मुद्रण देहली में प्रारम्भ हुआ। २५ फॉर्म मुद्रित भी हुए। किन्तु पू० प्रवर्त्तक मरुधरकेसरी पं० र० श्री मिश्रीमलजी म० सा० के स्नेहपूर्ण आग्रह से, उनकी दीक्षा-अर्धशताब्दी के अवसर पर होने वाले अभिनन्दन-समारोह मे सम्मिलित होने के लिए मुनिश्री को देहली छोड़कर सोजत आना पड़ा। सांडेराव-वर्षावास के पश्चात श्रीविद्याकुमारजी की भागवती दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। तब तक गर्मियों के दिन आ जाने से और स्वास्थ्य अनुकूल न होने से आपका तत्काल पुन दिल्ली जाना न हो सका। फलस्वरूप चरणानुयोग का कार्य अधूरा ही रह गया है। उसे अब यथासम्भव शीघ्र पूर्ण करना है।

इस बीच गणितानुयोग की सामग्री तैयार हो जाने के कारण राजस्थान के प्रमुख प्रेस 'वैदिक यन्त्रालय' मे उसके मुद्रण का कार्य आरम्भ करा दिया गया। मुनिश्री का स्वास्थ्य ठीक नही था, किन्तु प० श्रीशोभाचन्द्रजी सा० भारिल्ल का उदार सहयोग इस अवधि मे सम्पादनकार्य में लिया गया। इससे कार्य यथासमय सम्पन्न हो सका। इसका अनुवाद डॉ. श्री मोहनलालजी मेहता एम.ए., पी-एच. डी. ने किया है।

पं० र० मुनिश्री, डॉ० महता और श्री भारिल्लजी के परिश्रम से गणितानुयोग का यह प्रकाशन इस रूप में सम्भव हो सका है। इसके लिए हम इनके कृतज्ञ हैं।

अजमेर निवासी सेवाभावी श्री रूपराजजी सा. कोठारी, श्री हंसराज बच्छराजजी कोठारी (गोटे वाले) आदि महानुभावों ने मुद्रणकार्य में सहयोग देकर हमारे उत्तरदायित्व को हल्का कर दिया। इसके लिए हम उनके अतीव आभारी है।

नियत अवधि में मुद्रणकार्य सम्पन्न कर देने के लिए वैदिक यन्त्रालय के अधिकारी और कार्यकर्त्ता भी कम धन्यवाद के पात्र नही है।

निवेदक

सांडेराव (राजस्थान)
श्रावणकृष्णा १, वी. सं. २४९५

—मंत्री, आगम-अनुयोग प्रकाशन,

संकेतसूची

अ०	—	अध्ययन
अनु०	—	अनुयोगद्वार
आ०	—	आचारांग
उ०	—	उद्देशक
उत्तर०	—	उत्तराध्ययन
गा०	—	गाथा
चन्द्र०	—	चन्द्रप्रज्ञप्ति
जम्बू०	—	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
जीवा०	—	जीवाभिगमसूत्र
जीवा० प्र०	—	जीवाभिगमसूत्र प्रतिपत्ति
ठा०	—	ठाणांग—स्थानांगसूत्र
ठाणा०	—	,, ,,
पण्ण०	—	पण्णवणा
पन्न०	—	,,
पृ०	—	पृष्ठ
प्र०	—	प्रश्न
प्रज्ञा०	—	प्रज्ञापनासूत्र
भग०	—	भगवतीसूत्र
भा०	—	भाग
वक्ष०	—	वक्षस्कार
विवा०	—	विवाहपण्णत्ति (भगवतीसूत्र)
श०	—	शतक
श्रु०	—	श्रुतस्कन्ध
स०	—	समवाय
सम०	—	समवायांगसूत्र
सू०	—	सूत्र
सूत्र०	—	सूत्रकृतांगसूत्र
सूर्य०	—	सूर्यप्रज्ञप्ति

प्राक्कथन

अनुयोग–वर्गीकरण

विगत दो-चार दशकों में प्राच्यविद्या प्रेमियों ने प्राकृत–भाषा का महत्त्व समझा है। और कतिपय विश्व-विद्यालयों में प्राकृत अध्ययन-केन्द्र स्थापित किये हैं, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटियों से महत्त्वपूर्ण प्राचीन-ग्रन्थ आधुनिक शैली के सम्पादित होकर प्रकाशित हुए हैं। कुछ प्रकाशन-संस्थान शोध पूर्ण एवं समीक्षात्मक जैनागमों के प्रकाशन कर रहे हैं। किन्तु शोध निबन्धों के आधुनिक लेखक विषय प्रतिपादन के लिए संदर्भ ग्रन्थों के रूप में यदि समस्त जैनागमों को देखना चाहें, तो उन्हें आगमों के ये संस्करण देखकर निराशा ही होती है। क्योंकि स्वर्गीय पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज संपादित (मूल एवं हिन्दी अनुवाद सहित) बत्तीस शास्त्रों के तथा श्री पुष्फ भिक्खु संपादित (केवल मूलपाठ सुत्तागमे) बत्तीस शास्त्रों के अतिरिक्त समग्र आगमों का मुद्रण अद्यावधि नहीं हुआ है। ये आगम भी भारत के समस्त उच्चतम विद्यालयों या विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हैं। दो-दो, चार-चार आगम अनेक प्रकाशन संस्थाओं ने प्रकाशित किये हैं। उनका भी प्रचार सीमित ही है। अतः वे सर्वत्र सुलभ नहीं हैं। आधुनिक शैली से सम्पादित कुछ आगम मूल मात्र के और कुछ सानुवाद के प्रकाशित हो रहे हैं। परन्तु सम्पूर्ण आगमों के प्रकाशित होने में न जाने कितने युग बीतेंगे !

जैन पुस्तकालयों की व्यवस्था भी सर्वत्र समीचीन न होने से शोध-निबन्ध लेखकों को यथेष्ट लाभ नहीं मिल पाता। यदि साहसी शोध-निबन्ध लेखक किसी प्रकार सभी जैनागमों का संग्रह कर भी लें तो उनमें से अभीष्ट विषय का परिपूर्ण शोध कर सकना उनके लिए कितना कठिन होता है इसका अनुभव तो शोध निबन्ध लेखकों को ही हो सकता है। एक विषय के पाठों को एकत्रित करने में कितने समय व श्रम की अपेक्षा होती है, यह भी एक असाधारण तथ्य है।

जैनागम सम्बन्धित शोध-निबन्ध के लेखक को प्रौढ आगम-अभ्यासी निर्देशक का मिलना भी उतना ही कठिन है जितना आधुनिक शैली के संपादित समस्त आगमों का मिलना। इन सब समस्याओं में उलझकर अनेक शोध-निबन्ध लेखक विषय परिवर्तन का संकल्प कर लेते थे या विषय का यथेष्ट प्रतिपादन न कर पाते थे, इसलिए शोध कार्य अधूरा रह जाता था।

इत्यादि अनेक अनुपेक्षणीय तथ्यों से प्रेरित होकर मैंने जैनागमों के समस्त विषयों का वर्गीकरण करके उसे चार अनुयोगों में विभक्त करने का संकल्प किया है। यद्यपि अनुयोग वर्गीकरण का कार्य समूह साध्य एवं श्रम साध्य था, साथ ही अद्यावधि उपलब्ध समस्त आगमों के प्रकाशन तथा अनेक संदर्भ ग्रंथ अपेक्षित थे, किन्तु ये सब सुलभ नहीं हुए। और न इस महान कार्य में मुझे किसी बहुश्रुत का उदार सहयोग या निरन्तर निर्देशन ही प्राप्त हुआ। फिर भी जितना कार्य किया है उसे क्रमशः प्रस्तुत करते रहने का संकल्प है।

इन अनुयोग–विभागों के स्वाध्याय का सुफल यह होगा कि प्राचीन चिन्तन का किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ है ? कौन सा पाठ आगम संकलन काल के पश्चात् परिवर्धित या प्रक्षिप्त किया गया है ? आगमों के लिपिबद्ध होने के पश्चात कौन सा आगम अंगविच्छिन्न हुआ और कौन सा नया अंग आगम स्थानापन्न हुआ है ? किस आगम पाठ की कहां पूर्ति हुई है ? कौन सा आगम पाठ परमत की मान्यता का है और कौन सा स्वमत की मान्यता का है ? कौन सा परमत का पाठ भ्रान्ति से स्वमत का मान लिया गया है ? इत्यादि उपलब्धियां शोध निबन्ध लेखकों के लिए यदि उपयोगी हुई तो यह श्रम सफल होगा।

वर्गीकरण का यह कार्य स्वर्गीय गुरूदेव के जीवन काल में प्रारंभ किया था। परन्तु कार्य काल में कई बाधायें आईं, जिनसे तथा सेवाकार्य में संलग्न रहने के कारण कार्य स्थगित भी करना पड़ा। सन् १९६३ में मेरे आराध्य गुरूदेव का स्वर्गवास हो गया, पश्चात् सन् १९६५ में देहली में जैनागम निर्देशिका और समवायांग का प्रकाशन परिपूर्ण होने पर तथा स्थानांग के पृष्ठ छपने पर और चरणानुयोग के केवल २५० पृष्ठ छपने पर प्रकाशन कार्य स्थगित कर राजस्थान में आना पड़ा। पुनः सन् १९६९ में अजमेर में गणितानुयोग का प्रकाशन कार्य प्रारंभ हुआ। अस्वस्थ शरीर एवं यथेष्ट सामग्री के अभाव में भी यह गणितानुयोग पाठकों के समक्ष समुपस्थित किया गया है। आशा है श्रुत सेवी सज्जन इसे अपना कर अपना अभिमत व्यक्त करेंगे।

गणितानुयोग का संकलन

जैनागमों में जहां-तहां उपलब्ध भूगोल-खगोल सम्बन्धित समस्त कथनों को इसमें संकलित किया गया है। इसमें सर्व प्रथम अलोक का वर्णन है, पश्चात्-अलोक के मध्यस्थित लोक का वर्णन है। अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक—ये लोक के ही तीन विभाग हैं। इनका क्रमशः इस गणितानुयोग में संकलन है। ग्रंथ के प्रारम्भ में प्रस्तावना और अन्त में कतिपय परिशिष्ट हैं।

[१] भूगोल-खगोल सम्बन्धी आगम-पाठ जो भाव एवं भाषा में साम्य रखते हैं, उनमें से एक आगम का पाठ मूल संकलन में संकलित किया गया है, शेष आगमों के समग्र पाठों का स्थल निर्देश मूल संकलन में अंकित किया गया है।

[२] जैनागमों में भूगोल -खगोल संबंधी कुछ पाठ ऐसे हैं जिनमें एक वस्तु के अल्पसंख्यक और बहु-संख्यक प्रकार मिलते हैं। उनमें से बहु संख्या वाला एक पाठ मूल संकलन में लिया है और अल्प संख्या वाले सभी पाठों के स्थल निर्देश-उसी पाठ के नीचे या टिप्पण में दिये हैं। उदाहरण के लिये देखिए पृष्ठ ९ "लोकस्थिति" शीर्षक।

[३] संकलित आगम पाठों पर जहां १, २ आदि अंक दिये हैं वे सब टिप्पण के अंक हैं। जितने अंश पर अंक हैं उतने ही अंश से सम्बन्धित अन्य आगम पाठ का स्थल निर्देश टिप्पण में दिया है।

[४] प्रस्तुत संकलन में प्रत्येक विषय का वर्गीकरण किया गया है और एक विषय के वर्गीकरण में सम्बन्धित विषय के सभी पाठ एक साथ संकलित किए गए हैं। विषय प्रतिपादन में भी पूर्वापर का क्रम बना रहे-इस ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

[५] प्राकृत मूल पाठों के मुद्रण में "मूल सुत्ताणि" की शैली ही अपनायी गई है। क्योंकि इस प्रकार मुद्रित प्राकृत पाठ का भाव संस्कृत या हिन्दी के अभ्यासी सरलता पूर्वक समझ सकते हैं।

[६] हिन्दी अनुवाद डॉ. मोहन लाल महता ने किया है जो इस समय पार्श्वनाथ विद्याश्रम में शोध-संस्थान के अध्यक्ष हैं। अनुवाद की भाषा सरल है अतः सामान्य हिन्दी का ज्ञान रखने वाले पाठकों को भी समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। मूल पाठ का केवल शब्दानुलक्षी अनुवाद किया गया है। इसलिए कहीं-कहीं गणित का विषय स्पष्ट नहीं हो पाया है। अतः जिज्ञासु पाठक एतद् विषयक किसी गणित विशेषज्ञ से या किसी ग्रन्थ से विषय को समझने का प्रयत्न करेंगे तो आशा है कि गणित के तथ्य समझ में आ सकेंगे।

[७] जैनागमों से सम्बन्धित विषयों पर शोध-निबन्ध लिखने वाले या सामान्य जिज्ञासु सुविधा पूर्वक अभीष्ट विषय की उपलब्धि कर सकें, इसके लिए प्रस्तुत संकलन में सभी शीर्षक हिन्दी में दिये गए हैं।

[८] प्रस्तुत संकलन में चन्द्र-प्रज्ञप्ति के सूत्रांक स्थल निर्देशन में दिये हैं किन्तु वे सब सूर्य-प्रज्ञप्ति के ही सूत्रांक हैं[1] ऐसा समझें, क्योंकि चंद्र–प्रज्ञप्ति की पूर्ण प्रति व टीका प्रयत्न करने पर भी हमें प्राप्त नहीं हो सकी अतः ऐसा किया गया है।

[९] गणितानुयोग के संकलन एवं संपादन में जो त्रुटियां रही हैं, उनका परिमार्जन जानते हुए भी नहीं किया जा सका, इसके लिये हम अन्य किसी को दोषी नहीं ठहराते। यदि द्वितीय संस्करण होने का सुअवसर प्राप्त होगा तो अवश्य संशोधन किया जाएगा। जो त्रुटियां हैं वे केवल आगमों के स्थल निर्देशन में बरती गई असमानरूपता सबन्धी हैं। मूल संकलन में भी यदि भूगोल-खगोल संबन्धी कतिपय पाठ छूट गए हों तो हमारे पूज्य बहुश्रुत एवं स्वाध्याय–शील सद्गृहस्थ अपना कर्तव्य समझ कर हमें अवश्य सूचित करेंगे–ऐसी आशा है।

अनुयोग-व्याख्या पद्धति

जिस प्रकार नगर की चारों दिशाओं में चार द्वार हों तो उसमें प्रवेश करना सबके लिए सरल है, उसी प्रकार १. उपक्रम, २. निक्षेप, ३. अनुगम और ४. नय—इन चार अनुयोग द्वारों से आगम रूप नगर में प्रवेश करना सबके लिये सरल होता है। अर्थात् इन चार अनुयोग द्वारों का आधार लेकर जो आगम पद्धति की व्याख्या करते हैं उन सबके लिये आगम ज्ञान प्राप्त करना अति सरल है।

जैनागमों की यह अनुयोग व्याख्या पद्धति अति चिरंतन काल से उपयोगी रही है। जैनागमों की उपलब्ध टीकाओं के टीकाकारों ने भी इसी अनुयोग व्याख्या पद्धति का अपनी टीकाओं में प्रयोग किया है।

नंदी-सूत्र निर्दिष्ट श्रुतज्ञान के विवरण में अंग प्रविष्ट, अंग-बाह्य, कालिक और उत्कालिक आदि सभी आगमों की व्याख्या करने के लिए इन चार अनुयोग द्वारों का ही प्रयोग करने की सूचना दी गई हैं। और इसी आधार पर अंगबाह्य, उत्कालिक आवश्यक की विस्तृत व्याख्या अनुयोग द्वार-सूत्र में इन चार अनुयोग द्वारों द्वारा ही की गई है।

---

१ (क) चंद्र प्रज्ञप्ति वर्तमान में अनुपलब्ध है। यह आगम-साहित्य के इतिहासज्ञों का अभिमत है।

अनुयोग-विभाजन

चार अनुयोगों के नाम:—

१—चरणानुयोग, २—धर्मकथानुयोग, ३—गणितानुयोग ४—द्रव्यानुयोग ।

उपलब्ध अंग-उपांग आदि आगमों में इन चार अनुयोगों के नाम क्रमशः कहीं नहीं मिलते हैं।

१—द्रव्यानुयोग का नाम—स्थानांग के दशम स्थान में मिलता है[1] ।

२—चरणानुयोग का नाम—उत्तराध्ययन के अध्ययन के आधार पर नामकरण हुआ है ।

३—धर्मकथानुयोग का नाम—ज्ञाताधर्म कथा के आधार पर नामकरण हुआ है ।

४—गणितानुयोग का नाम—चंद्र-सूर्य-प्रज्ञप्ति आदि के आधार पर नामकरण हुआ है[2] ।

आगमोत्तर कालीन ग्रन्थ में तथा जैनागमों की उपलब्ध टीका, निर्युक्ति तथा भाष्य आदि में चारों अनुयोगों के नाम और अनुयोगों के अनुसार आगमों का विभाजन मिलता है ।

जैनागमों में वर्णित विविध विषय भगवान महावीर से लेकर श्री आर्य वज्र पर्यन्त अनुयोगों में विभक्त नहीं हुऐ थे । क्योंकि प्रत्येक पद में चारों अनुयोगों का तथा सातों नयों का चिन्तन किया जाता था इसलिए विभाजन की कोइ उपादेयता ही नही थी, किन्तु ह्रास काल के प्रभाव से जब महान् मेधावियों को भी एक पद में चारों अनुयोगों तथा सातों नयों का चिन्तन पहेली प्रतीत होने लगा तो श्री आर्य रक्षित ने आगमों में प्रतिपादित समस्त विषयों (पदों) को चार अनुयोगों में विभक्त कर दिया था ।

इस अनुयोग विभाजन की क्या रूप रेखा थी ? विषय संकलन किस क्रम से किया गया था ? और इस अनुयोग विभाजन की परंपरा कब विनष्ट हुई ? इत्यादि ऐतिहासिक तथ्यों के अन्वेषण का उपक्रम अब तक किसी ने किया या नहीं ? यह मेरे जानने में नहीं आया है ।

नन्दी-सूत्र की स्थविरावली में अनेक अनुयोगधर आचार्यों का उल्लेख है । ये आचार्य चार अनुयोग-द्वार वाली अनुयोग-व्याख्या पद्धति के धारक थे या द्रव्यानुयोग आदि चार अनुयोगों के धारक थे ? इस संबंध में अभी तक ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण होना आवश्यक है ।

१—करणानुयोग का नाम—द्रव्यानुयोग के एक भेद के रूप में मिलता है । देखिए—स्थानांग अ० १० सूत्र ।

२—यह केवल हमारी कल्पना है ।

लोक-विज्ञान और आत्म-साधना

लोक-विज्ञान दो प्रकार का है :—लोक स्वरूप विज्ञान और लोक स्वभाव विज्ञान।

लोक का आकार आयाम-विष्कम्भ, मध्यभाग, समभाग, विशालता-विभाग, लोकस्थिति आदि का विशिष्ट-ज्ञान, लोक स्वरूप विज्ञान है।

प्राचीन और अर्वाचीन भूगोल-खगोल साहित्य के स्वाध्याय से लोक स्वरूप का विज्ञान होता है।

प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश, जन्म-मरण, सुख-दुख, पुण्य-पाप, स्वार्थपरता, छल-छिद्र, घृणा, जुगुप्सा, राग-द्वेष, ईर्ष्या आदि का ज्ञान लोक स्वभाव विज्ञान है।

आगमों के स्वाध्याय से लोक स्वभाव का विज्ञान होता है। यद्यपि लोक स्वरूप विज्ञान और लोक स्वभाव विज्ञान ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं, तथापि इन दोनों का परस्पर आधार-आधेय भाव का संबंध है। क्योंकि लोक स्वरूप का विज्ञान होने पर ही लोक स्वभाव का विज्ञान हो सकता है। इसी कार्य कारण-भाव का द्योतक धर्म-ध्यान का एक प्रकार संस्थान-विचय है।

आचार्य उमा स्वाति ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि लोक के (संस्थान) स्वरूप का विचार करने में मनोयोग लगाना संस्थान विचय धर्मध्यान है।[1]

इसी प्रकार लोकानुप्रेक्षा[2] का भी यही भाव है। दशवैकालिक-सूत्र के अ० ४ में मोक्ष-साधना का क्रम बताते हुए कहा गया है कि जब आत्मा को परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है तो वह (सर्वज्ञ) लोकालोक को जान लेता है।

जैन-दर्शन का एक प्रमुख सिद्धान्त कर्मवाद है। और कर्मबंध से विरत होकर कर्म मुक्त होना ही आत्म-साधना है। बन्ध संसार है और बन्धमुक्ति मोक्ष है—ये दोनों इसी लोक में हैं। शुभाशुभ कर्मों का बन्ध, फलभोग और मुक्ति का चिन्तन-मनन ही लोक-स्वभाव का चिन्तन-मनन है, किन्तु शुभाशुभ कर्मों का बंध, फलभोग और उनकी मुक्ति इस लोक में होते हैं।

[क] शुभाशुभ कर्मों का बन्ध तीनों लोक में होता है, किन्तु फलभोग भिन्न लोक में होता है।
[ख] अशुभ कर्मों का फलभोग प्रायः अधोलोक में होता है।
[ग] शुभ कर्मों का फलभोग प्रायः मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक में होता है।
[घ] आत्मायें कर्म मुक्त होती है मध्यलोक में और स्थित होती हैं लोक के अग्रभाग पर।

इन उक्त फलितार्थों की दृष्टि में लोक स्वभाव के चिन्तन-मनन की जितनी उपादेयता आत्म साधना में है उतनी ही या उससे कहीं अधिक लोक स्वरूप के चिन्तन-मनन की है। क्योंकि लोक स्वरूप-विज्ञान की पृष्ठ भूमि पर ही लोक स्वभाव-विज्ञान-भवन का निर्माण संभव है। अतः लोक स्वरूप-विज्ञान आत्म-साधना का एक अभिन्न अंग है। यदि आत्म साधक तीन लोक के स्वरूप का ज्ञाता होगा तो वह लोक स्वभाव का चिन्तन-मनन भी सहज भाव से कर सकेगा।

---

१. त्रिभुवन संस्थान स्वरूप विचयाय स्मृति
समन्वाहारो संस्थान विचयो निगद्यते।
तत्त्वार्थ वृत्ति अ० ९, सू० ३६, पृ० ३–९।

२. अधस्तादुपरि तिर्यक् च सर्वत्रा काशोऽनन्तोवर्तते
तस्यानन्ता काशस्यो लोकाकाशा पर संज्ञस्यातिशयेन
मध्य प्रदेशे लोको वर्तते तस्य लोकस्य स्वभाव
संस्थाना धनु चिन्तन कुर्वतो भव्य जीवस्य
तत्त्वज्ञानस्य विशुद्धिर्भवतीति लोकानुप्रेक्षा।
तत्त्वार्थवृति अ० ९, सू० ७, पृ० २८८।

गणितानुयोग का प्रकाशन और आधुनिक भूगोल खगोल

लगभग २५०० वर्ष पूर्व द्वादशाङ्गी का सूत्र रूप में गौतमादि गणधरों ने ग्रन्थन किया था। अतः उस समय के इतर दार्शनिकों की भूगोल–खगोल सम्बन्धी मान्यताओं का निराकरण करके जो परंपरागत (पूर्व तीर्थंकरों से प्रचलित) मान्यताएँ थीं, उनका ही संकलन द्वादशाङ्गी में किया गया था।

मध्यकालीन आचार्यों ने द्वादशाङ्गी में के कतिपय संक्षिप्त कथनों को अभिवर्धित कर तथा मध्यकालीन इतर दार्शनिकों की भूगोल–खगोल संबंधी मान्यताओं का क्रमशः निराकरण करके उपाङ्गादि आगमों में स्वसम्मत मान्यताओं का प्रतिपादन किया था।

गणितानुयोग के प्रस्तुत संकलन में अंग, उपांग आदि आगमों के भूगोल-खगोल संबंधी समस्त पाठों का संग्रह किया गया है। इस प्रकाशन का एक मात्र उद्देश्य यही है कि जैनागम–साहित्य में उपलब्ध भूगोल–खगोल संबंधी समस्त कथनों के संकलन को शोध-निबन्ध लेखकों के हितार्थ संदर्भ-ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करना।

यद्यपि कतिपय अहम्मन्य विचारक यह कहते हैं कि इस भौतिक युग में विज्ञान का विकास जब चरम सीमा पर पहुँच रहा है तब गणितानुयोग के प्रकाशन की क्या उपादेयता है? उनकी दृष्टि में यह प्रकाशन व्यर्थ है, किंतु चिन्तनशील साहित्य-सेवियों की यह आम धारणा है कि प्राचीन विज्ञान ही आधुनिक विज्ञान के विकास की मूल भूमिका है। अतः इस धारणा के अनुसार गणितानुयोग के प्रकाशन की उपयोगिता निर्विवाद है।

प्राचीन और अर्वाचीन भूगोल-खगोल का समन्वय एक भगीरथ कार्य है। जैनागमों में वर्णित भूगोल-खगोल और आधुनिक भूगोल-खगोल का समन्वय यद्यपि संदिग्ध है, फिर भी यह कार्य बहुश्रुतों का है।

मुनि-कन्हैयालाल 'कमल'

आभार–प्रदर्शन

प्रस्तुत संकलन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जिन व्यक्तियों का सहयोग रहा है, उन सब का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। विशेष रूप से मुनि श्री मिश्रीमलजी म. 'मुमुक्षु', मुनि श्री चांदमल जी, श्री विनय मुनिजी तथा तपस्वी श्री गौरीलालजी म., श्री नवीन मुनिजी आदि ने उदार हृदय से सेवा कार्य कर सहयोग दिया—तथा पं. हीरालालजी शास्त्री—प्रबंधक—श्री श्वेताम्बर जैन–मंदिर, ज्ञान–भण्डार रूपनगर, दिल्ली का सहयोग चिरस्मरणीय रहेगा। जिन्होंने समय—समय पर आवश्यक ग्रन्थ-साहित्य की सुविधा प्रदान कर अनेक समस्याओं के सुलझाने में सहयोग दिया है।

गणितानुयोग एक अध्ययन के कुछ पृष्ठ

गणितानुयोग के वर्णन प्रायः गणित से संबंधित हैं—इसलिए सर्वसाधारण की अभिरुचि के अनुसार इसे प्रस्तुत करना तो अति कठिन है, फिर भी इस विषय की विशिष्ट जिज्ञासा वाले बन्धुओं के लिए "गणितानुयोग एक अध्ययन" लिखने का संकल्प मुनिश्री ने किया और कुछ पृष्ठ लिखे भी, किन्तु पर्याप्त समय एवं साहित्य-सामग्री के अभाव में यह संभव नहीं था—इधर प्रकाशन में अधिक विलम्ब हम सबको अखर रहा था।

परिचय के लिए कुछ पृष्ठ यहां पढ़िए:—

—प्रबन्धक

अलोकाकाश—अनन्त शून्य आकाश

(१) जैनागमों में यह अनन्त आकाश एक द्रव्य माना गया है। और इसके दो विभाग माने गये हैं—अलोकाकाश और लोकाकाश।[1]

अलोक का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

(२) जो नहीं देखा—जाना वह अलोक है। यह अलोक अतीन्द्रिय पदार्थ है इसलिये इसके ज्ञाता सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई नहीं हैं। अतः अलोक का व्युत्पत्तिपरक अर्थ संगत है।

अलोकाकाश का अस्तित्व

(३) लोकाकाश में जिन पदार्थों का सद्भाव है उनका अभाव जिस आकाश में हो, वह अलोकाकाश है। यह निषेधवाचक स्वतः अलोकाकाश का अस्तित्व सिद्ध करता है। इसके लिए यह उदाहरण है कि जिस व्यक्ति में पण्डित के गुण नहीं हैं वह व्यक्ति अपण्डित कहा जाता है। अपण्डित का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार अलोक का अस्तित्व सिद्ध करने के लिये किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

अलोकाकाश एक अखण्ड द्रव्य है।[2] इसके अनन्त प्रदेश हैं।[3] इसमें एक आकाश द्रव्य के अतिरिक्त कोई द्रव्य नहीं है। अर्थात् यह अनन्त शून्य आकाश है। इसमें या इसके किसी एक प्रदेश में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय का सर्वथा अभाव है।

टिप्पण—

(१) औपपातिक-सूत्र।

(२) ठाणा० अ० १, सूत्र ६। सम० १, १।

(३) सिद्ध, निगोद जीव, वनस्पति कायिक-जीव, विश्व के परमाणु और त्रिकाल के समयों से भी अनन्तानन्त अलोकाकाश के प्रदेश हैं।

किन्तु अलोक में इन द्रव्यों के अभाव का कारण क्या है ? यह एक प्रश्न है—इसके दो समाधान हैं:—

(१) अलोक में जीवादि द्रव्यों की गति ही नहीं है। क्योंकि वहां न जीव है और न पुद्गल। यदि शक्तिशाली देव भी अलोक में हाथ-पैर फैलाना चाहे तो नहीं फैला सकता—क्योंकि वहां गति का अभाव है। और गति-सहायक धर्मास्तिकाय का भी अभाव है। गतिशील द्रव्य-जीव और पुद्गल हैं। इन दो द्रव्यों के निमित्त से ही प्रत्येक पदार्थ की गति है।[1]

(२) लोकाकाश में से अलोकाकाश में कोई द्रव्य नहीं जा सकता। क्योंकि लोकाकाश के अन्त में बालु मिट्टी जैसे अत्यन्त रुक्ष पुद्गल हैं। रुक्षता प्रधान पुद्गलों की गति नहीं होती। गति सदा स्निग्धता प्रधान पुद्गलों की होती है। अथवा लोक का स्वभाव ही ऐसा है कि जीवादि द्रव्य उसके बाहर नहीं जा सकते।[2]

अलोकाकाश का आकार

(४) अलोकाकाश का आकार पोले गोले में रही हुई पोल जैसा है—आगमोक्त इस उपमा के संबंध में यहां कुछ चिन्तन करना है।

अलोकाकाश अनन्त और असीम है अतः उसका आकार बताने के लिए पोले गोले के अन्दर की पोल की उपमा उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। क्योंकि गोले के अन्दर की पोल अनन्त और असीम कैसे हो सकती है !

"गोल वस्तु का कहीं अन्त नहीं माना जाता अतः वह अनन्त होती है" इस अपेक्षा से गोले के अन्दर का आकाश अनन्त तो माना जा सकता है किन्तु असीम नहीं माना जा सकता। यदि अलोकाकाश अनन्त होते हुए भी असीम है तो उस सीमा से आगे क्या है ? यह प्रश्न पैदा होगा। अतः पोले गोले के अन्दर की पोल की उपमा लोकाकाश के आकार को तथा गोले के बाहर की पोल की उपमा अलोकाकाश के आकार को दी जाये तो अलोकाकाश का आकाश अनन्त और असीम सिद्ध हो सकेगा[3]।

टिप्पण:—

(१) अलोक में अन्य द्रव्यों के अभाव का एक मात्र हेतु गति अभाव है। विवाह प्रज्ञप्ति (भगवती) श० १६—उ० ८ में इसी एक हेतु का कथन है। यह गति अभाव अलोक में है। किन्तु स्था० अ० ४ उ० ३ में गति अभाव और गति अभाव के तीन हेतु भी कहे गए हैं:—
(१) गति सहायक धर्मास्तिकाय का अभाव।
(२) लोक के अन्त में स्थित रुक्ष पुद्गल।
(३) लोक स्वभाव।
इनमें गति अभाव का प्रथम हेतु अलोक में है और शेष दो हेतु लोक में हैं। अलोक में अन्य द्रव्यों के अभाव का एकमात्र हेतु गति अभाव का कथन—संग्रहनय की अपेक्षा से है। और गति अभाव के तीन हेतुओं का कथन व्यवहारनय की अपेक्षा से है।

(२) अलोक में अन्य द्रव्यों के अभाव का हेतु यदि अलोक का स्वभाव मान लिया जाय तो कोई असंगति नहीं होगी। क्योंकि अलोक में अन्य द्रव्यों के अभाव का हेतु जो गति अभाव माना गया है, उसका भी हेतु जीव और पुद्गल द्रव्य का अभाव है। किन्तु जीव और पुद्गल द्रव्य के अभाव का हेतु अलोक के स्वभाव के अतिरिक्त कोई नहीं है।

लोक के बाहर जीवादि द्रव्यों के न जा सकने में भी प्रमुख कारण लोक स्वभाव ही है। इसी प्रकार अलोक स्वभाव भी अलोक में अन्य द्रव्यों के अभाव का प्रमुख हेतु है।

(३) विवा० श० ११, उ० १०।

एक असत्कल्पना से अलोक की अनन्तता का अंकन

(५) इस मनुष्य क्षेत्र को चारों ओर से घेर कर दस महर्धिक देव खड़े रहें और (मानुषोत्तर पर्वत के) नीचे आठ दिक्कुमारियां बलिपिण्ड लेकर चार दिशाओं मे तथा चार विदिशाओं में (मनुष्य क्षेत्र के बाहर की ओर मुंह करके) खड़ी रहें। आठ दिक्कुमारियां एक साथ बाहर की ओर बलिपिण्ड फेंके। जमीन पर गिरने से पूर्व वे देव उन्हें ग्रहण कर लें। ऐसी दिव्य त्वरित गतिवाले वे देव अलोक का अन्त पाने के लिए लोकान्त से एक नीचे की ओर, एक अपर की ओर तथा शेष आठ चार दिशा एवं विदिशाओं मे जिस समय जावें, उस समय एक लाख वर्ष की आयु वाला बालक उत्पन्न हो, उसके माता-पिता तथा वह आयु भोगकर समाप्त हो जाऐं, तथा उसकी सात पीढ़ियां एक-एक लाख वर्ष की पूर्णायु भोगकर मृत्यु को प्राप्त हो जायें, और उसके नाम, गौत्र भी नष्ट हो जायें, फिर भी वे देव अलोक का अन्त नहीं पा सकते। इतने लम्बे समय में भी उन देवों ने केवल अलोक का अनन्तवां भाग ही पार किया है। इस प्रकार अलोक की अनन्तता इस दृष्टान्त से निर्धारित की गई है। [1]

लोकाकाश-अनन्त पदार्थ सद्भावी-आकाश

जिस आकाश में लोक है, वह लोकाकाश है। लोक का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है कि:— "जो देखा जाता है वह लोक है।" लोक में जो इंद्रिय प्रत्यक्ष पदार्थ हैं, उनके दृष्टा छद्मस्थ (असर्वज्ञ) हैं। और जो लोक में अतीन्द्रिय पदार्थ हैं, उनके दृष्टा सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार लोक दृश्य है अतः सर्वज्ञ और असर्वज्ञ द्वारा देखा जाता है। लोक के पर्यायवाची विश्व, संसार आदि अनेक हैं:—

लोक की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है।

[१] प्राचीन व्याख्या पद्धति "अनुयोग पद्धति" के नाम से प्रसिद्ध है। इस व्याख्या पद्धति को समझाने के लिये पूरे अनुयोग-द्वार की रचना की गई है। लोक की व्याख्या भी इस अनुयोग पद्धति से की गई है:—

(क) १- नाम लोक, २- स्थापना लोक, ३- द्रव्य लोक।

(ख) १- द्रव्य लोक, २- क्षेत्र लोक ३- काल लोक
४- भाव लोक।

(ग) १- अधोलोक, २- तिर्यक् लोक, ३- ऊर्ध्व लोक।

(घ) १ ज्ञान लोक, २- दर्शन लोक, ३- चारित्र लोक।

[१] नाम लोक [2]

[२] स्थापना लोक,—लोक का आकार अर्थात्-लोक का संस्थान

टिप्पण.—

१. विवा० श० ११ उ० १०।

२. अनुयोग-द्वार सूत्रांक।

अलोकाकाश के मध्य में लोकाकाश है। परन्तु सान्त ससीम है। इसका आकार त्रिसराव सम्पुटाकार है। एक सराव (शिकोरा) उल्टा, उस पर एक सराव सीधा, फिर उस पर एक सराव उल्टा रखने से जो आकार बनता है उसे "त्रिसराव" सम्पुटाकार कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में यह "सुप्रतिष्ठक" आकार कहा जाता है। यह लोक नीचे से विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से पुनः विस्तृत है।[1]

लोक पुरुष और विराट पुरुष

आगमोत्तर कालीन जैन ग्रन्थों में समस्त लोक (अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक) को लोक-पुरुष के रूप में चित्रित किया है। किन्तु जैनागमों में कहीं भी लोक पुरुष का वर्णन नहीं है।

अतः विचारणीय प्रश्न यह है कि जैनागमों में जो "ग्रैवेयक" देवों के नाम गिनाए गए हैं, उनके नामकरण का हेतु क्या है? उनके विमान लोक पुरुष की ग्रीवा के स्थान पर हैं, इसलिए वे "ग्रैवेयक" देव कहे गए हैं। यदि यह व्युत्पत्तिपरक अर्थ संगत है तो आगमों में भी किसी समय लोक-पुरुष की कल्पना का अस्तित्व रहा होगा। जब कुटिल काल के कुचक्र से आगमों के अनेक अंश विच्छिन्न हुए हैं तो संभव है उस समय लोक-पुरुष की कल्पना का अंग भी विच्छिन्न हो गया होगा।

लोक-पुरुष की कल्पना के समान विराट पुरुष की कल्पना वैदिक ग्रंथों में भी मिलती है:—

विराट-पुरुष

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां, भुवर्लोकोऽस्य नाभितः।
हृदा स्वर्लोक उरसा, महर्लोको महात्मनः॥
ग्रीवायां जनलोकश्च, तपोलोकः स्तनद्वयात्।
मूर्धनि सत्यलोकस्तु, ब्रह्मलोकः सनातनः॥
तत्कट्यां चातलक्ल्प्त, मुरुभ्यां वितलं विभोः।
जानुभ्यां सुतलं शुद्ध, जंघाभ्यां तु तलातलम्।
पातालं पादतलत, इति लोक मयः पुमान्॥

भागवत् पुराण २/५/ ३५-४०
गीता प्रेस-प्रथम भाग पृ० १६६

---

१. लोकाकाश के आकार को समझाने के लिये श्वेतांबर और दिगम्बर आगमों में विविध उपमायें दी गई हैं:—

श्वेताम्बर आगम	दिगम्बर आगम
अधोलोक का आकार	**अधोलोक का आकार**
१. उल्टे सराव का आकार (म. श. ७, उ. १)	१. वेत्रासन का आकार (त्रिलोक प्रज्ञप्ति)
२. पल्यंक का आकार (म. श. ७, उ. १)	**मध्यलोक का आकार**
३. तप्राकार का आकार (म. श. ११, उ. १०)	१. झल्लरी का आकार २. आधे ऊर्ध्व मृदंग का आकार (जबूद्वीप प्रज्ञप्ति संग्रह)
	ऊर्ध्वलोक का आकार
	१. ऊर्ध्व मृदंग का आकार (त्रिलोक प्रज्ञप्ति)

कतिपय जैन ग्रंथों में लोक का आकार पुरुष संस्थान के समान भी बतलाया है—दोनों हाथ कमर पर रखकर तथा दोनों पैरो को फैला कर कोई पुरुष खड़ा हो, वैसा ही यह लोक है। (लोक प्रकाश १२-३)

वैदिक ग्रंथों में विश्व का आकार विराट पुरुष के रूप में लिखा है।

द्रव्य-लोक

लोक में छः द्रव्य हैं, अतः यह द्रव्य-लोक है।

छः द्रव्यों के नामः—

१. **धर्मास्तिकाय**—गति सहायक द्रव्य,

२. **अधर्मास्तिकाय**—स्थिति सहायक द्रव्य,

३. **आकाशास्तिकाय**—आश्रयदाता द्रव्य,

४. **काल द्रव्य**—स्थिति नियन्ता द्रव्य,

५. **जीवास्तिकाय**—चेतनाशील द्रव्य,

६. **पुद्गलास्तिकाय**—मूर्त जड़ द्रव्य,

(क) इन छः द्रव्यों में—एक जीव है, शेष पांच अजीव हैं।

(ख) ,, ,, —एक मूर्त है, [1] शेष पांच अमूर्त हैं।

(ग) ,, ,, —एक काल द्रव्य है, शेष पांच अस्तिकाय हैं।

(घ) ,, ,, —चार अस्तिकाय—लोक, अलोक के विभाजक हैं:—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय—एक-एक द्रव्य है। आकाशास्तिकाय यद्यपि एक द्रव्य है किन्तु लोक—अलोक दोनों में व्याप्त है। जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य हैं।

(ङ) इन छः द्रव्यों में से, एक काल द्रव्य के प्रदेश नहीं है। क्योंकि अतीत के समय नष्ट हो जाते हैं—और भविष्य के समय अनुत्पन्न हैं, इसलिए इनका कोई अस्तित्व नहीं है; केवल वर्तमान का एक समय [2] ऐसा काल-द्रव्य है, जो अविभाज्य है, अतः इसके प्रदेश नहीं हैं। और प्रदेशों के न होने से ही यह काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है। [3] शेष पांच द्रव्यों के प्रदेश हैं अतः वे अस्तिकाय हैं। इन्हीं पंचास्तिकायों से यह लोक, द्रव्य लोक कहा जाता है।

---

१. पुद्गलास्तिकाय।

२. मुक्त आत्मा को मध्यलोक से, लोक के अग्रभाग तक पहुंचने में एक समय लगता है। मुक्त आत्मा जब मध्य-लोक से एक रज्जु जितनी ऊँचाई तक पहुंचता है, तब तक उसे जितना समय लगता है उतना समय, उस एक समय का विभाज्य अंश मान लिया जाए तो क्या आपत्ति है!

३. काय अर्थात्—शरीर के देश—प्रदेशों के समान काल-द्रव्य के देश-प्रदेश नहीं हैं, इसलिए काल द्रव्य होते हुए भी अस्तिकाय नहीं है।

अलोकाकाश के मध्य में लोकाकाश है। परन्तु सान्त ससीम है। इसका आकार त्रिसराव सम्पुटाकार है। एक सराव (शिकोरा) उल्टा, उस पर एक सराव सीधा, फिर उस पर एक सराव उल्टा रखने से जो आकार बनता है उसे "त्रिसराव" सम्पुटाकार कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में यह "सुप्रतिष्ठक" आकार कहा जाता है। यह लोक नीचे से विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर से पुनः विस्तृत है।[1]

लोक पुरुष और विराट पुरुष

आगमोत्तर कालीन जैन ग्रन्थों में समस्त लोक (अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक) को लोक-पुरुष के रूप में चित्रित किया है। किन्तु जैनागमों में कहीं भी लोक पुरुष का वर्णन नहीं है।

अतः विचारणीय प्रश्न यह है कि जैनागमों में जो "ग्रैवेयक" देवों के नाम गिनाए गए हैं, उनके नामकरण का हेतु क्या है ? उनके विमान लोक पुरुष की ग्रीवा के स्थान पर हैं, इसलिए वे "ग्रैवेयक" देव कहे गए हैं। यदि यह व्युत्पत्तिपरक अर्थ संगत है तो आगमों में भी किसी समय लोक-पुरुष की कल्पना का अस्तित्व रहा होगा। जब कुटिल काल के कुचक्र से आगमों के अनेक अंश विच्छिन्न हुए हैं तो संभव है उस समय लोक-पुरुष की कल्पना का अंग भी विच्छिन्न हो गया होगा।

लोक-पुरुष की कल्पना के समान विराट पुरुष की कल्पना वैदिक ग्रंथों में भी मिलती है:—

विराट-पुरुष

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां, भुवर्लोकोऽस्य नाभितः।
हृदा स्वर्लोक उरसा, महर्लोको महात्मनः॥
ग्रीवायां जनलोकश्च, तपोलोकः स्तनद्वयात्।
मूर्धनि सत्यलोकस्तु, ब्रह्मलोकः सनातनः॥
तत्कट्यां चातलक्ल्प्त, मुरुभ्यां वितलं विभोः।
जानुभ्यां सुतलं शुद्ध, जंघाभ्यां तु तलातलम्।
पातालं पादतलत, इति लोक भयः पुमान्॥

भागवत् पुराण २/५/ ३८-४०
गीता प्रेस-प्रथम भाग पृ० १६६

---

१. लोकाकाश के आकार को समझाने के लिये श्वेतांबर और दिगम्बर आगमों में विविध उपमायें दी गई हैं:-

श्वेताम्बर आगम	दिगम्बर आगम
अधोलोक का आकार	अधोलोक का आकार
१. उल्टे सराव का आकार (भ. श. ७, उ. १)	१. वेत्रासन का आकार (त्रिलोक प्रज्ञप्ति)
२. पल्यंक का आकार (भ. श. ७, उ. १)	मध्यलोक का आकार
३. तप्राकार का आकार (भ. श. ११, उ. १०)	१. झल्लरी का आकार २. आधे ऊर्ध्व मृदंग का आकार (जबूद्वीप प्रज्ञप्ति संग्रह)
	ऊर्ध्वलोक का आकार
	१. ऊर्ध्व मृदंग का आकार (त्रिलोक प्रज्ञप्ति)

कतिपय जैन ग्रंथों में लोक का आकार पुरुष संस्थान के समान भी बतलाया है—दोनों हाथ कमर पर रखकर तथा दोनों पैरो को फैला कर कोई पुरुष खड़ा हो, वैसा ही यह लोक है।

(लोक प्रकाश १२-३)

वैदिक ग्रंथों में विश्व का आकार विराट पुरुष के रूप में लिखा है।

द्रव्य-लोक

लोक में छः द्रव्य हैं, अतः यह द्रव्य-लोक है।

छः द्रव्यों के नाम:—

१. **धर्मास्तिकाय**—गति सहायक द्रव्य,

२. **अधर्मास्तिकाय**—स्थिति सहायक द्रव्य,

३. **आकाशास्तिकाय**—आश्रयदाता द्रव्य,

४. **काल द्रव्य**—स्थिति नियन्ता द्रव्य,

५. **जीवास्तिकाय**—चेतनाशील द्रव्य,

६. **पुद्गलास्तिकाय**—मूर्त जड़ द्रव्य,

(क) इन छः द्रव्यों में—एक जीव है, शेष पांच अजीव हैं।

(ख) ,, ,, —एक मूर्त है,[1] शेष पांच अमूर्त हैं।

(ग) ,, ,, —एक काल द्रव्य है, शेष पांच अस्तिकाय हैं।

(घ) ,, ,, —चार अस्तिकाय—लोक, अलोक के विभाजक हैं:—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय—एक-एक द्रव्य है। आकाशास्तिकाय यद्यपि एक द्रव्य है किन्तु लोक—अलोक दोनों में व्याप्त है। जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य हैं।

(ङ) इन छः द्रव्यों में से, एक काल द्रव्य के प्रदेश नहीं है। क्योंकि अतीत के समय नष्ट हो जाते हैं—और भविष्य के समय अनुत्पन्न हैं, इसलिए इनका कोई अस्तित्व नहीं है; केवल वर्तमान का एक समय[2] ऐसा काल-द्रव्य है, जो अविभाज्य है, अतः इसके प्रदेश नहीं हैं। और प्रदेशों के न होने से ही यह काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है।[3] शेष पांच द्रव्यों के प्रदेश हैं अतः वे अस्तिकाय हैं। इन्हीं पंचास्तिकायों से यह लोक, द्रव्य लोक कहा जाता है।

---

१. पुद्गलास्तिकाय।

२. मुक्त आत्मा को मध्यलोक से, लोक के अग्रभाग तक पहुंचने में एक समय लगता है। मुक्त आत्मा जब मध्य-लोक से एक रज्जु जितनी ऊँचाई तक पहुंचता है, तब तक उसे जितना समय लगता है उतना समय, उस एक समय का विभाज्य अंश मान लिया जाए तो क्या आपत्ति है!

३. काय अर्थात्—शरीर के देश—प्रदेशों के समान काल-द्रव्य के देश-प्रदेश नहीं हैं, इसलिए काल द्रव्य होते हुए भी अस्तिकाय नहीं है।

क्षेत्र-लोक

लोक का विस्तार

इस अनन्त आकाश में प्रतिदिन होने वाले चंद्र-सूर्य के उदयास्त को तथा झिलमिलाते अनगिनत तारों को देखकर जब कभी मानव ने कुछ किया तो उसके मन में विश्व के विस्तार की परिकल्पना जागृत हुई और वह यह सोचने लगा कि नीचे ऊपर और दायें-बांयें यह लोक (विश्व) कितनी दूरी तक फैला हुआ है ? यह असीम-अनन्त है या ससीम—सान्त है ?

जैनागमों में तथा ग्रंथों में उक्त जिज्ञासाओं के तीन समाधान मिलते हैं:—

(१) यह लोक नीचे-ऊपर और दायें-बांये असंख्य कोटा-कोटी योजन पर्यन्त फैला हुआ है ।

(२) **एक असत्कल्पना से लोक के विस्तार का अंकन**

जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित मेरू-पर्वत की चूलिका को घेर कर खडे रहें और नीचे जम्बूद्वीप की परिधि पर चार दिक्कुमारियां चारों दिशाओं में बाहर (लवण-समुद्र) की ओर मुंह करके खडी रहें । वे चारों एक साथ चारों बलि-पिण्डों को बाहर की ओर फैंके । पृथ्वी पर गिरने से पूर्व उन बलिपिण्डों को वे देव एक साथ ग्रहण कर सकें, ऐसी दिव्यगति वाले वे देव, लोक का अन्त पाने के लिये पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊपर और नीचे की ओर एक साथ चलें । जिस समय वे देव मेरु की चूलिका से चलें, उसी समय एक हजार वर्ष की आयु वाली उनकी सात पीढ़ियां भी समाप्त हो गईं, तत्पश्चात् उनके नाम-गोत्र भी नष्ट हो गये । फिर भी वे देव लोक के अन्त को न पा सके । किन्तु उस समय तक देवताओं ने जितना क्षेत्र पार किया है वह अधिक है और शेष क्षेत्र अल्प है ।

(३) **चौदह रज्जु प्रमाण लोक तथा एक रज्जु का औपमिक माप ।**

तीन क्रोड, इक्यासी लाख, सत्ताईस हजार, नौ सो सत्तर मण वजन का "एक भार" होता है । ऐसे हजार भार अर्थात्—(३८ अरब, १२ क्रोड, ७९ लाख, ७०००० सत्तर हजार) मण वजन का एक लोहे का गोला छः मास, छः दिन, छः प्रहर और छः घडी में जितनी दूरी तय करे उतनी लम्बी दूरी एक रज्जु होता है । ऐसे चौदह रज्जु प्रमाण यह लोक नीचे से ऊपर पर्यन्त है ।

उक्त तीन समाधानों की क्रमशः समीक्षा

(१) प्रथम समाधान, द्वितीय और तृतीय समाधान की अपेक्षा प्राचीन तथा तर्क संगत प्रतीत होता है । आधुनिक विज्ञान भी विश्व का विस्तार असंख्य योजन का ही मानता है । यथा एक घंटे में प्रकाश की गति ६७८७४४० मील है । इस अनन्त आकाश में अनेक ग्रह ऐसे हैं जिनका प्रकाश पृथ्वी पर अनेक प्रकाश वर्षों में पहुंचता है, अतः लोक का विस्तार असंख्य कोटा-कोटी मानना ही ठीक है ।

(२) प्रस्तुत असत्कल्पना के सम्बन्ध में निम्नलिखित मुद्दे विचारणीय हैं:—

(क) पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में जाने वाले देवों को केवल आधे रज्जु की दूरी ही तय करनी है, जबकि नीचे, ऊपर जाने वाले देवों को लगभग सात-सात रज्जु की दूरी तय करनी है । अतः समान वेग वाले देवों ने समान समय में, समान दूरी तय कर ली—यह कैसे संगत हो सकता है ?

टीकाकार आचार्य ने भी इस संबंध में अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि लोक का आकार यदि सम चतुरस्र मान लिया जाए तो समान वेग वाले देव समान समय में समान दूरी तय कर सकते हैं, अन्यथा आगमोक्त उदाहरण की संगति संभव नहीं है।

(ख) देवों द्वारा नहीं पार किया हुआ क्षेत्र, पार किये हुए क्षेत्र के असंख्यातवें भाग जितना है। अर्थात्—देवों द्वारा नहीं पार किये हुए क्षेत्र से पार किया हुआ क्षेत्र असंख्यात गुणा अधिक है। इस आगम निर्णय की संगति किस प्रकार की जाये !

(ग) बलि-पिण्ड लेने के लिये जिस देव को मेरु की चूलिका से जंबूद्वीप के विजय द्वार तक आना होता है, उसे लगभग १,१२२०० योजन की दूरी तय करनी पडती है। इतनी दूरी कम से कम एक चुटकी बजे जितनी देर में तय कर लेता होगा, जबकि कुछ ऐसे दिव्य गति वाले देव हैं जो एक चुटकी बजे जितनी देर में पूरे जबूद्वीप की परिक्रमा कर लेते हैं। अर्थात्–बलिपिण्ड पकडने वाले देव से एक चुटकी में तिगुनी दूरी तय कर लेते हैं। कुछ देव ऐसी दिव्य गति वाले भी हैं जो तीन चुटकी बजे उतनी देर में जंबूद्वीप की इक्कीस परिक्रमा कर लेते हैं। अब विचारणीय विषय यह है कि उक्त कल्पना में लोक का अंत पाने के लिये ऐसी दिव्य गतिवाले देवों की गति का उदाहरण क्यों नहीं दिया गया ?

(घ) उक्त कल्पना में लोक का अन्त पाने के लिए जाने वाले देव लगभग आठ हजार वर्ष में भी लोक का अन्त नहीं पा सकते, जबकि तीर्थंकर भगवान के जन्माभिषेक आदि महोत्सवों में अच्युतेन्द्र आदि आते हैं तो वे एक मुहूर्त (लग-भग ४८ मिनिट) में पौने चार रज्जु की दूरी तय कर लेते हैं। यदि (असत्कल्पनासे) अच्युतेन्द्र लोक का अन्त पाने के लिए तीव्रतम गति से चलें तो लग-भग चार मुहूर्त में लोक के अन्त तक पहुंच सकते हैं। अतः आठ हजार वर्ष तक लोक का अन्त न पा सकना विचारणीय अवश्य है।

(ङ) चमरेन्द्र भगवान महावीर की शरण लेकर शक्रेन्द्र को अपमानित करने के लिए सौधर्म देवलोक तक गया। और वज्र की मार से बचने के लिए वह वहां से लौट कर भगवान महावीर के समीप पहुँचा। शक्रेन्द्र भी वज्र को पकड़ने के लिए तीव्रतम गति से चला। "प्रस्तुत प्रसंग में चमरेन्द्र लगभग डेढ़ रज्जु गया और आया; शक्रेन्द्र केवल डेढ़ रज्जु आया।" चमरेन्द्र को आने-जाने में अधिक से अधिक एक मुहूर्त लगा होगा ! जबकि उक्त असत्कल्पना में देव लोकान्त तक आठ हजार वर्ष में भी नहीं पहुंच पाते। अतः यह अवधि विचारणीय है।

(३) **एक रज्जु के औपमिक परिमाण के संबन्ध में निम्न लिखित तथ्य विचारणीय हैं:—**

(क) एक रज्जु का जो औपमिक परिमाण बताया है उस हिसाब से उक्त भारवाला लोहे का गोला सात वर्ष, तीन मास और आठ दिन में चौदह रज्जु की दूरी पार कर सकता है। जब कि उक्त असत्कल्पना में तीव्रतम गतिवाले देव भी आठ हजार वर्ष में लोकान्त तक नहीं पहुंच सके।

इसका फलितार्थ यह हुआ कि लोहे के गोले की गति से देवताओं की गति मन्द है जबकि देवताओं की गति से लोहे के गोले की गति मन्द होनी चाहिये। "शक्रेन्द्र की गति से वज्र की गति मन्द रही है।" यह तथ्य व्याख्या प्रज्ञप्ति में वर्णित है।

(ख) एक रज्जु का यह औपमिक परिमाण "जैनतत्त्व-प्रकाश" (स्व० पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० लिखित) में दिया गया है। किंतु किस ग्रंथ से उद्धृत किया गया—यह अज्ञात है। यदि किसी प्राचीन ग्रन्थ में यह है तो अवश्य विचारणीय है।

(ग) आधुनिक वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि लोहे का गोला एक मण वजन का हो चाहे हजार मण वजन का हो, परन्तु किसी निर्धारित ऊंचाई से गिराने पर एक समान गति से गिरता है। एक घंटे में लोहे के गोले की गति ऊपर से नीचे की ओर केवल ७८ हजार ५५२ माइल की होती है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में ही यह गति आधुनिक वैज्ञानिकों ने मानी है।

यदि विज्ञान सम्मत लोहे के गोले की गति का आधार लेकर एक रज्जु का परिमाण निकालें तो इस प्रकार आयगा :—

यथा—छः मास, छः दिन, छः प्रहर और छः घड़ी के ४४८४ घंटे और २४ मिमिट होते हैं। इतने समय में लोहे का गोला ३५ करोड़, २२ लाख, ५८ हजार और ५८९ माइल की दूरी पार कर लेगा—ये एक रज्जु के माइल हुए।

इस प्रकार चौदह रज्जु के ४ अरब, ९३ करोड़, १७ लाख और २४३ माइल हुए। लोहे के गोले की गति से लोक का विस्तार इतना ही होता है, किंतु यह लोक का विस्तार सर्वथा असगत है।

(घ) तोल में 'मण' संज्ञा किस युग में निर्धारित की गई? इसका ऐतिहासिक दृष्टि से निर्णय होना आवश्यक है। क्योंकि राजाओं के शासन काल में तोल में 'मण' प्रचलित था।

(ङ) आगम काल में 'मण' तोल प्रचलित नहीं था, अतः यह मध्यकालीन तोल का नाम है। फिर भी इस सम्बन्ध में शोध कार्य होना आवश्यक है।

काल–लोक

यह लोक (विश्व) सान्त है या अनन्त? यह एक प्रश्न है। इसका समाधान वैदिक-परम्परा ने इस प्रकार किया है:—"विश्व की आदि भी है और अन्त भी है, अर्थात् सृष्टि का सर्जन और संहार दोनों होते हैं।" जैन-दर्शन ने इसका समाधान अनैकान्त-दृष्टि से इस प्रकार किया है:—

"यह लोक द्रव्य[1] और क्षेत्र[2] की अपेक्षा से सान्त है, काल[3] और भाव[4] की अपेक्षा से अनन्त है।"

---

१. जहां तक यह लोक है वहां तक ही धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय हैं। जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय भी लोकान्त तक ही हैं। अतः यह लोक द्रव्यापेक्षया सान्त है।

२. यह लोक क्षेत्र से असंख्य कोडा-कोडी योजन पर्यन्त है, आगे अलोक है। अतः यह लोक क्षेत्रापेक्षया भी सान्त है।

३. काल दो प्रकार का है:—नैश्चयिक काल और व्यावहारिक काल। नैश्चयिक काल अनन्त है। अतः इसकी अपेक्षा यह लोक भी अनन्त है। और यह काल लोक व्यापी है। अतः यह धर्मास्तिकाय के समान लोक-अलोक का विभाजन भी है।

समय, आवलिका-यावत्-कालचक्र पर्यन्त व्यावहारिक काल है। चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहों के निमित्त से मानव ही व्यावहारिक-काल के विभाग स्थिर करता है, इसलिए मनुष्य–क्षेत्र को समय-क्षेत्र कहते हैं। यह मनुष्य-क्षेत्र अढाई द्वीप पर्यन्त है।

४. जीव द्रव्य, काल की अपेक्षा से अनन्त है, अतः जीव समुदाय के औपशमिकादि भाव भी काल की अपेक्षा से अनन्त हैं। और इन औपशमिकादि भावों की अपेक्षा यह लोक अनन्त है।

भाव लोक

भाव पांच प्रकार के हैं:—१—औपशमिक[1] २—क्षायोपशमिक[2] ३—क्षायिक[3] ४—औदयिक,[4] ५—पारिणामिक[5]। ये पांचों भाव जीव के स्वरूप हैं। इन पांचों में एक औदयिक भाव वैभाविक है—शेष चार स्वाभाविक हैं। औपशमिक आदि तीन भाव उत्तरोत्तर आत्मशुद्धि के द्योतक है।[6]

मुक्त जीवों में दो भाव हैं:—१—क्षायिक और २—पारिणामिक।

संसारी जीवों में से किसी के तीन भाव, किसी के चार भाव और किसी के पांच भाव हैं। दो या एक भाव किसी संसारी जीव में नही होते। यह लोक अनन्त जीवों से व्याप्त है। और वे अनन्त जीव इन पांच भावों से युक्त है। इसलिये यह भावलोक भी है।

---

१. औपशमिक भाव दो प्रकार का हैं:—१—सम्यक्त्व, २—चारित्र।

२. क्षायिक भाव नव प्रकार का है:—१—ज्ञान, २—दर्शन, ३—दान, ४—लाभ, ५—भोग, ६—उपभोग, ७—वीर्य, ८—सम्यक्त्व, ९—चारित्र।

३. क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार का है:—

१—चार ज्ञान, २—तीन अज्ञान, ३—तीन दर्शन, ४—पांच दानादि लब्धियां, ५—सम्यक्त्व, ६—चारित्र-सर्वविरति, और ७—संयमासंयम-देश विरति।

४. औदयिक भाव इक्कीस हैं:—१—चार गतियां, २—चार कषाय, ३—तीन लिंग-वेद, ४—एक मिथ्यादर्शन, ५—एक अज्ञान, ६—एक असंयम, ७—एक असिद्ध भाव, ८—छः लेश्यायें।

५. पारिणामिक भाव अनेक प्रकार के हैं:—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन तथा अन्य भी पारिणामिक भाव हैं।

६. स्थानांग—अ. ३, उ. २, सूत्र १५३ में ज्ञान, दर्शन, चारित्र को ही भाव-लोक कहा है। केवलज्ञान, केवल-दर्शन और यथाख्यात चारित्र क्षायिक भाव हैं। शेष चार चारित्र क्षायोपशमिक भाव एवं औपशमिक भाव हैं। आत्म शुद्धि की अपेक्षा से औपशमिकादि तीन लोक ही भाव लोक हैं।

सम्पादकीय

प्रबुद्ध पाठकों के मन में सहज ही यह सन्देह हो सकता है कि आखिर प्रस्तुत गणितानुयोग-संकलन का उद्देश्य क्या है ? इस युग में, जब कि वैज्ञानिक ज्योतिष्क-लोक की सैर कर चुके हैं और गहरी जानकारी प्राप्त कर चुके हैं, तब इस संकलन का क्या मूल्य होगा ? इन प्रश्नों का उत्तर भी मुनिश्री ने अपने वक्तव्य में दिया है। मगर भूगोल-खगोल संबंधी जो विवरण प्रस्तुत ग्रंथ में दिया गया है, उसमें शत-शत ऐसे विषय हैं जिनकी जानकारी आधुनिक वैज्ञानिकों को नहीं है। जिन विषयों की जानकारी है, वह भी अन्तिम है, यह नहीं कहा जा सकता। अतएव यह उचित ही है कि इस विषय की पुरातन विचारणाएँ अद्यतन अन्वेषकों के समक्ष उपस्थित की जाएँ।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत प्रकाशन एक महती योजना की आंशिक पूर्ति स्वरूप है—अपने आप में परिपूर्ण नहीं। बत्तीस मूल प्राकृत-जैनागमों में वर्णित समस्त विषयों का संकलन करके प्रकाशित करना आगम-अनुयोग-प्रकाशन की योजना है। सर्व प्रथम तैयार हो जाने के कारण ही यह विभाग पहिले प्रकाशित किया जा रहा है।

आगम-अनुयोग के वर्गीकरण की कल्पना बडी महत्त्वपूर्ण है। श्री 'कमल' मुनिजी ने इस कल्पना को मूर्त रूप देने में घोर परिश्रम किया है। कई वर्षों से वे इसके लिए निरन्तर प्रयत्न करते आ रहे हैं। इसके लिए उन्होंने दुस्साध्य साधना की है। जिन्होंने उन्हें शारीरिक और मानसिक श्रम करते देखा है, वे उनकी गहरी लगन को देख कर चकित रह गए हैं। दिन में एक ही बार आहार ग्रहण करते हुए वे अधिकांश समय इसी साधना में लगा रहे हैं।

मुनि श्री का अध्ययन विशाल है और उनकी कल्पनाशक्ति भी उर्वरा है। सचमुच विज्ञ-समाज के वे धन्यवाद के पात्र हैं और अन्य मुनियों के समक्ष उन्होंने एक स्पृहणीय उदाहरण उपस्थित किया है। इस प्रकार की विशुद्ध साहित्य-सेवा में अन्य मुनिजन भी प्रवृत्त हों, यह सर्वथा अनुकरणीय है।

मुनिश्री कमलजी और पण्डितवर श्री हीरालालजी शास्त्री की विस्तृत प्रस्तावनाएँ प्रस्तुत ग्रन्थ के साथ प्रकाशित हो रही हैं। उनमें प्रस्तुत वक्तव्य के अतिरिक्त कुछ कहना शेष नहीं रहता। अतएव 'सम्पादकीय' लिखना अपरिहार्य आदेश का पालन मात्र है।

इस उपयोगी साहित्य-आयोजन में मैं कुछ योग दे सका, यह मेरे लिए अत्यन्त प्रमोद का विषय है।

'गणितानुयोग' के संकलन में त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक हैं। आशा है विषय की दुरूहता एवं गंभीरता को देखते हुए वे क्षम्य मानी जाएँगी।

अन्त में, संकलन को मुद्रित करने में जिन्होंने प्रशंसनीय आर्थिक-योग प्रदान किया है, उन महानुभाव को शतशः धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता, जिनकी उदारता और साहित्य-भक्ति के बिना प्रकाशन का कार्य सर्वथा असंभव था। बस, इतना ही।

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

प्रस्तावना

(क)-जैन मान्यतानुसार लोक-वर्णन

अनन्त आकाश के ठीक बीचों-बीच यह हमारा लोक अवस्थित है, जो नीचे पल्यंक के सदृश, मध्य में वज्र के समान और ऊपर खड़े मृदंग के तुल्य है। यह लोक नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊर्ध्वमुख मृदंग के समान है। यह सब मिलकर लोक का आकार पुरुष के आकार का सा हो जाता है। जैसे कोई पुरुष अपने दोनों पैरों को फैलाकर और दोनों हाथों को कटि पर रख कर खड़ा हो, तो उसका जैसा आकार होगा, ठीक इसी प्रकार लोक का आकार है। अथवा आधे मृदंग के ऊपर पूरे मृदग के रखने पर जैसा आकार होता है, वैसा आकार लोक का समझना चाहिए[1]। कटि से नीचे के भाग को अधो-लोक, ऊपर के भाग को ऊर्ध्व-लोक और कटि-स्थानीय भाग को मध्य-लोक कहते हैं। इस तीन विभाग वाले लोक को लोकाकाश कहा जाता है, क्योंकि इसके भीतर ही जीव-पुद्गलादि सभी चेतन और अचेतन द्रव्य पाये जाते हैं। इस लोकाकाश के सर्व ओर पाये जाने वाले अनन्त आकाश को अलोकाकाश कहते हैं, क्योंकि इसमें केवल आकाश के अतिरिक्त अन्य कोई चेतन या अचेतन द्रव्य नहीं पाया जाता है।

१-सामान्य लोक-स्वरूप

लोकाकाश की ऊंचाई १४ राजु है[2]। यह अधोलोक में सबसे नीचे सात राजु विस्तृत है। पुनः क्रम से घटता हुआ कटि स्थानीय मध्य-भाग में एक राजु विस्तृत है। इससे ऊपर क्रम से बढ़ता हुआ दोनों हाथों के कोहिनी-स्थान पर पांच राजु विस्तृत है। पुनः क्रमसे घटता हुआ शिरः-स्थानीय लोक के अग्र-भाग पर एक राजु विस्तृत है। यह समस्त लोक सर्व ओर घनोदधि, घनवात और तनुवात इन तीन वलयों से वेष्टित है। अर्थात् इनके आधार पर अवस्थित है। प्रथम वलय अधिक सघन है, अतः इसे घनोदधि कहते हैं। दूसरा वलय तीसरे वलय की अपेक्षा सघन है, अतः उसे घनवात कहा गया है। तीसरा वलय उक्त दोनों की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म या पतला है, इसलिए इसे तनुवात कहते हैं[3]।

२—अधोलोक

कटि-स्थानीय झल्लरी के समान आकारवाले मध्यलोक के नीचे सात पृथिवियां हैं— घम्मा, वंशा, सेला, अंजना, अरिष्टा, मघा और माघवती। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमः प्रभा—इनके गोत्र कहे गये हैं। इनमें से पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं—खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। इनमें खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है। पंकभाग चौरासी हजार योजन और अब्बहुलभाग अस्सी हजार योजन मोटा है। इस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। इस तीन विभाग—

---

१. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० ६-७। तिलोयपण्णत्ती, अ०. १ गा० १३७-३८।
उब्भिय वलेक्कमुरवड्ढसंचयसण्णिहो हवे लोगो। (त्रिलोकसार गा० ६)

२. चोद्दस रज्जूदयो लोगो (त्रिलोकसार गा० ६) जगसेढिसत्तभागो रज्जू। (त्रिलोकसार गा०७)
चउदसरज्जू लोओ बुद्धिकओ होइ सत्तराजुघणो। कर्म ग्रंथ. ५–९७
सयंभुपरिमंताओ अवरंतो जाव रज्जूमाईओ। (प्रवचनसारो० १४३, ३१) राजु का प्रमाण जगच्छ्रेणी के सातवें भाग-बराबर है जो कि स्वयम्भूरमण द्वीप के पूर्व भाग से लेकर पश्चिम भाग-पर्यन्त के प्रमाण है। एक राजु में असंख्यात योजन होते हैं।

३. दि. शास्त्रों में घनोदधिवात का वर्ण गोमूत्र-सम, घनवातका मूंग-समान और तनुवात का अव्यक्त वर्ण कहा है।

वाली रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे असंख्यात हजार योजन के अन्तराल के बाद दूसरी शर्करा पृथ्वी है। यह एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी है। इसके नीचे पुनः असंख्यात हजार योजन नीचे जाकर तीसरी बालुका पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन है। इस तीसरी पृथ्वी का तल भाग मध्यलोक से दो रज्जु प्रमाण नीचा है। तीसरी पृथ्वी से असंख्यात हजार योजन नीचे जाकर चौथी पंकप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख चौवीस हजार योजन है। इस पृथ्वी का तल भाग मध्यलोक से तीन राजु नीचा है। इससे असंख्यात हजार योजन नीचे जाने पर पांचवी धूमप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख बीस हजार योजन है। इसका तल भाग मध्यलोक से चार रज्जु नीचा है। पांचवीं पृथ्वी से असंख्यात हजार योजन नीचे जाने पर छठी तमःप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन मोटी है। इसका तलभाग मध्यलोक से पांच राजु नीचा है। छठी पृथ्वी से असंख्यात हजार योजन नीचे जाने पर सातवीं महातमःप्रभा पृथ्वी है। इसकी मोटाई एक लाख आठ हजार योजन है[1]। इसका तल भाग मध्यलोक से छह राजु नीचा है।

रत्नप्रभा पृथ्वी के एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण क्षेत्र में से ऊपर नीचे के एक-एक हजार योजन भाग को छोड़कर मध्यवर्ती क्षेत्र में ऊपर भवनवासियों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन हैं,[2] तथा नीचे नारकियों के तीस लाख नारकावास हैं[3]। किन्तु त्रिलोकप्रज्ञप्ति, तत्त्वार्थ-वार्त्तिक आदि दि० ग्रन्थों में इससे भिन्न उल्लेख पाया जाता है[4]।

दूसरी पृथ्वी के ऊपर-नीचे एक-एक हजार योजन भूमि-भाग को छोड़कर मध्यवर्ती भाग में नारकों के २५ लाख नारकावास हैं। इसी प्रकार तीसरी से लगा कर सातवीं पृथ्वी तक उनकी मोटाई के ऊपरी-नीचे के एक-एक हजार योजन भाग को छोड़कर मध्यवर्ती भागों में क्रमशः १५ लाख, १० लाख, ३ लाख, पांच कम १ लाख और ५ नारकावास हैं। ये नारकावास पटल या पाथड़ों में विभक्त हैं। पहली आदि पृथ्वी में क्रमशः १३, ११, ९, ७, ५, ३ और १ पटल हैं। इस प्रकार सातों पृथिवियों के नारकावासों के ४९ पटल हैं। इन ४९ पटलों में विभक्त सातों पृथिवियों के नारकावासों का प्रमाण ८४ लाख है, जिनमें असंख्यात नारकी जीव सदाकाल अनेक प्रकार के क्षेत्रज परस्परोदीरित, शारीरिक और मानसिक दुःखों को भोगा करते हैं। इन नरकों में क्रूर कर्म करने वाले पापी मनुष्य और पशु-पक्षी तिर्यंच उत्पन्न होते हैं। वे पहली पृथ्वी में कम से कम १० हजार वर्ष की आयु से लेकर सातवीं पृथ्वी में ३३ सागरोपम काल तक नाना दुःखों को उठाया करते हैं। उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती है। उनका शरीर वैक्रियिक और औपपातिक होता है। जन्म लेने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में ही उनके शरीर का पूर्ण निर्माण हो जाता है और वे उत्पन्न होते ही ऊपर की ओर पैर तथा अधोमुख होकर नीचे नरक-भूमि पर गिरते हैं।

सातवीं-पृथ्वी के नीचे एक राजु-प्रमाण मोटे और सात राजु-प्रमाण विस्तृत क्षेत्र में केवल एकेन्द्रिय जीव ही रहते हैं।

---

१. दि० परम्परा में शर्करा आदि पृथिवियों की मोटाई क्रमशः ३२०००, २८०००, २४०००, २००००, १६००० और ८००० योजन मानी गई है। तिलोयपण्णत्ती में 'पाठान्तर' देकर उपर्युक्त मोटाई का भी उल्लेख है।

२. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ का पृष्ठ ५३।

३. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ का पृ० ४३।

४. दिगम्बर परम्परा के अनुसार रत्नप्रभा के तीन भागों में से प्रथम भाग के एक-एक हजार-योजन क्षेत्र को छोड़कर मध्यवर्ती १४ हजार योजन क्षेत्र में किन्नर आदि सात व्यन्तर देवों के, तथा नागकुमार आदि नौ भवनवासी देवों के आवास हैं। तथा रत्नप्रभा के दूसरे भाग में असुर-कुमार भवनपति और राक्षस व्यन्तर-पति के आवास हैं। रत्नप्रभा के तीसरे भाग में नारकों के आवास हैं।

(देखो तिलोयपण्णत्ती अ० ३ गा. ७। तत्त्वार्थवार्तिक अ० ३, सू. १)

३ -मध्यलोक

मध्यलोक का आकार झल्लरी या चूड़ी के समान गोल है। इसके सबसे मध्य भाग में एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए दो लाख योजन विस्तृत लवण समुद्र है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए चार लाख योजन विस्तृत धातकीखण्ड द्वीप है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए आठ लाख योजन विस्तृत कालोद समुद्र है। इसे सर्व ओर से घेरे हुए सोलह लाख योजन विस्तृत पुष्कर द्वीप है, इस पुष्कर द्वीप के ठीक मध्य भाग में गोल आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत है। इससे परवर्ती पुष्करार्ध द्वीप में, तथा उससे आगे के असंख्यात द्वीप-समुद्रों में वैक्रिय लब्धि-संपन्न या चारणमुनि के अतिरिक्त अन्य मनुष्यों का आवागमन नहीं हो सकता ऐसी श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है। किन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार ऋद्धि-सम्पन्न मनुष्य भी नहीं जा आ सकते हैं।

पुष्कर द्वीप को घेर कर उससे दूने विस्तार वाला पुष्करोद समुद्र है। पुनः उसे घेरकर उत्तरोत्तर दूने-दूने विस्तार वाले वरुणवरद्वीप वरुणवर समुद्र, क्षीरवरद्वीप-क्षीरोदसागर घृतवरद्वीप घृतवर-समुद्र, क्षोदवर द्वीप क्षोदवर समुद्र, नंदीश्वर द्वीप-नन्दीश्वरवर समुद्र आदि नाम वाले असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। सब से अन्त में असंख्यात योजन विस्तृत स्वयम्भूरमण समुद्र है।

इस असंख्यात द्वीप--समुद्रों वाले मध्य लोक के ठीक मध्य भाग में जो एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप है उसके भी मध्य भाग में मूल में दस हजार योजन विस्तार वाला और एक लाख योजन ऊंचा मेरु पर्वत है। इसके उत्तर दिशा में अवस्थित उत्तरकुरु में एक अनादि-निधन पार्थिव जम्बू-वृक्ष है, जिसके निमित्त से ही इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा है। इस द्वीप का विभाजन करने वाले, पूर्व से लेकर पश्चिम तक लम्बे छह वर्षधर पर्वत हैं—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी। इन वर्षधर पर्वतों से विभक्त होने के कारण जम्बूद्वीप के सात विभाग हो जाते हैं, जिन्हें वर्ष या क्षेत्र कहते हैं। इनके नाम दक्षिण की ओर से इस प्रकार हैं—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत वर्ष। इनमें से विदेह क्षेत्र के मध्य-भाग में मेरु पर्वत है। इसके दक्षिणी भाग में भरत आदि तीन क्षेत्र हैं और उत्तरी भाग में रम्यक आदि तीन क्षेत्र हैं।

४ -कर्मभूमियां और अकर्मभूमियां

उपर्युक्त सात क्षेत्रों में से भरत, ऐरावत और देवकुरु-उत्तरकुरु को छोड़कर शेष विदेह क्षेत्र को कर्मभूमि कहा जाता है, क्योंकि यहां के मनुष्य असि, मषी, कृषि, आदि कर्मों के द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यहां के मनुष्य-तिर्यंच अपने अपने पुण्य-पापों के अनुसार नरक, तिर्यंचादि चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं तथा यहां के ही मनुष्य अपने पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। उक्त कर्मभूमि के सिवाय शेष क्षेत्रों को अकर्म भूमि या भोगभूमि कहा जाता है, क्योंकि वहां असि-मषी आदि कर्मों के द्वारा जीविकोपार्जन नहीं करना पड़ता, किन्तु प्रकृति-प्रदत्त कल्पवृक्षों के द्वारा ही जीवन-निर्वाह होता है। भोगभूमि के जीवों की अकाल मृत्यु भी नहीं होती है, किन्तु वे सदा स्वस्थ रहते हुए पूर्ण आयु-पर्यन्त दिव्य भोगों को भोगते रहते हैं।

५—अन्तर्द्वीप

प्रथम हिमवान् पर्वत की चारों विदिशाओं में तीन-तीन सौ योजन लवण-समुद्र के भीतर जाकर चार अन्तर द्वीप हैं। इसी प्रकार लवण-समुद्र के भीतर चार सौ, पांच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ और नौ सौ योजन आगे जाकर चारों विदिशाओं में चार-चार अन्तर-द्वीप और हैं। इस प्रकार क्षुल्ल हिमवान् के (७×४=२८) सर्व अन्तर-द्वीप २८ होते हैं। इसी प्रकार छठे शिखरी पर्वत के लवण समुद्रगत २८ अन्तर-द्वीप हैं। दोनों ओर के मिलाकर ५६ अन्तर द्वीप हो जाते हैं[1]। इनमें एकोरुक आदि अनेक आकृतियों वाले मनुष्य रहते हैं। वे कल्प वृक्षों के

१. दिगम्बर परम्परा में अन्तर द्वीपों की संख्या ९६ बतलायी गयी है। विशेष के लिए देखो-तिलोयपण्णत्ती अ० ४, गा० २४७८-२४९०। तत्त्वार्थवार्त्तिक अ० ३, सूत्र ३७ की टीका आदि।

फल-फूलों को खाकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, स्त्री-पुरुष के रूप में युगल ही उत्पन्न होते हैं और साथ ही मरते हैं। इनके मरण से कुछ समय पूर्व युगल-सन्तान उत्पन्न होती है[1]।

ऊपर जिन छह वर्षधर पर्वतों के नाम कहे गये हैं, उनके ऊपर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केशरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नामका एक-एक हृद या सरोवर है। इन्हीं सरोवरों के मध्य में पद्मों (कमलों) का अवस्थान बतलाया गया है। (विशेष वर्णन के लिए देखिये प्रस्तुत ग्रन्थ का पृ० ८३–८५)

हिमवान पर्वतस्थ पद्मद्रह के पूर्व भाग से गंगा महानदी निकली है, जो पर्वत से नीचे गिरकर दक्षिण भरत क्षेत्र में बहकर पूर्वमुखी होकर पूर्व के लवण-समुद्र में जाकर मिलती है। इसी पद्म-सरोवर के पश्चिम-भाग से सिन्धु महानदी निकल कर भारतवर्ष के दक्षिण भाग में कुछ दूर बह कर पश्चिमाभिमुखी होकर पश्चिम लवण-समुद्र में जाकर मिलती है। इसी सरोवर के उत्तरी भाग से रोहितांसन नदी निकली है जो कि हैमवत-क्षेत्र में बहती है। अन्तिम शिखरी-पर्वत के ऊपर स्थित पुण्डरीक सरोवर के पूर्वी भाग से रक्ता और पश्चिमी भाग से रक्तोदा नदी निकलकर ऐरावत क्षेत्र में बहती हुई क्रमशः पूर्व और पश्चिम समुद्र में जाकर मिलती हैं। इसी पुण्डरीक सरोवर के दक्षिणी-भाग से सुवर्णकूला नदी निकली है, जो हैरण्यवत-क्षेत्र में बहती है। शेष मध्यवर्ती वर्षधर पर्वतों के सरोवरों से दो–दो नदियां निकली हैं। वे अपने-अपने क्षेत्रों में बहती हुई पूर्व एवं पश्चिम के समुद्र में जाकर मिलती हैं। इन प्रधान महानदियों में सहस्रों अन्य छोटी नदियां आकर मिलती हैं।

विदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत के ईशानादि चारों कोणों में क्रमशः गन्धमादन, माल्यवान्, सौमनस और विद्युत्प्रभ नाम वाले चार पर्वत हैं। इनसे विभक्त होने के कारण मेरु के दक्षिणी भाग को देवकुरु और उत्तरी भाग को उत्तरकुरु कहते हैं। ये दोनों ही क्षेत्र भोगभूमि हैं। मेरु के पूर्ववर्त्ती भाग को पूर्व-विदेह और पश्चिम दिशा वाले भाग को अपर या पश्चिम-विदेह कहते हैं इन दोनों ही स्थानों में सीता–सीतोदा नदी के बहने से दो-दो खण्ड हो जाते हैं। इन चारों ही खण्डों में कर्मभूमि है। इन्हीं में सीमन्धर आदि तीर्थंकर सदा विहार करते और धर्मोपदेश देते हुए विराजते हैं और आज भी वहां के पुरुषार्थी मानव कर्मों का क्षय करके मोक्ष जाते हैं।

६-ज्योतिष्क लोक

जम्बू-द्वीप के समतल भाग से ७९० योजन की ऊँचाई से लेकर ९०० योजन की ऊँचाई तक ज्योतिष्क लोक है, जहां पर सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा, इन पाँच जाति के ज्योतिषी देवों के विमान हैं। ये सभी विमान यतः ज्योतिर्मान या प्रकाश-स्वभावी हैं, अतः इन्हें ज्योतिष्क कहते हैं। और उनमें रहने वाले ज्योतिष्क देवों के निवास के कारण उक्त क्षेत्र ज्योतिष्क-लोक कहलाता है। तिरछे रूप में यह ज्योतिष्क-लोक स्वयम्भूरमण समुद्र तक फैला हुआ है। इसमें ७९० योजन की ऊंचाई पर सर्व प्रथम ताराओं के विमान हैं। उनसे १० योजन की ऊंचाई पर सूर्य का विमान है। सूर्य से ८० योजन ऊपर चन्द्र का विमान हैं। चन्द्र से ४ योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रों से ४ योजन ऊपर बुध का विमान है। बुध से ३ योजन ऊपर शुक्र का विमान है। शुक्र से ३ योजन ऊपर गुरु का विमान है। गुरु से ३ योजन ऊपर मंगल का विमान है। और मंगल से ३ योजन ऊपर शनैश्चर का विमान है। इस प्रकार सर्व ज्योतिष्क विमान-समुदाय एक सौ दश योजन के भीतर पाया जाता है।

मध्य-लोकवर्ती तीसरे पुष्कर-द्वीप के मध्य में जो मानुषोत्तर पर्वत है, वहां तक का क्षेत्र मनुष्य लोक कहलाता है। इस मनुष्य लोक के भीतर सर्व ज्योतिष्क-विमान मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए निरन्तर घूमते रहते हैं। यहाँ पर सूर्य के उदय और अस्त से ही दिन-रात्रि का व्यवहार होता है। मनुष्य लोक के बाहिरी भाग से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र तक के असंख्यात योजन विस्तृत क्षेत्र में जो असंख्य ज्योतिष्क-विमान हैं, वे घूमते नहीं, किन्तु

१. देखो-तिलोयपण्णत्ती अ० ४, गा० २४८९, तथा २५१२ आदि।

सदा अवस्थित रहते हैं। जम्बूद्वीप में मेरु के चारों ओर ११२१ योजन तक ज्योतिष्क-मण्डल नहीं है। लोकान्त में भी इतने ही योजन छोड़कर ज्योतिष्क-मण्डल अवस्थित है। इसके मध्यवर्ती भाग में यथा संभव अन्तराल के साथ सर्वत्र वह फैला हुआ है।

जैन मान्यता के अनुसार जम्बूद्वीप में २ सूर्य और २ चन्द्र हैं। एक सूर्य मेरुपर्वत की पूरी प्रदक्षिणा दो दिन-रात में करता है। इसका परिभ्रमण-क्षेत्र जम्बूद्वीप के भीतर १८० योजन और लवण-समुद्र के भीतर ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन है। सूर्य के घूमने के मण्डल १८४ हैं। एक मण्डल से दूसरे मंडल का अन्तर दो योजन का है। इस प्रकार प्रथम मण्डल से अन्तिम मंडल तक परिभ्रमण करने में सूर्य को ३६८ दिन लगते हैं। सौर मास के अनुसार एक वर्ष में इतने ही दिन होते हैं। चन्द्र के परिभ्रमण के मण्डल केवल १५ हैं। चन्द्र को भी मेरु की एक प्रदक्षिणा करने में दो दिन-रात से कुछ अधिक समय लगता है, क्योंकि उसकी गति सूर्य से मन्द है। इसी कारण से चन्द्र के उदय में सूर्य की अपेक्षा आगा-पीछापन दिखाई देता है। एक चन्द्र अपने १५ मंडलों में चन्द्रमास में १४$\frac{१}{४}$+$\frac{१}{१२४}$ मंडल ही चलता है, अतः चान्द्रमास के अनुसार वर्ष में ३५५ या ३५६ ही दिन होते हैं।

जैन मान्यतानुसार लवण-समुद्र में ४ सूर्य और ४ चन्द्र हैं। धातकी-खण्ड में १२ सूर्य और १२ चन्द्र हैं। कालोद-समुद्र में ४२ सूर्य और ४२ चन्द्र हैं। पुष्करार्ध-द्वीप में ७२ सूर्य और ७२ चन्द्र हैं। पुष्करार्ध के परवर्ती अर्ध भाग में भी ७२-७२ ही सूर्य-चन्द्र हैं[1]। इससे आगे स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त सूर्य और चन्द्र की संख्या उत्तरोत्तर दूनी-दूनी है।

एक चन्द्र के परिवार में एक सूर्य, अट्ठाईस नक्षत्र, अठ्यासी ग्रह, और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे होते हैं। जम्बूद्वीप में दो चन्द्र होने से नक्षत्रादि की सख्या भी दूनी जाननी चाहिए। इस प्रकार सारे ज्योतिर्लोक में असंख्य सूर्य, चन्द्र हैं। इनसे अट्ठाईस गुणित नक्षत्र और अठ्यासी गुणित ग्रह है। तथा सूर्य से ६६९७५ कोड़ाकोड़ी गुणित तारे हैं[2]।

मनुष्य लोकवर्ती ज्योतिष्क-विमान यद्यपि स्वयं गमन-स्वभावी हैं, तथापि आभियोग्य जाति के देव, सूर्य चन्द्रादि के विमानों को गतिशील बनाये रखने मे निमित्त-स्वरूप हैं। ये देव सिंह, गज, बैल, और अश्व का आकार धारण कर और क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओं में संलग्न रहकर सूर्यादि को गतिशील बनाये रखते हैं[3]।

७-ऊर्ध्व-लोक

मेरु-पर्वत को तीनों लोकों का विभाजक माना गया है। मेरु के अधस्तन भाग को अधोलोक और मेरु से ऊपरके भाग को ऊर्ध्व-लोक कहते हैं। ऊर्ध्वलोक में श्वेताम्बरीय मान्यतानुसार स्वर्गों की संख्या बारह है और दिगम्बरीय मान्यतानुसार सोलह है। इन स्वर्गो में कल्पवासी देव और देवियां रहती हैं। इनसे ऊपर नौ ग्रैवेयक, उनके ऊपर दिगम्बरीय मान्यतानुसार नौ अनुदिश और उनके ऊपर पांच अनुत्तर विमान हैं इन विमानों में रहनेवाले देव कल्पातीत कहलाते हैं, क्योंकि उनमें इन्द्र, सामानिक आदि की कल्पना नहीं है, वे उससे परे हैं। इन विमानों में रहनेवाले देव समान वैभव वाले हैं और सभी अपने आपको इन्द्र-स्वरूप से अनुभव करते हैं, इसलिए वे (अहं+इन्द्रः) 'अहमिन्द्र' कहलाते हैं।

स्वर्गों में जो कल्पवासी देव रहते है, उनमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक नामकी दस जातियां हैं। जो सामानिक आदि अन्य देवों के स्वामी होते हैं, उन्हें इन्द्र कहते हैं। इनकी आज्ञा सर्व देव शिरोधार्य करते हैं और उनका वैभव, ऐश्वर्य अन्य सर्व देवों से बहुत बढ़-चढ़ा होता है। जो आज्ञा और ऐश्वर्य को छोड़कर शेष सब बातों में इन्द्र के समान होते हैं उन्हें

---

१. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ पृष्ठ २५२-२५६।
२. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ पृ० २५२।
३. देखो प्रस्तुत ग्रन्थ पृ० २६१-२६५।

सामानिक कहते हैं। मंत्री और पुरोहित का काम करने वाले देव त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं। इनकी संख्या तैंतीस ही होती हैं, इसलिए ये त्रायस्त्रिंश कहे जाते हैं। इन्द्र की सभा या परिषद् के सदस्यों को पारिषद कहते हैं। इन्द्र के अंग-रक्षक देव आत्मरक्ष कहलाते हैं। सर्व देवों की रक्षा करने वाले देव लोकपाल कहलाते हैं। सेना में काम करने वाले देवों को अनीक कहते हैं। साधारण प्रजा-स्थानीय देवों को प्रकीर्णक कहते हैं। देव लोक में जो देव ज्ञान से हीन पुण्यवाले होते हैं, उन्हे किल्विषिक कहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों का भी वर्णन किया गया है, उनमें से भवन-वासियों में भी उपर्युक्त दस भेद हैं। किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल को छोड़कर शेष आठ भेद होते हैं। व्यन्तर देवों के आवास रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम-द्वितीय-काण्ड में तथा मध्य-लोकवर्ती असंख्यात द्वीप और समुद्रों में पाये जाते हैं।

पांचवें ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में सारस्वत आदि लौकान्तिक देव रहते हैं। ये देवर्षि कहलाते हैं। वे स्वर्ग के देवों मे सर्वाधिक ज्ञानी होते हैं। वे तीर्थंकरों के अभिनिष्क्रमण कल्याणक के सिवाय अन्य किसी कल्याणक में नहीं आते हैं और वे सभी एक भवावतारी होते हैं।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी इन सभी प्रकार के देवों का औपपातिक जन्म होता है। ये अपनी उपपाद शय्या पर जन्म लेने के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त में ही पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

८-तमस्काय

जम्बूद्वीप से तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लांघने पर अरुणवर-द्वीप की बाहिरी वेदिका के अन्त से अरुणोदय समुद्र में बयालीस हजार योजन अवगाहन करके जल के ऊपरी भाग से एक प्रदेश की श्रेणी वाला तमस्काय (अन्धकार-पिण्ड) आरम्भ होता है। पुनः वह १७२१ योजन ऊपर उठकर विस्तार को प्राप्त होता हुआ सौधर्मादि चार कल्पों को आवृत करके पांचवें ब्रह्म लोक में रिष्ट विमान को प्राप्त होकर समाप्त होता है। इस तमस्काय का आकार नीचे मल्लकमूल और ऊपर मुर्गे के पींजरे के समान है। इसके लोकतमिस्र आदि १३ नाम हैं और इसकी आठ कृष्णराजियां बतलायी गयी हैं। (विशेष के लिए देखें प्रस्तुत ग्रन्थ का पृ० ४२९-३१)

९-सिद्धलोक

ऊर्ध्व लोक के सब से अन्त में स्थित सर्वार्थ सिद्धि विमान के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर ईषत्प्राग्भारा नामकी पृथ्वी है। वह पैंतालीस लाख योजन विस्तृत गोल-आकार वाली है। यह बीच में आठ योजन मोटी है फिर क्रम से घटती हुई सबसे अन्तिम प्रदेशों में मक्खी के पंख से भी पतली हो गई है। दिगम्बर मान्यतानुसार ईषत्प्राग्भार पृथ्वी लोकान्त तक विस्तृत होने से एक राजु चौड़ी और सात राजु लम्बी है। इसके ठीक मध्य भाग में मनुष्य क्षेत्र के ऊपर पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा गोल-आकार वाला सिद्धक्षेत्र है। इसका आकार रूप्यमय छत्राकार है। इस सिद्धक्षेत्र या सिद्ध लोक में कर्मों का क्षय करके संसार चक्र से छूटने वाले मुक्त जीव निवास करते हैं और अनन्त काल तक अपने आत्मीक अव्याबाध निरुपम सुख को भोगते रहते हैं।

१०—क्षेत्र—माप

जैन परम्परा में क्षेत्र-माप इस प्रकार बतलाया गया है:—

परमाणु	= पुद्गल का सबसे सबसे छोटा अविभागी अंश
अनन्तपरमाणु	= १ उस्सण्हसण्हिया (उत्संज्ञसंज्ञिका)
८ उस्सण्हसण्हिया	= १ सण्हसण्हिया (संज्ञासंज्ञिका)
८ सण्हसण्हिया	= १ ऊर्ध्वरेणु
८ ऊर्ध्वरेणु	= १ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु	= १ रथरेणु
८ रथरेणु	= १ देवकुरु के मनुष्य का वालाग्र
८ देवकुरु मनुष्य का वालाग्र	= १ हरिवर्ष " "
८ हरिवर्ष " "	= १ हैमवत " "
८ हैमवत " "	= १ विदेहक्षेत्रज " "
८ विदेहक्षेत्रज " "	= १ भरतक्षेत्रज " "
८ भरतक्षेत्रज " "	= १ लिक्षा (लीख)
८ लिक्षा	= १ यूका (जूं)
८ यूका	= १ यवमध्य
८ यवमध्य	= १ उत्सेधांगुल
६ उत्सेधांगुल	= १ पाद
२ पाद	= १ वितस्ति
२ वितस्ति	= १ रत्नि
२ रत्नि	= १ कुक्षि (दि० परं० किष्कु)
२ कुक्षि (किष्कु)	= १ दण्ड (धनुष)
२ सहस्र धनुष	= १ गव्यूति
४ गव्यूति	= १ योजन

उपर्युक्त माप-वर्णन उत्सेधांगुल से है। उत्सेधांगुल से प्रमाणांगुल पांच सौ गुणा होता है। एक उत्सेधांगुल लम्बी एक प्रदेश की श्रेणी (पंक्ति) को सूच्यंगुल कहते हैं। सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं और सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं। असंख्यात कोड़ाकोड़ी घनांगुल गुणित योजनों की पंक्ति को श्रेणी या जगच्छ्रेणी कहते हैं। जगच्छ्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते हैं और जगच्छ्रेणी के घन को लोक या घन-लोक कहते हैं। इनमें से जगच्छ्रेणी के सातवें भाग-प्रमाण क्षेत्र को राजु कहते हैं। लोकाकाश का घनफल ३४३ राजु प्रमाण है।

११-काल-माप

समय		=	काल का सूक्ष्मतम अंश
जघन्य युक्त असंख्यात समय		=	१ आवलिका
४४४६$\frac{३४५५}{३७७३}$		=	आवलिका = १ प्राण
७	प्राण	=	१ स्तोक
७	स्तोक	=	१ लव
३८$\frac{१}{२}$	लव	=	१ घड़ी
२	घड़ी	=	१ मुहूर्त (= ४८ मिनिट)
३०	मुहूर्त	=	१ अहोरात्र
३०	अहोरात्र	=	१ मास
१२	मास	=	१ वर्ष
८४ लाख वर्ष		=	१ पूर्वांग
,,	पूर्वांग	=	१ पूर्व
,,	पूर्व	=	१ त्रुटितांग
,,	त्रुटितांग	=	१ त्रुटित
,,	त्रुटित	=	१ अडडांग
,,	अडडांग	=	१ अडड
,,	अडड	=	१ अववांग
,,	अववांग	=	१ अवव
,,	अवव	=	१ हूहूकांग
,,	हूहूकांग	=	१ हूहूक
,,	हूहूक	=	१ उत्पलांग
,,	उत्पलांग	=	१ उत्पल

इसी प्रकार आगे पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिपुरांग, अर्थनिपुर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका उत्तरोत्तर चौरासी लाख गुणित जानना चाहिए। यह काल-मान श्वेताम्बर-आगमों के अनुसार है।

दिगम्बर मान्यतानुसार उपर्युक्त कालमाप का वर्णन इस प्रकार है:—

समय	=	काल का सबसे छोटा अविभागी अंश
असंख्यात समय	=	१ आवली
संख्यात आवली	=	१ प्राण (श्वासोच्छवास)
७ प्राण	=	१ स्तोक
७ स्तोक	=	१ लव
७७ लव	=	१ मुहूर्त
३० मुहूर्त्त	=	१ अहोरात्र
१५ अहोरात्र	=	१ पक्ष
२ पक्ष	=	१ मास
२ मास	=	१ ऋतु
३ ऋतु	=	१ अयन
२ अयन	=	१ वर्ष
८४ लाख वर्ष	=	१ पूर्वाङ्ग

समय		काल का सूक्ष्मतम अंश
८४ लाख पूर्वाङ्ग	=	१ पूर्व
८४ ,, पूर्व	=	१ पर्वाङ्ग
८४ ,, पूर्वाङ्ग	=	१ पर्व
८४ ,, पर्व	=	१ नयुताङ्ग
८४ ,, नयुताङ्ग	=	१ नयुत
८४ ,, नयुत	=	१ कुमुदाङ्ग
८४ ,, कुमुदाङ्ग	=	१ कुमुद
८४ ,, कुमुद	=	१ पद्माङ्ग
८४ ,, पद्माङ्ग	=	१ पद्म
८४ ,, पद्म	=	१ नलिनाङ्ग
८४ ,, नलिनाङ्ग	=	१ नलिन

इसी प्रकार आगे कमलाङ्ग-कमल, तुट्यांग-तुट्य, अटटाङ्ग-अटट, अममाङ्ग-अमम, हूहूअंग-हूहू, लताङ्ग-लता, महालताङ्ग-महालता, शिरः प्रकम्पित, हस्तप्रहेलित और अचलात्म को उत्तरोत्तर ८४ लाख गुणित जानना चाहिए। ये सभी सख्याएँ संख्यात गणना के ही भीतर है। पल्योपम और सागरोपम आदि असंख्यात-गणना के भीतर है। इन सबसे ऊपर अन्त-विहीन जो राशि है, वह अनन्त कहलाती है।

(ख)—बौद्ध मतानुसार लोक—वर्णन

१-लोक-रचना

आ० वसुबन्धु ने अपने अभिधर्म-कोश में लोक रचना इस प्रकार बतलाई है:—

लोक के अधोभाग में सोलह लाख योजन ऊंचा, अपरिमित वायु-मण्डल है[१]। उसके ऊपर ११ लाख बीस हजार योजन ऊंचा जल-मंडल है। उसमें ३ लाख बीस हजार योजन कंचनमय भूमण्डल है[२]। जल-मण्डल और कञ्चन-मण्डल का विस्तार १२ लाख ३ हजार चार सौ पचास योजन तथा परिधि छत्तीस लाख दस हजार तीन सौ पचास योजन प्रमाण है[३]।

कांचनमय भूमण्डल के मध्य में मेरु-पर्वत है। यह अस्सी हजार योजन नीचे जल में डूबा हुआ है तथा इतना ही ऊपर निकला हुआ है[४]। इससे आगे अस्सी हजार योजन विस्तृत और दो लाख चालीस हजार योजन प्रमाण परिधि से संयुक्त प्रथम सीता (समुद्र) है। जो मेरु को घेर कर अवस्थित है। इससे आगे चालीस हजार योजन विस्तृत युगन्धर पर्वत वलयाकार से स्थित है। इसके आगे भी इसी प्रकार से एक एक सीता को अन्तरित करके आधे-आधे विस्तार से संयुक्त क्रमशः युगन्धर ईशाधर, खदीरक, सुदर्शन, अश्वकर्ण, विनतक, और निमिन्धर पर्वत हैं। सीताओं का विस्तार भी उत्तरोत्तर आधा-आधा होता गया है[५]। उक्त पर्वतों में से मेरु चतुरंत्नमय और शेष सात पर्वत स्वर्णमय हैं। सबसे बाहिर अवस्थित सीता (महासमुद्र) का विस्तार तीन लाख बाईस हजार योजन प्रमाण है। अन्त में लौहमय चक्रवाल पर्वत स्थित है।

निमिन्धर और चक्रवाल पर्वतों के मध्य में जो समुद्र स्थित है उसमें जम्बूद्वीप, पूर्वविदेह, अवरगोदानीय और उत्तर कुरू, ये चार द्वीप हैं। इनमें जम्बूद्वीप मेरु के दक्षिण भाग में है, उसका आकार शकट के समान है। उसकी तीन भुजाओं में से दो भुजाएं दो-दो हजार योजन और एक भुजा तीन हजार पचास योजन की है।

मेरु के पूर्व भाग में अर्द्ध-चन्द्राकार पूर्वविदेह नाम का द्वीप है। इसकी भुजाओं का प्रमाण जम्बूद्वीप की तीनों भुजाओं के समान है[७]। मेरु के पश्चिम भाग में मण्डल-मार अवरगोदानीय-द्वीप है। इसका विस्तार अढ़ाई हजार योजन और परिधि साढ़े सात हजार योजन प्रमाण है[८]। मेरु के उत्तर भाग में सम चतुष्कोण उत्तरकुरु-द्वीप है। इसकी एक-एक भुजा दो-दो हजार योजन की है। इनमें से पूर्व विदेह के समीप में देह-विदेह, उत्तरकुरु के समीप में कुरु-कौरव, जम्बूद्वीप के समीप में चामर, अवर-चामर तथा गोदानीय द्वीप के समीप में शाटा-और उत्तरमन्त्री नामक अन्तर्द्वीप अवस्थित हैं। इनमें से चमरद्वीप में राक्षसों का और शेष द्वीप में मनुष्य का निवास है[९]।

---

१. अभिधर्मकोश, ३, ४५।
२. " " ३, ४६।
३. " " ३, ४७-४८।
४. " " ३, ५०।
५. " " ३, ५१-५२।
६. " " ३, ५३।
७. " " ३, ५४
८. " " ३, ५५
९. " " ३, ५६

मेरु-पर्वत के चार परिखण्ड (विभाग) हैं। प्रथम परिखंड शीता-जल से दस हजार योजन ऊपर तक माना गया है। इसके आगे क्रमशः दस-दस हजार ऊपर जाकर दूसरा, तीसरा और चौथा परिखण्ड है। इनमें से पहला परिखंड सोलह हजार योजन, दूसरा परिखंड आठ हजार योजन, तीसरा परिखंड चार हजार योजन और चौथा परिखंड दो हजार योजन मेरु से बाहर निकला हुआ है। पहले परिखंड में पूर्व की ओर करोट-पाणि-यक्ष रहते हैं। दूसरे परिखंड में दक्षिण की ओर मालाधर रहते हैं। तीसरे परिखंड में पश्चिम की ओर सदामद रहते हैं और चौथे परिखण्ड में चातुर्महाराजिक देव रहते हैं। इसी प्रकार शेष सात पर्वतों पर भी उक्त देवों का निवास है[1]।

जम्बूद्वीप में उत्तर की ओर बने कीटादि और उनके आगे हिमवान पर्वत अवस्थित है। हिमवान पर्वत से आगे उत्तर में पाँच सौ योजन विस्तृत अनवतप्त नाम का अगाध सरोवर है। इससे गंगा, सिन्धु, वक्षु और सीता नाम की चार नदियाँ निकली हैं। इस सरोवर के समीप जम्बू-वृक्ष है, जिससे इस द्वीप का नाम जम्बू-द्वीप पड़ा है। अनवतप्त-सरोवर के आगे गन्धमादक नाम का पर्वत है[2]।

२-नरक-लोक

जम्बूद्वीप के नीचे बीस हजार योजन विस्तृत अवीचि नाम का नरक है। उसके ऊपर क्रमशः प्रतापन, तपन, महारौरव, रौरव, सन्घात, कालसूत्र और संजीव नाम के सात नरक और हैं[3]। इन नरकों के चारों पार्श्व-भागों में कुकूल, कुणप, क्षुर्मार्गादिक, (असिपत्रवन, श्यामसबलस्वस्थान अयः शाल्मलीवन) और खारोदक वाली वैतरणी नदी ये चार उत्सद हैं। अर्बुद, निरर्बुद अटट उहहब, हुहूब, उत्पल, पद्म और महापद्म वाले ये आठ शीत-नरक और हैं, जो जम्बूद्वीप के अधो-भाग में महा नरकों के धरातल में अवस्थित हैं[4]।

३-ज्योतिर्लोक

मेरु-पर्वत के अर्द्ध-भाग अर्थात् भूमि से चालीस हजार योजन ऊपर चन्द्र और सूर्य परिभ्रमण करते हैं। चन्द्र-मंडल का प्रमाण पचास योजन और सूर्य-मण्डल का प्रमाण इक्यावन योजन है। जिस समय जम्बू-द्वीप में मध्याह्न होता है उस समय उत्तर-कुरु में अर्ध रात्रि, पूर्व विदेह में अस्तगमन और अवर गोदानीय में सूर्योदय होता है[5]। भाद्र मास के शुक्ल-पक्ष की नवमी से रात्रि की वृद्धि और फाल्गुन मास के शुक्ल-पक्ष की नवमी से उसके हानि का आरम्भ होता है। रात्रि की वृद्धि, दिन की हानि और रात्रि की हानि, दिन की वृद्धि होती है। सूर्य के दक्षिणायन में रात्रि की वृद्धि और उत्तरायण में दिन की वृद्धि होती है[6]।

४-स्वर्गलोक

मेरु के शिखर पर त्रयस्त्रिंश (स्वर्ग) लोक है। इसका विस्तार अस्सी हजार योजन है। यहाँ पर त्रायस्त्रिंश देव रहते हैं। इसके चारों विदिशाओं में वज्रपाणि देवों का निवास है[7]। त्रयस्त्रिंश-लोक के मध्य में सुदर्शन नाम का नगर है, जो सुवर्णमय है। इसका एक-एक पार्श्व भाग ढ़ाई हजार योजन विस्तृत है। उसके मध्य-भाग में इन्द्र का अढ़ाई सौ योजन विस्तृत वैजयन्त नामक प्रासाद है। नगर के बाहरी भाग में चारों ओर चैत्ररथ, पारुष्य, मिश्र और नन्दन ये चार वन है[8]। इनके चारों ओर बीस हजार योजन के अन्तर से देवों के क्रीडा-स्थल हैं[9]।

---

१. अभिधर्मकोश ३, ६३-६४, २-अ. को. ३, ५७, ३-अ. को. ३, ५८, ४-अ. को. ३, ५९,
५. अ.को. ३, ६०, ६-अ. को. ३, ६१, ७-अ. को. ३, ६५, ८-अ. को. ३, ६६-६७, ९-३, ६८

त्रयस्त्रिंश-लोक के ऊपर विमानों में याम, तुषित निर्माणरति, और परनिर्मित-वशवर्त्ती देव रहते हैं। काम-धातुगत देवों में से चातुर्महाराजिक और त्रायस्त्रिंश देव मनुष्य के समान काम सेवन करते हैं। याम, तुषित, निर्माण-रति, परनिर्मितवशवर्ती देव क्रमशः आलिंगन, पाणिसंयोग, हसित, और अवलोकन से ही तृप्ति को प्राप्त होते हैं [१]।

कामधातु के ऊपर सत्तरह स्थानों से संयुक्त रूपधातु हैं। वे सत्तरह स्थान इस प्रकार हैं। प्रथम स्थान में ब्रह्मकायिक ब्रह्मपुरोहित, और महाब्रह्म लोक हैं। द्वितीय ध्यान में परिताभ, अप्रमाणाभ, और आभस्वर लोक हैं। तृतीय ध्यान में परित्तशुभ, अप्रमाणशुभ, और शुभकृत्स्न लोक हैं, चतुर्थ ध्यान में अनभ्रक, पुण्यप्रसव, वृहद्फल, पंचशुद्धावासिक, अवृह, अतप सुदृश-सुदर्शन और अकनिष्ठ नाम वाले आठ लोक हैं। ये सभी देव लोक क्रमशः ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं। इनमें रहने वाले देव ऋद्धि-बल अथवा अन्य देव की सहायता से ही अपने से ऊपर के देवलोक को देख सकते हैं [२]।

जम्बूद्वीपस्थ मनुष्यों का शरीर साढ़े तीन या चार हाथ, पूर्व विदेहवासियों का ७-८ हाथ, गोदानीय द्वीप-वासियों का १४-१६ हाथ, और उत्तर-कुरुस्थ मनुष्यों का शरीर २८-३२ हाथ ऊंचा होता है। कामधातु वासी देवों में चातुर्महाराजिक देवों का शरीर $\frac{1}{4}$ कोश, त्रायस्त्रिंशों का $\frac{1}{2}$ कोश, यामों का $\frac{3}{4}$ कोश, तुषितों का १ कोश निर्माणरति देवों का $1\frac{1}{2}$ कोश और परनिर्मितवशवर्ती देवों का शरीर $1\frac{1}{2}$ कोश ऊंचा है। आगे ब्रह्मपुरोहित, महा-ब्रह्म, परिताभ, अप्रमाणाभ, आभस्वर, परित्तशुभ, अप्रमाणशुभ, और शुभकृत्स्न देवों का शरीर क्रमशः १, $1\frac{1}{2}$, २, ४, ८, १६, ३२, और ६४ योजन प्रमाण ऊंचा है। अनभ्र देवों का शरीर १२५ योजन ऊंचा है, आगे पुण्यप्रसव आदि देवों के शरीर उत्तरोत्तर दूनी ऊंचाई वाले हैं [३]।

५–क्षेत्र–माप

बौद्ध ग्रन्थों में योजन का प्रमाण इस प्रकार बतलाया गया है[४] :—

७	परमाणु	=	१ अणु
७	अणु	=	१ लौहरज
७	लौहरज	=	१ जलरज
७	जलरज	=	१ शशरज
७	शशरज	=	१ मेषरज
७	मेषरज	=	१ गोरज
७	गोरज	=	१ छिद्ररज
७	छिद्ररज	=	१ लिक्षा (लीख)
७	लिक्षा	=	१ यव
७	यव	=	१ अंगुलीपर्व
२४	अंगुलीपर्व	=	१ हस्त
४	हस्त	=	१ धनुष
५००	धनुष	=	१ कोश
८	कोश	=	१ योजन

१–अभि. कोश, ३, ३६, २–अ. को. ३, ७१-७२, ३–अ. को. ३, ७५-७७, ४–अ. को. ३, ८५-८७

६–काल–माप

बौद्ध ग्रन्थों में काल का प्रमाण इस प्रकार बतलाया गया है[1] :—

१२०	क्षण	=	१ तत्क्षण
६०	तत्क्षण	=	१ लव
३०	लव	=	१ मुहूर्त्त
६०	मुहूर्त्त	=	१ अहोरात्रि
३०	अहोरात्र	=	१ मास
१२	मास	=	१ संवत्सर

कल्पों के अन्तरकल्प, संवर्तकल्प और महाकल्प आदि अनेक भेद बतलाये गये हैं[2] ।

तुलना और समीक्षा

बौद्धों ने दस लोक माने हैं—नरकलोक, प्रेतलोक, तिर्यक्लोक, मनुष्यलोक और ६ देवकोल[3] । ६ देवलोकों के नाम इस प्रकार हैं—चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माणरति, और परनिर्मितवशवर्ती। प्रेतों को जैनों ने देवयौनिक माना है । अतएव इसे उक्त ६ देवलोकों में अन्तर्गत करने पर नरक, तिर्यक्, मनुष्य और देव, ये चार लोक ही सिद्ध होते हैं, जो कि जैनाभिमत चारों गतियों का स्मरण कराते हैं ।

बौद्धों ने प्रेत-योनि को एक पृथक गति मानकर पाँच गतियां स्वीकार की हैं । यथा:—

नरकादिस्वनामोक्ता गतयः पंच तेषु ताः । (अभिधर्मकोश ३,४)

ऊपर बतलाये देवों में से चातुर्महाराजिक देव-इन्द्र का, तुषित-लौकान्तिक देवों का, त्रयस्त्रिंश-त्रायस्त्रिंश देवों का, तथा शेष भेद व्यन्तर-देवों का स्पष्ट रूप से स्मरण कराते हैं ।

जैनों के समान बौद्धों ने भी देवों और नारकी जीवों को औपपातिक जन्म वाला माना है । यथा:—

नारका उपपादुकाः अन्तरा भव देवाश्च । (अभिधर्मकोश,३, ४)

बौद्धों ने भी जैनों के समान नारकी जीवों का उत्पन्न होने के साथ ही ऊर्ध्वपाद और अधोमुख होकर नरक-भूमि पर गिरना माना । यथा:—

एते **पतंति निरय उद्धपादा अवंसिरा ।** (सुत्तनिपात)
(ऊर्ध्वपादास्तु नारकाः) (अभिधर्मकोश ३,१५)

---

१. अभिधर्म–कोश ३, ८८-८९
२. „ „ „ ९०
३. **नरक-प्रेत-तिर्यञ्चो मानुषाः षड् दिवौकसः ।** (अभिधर्मकोश ३,१)

(ग) वैदिक धर्मानुसार लोक-वर्णन

१—मर्त्य लोक

जिस प्रकार जैन ग्रन्थों से ऊपर भूगोल का वर्णन किया गया है लगभग उसी प्रकार से हिन्दू-पुराणों में भी भूगोल का वर्णन पाया जाता है। विष्णु-पुराण के द्वितीयांश के द्वितीयाध्याय में बतलाया गया है कि इस पृथ्वी पर १ जम्बू, २ प्लक्ष, ३ शाल्मल, ४ कुश, ५ क्रौंच, ६ शाक और ७ पुष्कर, नाम वाले सात द्वीप हैं। ये सभी चूड़ी के समान गोलाकार और क्रमशः १ लवणोद, २ इक्षुरस, ३ मदिरारस, ४ घृतरस, ५ दधिरस, ६ दूधरस, ७ मधुररस वाले सात समुद्रों से वेष्टित हैं। इन सब के मध्य-भाग में जम्बू-द्वीप है। इसका विस्तार एक लाख योजन है। उसके मध्य भाग में ८४ हजार योजन ऊंचा स्वर्णमय मेरु-पर्वत है। इसकी नींव पृथ्वी के भीतर १६ हजार योजन है। मेरु का विस्तार मूल में १६ हजार योजन है और फिर क्रमशः बढ़कर शिखर पर ३२ हजार योजन हो गया है[1]।

इस जम्बू द्वीप में मेरु-पर्वत के दक्षिण-भाग में हिमवान, हेमकूट और निषध तथा उत्तर भाग में नील, श्वेत और शृंगी ये छः वर्ष-पर्वत हैं। इन से जम्बू-द्वीप के सात भाग हो जाते हैं। मेरू के दक्षिणवर्ती निषध और उत्तरवर्ती नील पर्वत, पूर्व-पश्चिम लवण-समुद्र तक १ लाख योजन लम्बे दो-दो हजार योजन ऊंचे और इतने ही चौडे हैं। इनसे परवर्ती हेमकूट और श्वेत-पर्वत लवण-समुद्र तक पूर्व-पश्चिम में नव्वे (९०) हजार योजन लम्बे, दो हजार योजन ऊंचे और इतने ही विस्तार वाले हैं। इनसे परवर्ती हिमवान और शृंगी-पर्वत पूर्व-पश्चिम में अस्सी (८०) हजार योजन लम्बे, दो हजार योजन ऊंचे और इतने ही विस्तार वाले हैं। इन पर्वतों के द्वारा जम्बू-द्वीप के सात भाग हो जाते हैं। जिनके नाम दक्षिण की ओर से क्रमशः इस प्रकार हैं—१ भारतवर्ष, २ किम्पुरुष, ३ हरिवर्ष, ४ इलावृत, ५ रम्यक, ६ हिरण्मय, ७ और उत्तरकुरू[2]। इनमें इलावृत को छोड़कर शेष ६ का विस्तार उत्तर-दक्षिण में ९ नौ हजार योजन है। इलावृत-वर्ष मेरु के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चारों ही दिशाओं में नौ-नौ हजार योजन विस्तृत है। इस प्रकार सर्व पर्वतों व वर्षों के विस्तार को मिलाने पर जम्बू-द्वीप का विस्तार १ लाख योजन प्रमाण हो जाता है।

मेरु-पर्वत के दोनों ओर पूर्व-पश्चिम में इलावृत-वर्ष की सीमा स्वरूप माल्यवान और गन्धमादन पर्वत हैं, जो नील और निषध-पर्वत तक विस्तृत हैं। इनके कारण दोनों ओर दो विभाग और हैं, जिनके नाम भद्राश्व, और केतुमाल हैं। इस प्रकार उपर्युक्त सात वर्षों में इन दो वर्षों को और मिला देने पर जम्बू-द्वीप-सम्बन्धी सर्व वर्षों (क्षेत्रों) की संख्या नौ हो जाती है[3]।

मेरु के चारों ओर पूर्वादिक दिशाओं में क्रमशः मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नाम वाले चार पर्वत हैं। इनके ऊपर क्रमशः ११०० योजन ऊंचे कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट-वृक्ष हैं। इनमें से जम्बू-वृक्ष के नाम से यह जम्बूद्वीप कहलाता है[4]।

जम्बू द्वीपस्थ भारतवर्ष में महेन्द्र, मलय, सह्य, सूक्तिमान् ऋक्ष, विन्ध्य, पारियात्र, ये सात कुल पर्वत हैं। इनमें से हिमवान से शत्तद्रु और चन्द्रभागा आदि, पारियात्र से वेद और स्मृति आदि, विन्ध्य से नर्मदा और सुरसा आदि, ऋक्ष से तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्यादि, सह्य से गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि, मलय से-

---

१. विष्णु-पुराण द्वितीयांश, द्वितीय-अध्याय, श्लोक, ५–९ मार्कण्डेय-पुराण अ० ५४ श्लोक ५–७
२. ,, ,, ,, १०–१५ ,, श्लोक ८–१४
३. ,, ,, ,, ,, १६ ,, ५४ श्लोक १४–१९,
४. ,, ,, ,, ,, १७–१९ ,, ,, ,, ,, ९
५. ,, ,, ,, ,, १६ ,, ,, ,, ,, ,, १४–१९

कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि, महेन्द्र से त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि, तथा सूक्तिमान् पर्वत से ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियाँ निकली हैं[1]। इन नदियों के किनारों पर मध्यदेश को आदि लेकर कुरु और पाञ्चाल पूर्व देश को आदि लेकर काम-रूप, दक्षिण को आदि लेकर पुण्ड्र, कलिंग और मगध, पश्चिम को आदि लेकर सौराष्ट्र सूर आभीर और अर्बुद, तथा उत्तर देश को आदि लेकर मालव, कोसल, सौवीर, सैन्धव, हूण, शाल्व और पारसीकों को आदि लेकर माद्र, आराम और अम्बष्ठ देशवासी रहते हैं[2]।

उपर्युक्त सप्त क्षेत्रों में से केवल भारतवर्ष में ही कृत, त्रेता, द्वापर, और कलि नामक चार युगों से काल परिवर्तन होता है। किम्पुरुषादिक शेष क्षेत्रों में काल परिवर्तन नहीं होता है। उन आठ क्षेत्रों में रहनेवाली प्रजा को शोक, परिश्रम, उद्वेग और क्षुधा आदि की बाधा नहीं होती है। वहाँ के लोग सदा स्वस्थ एवं आतंक और दुःख से विमुक्त रहते हैं। वे सदा जरा और मृत्यु से निर्भय रहकर आनंद का उपभोग करते हैं। इसलिए वहाँ पर भोगभूमि कही गयी है। वहाँ पर पुण्य-पाप, और ऊँच-नीच आदि का भी भेद नहीं है। उन क्षेत्रों में स्वर्ग-मुक्ति की प्राप्ति के कारण भूत, व्रत-तपश्चर्या आदि का भी अभाव है, केवल भारतवर्ष के ही लोगों में व्रत-तपश्चरणादि के द्वारा स्वर्ग-मोक्षादिक की प्राप्ति संभव है। इसलिए यह सर्व क्षेत्रों में श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ के लोग असि, मषी, आदि कर्मों के द्वारा अपनी आजीविका का उपार्जन करते हैं। इसलिए यहाँ की भूमि को कर्म भूमि कहा गया है[3]।

जम्बूद्वीप को सर्व ओर से घेरकर लवण-समुद्र अवस्थित है। यह १ एक लाख योजन विस्तृत है[4]। लवण-समुद्र को घेर कर दो लाख योजन विस्तार वाला प्लक्षद्वीप है। इसके भीतर गोमेध, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक और सुमना नामक ६ पर्वत हैं। इनसे विभाजित होकर शान्तद्वय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक, और ध्रुव नामक सात वर्ष अवस्थित हैं। इन वर्षों और पर्वतों के ऊपर देव और गन्धर्व रहते हैं, वे आधि-व्याधि से रहित और अतिशय पुण्यवान हैं। वहाँ युगों का परिवर्तन नहीं है। केवल सदा काल त्रेतायुग जैसा समय रहता है। उनमें चतुर्वर्ण-व्यवस्था है और वे अहिंसा-सत्यादि पाँच धर्मों का पालन करते हैं। इस द्वीप में १ प्लक्ष वृक्ष है, इस कारण यह द्वीप प्लक्ष नाम से प्रसिद्ध है[5]।

प्लक्षद्वीप को चारों ओर से घेरकर इक्षुरसोद समुद्र-अवस्थित है, जो प्लक्षद्वीप के समान ही विस्तार वाला है इसे। चारों ओर से घेर कर चार लाख योजन विस्तार वाला शाल्मलद्वीप है। इसी क्रम से आगे सुरोद, समुद्र, कुश-द्वीप, घृतोद समुद्र क्रौंचद्वीप, दधिरसोद समुद्र, शाकद्वीप, और क्षीरसमुद्र अवस्थित हैं। ये सभी द्वीप अपने पूर्ववर्त्ती द्वीप की अपेक्षा दूने विस्तार वाले हैं और समुद्रों का विस्तार अपने-अपने द्वीप के समान है। इन द्वीपों की रचना प्लक्षद्वीप के समान है[6]।

क्षीरसमुद्र को घेरकर सातवां पुष्कर-द्वीप अवस्थित है। इसके ठीक मध्य-भाग में गोलाकार वाला मान-सोत्तर पर्वत है। इसके बाहरी भाग का नाम महावीर-वर्ष और भीतरी भाग का नाम धातकी वर्ष है। इस द्वीप में रहने वाले लोग भी रोग-शोक, एवं राग-द्वेष से रहित होते है। वहाँ न ऊंच नीच का भेद है, और न वर्णाश्रम व्यवस्था ही है। इस पुष्कर द्वीप में नदियां और पर्वत भी नहीं हैं[7]।

---

१. विष्णु-पुराण, द्वितीयांश, द्वितीय अ०, श्लोक १६ मार्क० पु० अ० ४५ श्लोक० १४-१६ १०-१४

२. ,, ,, ,, ,, १५-१७

३. वि० पु० द्वि० अ० तृ० अ० श्लोक १६-२२।

४. ,, ,, ,, ,, ,, २८

५. ,, ,, च. अ. ,, १-१८।

६. ,, ,, ,, ,, ,, २०-७२।

७. ,, ,, ,, ,, ,, ७३-८०।

इस द्वीप को सर्व ओर से घेरकर मधुरोदक समुद्र अवस्थित है इससे आगे प्राणियों का निवास नहीं है। मधुरोदक समुद्र से आगे उससे दूने विस्तार वाली स्वर्णमयी भूमि है। उसके आगे १० हजार योजन विस्तृत और इतना ही ऊंचा, लोकालोक पर्वत है। उसको चारों ओर से वेष्टित करके तमस्तम स्थित है। इस अण्डकटाह के साथ उपर्युक्त द्वीप-समुद्रों वाला यह समस्त भूमण्डल ५० करोड़ योजन विस्तार वाला है और इसकी ऊंचाई ७० हजार योजन है[1]।

इस भूमण्डल के नीचे दस-दस हजार योजन के ७ पाताल हैं। जिनके नाम इस प्रकार है—अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत, महातल, सूतल, और पाताल। ये क्रमशः शुक्ल, कृष्ण, अरुण, पीत, शर्करा, शैल, और काञ्चन स्वरूप हैं। यहाँ उत्तम भवनों से युक्त भूमियाँ हैं और यहाँ दानव, दैत्य, यक्ष, एवं नाग आदि निवास करते हैं[2]।

पातालों के नीचे विष्णु भगवान का शेष नामक तामस शरीर स्थित है। जो अनन्त कहलाता है। यह शरीर सहस्र-फणों से संयुक्त होकर समस्त भूमण्डल को धारण करके पाताल-मूल में अवस्थित है। कल्पान्त के समय इसके मुख से निकली हुई संकर्षात्मक, रुद्र विषाग्नि-शिखा तीनों लोकों का भक्षण करती है[3]।

२-नरक-लोक

पृथ्वी और जल के नीचे रौरव, सूकर, रौध, ताल, विशासन महाज्वाल, तप्तकुंभ, लवण, विलोहित, रुधिर, वैतरणी, कृमीश, कृमि-भोजन असिपत्रवन, कृष्ण, अलामक्ष, दारुण, पूयवह, वन्हिज्वाल अधःशिरा, सैंदेस, कालसूत्र, तम, आवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ण और अग्रवि, इत्यादि नाम वाले अनेक महान भयानक नरक हैं। इनमें पापी जीव मरकर जन्म लेते हैं[4]। वे वहाँ से निकल कर क्रमशः स्थावर कृमि, जलचर, मनुष्य और देव आदि होते हैं। जितने जीव स्वर्ग में हैं उतने ही जीव नरकों में भी रहते हैं।

३-ज्योतिर्लोक

भूमि से १ लाख योजन दूरी पर सौर-मण्डल-इससे १ लाख योजन ऊपर चन्द्रमण्डल, इससे १ लाख योजन ऊपर नक्षत्र-मंडल, इससे २ लाख योजन ऊपर बुध, इससे २ लाख योजन ऊपर शुक्र, इससे २ लाख योजन ऊपर मंगल, इससे २ लाख योजन ऊपर बृहस्पति, इससे २ लाख योजन ऊपर शनि, इससे १ लाख योजन ऊपर सप्तर्षि-मण्डल तथा इससे १ लाख योजन ऊपर ध्रुवतारा स्थित है।[5]

४—महर्लोक (स्वर्गलोक)

ध्रुव से १ करोड़ योजन ऊपर जाकर महर्लोक है, यहाँ कल्प काल तक जीवित रहने वाले कल्पवासियों का निवास है। इससे २ करोड़ योजन ऊपर जनलोक है यहाँ नन्दनादि से सहित ब्रह्माजी के प्रसिद्ध पुत्र रहते हैं। इससे ८ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है। यहाँ वैराज देव निवास करते हैं। इससे १२ करोड़ योजन ऊपर सत्य

---

१. विष्णु पुराण द्वितीय अंश चतुर्थ अध्याय. श्लोक ९३-९६।
२. ,, ,, पंचम् ,, ,, २-४
३. ,, ,, ,, ,, १३-१५-१९-२०।
४. ,, ,, षष्ठम् ,, ,, १—६।
५. ,, ,, ,, ,, ३४ ।
६. ,, ,, सप्तम् ,, ,, २—९।

लोक हैं, यहाँ कभी न मरने वाले अमर (अपुनमरिक) रहते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं। भूमि (भूलोक) और सूर्य के मध्य में सिद्धजनों और मुनिजनों से सेवित स्थान भुवर्लोक कहलाता है। सूर्य और ध्रुव के मध्य में चौदह लाख योजन प्रमाण क्षेत्र स्वर्लोक नाम से प्रसिद्ध है[६]।

भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक, ये तीनों लोक कृतक, तथा जनलोक, तपलोक और सत्यलोक, ये तीन लोक अकृतक है। इन दोनों लोकों के बीच में महर्लोक है, यह कल्पांत में जन-शून्य हो जाता है, किन्तु सर्वथा नष्ट नहीं होता[७]।

५-तुलना और समीक्षा

विष्णु-पुराण के आधार पर जो लोक स्थिति या भूगोल का वर्णन किया है उसका जब हम जैन सम्मत लोक के वर्णन से मीलान करते है तो अनेक तथ्य सामने आते हैं। जिनका दोनों मान्यताओं के नाम निर्देश के साथ यहाँ उल्लेख किया जाता है:—

द्वीप

जैनमान्यता		वैदिक मान्यता	
१. द्वीप, समुद्र	असंख्यात	द्वीप, समुद्र,	७ सात
२. प्रथम द्वीप	जम्बूद्वीप	प्रथम द्वीप	जम्बूद्वीप
३. कुशक	पन्द्रवाँ द्वीप[१]	कुश	चौथा द्वीप
४. क्रौंच	सोलहवाँ द्वीप[२]	क्रौच	पाँचवाँ द्वीप
५. पुष्कर	तीसरा द्वीप	पुष्कर	सातवाँ द्वीप

समुद्र

१. लवणोद	प्रथम समुद्र	लवणोद	प्रथम समुद्र
२. वारुणी रस	चौथा समुद्र	मदिरा रस	तीसरा ,,
३. क्षीर सागर	पाँचवाँ ,,	दूधरस	छठा ,,
४. घृतवर	छठा ,,	मधुर रस	सातवाँ ,,
५. इक्षुरस	सातवाँ ,,	इक्षुरस	दूसरा ,,

क्षेत्र

१. भारतवर्ष	१. भारतवर्ष
२. हैमवत	२. किम्पुरुष
३. हरि वर्ष	३. हरि वर्ष
४. विदेह	४. इलावृत
५. रम्यक	५. रम्यक
६. हैरण्यत	६. हिरण्मय
७. ऐरावत	७. उत्तर-कुरु

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जैन मान्यतानुसार उत्तर-कुरु विदेह-क्षेत्र का एक भाग है। इलावृत ऐरावत का ही रूपान्तर है। हां, दूसरे हैमवत क्षेत्र के स्थान पर किम्पुरुष नाम अवश्य नया है।

---

६. विष्णु-पुराण द्वितीयांश षष्ठम् अध्याय श्लोक १२—१८।

७. ,, ,, ,, ,, १९—२०।

१-२. तिलोयपण्णत्ती अ०....।

६-पर्वत

जैन परम्परा	वैदिक परम्परा
१. हिमवान	१. हिमवान्
२. महाहिमवान	२. हेमकूट
३. निषध	३. निषध
४. नील	४. नील
५. रुक्मी	५. श्वेत
६. शिखरी	६. शृंगी

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि शिखरी एवं शृंगी ये दोनों एकार्थक नाम हैं। पांचवें रुक्मी पर्वत का वर्ण जैन मान्यतानुसार श्वेत ही माना गया है जो कि वैदिक मान्यता के श्वेत-पर्वत का ही बोधक है। केवल महा हिमवान के स्थान पर हेमकूट नाम नवीन है।

जैन और वैदिक दोनों ही मान्यताओं के अनुसार मेरु-पर्वत जम्बूद्वीप के मध्य-भाग में स्थित है। अन्तर केवल ऊंचाई का है। वैदिक मान्यता से मेरु चौरासी हजार योजन ऊंचा है। जबकि जैन मान्यता से वह १ लाख योजन ऊंचा है।

७-नदियाँ

वैदिक मान्यतानुसार ऊपर जो नदियों के नाम दिये गये हैं वे प्रायः सब आधुनिक नदियों के ही नाम हैं। जैन मान्यतानुसार जम्बू-द्वीप के सात क्षेत्रों में १४ प्रधान नदियाँ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—गंगा, सिन्धु, रोहित-रोहितास्या, हरित-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, स्वर्णकूला-रूप्यकूला, रक्ता-और रक्तोदा। भारतवर्ष आदि क्षेत्रों में क्रमशः उक्त दो-दो नदियाँ बहती हैं। उनमें से पहली नदी पूर्व के समुद्र और दूसरी नदी पश्चिम के समुद्र में, जाकर मिलती है। इस प्रकार दोनों मान्यताओं वाली नदियों के नामों में कोई समानता नहीं है।

८-नरक-स्थिति

जैन मान्यता के समान ही वैदिक मान्यता में भी अत्यन्त दुःख भोगने वाले नारकी-जीवों का अवस्थान इस धरातल के नीचे माना गया है। दोनों के कुछ नामों में समानता है, और कुछ नामों में विषमता है।

९-ज्योतिर्लोक

जैन मान्यतानुसार सम-भूमितल से सूर्य-चंद्र आदि की ऊंचाई का जो उल्लेख है उससे वैदिक मान्यता में बहुत भारी अन्तर है। जो दोनों के पूर्व वर्णनों से पाठक भली भांति जान सकेंगे।

१०-स्वर्ग-लोक

दोनों ही मान्यताओं के अनुसार स्वर्गलोक की स्थिति ज्योतिर्लोक के ऊपर ही मानी गई है। वैदिक मान्यता में स्वर्गलोक का नाम महर्लोक दिया गया है तथा वहाँ के निवासियों को जैन मान्यता के समान कल्पवासी कहा गया है। वैदिक मान्यता में स्वर्गलोक की स्थिति सूर्य और ध्रुव के मध्य में चौदह लाख योजन प्रमाण क्षेत्र में है। जबकि जैन मान्यता से वह सुमेरु के ऊपर से लेकर असंख्यात योजन ऊपरी क्षेत्र तक बतलाई गई है।

११—कर्मभूमि और भोग-भूमि

जिस प्रकार जैनागमों में कर्मभूमि और भोगभूमि का वर्णन आया है उसी प्रकार का वर्णन हिन्दु पुराणों में भी मिलता है, विष्णु-पुराण के द्वितीयांश के तीसरे अध्याय में कर्मभूमि का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्च दक्षिणम् ।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥१॥

नवयोजनसाहस्रो विस्तोरोऽस्य महामुने ।
कर्मभूरियं स्वर्गमपवर्गञ्च गच्छताम् ॥२॥

अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयान्ति वै ।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ॥४॥

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च, मध्यं चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां, कर्मभूमौ विधीयते ॥५॥

भावार्थ—समुद्र के उत्तर और हिमाद्रि के दक्षिण मे भारतवर्ष अवस्थित है । इसका विस्तार नौ हजार योजन विस्तृत है । यह स्वर्ग और मोक्ष जानेवाले पुरुषों की कर्मभूमि है । इसी स्थान से यतः मनुष्य स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त करते हैं और यहीं से भी तिर्यञ्च और नरक-गति में भी जाते हैं—अतः कर्मभूमि है । इस भारतवर्ष के सिवाय अन्य क्षेत्र में कर्मभूमि नहीं है ।

अग्नि-पुराण के एक सौ अठारवें अध्याय के द्वितीय श्लोक में भी भारतवर्ष को कर्म-भूमि कहा गया है । यथा— **कर्मभूमिरिय स्वर्गमपवर्गञ्च गच्छताम्**

विष्णु-पुराण के अन्त में कर्मभूमि का उपसंहार करते हुए लिखा है-कि भारतवर्ष में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र रहते हैं तथा वे क्रमशः पूजन-पाठ, आयुध-धारण, वाणिज्य-कर्म और सेवादि कार्य करते हैं । यथा—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्याऽऽयुधवाणिज्याद्यैर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥६॥

इस अध्याय का उपसंहार करते हुए कहा गया है कि भारतवर्ष के सिवाय अन्य सब क्षेत्रों में भोगभूमि है । यथा—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः ॥

भावार्थ—इस जम्बू-द्वीप में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है । क्योंकि यहाँ पर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करानेवाली कर्मभूमि है । भारतभूमि के सिवाय अन्य सर्व क्षेत्र की भूमियां तो भोग-भूमियां है । क्योंकि वहाँ पर रहनेवाले जीव सदाकाल बिना किसी रोग-शोक-बाधा के भोगों का उपभोग करते रहते हैं ।

मार्कण्डेय-पुराण के ५५ वें अध्याय के श्लोक २०-२१ में भी भोगभूमि और कर्मभूमि का वर्णन मिलता है ।

१२-उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकाल

जैनागमों में काल के परिवर्तन स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि जिस समय मनुष्यों की आयु, सम्पत्ति, सुख-समृद्धि एवं भोगोपभोगों की वृद्धि हो उसे उत्सर्पिणी काल कहते है और जिस समय उक्त वस्तुओं की हानि या ह्रास हो उसे अवसर्पिणीकाल कहते हैं। इन दोनों प्रकार के कालों का परिवर्तन कर्मभूमि वाली पृथ्वियों में ही होता है–अन्यत्र भोग भूमिवाली पृथ्वियों में नहीं। विष्णुपुराण में भी इसका उल्लेख इस प्रकार से मिलता है:—

अवसर्पिणी न तेषां वै नचोत्सर्पिणी द्विज।
नत्वेवाऽस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु,॥

(विष्णु० द्वि. अं. अ. ४ श्लोक १३)

अर्थात्–हे द्विज ! जम्बू द्वीपस्थ अन्य सात क्षेत्रों में भारतवर्ष के समान न काल की अवसर्पिणी अवस्था है और न उत्सर्पिणी अवस्था ही।

१३-वर्ष धर पर्वतों पर सरोवर

जैन मान्यता के समान मार्कण्डेय पु० में भी वर्षधर पर्वतों के ऊपर सरोवरों का तथा उनमें कमलों का उल्लेख इस प्रकार है:—

एतेषां पर्वतानां तु द्रोण्योऽतीव मनोहराः।
वनैरमलपानीयैः सरोभिरूप शोभिताः॥

(अ० ५५ श्लोक १४—१५)

उक्त सरोवरों में कमलों का उल्लेख इस प्रकार है:—

तदेतत् पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम्।

(अ० ५५ श्लोक २०)

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जैन मान्यता के समान ही पुराणकार ने भी पद्म को पार्थिव माना है।

(घ) 'भारतवर्ष' का नाम करण

जम्बूद्वीप के प्रथम वर्ष या क्षेत्र का नाम 'भारतवर्ष' है। इसका यह नाम कैसे पड़ा, इस विषय में जैन मान्यता है कि आदि तीर्थंकर भ० ऋषभदेव के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ आदि पुत्र भरत जो कि प्रथम चक्रवर्ती थे, उन्होंने इस क्षेत्र का सर्व प्रथम राज्य-सुख भोगा, इस कारण इस क्षेत्र का नाम 'भारतवर्ष' प्रसिद्ध हुआ। (देखो प्रस्तुत ग्रन्थ पृ०–११३)। श्री मदुमास्वाति-रचित तत्त्वार्थाधिगम-सूत्र के महान् भाष्यकार श्रीमदकलंक देव ने तीसरे अध्याय के दशवें सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है:—

"भरतक्षत्रिययोगाद्वर्षो भरतः विजयार्धस्य दक्षिणतो जलधेरुत्तरतः गंगा-सिन्ध्वोर्बहुमध्यदेशभागे विनीता नाम नगरी। तस्यामुत्पन्नः सर्व राजलक्षणसम्पन्नो भरतो नामाद्यश्चक्रधरः षट्खण्डाधिपतिः। अवसर्पिण्या राज्य विभागकाले तेनार्वो भुक्तत्वात्, तद्योगाद् 'भरत' इत्याख्यायते वर्षः।"

हिन्दुओं के प्रसिद्ध मार्कण्डेय-पुराण में भी व्यास महर्षि ने उक्त कथन का ही समर्थन करते हुए तिरेपनवें अध्याय में कहा हैं—

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रंशताग्रजः।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं, महाप्राव्राज्यमास्थितः ॥४१॥

तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं, भरताय पिता ददौ ॥४२॥

तस्मात्तु भारतं वर्षं, तस्य नाम्ना महात्मनः ॥४३॥

अर्थात्—ऋषभ से भरत पैदा हुआ, जो उनके सौ पुत्रों में सर्व श्रेष्ठ था। उसका राज्याभिषेक कर के ऋषभ महानुभाव प्रव्रजित होकर पुलहाश्रम चले गये। जम्बूद्वीपका हिम नामक दक्षिण क्षेत्र-पिता ने भरत को दिया, इसके कारण उस महात्मा के नाम से यह क्षेत्र 'भारतवर्ष' कहलाने लगा।

इसके अतिरिक्त जम्बूद्वीप–प्रज्ञप्ति में 'भरत क्षेत्र' इस नाम के दो कारण और भी प्रतिपादित किये गये हैं—प्रथम इस क्षेत्र के अधिष्टायक देव का नाम भरत है। दूसरा यह नाम शाश्वत है। (देखो प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० ११३)

यहां यह भी स्मरणीय है कि प्रत्येक उत्सार्पिणी–अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती का नाम भरत ही होता है। इन सब कारणों से यह क्षेत्र भरत नाम से प्रसिद्ध है।

कुछ लोग दुष्यन्त-पुत्र भरत के नाम से इस क्षेत्र का नाम करण हुआ कहते हैं। किन्तु इस भरत का व्यक्तित्व इतना असाधारण नहीं रहा है कि उसके नाम पर इस क्षेत्र की प्रसिद्धि मानी जाय। इसके अतिरिक्त इससे पूर्व इस क्षेत्र का नाम क्या था, यह अब तक किसी भी इतिहास-वेत्ता ने प्रकट नहीं किया है। इसी कारण अब विचार-शील इतिहासज्ञों ने इस अभिमत को अस्वीकार कर दिया है।

(ड·) वैज्ञानिकों के मतानुसार आधुनिक विश्व

१-भूमण्डल

जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं वह मिट्टी-पत्थर का एक नारंगी के समान चपटा गोला है। इसका व्यास लगभग आठ हजार मील ($७९२६\frac{६}{८११}$—२६·७) और परिधि लगभग पच्चीस हजार मील ($२४८६\frac{३}{४०}$—४२) है।

वैज्ञानिकों के मतानुसार आज से करोड़ों वर्ष पूर्व किसी समय यह ज्वालामयी अग्नि का गोला था। यह अग्नि धीरे-धीरे ठंडी होती गई और अब यद्यपि पृथ्वी का धरातल सर्वत्र शीतल हो चुका है, तथापि अभी इसके गर्भ में अग्नि तीव्रता से जल रही है, जिसके कारण पृथ्वी का धरातल भी कुछ उष्णता को लिए हुए है। नीचे की ओर खुदाई करने पर उत्तरोत्तर अधिक उष्णता पाई जाती है। कभी-कभी यही भूगर्भ की ज्वाला कुपित होकर भूकम्प उत्पन्न कर देती है और कभी ज्वालामुखी के रूप में भी फूट निकलती है, जिससे पर्वत, भूमि, नदी, समुद्र आदि के जल और स्थल भागों में परिवर्तन होता रहता है। इसी अग्नि के ताप से पृथ्वी का द्रव्य यथायोग्य दबाव और शीतलता पाकर नाना प्रकार की धातु-उपधातुओं एवं तरल पदार्थों में परिवर्तित हो गया है जो हमें पत्थर कोयला, लोहा, सोना, चांदी आदि, तथा जल और वायुमंडल के रूप में दिखाई देता है। जल और वायु ही सूर्य के ताप से मेघ आदि का रूप धारण कर लेते हैं। यह वायुमण्डल पृथ्वी के धरातल से उत्तरोत्तर विरल होते हुए लगभग ४०० मील तक फैला हुआ अनुमान किया जाता है। पृथ्वी का धरातल भी सर्वत्र समान नहीं है। पृथ्वी तल का उच्चतम भाग हिमालय का गौरीशंकर शिखर (माउण्ट एवरेस्ट) माना जाता है, जो समुद्र तल से उनतीस हजार फुट, अर्थात् लगभग साढ़े पांच मील ऊंचा है। समुद्र की अधिकतम गहराई ३५,४०० फुट अर्थात् लगभग छह मील तक नापी जा चुकी है। इस प्रकार पृथ्वी तल की ऊंचाई-नीचाई में साढ़े ग्यारह मील का अन्तर पाया जाता है।

पृथ्वी की ठंडी होकर जमी हुई परत सत्तर मील समझी जाती है। इसकी द्रव्य-रचना के अध्ययन से अनुमान लगाया गया है कि उसे जमे हुए लगभग तीन करोड़ वर्ष हुए हैं। सजीव तत्त्व के चिह्न केवल चौंतीस मील की ऊपरी परत में पाये जाते हैं। जिससे अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी पर जीव-तत्त्व उत्पन्न हुए दो करोड़ वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ है। इसमें भी मनुष्य के विकास के चिह्न केवल एक करोड़ वर्ष के भीतर ही अनुमान किये जाते हैं।

पृथ्वी तल के ठंडे हो जाने के पश्चात् उस पर आधुनिक जीव-शास्त्र के अनुसार जीवन का विकास इस क्रम से हुआ—सर्व प्रथम स्थिर जल के ऊपर जीव-कोश प्रकट हुए, जो पाषाणादि जड़ पदार्थों से मुख्यतया तीन बातों में भिन्न थे। एक तो वे आहार ग्रहण करते और बढ़ते थे। दूसरे वे इधर-उधर चल भी सकते थे। और तीसरे वे अपने ही तुल्य अन्य कोश भी उत्पन्न कर सकते थे। काल-क्रम से इनमें से कुछ कोश भूमि में जड़ जमाकर स्थावर काय-वनस्पति-बन गये, और कुछ जल में ही विकसित होते-होते मत्स्य बन गये। क्रमशः धीरे-धीरे ऐसे वनस्पति और मेंढक आदि प्राणी उत्पन्न हुए, जो जल में ही नहीं, किन्तु स्थल पर भी श्वासोच्छ्वास ग्रहण कर सकते थे। इन्हीं स्थल प्राणियों में से से उदर के बल रेंग कर चलने वाले केंचुआ, सांप आदि प्राणी उत्पन्न हुए। इनका विकास दो दिशाओं में हुआ—एक पक्षी के रूप में और दूसरे स्तनधारी प्राणी के रूप में। स्तनधारी प्राणी की यह विशेषता है कि वे अण्डे से उत्पन्न न होकर गर्भ से उत्पन्न होते हैं और पक्षी अण्डे से उत्पन्न होते हैं। मगर से लेकर भेड़, बकरी, गाय, भैंस, घोड़ा आदि सब इसी स्तनधारी जाति के प्राणी हैं। इन्हीं स्तनधारी प्राणियों की एक वानर जाति उत्पन्न हुई। किसी समय कुछ वानरों ने अपने अगले दो पैर उठाकर पीछे के दो पैरों पर चलना-फिरना सीख लिया। बस, यहीं से मनुष्य जाति का विकास प्रारम्भ हुआ माना जाता है। उक्त जीवकोश से लगाकर मनुष्य के विकास तक प्रत्येक नयी धारा उत्पन्न होने में लाखों करोड़ों वर्ष का अन्तर माना जाता है।

इस विकास-क्रम में समय-समय पर तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार नाना प्रकार की जीव-जातियाँ उत्पन्न हुईं। उनमें से अनेक जातियां समय के परिवर्तन, विप्लव और अपनी अयोग्यता के कारण विनष्ट हो गईं, जिनका पता हमें भूगर्भ में उनके निखातकों द्वारा मिलता है।

पृथ्वी-तल पर भूमि से जलका विस्तार लगभग तिगुना है। (थल २९% जल ७१%)। जल के विभागानुसार पृथ्वी के पांच प्रमुख खण्ड पाये जाते हैं—एशिया, यूरोप और अफ्रीका मिलकर एक, उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका मिलकर दूसरा, आस्ट्रेलिया तीसरा, उत्तरी ध्रुव चौथा, पांचवां दक्षिणी ध्रुव। इनके अतिरिक्त अनेक छोटे-मोटे द्वीप भी हैं। यह भी अनुमान किया जाता है कि सुदूर पूर्व में संभवतः ये प्रमुख भूमि-भाग परस्पर जुड़े हुए थे। उत्तरी दक्षिणी अमेरिका की पूर्वी समुद्र तटीय रेखा ऐसी दिखाई देती है कि वह यूरोप-अफ्रीका की पश्चिमी समुद्र-तटीय रेखा के साथ मिलकर ठीक बैठ सकती है। तथा हिन्द-महासागर के अनेक द्वीप-समूह की शृंखला एशिया खण्ड को आस्ट्रेलिया के साथ जोड़ती हुई दिखाई देती है। वर्तमान में नहरें खोदकर अफ्रीका का एशिया-यूरोप भूमि खण्ड से, तथा उत्तरी अमेरिका का दक्षिणी अमेरिका से भूमि-सम्बन्ध तोड़ दिया गया है। इन भूमि-खण्डों का आकार, परिमाण और स्थिति परस्पर अत्यन्त विषम हैं।

भारतवर्ष एशिया-खण्ड का दक्षिण-पूर्वी भाग है। यह त्रिकोणाकार है। दक्षिणी कोण लंका द्वीप को प्रायः स्पर्श करता है। वहां से भारत वर्ष की सीमा उत्तर की ओर पूर्व-पश्चिम दिशाओं में फैलती हुई चली गई है और हिमालय पर्वत की श्रेणियों पर जाकर समाप्त होती है। भारत का पूर्व- पश्चिम और उत्तर-दक्षिण विस्तार लगभग दो–दो हजार मील का है। इसकी उत्तरी सीमा पर हिमालय पर्वत है। मध्य में विन्ध्य और सतपुड़ा की पर्वत-मालाएं हैं। तथा दक्षिण के पूर्वी और पश्चिमी समुद्र-तटों पर पूर्वी-घाट और पश्चिमी-घाट नाम वाली पर्वत-श्रेणियाँ फैली हुई हैं।

भारतवर्ष की प्रमुख नदियों में हिमालय के प्रायः मध्य भाग से निलकर पूर्व की और समुद्र में गिरनेवाली ब्रह्मपुत्र और गंगा है। इनकी सहायक नदियों में जमुना, चम्बल, वेतवा और सोन आदि हैं। हिमालय से निकलकर पश्चिम की ओर समुद्र में गिरनेवाली सिन्धु और उसकी सहायक नदियां झेलम, चिनाव, रावी, व्यास और सतलज है। गंगा और सिन्धु की लम्बाई लगभग पन्द्रह सौ मील की है। देश के मध्य में विन्ध्य और सतपुड़ा के बीच पूर्व से पश्चिम की ओर समुद्र तक बहनेवाली नर्मदा नदी है। सतपुड़ा के दक्षिण में ताप्ती नदी है। दक्षिण भारत की प्रमुख नदियां गोदावरी, कृष्णा, कावेरी पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हैं।

देश के उत्तर में सिन्धु से गंगा के कछार तक प्रायः आर्य जाति के, तथा सतपुड़ा से सुदूर दक्षिण में द्रविड़ जाति के, एवं पहाड़ी प्रदेशों में गोंड, भील, कोल और किरात आदि आदिवासी जन-जातियों के लोग रहते हैं।

वर्तमान में उपलब्ध इस आठ हजार मील विस्तृत और पच्चीस हजार मील परिधिवाले भू-मण्डल के चारों ओर अनन्त आकाश है, जिसमें हमें दिन को सूर्य और रात्रि को चन्द्रमा एवं ताराओं के दर्शन होते हैं और उनसे प्रकाश मिलता है। इनमें पृथ्वी के सबसे अधिक समीप मैं चन्द्रमा है, जो इस भूमण्डल से लगभग अढाई लाख मील दूर है। यह पृथ्वी के समान ही एक भूमण्डल है जो पृथ्वी से बहुत छोटा है और उसी के चारों ओर घूमा करता हैं, जिससे हमारे यहां शुक्ल और कृष्णपक्ष होते हैं। चन्द्रमा में स्वयं प्रकाश नहीं है, किन्तु वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है, इसीलिए अपने परिभ्रमण के अनुसार घटता-बढ़ता दिखाई देता है। अनुसन्धान से ज्ञात हुआ हैं कि चन्द्रमा बिलकुल ठंडा हो गया है और पृथ्वी के गर्भ के समान अब उसमें अग्नि नहीं है। उसके आस-पास वायु-मण्डल भी नहीं है और न उसके धरातल पर जल ही है। इन्हीं कारणों से वहां श्वासोच्छवास-प्रधान प्राणी और वनस्पति उपलब्ध नहीं हैं। वहां पर्वत तथा कन्दराओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अनुमान किया जाता है कि चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक भाग है, जिसे टूटकर अलग हुए पांच-छह करोड़ वर्ष हुए हैं।

२-चन्द्र का क्षेत्रफल आदि

आज के वैज्ञानिकों ने चन्द्र के विषय में जो तथ्य संकलित किये हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

चन्द्र व्यास—२१६० मील, या ३४५६ किलोमीटर, पृथ्वी का चतुर्थ भाग

चन्द्र की परिधि—१०८६४ किलोमीटर,

चन्द्र की पृथ्वी से दूरी—३८११७१ किलोमीटर,

चन्द्र का तापमान—११७ सेन्टीमीटर, जब सूर्य सिर के ऊपर हो,

चन्द्र का राह में तापमान—१३७ सेन्टीमीटर,

चन्द्र सतह में गुरुत्वाकर्षण—पृथ्वी का छठा अंश

पृथ्वी पर जिस वस्तु का वजन २७ किलो है, । उसका चांद पर ४—५ किलो है । चन्द्रविस्तार या बिम्ब पृथ्वी का १०० वां अंश है, और उसका आयतन पृथ्वी के आयतन का ५ वां भाग है ।

चन्द्रकक्षा की गति ३६६९ किलोमीटर प्रति घण्टा है । चन्द्र को पृथ्वी की एक परिक्रमा करने में २७ दिन, ७ घण्टे और ४३ मिनिट लगते हैं, क्योंकि वह लगभग इसी गति से अपनी धुरी पर घूमता है ।

चन्द्रमा से परे क्रमशः शुक्र, बुध, मंगल, बृहस्पति और शनि आदि ग्रह हैं । ये सब पृथ्वी के समान ही भूमण्डल वाले हैं और सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं, तथा सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । इन ग्रहों में से किसी में भी हमारी पृथ्वी के समान जीवों की संभावना नहीं मानी जाती है, क्योंकि वहाँ की परिस्थितियां जीवन के साधनों से सर्वथा प्रतिकूल हैं ।

इन ग्रहों से परे पृथ्वी से लगभग साढ़े नौ करोड़ मील की दूरी पर सूर्य-मण्डल है, जो पृथ्वी से लगभग पन्द्रह लाख गुना बड़ा है, अर्थात् पृथ्वी के समान लगभग पन्द्रह लाख भूमण्डल उसके गर्भ में समा सकते हैं । सूर्य का व्यास ८६०००० मील है । यह महाकाय सूर्य-मण्डल अग्नि से प्रज्वलित है और उसकी ज्वाला लाखों मील तक उठती हैं । सूर्य की ज्वाला से करोड़ों मील विस्तृत सौर-मण्डल भर में प्रकाश और उष्णता फैलती है । सूर्य के धरातल पर १०००० फारेन-हीट गर्मी है । जेम्स जीन्स वैज्ञानिक का मत है कि इसी सूर्य की विच्छिन्नता से पृथ्वी, बुध, बृहस्पति आदि ग्रह और उनके उपग्रह बने हैं, जो सब अभी तक उसके आकर्षण से निबद्ध होकर उसी के आस-पास घूम रहे हैं । हमारा भूमण्डल सूर्य की परिक्रमा ३६५¼ दिन में तथा प्रति चौथे वर्ष ३६६ दिन में पूरी करता है और इसी के आधार पर हमारा वर्ष-मान अवलम्बित है । इसी परिक्रमण में पृथ्वी निरन्तर अपनी कीली पर ६० हजार मील प्रति घण्टे के हिसाब से घूमा करती है, जिसके कारण हमारे यहां दिन और रात्रि हुआ करते हैं । पृथ्वी का जो गोलार्ध सूर्य के सम्मुख पड़ता है, वहां दिन और शेष गोलार्ध में रात्रि होती है । वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि ये पृथ्वी आदि ग्रह और उपग्रह पुनः सूर्य की ओर आकृष्ट हो रहे हैं ।

ऊपर जिस महाकाय सूर्य-मण्डल का उल्लेख किया गया है उसकी बराबरी का अन्य कोई भी ज्योतिर्मण्डल आकाश में दिखाई नहीं देता । किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उन अति लघु दिखाई देने वाले तारों में सूर्य के समान महान कोई एक भी नहीं है । वस्तुतः हमें जिन तारों का दर्शन होता है, उनमें सूर्य से छोटे एवं सूर्य की बराबरी वाले तारे तो बहुत थोड़े हैं । उनमें अधिकांश तो सूर्य से भी बहुत विशाल हैं, तथा उससे सैकड़ों, हजारों-लाखों गुने बड़े हैं । किन्तु उनके छोटे दिखाई देने का कारण यह है कि वे हम से सूर्य की अपेक्षा बहुत अधिक दूरी पर हैं । ज्येष्ठा नक्षत्र इतना विशाल है कि उसमें ७००,००,००,००,००,००० पृथिवियां समा जायें ।

३ प्रकाश-वर्ष

तारों की दूरी समझने के लिए हमारे संख्या-वाचक शब्द काम नहीं देते। उसकी गणना के लिए वैज्ञानिकों की दूसरी ही विधि है। प्रकाश की गति प्रति सेकिण्ड एक लाख छयासी हजार (१८६०००) मील, तथा प्रति मिनिट एक करोड़ ग्यारह लाख साठ हजार (१११६००००) मील मापी गई है। इस प्रमाण से सूर्य का प्रकाश हमारी पृथ्वी तक आने में साढ़े आठ (८½) मिनिट लगते हैं। तारे हमसे इतनी दूर हैं कि उनका प्रकाश हमारे समीप वर्षों में आ पाता है और जितने वर्षों में वह आता है उतने ही प्रकाश-वर्ष की दूरी पर वह तारा कहा जाता है। सेञ्चुरी नामक अति निकटवर्ती तारा हमसे साढ़े चार प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है क्योंकि उनके प्रकाश को हमारे पास तक आने में साढ़े चार प्रकाश-वर्ष लगते हैं। इस प्रकार दस, बीस, पचास एवं सैकड़ों प्रकाश-वर्षों की दूरी के ही नहीं, किन्तु ऐसे-ऐसे तारों का ज्ञान हो चुका है जिनकी दूरी दस लाख प्रकाश-वर्ष की मापी गई है तथा जो प्रमाण में इस पृथ्वी से तो क्या, हमारे सूर्य से भी लाखों गुने बड़े हैं।

ताराओं की संख्या का पार नहीं है। हमें अपनी दृष्टि से तो अधिक से अधिक छठे प्रमाण तक के लगभग छह-सात हजार तारे ही दिखाई देते हैं। किन्तु दूर-दर्शक यंत्रों की जितनी शक्ति बढ़ती जाती है, उतने ही अधिकाधिक तारे दिखाई देते हैं। अभी तक बीसवें प्रमाण तक के तारों को देखने योग्य यंत्र बन चुके हैं, जिनके द्वारा दो अरब से भी अधिक तारे देखे जा चुके है। जिनकी तालिका आगे दी जाती है।

४ वैज्ञानिकों के अनुसार ताराओं की संख्या

आज के वैज्ञानिकों ने प्रकाश की हीनाधिकता के अनुसार तारों को कई वर्गों में बाँटा है। पहिले, दूसरे और तीसरे वर्ग के तारे अधिक चमकीले हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। आठवें वर्ग तक के तारों को आँखों से देखा और गिना जा सकता है, किन्तु इससे आगे के वर्गों के तारों की दूरबीन की सहायता से ही देखा और गिना गया है।

वैज्ञानिकों के द्वारा २० वर्गों में विभक्त तारों की संख्या इस प्रकार है:—

वर्ग	संख्या	वर्ग	संख्या	
१	१९	११	८७०००	
२	६५	१२	२२,७००००	
३	२००	१३	५७००००	
४	५३०	१४	१,३८०००००	
५	१६२०	१५	३,२०००००	
६	४८५०	१६	७,१०००००	
७	१४३००	१७	१,५०००००	
८	४१०००	१८	२९,६०००००	
९	११७०००	१९	५६,०००००००	
१०	३२४०००	२०	१०००००००००	(एक अरब)

जेम्स जीन्स सदृश वैज्ञानिक ज्योतिषी का मत है कि तारों की संख्या हमारे पृथ्वी के समस्त समुद्र-तटों की रेत के कणों के बराबर हो तो आश्चर्य नहीं है। ये असंख्य तारे एक दूसरे से कितने दूर-दूर हैं, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सूर्य से अति निकटवर्ती तारा साढ़े चार प्रकाश-वर्ष अर्थात् अरबों-खरबों मील की दूरी पर है। ये सब तारे बड़े वेग से गतिशील हैं और उनका प्रवाह दो भिन्न दिशाओं में पाया जाता है।

५-नीहारिका

बिखरी वाष्प की शक्ल में जो अनेक तारों का समूह पाया जाता है, उन्हें नीहारिका कहते हैं। बिना दूरबीन के हम अपनी आँखों से एकाध ही नीहारिका देख सकते हैं और वह भी देखने में तारों जैसी ही मालूम होती है। दूरबीन से देखने पर उनमें कुछ गोल दिखाई देती हैं और कुछ की आकृति शंख के चक्कर की भांति। गोल नीहारिकाएं हमारे स्थानीय विश्व या आकाश- गंगा के तारागुच्छ हैं। चक्करदार नीहारिकाएं महान् विश्वसे छोटी, किन्तु करोड़ों तारा-गुच्छकों से मिलकर बने छोटे विश्व हैं। यद्यपि विशेष विवरण के साथ जाँच-पड़ताल की गई नीहारिकाएं सौ से भी कम हैं, किन्तु दूरबीन से बीस लाख के करीब चक्करदार नीहारिकाओं के अस्तित्व का पता चला है। आकाश-गंगा भी इसी श्रेणी का एक द्वीप-विश्व है। हमारी पृथ्वी न बृहस्पति की भांति विशाल और न शुक्र की भांति छोटा ग्रह है। सूर्य भी मध्यम आकार का एक ग्रह है। किन्तु आकाश-गंगा अपनी श्रेणी के द्वीप-विश्वों से बहुत बड़ी है। आकाश-गंगा भी एक मध्यम आकार की नीहारिका है, जिसकी मात्रा एक अरब सूर्यों से भी ज्यादा है। सूर्य हमारी पृथ्वी से तीन लाख तेरह हजार गुना बड़ा है।

६-आकाश-गंगा

यहां यह ज्ञातव्य है कि आकाश गंगा क्या वस्तु है? रात को आकाश में एक सफेद बालु का पथ या गंगा जैसी सफेद चौड़ी धारा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर लम्बे आकार में दिखाई देती है, इसे ही आकाश-गंगा कहते हैं। आकाश-गंगा स्वयं तारों का एक समूह है। इसमें सूर्य जैसे दो खरब के करीब तारे हैं। इसकी आकृति अंडाकार जेबी घड़ी या दो जुड़े गोल तवों की भांति बीच में मोटी और किनारों पर पतली है। इसका व्यास ३ लाख प्रकाश-वर्ष और मोटाई १० हजार प्रकाश-वर्ष है।

७-ग्रह

ज्योतिर्मण्डल में ग्रहों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, उनका किंचित् परिचय निम्न लिखित कोष्ठक से ज्ञात हो सकेगा।

ग्रह का नाम	सूर्य से औसत दूरी मीलों में	औसत व्यास मीलों में	परिक्रमा का समय वर्षों में	उपग्रहों की संख्या
१. बुध	३,६०.००.०००	३०३०	०.२२	०
२. शुक्र	६.७२.००.०००	७७००	०.६२	०
३. पृथ्वी	९.२९.००.०००	७९१८	१.००	१
४. मंगल	१४.१५.००.०००	४२३०	१.८८	२
५. बृहस्पति	४८.३२.००.०००	८६५००	११.८६	९
६. शनि	८८.५९.००.०००	७३०००	२९.४६	९
७. अरुण	१.७८.२२.००.०००	३१९००	८४.०२	४
८. वरुण	२.७९.१६.००.०००	३४८००	१६४.७८	१
९. कुबेर	३.७०.००.००.०००	३६०५	२५०.००	अज्ञात

सूर्य तथा उसका ग्रह-कुटुम्ब मिलकर सौर-मण्डल कहा जाता है।

८-लोक या ब्रह्माण्ड का आकार

जिसको हम ब्रह्माण्ड कहते हैं, उसमें अनेक सौर्य-मण्डल हैं। ऐसा अनुमान किया जाता कि ऐसे सौर्य-मण्डलों की संख्या लगभग १० करोड़ है। हमारा सौर्य-मण्डल 'ऐरावत पथ' (मिल्की वे) नामक ब्रह्माण्ड में स्थित है। ऐरावत-पथ के चन्द्र रूपी पथ के लगभग २/३ भाग पर एक पीला बिन्दु है। यही बिन्दु हमारा सूर्य है, जो अपने ग्रहों को साथ लिए ऐरावत पथ पर बराबर घूम रहा है। पूर्व ऐरावत पथ में लगभग ५०० करोड़ तारे विद्यमान हैं। इनमें से बहुतों को हम नहीं देख सकते है, क्योंकि वे हमारे सामने से दिन में निकलते हैं, अतः सूर्य के प्रकाश में उनका प्रकाश हमें नहीं दिखाई देता है। तारों के अतिरिक्त ऐरावत-पथ में धुंध, गैस और धूल भी अधिक मात्रा में है। रात्रि में अनेक तारागणों का प्रकाश एकत्रित होकर इस गैस और धूल को प्रकाशित कर देता है।

इस प्रकार सारे विश्व या लोक का प्रमाण असंख्य है और आकाश का तो कहीं अन्त ही नहीं दिखाई देता है। तारागणों का आकाश में जिस प्रकार वितरण है, तथा आकाश-गंगा में जो तारा-पुञ्ज दिखाई देता है, उस पर से अनुमान लगाया गया है कि तारामण्डल-सहित समस्त लोक का आकार लेंन्स के समान है, अर्थात् ऊपर-नीचे को उभरा हुआ और बीच में फैला हुआ गोल है, जिसकी परिधि पर आकाश-गंगा दिखाई देती है और उभरे हुए भाग के मध्य में सूर्य-मण्डल है।

प्रस्तुत प्रस्तावना के लेखन में जिन लेखकों की रचनाओं का उपयोग किया गया है, मैं उन सबका आभारी हूं। साथ ही पं० मुनि श्री कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' का विशेषतः आभार मानता हूं, जिन्होंने अपने इस महान् श्रम-साध्य 'गणितानुयोग'-संकलन की प्रस्तावना लिखने का अवसर प्रदान किया।

दि० श्रावण शुक्ला १५, वी० नि० २४९५
ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती-भवन
ब्यावर (राजस्थान)

हीरालाल 'सिद्धान्त शास्त्री',
'न्यायतीर्थ'

गणितानुयोग-विषयानुक्रम

१— अलोक पृ० १–४

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
अलोक में गति का अभाव	१	संख्या संस्थान संस्पर्श	२
अलोक में अन्य द्रव्यों का अभाव	,,	अलोक की विशालता	३

२— लोक — पृ० ५–२६

विषय	पृष्ठांक
लोक के प्रकार	५
लोक का स्वरूप	,,
लोक का विस्तार	७
लोक-सान्त और अनन्त	९
लोकस्थिति	,,
लोक का आयाम मध्य	११
लोक का सम भाग	,,
लोक का वक्र भाग	,,
लोक के साथ स्पर्श	१२
लोकपरिज्ञान	१३
लोक की नित्यता-अनित्यता	,,
लोक में धर्मास्तिकाय आदि का अवगाहन	१४
लोकरचना संबंधी विभिन्न मान्यताएँ	,,
लोक में अनन्त और शाश्वत	१५
लोक में द्विरूपता	,,
लोक में जीव-अजीव	१६
अधोलोक के एक प्रदेश में जीवाजीव	१७
तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक के एक प्रदेश में जीवाजीव	१८
लोक के एक प्रदेश में अनाबाध अवगाहन	,,
पांच बादर	२०
पांच अनुत्तर	,,
चार द्विशरीरी	,,
लोक के चरमान्त में जीव-अजीव	२१
लोक में समान परिमाण वाले चार स्थान	२४
लोक में अन्धकार-प्रकाश के कारण	,,
लोक-अलोक की पूर्वापरता	२५

३— अधोलोक पृ० २७–६६

विषय	पृष्ठांक
अधोलोक के भेद	२७
आठ पृथ्वियां	२८
नरकभूमियों का आधार	२९
नरकभूमियों के नीचे घनोदधि आदि	,,
घनोदधि आदि का संस्थान	३१
घनोदधि आदि की मोटाई	,,
घनोदधि आदि में पुद्गलद्रव्य	३२
नरकभूमियों के विभाग	३३
रत्नप्रभा के काण्डों की मोटाई	३४
नरकभूमियों का संस्थान	,,
नरकभूमियों में पुद्गलद्रव्य	३५
नरकभूमियों की लंबाई, चौड़ाई, मोटाई	३७
नरकभूमियों का सापेक्ष परिमाण	,,
नरकभूमियों का अन्तर	३८
रत्नप्रभा आदि के चरमान्तों का अन्तर	३९
नरकभूमियों से लोकान्त का अन्तर	४२
नरकभूमियों की नित्यानित्यता	४३
नारकों के स्थान	,,
नारकावास	,,
रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकावास	४४
शर्कराप्रभा में नारकावास	४५
बालुकाप्रभा में नारकावास	,,
पंकप्रभा में नारकावास	,,
धूमप्रभा में नारकावास	४६
तमःप्रभा में नारकावास	,,
तमस्तमःप्रभा में नारकावास	,,
नारकावासों का संस्थान	४९

विषय	पृष्ठांक
नारकावासों का परिमाण	४९
नारकावासों का विस्तार	५०
नारकावासों का वर्णादि	५१
वज्रमय नारकावास	५२
भवनावास	
भवनवासी देवों के स्थान	५३
असुरकुमारों के स्थान	,,
चमरचंचा आवास	५५
चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा	५७
चमरेन्द्र के लोकपालों के उत्पातपर्वत	६०
बलि की सुधर्मा सभा	,,
बलि के लोकपालों के उत्पातपर्वत	६१
दाक्षिणात्य असुरकुमारों के स्थान	,,
नागकुमार देवों के स्थान	६२
दाक्षिणात्य नागकुमारों के स्थान	६३
उत्तरीय नागकुमारों के स्थान	,,
सुपर्णकुमार देवों के स्थान	६४
दाक्षिणात्य सुपर्णकुमार देवों के स्थान	,,
उत्तरीय सुपर्णकुमार देवों के स्थान	६५
धरणेन्द्र आदि की प्ररूपणा	६६
अधोलोक का मध्यभाग	,,
मध्यलोक–६७-४२०	
वान-व्यन्तर देवों के स्थान	६७
पिशाच देवों के स्थान	६८
दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान	६९
उत्तरीय पिशाच देवों के स्थान	,,
जृम्भक देवों के स्थान	७०
वाण–व्यन्तर देवों की सुधर्मा सभा	७१
तिर्यक्लोक: भेद, संस्थान, मध्य	,,
जम्बूद्वीप	
जम्बूद्वीप–वर्णन	७२
जम्बूद्वीप की जगती	७३
जगती पर वनखण्ड	७६
जम्बूद्वीप के द्वार	७७
जम्बूद्वीप के उपादानद्रव्य	७९
'जम्बूद्वीप' नाम का हेतु	,,
जम्बूद्वीप की नित्यानित्यता	,,
जम्बूद्वीप में वर्षधर पर्वत	८०
क्षुल्लहिमवन्त पर्वत	,,
छह द्रह	८१

विषय	पृष्ठांक
द्रहवर्त्तिनी देवियाँ	८२
पद्मद्रह	८२
'पद्मद्रह' संज्ञा का कारण	८५
गंगाप्रपातकुंड के सोपान	८७
तोरण वर्णन	,,
गंगाद्वीप	८८
गंगा–संगम	८९
सिन्धुनदी	९०
रोहितांसा महानदी	,,
रोहितांसा द्वीप	९१
रोहितांसा का संगम	,,
चुलहिमवन्त के कूट	९२
कूट वर्णन	,,
चुल्लहिमवन्त कूट	९३
चुल्लहिमवन्ता राजधानी	९४
अवशेष कूट	,,
'चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत' संज्ञा का हेतु	९५
महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत	,,
महापद्मद्रह	९६
रोहिता महानदी का उद्गम	९७
रोहिता द्वीप	९८
रोहिता महानदी का संगम	,,
हरिकान्ता महानदी का उद्गम	९९
हरिकान्ता द्वीप	,,
हरिकान्ता नदी का संगम	१००
महाहिमवन्त पर्वत के कूट	,,
महाहिमवन्त नाम का हेतु	१०१
निषध पर्वत	,,
तिगिञ्छि द्रह	१०२
हरिसलिला महानदी	१०३
शीतोदा महानदी–उद्गम	,,
शीतोदा द्वीप	१०४
शीतोदा– संगम	,,
निषध पर्वत के कूट	१०५
'निषध' संज्ञा का हेतु	,,
नीलवन्त पर्वत	१०६
नीलवन्त पर्वत के कूट	१०७
नीलवन्त नाम का हेतु	,,
रुक्मी पर्वत	१०८
रुक्मी पर्वत के कूट	,,
'रुक्मी' संज्ञा का हेतु	१०९
शिखरी पर्वत	,,

विषय	पृष्ठांक
शिखरी पर्वत के कूट	११०
'शिखरी' संज्ञा का हेतु	,,
जम्बूद्वीप में वर्ष	
कर्मभूमियाँ	१११
अकर्मभूमियाँ	,,
उत्तर–दक्षिण के क्षेत्रों की समानता	,,
'भरत' संज्ञा का हेतु	११३
दक्षिणार्ध भरत की अवस्थिति	११४
दक्षिणार्ध भरत का आकार–भाव	११५
उत्तरार्ध भरत वर्ष	,,
उत्तरार्ध भरत का आकारभाव–स्वरूप	११६
ऋषभकूट पर्वत	११७
वैताढ्य पर्वत	११८
तमिस्र गुफा और खण्डप्रपात गुफा	११९
विद्याधर श्रेणियाँ	१२०
आभियोग्य श्रेणियाँ	१२१
वैताढ्य का शिखर	१२२
वैताढ्य के कूट	१२३
सिद्धायतन कूट	,,
दक्षिणार्ध भरतकूट	१२५
शेष कूट	१२६
'वैताढ्य' नाम का हेतु	१२७
ऐरावत वर्ष	,,
महाविदेह वर्ष	१२८
महाविदेह का स्वरूप	१२९
'महाविदेह' संज्ञा का हेतु	,,
गंधमादन पर्वत	१३०
गंधमादन पर्वत के कूट	१३१
'गंधमादन' संज्ञा का कारण	,,
महाविदेह में माल्यवन्त पर्वत	१३२
माल्यवन्त का सागर कूट	१३३
माल्यवन्त का हरिस्सह कूट	,,
'माल्यवन्त' संज्ञा का हेतु	१३४
सौमनस वक्षस्कार पर्वत	,,
सौमनस पर्वत के कूट	१३५
विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत	,,
विद्युत्प्रभ पर्वत के कूट	१३६
मन्दर पर्वत	१३७
भद्रशाल वन	१३८
सिद्धायतन-वर्णन	१३९
पुष्करिणी-वर्णन	१४०
दिशाहस्ति कूट	१४१

विषय	पृष्ठांक
नन्दनवन	१४२
नन्दनवन के कूट	१४३
सौमनस वन	१४५
पंडकवन	१४६
अभिषेकशिलाएँ	
पाण्डुशिला	१४७
पाण्डुकंबलशिला	१४८
रक्तशिला	१४९
रक्तकंबलशिला	,,
मंदर पर्वत के काण्ड	,,
मंदर पर्वत के नाम	१५१
कच्छविजय	,,
दक्षिणार्ध कच्छ	१५२
कच्छ विजय का वैताढ्य पर्वत	१५३
उत्तरार्ध कच्छ	१५४
उत्तरार्ध कच्छ का सिन्धुकूट	,,
ऋषभकूट पर्वत	१५५
गंगा कुण्ड	,,
'कच्छ' संज्ञा का कारण	,,
चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत	१५६
चित्रकूट के कूट	१५७
सुकच्छ विजय	,,
ग्राहावती कुण्ड	१५८
महाकच्छ विजय	,,
ब्रह्मकूट वक्षस्कार पर्वत	१५९
कच्छगावती विजय	,,
आवर्त्त विजय	१६०
नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत	,,
मंगलावर्त विजय	१६१
पंकावती कुण्ड	,,
पुष्कलावर्त्त विजय	१६२
एकशैल वक्षस्कार पर्वत	,,
पुष्कलावती विजय	,,
उत्तरीय शीतामुख वन	१६३
उत्तर की शेष वक्तव्यता	१६४
दक्षिणी शीतामुख वन	,,
वत्स आदि विजय	१६५
शेष विजयादि वक्तव्यता	१६६
हैमवत वर्ष	१६९
शब्दापाती पर्वत	१७०
'हैमवत' संज्ञा का हेतु	१७१
हैरण्यवत वर्ष	,,

विषय	पृष्ठांक
माल्यवन्तपर्याय पर्वत	१७२
'हैरण्यवत' संज्ञा का हेतु	,,
हरिवर्ष	१७३
विकटापाती पर्वत	१७४
'हरिवर्ष' संज्ञा का हेतु	,,
रम्यक वर्ष	१७५
गन्धापाती पर्वत	,,
रम्यक वर्ष संज्ञा का हेतु	,,
उत्तरकुरु की अवस्थिति	१७६
उत्तरकुरु का स्वरूप	,,
उत्तरकुरु में यमक पर्वत	१७७
'यमकपर्वत' संज्ञा का हेतु	१७८
यमक देवों की राजधानियाँ	,,
उत्तरकुरु में नीलवन्त द्रह	१८३
'उत्तरकुरु' संज्ञा का हेतु	१८४
जम्बूपीठ	,,
जम्बूसुदर्शना	१८५
जम्बू सुदर्शना के नाम	१८७
'जम्बू सुदर्शना' संज्ञा का कारण	,,
अनाहत देव की राजधानी	१८८
देवकुरु	,,
चित्रकूट-विचित्रकूट पर्वत	१८९
निषधादि पांच द्रह	,,
कूट शाल्मली पीठ	,,
जम्बूद्वीपवर्त्ती पदार्थ	१९०
जम्बूद्वीप में नदियाँ	१९३
जम्बूद्वीप-लवणसमुद्र के प्रदेशों का स्पर्श	१९५
लवणसमुद्र वर्णन	१९६
लवणसमुद्र की गहराई	१९७
लवणसमुद्र के जल की हानि-वृद्धि	,,
लवणसमुद्र का वेलाधारण	२००
लवणसमुद्र में वेलंधर आदि	२०१
अनुवेलंधर नागराज	२०५
लवणसमुद्र का आकार-विस्तार	२०६
जम्बूद्वीप को जलमग्न न करने के हेतु	२०७
गोतीर्थ	२०९
छप्पन अन्तरद्वीप	,,
गौतम द्वीप	२११
लवणसमुद्र के द्वार	२१३
'लवणसमुद्र' संज्ञा का हेतु	२१४
लवणसमुद्र-धातकीखण्ड के प्रदेशों का स्पर्श आदि	,,
लवणादि समुद्रों के जल की विशेषता	,,
लवणादि समुद्रों में मेघ	२१५
धातकीखण्ड द्वीप	२१६
कालोद समुद्र	२१७
पुष्करवर द्वीप	२२०
समयक्षेत्र	२२२
'मनुष्यक्षेत्र' संज्ञा का हेतु	२२३
मानुषोत्तर पर्वत	,,
पुष्करोद समुद्र	२२५
वरुणवर द्वीप	२२६
वरुणोद समुद्र	,,
क्षीरवर द्वीप	२२७
क्षीरोद समुद्र	२२८
घृतवर द्वीप	,,
घृतोद समुद्र	२२९
क्षोदवर द्वीप	,,
क्षोदोद समुद्र	२३०
नन्दीश्वरवर द्वीप	,,
नन्दीश्वरोद समुद्र	२३५
अरुण द्वीप	,,
अरुणोद समुद्र	२३६
शेष द्वीप और समुद्र	,,
समुद्रों के जल का स्वाद	२३९
द्वीप-समुद्रों की संख्या	२४१
एक नाम के अनेक द्वीप-समुद्र	,,
द्वीप-समुद्रों का उपादान	२४२
जम्बूद्वीपवर्त्ती चन्द्रों के चन्द्रद्वीप	,,
जम्बूद्वीपवर्ती सूर्यों के सूर्यद्वीप	२४३
लवणसमुद्रवर्ती चन्द्र-सूर्यों के द्वीप	२४४
धातकीखण्डवर्ती चन्द्र-सूर्यों के द्वीप	२४५
कालोदवर्ती आदि चन्द्र-सूर्यों के द्वीप	,,
देवद्वीप-समुद्र आदि के चन्द्र-सूर्य देवों के द्वीप	२४७
भूकम्प के कारण	२४८
ज्योतिष्कनिरूपण	
ज्योतिष्कों के भेद	२५०
ज्योतिष्क देवों के स्थान	,,
ज्योतिष्क विमानों का संस्थान	२५१
जम्बूद्वीप में ज्योतिष्क	२५२
लवणसमुद्र में ज्योतिष्क	२५३
धातकीखण्ड में ज्योतिष्क	२५४
कालोद समुद्र में ज्योतिष्क	,,
पुष्करवरद्वीप में ज्योतिष्क	२५५
आभ्यन्तर पुष्करार्ध में ज्योतिष्क	,,

विषय	पृष्ठांक
मनुष्यक्षेत्रमें ज्योतिष्क	२५६
ज्योतिष्कों की ऊँचाई	२५७
मेरु और लोकान्त से ज्योतिष्कों की दूरी	२६०
चन्द्रादिविमानों का परिवहन	२६१
ज्योतिष्कविमानों का परिमाण	२६६
ज्योतिष्कों की गति	२६७
नक्षत्रमास में ज्योतिष्कों की गति	२६९
चन्द्रमास में "	२७०
ऋतुमास में "	"
आदित्यमास में "	२७१
अभिवर्द्धितमास में "	"
एक अहोरात्र में "	"
एक-एक मंडल में ज्योतिष्क-चार	२७२
ज्योतिष्कगति का तारतम्य	२७३
ज्योतिष्कों का अल्प-बहुत्व	२७४
ज्योतिष्कों की ऋद्धि का अल्प-बहुत्व	२७५
चन्द्रवर्णन	
चन्द्रमा का उदय-अस्तमन	२७६
चन्द्रमा की हानि-वृद्धि	"
ज्योत्स्ना का अल्प-बहुत्व	२७७
चन्द्रमण्डलों की संख्या	२७८
चन्द्रमण्डलों का अन्तर	२७९
चन्द्रमण्डलों का विस्तार	"
आभ्यन्तर और बाह्य चन्द्रमण्डलों का विस्तार	"
चन्द्रमण्डलों का अन्तर	२८१
एक मुहूर्त्त में चन्द्र की गति	"
मेरु से चन्द्रमण्डलों का अन्तर	२८३
पक्ष में चन्द्रमण्डलगति	२८४
विभिन्न मासों में चन्द्रादि का मंडल-चार	२८८
अहोरात्र आदि में " "	२९०
चन्द्रादि की गति की विशेषता	२९१
चन्द्र का नक्षत्रों से योग	२९३
पूर्णिमा में चन्द्र का नक्षत्रों के साथ योग	२९७
पूर्णिमा में चन्द्रयोग	३०१
पूर्णिमा में सूर्ययोग	३०३
अमावस्या में चन्द्रयोग	३०४
अमावस्या में सूर्ययोग	३०५
सूर्यवर्णन	
सूर्यदर्शन	३०६
सूर्यबिम्ब की लम्बाई-चौड़ाई	३०७
सूर्य का उदय और अस्तमन	३०८

विषय	पृष्ठांक
लवणसमुद्र में उदयास्तवर्णन	३१५
धातकीखण्ड आदि में उदयास्तवर्णन	३१६
सूर्य के प्रकाश का वर्णन	३१७
सूर्य का वरण	३२१
सूर्य-प्रकाश का प्रतिरोध	२२२
सूर्यगति का क्षेत्र	३२३
सूर्यों का परस्पर अन्तर	३२४
पुरुष की छाया का परिमाण	३२८
अर्धमण्डल-भ्रमण-व्यवस्था	३३३
सूर्यमण्डलों की संख्या	३३६
जम्बूद्वीप में सूर्यमण्डलों की संख्या	"
लवणसमुद्र में " "	"
निषध और नीलवंत पर्वत पर सूर्यमंडलों की संख्या	३३७
सूर्य मंडलों का क्षेत्र	३३७
मंडल का क्षेत्र	"
मंडलों का परिमाण	३३९
सूर्यमंडलों की लंबाई, चौड़ाई, हानि-वृद्धि	३४३
सूर्यमंडलों का अन्तर	३४४
मेरु पर्वत से सूर्यमंडलों का अन्तर	३४५
मंडलों में सूर्यगति	३४६
सूर्य का मंडलसंक्रमण	"
अहोरात्र में सूर्य द्वारा मंडलों का स्पर्श	३४८
द्वीप आदि में सूर्यगति का अन्तर	३५१
सूर्य की तिर्छी गति का प्रमाण	३५४
सूर्य की प्रतिमुहूर्त्त गति	३५६
नक्षत्रमंडल के भाग में सूर्य की एक मुहूर्त्त में गति	३६२
दिन–रात्रि का परिमाण	"
सूर्य का ताप-क्षेत्र	३६५
चन्द्र-सूर्य का संस्थान	"
तापक्षेत्र का संस्थान	३६६
सर्वाभ्यन्तर मंडल में तापक्षेत्र-संस्थान	३६९
चन्द्र-सूर्य का स्वरूप	३७२
चन्द्र-सूर्य का व्युत्पत्तिमूलक स्वरूप	३७३
चन्द्र-सूर्यों की संख्या	३७४
चन्द्र और सूर्य की गति	३७५
चन्द्र-सूर्य का अवभासन क्षेत्र	"
उद्योत का लक्षण	३७८
ग्रहनिरूपण	
अठासी महाग्रहों के नाम	३७९
राहु के भेद	३८०
राहु का स्वरूप	३८१

विषय	पृष्ठांक
नक्षत्रों की संख्या एवं नाम	३८४
नक्षत्रनिरूपण के दस द्वार	३८५
नक्षत्रों का गणनाक्रम	"
नक्षत्रों के स्वामी देवता	३८६
नक्षत्रों का तारापरिवार	"
नक्षत्रों के गोत्र	३८९
नक्षत्रों के संस्थान	३९०
नक्षत्रों के चन्द्रयोग की आदि	३९१
नक्षत्रों का चन्द्र के साथ दिशायोग	३९३
नक्षत्रों का योग, भोग और परिमाण	३९४
नक्षत्रों का सीमाविष्कंभ	३९७
चन्द्र के साथ नक्षत्रों का योगकाल	३९८
नक्षत्रों के साथ सूर्य का योगकाल	३९९
युग में अमावस्या एवं पूर्णिमा	४००
पूर्णिमा–अमावस्या में नक्षत्रों का योग	"
पूर्णिमा–अमावस्याओं का नक्षत्र सम्बन्ध	४०१
अमावस्याओं में नक्षत्रयोग	४०२
नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुल	४०३
अमावस्याओं में कुलों का योग	४०४
पूर्णिमाओं में कुल-उपकुल का योग	"
रात्रि पूर्ण करने वाले नक्षत्र	४०६
नक्षत्रमासों के मुहूर्त्तों की हानि-वृद्धि	४१०
नक्षत्रों का चार-प्रकार	४११
नक्षत्रों का दिशाभाग	"
चारों दिशाओं के नक्षत्र	४१२
नक्षत्र मंडलों की संख्या	४१६
" का क्षेत्र	"
" की लम्बाई-चौड़ाई	४१६
" का अन्तर	४१७
मेरु से नक्षत्रमंडलों का अन्तर	"
एक मुहूर्त्त में नक्षत्र की गति	"
नक्षत्रों की (मंडलों में) गति	४१८
चन्द्र-सूर्य के नीचे और ऊपर तारों के स्थान	"
ताराओं का परस्पर अन्तर	४१९
उपरितन तारक-परिभ्रमण	"
तारकग्रह	४२०
शुक्र महाग्रह की वीथियां	"

ऊर्ध्वलोक ४२१-४४४

विषय	पृष्ठांक
शुक्र का उदय-अस्तमन	४२०
ऊर्ध्वलोक : भेद, संस्थान, मध्य	४२१
सौधर्म देवों के स्थान	४२२
ईशान "	४२३
सनत्कुमार "	४२४
माहेन्द्र "	"
ब्रह्मलोक देवों के स्थान	४२५
तमस्काय	"
तमस्काय संबंधी शेष वक्तव्यता	४२७
कृष्णराजियां	४३०
लान्तक देवों के स्थान	४३३
महाशुक्र "	"
सहस्रार "	४३४
आनत-प्राणत "	"
आरण-अच्युत "	"
अधस्तन ग्रैवेयक "	४३६
मध्यम " "	"
उपरितन " "	४३७
अनुत्तरौपपातिक "	"
वैमानिक इन्द्रों के उत्पातपर्वत	४३८
विमान-पृथ्वियों का आधार	"
कल्पविमानों के प्रस्तट	४३९
विमानपृथ्वियों का बाहल्य	४४०
कल्पविमानों की ऊँचाई	"
" की लम्बाई, चौड़ाई, परिधि	४४१
" का संस्थान	४४२
" का वर्ण	"
" की प्रभा	४४३
" की गंध	"
" का स्पर्श	"
" की महत्ता	"
" का उपादान	"
सिद्धों के स्थान	४४४
मापनिरूपण	
अंगुल के भेद और परिमाण	४४६

गणितानुयोग

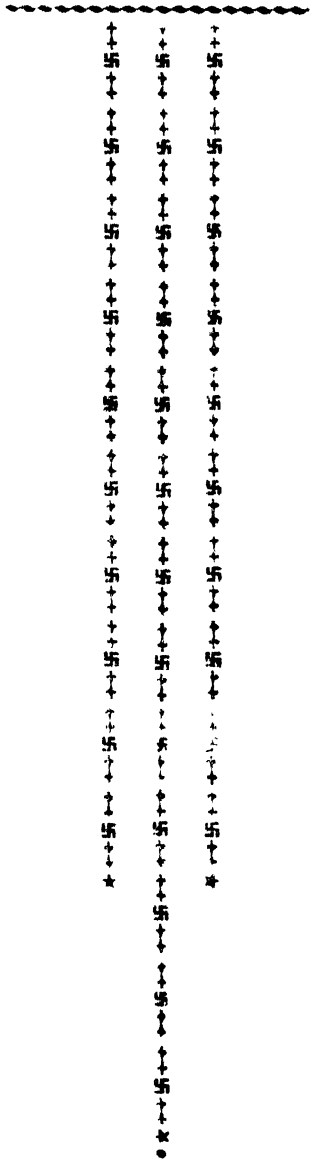

संकलनकर्त्ता :

मुनि कन्हैयालाल "कमल

अलोक

संख्या, संस्थान, संस्पर्श

[१] एगे अलोए।

—ठा. १, ६; सम. १, १

[२] [१] प्र०—अलोए णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! झुसिरगोलसंठिए पण्णत्ते।

—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १० प्र. १० पृ. २२९

[३] [१] प्र०—अलोए णं भंते ! किणा फुडे ?

कतिहिं वा काएहिं पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! नो धम्मत्थिकाएणं फुडे,—जाव[1]—आगासत्थिकायस्स पदेसेहिं फुडे, नो पुढविकाइएणं फुडे—जाव[2]—नो अद्धासमएणं फुडे।

एगे अजीवदव्वदेसे, अगुरुलहुए, अणंतेहिं अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते, सव्वागासअणंतभागूणे।

—पण्ण० १५ इन्द्रियपद पृ० ९३४

[१] अलोक एक है।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! अलोक किस आकार का है ?

उ०—गौतम ! (अलोक) पोले गोले के आकार का है।

[३] [१] प्र०—भगवन् ! अलोक किससे स्पृष्ट है ? कितने कायों से स्पृष्ट है ?

उ०—गौतम ! (अलोक) धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है—यावत्—आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है किन्तु आकास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है। पृथ्वीकाय से स्पृष्ट नहीं है—यावत्—अद्धासमय से स्पृष्ट नही है। (अलोक में) एक अजीवद्रव्यदेश अर्थात् आकाशभाग है, जो अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से युक्त है तथा सर्वाकाश का अनन्ततम भाग न्यून है।

अलोक की विशालता

[४] [१] प्र०—अलोए णं भंते ! केमहालए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अयं णं समयखेत्ते पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, जहा[3] खंदए—जाव—परिक्खेवेणं।

ते णं काले णं ते णं समए णं दस देवा महिड्ढिया तहेव—जाव[4]—संपरिक्खित्ताणं संचिट्ठेज्जा। अहे णं अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तियाओ अट्ठ बलिपिंडे गहाय माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स चउसु वि दिसासु चउसु वि विदिसासु बहियाभिमुहीओ ठिच्चा ते अट्ठ बलिपिंडे जमगसमगं बहियाभिमुहीओ पक्खिवेज्जा, पभू णं गोयमा ! तओ एगमेगे देवे ते अट्ठ बलिपिंडे धरणितलमसंपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए, ते णं गोयमा ! देवा ताए उक्किट्ठाए—जाव—देवगईए लोगंते ठिच्चा

१—पण्ण. १५ इन्द्रियपद, पृ. ९३०।

२— „ „ „

३—विवा. भाग १, श. २ उ. १, पृ. २३५।

४— „ भाग ३, श. ११, उ. १०, प्र. १९, पृ. २३१।

असब्भावपट्ठवणाए एगे देवे पुरच्छाभिमुहे पयाए,
एगे देवे दाहिण-पुरच्छाभिमुखे पयाए,
एवं—[1]जाव—उत्तर-पुरच्छाभिमुहे,
एगे देवे उड्ढाभिमुहे पयाए,
एगे देवे अहोभिमुहे पयाए,
ते णं काले णं वाससयसहस्साउए दारए पयाए,
तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पहीणा भवंति,
नो चेव णं ते देवा अलोयंतं संपाउणंति ।
तं चेव—जाव[2]—तेसिं णं देवाणं किं गए बहुए, अगए बहुए ?
गोयमा ! नो गए बहुए, अगए बहुए,
गयाउ से अगए अणंतगुणे,
अगयाउ से गए अणंतभागे,
अलोए णं गोयमा ! एमहालए पण्णत्ते ।

—विवा० भाग ३, श० ११, उ० १०, प्र० २०, पृ० २३२

[४]: [१] प्र०—भगवन् ! अलोक कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! इस मनुष्यक्षेत्र की लम्बाई-चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन की है, जैसा कि स्कन्दक के प्रकरण में विस्तार से बताया गया है । इस प्रकार के मनुष्यक्षेत्र को दस महर्द्धिक देव सब ओर से घेर कर खडे हों । उनके नीचे आठ महत् दिक्कुमारियां आठ बलिपिण्ड ग्रहण कर मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में बाह्याभिमुख खड़ी रहें । पश्चात् वे उन आठों बलिपिण्डों को एक साथ बाहर फेंकें । ऐसी स्थिति में, हे गौतम ! उन देवों में से प्रत्येक उन आठों बलिपिण्डों को पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही ग्रहण कर लेता है । इस प्रकार की उत्कृष्ट एवं त्वरित गति वाले देवों में से एक ने लोकान्त से, असत्कल्पना से, पूर्व में प्रयाण किया, एक ने दक्षिण-पूर्व मे प्रयाण किया—यावत्—एक ने उत्तर-पूर्व में प्रयाण किया, एक ने ऊर्ध्वदिशा में प्रयाण किया, एक ने अधोदिशा में प्रयाण किया । उस समय एक वर्ष की आयु वाला एक बालक उत्पन्न हुआ । कालक्रम से उसके माता-पिता का देहान्त हुआ । तब भी वे देव अलोक का अन्त न पा सके ।

इसी प्रकार बालक की आयु क्षीण हुई—यावत्—उसके नाम-गोत्र भी क्षीण हो गए । फिर भी वे देव अलोक का अन्त (छोर) न पा सके ।

प्र०—(भगवन् ! इतने समय में) उन देवों ने जो क्षेत्र पार किया वह अधिक है अथवा जिस क्षेत्र को वे पार न कर सके वह अधिक है ?

उ०—गौतम ! पार किया गया क्षेत्र अधिक नहीं है, पार न किया गया क्षेत्र अधिक है । पार किये गए क्षेत्र से पार न किया गया क्षेत्र अनन्तगुणा है तथा पार न किये गए क्षेत्र से पार किया गया क्षेत्र अनन्तवां भाग है । गौतम ! अलोक इतना विशाल है ।

अलोक में गति का अभाव

[५] [१] प्र०—देवे णं भंते ! महिड्ढिए[3]—जाव—महासोक्खे लोगंते ठिच्चा पभू अलोगंसि हत्थं वा—जाव—उरुं वा आउंटावेत्तए वा पसारेत्तए वा ?

उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

---

१. विवा. भाग ३, श. ११, उ. १०, प्र. १९, पृ. २३१ ।
२. " " " " " " ।
३. "महज्जुइए, महाबले, महायसे"

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—देवे णं महिड्ढिए—जाव—लोगंते ठिच्चा णो पभू अलोगंसि हत्थं वा—जाव—पसारेत्तए वा ?

उ०—जीवा णं आहारोवचिया पोग्गला,
बोंदिचिया पोग्गला,
कलेवरचिया पोग्गला,
पोग्गलामेव पप्प जीवाण य अजीवाण य गतिपरियाए आहिज्जइ,
अलोए णं नेवत्थि जीवा,
नेवत्थि पोग्गला,
से तेणट्ठेणं—जाव—पसारेत्तए वा ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—विवा. भाग ४, श. १६, उ. ८, प्र. ६, पृ. २५

[५] [१] प्र०—भगवन् ! क्या महाऋद्धिसम्पन्न—यावत्—महासुख वाला देव लोकान्त में स्थित होकर अलोक में अपने हाथ—यावत्—उरु आदि को संकुचित करने या फैलाने में समर्थ है ?

उ०—नहीं, समर्थ नही है ।

[२] प्र०—भगवन् ! ऐसा क्यों ?

उ०—क्योंकि जीवों द्वारा पुद्गल ही आहार, शरीर और कलेवर रूप में उपचित होते हैं । पुद्गलों की अपेक्षा से ही जीवों और अजीवों मे गतिपर्याय का कथन होता है । अलोक में न तो जीव हैं और न पुद्गल है । इसी कारण उसमें हाथ आदि नही फैलाए जा सकते ।
भगवन् ! ऐसा ही है, भगवन् ! ऐसा ही है !

[६] चउहिं ठाणेहिं जीवा य पोग्गला य णो संचाएंति बहिया लोगंता गमणयाए, तंजहा—
गइअभावेणं, निरुवग्गहयाए, लुक्खत्ताए, लोगणुभावेणं ।

—ठाणांग अ. ४, उ. ३, सूत्र ३३७ पृ. २४१

चार कारणों से जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर (अलोक मे) गमन करने में समर्थ नहीं होते । वे चार कारण ये है—(१) गति का अभाव होने से (२) धर्मास्तिकाय रूप निमित्त का अभाव होने से (३) रूक्षता के कारण और (४) लोक की मर्यादा होने से ।

अलोक में अन्य द्रव्यों का अभाव

[७] दव्वओ णं अलोए णेवत्थि जीवदव्वा, णेवत्थि अजीवदव्वा,
णेवत्थि जीवाजीवदव्वा,
एगे अजीवदव्वदेसे—जाव[1]—सव्वागासअणंतभागूणे । कालओ णं अलोए न कयाइ नासि—जाव[2]—णिच्चे । भावओ णं अलोए नेवत्थि वण्णपज्जवा—जाव[3]—नेवत्थि अगुरुलहुयपज्जवा ।
एगे अजीवदव्वदेसे—जाव[4]—अणंतभागूणे ।

—विवा. भाग ३, श. ११, उ. १०, पृ. २३०, ३१

---

१. विवा० भाग १, श० २, उ० १०, प्र० ६७, पृ० ३१० ।
२. विवा० भाग १, श० १, उ० १०, पृ० २३५ ।
३. " " " " "
४. विवा० भाग १, श० २, उ० १०, प्र० ६७, पृ० ३१० ।

[७] द्रव्य से अलोक में जीवद्रव्य नहीं हैं, अजीवद्रव्य नहीं है, जीवाजीवद्रव्य नहीं हैं। एक अजीवद्रव्यदेश है—यावत्—सर्वाकाश से अनन्तभाग न्यून है।
काल से अलोक कभी नहीं था, ऐसा नहीं है—यावत्—नित्य है।
भाव से अलोक में वर्णपर्यव नहीं है—यावत्—अगुरुलघुपर्यव नहीं है।
वह एक अजीवद्रव्यदेश है—यावत्—अनन्तभाग न्यून है।

[८] [१] प्र०—अलोगागासे णं भंते ! किं जीवा, पुच्छा तह चेव ?
उ०—गोयमा ! नो जीवा—जाव[1]—नो अजीवपएसा,
एगे अजीवदव्वदेसे, अगुरुलहुए, अणंतेहिं अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते, सव्वागासे अणंतभागूणे।
—विवा. भाग १, श० १, उ० १०, प्र० ६७, पृ० ३१०

[८] [१] प्र०—भगवन् ! क्या अलोकाकाश में जीव, जीवदेश—यावत्—अजीवप्रदेश हैं ?
उ०—गौतम ! (अलोक में) जीव—यावत्—अजीवप्रदेश नहीं हैं, केवल एक अजीवद्रव्यदेश अर्थात् आकाश भाग है, जो अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से युक्त है तथा सम्पूर्ण आकाश से अनन्तवां भाग न्यून है।

[९] [१] प्र०—अलोए णं भंते ! किं जीवा० ?
उ०—एवं चेव।

[२] प्र०—अलोगस्स णं भंते ! एगंमि आगासपएसे पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! नो जीवा, नो जीवदेसा, तं चेव—जाव[2]—अणंतेहिं अगुरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासस्स अणंतभागूणे।
—विवा. भाग ३, श० ११, उ० १०, प्र० १५-१७, पृ० २३०

[९] [१] प्र०—भगवन् ! क्या अलोक में जीव आदि हैं ?
उ०—इसका उत्तर उसी प्रकार है।

[२] प्र०—भगवन् ! अलोक के एक आकाशप्रदेश में क्या जीव, जीवदेश आदि हैं ?
उ०—गौतम ! (अलोक के एक आकाशप्रदेश में) जीव नहीं हैं, जीवदेश नहीं हैं इत्यादि। वहां केवल एक अजीवद्रव्यदेश है, जो अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से युक्त है तथा समस्त आकाश से अनन्ततम भाग न्यून है।

---

१. विवा. भाग १, श० १, उ० १०, प्र० ६६, पृ० ३१०।
२. „ „ „ „ प्र० ६७, पृ० ३१०।

लोक

लोक के प्रकार

[१] **एगे लोए ।**

—ठा० १, ५; सम० १, १.

[१] लोक एक है ।

[२] **तिविहे लोगे पण्णत्ते, तंजहा—**
णामलोगे, ठवणालोगे, दव्वलोगे ।

—ठा ३, २, सू. १५३ पृ० १२१

[२] लोक तीन प्रकार का कहा है, यथा—
नामलोक, स्थापनालोक, द्रव्यलोक ।

[३] **रायगिहे—जाव—एवं वयासी—**
[१] **प्र०—कतिविहे णं भंते ! लोए पण्णत्ते ?**
उ०—गोयमा ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते तंजहा—
दव्वलोए, खेत्तलोए, काललोए, भावलोए

—विवा० भा. ३ श. ११ उ. ११ प्र. २ पृ० २३४

[४] [१] **प्र०—खेत्तलोए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?**
उ०—गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—
अहोलोयखेत्तलोए, तिरियलोयखेत्तलोए, उड्ढलोयखेत्तलोए ।

—विवा. भा. ३ श. ११, उ. १० प्र. १–५, पृ० २२८
—ठा. अ. ३ उ. २ सूत्र १५३
—अनु. सू. १४५ पृ० ५५१

राजगृह नगर में—यावत्—इस प्रकार कहा—

[३] [१] प्र०—भगवन् ! लोक कितने प्रकार का कहा है ?
उ०—गौतम ! चार प्रकार का कहा ह, वह इस प्रकार है—
द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक, भावलोक ।

[४] [१] प्र०—भगवन् ! क्षेत्रलोक कितने प्रकार का कहा है ?
उ०—गौतम ! तीन प्रकार का कहा है, यथा—
अधोलोकक्षेत्रलोक, तिर्यक्लोकक्षेत्रलोक, ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक ।

[५] **तिविहे भावलोके पण्णत्ते तंजहा—**
णाणलोगे, दंसणलोगे, चरित्तलोगे ।

—ठा. ३, २, सू. १५३ पृ० १२१

[५] भावलोक तीन प्रकार का कहा है—
ज्ञानलोक, दर्शनलोक, चारित्रलोक ।

लोक का स्वरूप

[६] **धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो ।**
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ।।

—उत्तर. अ. २८ गा. ७

[६] केवलदर्शी जिनेश्वरों ने धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल तथा जीवरूप लोक कहा है ।

[७] [१] प्र०—किमियं भंते ! लोएत्ति पवुच्चइ ?

उ०—गोयमा ! पंचत्थिकाया,
एस णं एवइए लोए इ पवुच्चइ, तंजहा—
धम्मत्थिकाए, अहम्मत्थिकाए—जाव—पोग्गलत्थिकाए ।

—विवा. भा ३, श. १३, उ. ४, प्र. १३, पृ० ३१५

[७] [१] प्र०—भगवन् ! यह लोक (इस लोक का स्वरूप) क्या है ?

उ०—गौतम ! यह लोक पंचास्तिकाय रूप है । पंचास्तिकाय इस प्रकार हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ।

[८] [१] प्र०—के अयं लोए ?

उ०—जीवच्चेव, अजीवच्चेव ।

—ठा. अ. २, उ. ४, सू. १०३, प्र० ६० ।

प्र०—यह लोक क्या है ?

[८] [१] उ०—लोक जीव और अजीव रूप है ।

[९] [१] प्र०—से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा ?
विगच्छिंसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ?
परित्ता रातिंदिया उप्पज्जिंसु वा ३ ?
विगच्छिंसु वा ३ ?

उ०—हंता अज्जो ! असंखेज्जे लोए अणंता रातिंदिया तं चेव ।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं—जाव—विगच्छिस्संति वा ?

उ०—से नूणं मे अज्जो ! पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए वुइए, अणादीए, अणवदग्गे, परित्ते, परिवुडे,
हेट्ठा विच्छिन्ने,[1] मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले,
अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिते, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए,
तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणादियंसि अणवदग्गंसि परित्तंसि परिवुडंसि,
हेट्ठा विच्छिन्नंसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पिं विसालंसि,
अहे पलियंकसंठियंसि, मज्झे वरवइरविग्गहियंसि, उप्पिं मुइंगाकारसंठियंसि
अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता २ निलीयंति, परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता २ निलीयंति,
से नूणं भूए उप्पन्ने विगए परिणए अजीवेहिं लोक्कति, पलोक्कइ ।

---

१. प्र०—लोए णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! सुपइट्ठगसंठिए पण्णत्ते, तंजहा—
हेट्ठा विच्छिन्ने, मज्झे संखित्ते, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए पण्णत्ते ।

—विवा. भाग ३ श. ७, उ. १, प्र. ४, पृ० २
—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १०. प्र. ६, पृ० २२६
—विवा. भाग ३ श. १३, उ. ४, प्र. ४७, पृ० ३२३

प्र०—भगवन् ! लोक का आकार कैसा है ?
उ०—गौतम ! सुप्रतिष्ठक (शराव-सिकोरा) के आकार का है । नीचे से विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के समान है ।

जे लोक्कइ से लोए
हंता भगवं !
से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ असंखेज्जे तं चेव ।

—विवा० भाग २, श० ५, उ० ६, प्र० १५-१६ पृ० २४६-५०

[९] [१] प्र०—(पार्श्वापत्य स्थविर श्रमण भगवान् महावीर से पूछते हैं—) भगवन् ! क्या असंख्य लोक में अनन्त रात्रि-दिवस हुए हैं, होते हैं और होंगे ? विगत (व्यतीत) हुए हैं, विगत होते हैं व विगत होंगे ? परित्त (नियत परिमाण वाले) रात्रि-दिवस हुए हैं, होते हैं व होंगे ? परित्त रात्रि-दिवस विगत हुए हैं, विगत होते हैं व विगत होंगे ?

उ०—हाँ आर्यो ! असंख्य लोक में अनन्त रात्रि-दिवस हुए हैं, होते हैं व होंगे—यावत्—परित्त रात्रि-दिवस विगत हुए हैं, विगत होते हैं व होंगे ।

[२] प्र०—ऐसा क्यों ?

उ०—क्योंकि पुरुषादानीय अर्हन्त पार्श्व ने कहा है—लोक शाश्वत, अनादि, अनन्त, परित्त एवं परिवृत (अलोक से घिरा हुआ) है । आकार की दृष्टि से यह नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संकीर्ण तथा ऊपर विशाल है । नीचे पल्यंक के सदृश, मध्य में श्रेष्ठ वज्र के समान एवं ऊपर खड़े मृदंग के तुल्य है । ऐसे लोक मे अनन्त जीवघन (असंख्यप्रदेशी जीव) उत्पन्न हो-हो कर मरते रहते है, परित्त-मर्यादित जीवघन उत्पन्न हो-हो कर मरते रहते हैं । इस दृष्टि से लोक भूत, उत्पन्न, विगत एवं परिणत है । यह लोक अजीवादि पदार्थों द्वारा जाना एवं पहचाना जाता है ।
जो जाना जाय वह लोक कहलाता है न ?
हाँ भगवन् ! बात ऐसी ही है ।
आर्यो ! इसलिए यह कहा गया है कि लोक मे असंख्य रात्रि-दिवस हुए हैं,—यावत्—वह इसी प्रकार का है ।

लोक का विस्तार

[१०][१] प्र०—केमहालए णं भंते ! लोए पण्णत्ते ?

उ०—महइमहालए लोए पण्णत्ते,
पुरत्थिमेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ, दाहिणेणं असंखिज्जाओ एवं चेव, एवं पच्चत्थिमेण वि, एवं उत्तरेणं वि, उड्ढं पि, अहे असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं ।

—विवा० भाग ३, श० १२, उ० ७, प्र० १, पृ० १८२
—विवा० भाग ४, श० १६, उ० ८, प्र० १, पृ० २१

[१०][१] प्र०—भगवन् ! लोक कितना बड़ा है ?

उ०—लोक अत्यन्त विशाल है । वह पूर्व में असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन है । इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व एवं अधोदिशा में भी असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन लम्बा-चौड़ा है ।

[११][१] प्र०—लोए णं भंते ! केमहालए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव०—जाव—परिक्खेवेणं, ते णं काले णं ते णं समए णं छ देवा महिड्ढीया—जाव—महासोक्खा जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए मंदरचूलियं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठिज्जा,
अहे णं चत्तारि दिसाकुमारीओ महत्तरियाओ चत्तारि बलिपिंडे गहाय जंबुद्दीवस्स दीवस्स चउसु वि दिसासु बहियाऽभिमुहीआ ठिच्चा ते चत्तारि बलिपिंडे जमगसमगं बहियाऽभिमुहे पक्खिवेज्जा, पभू णं गोयमा ! ताओ एगमेगे देवे ते चत्तारि बलिपिंडे धरणितलमसंपत्ते खिप्पामेव पडिसाहरित्तए

ते णं गोयमा ! देवा ताए उक्किट्ठाए—जाव—देवगईए एगे देवे पुरच्छाभिमुहे पयाते,
एवं दाहिणाभिमुहे, एवं पच्चत्थाभिमुहे, एवं उत्तराभिमुहे,
एवं उड्ढाभिमुहे, एगे देवे अहोभिमुखे पयाए ।
ते णं काले णं ते णं समए णं वाससहस्साउए दारए पयाए,
तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पहीणा भवंति,
णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति,
तए णं तस्स दारगस्स आउए पहीणे भवति,
णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति,
तए णं तस्स दारगस्स अट्ठिमिंजा पहीणा भवंति,
णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति,
तए णं तस्स दारगस्स आसत्तमे वि कुलवंसे पहीणे भवति,
णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति,
तए णं तस्स दारगस्स नामगोए वि पहीणे भवति,
णो चेव णं ते देवा लोगंतं संपाउणंति,

[२] प्र०—तेसि णं भंते ! देवाणं किं गए बहुए, अगए बहुए ?

उ०—गोयमा ! गए बहुए, नो अगए बहुए,
गयाउ से अगए असंखेज्जइभागे, अगयाउ से गए असंखेज्जगुणे,
लोए णं गोयमा ! एमहालए पण्णत्ते ।

—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १० प्र. १६ पृ० २३१

[११][१] प्र०—भगवन् ! लोक कितना बड़ा है ?

उ०—गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सर्व द्वीप-समुद्रों के मध्य में स्थित है । महर्द्धिक—यावत्—महासुख सम्पन्न छह देव जम्बूद्वीप के मध्य में रहे हुए मेरु पर्वत पर उसकी चूलिका (चोटी) की चारों ओर से घेर कर खड़े रहें । नीचे चार महत्दिक्कुमारियाँ चार बलिपिंड ग्रहण कर जम्बूद्वीप की चारों दिशाओं में बाह्यमुख खड़ी हों । वे दिक्कुमारियाँ चारों बलिपिंडों को एक साथ बाहर फेंकें । ऐसी दशा में, हे गौतम ! उन देवों में से प्रत्येक देव चारों बलिपिंडों को पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही ग्रहण कर लेता है । इस प्रकार की गति वाले देवों में से एक उत्कृष्ट—यावत्—तीव्र गति से पूर्व में, एक दक्षिण में, एक पश्चिम में, एक उत्तर में, एक ऊर्ध्व दिशा में और एक अधो-दिशा में गया ।

उस समय एक सहस्र वर्ष की आयु वाला एक बालक जन्मा । कालक्रम से उस बालक के माता-पिता का देहावसान हुआ । तब भी वे देवलोक का अन्त (छोर) प्राप्त न कर सके । बालक की आयु क्षीण हुई, फिर भी वे देवलोक का अन्त न पा सके । बालक की अस्थि और मज्जा विनष्ट हो गई, तब भी उन्हें लोक का अन्त न मिला । बालक की सात पीढ़ियों के बाद वह कुल-वंश नष्ट हो गया, फिर भी वे लोक का अन्त प्राप्त करने में असमर्थ रहे । धीरे-धीरे बालक के नाम-गोत्र भी लुप्त हो गये, तब भी उन्हें लोक का अन्त न मिला ।

[२] प्र०—भगवन् ! इस में देवों द्वारा उल्लंघित क्षेत्र अधिक है अथवा अनुल्लंघित क्षेत्र ?

उ०—गौतम ! इसमें उल्लंघित क्षेत्र अधिक है, अनुल्लंघित क्षेत्र कम । अनुल्लंघित क्षेत्र उल्लंघित क्षेत्र का असंख्यातवाँ भाग है और उल्लंघित क्षेत्र अनुल्लंघित क्षेत्र से असंख्यातगुण है । गौतम ! लोक इतना बड़ा है ।

लोक--सान्त और अनन्त

[१२] जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए—जाव—समुप्पज्जित्था—

[१] प्र०—किं सअंते लोए, अणंते लोए ? तस्स वि य णं अयं अट्ठे,

उ०—एवं खलु खंदया ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते, तंजहा—

दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ ।

दव्वओ णं एगे लोए सअंते,

खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं,

असंखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं पण्णत्ते,

अत्थि पुण से अंते,

कालओ णं लोए ण कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ, भविंसु य, भवति य, भविस्सइ य,

धुवे, णियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे,

नत्थि पुण से अंते,

भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा, गंध-रस-फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुअलहुअपज्जवा, अणंता अगरुअलहुअपज्जवा,

नत्थि पुण से अंते ।

सेत्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअंते, खेत्तओ लोए सअंते, कालओ लोए अणंते, भावओ लोए अणंते ।

—विवा. भाग १, श. २, उ. १, पृ० २३५

स्कन्दक ! लोक सान्त है या अनन्त है, इस प्रकार का जो अध्यवसाय तुम्हें उत्पन्न हुआ है, उसका भी अर्थ यह है—

हे स्कन्दक ! लोक चार प्रकार का कहा गया है, यथा—द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक और भावलोक । इनमें से द्रव्यलोक एक और सान्त है । क्षेत्रलोक असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन लम्बा-चौड़ा है । इसकी परिधि असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन की है । यह भी सान्त है । काललोक कभी नहीं था, नहीं है अथवा नहीं होगा, ऐसी बात नहीं है । यह सदैव था, सदैव है और सदैव होगा । यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य है । इसका अन्त नहीं है । भावलोक अनन्त वर्णपर्यायरूप, (अनन्त) गंध-रस-स्पर्शपर्यायरूप, अनन्त संस्थानपर्यायरूप, अनन्त गुरुलघुपर्यायरूप तथा अनन्त अगुरुलघुपर्यायरूप है । इसका भी अन्त नहीं है । इस प्रकार द्रव्य से और क्षेत्र से लोक सान्त है तथा काल से और भाव से लोक अनन्त है ।

लोकस्थिति

[१३] अट्ठविहा लोकट्ठिई पण्णत्ता, तंजहा—

(१) आगासपइट्ठिए वाए, (२) वायपइट्ठिए उदही,
(३) उदहिपइट्ठिया पुढवी, (४) पुढवीपइट्ठिया तसा थावरा पाणा,
(५) अजीवा जीवपइट्ठिया, (६) जीवा कम्मपइट्ठिया,
(७) अजीवा जीवसंगहिया (८) जीवा कम्मसंगहिया ।

—ठा. अ. ३, उ. २, सू. १६३, पृ० १२६
—ठा. अ. ४, उ. २, सू. २८६, पृ० २०२
—ठा. अ. ६, सू. ४९८, पृ० ३४०
—ठा. अ. ८, सू. ६००, पृ० ४००
—विवा. भाग १, श. १, उ. ६, प्र. २२४, पृ० १६९-७०

लोकस्थिति आठ प्रकार की कही गई है, यथा—(१) आकाशप्रतिष्ठित वायु (२) वायुप्रतिष्ठित उदधि (३) उदधिप्रतिष्ठित पृथ्वी (४) पृथ्वीप्रतिष्ठित त्रस-स्थावर प्राणी (५) जीवप्रतिष्ठित अजीव (६) कर्मप्रतिष्ठित जीव (७) जीवसंगृहीत अजीव (८) कर्मसंगृहीत जीव ।

[१४][१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-अट्ठविहा-जाव-जीवा कम्मसंगहिया ?

उ०—गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे वत्थिमाडोवेइ,
वत्थिमाडोवेत्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधइत्ता मज्झेणं गंठिं बंधइ,
बन्धइत्ता उवरिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता उवरिल्लं देसं वामेइ,
उवरिल्लं देसं वामेत्ता उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेई,
पूरित्ता उप्पिं सितं बंधइ, बंधित्ता मज्झिमगंठिं मुयइ,
इत्ता से णूणं गोयमा ! से आउयाये वाययायस्स उप्पिं उवरिमतले चिट्ठइ ?
हंता चिट्ठइ ।
से तेणट्ठेणं—जाव-जीवा कम्मसंगहिया ।
से जहा वा केइ पुरिसे वत्थिं आडोवेइ,
आडोवेत्ता कडीए बंधइ, बंधइत्ता अत्थाह-मतार-मपोरसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा,
से णूणं गोयमा ! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठइ ?
हंता चिट्ठइ ।
एवं वा अट्ठविहा लोयट्ठिई पण्णत्ता—जाव—जीवा कम्मसंगहिया ।

प्र०—भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया है कि लोकस्थिति आठ प्रकार की है, इत्यादि ?

उ०—गौतम ! जैसे कोई पुरुष हवा से चर्म-मसक को फुला कर उसका मुख बंद कर दे एवं मध्य में गांठ बांध कर मसक का मुख खोल दे । हवा निकल जाने पर ऊपर के भाग में पानी भर दे । तदनन्तर मसक का मुख बांध कर मध्य की गांठ खोल दे । परिणाम यह होगा कि वह भरा हुआ पानी हवा के ऊपरी भाग में ही रहेगा । इसी कारण, गौतम ! लोकस्थिति आठ प्रकार की कही गई है ।

अथवा कोई पुरुष चर्म-मसक को हवा से फुलाकर अपने कटिप्रदेश में बांधे एवं अथाह, अतार तथा पुरुष-प्रमाण से अधिक गहरे पानी में उतरे । ऐसी स्थिति में वह पुरुष पानी में न डूबता हुआ उसके ऊपरी भाग पर ही तैरता रहेगा । इसी दृष्टि से लोकस्थिति आठ प्रकार की कही गई है ।

[१५] दसविहा लोगट्ठिई पण्णत्ता तंजहा—

१—अण्णं जीवा उद्दाइत्ता २ तत्थेव २ भुज्जो-भुज्जो पच्चायंति, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,
२—अण्णं जीवाणं सया समियं पावे कम्मे कज्जइ, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,
३—अण्णं जीवा सया समियं मोहणिज्जे पावे कम्मे कज्जइ, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,
४—ण एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जं जीवा अजीवा भविस्संति, अजीवा वा जीवा भविस्संति, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,
५—ण एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जं तसा पाणा वोच्छिज्जिसंति, थावरा पाणा वोच्छिज्जिसंति, तसा पाणा भविस्संति वा, एवं पि एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,
६—ण एवं भूयं वा३ जं लोगे अलोगे भविस्सइ, अलोगे वा लोगे भविस्सइ, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,
७—ण एवं भूयं वा३ जं लोए अलोए पविस्सइ, अलोए वा लोए पविस्सइ, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,
८—जाव ताव लोगे ताव ताव जीवा, जाव ताव जीवा ताव ताव लोगे,
९—जाव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गइपरियाए ताव ताव लोए, जाव ताव लोए ताव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गइपरियाए, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता,

१०–सव्वेसु वि णं लोगंतेसु अबद्धपासपुट्ठा पोग्गला लुक्खत्ताए कज्जंति जेणं जीवा य पोग्गला य नो संचायंति बहिया लोगंता गमणयाए, एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता ।

—ठा० अ० १० सू० ७०४ पृ० ४४६

लोकस्थिति दस प्रकार की कही गई है, यथा—

१–जीवों का मर कर पुनः पुनः वहीं उत्पन्न होना ।

२–जीवों का सदैव पापकर्म करते रहना ।

३–जीवों का सदैव मोहनीय पापकर्म करते रहना ।

४–तीनों कालों में से किसी भी काल में जीवों का अजीव न होना और अजीवों का जीव न होना ।

५–तीनों कालों में से किसी भी काल में त्रस अथवा स्थावर जीवों का उच्छेद न होना ।

६–तीनों कालों में से किसी भी काल में लोक का अलोक के रूप में और अलोक का लोक के रूप में परिणत न होना ।

७–तीनों कालों में से किसी भी काल में लोक का अलोक में और अलोक का लोक में प्रवेश न होना ।

८–जब तक लोक है तब तक जीव हैं और जब तक जीव हैं तब तक लोक है ।

९–जब तक जीवों तथा पुद्गलों का गतिपर्याय है तब तक लोक है और जब तक लोक है तब तक जीवों का गतिपर्याय है ।

१०–समस्त लोकान्तों में अबद्ध-पार्श्व स्पृष्ट पुद्गल रूक्षता को प्राप्त होते हैं, जिससे जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर जाने में समर्थ नहीं होते ।

लोक का आयाममध्य

[१६][१] प्र०—कहिं णं भंते ! लोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवासंतरस्स असंखेज्जतिभागं ओगाहेत्ता एत्थ णं लोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ।

प्र०—भगवन् ! लोक का आयाममध्य (लम्बाई का बीच का भाग) कहां है ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अवकाशान्तर का असंख्यातवां भाग उल्लंघन करने पर लोक का आयाममध्य है ।

लोक का सम भाग

[१७][१] प्र०—कहिं णं भंते ! लोए बहुसमे ?

कहिं णं भंते ! लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्लेसु खुड्डागपयरेसु एत्थ णं लोए बहुसमे, एत्थ णं लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते ।

प्र०—भगवन् ! लोक का समभाग कहां है ?

भगवन् ! लोक का सबसे संक्षिप्त (छोटा) भाग कहां है ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी पर नीचे के छोटे प्रतरों में लोक का समभाग है । यहीं लोक का सबसे छोटा भाग है ।

लोक का वक्र भाग

[१८][१] प्र०—कहिं णं भंते ! विग्गहविग्गहिए लोए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! विग्गहकंडए एत्थ णं विग्गहविग्गहिए लोए पण्णत्ते ।

प्र०—भगवन् ! लोक वक्रतायुक्त कहां है ?

उ०—गौतम ! जहां विग्रह कंडक[1] (वक्रतायुक्त अवयव) है वहीं लोक वक्रतायुक्त है ।

---

१. लोकरूप शरीर का ग्रैवेयक लोक रूप कोहनी का भाग है । वहां प्रदेशों की हानि-वृद्धि होने से वक्र अवयव है ।

लोक के साथ स्पर्श

[१६][१] प्र०—लोगे णं भंते ! किणा फुडे, कइहिं वा काएहिं फुडे, किं धम्मत्थिकाएणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स पदेसेहिं फुडे, एवं अधम्मत्थिकाएणं, एएणं भेदेणं—जाव—पुढविकाएणं फुडे—जाव—तसकाएणं, अद्धासमएणं फुडे ?

उ०—गोयमा ! धम्मत्थिकाएणं फुडे, नो धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स पदेसेहिं फुडे, एवं अधम्मत्थिकाएण वि, नो आगासत्थिकाएणं फुडे, आगासत्थिकायस्स देसेणं फुडे, आगासत्थिकायस्स पदेसेहिं—जाव—वणस्सइकाएणं फुडे, तसकाएणं सिय फुडे, अद्धासमएणं देसे णो फुडे ।

—पण्ण० १५ इंद्रियपद, सू. १६८

प्र०—भगवन् ! लोक किससे स्पृष्ट है ? क्या धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है ? धर्मास्तिकाय के (एक) देश से स्पृष्ट है ? धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है ? इसी प्रकार क्या अधर्मास्तिकाय से, इन्हीं भेदों से—यावत्—पृथ्वीकाय, त्रसकाय, अद्धासमय आदि से स्पृष्ट है ?

उ०—गौतम ! (लोक) धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है । धर्मास्तिकाय के (एक) देश से स्पृष्ट नहीं है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय से भी जानना चाहिए । आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है । आकाशास्तिकाय के (एक) देश से स्पृष्ट है । आकाशास्तिकाय के प्रदेशों से—यावत्—वनस्पतिकाय से स्पृष्ट है । त्रसकाय से कथंचित् स्पृष्ट है । अद्धासमय से देशतः स्पृष्ट नहीं है ।

[२०] चउहिं अत्थिकाएहिं लोगे फुडे पण्णत्ते तंजहा—
धम्मत्थिकाएणं, अधम्मत्थिकाएणं, जीवत्थिकाएणं, पुग्गलत्थिकाएणं,
चउहिं बादरकाएहिं उववज्जमाणेहिं लोगे फुडे पण्णत्ते तंजहा—
पुढविकाइएहिं, आउ० वाउ० वणस्सइकाइएहिं

—ठा. अ. ४ उ. ३ सू. ३३३ पृ० २३६

चार अस्तिकायों से लोक स्पृष्ट है, यथा—
धर्मास्तिकाय से, अधर्मास्तिकाय से, जीवास्तिकाय से और पुद्गलास्तिकाय से
लोक चार उत्पद्यमान बादर कायों से स्पृष्ट है, यथा—
पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ।

[२१][१] प्र०—लोयंते भंते ! अलोयंतं फुसइ, अलोयंते वि लोयंतं फुसइ ?
उ०—हंता गोयमा ! लोयंते अलोयंतं फुसइ, अलोयंते वि लोयंतं फुसइ ।
[२] प्र०—ते भंते ! किं पुट्ठं फुसइ, अपुट्ठं फुसइ ?
उ०—जाव णियमा छद्दिसिं फुसइ ।

—विवा० भाग १ श. १ उ. ६ प्र. २०२-३ पृ०१६३-६४

[२२][१] प्र०—अहोलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसति ?
उ०—गोयमा ! सातिरेगं अद्धं फुसति ।
[२] प्र०—तिरियलोए णं भंते ! पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! असंखेज्जइभागं फुसइ ।
[३] प्र०—उड्ढलोए णं भंते ! पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! देसूणं अद्धं फुसइ ।

—विवा. भाग १ श. २ उ० १० प्र. ७०-७२ पृ. ३१३

प्र०—भगवन् ! क्या लोकान्त-लोक का अन्तिम भाग-अलोकान्त को स्पर्श करता है ? क्या अलोकान्त लोकान्त को स्पर्श करता है ?

उ०—हां गौतम ! लोकान्त अलोकान्त को स्पर्श करता है और अलोकान्त लोकान्त को स्पर्श करता है ॥

प्र०—भगवन् ! वे क्या स्पृष्ट होकर स्पर्श करते हैं अथवा अस्पृष्ट होकर ?
उ०—वे—यावत्-नियमतः चारों दिशाओं में स्पृष्ट हैं ।
प्र०—भगवन् ! अधोलोक धर्मास्तिकाय का कितना भाग स्पर्श करता है ?
उ०—गौतम ! (अधोलोक धर्मास्तिकाय का) आधे से अधिक भाग स्पर्श करता है ।
प्र०—भगवन् ! तिर्यक् लोक के विषय में बताइये ?
उ०—गौतम ! (तिर्यक् लोक धर्मास्तिकाय का) असंख्यातवां भाग स्पर्श करता है ।
प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोक के सम्बन्ध में भी बताइये ?
उ०—गौतम ! (ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकाय का) किंचित् न्यून अर्धभाग स्पर्श करता है ।

लोक-परिज्ञान

[२३] आयतचक्खू लोगविपस्सी
लोगस्स अहोभागं जाणइ,
,, उड्ढं भागं जाणइ,
,, तिरियभागं जाणइ,

—आचा. श्रु. १ अ. २ उ. ५

विशालदृष्टि लोकदर्शी लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्वभाग को जानता है, तिर्छे भाग को जानता है ।

[२४] लोयं अयोणित्तिह केवलेणं, कहंति जे धम्ममजाणमाणा ।
णासंति अप्पाण परं व णट्ठा संसार घोरम्मि अणोरपारे ।।
लोयं विजाणंतिह केवलेणं, पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता ।
धम्मं समत्तं च कहंति जे उ, तारंति अप्पाण परं च तिन्ना ।।

—सूत्र, श्रु. २ अ. ६ उ. २ गा. ४६-५०

जो अज्ञानी केवल ज्ञान से लोक को न जान कर धर्म का निरूपण करते हैं वे अपना और दूसरे का भी नाश करते हैं । वे अपार एवं घोर संसार में भ्रमण करते हैं ।

जो समाधिमान् पुरुष पूर्ण केवल ज्ञान द्वारा लोक को जानते हैं और फिर धर्म का कथन करते हैं, वे तीर्ण पुरुष स्व-पर को तारते हैं ।

[२५] अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गंति वा पुणो ।
सासयमसासए वा, इइ दिट्ठि न धारए ।।
एएहि दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जइ ।
एएहि दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ।।

—सूत्र. श्रु. २ अ. ५ उ. २ गाथा २-३

(लोक को) अनादि और अनन्त जान कर वह एकान्त शाश्वत (नित्य) है या एकान्त अशाश्वत (अनित्य) है, ऐसी दृष्टि धारण न करे ।

इन दोनों (एकान्त) स्थानों से व्यवहार नहीं होता । इन दोनों स्थानों (को स्वीकार करने) से अनाचार जानना चाहिये ।

लोक की नित्यता-अनित्यता

[२६] जमालीति समणे भगवं महावीरे जमालिं अणगारं एवं वयासी—सासए लोए जमाली ! जन्न कयावि नासी-जाव-अवट्ठिए, णिच्चे,
असासए लोए जमाली ! जओ ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ,
उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ ।

—विवा. भाग ३ श. ६. उ. ३३ पृ. १८१

'जमालि' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर जमाली अनगार को इस प्रकार कहते हैं—जमालि ! लोक शाश्वत है। लोक कभी नहीं था, नहीं है, नहीं रहेगा, ऐसी बात नहीं है। लोक था, है और रहेगा। यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

जमालि ! लोक अशाश्वत भी है, क्योंकि वह अवसर्पिणी होकर उत्सर्पिणी रूप होता है और उत्सर्पिणी होकर अवसर्पिणीरूप होता है।

[२७] अदुवा वायाओ विप्पउंजंति, तंजहा—
अत्थि लोए, नत्थि लोए,
धुवे लोए, अधुवे लोए,
साइए लोए, अणाइए लोए,
सपज्जवसिए लोए, अपज्जवसिए लोए।

—आचा. श्रु. १ अ. ८ उ. १

अथवा (अन्यतीर्थिक) इस प्रकार वचन कहते हैं, यथा—
लोक (एकान्ततः) है, लोक (एकान्ततः) नहीं है,
लोक ध्रुव (ही) है, लोक अध्रुव (ही) है,
लोक सादि (ही) है, लोक अनादि (ही) है,
लोक सान्त (ही) है, लोक अनन्त (ही) है।

लोक में धर्मास्तिकाय आदि का अवगाहन

[२८] प्र०—अहो लोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवतियं ओगाढे ?

उ०—गोयमा ! सातिरेगं अद्धं ओगाढे।
एवं एएणं अभिलावेणं-जाव-देसूणं अद्धं ओगाढे।

—विवा. भाग ४ श. २० उ० २ प्र. ३ पृ. १७

प्र०—भगवन्! अधोलोक में धर्मास्तिकाय का कितना भाग अवगाढ़ है ?

उ०—गौतम! आधे से कुछ अधिक भाग अवगाढ़ है। इसी प्रकार तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक के विषय में भी (स्पर्शन की भांति ही) यथावत् समझना चाहिये।

लोक-रचना संबंधी विभिन्न मान्यताएँ

[२९] इणमन्नं तु अन्नाणं, इहमेगेसिमाहियं।
देवउत्ते अयं लोए, बंभउत्तेत्ति आवरे॥
ईसरेण कडे लोए, पहाणाइ तहाऽवरे।
जीवाजीवसमाउत्ते सुहदुक्खसमन्निए॥
सयंभुणा कडे लोए, इति वुत्तं महेसिणा।
मारेण संथुया माया, तेण लोए असासए॥
माहणा समणा एगे, आह अंडकडे जगे।
असो तत्तमकासी अ, अयाणंता मुसं वदे॥
सएहिं परियायेहिं, लोयं बूया कडेत्ति य।
तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणासी कयाइ वि॥

—सूत्र. श्रु. १ अ. १ उ. ३ गाथा ५-९.

एक अज्ञान यह भी है—कोई कहते हैं कि यह लोक किसी देवता द्वारा बनाया गया है। दूसरे कहते हैं कि यह लोक ब्रह्मा का बनाया हुआ है,

कोई (ईश्वरकर्तृत्व वादी) कहते हैं कि जीव और अजीव से तथा सुख और दुःख से युक्त यह लोक ईश्वरकृत है। तथा दूसरे (सांख्यवादी) कहते हैं कि यह प्रधान (प्रकृति) आदि के द्वारा कृत है।

कोई कहते हैं कि हमारे महर्षि ने कहा है—इस लोक को स्वयंभू (विष्णु आदि) ने बनाया है। यमराज ने माया की रचना की है, अतः यह लोक अनित्य है।

कोई ब्राह्मण तथा श्रमण कहते हैं कि यह जगत् अण्डे से बना है तथा ब्रह्मा ने तत्त्व की रचना की है। ये लोक अज्ञानवश इस प्रकार मिथ्याभाषण करते हैं।

उल्लिखित वादी अपने-अपने अभिप्राय (युक्तिविशेष) से लोक को कृत-बना हुआ बतलाते हैं। वे वस्तु-स्वरूप को नहीं जानते। वस्तुतः यह जगत् कभी विनष्ट नहीं होता।

लोक में अनन्त और शाश्वत

[३०][१] **के अणंता लोए ?**
जीवच्चेव, अजीवच्चेव।

[२] **के सासया लोए ?**
जीवच्चेव, अजीवच्चेव।

—ठाणा, अ. २ उ. ४ सूत्र १०३ पृ. ६०

प्र०—लोक में अनन्त क्या है ?
उ०—लोक में जीव अनन्त हैं, अजीव अनन्त हैं।
प्र०—लोक में शाश्वत क्या हैं ?
उ०—लोक में जीव और अजीव शाश्वत हैं।

लोक में द्विरूपता

[३१] **जवत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं, तंजहा—**
जीवच्चेव, अजीवच्चेव।
तसे चेव, थावरे चेव,
सजोणियच्चेव, अजोणियच्चेव,
साउयच्चेव, अणाउयच्चेव,
सइंदियच्चेव, अणिंदियच्चेव,
सवेयगा चेव, अवेयगा चेव,
सरूवि चेव, अरूवि चेव,
सपोग्गला चेव, अपोग्गला चेव,
संसारसमावन्नगा चेव, असंसारसमावन्नगा चेव,
सासया चेव, असासया चेव।

—ठाणा, अ. २ सूत्र ५७ पृ. ३५

[३२] **आगासा चेव, नोआगासा चेव,**
धम्मे चेव, अधम्मे चेव।

—ठाणा, अ. २ सूत्र ५८ पृ. ३६

[३३] **बंधे चेव, मोक्खे चेव,**
पुन्ने चेव, पावे चेव,
आसवे चेव, संवरे चेव,
वेयणा चेव, निज्जरा चेव।

—ठाणा. अ. २ सूत्र, ५९ पृ. ३६

लोक में जो कुछ है वह सब दो प्रकार का है, जैसे—जीव और अजीव, त्रस और स्थावर, सयोनिक और अयोनिक, सायुष्क और अनायुष्क, सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय, सवेदक और अवेदक, रूपी और अरूपी, सपुद्गल और अपुद्गल, संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक, शाश्वत और अशाश्वत। आकाश और नोआकाश, धर्म और अधर्म, बन्ध और मोक्ष, पुण्य और पाप, आस्रव और संवर, वेदना और निर्जरा।

लोक में जीव-अजीव

[३४][१] प्र०—लोगागासे णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवपएसा,
अजीवा, अजीवदेसा, अजीवप्पएसा ?

उ०—गोयमा ! जीवा वि, जीवदेसा वि, जीवप्पएसा वि,
अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवप्पएसा वि,
जे जीवा ते नियमा एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अणिंदिया।
जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा—जाव—अणिंदियदेसा,
जे जीवपएसा ते नियमा एगिंदियपएसा—जाव—अणिंदियपएसा।
जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—
रूवी य, अरूवी य,
रूवी ते चउव्विहा पण्णत्ता तंजहा—
खंधा १, खंधदेसा २, खंधपएसा ३, परमाणुपोग्गला ४,
जे अरूवी ते पंचविहा पण्णत्ता तंजहा—
धम्मत्थिकाए—नोधम्मत्थिकायस्स देसे १, धम्मत्थिकायस्स पएसा २, अधम्मत्थिकाए—नो-धम्मत्थिकायस्स देसे ३, अधम्मत्थिकायस्स पएसा ४, अद्धासमए ५।

—विवा. भाग ३ श. २ उ. १० प्र. ६६ पृ० ३१०

प्र०—भगवन् ! लोक में क्या जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश तथा अजीवप्रदेश हैं ?

उ०—गौतम ! (लोकाकाश में) जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश तथा अजीवप्रदेश हैं। वहां जो जीव हैं वे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय—सिद्ध हैं। जो जीवदेश और जीवप्रदेश हैं, वे भी नियमतः इन्हीं के हैं।

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के हैं—रूपी और अरूपी। रूपी चार प्रकार के हैं—स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणुपुद्गल। अरूपी पांच प्रकार के हैं—(१) धर्मास्तिकाय—नोधर्मास्तिकायदेश (२) धर्मास्तिकायप्रदेश (३) अधर्मास्तिकाय—नोअधर्मास्तिकायदेश (४) अधर्मास्तिकायप्रदेश और (४) अद्धासमय।

[३५][१] प्र०—लोए णं भंते ! किं जीवा० ?
उ०—एवं चेव—
नवरं अरूवी सत्तविहा,
धम्मत्थिकाए—जाव—अधम्मत्थिकायस्स पएसा,
नोआगासत्थिकाए, आगासत्थिकायस्स देसे ५,
आगासत्थिकायपएसा ६,
अद्धासमए ७, सेसं तं चेव।

[२] प्र०—अहेलोगखेत्तलोए णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवपएसा ?
उ०—एवं जहा लोए—जाव—अद्धासमए।

[३] प्र०—तिरियलोए णं भंते ! किं जीवा० ?

उ०—एवं चेव । एवं उड्ढलोए वि,
नवरं अरूवी छव्विहा, अद्धासमओ नत्थि ।

—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १० प्र. १३, ११, १२ पृ० २२६

प्र०—भगवन् ! लोक में क्या जीव, जीवदेश आदि हैं ?

उ०—इस प्रकार जैसा लोकाकाश के विषय में कहा गया है वैसा ही यहाँ भी जानना चाहिए । विशेष यह है कि लोक में सात प्रकार के अरूपी (अजीव) हैं—१–धर्मास्तिकाय, २–धर्मास्तिकाय–प्रदेश, ३–अधर्मास्तिकाय, ४–अधर्मास्तिकायप्रदेश, ५–नोआकाशास्तिकाय–आकाशास्तिकायदेश, ६–आकाशास्तिकायप्रदेश, ७–अद्धासमय ।

प्र०—भगवन् ! अधोलोक–क्षेत्रलोक में क्या जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश आदि हैं ?

उ०—(उत्तर) लोक के समान ही समझना चाहिए ।

प्र०—भगवन् ! तिर्यक्लोक–क्षेत्रलोक में क्या जीव आदि हैं ?

उ०—इसका उत्तर भी लोक के समान ही समझना चाहिए । ऊर्ध्वलोक–क्षेत्रलोक के संबंध में भी यही बात जानना चाहिए । अन्तर केवल इतना ही है कि ऊर्ध्वलोक में छह प्रकार के अरूपी (अजीव) हैं । वहां अद्धासमय नहीं है ।

अधोलोक के एक प्रदेश में जीवाजीव

[३६][१] प्र०—अहेलोगखेत्तलोगस्स णं भंते ! एगंमि आगासपएसे किं जीवा, जीवदेसा, जीवपएसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपएसा ?

उ०—गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपएसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपएसा वि,
जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा,
अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसे,
अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा,
एवं मज्झिल्लविरहिओ-जाव-अणिंदिएसु,
जाव-अहवा एगिंदियदेसा य अणिंदियदेसा य,
जे जीवपएसा ते नियमा एगिंदियपएसा,
अहवा एगिंदियपएसा य बेइंदियस्स पएसा,
अहवा एगिंदियपएसा य बेइंदियाण य पएसा,
एवं आइल्लविरहिओ-जाव-पंचिंदिएसु ।
अणिंदिएसु तियभंगो ।
जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
रूवी अजीवा य, अरूवी अजीवा य, रूवी तहेव ।
जे अरूवी अजीवा ते पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—
नो धम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पएसे,
एवं अहम्मत्थिकायस्स वि, अद्धासमए ।

प्र०—अधोलोक क्षेत्र लोक के एक आकाश-प्रदेश में क्या जीव हैं जीवदेश हैं, जीवप्रदेश हैं ? अजीव हैं, अजीवदेश हैं, अजीवप्रदेश हैं ?

उ०—गौतम ! (अधोलोक क्षेत्र लोक के एक प्रदेश में) जीव नहीं हैं, किन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव अजीवदेश तथा अजीवप्रदेश हैं । जो जीवदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं, अथवा

एकेन्द्रिय जीवों के (अनेक) देश और द्वीन्द्रिय जीव का (एक) देश है, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के देश और द्वीन्द्रिय जीवों के देश हैं।

इस प्रकार मध्यम भंग को छोड़कर शेष भंग अनिन्द्रिय जीव (सिद्ध) पर्यन्त जानने चाहिये। वहां जो जीवप्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के और द्वीन्द्रिय जीव के प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के और द्वीन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं।

इस प्रकार-यावत्-पंचेन्द्रिय व अनिन्द्रिय के सम्बन्ध में प्रथम भंग को छोड़कर शेष तीन भंग जानने चाहिये।

वहां जो अजीव हैं वे दो प्रकार के हैं—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीव पूर्वोक्त प्रकार से जानने चाहिये। अरूपी अजीव पांच प्रकार के हैं—(१) नोधर्मास्तिकाय-धर्मास्तिकाय-देश (२) धर्मास्तिकायप्रदेश (३) नोअधर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय देश (४) अधर्मास्तिकाय-प्रदेश (५) अद्धासमय।

तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक के एक प्रदेश में जीवाजीव

[२] प्र०—तिरियलोगखेत्तलोगस्स णं भंते ! एगंमि आगासपएसे किं जीवा० ?

उ०—एवं जहा अहोलोगखेत्तलोगस्स तहेव। एवं उड्ढलोगखेत्तलोगस्स वि, नवरं अद्धासमओ नत्थि।

अरूवी चउव्विहा,

लोगस्स जहा अहेलोगखेत्तलोगस्स एगंमि आगासपएसे।

—विवा, भाग ३ श. ११, उ. १० प्र, १५-१७ पृ, २३०

प्र०—भगवन्! तिर्यक्लोक-क्षेत्रलोक के एक आकाश-प्रदेश में क्या जीव आदि हैं ?

उ०—इस विषय में अधोलोक क्षेत्रलोक की भांति समझना चाहिये। यही बात ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक के सम्बन्ध में भी जाननी चाहिये। विशेष यह है कि ऊर्ध्वलोक-क्षेत्रलोक के एक आकाशप्रदेश में अद्धासमय नहीं है, अतः वहां चार प्रकार के अरूपी अजीव हैं। लोक (के एक प्रदेश) के विषय में वैसा ही जानना चाहिये जैसा अधोलोक-क्षेत्रलोक के एक प्रदेश में कहा गया है।

लोक के एक प्रदेश में अनाबाध अवगाहन

[३७][१] प्र०—लोगस्स णं भंते ! एगंमि आगासपएसे एगिंदियपएसा—जाव—पंचिंदियपएसा अणिंदियपएसा अन्नमन्नबद्धा,

अन्नमन्नपुट्ठा—जाव—अन्नमन्नसमभरघडत्ताए चिट्ठंति,

अत्थि णं भंते ! अन्नमन्नस्स किंचि आबाहं वाबाहं वा उप्पायंति,

छविच्छेदं वा करेंति ?

उ०—णो इणट्ठे समट्ठे।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—लोगस्स णं एगंमि आगासपएसे जे एगिंदियपएसा—जाव—चिट्ठंति, नत्थि णं भंते ! अन्नमन्नस्स किंचि आबाहं वा—जाव—करेंति ?

उ०—गोयमा ! से जहानामए नट्टिया सिया

सिंगारागारचारुवेसा—जाव—कलिया रंगट्ठाणंमि जणयाउलंमि जणसयसहस्साउलंमि बत्तीसइ-बिहस्स नट्टस्स अन्नयरं नट्टविहिं उवदंसेज्जा,

से नूणं गोयमा ! ते पेच्छगा तं नट्टियं अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वओ समंता समभिलोएंति,

ताओ णं गोयमा ! दिट्ठीओ तंसि नट्टियंसि सव्वओ समंता संनिपडियाओ ?

हंता सन्निपडियाओ।

अत्थि णं गोयमा ! ताओ दिट्ठीओ तीसे नट्टियाए किंचि वि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएंति, छविच्छेदं वा करेंति ? णो इणट्ठे समट्ठे।

[३] अहवा सा नट्टिया तासिं विट्ठीणं किंचि आबाहं वा उप्पाएति,
छविच्छेदं वा करेइ ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।

[४] ताओ वा विट्ठीओ अन्नमन्नाए विट्ठीए किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएंति,
छविच्छेदं वा करेंति ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-तं चेव-जाव-छविच्छेदं वा करेंति ।

प्र०—भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के तथा अनिन्द्रिय (जीवों) के जो अन्योन्य स्पृष्ट यावत् अन्योन्य सम्बद्ध आत्मप्रदेश हैं, वे क्या एक-दूसरे को किसी प्रकार की बाधा अथवा व्याबाधा (विशिष्ट बाधा) उपन्न करते हैं अथवा किसी का छविच्छेद करते हैं ?

उ०—नहीं, ऐसी बात नहीं है ।

प्र०—भगवन् ! ऐसा क्यों ?

उ०—गौतम ! जिस प्रकार कोई शृंगार युक्त चारु वेष वाली—यावत्—मधुर कंठ वाली नर्त्तकी सहस्रों व्यक्तियों से परिपूर्ण रंगस्थली में बत्तीस प्रकार के नाट्यों में से किसी एक नाट्य को दिखलाती है तो दर्शकगण उस नर्त्तकी को निर्निमेष दृष्टि से चारों ओर से देखते हैं । इस प्रकार उनकी दृष्टियां नर्त्तकी पर चारों ओर से गिरती हैं । इससे, गौतम ! क्या उस नर्त्तकी को बाधा या व्याबाधा उत्पन्न होती है ? अथवा उसके किसी अवयव का छेद होता है ?
नहीं होता ।
अथवा वह नर्त्तकी उन दर्शकों की दृष्टियों को कोई बाधा या व्याबाधा पहुँचाती है ? अथवा किसी प्रकार का छविच्छेद करती है ?
नहीं करती ।
इसी प्रकार हे गौतम ! जीवों के आत्मप्रदेश परस्पर स्पृष्ट होते हुए भी किसी प्रकार की बाधा या व्याबाधा उपन्न नहीं करते और न किसी प्रकार का छविच्छेद ही उपन्न करते हैं ।

[३८][१] प्र०—एयस्स णं भंते ! अहोलोगस्स तिरियलोयस्स उड्ढलोगस्स य कयरे कयरेहिंतो—जाव—विसेसाहिया वा ?

उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवे तिरियलोए,
उड्ढलोए असंखेज्जगुणे,
अहेलोए विसेसाहिए,
सेवं भंते ! सेवं भंतेत्ति ।

प्र०—भगवन् ! अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक में से कौन किससे छोटा—यावत्—कौन—विशेषाधिक है ?

उ०—गौतम ! तिर्यक्लोक सब से छोटा है, ऊर्ध्वलोक उससे असंख्येयगुण तथा अधोलोक उससे विशेषाधिक है ।
भगवन् ! ऐसा ही है, भगवन् ! ऐसा ही है ।

[३९][१] प्र०—लोगस्स णं भंते ! एगंमि आगासपएसे जहण्णपए जीवपएसाणं उक्कोसपए जीवपएसाणं सव्वजीवाण य कयरे कयरेहिंतो—जाव-विसेसाहिया वा ?

उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवा लोगस्स एगंमि आगासपएसे जहण्णपए जीवपएसा, सव्वजीवा असंखेज्जगुणा, उक्कोसपए जीवपएसा विसेसाहिया ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १० प्र. २१ पृ. २३२

प्र०—भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश में जघन्यपदस्थित जीवप्रदेश, उत्कृष्टपदस्थित जीवप्रदेश तथा सर्वजीव–इन तीनों में कौन सब से अल्प है—यावत्–कौन विशेषाधिक है ?

उ०—गौतम ! लोक के एक आकाशप्रदेश में जघन्यपदस्थित जीवप्रदेश सब से अल्प हैं, सर्वजीव उनसे असंख्येयगुण हैं, तथा उत्कृष्ट पदस्थित जीवप्रदेश उनसे विशेषाधिक हैं ।

पांच बादर

[४०] **अहे लोए णं पंच बायरा पण्णत्ता तंजहा—**
पुढविकाइया, आउ० वाउ० वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा ।
उड्ढलोगे णं पंच बायरा—एए चेव,
तिरियलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता—तंजहा—
एगिंदिया—जाव—पंचिंदिया ।

—ठा. अ. ५ उ. ३ सूत्र ४४४ पृ० ३१८

अधोलोक में पांच बादरकाय होते हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और उदार-औदारिक त्रस प्राणी ।

ऊर्ध्वलोक में भी यही पांच बादर होते हैं ।

तिर्यक्लोक में पांच बादर होते हैं, यथा—एकेन्द्रिय—यावत्—पंचेन्द्रिय ।

पांच अनुत्तर

[४१] **अहे लोगे णं पंच अणुत्तरा महइमहालगा महाणिरया पण्णत्ता, तंजहा—**
काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अप्पइट्ठाणे ।
उड्ढलोगे णं पंच अणुत्तरा महाविमाणा पण्णत्ता तंजहा—
विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए, सव्वट्ठसिद्धे ।

—ठा. अ. ५ उ. ३ सूत्र ४५१, पृ० ३२४

अधोलोक में पांच प्रधान व सब से बड़े नारकावास हैं, यथा—काल, महाकाल, रोरुय, महारोरुय और अप्रतिष्ठान ।

ऊर्ध्वलोक में पांच प्रधान व सब से बड़े विमान हैं, यथा—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध ।

चार द्विशरीरी

[४२] **उड्ढलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तंजहा—**
पुढविकाइया, आउ—वणस्सइ काइया, उराला तसा पाणा ।
अहोलोगं णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता तंजहा—
एवं चेव, एवं तिरियलोए वि ४ ।

—ठा. अ. ४ उ. ३ सूत्र ३२९ पृ० २३८

ऊर्ध्वलोक में चार [1]द्विशरीरी होते हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक और औदारिक त्रसकायिक ।

अधोलोक और तिर्यक्लोक में भी यही चार द्विशरीरी होते हैं ।

---

१. वर्त्तमान भव के शरीर के पश्चात् दूसरा मनुष्यशरीर ग्रहण करके सिद्ध हो जाने वाले ।

लोक के चरमान्त में जीव-अजीव

[४३][१] प्र०—लोयस्स णं भंते ! पुरच्छिमिल्ले चरिमंते किं जीवा, जीवदेसा, जीवपएसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीवपएसा ?

उ०—गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपएसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपएसा वि, जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा य, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसे, एवं जहा दसमसए अग्गेयी दिसा तहेव, नवरं देसेसु अणिंदियाण आइल्लविरहिओ, जे अरूवी अजीवा ते छव्विहा, अद्धासमयो नत्थि । सेसं तं चेव निरवसेसं ।

[२] प्र०—लोगस्स णं भंते ! दाहिणिल्ले चरिमंते किं जीवा० ?

उ०—एवं चेव । एवं पच्चत्थिमिल्ले वि, उत्तरिल्ले वि ।

[३] प्र०—लोगस्स णं भंते ! उवरिल्ले चरिमंते किं जीवा० पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपएसा वि—जाव-अजीवपएसा वि ।
जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा य अणिंदियदेसा य;
अहवा एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य, बेइंदियस्स य देसे;
अहवा एगिंदियदेसा य, अणिंदियदेसा य, बेंदियाण य देसा;
एवं मज्झिल्लविरहिओ—जाव-पंचिंदियाणं ।
जे जीवप्पएसा ते नियमं एगिंदियप्पएसा य, अणिंदियप्पएसा य;
अहवा एगिंदियप्पएसा य, बेंदियस्स पदेसा य;
अहवा एगिंदियपएसा य, अणिंदियपएसा य, बेइंदियाण य पएसा;
एवं आदिल्लविरहिओ—जाव-पंचिंदियाणं ।
अजीवा ते छव्विहा, अद्धासमयो नत्थि, सेसं तं चेव निरवसेसं ।

[४] प्र०—लोगस्स णं भंते ! हेट्ठिल्ले चरिमंते किं जीवा०पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीवपएसा वि—जाव-अजीवप्पएसा वि ।
जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा,
अहवा एगिंदियदेसा य, बेइंदियस्स देसे;
अहवा एगिंदियदेसा य, बेंदियाण य देसा;
एवं मज्झिल्लविरहिओ—जाव-अणिंदियाणं ।
पएसा आइल्लविरहिया सव्वेसिं जहा पुरत्थिमिल्ले चरिमंते तहेव ।
अजीवा जहेव उवरिल्ले चरिमंते तहेव ।

—विवा० भाग ३ श. १६ उ ८, प्र. २-५ पृ० २१-२३

प्र०—भगवन् ! लोक के पूर्वी चरमान्त में क्या जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश तथा अजीवप्रदेश हैं ?

उ०—गौतम ! (लोक के पूर्वी चरमान्त में) जीव नहीं हैं, किन्तु जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीव-देश तथा अजीवप्रदेश हैं । वहां जो भी जीवदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश हैं अथवा

---

१. लोकालोक के एवं लोक के चरमा चरम के अल्पबहुत्व के लिए देखो—पन्न० पद १०

एकेन्द्रिय जीवों के देश एवं द्वीन्द्रिय जीव का देश है। इस सम्बन्ध में दशम शतक में कथित आग्नेयी दिशा का सब वर्णन यहां समझ लेना चाहिये[1]। विशेषता यह है कि अनिन्द्रिय सम्बन्धी देशों के विषय में प्रथम भंग का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तथा वहां के अरूपी अजीव छह प्रकार के ही समझने चाहिये, क्योंकि वहां अद्धासमय नहीं है।

प्र०—भगवन्! लोक के दक्षिणी चरमान्त में क्या जीव आदि हैं?

उ०—पूर्वोक्त प्रकार से ही समझना चाहिये।
पश्चिमी और उत्तरी चरमान्त के विषय में भी यही बात जानना चाहिये।

प्र०—भगवन्! लोक के ऊर्ध्व चरमान्त में क्या जीव आदि हैं?

उ०—गौतम! (लोक के ऊर्ध्व चरमान्त में) जीव नहीं हैं, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश तथा अजीवप्रदेश हैं। वहां जो जीवदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों के देश तथा अनिन्द्रिय जीवों के देश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के देश, अनिन्द्रिय जीवों के देश तथा (मारणान्तिक समुद्घात की स्थिति में) द्वीन्द्रिय जीव का देश है, अथवा एकेन्द्रिय जीवों के देश, अनिन्द्रिय जीवों के देश तथा द्वीन्द्रिय जीवों के देश हैं। इस प्रकार मध्य के भंग को छोड़कर सब भंगों की योजना कर लेनी चाहिये। यही बात पंचेन्द्रिय पर्यन्त जान लेना चाहिये।

वहां जो जीवप्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय-प्रदेश तथा अनिन्द्रिय-प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय प्रदेश तथा (एक) द्वीन्द्रिय के प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय-प्रदेश, अनिन्द्रिय-प्रदेश तथा द्वीन्द्रिय-प्रदेश हैं। इस प्रकार आदिम भंग को छोड़कर सब भंगों की योजना कर लेनी चाहिये। पंचेन्द्रिय पर्यन्त यही बात समझनी चाहिये।

वहां जो अजीव हैं वे छह प्रकार के हैं, क्योंकि वहां अद्धासमय का अभाव है। शेष बातें समान हैं।

प्र०—भगवन्! लोक के अधः चरमान्त में क्या जीव आदि हैं?

उ०—गौतम! (वहां) जीव नहीं हैं। जीवदेश, जीवप्रदेश, यावत्-अजीवप्रदेश हैं। जो जीव-देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रियदेश हैं, अथवा एकेन्द्रियदेश तथा (एक) द्वीन्द्रिय का देश है, अथवा एकेन्द्रिय-देश तथा द्वीन्द्रियदेश हैं। इस प्रकार अनिन्द्रिय पर्यन्त, मध्यम भंग के अतिरिक्त शेष समस्त भंगों की योजना कर लेनी चहिये। प्रदेशों के सम्बन्ध में पूर्व चरमान्त की तरह प्रारम्भ के भंग को छोड़कर शेष भंगों की रचना कर लेनी चाहिये। अजीवों के विषय में ऊर्ध्व चरमान्त की भांति सम्पूर्ण वर्णन समझ लेना चाहिये।

[५] प्र०—**अलोगस्स णं भंते! अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?**

उ०—**गोयमा! सव्वत्थोवे अलोगस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,**
चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं।
पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा अलोगस्स चरिमंतपदेसा,
अचरिमंतपदेसा अणंतगुणा,
चरिमंतपदेसा य अचरिमंतपदेसा य दो वि विसेसाहिया।
दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवे अलोगस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,

---

१. भग० शतक १० उ० १ प्र० ७ पृ० १८६

चरमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,
चरिमंतपदेसा असंखेज्ज
अचरिमंतपदेसा अणंतगुणा,
चरिमंतपदेसा य अचरिमंतपदेसा य दो वि विसेसाहिया ।

—पन्न० पद १० सूत्र ७७९

प्र०—भगवन् ! अलोक के अचरम, चरमों, चरमान्त प्रदेशों और अचरमान्त प्रदशों में, द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा और द्रव्य तथा प्रदेशों (दोनों) की अपेक्षा कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

उ०—गौतम ! सब से कम अलोक का द्रव्य की अपेक्षा एक अचरम है, चरम असंख्यातगुण हैं, अचरम और (बहुत) चरम दोनों विशेषाधिक हैं ।

प्रदेशों की अपेक्षा सब से कम अलोक के चरमान्त प्रदेश हैं, अचरमान्त प्रदेश (उनसे) अनन्तगुण हैं, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश दोनों विशेषाधिक हैं ।

द्रव्य-प्रदेश (दोनों) की अपेक्षा सब से कम अलोक का द्रव्य से एक अचरम है । चरम उससे असंख्यातगुण हैं । अचरम और बहुत चरम (चरिमाणि) दोनों विशेषाधिक हैं । चरमान्त प्रदेश असंख्यातगुण हैं, अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुण हैं, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश—दोनों विशेषाधिक हैं ।

[६] प्र०—लोगालोगस्स णं भंते ! अचरिमस्स य चरिमाण य, चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कतरे कतरेहिन्तो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवे लोगालोगस्स दव्वट्ठयाए एगमेगे अचरिमे,
लोगस्स चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अलोगस्स चरिमाइं विसेसाधियाइं,
लोगस्स य अलोगस्स य अचरिमं चरिमाणि य दो वि विसेसाधियाइं ।
पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा लोगस्स चरिमंतपदेसा,
अलोगस्स चरिमंतपदेसा विसेसाहिया,
लोगस्स अचरिमंतपदेसा असंखेज्जगुणा,
अलोगस्स अचरिमंतपदेसा अणंतगुणा,
लोगस्स य अलोगस्स य चरिमंतपदेसा य अचरिमंतपदेसा य दो वि विसेसाहिया ।
दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवे लोगालोगस्स दव्वट्ठयाए एगमेगे अचरिमे,
लोगस्स चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
अलोगस्स चरिमाइं विसेसाहियाइं
लोगस्स अलोगस्स य अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,
लोगस्स अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
अलोगस्स अचरिमंतपएसा अणंतगुणा,
लोगस्स य अलोगस्स य चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,
सव्वदव्वा विसेसाहिया,
सव्वपएसा अणंतगुणा,
सव्वपज्जवा अणंतगुणा ।

—पन्न० पद १० सूत्र ७८०

प्र०—भगवन् ! लोकालोक के (एक) अचरम, (बहुत) चरम, चरमान्त प्रदेशों और अचरमान्त प्रदेशों में द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा तथा द्रव्य और प्रदेश (दोनों) की अपेक्षा कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

उ०—गौतम ! सब से कम लोकालोक का एक-एक अचरम है। लोक के चरम असंख्यातगुण हैं, अलोक के चरम विशेषाधिक हैं। लोक का और अलोक का अचरम और (बहुत) चरम दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा सब से कम लोक के चरमान्त प्रदेश हैं, अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक हैं। लोक के अचरमान्त प्रदेश असंख्यगुण हैं। अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुण हैं। लोक के और अलोक के चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश दोनों विशेषाधिक हैं।

द्रव्य-प्रदेश (दोनों) की अपेक्षा से, सब से कम लोकालोक के द्रव्य से एक-एक अचरम है। लोक के चरम असंख्यातगुण हैं। अलोक के चरम विशेषाधिक हैं। लोक और अलोक का अचरम और (बहुत) चरम दोनों विशेषाधिक हैं। लोक के अचरमान्त प्रदेश असंख्यातगुण हैं, अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुण हैं। लोक और अलोक के चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश दोनों विशेषाधिक हैं।

सर्व द्रव्य विशेषाधिक हैं, सर्व प्रदेश अनन्तगुण हैं, सर्व पर्याय (उनसे भी) अनन्तगुण हैं।

लोक में समान परिमाण वाले चार स्थान

[४४] **चत्तारि[1] लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसिं पण्णत्ता, तंजहा–**
अप्पइट्ठाणे नरए १, जंबुद्दीवे, दीवे २,
पालए जाणविमाणे ३, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे ४।

लोक में (एक लाख योजन विस्तार वाले) चार स्थान समान, सपक्ष एवं सप्रतिदिक कहे गये हैं—१—अप्रतिष्ठान नामक नरक, २—जंबूद्वीप नामक द्वीप, ३—पालक नामक यान-विमान, ४—सर्वार्थ-सिद्ध नामक महाविमान।

चत्तारि लोगे समा सपक्खिं सपडिदिसं पण्णता, तंजहा—
सीमंतए णं णरए १, समयक्खेत्ते २, उडुविमाणे ३, ईसिपब्भारपुढवी

—ठा० अ. ४ उ. ३ सूत्र ३२८ पृ. २३८
—सम० १,

लोक में (पैंतालीस लाख योजन विस्तृत) चार स्थान समान, सपक्ष एवं सप्रतिदिक् कहे गये हैं—१—सीमान्तक नामक नरक, २—समयक्षेत्र ३—उडुविमान, ४—ईषत्प्राग्भार पृथ्वी।

लोक में अन्धकार-प्रकाश के कारण

[४५] **चउहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तंजहा—**
१–अरिहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, २-अरिहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, ३–पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे, ४–जायतेए वोच्छिज्जमाणे।

—ठा. अ. ३ उ. १ सूत्र १३४ पृ. ११०
—ठा अ. ४ उ. ३ सूत्र ३२४ पृ. २३३

---

१. ठा. अ. ३ उ. १ सू. १४८ पृ. ११९

चार कारणों से लोक में अन्धकार होता है–
१–अर्हन्तों का व्युच्छेद होने से, २–अर्हत्-प्रणीत धर्म का व्युच्छेद होने से, ३–पूर्व शास्त्रों का व्युच्छेद होने से, ४–अग्नि का व्युच्छेद होने से ।

[४६] **अहोलोगे णं चत्तारि अंधयारं करेंति, तंजहा—**
णरगा, णेरइया, पावाइं कम्माइं, असुभा पोग्गला ।

—ठा. अ. ३ उ. १ सूत्र १३४ पृ. ११०
—ठा. अ. ४ उ. ३ सूत्र ३३९ पृ. २५०

अधोलोक में चार पदार्थ अन्धकार करते हैं–
नरक, नारक, पाप कर्म और अशुभ पुद्गल ।

[४७] **चउहिं ठाणेहिं लोउज्जोए सिया, तंजहा–**
१–अरिहंतेहिं जम्मणेहिं, २–अरिहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, ३–अरिहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, ४–अरिहंताणं परिनिव्वाणमहिमासु ।

—ठा. अ. ३ उ. १ सूत्र १३४ पृ. ११०
—ठा. अ. ४ उ. ३ सूत्र ३२४ पृ. २३३

[४८] **तिरियलोगे णं चत्तारि उज्जोयं करेंति, तंजहा–**
चंदा, सूरा, मणी, जोई ।
उड्ढलोगे णं चत्तारि उज्जोयं करेंति तंजहा–
देवा, देवीओ, विमाणा, आभरणा ।

—ठा. अ. ३ उ. १ सूत्र १३४ पृ. ११०
—ठा. अ. ४ उ. ३ सूत्र ३२९ पृ. २५०

चार कारणों से लोक में उद्योत होता है, यथा—
१–अर्हन्तों (तीर्थंकरों) का जन्म होने से, २–अर्हन्तों की प्रव्रज्या होने से, ३–अर्हन्तों को केवल ज्ञान उत्पन्न होने से, ४–अर्हन्तों का परिनिर्वाण होने से ।
मध्यलोक में चार पदार्थ उद्योत करते हैं, यथा—
चन्द्र, सूर्य, मणि और ज्योति ।
ऊर्ध्वलोक में चार पदार्थ उद्योत करते हैं, यथा—
देव, देवियां, विमान और आभरण ।

लोक-अलोक की पूर्वापरता

[४९][१] **प्र०—पुव्विं भंते ! लोए, पच्छा अलोए ?**
पुव्विं अलोए, पच्छा लोए ?
उ०—रोहा ! लोए य, अलोए य, पुव्विं पेते, पच्छा पेते, दो वि एए सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

—विवा. भाग १ श. १ उ. ३ प्र. २१६ पृ० १६७

[५०][१] **प्र०—पुव्विं भंते ! लोयंते, पच्छा अलोयंते ?**
पुव्विं अलोयंते, पच्छा लोयंते ?
उ०—रोहा ! लोयंते य अलोयंते य,—जाव—अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

[२] **प्र०—पुव्विं भंते ! लोयंते, पच्छा सत्तमे उवासंतरे ? पुच्छा ।**
उ०—रोहा ! लोयंते य सत्तमे उवासंतरे, पुव्विं पि दो वि एते,—जाव—अणाणुपुव्वी एसा रोहा !
एवं लोयंते य, सत्तमे य तणुवाए, एवं घणवाए, घणोदही, सत्तमा पुढवी ।
एवं लोयंते एक्केक्केणं संजोएयव्वे इमेहिं ठाणेहिं, तंजहा—
उवास–वाय–घणउदहि–पुढवी–दीवा य सागरा वासा ।

नेरइआई अत्थिय समया कम्माइं लेस्साओ ।।१।।
दिट्ठी दंसण णाणा सण्णा सरीरा य जोग–उवओगे ।
दव्वपएसा पज्जव अद्धा किं पुव्वि लोयंते ।।२।।

[३] प्र०—पुव्वि भंते ! लोयंते, पच्छा सव्वद्धा ?

उ०—जहा लोयंतेणं संजोइआ सव्वे ठाणा एते, एवं अलोयंतेण वि संजोएयव्वा सव्वे ।

—विवा. भा. १ श. १ उ. १ प्र. २१६–२१ पृ० १६८

प्र०—भगवन् ! पहले लोक और फिर अलोक है ? या पहले अलोक और फिर लोक है ?

उ०—रोह ! लोक और अलोक, ये पहले भी हैं और पीछे भी हैं। ये दोनों ही शाश्वत भाव हैं। हे रोह ! इन दोनों में 'यह पहले और यह पीछे' ऐसा क्रम नहीं है।

प्र०—भगवन् ! पहले लोकान्त और पीछे अलोकान्त है या पहले अलोकान्त और पीछे लोकान्त है ?

उ०—रोह ! लोकान्त और अलोकान्त—इन दोनों मे हे रोह ! कोई क्रम नहीं है,

प्र०—भगवन् ! पहले लोकान्त है और पीछे सातवाँ अवकाशान्तर है ? इत्यादि प्रश्न।

उ०—रोह ! लोकान्त और सातवाँ अवकाशान्तर—ये दोनों पहले भी हैं (पीछे भी हैं।) रोह ! इनमें कोई (आगे पीछे का) क्रम नहीं है।

इसी प्रकार लोकान्त, सातवाँ तनुवात, इसी प्रकार घनवात, घनोदधि और सातवीं पृथ्वी, इस तरह एक-एक के साथ लोकान्त निम्न लिखित स्थानों के साथ जोड़ना चाहिये—
अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर, वर्ष-क्षेत्र, नारक आदि जीव, अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्य प्रदेश, पर्यव तथा काल (ये सब पहले हैं और लोकान्त पीछे है ? इत्यादि)।

प्र०—भगवन् ! पहले लोकान्त, पीछे सर्वाद्धा (काल) है ?

उ०—जैसे लोकान्त के साथ इन सब का योग किया है इसी प्रकार अलोकान्त के साथ भी सब का संयोग करना चाहिए।

अधोलोक

अधोलोक के भेद

[१] [१] प्र०—अहोलोयखेत्तलोए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सत्तविहे पण्णत्ते, तंजहा—

रयणप्पभापुढवी-अहेलोयखेत्तलोए-जाव-अहे सत्तमा पुढवी अहोलोयखेत्तलोए ।

—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १० प्र. ३ पृ.

[२] अहेलोए णं सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, सत्त घणोदधीओ पण्णत्ताओ,
सत्त घणवाता, सत्त तणुवाता पण्णत्ता, सत्त उवासंतरा पण्णत्ता,
एतेसु णं सत्तसु उवासंतरेसु सत्त तणुवाता पइट्ठिया,
एतेसु णं सत्तसु घणोदधीसु पिंडलगपिहुणसंठाणसंठिआओ,
सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ तंजहा-पढमा-जाव-सत्तमा ।
एतासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त नामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा—
घम्मा वंसा सेला अंजणा रिट्ठा मघा माघवती,
एतासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त गोत्ता पण्णत्ता तंजहा-
रयणप्पभा सक्करप्पभा वालुयप्पभा पंकप्पभा धूमप्पभा तमा तमतमा[1] ।

—ठा. अ. ७ सूत्र ५४६ पृ. ३६८

—विवा. भा. ३, श. १२, उ ३, प्र. १,२, पृ. २६१

[१][१] प्र०—भगवन् ! अधोलोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ?

उ०—गौतम ! अधोलोक-क्षेत्रलोक सात प्रकार का है, यथा-रत्नप्रभापृथ्वी-अधोलोक-क्षेत्रलोक-यावत्-अधःस्थित सप्तमपृथ्वी-अधोलोक-क्षेत्रलोक ।

[२] अधोलोक में सात पृथ्वियां हैं, सात घनोदधि हैं, सात घनवात हैं, सात तनुवात हैं, सात अवकाशान्तर हैं । इन सात अवकाशान्तरों पर सात तनुवात प्रतिष्ठित हैं । इन सात तनुवातों पर सात घनवात प्रतिष्ठित हैं । इन सात घनवातों पर सात घनोदधि प्रतिष्ठित हैं । इन सात घनोदधियों पर पटलकपृथुसंस्थान (पुष्पपात्र-छाबड़ी के समान विस्तृत आकार) वाली सात पृथिवियां हैं—प्रथम—यावत्—सप्तम ।

इन सात पृथ्वियों के सात नाम हैं—घम्मा, वंसा, सेला, अंजना, अरिष्टा, मघा, माघवती ।

इन सात पृथ्वियों के सात गोत्र हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमःप्रभा ।

---

१. प्र०-पढमा णं भंते ! पुढवी किंनामा, किंगोत्ता पण्णत्ता ?
उ०-गोयमा ! णामेणं घम्मा गोत्तेणं रयणप्पभा ।
प्र०-दोच्चा णं भंते ! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?
उ०-गोयमा ! णामेणं वंसा गोत्तेणं सक्करप्पभा ।
एवं एतेणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा ।

—जीवाभिगम, सूत्र ६७ पृ. ८८

—विवा. भाग ३ श. १२ उ. ३ प्र. १-२ पृ. २६१

आठ पृथ्वियाँ

[३] [१] प्र०—कइ णं भंते ! पुढवीओ पन्नत्ताओ ?
उ०—गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पन्नत्ताओ, तंजहा-रयणप्पभा—जाव-ईसिपब्भारा ।[1]

[२] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहा ति वा, गेहावणा इ वा ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[३] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गामा इ वा,-जाव-सन्निवेसा इ वा ?
उ०—णो इणट्ठे समट्ठे ।

[४] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उराला बलाहया संसेयंति, संमुच्छंति, वासं वासंति ?
उ०—हंता अत्थि, तिन्नि वि पकरेंति, देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नागो वि पकरेति ।

[५] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बादरे थणियसद्दे ?
उ०—हंता अत्थि, तिन्नि वि पकरेंति ।

[६] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे बायरे अगणिकाए ?
उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं ।

[७] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे चंदिम-जाव-तारारूवा ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[८] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चंदाभा ति वा, सूराभा ति वा ?
उ०—णो इणट्ठे समट्ठे ।
एवं दोच्चाए पुढवीए भाणियव्वं, एवं तच्चाए वि भाणियव्वं, नवरं देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, णो णागो पकरेति,
चउत्थीए वि एवं, नवरं देवो एक्को पकरेति, नो असुरो, नो नागो पकरेति ।
एवं हिट्ठिल्लासु सव्वासु देवो एक्को वि पकरेति ।

—विवा. भाग २ श. ६ उ. ८ प्र. १-८ पृ० ३२७-३२८

[१] [१] प्र०—भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी हैं ?
उ०—गौतम ! आठ पृथ्वियाँ हैं—रत्नप्रभा-यावत्-ईषत्प्राग्भारा ।

[२] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे गृह तथा गृहापण आदि हैं ?
उ०—गौतम ! नहीं, ऐसा नहीं है ।

[३] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे ग्राम—यावत्—सन्निवेश आदि हैं ?
उ०—नहीं, ऐसा नहीं है ।

[४] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे विशाल मेघ मंडराते हैं, बनते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?
उ०—हाँ, ऐसा ही है । यह वर्षा देव, असुर और नाग तीनों करते हैं ।

[५] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बादर स्तनित शब्द (मेघगर्जन) है ?
उ०—हाँ, है । यह शब्द (देव आदि) तीनों करते हैं ।

---

१. स्थानांग अ. ८ सूत्र ६४८ ।
विवा. भाग १ श. ८ उ. ३ पृ. ७८ ।
विवा. भाग १ श. १३ उ. १ पृ. ३०१ ।

[६] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे बादर अग्निकाय है ?
उ०—गौतम ! नहीं, ऐसा नहीं है। यह निषेध विग्रहगतिसमापन्न जीवों को छोड़कर शेष जीवों के लिए है।

[७] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे चन्द्र—यावत्—तारा आदि हैं ?
उ०—नहीं, ऐसी बात नहीं है।

[८] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी में चन्द्राभा अथवा सूर्याभा है ?
उ०—नहीं, ऐसा नहीं है।
यही बात द्वितीय पृथ्वी के विषय में भी समझनी चाहिए। तृतीय के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ वर्षा देव और असुर ही करते हैं, नाग नहीं। यही बात चौथी पृथ्वी के संबंध में भी है, किन्तु वहाँ वर्षा केवल देव ही करता है, असुर और नाग नहीं। इसी प्रकार नीचे की शेष पृथ्वियों में भी केवल देव ही वर्षा करता है।

नरकभूमियों का आधार

[४] तिपतिट्ठिया णरगा पं०, तंजहा—
पुढविपतिट्ठिया, आगासपतिट्ठिया, आयपइट्ठिया।
णेगम-संगह-ववहाराणं पुढविपइट्ठिया, उज्जुसुतस्स आगास-पतिट्ठिया, तिण्हं सद्दनयाणं आयपतिट्ठिया।
—ठा. अ. ३ उ. ३ सूत्र १८६ पृ. १४२

[४] नरक त्रिप्रतिष्ठित-तीन पदार्थों पर आश्रित हैं, यथा पृथ्वीप्रतिष्ठित, आकाशप्रतिष्ठित और आत्मप्रतिष्ठित।
नैगम, संग्रह और व्यवहार नय की अपेक्षा पृथ्वी पर आश्रित हैं, ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा आकाश पर आश्रित हैं और तीन शब्दनयों (शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत) की अपेक्षा आत्मप्रतिष्ठित अर्थात् स्वाश्रित हैं।

नरकभूमियों के नीचे घनोदधि आदि

[५][१] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे घणोदधीति वा, घणवातेति वा, तणुवातेति वा, ओवासंतरेति वा ?
उ०—हंता अत्थि।
एवं-जाव-अहेसत्तमाए।
—जीवा. सूत्र ७१ पृ. ९०

[५][१] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे घनोदधि, घनवात, तनुवात अथवा अवकाशान्तर है ?
उ०—हां, है।
इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक समझना चाहिये।

[६][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते[1]।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणवाए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवं तणुवाते वि, ओवासंतरे वि।

[३] प्र०—सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

१—सम० २० सूत्र ३

[४] प्र०—सक्करप्पभाए पुढवीए घनवाते केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते । एवं तणुवाते वि ।

ओवासंतरे वि जहा सक्करप्पभाए, एवं-जाव-अधेसत्तमा ।

—जीवा. सूत्र ७२ पृ. ९२

[७][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! छ जोयणाणि बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

]२] प्र०—सक्करप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सतिभागाइं छ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते

[३] प्र०—वालुयप्पभाए पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! तिभागूणाइं सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

एवं एतेणं अभिलावेणं पंकप्पभाए सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।
धूमप्पभाए सतिभागाइं सत्त जोयणाइं पण्णत्ते
तमप्पभाए तिभागूणाइं अट्ठ जोयणाइं ।
तमतमप्पभाए अट्ठ जोयणाइं[1] ।

—जीवा. सूत्र ७६ पृ. ९५

[६][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में घनोदधि कितना विशाल-मोटा है ?

उ०—गौतम ! (रत्नप्रभा पृथ्वी में घनोदधि) बीस सहस्र योजन विशाल है ।

[२] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में घनवात कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! (रत्नप्रभा पृथ्वी में घनवात) असंख्य सहस्र योजन विशाल है ।

तनुवात एवं अवकाशान्तर के विषय में भी यही बात जाननी चाहिए ।

[३] प्र०—भगवन् ! शर्करा पृथ्वी में घनोदधि कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! (शर्कराप्रभा में घनोदधि) बीस सहस्र योजन विशाल है ।

[४] प्र—शर्कराप्रभा पृथ्वी में घनवात कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! (शर्कराप्रभा में घनवात) असंख्य सहस्र योजन विशाल है । इसी प्रकार तनुवात एवं अवकाशान्तर के विषय में भी समझ लेना चाहिये । सप्तम भूमि तक इस प्रकार की संयोजना कर लेनी चाहिये ।

[७][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में घनोदधिवलय कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! (रत्नप्रभा में घनोदधिवलय) छह योजन विशाल है ।

[२] प्र०—शर्कराप्रभा पृथ्वी में घनोदधिवलय कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! (शर्कराप्रभा में घनोदधिवलय) त्रिभाग अधिक छह (साढ़े छः) योजन विशाल है ।

[३] प्र०—वालुकाप्रभा में कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! त्रिभागन्यून सप्त ($6\frac{2}{3}$) योजन विशाल है । इसी प्रकार पंकप्रभा में (घनोदधिवलय) सप्त योजन विशाल है । धूमप्रभा में सत्रिभाग सप्त ($7\frac{2}{3}$) योजन विशाल है । तमःप्रभा में त्रिभाग न्यून अष्ट ($7\frac{2}{3}$) योजन विशाल है । तमस्तमःप्रभा में अष्ट योजन विशाल है ।

१—ठाणा० ३ उ० ४ सूत्र २४४ पृ० १६६ ।

घनोदधि आदि का संस्थान

[८] [१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए किंसंठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए पण्णत्ते,
जे णं इमं रयणप्पभं पुढविं संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति,
एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए घणोदधिवलए,
णवरं अप्पणप्पणं पुढविं संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति ।

[२] प्र०—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलए किंसंठिते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वट्टे वलयागारे तहेव—जाव—जे णं इमीसे णं रयणप्पभापुहवीए घणोदधिवलयं सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठइ ।
एवं—जाव—अहेसत्तमाए घणवातवलए ।

प्र०—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए तणुवातवलए किंसंठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए—जाव—जे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलयं सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठइ,
एवं—जाव—अधेसत्तमाए तणुवातवलए ।

—जीवा. सूत्र ७६ पृ० ९५-९६
— „ „ ७४ पृ० ९३

[८] [१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनोदधिवलय किस आकार का है ?

उ०—गौतम ! वृत्त—वलय के आकार का है, जो इस रत्नप्रभा पृथ्वी को सब ओर से घेर कर स्थित है । इसी प्रकार—यावत्—अधःसप्तमा पृथ्वी का घनोदधिवलय समझना चाहिए । विशेष यह है कि वे घनोदधिवलय अपनी-अपनी पृथ्वी को घेर कर स्थित हैं ।

[२] प्र०—इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवातवलय किस आकार का है ?

उ०—गौतम ! वृत्त-वलय के आकार का है,—यावत्—इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधिवलय को चारों ओर से घेरे हुए है । तमस्तमःपृथ्वी के घनवातवलय पर्यन्त इसी प्रकार समझना चाहिए ।

[३] प्र०—इस रत्नप्रभा पृथ्वी का तनुवातवलय किस आकार का है ?

उ०—गौतम ! वृत्त—वलय के आकार का है,—यावत्—इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवातवलय को सभी ओर से घेरे हुए है । यही बात तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के तनुवातवलय पर्यन्त जाननी चाहिए ।

घनोदधि आदि की मोटाई

[९] [१] प्र०—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए घणवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! अद्धपंचमाइं जोयणाइं बाहल्लेणं ।

[२] प्र०—सक्करप्पभाए पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! कोसूणाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं ।
एवं एतेणं अभिलावेणं वालुयप्पभाए पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं ।
पंकप्पभाए सक्कोसाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं ।
धूमप्पभाए अद्धछट्ठाइं जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं ।
तमप्पभाए कोसूणाइं छ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं ।
अहेसत्तमाए छ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं ।

[९] [१] प्र०—इस रत्नप्रभा पृथ्वी का घनवातवलय कितना मोटा है ?
उ०—गौतम ! साढ़े चार योजन मोटा है ।

[२] प्र०—शर्कराप्रभा का घनवातवलय कितना मोटा है ?
उ०—गौतम ! एक कोस कम पांच योजन मोटा है ।

इसी प्रकार वालुकाप्रभा का पांच योजन मोटा है, पंकप्रभा का एक कोस अधिक पांच योजन मोटा है, धूमप्रभा का साढ़े पांच योजन मोटा है, तमःप्रभा का क्रोशन्यून षट् योजन मोटा है और अधःसप्तम (तमस्तमःप्रभा) का षट् योजन मोटा है ।

[१०][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! छक्कोसे णं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

एवं एतेणं अभिलावेणं सक्करप्पभाए सतिभागे छक्कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते ।
वालुयप्पभाए तिभागूणे सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।
पंकप्पभाए पुढवीए सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।
धूमप्पभाए सतिभागे सत्तकोसे ।
तमप्पभाए तिभागूणे अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते ।
अधेसत्तमाए पुढवीए अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

—जीवा. सूत्र ७६ पृ० ९५,९६

[१०][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का तनुवातवलय कितना मोटा है ?

उ०—गौतम ! छह कोस मोटा है ।

इसी प्रकार शर्कराप्रभा का सत्रिभाग छह ($६\frac{१}{३}$) कोस मोटा है, वालुकाप्रभा का त्रिभागन्यून सात ($६\frac{२}{३}$) कोस मोटा है, पंकप्रभा का सात कोस मोटा है, धूमप्रभा का सत्रिभाग सात ($७\frac{१}{३}$) कोस विशाल है, तमःप्रभा का त्रिभागन्यून आठ ($७\frac{२}{३}$) कोस मोटा है, अधःसप्तम पृथ्वी का आठ कोस मोटा है ।

घनोदधि आदि में पुद्गलद्रव्य

[११] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलयस्स छज्जोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णतो काल[१]—जाव—हंता अत्थि ।
सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदधिवलयस्स सतिभागछजोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेदेणं छिज्जमाणस्स—[२]जाव—हंता अत्थि ।
एवं—जाव—अधेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं ।

—जीवा० सूत्र ७६, पृ० ९५

[११] भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधिवलय को, जो छह योजन मोटा है, (कल्पना से) छिन्न (प्रतर, काण्ड आदि के रूप में विभक्त) करने पर क्या वहां (उस विभाग में) वर्ण से काले आदि द्रव्य रहते हैं ?—यावत्—हाँ, रहते हैं ।

भगवन् ! सत्रिभाग छह योजन मोटे शर्कराप्रभा पृथ्वी के घनोदधिवलय को (पूर्ववत्) छिन्न करने पर वहाँ वर्ण से कृष्ण आदि द्रव्य रहते हैं ?—यावत्—हाँ, रहते हैं ।

इसी प्रकार अधःसप्तम (तमस्तमःप्रभा) पृथ्वी पर्यन्त अपनी अपनी मोटाई के अनुसार समझ लेना चाहिए ।

---

१. जीवा. सूत्र ७३ पृ० ९२
२. " " "

[१२] इमीसे णं भंते ! घणवातवलयस्स अद्धपंचमजोयण बाहल्लस्स खेत्तछेएणं छिज्जमाणस्स—[1]जाव—
हंता अत्थि ।
एवं—जाव—अहेसत्तमाए, जं जस्स बाहल्लं ।
एवं तणुवातवलयस्स वि—जाव—अधेसत्तमा, जं जस्स बाहल्लं ।

—जीवा. सूत्र ७६, पृ० ९५

[१२] भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवातवलय के साढ़े चार योजन मोटे क्षेत्र को (पूर्ववत्) छेदन करने पर क्या वहाँ वर्ण से काले इत्यादि द्रव्य रहते हैं ?—हाँ रहते हैं ।
इसी प्रकार अपनी-अपनी मोटाई के अनुसार सप्तम भूमि पर्यन्त जानना चाहिए । यही बात तनुवातवलय के संबंध में भी अपनी-अपनी मोटाई के अनुसार समझ लेना चाहिए ।

नरकभूमियों के विभाग

[१३][१] प्र०—इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी कतिविधा पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—
खरकंडे, पंकबहुले कंडे, आवबहुले कंडे ।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे कतिविधे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! सोलसविहे पण्णत्ते, तंजहा—
(१) रयणकंडे (२) वइरे (३) वेरुलिए (४) लोहितक्खे (५) मसारगल्ले (६) हंसगब्भे (७) पुलए (८) सोयंधिए (९) जोतिरसे (१०) अंजणे (११) अंजणपुलए (१२) रयते (१३) जातरूवे (१४) अंके (१५) फलिहे (१६) रिट्ठे कंडे ।

[३] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभापुढवीए रयणकंडे कतिविधे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे ।

[४] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभापुढवीए पंकबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते ।

[५] प्र०—एवं आवबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते ।

[६] प्र०—सक्करप्पभा णं भंते ! पुढवी कतिविधा पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता ।
एवं-जाव-अहेसत्तमा ।

—जीवा. सूत्र ६९ पृ. ८१
—ठा. अ. १० सूत्र ७७८ पृ. ४९७

[१३][१] प्र०—भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कितने प्रकार की है ?
उ०—गौतम ! तीन प्रकार की है, यथा—खरकाण्ड, पंकबहुलकाण्ड और अप्बहुलकाण्ड ।

[२] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड कितने प्रकार का है ?
उ०—गौतम ! सोलह प्रकार का है, यथा—(१) रत्नकाण्ड (२) वज्रकाण्ड (३) वैडूर्यकाण्ड (४) लोहिताक्षकाण्ड (५) मसारगल्लकाण्ड (६) हंसगर्भकाण्ड (७) पुलककाण्ड (८) सौगंधिककाण्ड (९) ज्योतिरत्नकाण्ड (१०) अंजनकाण्ड (११) अंजनपुलककाण्ड (१२) रजतकाण्ड (१३) जातरूपकाण्ड (१४) अंककाण्ड (१५) स्फटिककाण्ड और (१६) अरिष्ट काण्ड ।

---

१. जीवा. सूत्र ७३ पृ० ९२

[३] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नकाण्ड कितने प्रकार का है?
उ०—गौतम! एक ही प्रकार का है। यही बात अरिष्ट पर्यन्त सभी के विषय में जाननी चाहिए।

[४] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पंकबहुलकाण्ड कितने प्रकार का है?
उ०—गौतम! एक ही प्रकार का है।

[५] प्र०—इसी प्रकार अप्बहुलकाण्ड कितने प्रकार का है?
उ०—गौतम! वह भी एक ही प्रकार का है।

[६] प्र०—भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी कितने प्रकार की है?
उ०—गौतम! (शर्कराप्रभा) एक ही प्रकार की है।
यही बात नीचे की सातवी पृथ्वी तक जाननी चाहिए। अर्थात् वे सभी एक-एक प्रकार की हैं।

रत्नप्रभा के काण्डों की मोटाई

[१४][१] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?
उ०—गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते,[1] एवं-जाव-रिट्ठे।

[३] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए, पंकबहुले कंडे[2] केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! चतुरसीतिजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

[४] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए आवबहुले कंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?
उ०—गोयमा! असीति जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

—जीवा. सूत्र ७२ पृ. ९२
—सम. ८०

[१४][१] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड कितना विशाल है?
उ०—गौतम! (खरकाण्ड) सोलह सहस्र योजन विशाल है।

[२] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नकाण्ड कितना विशाल है?
उ०—गौतम! (रत्नकाण्ड) एक सहस्र योजन विशाल है। इसी प्रकार अरिष्ट काण्ड पर्यन्त जानना चाहिये।

[३] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पंकबहुल काण्ड कितना विशाल है?
उ०—गौतम! (पंकबहुल काण्ड) चौरासी सहस्र योजन विशाल है।

[४] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अप्बहुल काण्ड कितना विशाल है?
उ०—गौतम! (अप्बहुल काण्ड) अस्सी सहस्र योजन विशाल है।

नरकभूमियों का संस्थान

[१५][१] प्र०—इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किंसंठिता पण्णत्ता?
उ०—गोयमा! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता।

---

१. स्थानांग अ. १०, सूत्र ७७८, पृ. ४९७।
२. सम. स. ८४ सूत्र ९।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे किंसंठिते पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते ।

[३] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे किंसंठिते पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते ।
एवं—जाव—रिट्ठे, एवं पंकबहुले वि, एवं आवबहुले वि,
घणोदधी वि, घणवाए वि, तणुवाए वि, ओवासंतरे वि,
सव्वे झल्लरिसंठिते पण्णत्ते ।

[४] प्र०—सक्करप्पभा णं भंते ! इवी किंसंठिता पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता ।

[५] प्र०—सक्करप्पभा पुढवीए घणोदधी किंसंठिते पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते ।
एवं—जाव—ओवासंतरे,
जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया एवं—जाव—अहेसत्तमाइ वि ।

[१५][१] प्र०—भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी किस आकार की है ?
उ०—गौतम ! झालर के आकार की है ।

[२] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का खरकाण्ड किस आकार का है ?
उ०—गौतम ! झालर के आकार का है ।

[३] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नकाण्ड किस आकार का है ।
उ०—गौतम ! झालर के आकार का है ।

इसी प्रकार अरिष्ट पर्यन्त समझना चाहिए । पंकबहुल काण्ड, अप्बहुलकाण्ड, घनौदधि, घनवात, तनुवात, अवकाशान्तर आदि सब झल्लरी के आकार के हैं ।

[४] प्र०—भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वी किस आकार की है ।
उ०—गौतम ! झल्लरी (झालर) के आकार की है ।

[५] प्र०—शर्कराप्रभा पृथ्वी में घनोदधि किस आकार का है ?
उ०—गौतम ! झल्लरी के आकार का है ।

इसी प्रकार अवकाशान्तर तक समझना चाहिये । शर्कराप्रभा पृथ्वी के विषय में जो कहा गया है वही तमस्तमः पृथ्वी तक सब के विषय में जानना चाहिए ।

नरकभूमियों में पुद्गल द्रव्य

[१६][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो काल-नील-लोहित-हालिद्द-सुक्किलाइं,
गंधतो सुरभिगंधाइं, दुब्भिगंधाइं,
रसतो तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुराइं,
फासतो कक्खड-मउय-गरुय-लहु-सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खाइं,
संठाणतो परिमंडल-वट्ट-तंस-चउरंस-आययसंठाणपरिणयाइं,
अन्नमन्नबद्धाइं, अण्णमण्णपुट्ठाइं, अण्णमण्णओगाढाइं, अण्णमण्णसिनेहपडिबद्धाइं, अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति ?
उ०—हंता, अत्थि ।

[२] प्र०—भगवन्! क्या द्वितीय पृथ्वी तृतीय (वालुकाप्रभा) पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में सबसे बड़ी है इत्यादि प्रश्न ?

उ०—हां, गौतम! द्वितीय पृथ्वी-यावत्-लम्बाई-चौड़ाई में छोटी है।
इसी प्रकार-यावत्-षष्ठ पृथ्वी सप्तम पृथ्वी की अपेक्षा से लम्बाई-चौड़ाई में छोटी है।

[१६][१] प्र०—इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला, विसेसाहिया, संखेज्जगुणा ?
वित्थरेण किं तुल्ला, विसेसहीणा, संखेज्जगुणहीणा ?

उ०—गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं नो तुल्ला, विसेसाहिया, नो संखेज्जगुणा।
वित्थरेणं नो तुल्ला, विसेसहीणा, णो संखेज्जगुणहीणा।

[२] प्र०—दोच्चा णं भंते ! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला ?
उ०—एवं चेव भाणितव्वं।
एवं तच्चा, चउत्थी, पंचमी, छट्ठी।

[३] प्र०—छट्ठी णं भंते ! पुढवी सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला, विसेसाहिया, संखेज्जगुणा ?
उ०—एवं चेव भाणियव्वं।
सेवं भंते ! सेवं भंते !

—जीवा. सूत्र ८० पृ. १०१

[१६][१] प्र०—भगवन् यह रत्नप्रभा पृथ्वी द्वितीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में क्या तुल्य है, अथवा विशेषाधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है ?

उ०—गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी द्वितीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में तुल्य नहीं है, विशेषाधिक है, संख्यातगुण अधिक नहीं है। विस्तार में तुल्य नहीं है, विशेष हीन है, संख्येयगुण हीन नहीं है।

[२] प्र०—भगवन्! द्वितीय पृथ्वी तृतीय पृथ्वी की अपेक्षा मोटाई में क्या तुल्य है, इत्यादि प्रश्न ?

उ०—ऊपर की भांति ही कहना चाहिए। यही बात तीसरी, चौथी, पांचवीं और छठी पृथ्वी के विषय में भी समझना चाहिए।

[३] प्र०—भगवन्! छठी पृथ्वी सातवीं पृथ्वी की अपेक्षा क्या मोटाई में तुल्य है, अथवा विशेषाधिक है अथवा संख्यातगुण अधिक है ?

उ०—पूर्ववत् ही कह लेना चाहिये।
भगवन्! ऐसा ही है, ऐसा ही है!

नरकभूमियों का अन्तर

[२०][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए सक्करप्पभाए य पुढवीए केवतियं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

[२] प्र०—सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए वालुयप्पभाए य पुढवीए केवतियं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! एवं चेव।
एवं-जाव-तमाए अहेसत्तमाए य।

[३] प्र०—अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए अलोगस्स य केवतियं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

—विवा. भाग ३ श. १४ उ. ८ प्र. १-३ पृ. ३५८

[२०][१] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी में कितना अबाध अन्तर-व्यवधान है ?
उ०—गौतम! असंख्यात सहस्र योजन का अबाध अन्तर है।

[२] प्र०—भगवन्! शर्कराप्रभा पृथ्वी और वालुकाप्रभा पृथ्वी में कितना अन्तर है ?
उ०—गौतम! उतना ही (असंख्यात सहस्र योजन का) इसी प्रकार-यावत्-तमःप्रभा और तमस्तमः प्रभा में भी अन्तर है।

[३] प्र०—भगवन्! तमस्तमःप्रभा पृथ्वी और अलोक में कितना अबाध अन्तर है ?
उ०—गौतम! असंख्य हजार योजन का अबाध अन्तर है।

रत्नप्रभा आदि के चरमान्तों का अन्तर

[२१][१] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पहाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ उवासंतरस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते।

—जीवा. सूत्र ७९ पृ. १००

[२१][१] प्र०—भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से अवकाशान्तर के अधः चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है ?
उ०—गौतम! असंख्य लाख योजन का अबाध अन्तर है।

[२२] इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोवहिस्स उवरिल्ले चरिमंते असिउत्तरजोयणसयसहस्सं, हेट्ठिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं।
इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणवातस्स उवरिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं, हेट्ठिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं।
इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवातस्स उवरिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे, हेट्ठिल्ले वि असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं,
एवं ओवासंतरे वि।
दोच्चाए णं भंते! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते[1] ?
गोयमा! बत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।
सक्करप्पभाए पुढवीए उवरि घणोवधिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते बावण्णुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाधाए।
घणवातस्स असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं पण्णत्ताइं,
एवं-जाव-उवासंतरस्स वि-जाव-अधेसत्तमाए,
णवरं-जीसे णं बाहल्लं तेण घणोदही संबंधेतव्वो बुद्धीए।
सक्करप्पभाए अणुसारेणं घणोवहिसहिताण इमं पमाणं।
तच्चाए णं भंते! अडयालीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं,
पंकप्पभाए पुढवीए चत्तालीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं,
धूमप्पभाए पुढवीए अट्ठतीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं,
तमाए पुढवीए छत्तीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं,[2]
अधेसत्तमाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं-जाव-अधेसत्तमाए।

—जीवा. सूत्र ७९ पृ. १००

---

१. दोच्चाए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ दोच्चस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं छलसीइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम. ८३ सूत्र ३

२. छट्ठीए पुढवीए बहुमज्झदेसभायाओ छट्ठस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासीति जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम. ७९ सूत्र ३

[२२] भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि के ऊर्ध्व चरमान्त तक एक लाख अस्सी हजार योजन का तथा अधः चरमान्त तक दो लाख योजन का अन्तर है।
भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवात के ऊर्ध्व चरमान्त तक दो लाख योजन का तथा अधः चरमान्त तक असंख्य लाख योजन का अन्तर है।
भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तनुवात के ऊर्ध्व चरमान्त तक असंख्य लाख योजन का तथा अधः चरमान्त तक भी असंख्य लाख योजन का अबाध अन्तर है।
अवकाशान्तर के विषय में भी यही बात जाननी चाहिए। भगवन्! द्वितीय (शर्कराप्रभा) पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से अधः चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है?
गौतम! एक लाख बत्तीस हजार योजन का अबाध अन्तर है। शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से घनोदधि के अधः चरमान्त तक एक लाख बावन हजार योजन का अबाध अन्तर है। घनवात का असंख्य लाख योजन का अन्तर है। इसी प्रकार अवकाशान्तर तक-यावत्-अधः सप्तम (तमस्तमःप्रभा) तक समझ लेना चाहिये। इसमें इतना ध्यान रखना चाहिए कि जिस पृथ्वी की जितनी विशालता हो उसके साथ घनोदधि का संबंध उसी हिसाब से जोड़ना चाहिए। इस प्रकार शर्कराप्रभा के अनुसार घनोदधि सहित (पृथ्वियों का) अन्तर-प्रमाण निम्नलिखित है—
भगवन्! तृतीय (वालुकाप्रभा) का (अन्तर) एक लाख अड़तालीस हजार योजन, पंकप्रभा का एक लाख चालीस हजार योजन, धूमप्रभा का एक लाख अड़तीस हजार योजन, तमःप्रभा का एक लाख छत्तीस हजार योजन तथा तमस्तमःप्रभा का एक लाख अट्ठाईस हजार योजन है।

[२३][१] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—
घणोदधिवलए, घणवायवलए, तणुवायवलए।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए दाहिणिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! तिविधे पण्णत्ते, तंजहा—
एवं-जाव-उवरिल्ले, एवं सव्वासि-जाव-अधेसत्तमाए उवरिल्ले।
—जीवा० सूत्र ७५ पृ० ८४

[२३][१] प्र०—भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का पूर्व का चरमान्त कितने प्रकार का है?
उ०—गौतम! तीन प्रकार का है, यथा-घनोदधिवलय-घनवातवलय, तनुवातवलय।

[२] प्र०—भगवन्! इस रत्नाप्रभा पृथ्वी का दक्षिणी चरमान्त कितने प्रकार का है?
उ०—गौतम! तीन प्रकार का है। तमस्तमःप्रभा तक के उत्तर आदि के चरमान्तों के विषय में यही जानना चाहिए।

[२४][१] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लतो चरिमंतातो हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! असिउत्तरं जोयणसतसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लतो चरिमंतातो खरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते।

[३] प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंताओ रयणकंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?
उ०—गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते।

[४] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंतातो वइरस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं भंते ! केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ।

[५] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंताओ वइरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं भंते ! केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दो जोयणसहस्साइं इमीसे णं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । एवं-जाव-रिट्ठस्स उवरिल्ले पन्नरसजोयणसहस्साइं, हेट्ठिल्ले चरिमंते सोलस जोयणसहस्साइं ।

[६] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ पंकबहुलस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं भंते ! केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । हेट्ठिल्ले चरिमंते एक्कं जोयणसयसहस्सं आवबहुलस्स उवरि एक्कं जोयणसयसहस्सं, हेट्ठिल्ले चरिमंते असीउत्तरं जोयणसयसहस्सं ।

—जीवा० सूत्र ७९ पृ० ९९

[२४][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से अधः चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है ?

उ०—गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन का अबाध अन्तर है ।

[२] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से खरकाण्ड के अधः चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है ?

उ०—गौतम ! सोलह हजार योजन का अबाध अन्तर है ।

[३] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से रत्नकाण्ड के अधः चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है ?

उ०—गौतम ! एक हजार योजन का अबाध अन्तर है ।

[४] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से वज्रकाण्ड के ऊर्ध्व चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है ?

उ०—गौतम ! एक हजार योजन का अबाध अन्तर है ।

[५] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से वज्रकाण्ड के अधः चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है ?

उ०—गौतम ! दो हजार योजन का अबाध अन्तर है ।

इस प्रकार—यावत्—अरिष्ट के ऊर्ध्व चरमान्त तक पन्द्रह हजार योजन का तथा अधः चरमान्त तक सोलह हजार योजन का अन्तर है ।

[६] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊर्ध्व चरमान्त से पंकबहुल काण्ड के ऊर्ध्व चरमान्त तक कितना अबाध अन्तर है ?

उ०—गौतम ! सोलह हजार योजन का अबाध अन्तर है ।

अधः चरमान्त तक एक लाख योजन का अन्तर है । अप्बहुल काण्ड के ऊर्ध्व चरमान्त तक एक लाख योजन का तथा अधः चरमान्त तक एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर है ।

[७] इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए वइरकंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ लोहियक्खकंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं तिन्नि जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—सम. स. ३००० सूत्र ११६ ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के वज्रकाण्ड के ऊपरी चरमान्त से लोहिताक्षकाण्ड के निचले चरमान्त का तीन हजार योजन का अव्यवहित अन्तर कहा गया है ।

[८] इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए रयणस्स कंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ पुलगस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं सत्त जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—सम. स. ७००० सूत्र १२० ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नकाण्ड के ऊपरी चरमान्त से पुलककाण्ड के निचले चरमान्त का सात हजार योजन का अव्यवहित अन्तर है ।

नरकभूमियों से लोकान्त का अन्तर

[२७][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दुवालसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ।
एवं दाहिणिल्लातो पच्चत्थिमिल्लातो, उत्तरिल्लातो ।

[२] प्र०—सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लातो चरिमंतातो केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! तिभागूणेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ।
एवं चउद्दिसिं पि ।

[३] प्र०—वालुयप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लातो पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! सतिभागेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ।
एवं चउद्दिसिंपि, एवं सव्वासिं चउसु वि दिसासु पुच्छितव्वं ।
पंकप्पभाए चोद्दसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ।
पंचमाए तिभागूणेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ।
छट्ठीए सतिभागेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ।
सत्तमीए सोलसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ।
एवं—जाव—उत्तरिल्लातो ।

—जीवा. सूत्र ७५ पृ० ९४

[२७][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व चरमान्त से लोकान्त कितना दूर है ?

उ०—गौतम ! (रत्नप्रभा के चरमान्त से) लोकान्त बारह योजन दूर है ।
इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर (चरमान्त) से भी इतना ही दूर है ।

[२] प्र०—शर्कराप्रभा पृथ्वी के पूर्व चरमान्त से लोकान्त कितना दूर है ?

उ०—गौतम ! (शर्कराप्रभा के पूर्व चरमान्त से) लोकान्त त्रिभागन्यून तेरह ($१२\frac{२}{३}$) योजन दूर है ।
इसी प्रकार चारों दिशाओं के विषय में जानना चाहिए ।

[३] प्र०—वालुकाप्रभा पृथ्वी के पूर्व चरमान्त से लोकान्त कितना दूर है ?

उ०—गौतम ! (वालुकाप्रभा के पूर्व चरमान्त से) लोकान्त सत्रिभाग तेरह ($१३\frac{१}{३}$) योजन दूर है ।
इसी प्रकार चारों दिशाओं के सम्बन्ध में जानना चाहिए एवं समस्त पृथ्वियों के विषय में चारों दिशाओं के लिए प्रश्न करना चाहिए ।
पंकप्रभा से लोकान्त चौदह योजन दूर है ।
पंचम (धूमप्रभा) से लोकान्त त्रिभागन्यून पन्द्रह ($१४\frac{२}{३}$) योजन दूर है ।
षष्ठ (तमःप्रभा) से लोकान्त सत्रिभाग पन्द्रह ($१५\frac{१}{३}$) योजन दूर है ।
सप्तम (तमस्तमःप्रभा) से लोकान्त सोलह योजन दूर है ।
इसीप्रकार—यावत्—उत्तरी चरमान्त से जानना चाहिए ।

नरकभूमियों की नित्यानित्यता

[२८][१] प्र०—इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं सासया, असासया ?
उ०—गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया ।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिय सासया, सिय असासया ?
उ०—गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, वण्णपज्जवेहिं, गंधपज्जवेहिं, रसपज्जवेहिं, फासपज्जवेहिं असासया ।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति—तं चेव—जाव—सिय असासया ।
एवं—जाव—अधेसत्तमा ।

[३] प्र०—इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी कालतो केवच्चिरं होई ?
उ०—गोयमा ! न कयाइ न आसी, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ । भुविं च, भवइ य, भविस्सति य, धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा,
एवं—जाव—अधेसत्तमा ।

—जीवा. सूत्र ७८ पृ० ९८
" सूत्र ८५ पृ० १०९

[२८][१] प्र०—भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी शाश्वत है या अशाश्वत ?
उ०—गौतम ! कथंचित् शाश्वत है, कथंचित् अशाश्वत है ।

[२] प्र०—भगवन् ! ऐसा क्यों कि कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है ?
उ०—गौतम ! द्रव्य की दृष्टि से शाश्वत है, वर्णपर्याय, गंधपर्याय, रसपर्याय और स्पर्शपर्याय की अपेक्षा से अशाश्वत है; इस कारण, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि रत्नप्रभा पृथ्वी कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है ।
सप्तम पृथ्वी तक ऐसा ही समझना चाहिए ।

[३] प्र०—भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी काल (की दृष्टि) से कितने समय पर्यन्त रहने वाली है ?
उ०—गौतम ! (रत्नप्रभा पृथ्वी) कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है; कभी नहीं होगी, ऐसा भी नहीं है । (यह) थी, है और रहेगी । (यह) ध्रुव है, नियत है, शाश्वत हैं, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है, नित्य है ।
सप्तम पृथ्वी तक ऐसा ही समझना चाहिए ।

नारकों के स्थान

[२९][१] प्र०—कहि णं भंते ! नेरइयाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! नेरइया परिवसंति ?
उ०—गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु पुढवीसु, तं जहा—
रयणप्पभाए—जाव—तमतमप्पभाए ।

—पण्ण. स्थानपद सू. १८ पृ० २३९

[२९][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ हैं ?
अर्थात् नारक जीव कहाँ निवास करते हैं ?
उ०—गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा सात पृथ्वियों में नारक निवास करते हैं, वह इस प्रकार—
रत्नप्रभा में—यावत्—तमस्तमःप्रभा में ।

नारकावास

[३०] एत्थ णं नेरइयाणं चउरासीइ निरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं,[1]
ते णं णरगा अंतो वट्टा, बाहिं चउरंसा, अहे खुरप्पसंठाणसंठिया,
निच्चंधयारतमसा, ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्त-जोइसियपहा,

१—(क) समo ८४ ।
(ख) जिवा. भाग २ श. ६ प्र० १ पृ० ३१५

मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंस-चिविखल्लताणुलेवणतला, असुई (वीसा) परमदुब्भिगंधा, काउयअगणि-वन्नाभा, कक्खडफासा, दुरहियासा, असुभा णरगा, असुभा णरगेसु वेयणाओ,

एत्थ णं नेरइयाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

एत्थ[1] णं बहवे नेरइया परिवसंति—काला, कालोभासा, गंभीरलोमहरिसा, भीमा, उत्तासणगा, परमकण्हा वन्नेणं पन्नत्ता समणाउसो !

ते णं[2] तत्थ निच्चं भीता, निच्चं तसिया, निच्चं उव्विग्गा, निच्चं परममसुहसंबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

—पण्ण. पद २ पृ० २३६–२४१

[३०] यहाँ (पूर्वोक्त सात पृथ्वियों में) नैरयिकों के चौरासी लाख नारकावास कहे गए हैं । वे नारकावास अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के समान तीक्ष्ण हैं । सदैव महा अंधकार से युक्त, ग्रह चन्द्र सूर्य नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित, मेद, चर्बी, मवाद-पटल, रुधिर और मांस की कीचड़ से भरे तल वाले, अशुचि, अति दुर्गन्धमय, कापोत अग्नि के समान आभा वाले, कर्कश स्पर्श वाले, दुस्सह एवं अशुभ हैं ।

इन नारकावासों में अशुभ वेदनाएँ हैं ।

यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान बताए गए हैं । वे उपपात की दृष्टि से लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की दृष्टि से लोक के असंख्यातवें भाग में तथा स्वस्थान की दृष्टि से भी लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

यहाँ बहुत से नारक निवास करते हैं । वे सब काले, काली आभा वाले, खड़े रोमांच वाले, भयंकर, त्रास-कारी एवं परम कृष्ण वर्ण वाले हैं ।

वे वहाँ सदैव भीत, त्रस्त, त्रसित एवं उद्विग्न रहते हैं तथा अत्यन्त अशुभ नरकभय का अनुभव करते हुए विचरते हैं ।

रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकावास

[३१][१] प्र०—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवतियं ओगाहेत्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवतिए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयण-सहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठा वि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अडसत्तरी जोयणसयसहस्सा, एत्थ णं रयणप्पभा ए, पुढवीए नेरइयाणं तीसं निरयावाससयसहस्साइं भवंतित्तिमक्खाया ।[3]

ते णं णरगा अंतो वट्टा, बाहिं चउरंसा, अहे खुरप्पसंठाणसंठिया, निच्चंधयारतमसा, ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्त जोइसियपहा, मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिविखल्लताणुलेवणतला, असुई, वीसा परमदुब्भिगंधा, काउयअगणिवन्नाभा कक्खडफासा, दुरहियासा, असुभा णरगा ।

असुभा नरगेसु वेयणाओ ।

—जीवा. प्र. ३ सूत्र ८१ पृ. १०२; प्र. ३ सूत्र ६८ पृ. ८८
—पन्नवणा पद २ सूत्र १६, पृ. २४३, ४४
—सम० १४६
—विवा० भा. १ श्र. १ उ. ५ प्र. १६४-१६५ पृ. १४१

१—जीवा० सूत्र ८७ पृ० ११४
२— " सूत्र ८६ पृ० ११७
३—सम० ३० सूत्र ८

[३१][१] प्र०—एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के कितने भाग को अवगाहन करके और नीचे के कितने भाग को छोड़ कर कितने मध्यभाग में कितने लाख नारकावास हैं ?

उ०—गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी रत्नप्रभा पृथ्वी का एक हजार योजन ऊपरी भाग अवगाहन करके अर्थात् एक हजार योजन नीचे जाकर और नीचे के भी एक हजार योजन को छोड़ कर, मध्य के एक लाख अठहत्तर हजार योजन में रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों के तीस लाख नारकावास हैं। वे नरक अन्दर गोलाकार, बाहर से चौकोर और नीचे छुरा के आकार के हैं। सदैव महान्धकार से युक्त, ग्रह चन्द्र सूर्य नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित, मेद, चर्बी, मवाद के पटल से तथा रुधिर एवं मांस के कीचड़ से व्याप्त तलभाग वाले, अशुचि, अत्यन्त दुर्गन्धमय, कापोत अग्नि के समान वर्ण वाले, कर्कश स्पर्श वाले, दुस्सह एवं अशुभ हैं। इन नरकों में अशुभ वेदनाएँ हैं।

—विवा. भा. ३ श. १३, उ. १, प्र. ३ पृ० ३०१
— ,, भा. ४ श. २५ उ. प्र. ६१ पृ० २१४
— ,, भा. २ श. ६ उ. ६ प्र. १ पृ० ३१५

शर्कराप्रभा में नारकावास

[३२][१] प्र०—सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता, मज्झे चेव केवइए केवइया णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सक्करप्पभाए णं पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहित्ता, हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे तीसुत्तरजोयणसयसहस्से एत्थ णं सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पणवीसा[1] नरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।
ते णं णरगा अंतो वट्टा—जाव—असुभा नरएसु वेयणा।

—जीवा. प्र. ३ सूत्र ८१, पृ० १०२
—पन्न. पद २ सूत्र २० पृ० २४४, ४५।
—सम० २५

बालुकाप्रभा में नारकावास

[३३][१] प्र०—वालुयप्पभाए णं भंते ! पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता, मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तर-जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हेट्ठं एगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता, मज्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पण्णरस निरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।
ते णं नरगा—जाव—असुभा नरगेसु वेयणा।

—जीवा. प्र. ३ सूत्र ८१, पृ० १०२
—पन्न० पद २ सूत्र २१, पृ० २४६

पंकप्रभा में नारकावास

[३४][१] प्र०—पंकप्पभाए णं भंते ! पुढवीए बीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता, मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

---

१ सम० स० २५ सूत्र ४

उ०—गोयमा ! पंकप्पभाए णं पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हिट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं पंकप्पभापुढविनेरइयाणं दस निरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं ।[1]
ते णं णरगा—जाव—असुभा नरगेसु वेयणा ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र ८१, पृ० १०२
—पन्न. पद २ सूत्र २२ पृ० २४७

धूमप्रभा में नारकावास

[३५][१] प्र०—धूमप्पभाए णं भंते ! पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहेत्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! धूमप्पभाए णं पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता, हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं तिन्नि नेरइयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं ।
ते णं णरगा अंतो वट्टा—जाव—असुभा नरगेसु वेयणा इति ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र ८१
—पन्न. पद २ सूत्र २३, पृ० २४८
—सम० १८ सूत्र ७

तमःप्रभा में नारकावास

[३६][१] प्र०—तमप्पभाए णं भंते ! पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवतियं ओगाहेत्ता, हेट्ठा केवतियं वज्जेत्ता, मज्झे केवतिए केवतिया नरगावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तमप्पभाए णं पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता, हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं तमापुढविनेरइयाणं एगे पंचूणे नरगावाससयसहस्से भवंतीति मक्खायं ।
ते णं णरगा अंतो वट्टा—जाव—असुभा नरगेसु वेयणा ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र ८१, पृ० १०२
—पन्न. पद २ सूत्र. २४ पृ० २४९

तमस्तमःप्रभा में नारकावास

[३७][१] प्र०—अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहेत्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता, मज्झे केवइए केवइया अणुत्तरा महइमहालया महानरगावासा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठा वि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ णं अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता । तंजहा—
काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, मज्झे अप्पइट्ठाणे ।
ते णं महानरगा अंतो वट्टा—जाव—असुभा महानरगेसु वेयणा इति ।

---

१. सम० १० सूत्र ११ ।

गाहाओ

आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च ।
अट्ठारस सोलसगं अहुत्तरमेव हेट्ठिमया[1] ।।१।।
अहुत्तरं च तीसं छव्वीसं चेव सयसहस्सं तु ।
अट्ठारस सोलसगं चोद्दसमहियं तु छट्ठीए ।।२।।
अट्ठ तिवण्णसहस्सा उवरिमहे वज्जिऊण तो भणिया ।
मज्झे तिसु सहस्सेसु होंति निरया तमतमाए ।।३।।
तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दस चेव सयसहस्साइं ।
तिन्नि य पंचूणेगं पंचेव अणुत्तरा निरया[2]—।।४।।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र ८१, पृ० १०२
—पन्न. पद २, सूत्र २५, पृ० २५१

[३२][१] प्र०—भगवन् ! एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी शर्कराप्रभा पृथ्वी का कितना ऊपरी भाग अवगाहन करके और कितना नीचे का भाग छोड़ कर, कितने मध्यभाग में कितने लाख नारकावास हैं ?

उ०—गौतम ! एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन और नीचे के भी एक हजार योजन भाग को छोड़ कर बीच के एक लाख तीस हजार योजन भाग में शर्कराप्रभा पृथ्वी के नारकों के पच्चीस लाख नारकावास हैं । वे नारकावास अन्दर से गोल—यावत्—अशुभ वेदना वाले हैं ।

---

१. प्र०—इमा णं रयणप्पभा पुढवी केवतिया बाहल्लेणं पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पुढवी असिउत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता ।
एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाहा अणुगंतव्वा—
गाहा—आसीतं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च ।
अट्ठारस-सोलसगं अहुत्तरमेव हिट्ठिमिया ।।
—जीवा० सूत्र ६८ पृ. ८८

२, पढम-पंचम-छट्ठी-सत्तमीसु चउसु पुढवीसु चोतीसं निरयावाससयसहस्सा प० । —सम० ३४.
बितिय-चउत्थीसु दोसु पुढवीसु पणतीसं निरयावाससयसहस्सा प० —सम० ३५.
दोच्च-चउत्थ-पंचम-छट्ठ-सत्तमासु णं पंचसु पुढवीसु एगूणचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा प० । —सम० ३९.
चउसु पुढवीसु एक्कचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा प०, तंजहा-रयणप्पभाए, पंकप्पभाए, तमाए, तमतमाए ।
—सम० ४१.
पढम-चउत्थ-पंचमासु पुढवीसु तेयालीसं निरयावाससयसहस्सा प० । —सम० ४३.
पढम-बिइयासु दोसु पुढवीसु पणवन्नं निरयावाससयसहस्सा प० । —सम० ५५.
पढम-दोच्च-पंचमासु तिसु पुढवीसु अट्ठावन्नं निरयावाससयसहस्सा प० । —सम० ५८.
चउत्थवज्जासु छसु पुढवीसु चोवत्तरं निरयावाससयसहस्सा प० । —सम० ७४.

प्रथम, पंचम, षष्ठ और सप्तम, इन चार पृथ्वियों में (सब के मिला कर) चौतीस लाख नारकावास हैं ।
द्वितीय तथा चतुर्थ, इन दोनों पृथ्वियों में पैंतीस लाख नारकावास हैं ।
द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम, इन पांचों पृथ्वियों में उनतालीस लाख नारकावास हैं ।
चार पृथ्वियों में इकतालीस लाख नारकावास हैं, यथा—रत्नप्रभा, पंकप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा ।
प्रथम, चतुर्थ तथा पंचम पृथ्वियों में तयालीस लाख नारकावास हैं ।
प्रथम तथा द्वितीय, दोनों पृथ्वियों में पचपन लाख नारकावास हैं ।
प्रथम, द्वितीय और पंचम, इन तीन पृथ्वियों में अठावन लाख नारकावास हैं ।
चतुर्थ को छोड़ कर शेष छह पृथ्वियों में चौहत्तर लाख नारकावास हैं ।

[३३][१] प्र०—भगवन् ! एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभा पृथ्वी के ऊपरी कितने और निचले कितने भाग को छोड़ कर मध्य के कितने भाग में कितने लाख विमान हैं ?

उ०—गौतम ! एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नीचे और ऊपर के एक-एक हजार योजन भाग को छोड़ कर मध्य के एक लाख छव्वीस हजार योजन भाग में वालुकाप्रभा पृथ्वी के नारकों के पन्द्रह लाख नारकावास हैं। वे नरक—यावत्—अशुभ वेदना से युक्त हैं।

[३४][१] प्र०—भगवन् ! पंकप्रभा पृथ्वी, जो एक लाख बीस हजार योजन मोटी है, उसके कितने ऊपरी भाग और कितने नीचे के भाग को छोड़ कर मध्य के कितने भाग में कितने लाख नारकावास हैं ?

उ०—गौतम ! एक लाख बीस हजार योजन मोटी पंकप्रभा पृथ्वी के ऊपरी एक हजार और नीचे के भी एक हजार योजन को छोड़ कर बीच के एक लाख अठारह हजार योजन में पंकप्रभा पृथ्वी के नारकों के दस लाख नारकावास हैं। वे नरक—यावत्—अशुभ वेदना वाले हैं।

[३५][१] प्र०—भगवन् ! एक लाख अठारह हजार योजन मोटी धूमप्रभा पृथ्वी के किनने ऊपरी भाग और कितने निचले भाग को छोड़ कर मध्य के कितने भाग में कितने लाख नारकावास हैं ?

उ०—गौतम ! एक लाख अठारह हजार योजन मोटी धूमप्रभा पृथ्वी के ऊपर के एक हजार और नीचे के एक हजार योजन को छोड़ कर मध्य के एक लाख सोलह हजार योजन में धूमप्रभा पृथ्वी के नारकों के तीन लाख नारकावास हैं। वे नारकावास अन्दर से गोल—यावत्—अशुभ वेदना से युक्त हैं।

[३६][१] प्र०—भगवन् ! एक लाख सोलह हजार योजन मोटी तमःप्रभा पृथ्वी के ऊपर के कितने भाग को और नीचे के कितने भाग को छोड़ कर बीच के कितने भाग में कितने लाख नारकावास हैं।

उ०—गौतम ! एक लाख सोलह हजार योजन मोटी तमःप्रभा पृथ्वी के ऊपर के एक हजार और नीचे के एक हजार योजन को छोड़ कर मध्य के एक लाख चौदह हजार योजन में तमःप्रभा पृथ्वी के नारकों के पांच कम एक लाख नारकावास हैं। वे नरक अन्दर से गोल—यावत्—अशुभ वेदना वाले हैं।

[३७][१] प्र०—भगवन् ! एक लाख आठ हजार योजन मोटी तमस्तमः पृथ्वी के ऊपर के और नीचे के कितने भाग को छोड़ कर मध्य के कितने भाग में कितने लाख नारकावास हैं ?

उ०—गौतम ! एक लाख आठ हजार योजन मोटी तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के ऊपर के साढ़े बावन और नीचे के भी साढ़े बावन हजार योजन भाग को छोड़ कर मध्य के तीन हजार योजन में तमस्तमः प्रभा पृथ्वी के नारकों के पांच अनुत्तर—महत्तम—महानारकावास हैं, जिनके नाम ये हैं—काल, महाकाल, रोरुअ, महारोरुअ, और अप्रतिष्ठान। वे महानरक अन्दर से गोल—यावत्—अशुभ वेदना से युक्त हैं।

गाथाओं का अर्थ

सात नरक-पृथ्वियों का पिण्ड अर्थात् मोटापन क्रमशः इस प्रकार है—१–एक लाख अस्सी हजार योजन, २–एक लाख बत्तीस हजार योजन, ३–एक लाख अट्ठाईस हजार योजन, ४–एक लाख बीस हजार योजन, ५–एक लाख अठारह हजार योजन, ६–एक लाख सोलह हजार योजन, ७–एक लाख आठ हजार योजन ।।१।।

सात पृथ्वियों का मध्य भाग—जिसमें नारकावास हैं, क्रमशः इस प्रकार है—१–एक लाख अठहत्तर हजार योजन, २–एक लाख तीस हजार योजन, ३–एक लाख छव्वीस हजार योजन, ४–एक लाख अठारह हजार योजन, ५–एक लाख सोलह हजार योजन, ६—एक लाख चौदह हजार योजन, ७–तीन हजार योजन ।।२-३।।

सात नरकों में नारकावासों की संख्या क्रमशः इस प्रकार है—१–तीस लाख, २–पच्चीस लाख, ३–पन्द्रह लाख, ४–दस लाख, ५–तीन लाख, ६–पांच कम एक लाख, ७–पांच ।।४।।

नारकावासों का संस्थान

[३८][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका किंसंठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

आवलियपविट्ठा य, आवलियबाहिरा य,

तत्थ णं जे ते आवलियपविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा-वट्टा, तंसा, चउरंसा ।

तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, तंजहा—

अयकोट्ठसंठिआ, पिट्ठपयणगसंठिआ, कंडूसंठिआ, लोहीसंठिया,

कडाहसंठिआ, थालीसंठिआ, पिहडगसंठिआ, किमियडसंठिआ, किन्नपुडगसंठिआ, उडवसंठिआ,

मुरवसंठिआ, मुयंगसंठिआ, नंदिमुयंगसंठिआ, आलिंगकसंठिआ, सुघोससंठिआ, दद्दरयसंठिआ, पणवसंठिआ, पडहसंठिआ, भेरिसंठिआ, झल्लरीसंठिआ, कुतुंबकसंठिआ, नालिसंठिआ,

एवं—जाव—तमाए ।

[२] प्र०—अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए णरका किंसंठिआ पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

वट्टे य, तंसा य ।

—जीवा० सूत्र ८२ पृ० १०४

[३८][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नरक किस आकार के हैं ?

उ०—गौतम ! नरक दो प्रकार के हैं—आवलिकाप्रविष्ट और आवलिकाबाह्य ।

इनमें जो आवलिकाप्रविष्ट हैं वे तीन प्रकार के हैं, यथा—गोल, त्रिकोण और चौकोर ।

इनमें जो आवलिकाबाह्य हैं वे अनेक आकार के हैं,

यथा—अयकोष्ठ, पिष्टपचनक, कंडू, लोही, कडाह, थाली, पिहडक, कृमिपट,

किन्नपुटक, उडव, मुरव, मृदंग, नन्दिमृदंग, आलिंगक, सुघोषा दर्दरक, पणव, पटह, भेरी, झालर,

कुतुंबक, नाली ।

तमःप्रभा पर्यन्त ऐसा ही समझना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! तमस्तमःप्रभा पृथ्वी में नरक किस आकार के हैं ?

उ०—गौतम ! दो प्रकार (आकार) के हैं, यथा—गोल और त्रिकोण ।

नारकावासों का परिमाण

[३९][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, तंजहा-हेट्ठा घणा सहस्सं, मज्झे झुसिरा सहस्सं,

उप्पिं संकुइया सहस्सं,

एवं—जाव—अहेसत्तमाए ।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभापुढवीए नरगा केवतियं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

संखिज्जवित्थडा[1] य, असंखेज्जवित्थडा य ।

तत्थ णं जे ते संखिज्जवित्थडा ते णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता,

---

१—सीमंतए णं नरए पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते—

सम० ४५ सूत्र २ ।

प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तट में सीमंतक नाम का नारकावास पैंतालीस लाख योजन लंबा-चौड़ा कहा है ।

तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता,
एवं—जाव—तमाए ।

[३] प्र०—अहेसत्तमाए णं भंते ! पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—
संखेज्जवित्थडे[1] य, असंखेज्जवित्थडा य ।
तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे से णं एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे य अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।
तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, असंखेज्जाइं —जाव—परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।

—जीवा० सूत्र ८२ पृ. १०४–५
—विवा. भाग ३ श. १३ उ. १, प्र. ३,८–१३, पृ. ३०१–५

[३९][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक (नारकावास) कितने मोटे हैं ?
उ०—गौतम ! तीन हजार योजन मोटाई वाले हैं, यथा—नीचे एक हजार योजन घन हैं, मध्य में एक हजार योजन पोले हैं और ऊपर एक हजार योजन संकुचित हैं । इसी प्रकार सातवीं पृथ्वी तक समझना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक कितने लम्बे-चौड़े एवं कितनी परिधि वाले हैं ?
उ०—गौतम ! दो प्रकार के विस्तार वाले हैं, यथा—संख्येय-विस्तार वाले और असंख्येय विस्तार वाले । इनमें से जो संख्येय विस्तार वाले हैं उनकी लम्बाई-चौड़ाई संख्येय सहस्र योजन की एवं परिधि भी संख्येय सहस्र योजन की है । जो असंख्येय विस्तार वाले हैं उनकी लम्बाई-चौड़ाई असंख्येय सहस्र योजन की और परिधि भी असंख्येय सहस्र योजन की है ।
तमःप्रभा पृथ्वी पर्यन्त ऐसा ही समझना चाहिए ।

[३] प्र०—भगवन् ! सप्तम पृथ्वी के नरक कितने लम्बे-चौड़े एवं कितनी परिधि वाले हैं ?
उ०—गौतम ! दो प्रकार के विस्तार वाले हैं, यथा—संख्येय-विस्तार वाले और असंख्येय विस्तार वाले । इनमें से जो संख्येय विस्तार वाले हैं वे एक लाख योजन लम्बे-चौड़े एवं तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष, किंचित् अधिक साढ़े तेरह अंगुल की परिधि वाले हैं । जो असंख्येय विस्तार वाले हैं वे असंख्य लाख योजन लम्बे-चौड़े एवं असंख्य लाख योजन की परिधि वाले हैं ।

नारकावासों का विस्तार

[४०][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केमहालिया पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए, सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लापूवसंठाणसंठिते, वट्टे रथचक्कवालसंठाणसंठिते, वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिते, वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिते, एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं—जाव—किंचि—विसेसाहिए परिक्खेवेणं ।
देवे णं महिड्ढिए—जाव—महाणुभागे—जाव—

१–अप्पइट्ठाणे नरए एगं जोयण-सय-सहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते ।

सम० १ सूत्र २० ।

सप्तम नरक में अप्रतिष्ठान नाम का नारकावास एक लाख योजन लंबा चौड़ा कहा है ।

इणामेव इणामेवत्ति कट्टु इमं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा,
से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरिताए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जयणाए छेगाए दिव्वाए दिव्वगतीए वीतिवयमाणे २ जहण्णेणं एगाहं वा दुयाहं वा तिआहं वा उक्कोसेणं छम्मासेणं वीतिवएज्जा,
अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीतिवएज्जा ।
एमहालया णं गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए नरगा पण्णत्ता,
एवं—जाव—अधेसत्तमाए,
णवरं—अधेसत्तमाए अत्थिगतियं नरगं वीइवइज्जा,
अत्थेगइए नरगं नो वीतिवएज्जा ।

—जीवा. सूत्र ८४ पृ० १०८

[४०][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक कितने विशाल हैं ?

उ०—गौतम ! यह जम्बूद्वीप सब द्वीप-समुद्रों के मध्य में है, सब से छोटा है, तेल में तले हुए पुये के समान गोल है, रथ के चक्रवाल के समान गोल है, कमल की कर्णिका के समान गोल है, प्रतिपूर्ण चन्द्रमा के समान गोल है, एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है,—यावत्—किंचित् अधिक तीन लाख योजन की परिधि वाला है ।

इस प्रकार के जम्बूद्वीप की तीन चुटकियों में इक्कीस वार परिक्रमा करके आ जाने वाला कोई महर्धिक—यावत्—महानुभाव देव हो । वह ऐसी उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चंड, शीघ्र, उद्धूत, वेगयुक्त, छेक एवं दिव्य देवगति से गमन करता हुआ जघन्य एक दिन, दो दिन अथवा तीन दिन एवं उत्कृष्ट छह मास चले तो कतिपय नारकावासों की भूमि का उल्लंघन (पार) कर सकता है, कतिपय नारकावासों को नहीं पार कर सकता है। हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक इतने विशाल हैं । सप्तम पृथ्वी तक ऐसा ही समझना चाहिए ।

सप्तम पृथ्वी के विषय में विशेषता यह है कि एक नारकावास को पार कर सकता है, किसी-किसी को अर्थात् शेष को पार नहीं कर सकता ।

नारकावासों का वर्णादि

[४१][१] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! काला कालावभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता,
एवं—जाव—अधेसत्तमाए ।

[२] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! से जहानामए अहिमडेति वा, गोमडेति वा, सुणगमडेति वा, मज्जारमडेति वा, मणुस्समडेति वा, महिसमडेति वा, मूसगमडेति वा, आसमडेति वा, हत्थिमडेति वा, सीहमडेति वा, वग्घमडेति वा, विगमडेति वा, दीवियमडेति वा, मयकुहियचिरविणट्ठकुणिमवावण्णदुब्भिगंधे, असुइविलीणविगतबीभत्थदरिसणिज्जे, किमिजालाउलसंसत्ते, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे ।
गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए नरगा एत्तो अणिट्ठतरका चेव, अकंततरका चेव—जाव—अमणामतरा चेव गंधेणं पण्णत्ता ।
एवं—जाव—अधेसत्तमाए पुढवीए ।

[३] प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभापुढवीनेरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! से जहानामए असिपत्तेइ वा, खुरपत्तेइ वा, कलंबचीरियापत्तेइ वा, सत्तग्गेइ वा, कुंतग्गेइ वा, तोमरग्गेइ वा, नारायग्गेइ वा, सूलग्गेइ वा, लउलग्गेइ वा, भिंडिमालग्गेइ वा, सूचिकलावेति वा, कविय्यछूति वा, विच्छुयकंटएति वा इंगालेति वा, जालेति वा, मुम्मुरेति वा, अच्चित्ति वा, अलाएति वा, सुद्धागणीइ वा, भवे एताख्वे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरा चेव-जाव-अमणामतरका चेव फासेणं पण्णत्ता ।

एवं-जाव-अधेसत्तमाए पुढवीए ।

—जीवा० सूत्र ८३ पृ० १०६-७

[४१][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकावास कैसे वर्ण के हैं ?

उ०—गौतम ! काले, काले अवभास वाले गंभीर लोमहर्ष वाले, भीम, त्रास उत्पन्न करने वाले एवं परम कृष्ण वर्ण वाले हैं । सप्तम नरकभूमि तक ऐसा ही जानना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकावास कैसी गंध वाले हैं ?

उ०—गौतम ! जैसे सर्प का मृत कलेवर, गौ का मृत कलेवर, श्वान का मृत कलेवर, मार्जार का मृत कलेवर, मनुष्य का मृत कलेवर, महिष (भैंसे) का मृत कलेवर, मूसक का मृत कलेवर, अश्व का मृत कलेवर, हस्ती का मृत कलेवर, सिंह का मृत कलेवर, व्याघ्र का मृत कलेवर, भेड़िया का मृत कलेवर, अथवा द्वीपिक का मृत कलेवर, जो बहुत समय से पड़ा हो, विनष्ट हो रहा हो, सड़ कर दुर्गन्ध दे रहा हो, अशुचि के समान क्लेशकारी परिणाम उत्पन्न करने वाला हो, देखने में वीभत्स हो तथा जिसमें कीड़ों का समूह बिलबिला रहा हो, क्या उसकी दुर्गन्ध के समान (रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकों की दुर्गन्ध) है ? नहीं, ऐसा नहीं है ।

गौतम ! इस रत्नप्रभा के नारकावास इससे भी अधिक अनिष्ट, अकान्त,-यावत्-अतिशय अमनोज्ञ गंध वाले हैं । सप्तम पृथ्वी के नरकों तक ऐसा ही जानना चाहिए ।

[३] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक किस प्रकार के स्पर्श वाले हैं ?

उ०—गौतम ! जिस प्रकार असिपत्र, क्षुरपत्र, कदम्बचीरिकापत्र, शक्ति का अग्रभाग (नोंक), कुन्त का अग्रभाग, तोमर का अग्रभाग, नाराच का अग्रभाग, शूल का अग्रभाग, लकुलाग्रभाग, भिंडिमाल का अग्रभाग, सूचीकलाप (सुइयों का समूह), कपिकच्छू (करौंच), बिच्छू का डंक, अग्नि, ज्वाला, मुर्मुर, अर्चि (लपट), अलात अथवा शुद्धाग्नि, क्या (रत्नप्रभा के नरकों का स्पर्श) ऐसा है ? नहीं, ऐसा नहीं है । गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक इससे भी अनिष्टतर-यावत्-अमनामतर स्पर्श वाले हैं । सप्तम पृथ्वी के नरकों तक यही बात समझनी चाहिए ।

वज्रमय नारकावास

[४२][१] प्र०—इमीसे णं भंते रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किंमया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सव्वइरामया पण्णत्ता ।

—जीवा. सूत्र ८५ पृ० १०६

[४२][१] प्र०—भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरक किसके बने हैं ?

उ०—गौतम ! पूरी तरह वज्रमय-वज्र के हैं ।

भवनावास

भवनवासी देवों के स्थान

[१][१] प्र०—कहि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता—
कहि णं भंते ! भवणवासी देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयण-सयसहस्सबाहल्लाए
उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता,
हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता, मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयण सयसहस्से एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवनकोडीओ बावत्तरि भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं[1] ।

—पन्न० पद २ पृ. २५५-६

[१][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहां हैं—
भगवन् ! भवनवासी देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का एक लाख अस्सी हजार योजन का पिण्ड (मोटापन) है । इसमें से एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे का भाग छोड़कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन के पिंड में भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवनावास हैं ।

असुरकुमारों के स्थान

[२][१] प्र०—अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?
उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।
एवं-जाव-अहेसत्तमाए पुढवीए,

[२] प्र०—सोहम्मस्स कप्पस्स अहे-जाव-अत्थि णं भंते ! ईसिपब्भाराए पुढवीए अहे असुरकुमारा देवा परिवसंति ?
उ०—नो इणट्ठे समट्ठे ।

[३] प्र०—से कहिं खाइ णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?
उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीओ, (उ) त्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए,
एवं[2] असुरकुमारदेववत्तव्वया,-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

—विवा. भाग २ श, ३ उ. १ प्र. १-३, पृ. ८४

[२][१] प्र०—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे असुरकुमार देव रहते हैं ?
उ०—गौतम ! नहीं, ऐसा नहीं है ।
इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए ।

---

१. (क)-जीवा. सूत्र ११६ पृ. १५८
(ख)-सम. १५०
(ग)-विवा. भाग १ श. २ उ ७ प्र. ५० पृ. २९५
२. पण्ण. पद २, पृ. २६५-२६८ ।

[२] प्र०—भगवन् ! क्या सौधर्मकल्प के नीचे-यावत्-ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे असुरकुमार देव रहते हैं ?
उ०—नहीं, ऐसा नहीं है ।

[३] प्र०—भगवन् ! तो फिर असुरकुमार देव कहां रहते हैं ?
उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के एक लाख अस्सी हजार योजन के पिण्ड में से (एक हजार ऊपर और एक हजार नीचे के भाग को छोड़कर) बीच में असुरकुमार देवों के आवास हैं । यहां असुरकुमारों की वक्तव्यता कहनी चाहिए,—यावत्—वे दिव्य भोग भोगते हुए रहते हैं ।

[३] [१] प्र०—कहि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?
कहि णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए—जाव—मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ-णं असुरकुमाराणं देवाणं चउसट्ठि भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं ।[1]
ते णं भवणा बाहिं वट्टा—जाव—पडिरूवा,
एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ।
तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे ।
तत्थ णं बहवे असुरकुमारा देवा परिवसंति ।
काला, लोहियक्खबिंबोट्ठा, धवलपुप्फदंता, असियकेसा, वामे एगकुंडलधरा, अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता,
ईसिसिलिंधपुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया,
वयं च पढमं समइक्कंता, बिइयं च असंपत्ता,
भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा,
तलभंगयतुडियपवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडितभुया, दसमुद्दामंडियग्गहत्था,
चूडामणिविचित्तचिंधगया, सुरूवा—जाव—दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।
—पन्न. पद २ पृ० २६५–२६८

[३] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ हैं ? अर्थात् भगवन् ! असुरकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में (ऊपर-नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर) एक लाख अठहत्तर हजार योजन के पृथ्वीपिण्ड में असुरकुमार देवों के चौसठ लाख भवनावास हैं ।
ये भवन बाहर से गोल—यावत्—प्रतिरूप हैं । यहीं पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान हैं । ये भी उपपात समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में हैं । यहाँ अनेक असुरकुमार देव रहते हैं ।
ये देव काले, लाल नेत्रों वाले, बिम्बफल के समान (लाल) ओष्ठ वाले, श्वेत पुष्प के समान दाँतों वाले, काले केशों वाले, वाम कर्ण में एक कुंडल धारण करने वाले, आर्द्र चन्दन से शरीर का लेपन करने वाले, किंचित् शिलिन्ध्र पुष्प के वर्ण के सदृश तथा अत्यन्त सुखद होने से तनिक भी संक्लेश न उत्पन्न करने वाले मुलायम एवं हल्के वस्त्रों को धारण करने वाले, प्रथम वय (कुमारावस्था) को पार कर द्वितीय वय (पूर्ण यौवनावस्था) को असंप्राप्त अर्थात् भद्र यौवनावस्था में

१—(क) जीवा. सूत्र ११७ पृ. १५६
(ख) सम. ६४
(ग) विवा. भाग १ श. १ उ. ५ प्र. १६६ पृ. १४२
(घ) " " ४ श. १६ उ. ७ प्र. १ पृ. ८६
(ङ) " " ३ श. १३ उ. २ प्र. ३ पृ. ३०७

रहने वाले, तलभंगक, त्रुटित तथा अन्य श्रेष्ठ आभूषणों तथा निर्मल मणिरत्नों से मण्डित भुजा वाले, हाथों की अंगुलियों में दस अंगूठियां धारण करने वाले, चूडामणि के अद्भुत चिह्न वाले, सुरूप—यावत्—दिव्य भोग भोगते हुए रहते हैं।

[४] ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा, अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया, उक्किण्णंतरविउलगंभीरखात-फलिहा, पागार-ट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा, जंत-सयग्घि-मुसल-मुसंढि-परियारिया, अउज्झा, सदाजया, सदागुत्ता, अडयालकोट्ठगरइया, अडयालकयवणमाला, खेमा, सिवा, किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया, गोसीस-सरस-रत्तचंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितला, उवचियचंदणकलसा, चंदणघड-सुकयतोरण-पडिदुवारदेसभागा,
आसत्तोसत्त-विउल-वट्टवग्घारियमल्लदामकलावा,
पंचवन्न-सरस-सुरभि-मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया,
कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामा, सुगंधवरगंधिया, गंधवट्टिभूया,
अच्छरगणसंघसंविगिन्ना, दिव्वतुडियसद्दसंपणादिया,
सव्वरयणामया, अच्छा, सण्हा, लण्हा, घट्टा, मट्ठा, णीरया, निम्मला, निप्पंका, निक्कंकडच्छाया, सप्पहा, ससिरिया, समरीइया, सउज्जोया, पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा,
एत्थ णं भवणवासिदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता,
उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखज्जइभागे।

—पन्न. पद २ पृ. २५५
—जीवा. सूत्र ११६ पृ. १५८
—सम. १४९

[४] (भवनवासी देवों के) वे भवन बाहर से गोल, अन्दर से चौकोर, नीचे से कमल की कर्णिका के समान हैं। इनके चारों ओर स्पष्ट अन्तर वाली, विस्तीर्ण और गहरी खात (खाई) एवं परिखा है। ये प्राकार अट्टालक, कपाट, तोरण एवं प्रतिद्वार से युक्त हैं। यंत्र, शतघ्नी, मूसल, मुसंढी आदि शस्त्रों से सज्जित हैं। इस कारण वे अयोध्य है—वहाँ कोई युद्ध करने में समर्थ नही है, सदा विजयशील तथा गुप्त—शत्रु के प्रवेश से रहित हैं। उनमें अड़तालीस कोठे और अड़तालीस वनमालाएँ हैं। वे क्षेमकारी और कल्याण-कारी हैं। किंकर देव इनकी रक्षा करते हैं। गोमय तथा चूने से लिपे-पुते एवं श्रेष्ठ हैं। रक्त चन्दन तथा गोशीर्ष चन्दन से वहाँ हाथे लगाए हुए हैं। चन्दन-चर्चित कलशों से सुशोभित हैं। चन्दन-चर्चित घटों से निर्मित तोरणों से शोभायमान हैं। नीचे तक लटकती हुई विपुल वर्तुलाकार मालाओं के समूह से शोभित हैं। पंच वर्ण के सरस सुरभित फैलाए हुए पुष्पों के पुंज से शोभायमान हैं। कृष्ण अगर, प्रवर कुन्दुरुष्क, तुरुष्क (लोभान), धूप आदि से मघमघायमान होने से अभिराम हैं। श्रेष्ठ सुगंध से सुवासित हैं अतएव सुगंधद्रव्य की गोली जैसे प्रतीत होते हैं। अप्सराओं के समूह से व्याप्त हैं। दिव्य वाद्यों के नाद से गुंजायमान हैं। पूरी तरह रत्नमय हैं, आकाश के समान स्वच्छ हैं। चिकने, मुलायम, घटारे और मठारे हैं। नीरज, निर्मल, निष्पंक, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, सश्रीक, किरणों वाले, सोद्योत, प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। इनमें पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान हैं।

ये उपपात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

चमरचंचा आवास

[५] [१] प्र०—कहिन्नं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो चमरचंचा नामं आवासे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे एवं जहा बितियसए[1] सभाउद्देसए वत्तव्वया सच्चेव अपरिसेसा नेयव्वा।

१—विवा. भाग १ श. २ उ. ८ प्र. ५१ पृ. २९७

GH. 4186

णवरं इमं णाणत्तं—जाव—तिगिच्छकूडस्स उप्पायपव्वयस्स चमरचंचाए रायहाणीए आवास-पव्वयस्स अन्नेसिं च बहूणं
सेसं तं चेव—जाव—तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं ।
तीसे णं चमरचंचाए रायहाणीए दाहिणपच्चत्थिमेणं छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पन्नासं च सहस्साइं अरुणोदयसमुद्दं तिरियं वीइवइत्ता,
एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो चमरचंचे नामं आवासे पण्णत्ते ।
चउरासीइं जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,
दो जोयणसयसहस्सा पन्नट्ठिं च सहस्साइं छच्च बत्तीसे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं ।
से णं एगेणं पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते,
से णं पागारे दिवड्ढं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं,
एवं चमरचंचाए रायहाणीए वत्तव्वया भाणियव्वा[1] सभाविहूणा,—जाव—वत्तारिपासायपंतीओ ।

[२] प्र०—चमरे णं भंते ! असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचे आवासे वसहिं उवेति ?
उ०—नो तिणट्ठे समट्ठे ।

[३] प्र०—से केणं खाइ अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—चमरचंचे आवासे० ?
उ०—गोयमा ! से जहानामए इहं मणुस्सलोगंसि उवगारियलेणाइ वा, उज्जाणियलेणाइ वा, निज्जाणियलेणाइ वा, धारिवारियलेणाइ वा,
तत्थ णं बहवे मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयंति सयंति जहा रायप्पसेणइज्जे[2]—जाव—कल्लाणफल-वित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति,
अन्नत्थ पुण वसहिं उवेंति,
एवामेव गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचे आवासे केवलं कीडारतिपत्तियं,
अन्नत्थ पुण वसहिं उवेति, से तेणट्ठेणं—जाव—आवासे ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति—जाव—विहरइ ।

—विवा. भाग ३ श. १३ उ. ६ प्र. २–३ पृ. ३२५

[५] [१] प्र०—भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर का चमरचंचा नामक आवास कहाँ है ?
उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में स्थित मन्दर पर्वत के दक्षिण से तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्रों को उल्लंघन करने पर अरुणवर नामक द्वीप आता है । इत्यादि वक्तव्यता जो द्वितीय शतक के सभा-उद्देशक में कही है, वह सभी यहाँ भी समझ लेना चाहिए । विशेषता यह है कि—यावत्—तिगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत, चमरचंचा नामक राजधानी, चमरचंच नामक आवासपर्वत तथा अन्य बहुतों का (अधिपतित्व करता हुआ विचरता है) शेष सब उसी प्रकार जानना चाहिए। यावत्—(तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन गव्यूति, अट्ठाईस धनुष, और) किंचित् अधिक साढ़े तेरह अंगुल की चमरचंचा की परिधि है । इस चमरचंचा राजधानी से दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) कोण में छह सौ पचपन करोड़, पैंतीस लाख, पचास हजार योजन अरुणोदक समुद्र में तिर्छा जाने पर असुरकुमारेन्द्र-असुरकुमारराज चमर का चमरचंच नामक आवास आता है । इसकी लम्बाई-चौड़ाई चौरासी हजार योजन है । इसकी परिधि दो लाख पैंसठ हजार छह सौ बत्तीस योजन से कुछ विशेषाधिक है । यह एक प्राकार से चारों ओर से घिरा हुआ है । यह प्राकार डेढ़ सौ योजन ऊँचा है। इस प्रकार चमरचंचा राजधानी की वक्तव्यता यहाँ कह लेना चाहिए किन्तु सभा की वक्तव्यता छोड़ देना चाहिए,—यावत्—चार प्रासादपंक्तियाँ हैं ।

१–विवा० भाग १, श. २, उ. ८, प्र. ५१, पृ. २९७
२–रायप्पसेणइज्ज प. ७६ सूत्र ३२

[२] प्र०—भगवन् ! क्या असुरेन्द्र-असुरकुमारों का राजा चमर चमरचंच नामक आवास में रहता है ?
उ०—नहीं, ऐसा नहीं है ।

[३] प्र०—भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि चमरचंच आवास में—इत्यादि ?

उ०—गौतम ! जैसे इस मनुष्यलोक में उपकारक—पीठबद्ध गृह, उद्यान में स्थित लोगों के लिए उपकारक गृह, नगरनिर्गमगृह (नगर से निकलने पर प्राप्त होने वाले घर) तथा वारिधारा (फौहारों) से युक्त गृह होते हैं, जहाँ अनेक पुरुष और स्त्रियाँ उठते, बैठते और सोते हैं,—यावत्—राजप्रश्नीय में उपलब्ध वर्णन की भांति—यावत्—कल्याणरूप फल और वृत्तिविशेष का अनुभव करते हुए रहते है, किन्तु निवास अन्यत्र करते हैं; इसी प्रकार गौतम ! असुरेन्द्र असुरकुमारराजा चमर का चमरचंच आवास केवल क्रीडा और रति के लिए है । उसका निवास तो अन्यत्र ही है ।
हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर यावत् (गौतम) विचरते है ।

चमरेन्द्र की सुधर्मा सभा

[६][१] प्र०—कहिं णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररन्नो सभा सुहम्मा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसयसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिच्छियकूडे नामं उप्पायपव्वए पण्णत्ते ।
सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं[1]
चत्तारि जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं
गोत्थूभस्स आवासपव्वयस्स पमाणेणं णेयव्वं ।
नवरं उवरिल्लं पमाणं मज्झे भाणियव्वं ।
मूले दस बावीसे जोयणसए विक्खंभेणं[2]
मज्झे चत्तारि चउवीसे जोयणसते विक्खंभेणं
उवरिं सत्ततेवीसे जोयणसते विक्खंभेणं
मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं,
मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगयाले जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं
उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलतीसे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं
—जाव-मूले वित्थडे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले,
मज्झे वरवइरविग्गहिए महामउंदसंठाणसंठिए
सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे ।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेणं वणसंडेणं य सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
पउमवरवेइयाए वणसंडस्स य वण्णओ ।
तस्स णं तिगिच्छिकूडस्स उप्पायपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ।
वण्णओ ।

---

१. सम. १७ सूत्र ७
२. ठा. अ. १० सूत्र ७२८ पृ. ४५७

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे
एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए पण्णत्ते ।
अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं[1]
पणवीसं जोयणसयाइं विक्खंभेणं ।
पासायवण्णओ, उल्लोयभूमिवण्णओ,
अट्ठ जोयणाइं मणिपेढिया,
चमरस्स सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं ।
तस्स णं तिगिच्छिकूडस्स दाहिणेणं छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं
अरुणोवं समुद्दं तिरियं वीइवइत्ता
अहे रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता
एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचा नामं रायहाणी पण्णत्ता ।
एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं जंबुद्दीवप्पमाणं ।
पागारो दिवड्ढं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं
मूले पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं
उवरिं अद्धतेरसजोयणाइं विक्खंभेणं कविसीसगा अद्धजोयणं आयामेणं, कोसं विक्खंभेणं,
देसूणं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं
एगेगाए बाहाए पंच-पंच बारसया अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं (२५०) उच्चत्तेणं
अद्धं (१२५) विक्खंभेणं, उवरियलेणं सोलसजोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं[3]
पन्नास जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउय जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं
सव्वप्पमाणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं ।
सभा सुहम्मा,[4] उत्तारपुरच्छिमेणं जिणघरं,

१—असुरकुमाराणं देवाणं पासायवडिंसगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । —सम. १०३
असुरकुमार देवों के प्रासाद अढ़ाई सौ योजन उँचे हैं ।

२—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चमरचंचाए राजहाणीए एक्कमेक्कवाराए तेतीसं तेतीसं भोमा प० । —सम. ३३
असुरेन्द्र असुरराज चमर की चमरचंचा राजधानी में एक-एक द्वार पर तेतीस-तेतीस भौम हैं ।

३—चमर-बलीणं उवयरियालेणे सोलसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते । —सम. १६सूत्र ६
चमरेन्द्र और बलीन्द्र के उपकारिकालयनों की लम्बाई-चौड़ाई सोलह हजार योजन की कही गई है ।

४—चमरचंचाए रायहाणीए पंच सभा प०, तंजहा—
सभा सुहम्मा, उववातसभा, अभिसेयसभा, अलंकारितसभा, ववसायसभा ।
एगमेगे णं इंदट्ठाणे णं पंच सभाओ प० तंजहा—
सभा सुधम्मा—जाव—ववसातसभा । —ठा. अ. ५ उ. ३ सूत्र. ४७२ पृ. ३३३
चमर चंचा राजधानी में पांच सभाएँ हैं, यथा—
सुधर्मा सभा, उपपातसभा, अभिषेकसभा, अलंकारसभा और व्यवसाय सभा ।
प्रत्येक इन्द्रस्थान में पांच सभाएँ हैं, यथा—
सुधर्मा सभा—यावत्—व्यवसाय सभा ।
चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा छत्तीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । —सम. ३६
असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊँची है ।
चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुधम्मा एक्कावन्नखंभसयसंनिविट्ठा प० । —सम. ५१
असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा इक्यावन सौ खंभों पर सन्निविष्ट है ।

ततो उववायसभा, हरओ, अभिसेय, अलंकारो जहा विजयस्स
गाथा—उववाओ संकप्पो अभिसेय-विभूसणा य ववसाओ,
अच्चणिय सिद्धायण गमो वि य णं चमरपरिवार इड्ढित्तं ।

—विवा. भाग १ श. २ उ. ८ प्र. ५१ पृ. २६७-२६६

[६] [१] प्र०—भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में स्थित मन्दर (मेरु) पर्वत के दक्षिण से तिर्यक् असंख्यात द्वीप-समुद्र उल्लंघन करने के पश्चात् अरुणवर नामक द्वीप आता है । इस द्वीप की बाह्य वेदिका से आगे बढ़ने पर अरुणोदय नामक समुद्र आता है । इस समुद्र में बयालीस लाख योजन नीचे जाने पर असुरेन्द्र एवं असुरराज चमर का तिगिच्छककूट नामक उत्पातपर्वत आता है । इस पर्वत की उंचाई १७२१ योजन है । उसका उद्वेध ४३० योजन और एक कोस है । इस पर्वत का नाप गोस्तुभ नामक आवास पर्वत के नाप के समान समझना चाहिए । विशेषता यह है कि गोस्तुभ के ऊपरी भाग का नाप इसके मध्य भाग के लिए जानना चाहिए । तिगिच्छककूट पर्वत का विष्कम्भ (चौड़ाई) मूल में १०२२ योजन, मध्य में ४२४ योजन और ऊपर ७२३ योजन है । इसका परिक्षेप (घेर) मूल में ३२३२ योजन से कुछ अधिक, मध्य में १३४१ योजन से कुछ अधिक तथा ऊपर से २२८६ योजन से कुछ अधिक है । यह मूल में विस्तृत, मध्य में संकीर्ण तथा ऊपर से विशाल है । इसका मध्यभाग उत्तम वज्र तथा महामुकुन्द (वाद्यविशेष) के आकार का है । यह सारा ही रत्नमय है, सुन्दर है—यावत्—प्रतिरूप है ।

यह पर्वत एक पद्मवरवेदिका से तथा एक वनखण्ड से सम्यक्तया चारों ओर से वेष्टित है । यहाँ पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

इस तिगिच्छककूट पर्वत का ऊपरी भाग समतल एवं मनोहर है । इसका भी वर्णन यहाँ समझना चाहिये । उस समतल मनोहर भूमिभाग के मध्य में एक विशाल प्रासाद है, जिसकी उंचाई २५० योजन तथा विष्कंभ १२५ योजन है । यहाँ प्रासाद तथा उसके ऊपरी भाग का वर्णन जान लेना चाहिए । यहाँ आठ योजन की मणिपीठिका है । चमर के सपरिवार सिंहासन का वर्णन जान लेना चाहिए ।

तिगिच्छककूट पर्वत के दक्षिण में ६५५ करोड़, ३५ लाख, ५५ हजार योजन अरुणोद समुद्र से तिर्छे जाकर नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी में ४० हजार योजन प्रदेश पार करने के पश्चात् असुरेन्द्र असुरराज चमर की चमरचंचा नामक राजधानी है ।

चमरचंचा राजधानी की लम्बाई-चौड़ाई (आयाम-विष्कंभ) जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन का है । इसका प्राकार १५० योजन ऊँचा है । प्राकार के मूल का विष्कंभ ५० योजन तथा ऊपर का विष्कंभ साढ़े बारह योजन का है । उसके कंगूरों (कपिशीर्षकों) का आयाम आधा योजन, विष्कंभ एक कोस और ऊँचाई आधे योजन से किंचित् न्यून है ।

प्राकार की प्रत्येक बाहु में पांच सौ द्वार हैं, जिनकी ऊँचाई २५० योजन और विष्कंभ इससे आधा अर्थात् १२५ योजन है । उपकारिकालयन (गृह के पीठबंध जैसे भाग) का आयामविष्कंभ १६ हजार योजन व परिक्षेप ५०५६७ योजन से कुछ विशेष कम है ।

यहां सर्व प्रमाण-नाप वैमानिकों से आधा जानना चाहिये । सुधर्मा सभा, उत्तर-पूर्व दिशा में जिनगृह, तत्पश्चात् उपपातसभा, ह्रद, अभिषेक (सभा) एवं अलंकार (सभा) का वर्णन विजयदेव के वर्णन के समान जानना चाहिए[1] ।

संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका, सिद्धायतन-गम, चमर का परिवार तथा ऋद्धि-सम्पन्नता (विजय देव के समान ।)

१—जीवाभिगम सूत्र, विजयवर्णन अधिकार ।

चमरेन्द्र के लोकपालों के उत्पात पर्वत

[७] **चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो सोमप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते ।**

[७] असुरेन्द्र असुरराज चमर के महाराजा सोमप्रभ का सोमप्रभ नामक उत्पात पर्वत दस सौ योजन ऊँचा है, दस सौ गव्यूति गहरा है और मूल में दस सौ योजन विस्तृत है ।

[८] **चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो जमस्स महारण्णो जमप्पभे उप्पातपव्वते एवं चेव ।**
एवं वरुणस्स वि, एवं वेसमणस्स वि ।

—ठा. अ. १० सूत्र ७२८ पृ. ४५७

[८] चमर असुरेन्द्र असुरराजा के महाराज यम का यमप्रभ नामक उत्पातपर्वत भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।
इसी प्रकार वरुण और वैश्रमण के उत्पात पर्वत भी समझ लेना चाहिए ।

बली की सुधर्मा सभा

[९] [१] **प्र०—कहिन्नं भंते ! बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो सभा सुहम्मा पन्नत्ता ?**

उ०—गोयमा ? जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे जहेव चमरस्स—जाव—बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे नामं उप्पायपव्वते पन्नत्ते,[1]
सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए[2]—एवं पमाणं जहा तिगिच्छिकूडस्स पासायवडेंसगस्स वि तं चेव पमाणं,
सीहासणं सपरिवारं बलिस्स परियारेणं,
अट्ठो तहेव, नवरं रुयगिंदप्पभाइं ३, सेसं तं चेव—जाव—बलिचंचाए रायहाणीए अन्नेसिं च—जाव—रुयगिंदस्स णं उप्पायपव्वयस्स उत्तरेणं छक्कोडिसए तहेव—जाव—चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो बलिचंचा नामं रायहाणी पन्नत्ता,
एगं जोयणसयसहस्सं पमाणं, तहेव—जाव—बलिपेढस्स उववाओ—जाव—आयरक्खा, सव्वं तहेव निरवसेसं,
नवरं सातिरेगं सागरोवमं ठिती पन्नत्ता,
सेसं तं चेव—जाव—बली वइरोयणिंदे बली० २ ।

—विवा. भाग ४ श. १६ उ. ९ प्र. १ पृ. २६

[९] [१] प्र०—भगवन् ! वैरोचनेन्द्र—वैरोचनराजा बलि की सुधर्मा सभा कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में स्थित मन्दर पर्वत के उत्तर से तिर्छे असंख्य (द्वीप-समुद्र लांघने के पश्चात्), इत्यादि समस्त वर्णन जिस प्रकार चमर के विषय में किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए,—यावत्—४२ हजार योजन नीचे जाने पर वैरोचनेन्द्र—वैरोचनराजा बलि का रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत आता है । यह पर्वत भी तिगिच्छकूट पर्वत की ही तरह १७२१ योजन ऊँचा हैं । प्रासाद का प्रमाण भी वही है । बलि का सिंहासन, परिवार, आठ योजन की मणिपीठिका आदि सब का वर्णन चमर की ही भाँति समझना चाहिए । विशेषता यह है कि

१—ठा. अ. १० सूत्र ७२८ पृ. ४५७
२—सम. १७

यहाँ रुचकेन्द्र (रत्न) की प्रभा वाले (उत्पलादि) होते हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार है,—यावत्—बलिचंचा राजधानी के—यावत्—रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत के उत्तर में ६५५ करोड़—यावत्—चालीस हजार योजन प्रदेश पार करने के अनन्तर वैरोचनेन्द्र—वैरोचनराजा बलि की बलिचंचा नामक राजधानी आती है। इसका प्रमाण एक लाख योजन है। बलिपीठ, उपपात, आत्मरक्षक आदि समस्त बातें उसी प्रकार हैं। विशेषता यह है कि (बलि की) स्थिति सागरोपम से कुछ अधिक है। शेष सब उसी प्रकार।

बलि के लोकपालों के उत्पात पर्वत

[१०] **बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स सोमस्स एवं चेव जधा चमरस्स लोगपालाणं तं चेव बलिस्स वि।**

—ठा. अ. १० सूत्र ७२८ पृ. ४५७

[१०] वैरोचनेन्द्र बलि के उत्पातपर्वत के समान (लोकपाल) सोम के उत्पातपर्वत का वर्णन है। बलि के लोकपालों का कथन चमर के लोकपालों जैसा ही है।

दाक्षिणात्य असुरकुमारों के स्थान

[११][१] **प्र०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?—कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला देवा परिवसंति ?**

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, इमीसे रयणप्पभाए—जाव—मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं चउतीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।[1]

ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा, सो चेव वण्णओ—जाव—पडिरूवा।

एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता।

तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे,

तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा देवीओ य परिवसंति,

काला लोहियक्खा तहेव—जाव—भुंजमाणा विहरंति।[2]

एएसि णं तहेव तायतीसग—लोगपाला भवंति,

एवं सव्वत्थ भाणियव्वं भवणवासीणं।

—पन्न. पद २ पृ. २७१-२७२

[११][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त-अपर्याप्त दक्षिणी असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ हैं ? अर्थात् भगवन् ! दक्षिणी असुरकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मंदर (मेरु) पर्वत के दक्षिण में, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन के पिण्ड में दक्षिणी असुरकुमार देवों के चौतीस लाख भवनावास हैं।

ये भवन बाहर से गोल, अन्दर से चौकोर—यावत्—प्रतिरूप हैं। यहीं पर्याप्त-अपर्याप्त दक्षिणी असुरकुमार देवों के स्थान हैं। ये भी उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहां बहुत से असुरकुमार देव और देवियां रहती हैं। ये कृष्ण वर्ण वाले लाल नेत्रों वाले—यावत्—दिव्य भोग भोगते हुए रहते हैं। उसी प्रकार इनके त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल होते हैं।

शेष भवनावासों में सर्वत्र इसी प्रकार कह लेना चाहिए।

१—जीवा. सूत्र ११७ पृ. १५९
२—सम. ३४ सूत्र ५

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY HYDERABAD-7

उत्तरीय असुरकुमारों के स्थान

[१२][१] प्र०—कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता, हिट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता, मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं तीसं भवणावाससय-सहस्सा भवंतीति मक्खायं ।
ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा,
सेसं जहा दाहिणिल्लाणं—जाव—विहरंति ।

—पन्न. पद २ पृ. २७३
—जीवा. सूत्र ११९ पृ. १६६

[१२][१] प्र०—भगवन् ! उत्तरीय पर्याप्त-अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ हैं ? अर्थात् भगवन् ! उत्तरीय असुरकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मंदर पर्वत के उत्तर में, इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के एक लाख अस्सी हजार मोटे पृथ्वी पिण्ड में से एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे के भाग को छोड़कर बीच के एक लाख अठहत्तर हजार योजन पिण्ड में उत्तरीय असुरकुमार देवों के तीस लाख भवनावास हैं। ये भवन बाहर से गोल एवं अन्दर से चौकोर हैं। शेष सब कथन दक्षिणी असुरकुमारों के समान समझ लेना चाहिए।

नागकुमार देवों के स्थान

[१३][१] प्र०—कहि णं भंते ! नागकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! नागकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए—जाव—मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं नागकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं चुलसीइ भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं ।[1]
ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा—जाव—पडिरूवा,
तत्थ णं णागकुमाराणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,
तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे,
तत्थ णं बहवे नागकुमारा देवा परिवसंति, महिड्ढिया महज्जुईया,
सेसं जहा ओहियाणं—जाव—विहरंति ।
धरणप्पूयाणंदा एत्थ णं नागकुमारिंदा णागकुमारराया णो परिवसंति महिड्ढिया,
सेसं जहा ओहियाणं—जाव—विहरंति ।

—पन्न. पद २ पृ. २७५
—जीवा. सूत्र १२० पृ. १६७

[१३][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त-अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहाँ हैं ? अर्थात् भगवन् ! नागकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में (ऊपर-नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर) एक लाख अठहत्तर हजार योजन पृथ्वीपिण्ड में पर्याप्त-अपर्याप्त नागकुमार देवों के चौरासी लाख भवनावास हैं। ये भवन बाहर से गोल, अन्दर से चौकोर,—यावत्—प्रतिरूप हैं। यहीं पर्याप्त-अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान हैं। ये उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें

१—सम. ८४ सूत्र ११

भाग में हैं। यहाँ बहुतेरे नागकुमार देव रहते हैं जो महर्धिक एवं महाद्युतिमान् हैं। शेष कथन सामान्य भवनवासियों के समान समझना चाहिए। इनमें धरण और भूतानन्द नामक दो नाग कुमारेन्द्र एवं नागकुमारों के राजा रहते हैं, जो—यावत्—महर्द्धिक हैं। शेष सब सामान्य वक्तव्यता के अनुसार समझना,—यावत्—भोग भोगते हुए विचरते हैं।

दाक्षिणात्य नागकुमारों के स्थान

[१४][१] प्र०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए—जाव—मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं, चउयालीसं[1] भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं,
ते णं भवणा बाहिं वट्टा—जाव—पडिरूवा,
एत्थ णं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,
तीसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे,
एत्थ णं दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया—जाव—विहरंति।

—पन्न. पद २ पृ. २७५-२७६
—जीवा. सूत्र १२० पृ. १६७

[१४][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त-अपर्याप्त दक्षिणी नागकुमार देवों के स्थान कहां हैं ? अर्थात् भगवन् ! दाक्षिणात्य नागकुमार देव कहां रहते हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मंदर (मेरु) पर्वत के दक्षिण में, इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में, एक लाख अठहत्तर हजार योजन के पृथ्वी पिण्ड में दक्षिणी नागकुमार देवों के चवालीस लाख भवनावास हैं।

ये भवन बाहर से गोलाकार-यावत्-प्रतिरूप हैं। यहीं पर्याप्त-अपर्याप्त दक्षिणी नागकुमारों के स्थान हैं। ये तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहीं दक्षिणी नागकुमार देव रहते हैं। ये महर्द्धिक-यावत्-भोग भोगते हुए विचरने वाले हैं।

उत्तरीय नागकुमारों के स्थान

[१५][१] प्र०—कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं,
इमीसे रयणप्पभाए-जाव-मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से
एत्थ णं उत्तरिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं
चत्तालीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।[1]
ते णं भवणा बाहिं वट्टा, सेसं जहा दाहिणिल्लाणं-जाव-विहरंति।

—.पन्न पद २ पृ. २७७
—जीवा. सूत्र १२० पृ. १६८

१—सम. ४० सूत्र ४

[१५][१] प्र०—भगवन्! पर्याप्त-अपर्याप्त उत्तरीय नागकुमार देवों के स्थान कहां हैं? अर्थात् भगवन्! उत्तरीय नागकुमार देव कहां रहते हैं?

उ०—गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मंदर (मेरु) पर्वत के उत्तर में, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में, एक लाख अठहत्तर हजार योजन के पृथ्वीपिण्ड में उत्तरीय नागकुमार देवों के चालीस लाख भवनावास हैं। ये भवन बाहर से गोल हैं। शेष दाक्षिणात्य नागकुमारों की भांति जानना चाहिये।

सुपर्णकुमार देवों के स्थान

[१६][१] प्र०—कहि णं भंते! सुवन्नकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता?
कहि णं भंते! सुवन्नकुमारा देवा परिवसंति?

उ०—गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए-जाव-एत्थ णं सुवन्नकुमाराणं देवाणं बावत्तरिं भवणावास-सयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।[1]
ते णं भवणा बाहिं वट्टा-जाव-पडिरूवा,
तत्थ णं सुवन्नकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता
जाव-तिसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे,
तत्थ णं बहवे सुवन्नकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया,
सेसं जहा ओहियाणं-जाव-विहरंति।
वेणुदेवे वेणुदाली य इत्थ दुवे सुवण्णकुमारिंदा सुवण्णकुमाररायाणो परिवसंति,[2]
महिड्ढिया-जाव-विहरंति।

—पन्न. पद २ पृ. २७८

[१६][१] प्र०—भगवन्! पर्याप्त-अपर्याप्त सुव (प) र्णकुमार देवों के स्थान कहां हैं? अर्थात् भगवन्! सुवर्ण-कुमार देव कहां रहते हैं?

उ०—गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में सुवर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख भवनावास हैं। ये भवन बाहर से गोल-यावत्-प्रतिरूप हैं। यहां पर्याप्त-अपर्याप्त सुवर्णकुमार देवों के स्थान हैं। ये तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहां बहुत से सुवर्णकुमार देव रहते हैं जो महर्द्धिक हैं। शेष कथन सामान्य भवनवासियों के कथन के समान समझना चाहिए। यहां वेणुदेव और वेणुदाली नामक दो सुवर्णकुमारेन्द्र सुवर्णकुमारराजा रहते हैं। ये भी महर्द्धिक हैं,—यावत्—भोग भोगते हुए रहते हैं।

दाक्षिणात्य सुपर्णकुमार देवों के स्थान

[१७][१] प्र०—कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?
कहि णं भंते! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?

उ०—गोयमा! इमीसे-जाव-मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से
एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं अट्ठतीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं,
ते णं भवणा बाहिं वट्टा-जाव-पडिरूवा।

---

१. सम. ७२ सूत्र १
२. ठा. अ. २ उ. २ सूत्र ९४ पृ. ८०

एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।
तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे,
एत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति,
वेणुदेवे य इत्थ सुवन्नकुमारिंदे सुवन्नकुमारराया परिवसइ ।[1]
सेसं जहा नागकुमाराणं ।

—पन्न. पद २ पृ. २७९

[१७][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त-अपर्याप्त दक्षिणी सुवर्णकुमार देवों के स्थान कहां हैं ? अर्थात् भगवन् ! दक्षिणी सुवर्णकुमार देव कहां रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में, एक लाख अठहत्तर हजार योजन के पृथ्वीपिण्ड में दाक्षिणात्य सुवर्णकुमारों के अड़तीस लाख भवनावास हैं। ये भवन बाहर से गोल-यावत्-प्रतिरूप है, जहां पर्याप्त-अपर्याप्त दक्षिणी सुवर्णकुमारों के स्थान हैं। ये उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहां अनेक सुवर्णकुमार देव रहते हैं।
यहां वेणुदेव नामक सुवर्णकुमारेन्द्र-सुवर्णकुमारराजा है। शेष कथन नागकुमारों के समान समझना चाहिए।

उत्तरीय सुपर्णकुमार देवों के स्थान

[१८][१] प्र०—**कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं सुवन्नकुमाराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?**
कहि णं भंते ! सुवन्नकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—**गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए-जाव—**
एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवन्नकुमाराणं चउतीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं ।
ते णं भवणा-जाव-एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवन्नकुमारा देवा परिवसंति,
महिड्ढिया-जाव-विहरंति ।
वेणुदाली इत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवन्नकुमारराया परिवसइ महिड्ढीए, सेसं जहा नागकुमाराणं ।

—पन्न. पद २ पृ. २८०

[१८][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त-अपर्याप्त उत्तरीय सुवर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ हैं ? अर्थात् भगवन् ! उत्तरीय सुवर्णकुमार देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में उत्तरीय सुवर्णकुमार देवों के चौतीस लाख भवनावास हैं। इन भवनों में बहुत से उत्तरी सुवर्णकुमार देव रहते हैं। ये महर्द्धिक—यावत्—भोग भोगते हुए विचरते हैं। यहाँ वेणुदाली नामक सुवर्णकुमारेन्द्र-सुवर्णकुमारराजा रहता है। यह भी महर्धिक है। शेष कथन नागकुमारों के समान समझ लेना चाहिए।

गाहाओ—

चउसट्ठी असुराणं चउरासीइ य होइ नागाणं,
बावत्तरि सुवण्णाणं वाउकुमाराण छन्नउई ।।१।।
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणिय-मग्गीणं,
छण्णं पि जुयलयाणं छावत्तरिमो सयसहस्सा ।।२।।
चोत्तीसा चोयाला अट्ठत्तीसं च सयसहस्साइं ।

---

१. ठा. अ. २ उ. ३ सूत्र ९४ पृ. ८०

पण्णा चत्तालीसा, दाहिणओ होंति भवणाइं ।।३।।
तीसा चत्तालीसा चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं ।
छायाला छत्तीसा, उत्तरओ होंति भवणाइं ।।४।।

—विवा. श. १ उ. ५ प्र. १६६, पृ. १४२
—पण्ण. पद २, पृ. २८१

गाथार्थ—

असुरकुमारों के चौंसठ लाख, नागकुमारों के चौरासी लाख, सुवर्णकुमारों के बहत्तर लाख, वायुकुमारों के छयानवे लाख, द्वीपकुमारों, दिक्कुमारों, उदधिकुमारों, विद्युत्कुमारों, स्तनितकुमारों और अग्निकुमारों के युगलों के छहत्तर लाख भवनावास हैं।

दक्षिण दिशा में असुरकुमारों के ३४ लाख, नागकुमारों के ४४ लाख, सुवर्णकुमारों के ३८ लाख, वायुकुमारों के ५० लाख तथा शेष के—चालीस-चालीस लाख भवन हैं।

उत्तर दिशा में असुरकुमारों के ३० ल.ख, नागकुमारों के ४० लाख, सुवर्णकुमारों के ३४ लाख, वायुकुमारों के ४६ लाख तथा शेष (छह) के छत्तीस-छत्तीस लाख विमान हैं।

धरणेन्द्र आदि की प्ररूपणा

[१६] धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररन्नो धरणप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसहस्साइं उद्धं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसताइं विक्खंभेणं।
धरणस्स णागकुमारिंदस्स णं णागकुमाररन्नो कालवालस्स महारण्णो एवं—जाव—संखवालस्स।
एवं भूताणंदस्स वि।
एवं लोगपालाणं पि से जहा धरणस्स, एवं—जाव—थणियकुमाराणं सलोगपालाणं भाणियव्वं,
सव्वेसिं उप्पायपव्वया भाणियव्वा सरिसणामगा।

—ठा. अ. १० सूत्र ७२८ पृ. ४५७.

[१६] नागकुमारेन्द्र नागकुमारराजा धरण का धरणप्रभ नामक उत्पात पर्वत है। इसकी ऊँचाई दस हजार योजन, उद्वेध दस सौ गव्यूति तथा मूल में विष्कंभ दस सौ योजन है।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराजा धरण के (लोकपाल) कालपाल महाराजा का महाकालप्रभ पर्वत भी इसी प्रकार है।

भूतानन्द के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए।

लोकपालों के विषय में भी धरण के समान समझना चाहिए। इस तरह लोकपालों सहित स्तनितकुमार पर्यन्त समझ लेना चाहिए। इन सब के उत्पातपर्वत सदृश नाम वाले (इन्द्रों के समान नाम वाले) कहने चाहिए।

अधोलोक का मध्यभाग

प्र०—कहि णं भंते ! अहेलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए उवासंतरस्स सातिरेगं अद्धं ओगाहित्ता एत्थ णं अहेलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते।

—विवा. भाग ३ श. १३ उ. ४ प्र. ७ पृ. ३१३

प्र०—भगवन् ! अधोलोक का आयाममध्य कहां है ?
उ०—गौतम ! चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के अवकाशान्तर में आधे से कुछ अधिक भाग अवगाहन करने पर अधोलोक का आयाममध्य कहा गया है।

मध्यलोक

वान-व्यन्तर देवों के स्थान

[१][१] प्र०—कहि णं भंते ! वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! वाणमंतरा देवा परिवसंति ?

उ०—इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहित्ता, हिट्ठा वि एगं जोयणसयं वज्जित्ता, मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु,[1] एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं ।[2]
ते णं भोमेज्जा नगरा बाहिं वट्टा-जाव-दिव्वतुडियसद्दसंपणादिया, पडागमालाउलाभिरामा, सव्वरयणामया, अच्छा-जाव-पडिरूवा ।
एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।
तिसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

—पण्ण. पद २ पृ. २८४-६
—जीवा. सूत्र १२१
—सम. सूत्र १५० पृ. १७१

[१][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त-अपर्याप्त वाण-व्यन्तर देवों के स्थान कहां हैं ? अर्थात् भगवन् ! वाण-व्यन्तर देव कहां रहते हैं ?

उ०—इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नमय काण्ड के सहस्र योजन के पृथ्वीपिण्ड में से एक सौ योजन ऊपर और एक सौ योजन नीचे के भाग को छोड़कर मध्य के आठ सौ योजन पृथ्वीपिण्ड में वाण-व्यन्तर देवों के असंख्य लाख तिर्यक् भौमेय नगरावास हैं । ये भौमेय नगर बाहर से गोल-यावत्-दिव्य वाद्यों के शब्दों से गुंजायमान रहते है । पताकाओं की पंक्तियों से शोभायमान हैं, सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप है । यहां पर्याप्त और अपर्याप्त वाण-व्यन्तर देवों के स्थान हैं । ये उपपात, समुद्घात और स्वस्थान-तीनों की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में है ।

[२][१] प्र०—केरिसा णं भंते ! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! से जहानामए इह मणुस्सलोगम्मि असोगवणे इ वा, सत्तवण्णवणे इ वा, चंपयवणे इ वा, चूयवणे इ वा, तिलगवणे इ वा, लाउवणे इ वा, निग्गोहवणे इ वा, छत्तोहवणे इ वा, असणवणे इ वा, सणवणे इ वा, अयसिवणे इ वा, कुसुंभवणे इ वा, सिउत्थवणे इ वा, बंधुजीवगवणे इ वा, णिच्चं कुसुमिय-माइय-लवइय-थवइय-गुलुइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय-विणमिय-पणमिय-सुविभत्तपिंडिमंजरिवडेंसगधरे, सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ,
एवामेव तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठितीएहिं,
उक्कोसेणं पलिओवमट्ठितीएहिं,
बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णा,

---

१. सम. १११ सूत्र २
२. विवा. भाग ४ श. १९ उ. ८ प्र. ३ पृ. ९०

विकिण्णा, उवत्थडा, संथडा, फुडा, अवगाढगाढा,
सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।
एरिसगा णं गोयमा ! तेसिं च वाणमंतराणं देवाणं देवलोआ पण्णत्ता ।

—विवा. भाग १ श. १ उ. १ प्र. ६२ पृ. ८४-८५

[२][१] प्र०—भगवन् ! इन वाण-व्यन्तर देवों के देवलोक कैसे हैं ?

उ०—गौतम ! जिस प्रकार इस मनुष्यलोक में सदैव कुसुमित, मंजरीयुक्त, पुष्पगुच्छ युक्त, लतासमूह-युक्त, पत्रगुच्छयुक्त,समान श्रेणीवाले, युगल वृक्ष वाले, पुष्प-फलभार से विनमित, पुष्प-फलभार से प्रणमित तथा विभिन्न शाखाओं एवं मंजरियों के मुकुट को धारण करने वाले अशोकवन, सप्त-पर्णवन, चम्पकवन, आम्रवन, तिलकवन, अलाबुवन, न्यग्रोधवन, छत्रौघवन, असनवन, सनवन, अलसीवन, कुसुंभवन, सर्षपवन अथवा बन्धुजीवकवन शोभा से अत्यन्त सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक पल्योपम की स्थिति वाले अनेक वाणव्यन्तर देवों एवं देवियों से व्याप्त, सुव्याप्त, ऊर्ध्वोर्ध्व, आच्छादित स्पृष्ट एवं अवगाढ वाण-व्यन्तर देवों के देवलोक शोभा से अत्यन्त सुशोभित रहते हैं। गौतम ! इन वाण-व्यन्तर देवों के देवलोग ऐसे हैं ।

पिशाच देवों के स्थान

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! पिसायाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! पिसाया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए—जाव—मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु,
एत्थ णं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं,
ते णं भोमेज्जनगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवन्नओ तहा भाणियव्वो—जाव—पडिरूवा ।
एत्थ णं पिसायाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,
तीसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे,
तत्थ बहवे पिसाया देवा परिवसंति,
महिड्ढिया जहा ओहिया—जाव—विहरंति,
काल-महाकाला इत्थ दुवे पिसायिंदा पिसायरायाणो परिवसंति,[1]
महिड्ढिया महज्जुइया—जाव—विहरंति ।

—पण्ण. पद २ पृ. २८९-२९०
—जीवा. सूत्र १२१ पृ. १७१

[३] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त-अपर्याप्त पिशाच देवों के स्थान कहाँ हैं ? अर्थात् भगवन् ! पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के (रत्नमय काण्ड के) मध्य में, आठ सौ योजन में पिशाच देवों के असंख्य लाख तिर्यक् भूमिगृह-नगरावास हैं। ये भूमिगृह-नगरावास बाहर से गोल—यावत्—औधिक भवन वर्णन के समान प्रतिरूप हैं। यहाँ पर्याप्त-अपर्याप्त पिशाच देवों के स्थान हैं। ये भी लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहाँ अनेक पिशाच देव रहते हैं, जो महर्धिक—यावत्—औधिकों के समान विचरने वाले हैं।
यहाँ काल और महाकाल नामक दो पिशाचेन्द्र पिशाचराज निवास करते, हैं जो महर्धिक एवं महा-द्युतिमान् हैं,—यावत्—(भोगोपभोग भोगते हुए) विचरते हैं।

१—ठा. अ. २ उ. ३ सूत्र ९४ पृ. ८०

दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान

[४] [१] प्र०—कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे—जाव—मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।
ते णं भवणा जहा ओहिओ भवणवन्नओ तहा भाणियव्वो—जाव—पडिरूवा।
एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता,
तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे,
तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति,
महिड्ढिया—जहा ओहिया—जाव—विहरंति।
काले एत्थ पिसायिंदे पिसायराया परिवसइ, महिड्ढिए—जाव—पभासेमाणे,
से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जनयरावाससयसहस्साणं—जाव—विहरइ।

—पण्ण. पद २ पृ. २६०-२६१
—जीवा. सूत्र १२१ पृ. १७१

[४] [१] प्र०—भगवन् ! दक्षिणी पिशाच देवों के स्थान कहाँ हैं ? अर्थात् भगवन् ! दक्षिणी पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में स्थित मंदर पर्वत के दक्षिण में इसी (रत्नप्रभा पृथ्वी) के (रत्नमय काण्ड के) मध्य में आठ सौ योजन में दक्षिणी पिशाच देवों के असंख्य लाख तिर्यक् भौमेय-नगरावास है। इन भवनों का वर्णन औधिक भवनों के वर्णन के ही समान है—यावत्—वे प्रतिरूप हैं। यहाँ पर्याप्त-अपर्याप्त दक्षिणी पिशाच देवों के स्थान हैं। ये उत्पात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहाँ बहुत-से दक्षिणी पिशाच देव रहते हैं जो महर्द्धिक हैं—यावत्—औधिक (सामान्य) पिशाच देवों के समान विचरण करने वाले हैं।

यहाँ काल नामक पिशाचेन्द्र-पिशाचराज रहता है जो महर्द्धिक है—यावत्—प्रभासमान है। यह असंख्य लाख तिर्यक् भौमेयनगरावासों का—यावत्-अधिपतित्व करता हुआ विचरता है।

उत्तरीय पिशाच देवों के स्थान

[५] [१] प्र०—उत्तरिल्लाणं पुच्छा।

उ०—गोयमा ! जहेव दाहिणिल्लाणं वत्तव्वया तहेव उत्तरिल्लाणं पि।
नवरं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं।
एवं जहा पिसायाणं तहा भूयाणं पि-जाव-गंधव्वाणं।

—पन्न. पद २ पृ. २६१-६२

[५] [१] प्र०—भगवन् ! उत्तरीय पिशाच देवों के स्थान कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! जैसा दाक्षिणात्य पिशाच देवों के विषय में कहा गया है वैसा ही उत्तरीय पिशाचों के संबंध में भी समझ लेना चाहिए। विशेष यह कि उत्तरीय पिशाच देवों के स्थान मेरु पर्वत के उत्तर में हैं।
पिशाच देवों के स्थानों के समान भूत यावत् गंधर्वों के स्थान समझ लेने चाहिए।

[६] [१] प्र०—कहि णं भंते ! अणवन्नियाणं देवाणं ठाणा पन्नत्ता ?
कहि णं भंते ! अणवन्निया देवा परिवसंति ?:

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए-जाव-मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं अणवन्नियाणं देवाणं तिरिय-मसंखेज्जा णगरावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं,
ते णं-जाव-पडिरूवा ।
एत्थ णं अणवन्नियाणं देवाणं ठाणा पन्नत्ता,
तिसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे ।
तत्थ णं बहवे अणवन्निया देवा परिवसंति,
महिड्ढिया जहा पिसाया-जाव-विहरंति,
सन्निहिय-सामाणा इत्थ दुवे अणवन्निदा अणवन्नियकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया,
एवं जहा काल-महाकालाणं दोण्हं पि दाहिणिल्लाणं उत्तरिल्लाण य भणिया तहा सन्निहिय-सामाणाणं पि भाणियव्वा ।

संगहणी गाहाओ–

अणवन्निय-पणवन्निय-इसिवाइय-भूयवाइया चेव ।
कंदिय-महाकंदिय कोहंडा पयंगए चेव ।।१।।

इमे इंदा—संनिहिया सामाणा धाय-विधाए इसी य इसिवाले ।
ईसर-महेसरे वि य हवइ सुवच्छे विसाले य ।।२।।
हासे हासरई चेव सेए तहा भवे महासेए ।
पयए पयगवई वि य नेयव्वा आणुपुव्वीए ।।३।।

[६] [१] प्र०—भगवन् ! आनपन्निक देवों के स्थान कहां हैं ?
अर्थात् भगवन् ! आनपन्निक देव कहां रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के (रत्नमय काण्ड के) मध्य में आठ सौ योजन में आनपन्निक देवों के असंख्य लाख तिर्यक् नगरावास हैं । ये-यावत्-प्रतिरूप हैं । यहां आनपन्निक देवों के स्थान हैं । उत्पात, समुद्घात और स्वस्थान-तीनों की अपेक्षा ये लोक के असंख्यातवें भाग में हैं । यहां बहुत-से आनपन्निक देव निवास करते हैं । ये महर्द्धिक-यावत्-पिशाच देवों के समान विचरण करने वाले हैं । यहां सन्निहित और सामान्य नामक दो आनपन्निकेन्द्र आनपन्निककुमारराजा रहते हैं जो महर्द्धिक हैं । जिस प्रकार काल और महाकाल-इन दोनों का दक्षिणी और उत्तरी (पिशाच देवों) के प्रसंग में वर्णन किया गया है, उसी प्रकार सन्निहित और सामान्य का भी वर्णन कह लेना चाहिए । संग्रहणी गाथाओं का अर्थ-आनपन्निक, पानपन्निक, ऋषिवादी, भूतवादी, क्रंदित, महाक्रंदित, कूष्माण्ड, और पतंग (ये देव हैं ।)

इनके इन्द्र क्रमशः इस प्रकार हैं–सन्निहित और सामान्य, धाता और विधाता, ऋषि और ऋषिपाल, ईश्वर और महेश्वर, सुवत्स और विशाल, हास्य और हास्यरति, श्वेत और महाश्वेत, पतय और पतयपति ।

जृम्भक देवों के स्थान

[७] [१] प्र०—जंभगा णं भंते ! देवा कहिं वसहिं उवेंति ?

उ०—गोयमा ! सव्वेसु चेव वीहवेयड्ढेसु, चित्त-विचित्तजमगपव्वएसु, कंचणपव्वएसु य,
एत्थ णं जंभगा देवा वसहिं उवेंति ।

[७] [१] प्र०—भगवन्! जृंभक देव कहां रहते हैं ?

उ०—गौतम! समस्त दीर्घ वैताढ्यों में, चित्र, विचित्र, यमक (समक) एवं कांचन पर्वतों में जृंभक देव निवास करते हैं।

वाणव्यन्तर देवों की सुधर्मा सभा

[८] **वाणमंतराणं देवाणं सभाओ सुहम्माओ**
नव जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं पन्नत्ता।

—सम० ९ सूत्र १०

वाण-व्यन्तर देवों की सुधर्मा सभायें नौ योजन ऊंची कही गई हैं।

तिर्यक्लोकः भेद, संस्थान, मध्य

[१] [१] **प्र०—तिरियलोयखेत्तलोए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?**

उ०—गोयमा ! असंखेज्जविहे पण्णत्ते, तंजहा—
जंबुद्दीवे दीवे तिरियलोयखेत्तलोए—जाव—सयंभूरमणसमुद्दे तिरियलोयखेत्तलोए।

[२] **प्र०—तिरियलोयखेत्तलोए णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?**

उ०—गोयमा ! झल्लरिसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १० प्र. ४, ७ पृ. २२८-२९

[१] प्र०—भगवन् ! तिर्यक्लोक-क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ?

उ०—गौतम! असंख्येय प्रकार का है, यथा—जम्बूद्वीप द्वीप तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक—यावत्—स्वयंभूरमण समुद्र-तिर्यक् लोक क्षेत्रलोक।

[२] प्र०—भगवन् ! तिर्यक् लोक क्षेत्रलोक किस आकार का है ?

उ०—गौतम ! झालर के आकार का है।

[३] **प्र०—कहि णं भंते ! तिरियलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ?**

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्लेसु खुड्डागपयरेसु एत्थ णं तिरियलोगस्स मज्झे अट्ठपएसिए रुयए पण्णत्ते।

—विवा. भाग ३ श. १३ उ. ४ प्र. ९ पृ. ३१

[३] प्र०—भगवन् ! तिर्छे लोक का आयाम-मध्य कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत के बीचों बीच, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर और नीचे के दो क्षुद्र प्रतरों में तिर्छे लोक का मध्य भाग रूप आठ प्रदेशों का रुचक कहा गया है।

जम्बूद्वीप

जम्बूद्वीप-वर्णन

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे ?
केमहालए णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे ?
किंसंठिए णं भंते ! जंबुद्दीवे ?
किमायारभावपडोयारे णं भंते ! जंबुद्दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए, सव्वखुड्डाए,
वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए,
वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए,
वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए,
वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए,
एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं,[1]
तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते[2]

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र ३ पृ. १४–१५

१—ठा. १, सूत्र ५२ ।
सम० १, सूत्र १९ ।
सम० एक लाख, सूत्र, १२४ पृ० ११८ ।
विवा० भाग ३ श० ९ उ० १ प्र० २ पृ० १२५ ।

२—प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं,
केवइयं उव्वेहेणं, केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं, केवइयं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।
एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं, णवणउतिं जोअणसहस्साइं साइरेगाइं उड्ढं उच्चत्तेणं साइरेगं जोअणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ।

—जम्बू. १७४ पृ. ५३८

प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप का आयाम, विष्कंभ, परिक्षेप, उद्वेध, ऊँचाई और सर्व परिमाण क्या है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप का आयाम-विष्कंभ एक लाख योजन, परिधि ३१६२२७ योजन, तीन कोस १२८ धनुष एवं कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल की है। गहराई एक हजार योजन, ऊँचाई किंचित् अधिक ९९ हजार योजन एवं सर्वपरिमाण किंचित् अधिक एक लाख योजन है ।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप कहाँ है ?
भगवन् ! जम्बूद्वीप कितना विशाल है ?
भगवन् ! जम्बूद्वीप का संस्थान कैसा है ?
भगवन् ! जम्बूद्वीप का आकारभाव कैसा है ?

उ०—गौतम ! यह जम्बूद्वीप सर्वद्वीप-समुद्रों के अभ्यन्तर-बीच में है। सबसे छोटा है।

तेल में तले हुए पूए के आकार का गोल है, रथ के पहिये के संस्थान के समान गोल है, कमल की कर्णिका के आकार की तरह गोल है, परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार की तरह गोल है। एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है। तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष, कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल की परिधि वाला है।

जम्बूद्वीप की जगती

[३] **से णं एगाए वइरामईए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते,**
सा णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1]
मूले बारस जोअणाइं विक्खंभेणं,[2]
मज्झे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं,
उवरिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं,
मूले विच्छिन्ना, मज्झे संखित्ता उवरिं तणुया,
गोपुच्छसंठाणसंठिया, सव्ववइरामई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा,
सा णं जगई एगेणं महंतगवक्खकडएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता,
से णं गवक्खकडए अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं,
पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं,
सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे,[3]

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र ४ पृ. २०

[३] वह (जम्बूद्वीप) एक वज्रमय जगती से सब ओर से घिरा है। वह जगती आठ योजन ऊंची है। मूल में बारह योजन चौड़ी, मध्य में आठ योजन चौड़ी और ऊपर चार योजन चौड़ी है। मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतली है। गौ की पूंछ के आकार की, पूरी तरह वज्रमयी, स्वच्छ, चिकनी, घुटे पट के समान मसृण, घटारी, मठारी, नीरज, निर्मल, निष्पंक, अनावरण दीप्ति वाली, प्रभायुक्त, किरणों से युक्त, उद्योतमय, प्रसादजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

वह जगती एक जालकटक (जालियों के समूह) से सब ओर से घिरी है।
वह जालकटक आधा योजन ऊंचा, पांच सौ धनुष चौड़ा, सर्वरत्नमय, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप है।

---

१. (क) ठा. ८ सूत्र ६४२ पृ. ४१३
(ख) सम. ८ सूत्र ६ पृ. १५
२. (क) सम. १२ सूत्र ६ पृ. २४
(ख) ठा. २ उ. ३ सूत्र ९३ पृ. ७६
३. जीवा. प्र. ३ उ. १ सूत्र १२४

पद्मवरवेदिका

[४] तीसे णं जगतीए उप्पिं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महई पउमवरवेदिका पण्णत्ता,

सा णं पउमवरवेदिया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं,

पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं,

जगतीसमिया परिक्खेवेणं,

सव्वरयणामई अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-वइरामया नेमा, रिट्ठामया पइट्ठाणा, वेरुलियामया खंभा, सुवण्णरुप्पमया फलगा, वइरामया संधी, लोहितक्खमईओ सूईओ, णाणामणिमया कलेवरा, कलेवरसंघाडा, णाणामणिमया रूवा, नाणामणिमया रूवसंघाडा, अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ, जोतीरसामया वंसा वंसकवेल्लुया य, रययामईओ पट्टियाओ, जातरूवमयीओ ओहाडणीओ, वइरामयीओ उवरि पुञ्छणीओ, सव्वसेए रययामते साणं छावणे ।

सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं, (एगमेगेणं गवक्खजालेणं) एगमेगेणं खिखिणिजालेणं-जाव-मणिजालेणं (कणयजालेणं रयणजालेणं) एगमेगेणं पउमवरजालेणं सव्वरयणामएणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ।

ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणि-रयण-विविहहार-द्धहारउवसोभितसमुदया, ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणउत्तरागतेहिं वाएहिं मंदागं २ एज्जमाणा २ कंपिज्जमाणा २ लंबमाणा २ पब्भंभमाणा २ सद्दायमाणा २ तेणं ओरालेणं मणुण्णेणं कण्ण-मणणेव्वुतिकरेणं सद्देणं सव्वतो समंता आपूरेमाणा, सिरीए अतीव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति ।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे हयसंघाडा, गयसंघाडा, नरसंघाडा, किण्णरसंघाडा, किंपुरिससंघाडा, महोरगसंघाडा, गंधव्वसंघाडा, वसहसंघाडा, सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे हयपंतीओ तहेव-जाव-पडिरूवाओ ।

एवं हयवीहीओ-जाव-पडिरूवाओ ।

एवं हयमिहुणाइं-जाव-पडिरूवाइं ।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे पउमलयाओ नागलताओ,

एवं असोग० चंपग० चूयवण० वासंति० अतिमुत्तग० कुंद० सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ-जाव-सुविहत्त-पिंडमंजरिवडिंसकधरीओ सव्वरयणामईओ-जाव-पडिरूवाओ ।

[तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे अक्खयसोत्थिया पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा ।]

[४] उस जगती के ऊपर बीचों बीच एक महती पद्मवरवेदिका है । वह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊँची, पांच सौ धनुष चौड़ी, जगती के समान विस्तृत, सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप है ।
उस पद्मवरवेदिका का वर्णन इस प्रकार कहा गया है—

उसके नेम (भूमिभाग से ऊपर निकलते प्रदेश) वज्रमय हैं । प्रतिष्ठान (मूल पाये) रिष्टमय हैं । स्तंभ वैडूर्यमय हैं । फलक स्वर्ण-रजतमय, संधियां वज्रमय, सूचियां लोहिताक्षमय, कलेवर एवं कलेवरयुग्म नाना मणिमय, रूपक और रूपकयुगल नाना मणिमय, पक्ष एवं पक्षबाहु अंकरत्नमय, वंश (पृष्ठवंश) एवं वंशकवेल्लुक ज्योतिरस नामक रत्नमय, पट्टिकायें (पृष्ठवंशों के ऊपर की कम्बायें) रजतमय, अवघाटिनी जातरूप स्वर्ण की, पुञ्छनी वज्रमय सर्वात्मना श्वेत रजतमय आच्छादन है ।

वह पद्मवरवेदिका एक-एक हेमजाल (एक-एक गवाक्षजाल) से, एक-एक किंकिनीजाल से-यावत्-मणि-जाल से (कनकजाल तथा रजतजाल से) एक-एक पद्मवरजाल से-जो सर्वरत्नमय है, सब ओर से घिरी हुई है।

वे जाल तपनीयमय लंबूसक (झूमका) वाले, स्वर्ण के पत्तरे से मंडित, विविध मणि, रत्न, विविध हार एवं अर्धहार से सुशोभित है, कुछ-कुछ एक दूसरे से असंप्राप्त (दूर) है, पूर्व पश्चिम, दक्षिण और उत्तर (दिशा) से आए हुए वायु से मन्द-मन्द डोलते हुए, कंपित होते हुए, लटकते हुए, आवाज करते हुए एवं गूंजते हुए हैं। उस उदार, मनोज्ञ, कर्णों एवं मन को आनन्द देने वाले शब्द से सब दिशाओं को पूरित करते हुए तथा श्री से अतीव-अतीव शोभित होते हुए स्थित हैं।

उस पद्मवरवेदिका पर जगह-जगह बहुत से अश्वयुगल, गजयुगल, नरयुगल, किन्नरयुगल, किंपुरुषयुगल, महोरगयुगल, गंधर्वयुगल, वृषभयुगल बने है, जो सर्वरत्नमय-यावत्-प्रतिरूप है।

उस पद्मवरवेदिका पर जगह-जगह बहुत-सी अश्वपंक्तियाँ आदि हैं। वे—यावत्—प्रतिरूप हैं।
इसी प्रकार अश्ववीथियाँ तथा अश्वमिथुन आदि है, जो—यावत्—प्रतिरूप है,

उस पद्मवरवेदिका पर स्थान-स्थान पर बहुतेरी पद्मलताएँ, नागलताएँ, अशोकलताएँ, चंपकलताएँ, चूतलताएँ, वासन्तिकलताएँ, अतिमुक्तकलताएँ, कुन्द लताएँ, श्यामलताएँ है, जो सदैव पुष्पित रहती है—यावत्—सुविभक्त पिंडमंजरी एवं अवतंसकों को धारण करने वाली, सर्वरत्नमय—यावत्—प्रतिरूप है।

(उस पद्मवरवेदिका पर स्थान-स्थान पर बहुत-से अक्षत-स्वस्तिक कहे हैं, जो सर्वरत्नमय और स्वच्छ हैं।)

[५] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-पउमवरवेइया पउमवरवेइया ?

उ०—गोयमा ! पउमवरवेइयाए तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं वेदियासु वेदियाबाहासु वेदियासीसफलएसु वेदियापुडंतरेसु पक्खेसु पक्खबाहासु पक्खपेरंतेसु,

बहूइं उप्पलाइं पउमाइं-जाव-सतसहस्सपत्ताइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं-जाव-पडिरूवाइं महता २ वासिक्कच्छत्तसमयाइं पण्णत्ताइं समणाउसो !
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-पउमवरवेइया २।

[२] प्र०—पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया असासया ?
उ०—गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।

[३] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिय सासया, सिय असासया ?

उ०—गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासता, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-सिय सासता सिय असासता।

[४] प्र०—पउमवरवेइया णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होति ?

उ०—गोयमा ! ण कयावि णासि, ण कयावि णत्थि, ण कयावि न भविस्सइ,
भुविं च, भवति य, भविस्सति य,
धुवा णियया सासता अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया[1]।

—जीवा. प्रति ३ सूत्र १२५ पृ. १७९-१८०

---

१. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेइयंताओ धायइखंडचक्कवालस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तजोयण-सयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

—सम. सूत्र १३०

[५] [१] प्र०—भगवन् ! पद्मवरवेदिका, पद्मवरवेदिका क्यों कहलाती है ?

उ०—गौतम ! पद्मवरवेदिका के ऊपर जगह-जगह वेदिकाओं पर, वेदिका-पार्श्वों पर, वेदिका-शीशफलकों पर. दो वेदिकाओं के मध्य-भाग में, पक्षों पर, पक्षपार्श्वों पर, पक्षों के पर्यन्त भागों पर बहुतेरे उत्पल, पद्म—यावत्—शतसहस्रपत्र हैं, जो सर्वरत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं तथा वर्षा-काल में बनाई हुई बड़ी-बड़ी छतरियों से समान हैं। आयुष्मन् श्रमणो ! इस कारण से पद्मवर-वेदिका को पद्मवरवेदिका कहते हैं।

[२] प्र०—भगवन् ! पद्मवरवेदिका शाश्वत है या अशाश्वत ?
उ०—गौतम ! कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है।

[३] प्र०—भगवन् ! किस हेतु से कहा जाता है कि कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है ?

उ०—गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत तथा वर्णपर्यायों से, गंधपर्यायों से, रसपर्यायों से और स्पर्शपर्यायों से अशाश्वत है। गौतम ! इस कारण उसे कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत कहा है।

[४] प्र०—भगवन् ! पद्मवरवेदिका काल से कब तक होती है ?

उ०—गौतम ! वह न कभी नहीं थी, न कभी नहीं है और न कभी नहीं होगी। वह (सदा) थी, है और रहेगी। पद्मवरवेदिका ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

जगती पर वनखण्ड

[६] तीसे णं जगईए उप्पिं बाहिं पउमवरवेइयाए एत्थ णं महं एगे वणसंडे पण्णत्ते, देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं, जगईसमए परिक्खेवेणं, वणसंडवण्णओ णेयव्वो।

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र ५ पृ० २७

[६] उस जगती के ऊपर एवं पद्मवरवेदिका से बाहर एक विशाल वनखण्ड है। उसका विष्कंभ कुछ कम दो योजन का है और परिक्षेप (परिधि) जगती के समान है। वनखण्ड का वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए।

[७] तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा—जाव—णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए, तंजहा-किण्हेहिं एवं वण्णो रसो फासो सद्दो पुक्खरिणीओ पव्वयगा घरगा मंडवगा पुढविसिलावट्टया गोयमा ! णेयव्वा।

तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति सयंति पुरा पोराणाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

तीसे णं जगईए उप्पिं अंतो पउमवरवेइयाए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते, देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं, वेदियासमएण परिक्खेवेणं, किण्हे—जाव—तणविहूणे णेअव्वो।[1]

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र ६ पृ. ३०-३१

[७] उस वनखण्ड के अन्दर अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमिभाग कहा गया है। वह मृदंग पर मढ़े चमड़े के समान है—यावत्—नाना प्रकार के कृष्ण आदि पंचवर्ण मणियों तथा तृणों से सुशोभित है। गौतम ! यहाँ वर्ण, रस, स्पर्श, शब्द, पुष्करिणी, पर्वत, गृह, मंडप तथा पृथ्वीशिलापट्टक समझ लेना चाहिए।

वहाँ बहुत-से वान-व्यन्तर देव और देवीगण बैठते हैं, शयन करते हैं तथा पूर्वकृत शुभ, कल्याणकारी कर्मों का कल्याणमय फल भोगते हैं।

उस जगती के ऊपर पद्मवरवेदिका के अन्दर एक विशाल वनखण्ड कहा गया है। उसका विष्कंभ कुछ कम दो योजन का है। उसकी परिधि वेदिका के समान है। कृष्ण आदि उसके विशेषण समझ लेना चाहिए—यावत्—वह तृणहीन है।

१—जीवा. प्र. ३, उ. १, सूत्र १२६-२७

जम्बूद्वीप के द्वार

[८] [१] प्र०—जम्बुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स कइ दारा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—
विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए ।
एवं चत्तारिवि दारा सरायहाणिया भाणियव्वा[1] ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! जबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं वीइवइत्ता जंबुद्दीवदीवपुरत्थिमपेरंते,
लवणसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं,
सीआए महाणईए उप्पिं,
एत्थ णं जंबुद्दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते,
अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं,
तावइयं चेव पवेसेणं,
सेए वरकणगथूभियाए,
—जाव-दारस्स वण्णओ-जाव-रायहाणी ।

—जम्बू. वक्ष. १, सूत्र ७-८ पृ. ४७

[८] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के कितने द्वार हैं ।

उ०—गौतम ! चार द्वार हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त और और अपराजित । इस प्रकार राजधानी सहित चारों द्वारों का कथन समझ लेना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप का विजय नामक द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में पैंतालीस हजार योजन चलकर, जम्बूद्वीप के पूर्वी पर्यन्त भाग में, पूर्वार्ध लवणसमुद्र के पश्चिम में, सीता महानदी के ऊपर जम्बूद्वीप का विजय नामक द्वार है । वह आठ योजन ऊंचा है, चार योजन चौड़ा है और इतना ही प्रवेश वाला है । वह श्वेत, उत्तम स्वर्णमय स्तूपिकाओं से युक्त है, इत्यादि द्वार-वर्णन राजधानी पर्यन्त समझ लेना चाहिए ।

[९] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाधाए जंबुद्दीवदीवदाहिणपेरंते लवणसमुद्ददाहिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स २ वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते,
अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
सच्चेव सव्वा वत्तव्वया-जाव-णिच्चे ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! रायहाणी[2] ?

उ०—दाहिणेणं—जाव-वेजयंते देवे ।

---

१. (क) जीवा. प्र. ३ उ. १ सूत्र १२८, १४३ ।
(ख) ठा. ४ उ. २ सूत्र ३०३ पृ. २१४ ।
(ग) ठा. ८ सूत्र ६५७ पृ. ४२० ।
२. सम. ३७ सूत्र ३

[३] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं जंबुद्दीवपच्चत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपच्चत्थिमद्धस्स पुरच्छिमेणं, सीओदाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स जयंते णामं दारे पण्णत्ते ।

तं चेव से पमाणं,

जयंते देवे, पच्चत्थिमेणं से रायहाणी-जाव-महिड्ढीए ।

[४] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स अपराइए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स उत्तरेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवे दीवे उत्तरपेरंते, लवणसमुद्दस्स उत्तरद्धस्स दाहिणेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे अपराइए णामं दारे पण्णत्ते ।

तं चेव पमाणं,

रायहाणी उत्तरेणं-जाव-अपराइए देवे ।

चउण्हवि अण्णंमि जंबुद्दीवे ।

[५] प्र०—जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अउणासीतिं जोयणसहस्साइं बावण्णं च जोयणाइं देसूणं च अद्धजोयणं दारस्स य २ अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र १४४-१४५ पृ. २६०

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र ९ पृ. ६५

[९] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप का वैजयन्त नामक द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण में, पैंतालीस हजार योजन की दूरी पर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के दक्षिण-पर्यन्त में तथा लवणसमुद्रार्ध के उत्तर में जम्बूद्वीप का वैजयन्त द्वार कहा गया है । वह आठ योजन ऊँचा है, इत्यादि वक्तव्यता वही पूर्ववत् है-यावत्-नित्य है ।

[२] प्र०—भगवन् ! राजधानी कहां है ?

उ०—दक्षिण में है-यावत्-वैजयन्त देव (उसका अधिपति है) ।

[३] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का जयन्त नामक द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पश्चिम में पैंतालीस हजार योजन चलकर जम्बूद्वीप के पश्चिमी पर्यन्त भाग में, लवणसमुद्र के पश्चिमार्ध के पूर्व में, शीतोदा महानदी के ऊपर जम्बूद्वीप का जयन्त नामक द्वार है । इसका प्रमाण भी वही पूर्ववत् है । यहां जयन्त देव है, उसकी राजधानी पश्चिम में है-यावत्-(वह देव) महर्द्धिक है ।

[४] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप का अपराजित नामक द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत से उत्तर में पैंतालीस हजार योजन की दूरी पर, जम्बूद्वीप में उत्तरी पर्यन्त भाग में तथा उत्तरार्ध लवणसमुद्र के दक्षिण में जम्बूद्वीप का अपराजित द्वार है । इसका प्रमाण भी वही पूर्ववत् है । राजधानी उत्तर में है-यावत्-अपराजित देव है । चारों की (राजधानियां) अन्य जम्बूद्वीप में है ।

[५] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का कितना अव्यवहित अन्तर है ?

उ०—गौतम ! ७९ हजार एवं कुछ कम ५२।। योजन का अव्यवहित अन्तर है ।

जम्बूद्वीप के उपादानद्रव्य

[१०][१] प्र०—जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे किं पुढविपरिणामे आउपरिणामे जीवपरिणामे पोग्गलपरिणामे ?

उ०—गोयमा ! पुढविपरिणामेवि आउपरिणामेवि जीवपरिणामेवि पुग्गलपरिणामेवि ।

—जम्बू. वक्ष. ७ सूत्र १७६ पृ. ५३८

]१०][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप क्या पृथ्वी का परिणमन है, जल का परिणमन है, जीव का परिणमन है या पुद्गल का परिणमन है ?

उ०—गौतम ! पृथ्वी का भी परिणमन है, अप् का भी परिणमन है, जीव का भी परिणमन है, पुद्गल का भी परिणमन है ।

'जम्बूद्वीप' नाम का हेतु

[११][१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे दीवे ?

उ०—गोयमा ! जम्बुद्दीवे णं दीवे तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे जम्बूरुक्खा जम्बूवणा जम्बूवणसंडा णिच्चं कुसुमिआ-जाव-पिंडिममंजरिवडेंसगधरा सिरीए अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति,
जम्बूए सुदंसणाए अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ,
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ-जम्बुद्दीवे दीवे इति[1] ।

—जम्बूद्वीप. वक्ष. ७ सूत्र १७७ पृ. ५४०

[११][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप का नाम जम्बूद्वीप क्यों है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में जगह-जगह बहुतेरे जम्बूवृक्ष, जम्बूवन एवं जम्बूवनखण्ड हैं, जो सदा फूले रहते है, मंजरियों एवं अवतंसकों को धारण करने वाले हैं तथा श्री से अतीव सुशोभित रहते है । जम्बू सुदर्शन पर अनाहत नामक महर्द्धिक-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है ।
गौतम ! इस कारण जम्बूद्वीप का नाम जम्बूद्वीप है ।

जम्बूद्वीप की नित्यानित्यता

[१२][१] प्र०—जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे किं सासए असासए ?
उ०—गोयमा ! सिअ सासए सिअ असासए !

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिअ सासए, सिअ असासए ?

उ०—गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासए ।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-सिअ सासए, सिअ असासए ।

[३] प्र०—जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे कालओ केवचिरं होइ ?

उ०—गोअमा ! ण कयावि णासि, ण कयावि णत्थि, ण कयावि ण भविस्सइ, भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे णिइए सासए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे जंबुद्दीवे दीवे पण्णत्ते इति[2] ।

—जम्बू. वक्ष. ७ सूत्र १७५ पृ. ५३८

---

१. जीवा. प्र. ३ उ. २ सूत्र १५२ पृ. २९५
२. जीवा. प्र. ३ उ. २ सूत्र १५२

[१२][१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप शाश्वत है या अशाश्वत ?

उ०—गौतम! कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है।

[२] प्र०—भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है ?

उ०—गौतम! (जम्बूद्वीप) द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है, वर्णपर्यायों से, गंधपर्यायों से, रसपर्यायों से और स्पर्शपर्यायों से अशाश्वत है।

[३] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप काल की अपेक्षा कब तक रहता है ?

उ०—गौतम! न कभी नहीं था, न कभी नहीं है, न कभी नहीं होगा। वह था, है और रहेगा। जम्बूद्वीप ध्रुव नियत शाश्वत अव्यय अवस्थित और नित्य है।

जम्बूद्वीप में वर्षधर पर्वत

[१] जंबुद्दीवे दीवे छ वासहरपव्वता पण्णत्ता,[1] तंजहा—
चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, निसढे, नीलवंते, रुप्पि, सिहरी[2]।

—ठा, ६ उ. ३ सूत्र ५२२ पृ. ३५०

[२] जम्बूद्वीप में छह वर्षधर पर्वत कहे हैं, यथा—क्षुद्रहिमवन्त, महाहिमवन्त, निषध, नीलवन्त, रुक्मि और शिखरी।

चुल्लहिमवन्त पर्वत

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते[3] णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा! हेमवयस्स वासस्स दाहिणेणं,
भरहस्स वासस्स उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते।
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे,
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
एगं[4] जोअणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं,
पणवीसं जोयणाइं उव्वेहेणं,
एगं जोअणसहस्सं बावण्णं च जोअणाइं दुवालस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं।
तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ पणाते जोअणसए पण्णरस य

---

१. ठा. ७ सूत्र ५५५ पृ. ३७७
२. ठा. ३ उ. ४ सूत्र १९७ पृ. १५०
३. (क)—ठा. २ उ. ३ सूत्र ८७ पृ० ६५
(ख) „ ३ उ. ४ सूत्र १९७ पृ० १५१
(ग) „ ७ सूत्र ५५५ पृ० ३७७
४. सम० १००, सूत्र ७

एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं ।
तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया-जाव-पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा चउव्वीसं[1] जोअणसहस्साइं णव य बत्तीसे जोअणसए अद्धभागं च किंचिविसेसूणा आयामेणं पण्णत्ता ।
तीसे धणुपट्ठे दाहिणेणं पणवीसं जोअणसहस्साइं,
दोण्णि अ तीसे जोअणसए, चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।
रुअगसंठाणसंठिए, सव्वकणगामए, अच्छे, सण्हे-जाव-पडिरूवे,
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं, दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते,
दुण्हवि पमाणं वण्णगोत्ति ।
चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,
से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव—
बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति-जाव-विहरंति ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ७२ पृ. २८१

[२] [१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप में चुल्ल (छोटा) हिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम! हैमवत वर्ष के दक्षिण में, भरत वर्ष के उत्तर में, पूर्वीय लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में, जम्बूद्वीप का चुल्लहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत है। यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण मे चौड़ा, तथा दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर से पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर से पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।

इसकी ऊँचाई सौ योजन की, गहराई पच्चीस योजन की तथा चौड़ाई १०५२$\frac{१२}{१९}$ योजन की है।
इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम की ओर ५३५०$\frac{६}{१९}$+$\frac{१}{२}$ योजन लम्बी है।

इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी है-यावत्-पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।
इसकी लम्बाई २४९३२+$\frac{१}{२}$ योजन से कुछ विशेष कम है।
इसका धनुःपृष्ठ दक्षिण में २५२३०$\frac{६}{१९}$ योजन की परिधि वाला है।

यह रुचक (स्वर्ण के आभूषण विशेष) के आकार का, सर्वात्मना सुवर्णमय, स्वच्छ, चिकना यावत्-प्रतिरूप है। इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकायें तथा दो वनखण्ड हैं। इनका प्रमाण एवं वर्णन पूर्वोक्त प्रकार का समझ लेना चाहिए।

चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत के ऊपर अति सम और रमणीय भूमाग है, जैसे आलिंगपुष्कर हो! -यावत्-अनेक वाणव्यन्तर देव-देवियां यहां बैठते हैं-यावत्-विचरते हैं।

छह द्रह

[३] **जंबुद्दीवे २ छ महद्दहा पण्णत्ता—**
पउमद्दहे, महापउमद्दहे, तिगिच्छद्दहे, केसरिद्दहे महापोंडरीयद्दहे, पुंडरीयद्दहे ।

—ठा० ६; उ. ३ सूत्र ५२२ पृ० ३५०

जम्बुद्वीप में छह महाद्रह हैं, यथा—पद्मद्रह, महापद्मद्रह, तिगिंछद्रह, केसरिद्रह, महापुण्डरीकद्रह और पुण्डरीकद्रह।

---

१. सम. २४ सूत्र २

द्रहवर्तिनी देवियां

[४] तत्थ णं छ देवयाओ महिड्ढियाओ—जाव—पल्लोवमट्ठितीओ परिवसंति, तंजहा—
सिरि हिरि धिति कित्ति बुद्धि लच्छी ।[1]

—ठा० ६ उ० ३ सूत्र ५२२ पृ० ३५०

उन (पद्म आदि द्रहों में अनुक्रम से) छह देवियाँ महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली निवास करती हैं, यथा श्री, ह्री, धृति, कीर्त्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ।

पद्मद्रह

[५] तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए
इत्थ णं इक्के महं पउमद्दहे[2] णामं दहे पण्णत्ते ।
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे
इक्कं जोअणसहस्सं आयामेणं,[3]
पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
दस जोअणाइं उव्वेहेणं[4],
अच्छे सण्हे, रययामयकूले—जाव—पासाईए—जाव—पडिरूवेति ।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
वेइआ-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वोत्ति ।
तस्स णं पउमद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता ।
वण्णावासो भाणिअव्वोत्ति
तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं-पत्तेअं तोरणा पण्णत्ता ।
ते णं तोरणा णाणामणिमया ।
तस्स णं पउमद्दहस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ महं पउमे पण्णत्ते ।
जोअणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं,
दो कोसे ऊसिए जलंताओ,
साइरेगाइं दस जोअणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता (से) ।
से णं एगाए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
जंबुद्दीवजगइप्पमाणा ।
गवक्खकडएवि तह चेव पमाणेणंति ।
तस्स णं पउमस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—
वइरामया मूला, रिट्ठामए कंदे, वेरुलिआमए णाले,
वेरुलिआमया बाहिरपत्ता, जंबूणयामया अब्भिंतरपत्ता,
तवणिज्जमया केसरा, णाणामणिमया पोक्खरत्थिभाया,
कणगामई कण्णिगा, सा णं अद्धजोअणं आयामविक्खंभेणं,
कोसं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई अच्छा ।

१—(क) ठा० २ उ० ३ सूत्र ८८ पृ० ६८
(ख) ठा० ३ उ० ४ सूत्र १९७ पृ० १५०
२—(क) ठा० अ० २ उ० ३ सूत्र ८८ पृ० ६८
(ख) " अ० ३ उ० ४ सूत्र १९७ पृ० १५०
३— सम० २१३ सूत्र १०
४— ठा० १० सूत्र ७७९ पृ० ४२८

तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,
से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा,
तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते ।
कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं,
देसूणगं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं ।
अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे पासाईए दरिसणिज्जे ।
तस्स णं भवणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता ।
ते णं दारा पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं
तावतिअं चेव पवेसेणं,
सेआवरकणगथूभिआओ—जाव—वणमालाओ णेअव्वाओ ।
तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते
से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा,
तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महई एगा मणिपेढिआ पण्णत्ता ।
सा णं मणिपेढिआ पंचधणुसयाइं आयामविक्खंभेणं,
अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं,
सव्वमणिमई अच्छा ।
तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं,
एत्थ णं महं एगे सयणिज्जे पण्णत्ते ।
सयणिज्जवण्णओ भाणिअव्वो ।

[५] इस अति सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य में एक विशाल पद्मद्रह नामक द्रह है। यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, एक हजार योजन लम्बा, पांच सौ योजन चौड़ा तथा दस योजन गहरा है। यह स्वच्छ, चिकना, रजतमय किनारों वाला—यावत्—प्रासादिक व प्रतिरूप है।

यह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखंड से सब ओर से घिरा है। यहां वेदिका और वनखंड का वर्णक कहना चाहिए।

इस पद्मद्रह की चारों दिशाओं में चार प्रतिरूप त्रिसोपान [पंक्तियाँ) हैं। यहां इनका भी वर्णक कहना चाहिए। इन प्रतिरूप त्रिसोपानों के सामने पृथक्-पृथक् तोरण हैं। ये तोरण नाना-मणिमय हैं।

इस पद्मद्रह के मध्य में एक विशाल पद्म है। यह एक योजन लम्बा-चौड़ा, आधा योजन मोटा, दस योजन गहरा और जल से दो कोस ऊंचा है। सब मिलाकर इसका परिमाण कुछ अधिक दस योजन का है।

इसके सब ओर एक जगती (कोट) है। इसका परिमाण जम्बूद्वीप की जगती के बराबर है। उसके गवाक्षकटक (जालियों के समूह) का भी परिमाण उसी प्रकार समझना चाहिए।

इस पद्म का वर्णन इस प्रकार है—

इसके मूल वज्रमय हैं। कन्द (मूल नाल के बीच की गांठ) अरिष्टरत्न की है। नाल वैडूर्यमय है। बाहर के पत्ते वैडूर्यमय हैं, अन्दर के पत्ते जम्बूनदमय हैं। केसर रक्तस्वर्णमय हैं। पुष्करास्थि-भाग (कमल के बीज के विभाग) नाना-मणिमय हैं। कर्णिका कनकमयी है। यह कर्णिका आधा योजन लम्बी-चौड़ी, एक कोस मोटी तथा सर्वकनकमय और स्वच्छ है। इस कर्णिका के ऊपर अति सम और रमणीय भू-भाग है जैसे आलिंगपुष्कर हो इत्यादि।

इस सम एवं रमणीय भूभाग के मध्य में एक विशाल भवन है। यह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा सैकड़ों स्तंभों से सन्निविष्ट, प्रासादिक एवं दर्शनीय है।

इस भवन की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं। ये द्वार पांच सौ धनुष ऊंचे, अढ़ाई सौ धनुष विष्कंभ वाले एवं उतने ही प्रवेश वाले हैं। यहाँ श्वेत व श्रेष्ठ कनक-स्तूपिका है-यावत्-वनमालाओं तक का कथन समझ लेना चाहिए।

इस भवन के अंदर अति समतल एवं रमणीय भूमिभाग के बीचों बीच एक विशाल मणिपीठिका है। यह मणिपीठिका पांच सौ धनुष लंबी-चौड़ी, अढ़ाई सौ धनुष मोटी, सर्वमणिमय और स्वच्छ है।

इस मणिपीठिका के ऊपर एक बड़ी शय्या है। शय्या का वर्णक यहां कह लेना चाहिए।

[६] **से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसएणं पउमाणं**
तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्ताणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।
ते णं पउमा अद्धजोयणं आयाम-विक्खंभेणं,
कोसं बाहल्लेणं, दसजोयणाइं उव्वेहेणं।
कोसं ऊसिया जलंताओ, साइरेगाइं दसजोयणाइं उव्वरोणं।
तेसि णं पउमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया मूला—जाव—कणगामई कण्णिआ।
सा णं कण्णिया कोसं आयामेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं,
सव्वकणगामई अच्छा इति।
तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे—जाव—मणीहिं उवसोभिए।
तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
तस्स णं पउमस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं महत्तरियाणं चत्तारि पउमा पण्णत्ता।
तस्स णं पउमस्स बाहिण-पुरत्थिमेणं सिरीए देवीए अब्भिंतरिआए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठ पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
बाहिरेणं मज्झिमपरिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
बाहिण-पच्चत्थिमेणं बाहिरिआए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारसपउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं सत्त पउमा पण्णत्ता।
तस्स णं पउमस्स चउद्दिसिं सव्वओ समंता एत्थ णं सिरीए देवीए सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
से णं तीहिं पउमपरिक्खेवेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, तंजहा-
अब्भिंतरएणं, मज्झिमएणं, बाहिरएणं।
अब्भिंतरए पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
मज्झिमए पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
बाहिरए पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।
एवामेव सपुव्वावरेणं तिहिं पउमपरिक्खेवेहिं
एगा पउमकोडी वीसं च पउमसयसाहस्सीओ भवंतीति अक्खायं।

[६] यह (उपर्युक्त) पद्म अपने से आधी ऊंचाई वाले अन्य एक सौ आठ पद्मों से सब ओर से घिरा हुआ है। ये पद्म आधा योजन लम्बे-चौड़े, एक कोस मोटे, दस योजन गहरे तथा एक कोस पानी से ऊपर (पानी के बाहर) हैं। (इस प्रकार सब मिला कर) दस योजन से अधिक ऊंचे हैं। इन पद्मों का वर्णन इस प्रकार है—

इनके मूल वज्रमय हैं–यावत्–कर्णिका कनकमय है। यह कर्णिका एक कोस लम्बी, आधा कोस मोटी, सर्वकनकमयी और स्वच्छ है। इस कर्णिका के ऊपर अति सम एवं रमणीय (भूमिभाग है) यह–यावत्–मणियों से सुशोभित है।

इस पद्म से।पश्चिमोत्तर में, उत्तर में तथा उत्तर-पूर्व में श्रीदेवी के चार हजार सामानिकों (देवों) के चार हजार पद्म हैं।

इस पद्म के पूर्व में श्रीदेवी की चार महत्तरिकाओं (मुख्य देवियों) के चार पद्म हैं।

इस पद्म के दक्षिण-पूर्व में श्रीदेवी की आभ्यंतर परिषद् के आठ हजार देवों के आठ हजार पद्म हैं, दक्षिण मे मध्यम परिषद् के दस हजार देवों के दस हजार पद्म हैं, दक्षिण-पश्चिम में बाह्य परिषद् के बारह हजार देवों के बारह हजार पद्म हैं तथा पश्चिम में सात अनीकाधिपतियों (देवों) के सात पद्म है।

इस पद्म की चारों दिशाओं में सभी ओर श्रीदेवी के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार पद्म हैं।

यह पद्म सब ओर से तीन पद्म-परिधियों से घिरा है, यथा-आभ्यन्तरपरिधि, मध्य की परिधि और बाह्य परिधि। आभ्यन्तर पद्म-परिधि में बत्तीस लाख पद्म हैं। मध्यम परिधि में चालीस लाख पद्म हैं और बाह्य परिधि में अड़तालीस लाख पद्म हैं। यह सब मिलकर तीनों पद्म-परिधियों में एक करोड़ और बीस लाख पद्म हैं।

'पद्मद्रह' संज्ञा का कारण

[७] [१] प्र०—**से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-पउमद्दहे पउमद्दहे ?**

उ०—**गोयमा ! पउमद्दहे णं तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं पउमद्दहप्पभाइं पउमद्दहवण्णाभाइं सिरी अ इत्थ देवी महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ। से एएणट्ठेणं-जाव-अदुत्तरं च णं गोअमा ! पउमद्दहस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते। ण कयाइ णासि, न०।**

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ७३ पृ. २८३-८४

[७] [१] प्र०—भगवन्! पद्मद्रह, पद्मद्रह क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम! पद्मद्रह में स्थान-स्थान पर बहुत पद्म हैं-यावत्-शतपत्र-सहस्रपत्र (जाति के कमल) हैं, वे पद्मद्रह की प्रभा वाले तथा पद्मद्रह के वर्ण जैसे हैं। यहां महान् ऋद्धि की धारिका-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाली श्री नामक देवी निवास करती है। इस कारण इसे पद्मद्रह कहते हैं।

इसके अतिरिक्त, गौतम! पद्मद्रह नाम शाश्वत है जो न कभी नहीं था (न कभी नहीं है, न कभी नहीं होगा अर्थात् सदैव था, है और रहेगा)।

गंगा का उद्गम और प्रपात

[८] **तस्स णं पउमद्दहस्स[1] पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं गंगा महाणई पवूढा समाणी पुरत्थाभिमुही पंच जोअणसयाइं पव्वएणं गंता गंगावत्तणकूडे[2] आवत्ता समाणी पंच तेवीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए**

---

१. (क) ठा. २ उ. ३ सूत्र ८८ पृ. ६८
(ख) „ „ „ „ सूत्र १९७

२. ठा. ८ सूत्र ६३९ पृ. ४१३

जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ ।
गंगा महाणई जओ पवडइ इत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता ।
सा णं जिब्भिआ अद्धजोअणं आयामेणं,
छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं[1] ।
अद्धकोसं बाहल्लेणं ।
मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा सण्हा ।
गंगा महाणई जत्थ पवडइ,
एत्थ णं महं एगे गंगप्पवाए कुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते[2] ।
सट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं ।
णउअं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं ।
दस जोअणाइं उव्वेहेणं,[3] अच्छे सण्हे रययामयकूले
समतीरे वइरामयपासाणे वइरतले
सुवण्ण-सुब्भरययामयबालुआए वेरुलिअमणिफालिअपडलपच्चोअडे,
सुहोआरे सुहोत्तारे णाणामणितित्थसुबद्धे वट्टे
अणुपुव्व-सुजाय-वप्प-गंभीर-सीअलजले
संछण्णपत्त-भिस-मुणाले
बहुउप्पल-कुमुअ-णलिण-सुभग-सोगंधिअ-पोंडरीअ-महापोंडरीअ-सयपत्त-सहस्सपत्त-सयसहस्सपत्तप्फुल्ल-केसरोवचिए
छप्पय-महुयरपरिभुज्जमाणकमले
अच्छ-विमल-पत्थसलिले पुण्णे
पडिहत्थभमंतमच्छ-कच्छभ-अणेगसउणगण-मिहुणपविअरियसद्दुन्नइअ-महुरसरणाइए पासाईए ।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
वेइआ-वणसंडगाणं पउमाणं वण्णओ भाणिअव्वो ।

[८] इस पद्मद्रह के पूर्वदिशा के तोरण (द्वार) से गंगा महानदी निकल कर पूर्व ही की ओर पांच सौ योजन पर्वत पर होकर गई है। यहां गंगावर्त्तन कूट के नीचे से मुड़कर ५२३$\frac{3}{19}$ योजन दक्षिण में पर्वत पर होकर घट के मुख से निकलते हुए जल के समान (खल-खल करते हुए) मोतियों के हार के समान एवं सौ योजन से कुछ अधिक चौड़े प्रपात से नीचे गिरती है।

गंगा महानदी जहां से गिरती है वहां एक विशाल जिह्विका (नालिका) है। यह नालिका आधा योजन लम्बी, सवा छह योजन चौड़ी, आधा कोस मोटी, मकर के खुले हुए मुख के आकार की, सर्वात्मना वज्रमयी, स्वच्छ और चिकनी है।

गंगा महानदी जहां गिरती है वहां गंगाप्रपात नामक एक विशाल कुण्ड है। यह साठ योजन लम्बा-चौड़ा, एक सौ नव्वे योजन से किंचित् अधिक की परिधि वाला, दस योजन गहरा, स्वच्छ और श्लक्ष्ण है।

---

१. सम. २५ सूत्र ७ पृ. ५२
२. ठा. २ उ. ३ सूत्र ८८ पृ. ६८
३. ठा. १० सूत्र ७७९ पृ. ४९८

इसके किनारे रजतमय हैं, तीर समतल हैं, दीवालें वज्रमय हैं, तल भी वज्रमय हैं, उसमें सुवर्णमय, सुभ्रमय (रूप्यविशेषमय) एवं रजतमय वालुका है। उसके किनारे के ऊँचे प्रदेश वैडूर्यमणिमय एवं स्फटिकरत्न के पटलमय हैं। सुखपूर्वक उतरने चढ़ने योग्य हैं। उसका तीर्थ (घाट) नाना प्रकार की मणियों से सुबद्ध है। वह गोलाकार है। अनुक्रम से नीचा, और नीचा तथा सुनिर्मित केदार में गहरा और शीतल जल उसमें है। वह (पद्मिनी के) पत्तों से, कन्दों से और मृणालों से आच्छादित है। खिले हुए उत्पलों, कुमुदों, नलिनों, सुभगों, सौगन्धिकों, पुण्डरीकों, महापुण्डरीकों, शतपत्रों, सहस्रपत्रों एवं लक्षपत्र कमलों की केसर से सुशोभित है। भ्रमरों (षट्पद मधुपों) से परिभुज्यमान पद्मों वाला है। स्वच्छ, विमल एवं पथ्य जल से युक्त है। पूरा भरा हुआ है। उसमें मच्छ और कच्छ बड़ी संख्या में घूमते रहते हैं। अनेक पक्षी-युगलों का वहां विहार होता रहता है। उनके मधुर स्वरों से वह गूंजता रहता है और इस कारण चित्त को प्रसन्न करने वाला है।

यह गंगाप्रपात कुण्ड एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है। पद्मवरवेदिका का, वनखण्ड का और पद्मों का वर्णन यहां कह लेना चाहिए।

गंगाप्रपातकुंड के सोपान

[९] **तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तंजहा—**
पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं।
तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—
वइरामया णेम्मा, रिट्ठामया पइट्ठाणा,
वेरुलिआमया खंभा, सुवण्ण-रुप्पमया फलगा,
लोहिअक्खमईओ सूईओ, वइरामया संधी,
णाणामणिमया आलंबणा आलंबणबाहाओत्ति।

[९] इस गंगाप्रपातकुंड की तीन दिशाओं में तीन प्रतिरूप (सुन्दर) सोपानपंक्तियां हैं, यथा—पूर्व में, दक्षिण में और पश्चिम में।

इन प्रतिरूप सोपानों का वर्णन इस प्रकार है—इनके पाये वज्रमय हैं, प्रतिष्ठान अरिष्टमय हैं, स्तम्भ वैडूर्यमय हैं, फलक स्वर्ण-रूप्यमय है, सूचियां लोहिताक्षमय हैं, संधियां वज्रमय हैं, आलंबन (उतरते-चढ़ते समय सहारा लेने के साधन) तथा आलंबनबाहाएं (आलंबन की आधारभूत भित्तियां) नानामणिमय हैं।

तोरणवर्णन

[१०] **तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ**
पत्तेयं-पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता।
ते णं तोरणा णाणामणिमया
णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठसंनिविट्ठा
विविहमुत्तंतरोवइआ विविहतारारूवोवचिआ
ईहामिअ-उसह-तुरग-णर-मगर-विहग-वालगकिण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्ता,
खंभुग्गयवइरवेइआ-परिगयाभिरामा,
विज्जाहरजमलजुवलजंतजुत्तावि अच्चीसहस्समालणीआ, रूवगसहस्सकलिआ,
भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोअणलेसा
सुहफासा सस्सिरीअरूवा
घंटावलिचलिअ-महुर-मणहरसरा पासादीया।

तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा—
सोत्थिए, सिरिवच्छे—जाव—पडिरूवा ।
तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे किण्हचामरज्झया—जाव—पुडिकल्लवामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरामयदण्डा जलयामलगंधिया सुरम्मा पासादीया ।
तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइछत्ता,
पडागाइपडागा घंटाजुअला चामरजुअला
उप्पलहत्थगा पउमहत्थगा—जाव—सयसहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा ।

[१०] इन प्रतिरूप त्रिसोपानों के सामने पृथक्—पृथक् तोरण हैं । ये तोरण नानामणिमय हैं, नानामणिमय स्तंभों से उपनिविष्ट और सन्निविष्ट हैं । विविध मुक्ताओं से उपचित हैं । विविध तारारूपों से सहित हैं । उन पर भेड़िया, वृषभ, तुरंग, नर, मगर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरु (मृगविशेष) अष्टापद, चमर, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र अंकित हैं । वे वज्रमय वेदिका से सुशोभित हैं । विद्याधरों की जुगल जोड़ी से युक्त हैं । सहस्रों किरणों की प्रभा वाले हैं । सहस्र रूप से कलित हैं, चमकीले हैं, देदीप्यमान हैं । देखने पर नेत्र उनमें गड़ जाते हैं । सुखद स्पर्श वाले तथा सश्रीक रूप वाले हैं । हिलती हुई घंटावलि से मधुर एवं मनोहर स्वर को उत्पन्न करने वाले हैं, प्रासादिक हैं।

इन तोरणों पर बहुत-से अष्ट-अष्ट मंगल हैं, यथा—स्वस्तिक, श्रीवत्स-यावत्-प्रतिरूप हैं ।
इन तोरणों पर अनेक कृष्ण चामरध्वजाएं—यावत्—शुक्ल चामरध्वजाएं हैं । (चामरध्वजाएं) स्वच्छ, श्लक्ष्ण, रौप्यपट्ट वाली, वज्र के दंड वाली, कमल के समान सुगंधित, सुरम्य एवं प्रासादिक हैं । इन तोरणों पर अनेक छत्रों पर छत्र, पताकाओं पर पताकाएं, घंटायुगल, चामरयुगल उत्पल-हस्तक (उत्पल-कमल हाथ में लिए हुए के चित्र), पद्महस्तक-यावत्-लक्षपत्र-हस्तक हैं । ये सब सर्वरत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं ।

गंगाद्वीप

[११] तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे गंगादीवे णामं दीवे पण्णत्ते ।[1]
अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं ।
दो कोसे ऊसिए जलंताओ,
सव्ववइरामए अच्छे सण्हे,
से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
वण्णओ भाणिअव्वो ।
गंगादीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ।
तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं गंगाए देवीए भवणे पण्णत्ते ।
कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं च कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं ।
अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे—जाव—बहुमज्झभाए मणिपेढियाए सयणिज्जे ।
से केणट्ठेणं ?—जाव—सासए णामधेज्जे पण्णत्ते ।

[११] उस गंगाप्रपात कुण्ड के मध्य में गंगाद्वीप नामक एक विशाल द्वीप है । वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा, पच्चीस योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला, पानी से दो कोस ऊँचा, सर्ववज्रमय, स्वच्छ एवं चिकना है ।

१–ठा. ८ सूत्र ६२९ पृ० ४११

वह (द्वीप) एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है। यहाँ इन दोनों का वर्णक कह लेना चाहिए।
गंगाद्वीप के ऊपर अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमि-भाग है।

[१२] इसके मध्य में गंगा देवी का एक विशाल भवन है। यह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, एक कोस ऊंचा एवं सैकड़ों स्तंभों वाला है।—यावत्—इसके मध्य में मणिपीठिका के ऊपर शय्या है।
इसका गंगाद्वीप नाम क्यों है?—यावत्—यह नाम शाश्वत है।

गंगा-संगम

[१३] **तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं**
गंगामहाणई पवूढा समाणी
उत्तरड्ढभरहवासं एज्जमाणी-एज्जमाणी
सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आउरेमाणी-आउरेमाणी
अहे खंडप्पवायगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालइत्ता
दाहिणड्ढभरहवासं एज्जमाणी-एज्जमाणी
दाहिणड्ढभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता
पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी
चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा
अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।[1]
गंगा णं महाणई पवहे छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं,[2]
तयणंतरं च णं मायाए-मायाए परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी मुहे वासट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च विक्खंभेणं।
सकोसं जोअणं उव्वेहेणं,
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता।
वेइआ-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो।

[१३] इस गंगाप्रपात कुंड के दक्षिणी द्वार से गंगा महानदी निकल कर उत्तरार्द्ध भरत क्षेत्र में बहती हुई सात हजार नदियों को अपने में मिलाती है। फिर खण्डप्रपात गुफा के नीचे से निकल कर वैताढ्य पर्वत को भेदती हुई दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र में बहती है। दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के मध्य में होकर पूर्वाभिमुख होती हुई चौदह हजार नदियों सहित जगती के नीचे होती हुई पूर्वी लवण समुद्र में मिल जाती है।

गंगा महानदी उद्गम में सवा छह योजन चौड़ी और आधा कोस गहरी है। तदनन्तर अनुक्रम से बढ़ती-बढ़ती (समुद्र में) गिरते समय साढ़े बासठ योजन चौड़ी एवं सवा योजन गहरी हो जाती है।

इसके दोनों ओर दो पद्मवर वेदिकाएँ तथा दो वनखण्ड हैं। यहां वेदिकाओं और वनखण्डों का वर्णक समझ लेना चाहिए।

१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं गंगा महानदी पंच महानदीओ समप्पेति, तंजहा—
१ जउणा, २ सरऊ, ३ आवी, ४ कोसी, ५ मही।
—ठा. ५ उ. ३ सूत्र ४७० पृ० ३३३
—ठा. १० सूत्र ७१७ पृ० ४५३

२—सम० २४ सूत्र ५ पृ० ४६

सिन्धु नदी

[१४] एवं सिंधूएवि णेअव्वं–जाव–
तस्स णं पउमद्दहस्स पच्चत्थिमिल्लेणं तोरणेणं
सिंधुआवट्टणकूडे[1] दाहिणाभिमुही
सिंधुप्पवाय कुंडं,[2] सिंधुद्दीवो,[3]
अट्ठो सो चेव-जाव-
अहे तिमिसगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालइत्ता पच्चत्थिमाभिमुही आवत्ता समाणी–
चोद्दससलिला अहे जगइं
पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं–जाव–समप्पेइ[4] ।
सेसं तं चेवत्ति ।

[१४] इसी प्रकार सिन्धु (महानदी) के विषय में भी जान लेना चाहिए । यह पद्मद्रह के पश्चिमी तोरण से निकल कर सिन्धु-आवर्त्तन कूट से दक्षिण की ओर जाती है (इस संबंधी) सिन्धुप्रपात कुण्ड, सिन्धु द्वीप आदि समझने चाहिए । इसके नाम का कारण भी कह लेना चाहिए । –यावत्–तमिस्र गुफा के नीचे होती हुई, वैताढ्य पर्वत को भेदती हुई पश्चिम की ओर जाकर चौदह हजार नदियों सहित, जगती के नीचे होती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में गिरती है ।
शेष कथन वही (पूर्ववत्) समझना चाहिए ।

रोहितांसा महानदी

[१५] तस्स णं पउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं
रोहिअंसा महाणई[5] पवूढा समाणी
दोण्णि छावत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स
उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता
महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं
साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ
रोहिअंसा महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता ।
सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं,
अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं,
कोसं बाहल्लेणं ।
मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ, सव्ववइरामई, अच्छा ।
रोहिअंसा महाणई जहिं पवडइ
एत्थ णं महं एगे रोहिअंसापवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ।

---

१ ठा० ८ सूत्र ६३९ पृ० ४१३ ।
२ ,, ,, ,, ,,
३ ,, सूत्र ६२९ पृ० ४११ ।
४ जंबूमंदरस्स दाहिणेणं सिंधुमहाणदी पंच महानईओ समप्पेति तंजहा—
१ सतद्रू, २ विभासा, ३ वितत्था, ४ एरावती, ५ चंदभागा ।
—ठा० ५ उ० ३ सूत्र ४७० पृ० ३३३ ।
—ठा० १० सूत्र ७१७ पृ० ४५३ ।
५ ठा० ३ उ० ४ सूत्र १९७ पृ० १५१

सवीसं जोअणसयं आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णि असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं ।
दस जोअणाइं उव्वेहेणं,
अच्छे, कुंडवण्णओ—जाव—तोरणा ।

[१५] इस पद्मद्रह के उत्तरी द्वार से रोहितांसा महानदी निकल कर २७६$\frac{६}{१९}$ योजन उत्तर की ओर पर्वत पर होती हुई विशाल घट से गिरते हुए एवं मुक्तावलीहार के समान, सौ योजन से कुछ अधिक (चौड़े) प्रपात से नीचे गिरती है ।

रोहितांसा महानदी जहां गिरती है वहा एक विशाल नालिका है। यह नालिका एक योजन लम्बी, साढ़े बारह योजन चौड़ी, एक कोस मोटी, मगर के खुले मुख के आकार की, सर्वात्मना वज्रमयी और स्वच्छ है ।

जहां रोहितांसा महानदी गिरती है वहा एक विशाल रोहितांसाप्रपात नामक कुण्ड है। यह एक सौ बीस योजन लम्बा-चौडा, तीन सौ अस्सी योजन से कुछ कम की परिधि वाला, दस योजन गहरा और स्वच्छ है। यहा कुण्ड का वर्णन समझ लेना चाहिए-यावत्-तोरण हैं ।

रोहितांसा द्वीप

[१६] **तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए**
एत्थ णं महं एगे रोहिअंसाणामं दीवे पण्णत्ते ।
सोलस जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
साइरेगाइं पण्णासं जोअणाइं परिक्खेवेणं,
दो कोसे ऊसिए जलंताओ,
सव्वरयणामए अच्छे सण्हे,
सेसं तं चेव-जाव-भवणं अट्ठो अ भाणिअव्वोत्ति ।

[१६] रोहितांसाप्रपात कुण्ड के मध्य मे रोहितांसा नामक एक विशाल द्वीप है । यह सोलह योजन लम्बा-चौड़ा, पचास योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला, पानी से दो कोस ऊंचा, पूरी तरह रत्नमय स्वच्छ और चिकना है । शेष वर्णन वही-पूर्ववत् है—यावत्-भवन और नाम का कारण कह लेना चाहिए ।

रोहितांसा का संगम

[१७] **तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुंडस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं,**
रोहिअंसा महाणई[1] पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जमाणी-एज्जमाणी
चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी-आपूरेमाणी
सद्दावइवट्टवेअद्धपव्वयं अद्धजोयणेणं असंपत्ता समाणी
पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी
हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी-विभयमाणी
अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा
अहे जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ।
रोहिअंसा णं पवहे अद्धतेरस जोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं उव्वेहेणं,

---

१—ठा. ३ उ. ४ सूत्र १९७ पृ०-१५१

तयणंतरं च णं मायाए-मायाए परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी,
मुहमूले पणवीसं जोअणसयं विक्खंभेणं
अड्ढाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ।

जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ७४ पृ० २८९-९०

[१७] रोहितांसाप्रपात कुंड के उत्तरीय तोरण (द्वार) से रोहितांसा महानदी निकल कर हैमवत वर्ष में बहती हुई, चौदह हजार नदियों के साथ, शब्दापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत से आधे योजन की दूरी पर पश्चिम की ओर मुड़ती हुई, हैमवत वर्ष को दो भागों में विभक्त करती हुई, अट्ठाईस हजार नदियों सहित, नीचे की भूमि को काटती हुई पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है ।

उद्गम में रोहितांसा का प्रवाह साढ़े बारह योजन चौड़ा और एक कोस गहरा है । फिर अनुक्रम से बढ़ते-बढ़ते संगम के स्थान पर एक सौ पच्चीस योजन चौड़ा तथा अढ़ाई योजन गहरा हो गया है । इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं और दो वनखण्ड हैं जो इसे सब ओर से घेरे हुए हैं ।

चुल्लहिमवन्त पर्वत के कूट

[१८][१] प्र०—चुल्लहिमवंते णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता [१] ?

उ०—गोयमा ! इक्कारस कूडा पण्णत्ता, तंजहा–सिद्धाययणकूडे १, चुल्लहिमवंतकूडे २, भरहकूडे ३, इलादेवीकूडे ४, गंगादेवीकूडे ५, सिरिकूडे ६, रोहिअंसकूडे ७, सिन्धुदेवीकूडे ८, सुरदेवीकूडे ९, हेमवयकूडे १०, वेसमणकूडे ११ ।

[१८][१] प्र०—भगवन् ! चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत पर कितने कूट हैं ?

उ०—गौतम ! ग्यारह कूट हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट (२) चुल्लहिमवन्तकूट (३) भरतकूट (४) इलादेवीकूट (५) गंगादेवीकूट (६) श्रीकूट (७) रोहितांसाकूट (८) सिन्धुदेवीकूट (९) सुरादेवीकूट (१०) हैमवतकूट और (११) वैश्रमणकूट ।

कूटवर्णन

[१९][१] प्र०—कहि णं भंते ! चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पुरच्छिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
चुल्लहिमवंतकूडस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।
पंच जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, [२]
मूले पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
मज्झे तिण्णि अ पण्णत्तरे जोअणसए विक्खंभेणं,
उप्पिं अड्ढाइज्जे जोअणसए विक्खंभेणं,
मूले एगं जोअणसहस्सं पंच य एगासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं,
मज्झे एगं जोअणसहस्सं एगं च छलसीअं जोअणसयं किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं,

---

१—ठा० २ उ. ३ सूत्र ८७ पृ०–६५
२—सम० १०८ सूत्र २

उप्पि सत्तइक्काणउए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं ।
मूले विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पि तणुए,
गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे ।
से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
सिद्धाययणकूडस्स णं उप्पि बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—जाव—
तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे पण्णत्ते ।
पण्णासं जोअणाइं आयामेणं,
पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं,
छत्तीसं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेण—जाव—जिणपडिमावण्णओ भाणिअव्वो ।

[१९][१] प्र०—भगवन् ! चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत पर सिद्धायतन नामक कूट कहां है ?

उ०—गौतम ! पूर्वी लवण समुद्र से पश्चिम में तथा चुल्लहिमवन्त कूट से पूर्व में सिद्धायतन नामक कूट है । यह पाँच सौ योजन ऊंचा, मूल में पाच सौ योजन चौड़ा, मध्य में तीन सौ पचहत्तर योजन चौड़ा, ऊपर अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है । इसकी परिधि मूल में १५८१ योजन से किंचित् अधिक है । मध्य में ११८६ योजन से कुछ कम है और ऊपर ७९१ योजन से कुछ कम है ।

यह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतला है । गाय की पूंछ के आकार का है । सर्वरत्नमय और स्वच्छ है ।

यह एक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से सभी ओर से घिरा है ।

सिद्धायतन कूट पर अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग है—यावत्—इस सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य में एक विशाल सिद्धायतन है । यह सिद्धायतन पचास योजन लम्बा, पच्चीस योजन चौड़ा, छत्तीस योजन ऊंचा—यावत्—जिनप्रतिमा से युक्त है । यहाँ जिनप्रतिमा का वर्णन कह लेना चाहिए ।

चुल्लहिमवन्त कूट

[२०][१] प्र०—कहि णं भंते ! चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! भरहकूडस्स पुरत्थिमेणं, सिद्धाययणकूडस्स पच्चत्थिमेणं
एत्थ णं चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतकूडे णामं कूडे पण्णत्ते[1] ।
एवं जो चेव सिद्धाययणकूडस्स उच्चत्त-विक्खंभ-परिक्खेवो-जाव-
बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते ।
बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोअणं च उच्चत्तेणं,
इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खंभेणं,
अब्भुग्गयमूसिअपहसिए विव विविहमणिरयणभत्ति-चित्ते, वाउद्धुअविजय-वेजयन्ती-पडाग-च्छत्ताइ-च्छत्तकलिए तुंगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे जालंतर-रयणपंजरुम्मीलिएव्व मणिरयणथूभिआए
विअसिअसयवत्त-पुंडरीअ-तिलय-रयण-द्धचंदचित्ते णाणामणिमयदामालंकिए
अंतो बहिं च सण्हबइरतवणिज्जरुइलवालुगापत्थडे सुहफासे सस्सिरीअरूवे पासाईए-जाव-पडिरूवे :
तस्स णं पासायवडेंसगस्स अंतो बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-सीहासणं सपरिवारं ।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-चुल्लहिमवंतकूडे चुल्लहिमवंतकूडे ?

उ०—गोअमा ! चुल्लहिमवंते णामं देवे महिड्ढीए-जाव-परिवसइ ।

१—चुल्लहिमवंतकूडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं छ जोयण-सयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । —सम० ६०० सूत्र २

[२०][१] प्र०—भगवन् ! चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत पर चुल्लहिमवन्त नामक कूट कहां है ?

उ०—गौतम ! भरतकूट से पूर्व में तथा सिद्धायतन कूट से पश्चिम में चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत का चुल्लहिमवन्त नामक कूट है। सिद्धायतन कूट की ऊंचाई, चौड़ाई, परिधि आदि की तरह इसकी भी ऊंचाई आदि समझ लेनी चाहिए-यावत्-इसके सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य में एक विशाल प्रासादावतंसक है। यह साढ़े बासठ योजन ऊंचा और सवा इकतीस योजन चौड़ा है। वह प्रबल एवं शुभ्र प्रभापटल के कारण मानो हँस रहा है। विविध प्रकार के मणि-रत्नों की रचना से चित्र-विचित्र है। वायु से उड़ती हुई विजय-वैजयन्ती, पताकाओं एवं छत्रातिछत्रों (छत्रों के ऊपर बने छत्रों) से सुशोभित है। ऊंचा है। गगन तल को लांघने वाले शिखर से युक्त है। उसकी जालियों में (शोभा के हेतु) रत्नों की रचना की गई है। वह अविनष्ट शोभा वाला है मानो पींजरे से निकाला गया हो या जालियों में लगे रत्नों के समुदाय से नेत्रों को आकर्षित करने वाला है। मणियों एवं रत्नों की स्तूपिकाओं से युक्त है। विकसित शतपत्र, पुण्डरीक, तिलक एवं रत्नमय अर्धचंद्रों से चित्र-विचित्र है। नाना मणिमय मालाओं से अलंकृत है। उसके अन्दर और बाहर मुलायम वज्र एवं रक्तसुवर्ण की मनोहर बालुका के पटल हैं। वह सुखद स्पर्श वाला, शोभायमान रूप वाला, प्रसन्नताकारी है—यावत्—प्रतिरूप है।

इस प्रासादावतंसक के अन्दर अति सम एवं रमणीय भूमिभाग है—यावत्—सपरिवार सिंहासन है।

[२] प्र०—भगवन् ! चुल्लहिमवन्तकूट चुल्लहिमवन्तकूट क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम ! यहां चुल्लहिमवन्त नामक महर्द्धिक देव—यावत्—रहता है

चुल्लहिमवन्ता राजधानी

[२१][१] प्र०—कहि णं भंते ! चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवंता णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चुल्लहिमवंतकूडस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता
अण्णं जंबुद्दीवं दीवं दक्खिणेणं बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता
इत्थ णं चुल्लहिमवंतस्स गिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवंता णामं रायहाणी पण्णत्ता।
बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,
एवं विजयरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा।

[२१][२] प्र०—भगवन् ! चुल्लहिमवन्तगिरिकुमार देव की चुल्लहिमवन्ता नामक राजधानी कहां है ?

उ०—गौतम ! चुल्लहिमवन्तकूट से दक्षिण की ओर तिर्छे असंख्य द्वीप और समुद्र पार करने पर एक दूसरा जम्बूद्वीप है। इस द्वीप में दक्षिण में बारह हजार योजन जाने पर चुल्लहिमवन्तगिरिकुमार देव की चुल्लहिमवन्ता नामक राजधानी है। यह बारह योजन लम्बी-चौड़ी है। इसका कथन विजया राजधानी के समान कह लेना चाहिए।

अवशेष कूट

[२२] एवं अवसेसाणवि कूडाण वत्तव्वया णेअव्वा।
आयाम-विक्खंभ-परिक्खेव-पासाय-देवयाओ
सीहासण-परिवारो अट्ठो णेअव्वाओ।
चउसु देवा-चुल्लहिमवन्त १ भरह २ हेमवय ३ वेसमणकूडेसु।
सेसेसु देवयाओ।

[२२] शेष कूटों की भी वक्तव्यता इसी प्रकार समझना चाहिए। इनकी लम्बाई, चौड़ाई, परिधि, प्रासाद, देवता, सिंहासन, परिवार, नाम का कारण कह लेना चाहिए।

चुल्लहिमवन्त, भरत, हैमवत और वैश्रमणकूटों में देव हैं, शेष कूटों में देवियां हैं।

'चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत' संज्ञा का हेतु

[२३][१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए २ ?

उ०—गोयमा ! महाहिमवंतवासहरपव्वयं पणिहाय आयामु-च्चत्त-ध्वेह-विक्खंभ-परिक्खेवं पडुच्च ईसिं खुड्डतराए चेव, हस्सतराए चेव, णीअतराए चेव ।

चुल्लहिमवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए २ ।

अदुत्तरं च णं गोअमा ! चुल्लहिमवंतस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जं ण कयाइ णासि ३ ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ७५ पृ. २९६

[२३][१] प्र०—भगवन् ! चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत को चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम !महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत की अपेक्षा लम्बाई, ऊंचाई, गहराई, चौड़ाई, परिधि आदि में यह छोटा है, ह्रस्व है, निम्न है । यहां चुल्लहिमवन्त नामक महर्धिक-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है । इस कारण गौतम ! इसे चुल्ल (छोटा) हिमवन्त वर्षधर पर्वत कहते हैं ।

इसके अतिरिक्त गौतम !चुल्लहिमवन्त नाम शाश्वत है, जो न कभी नहीं था इत्यादि ।

महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

उ० —गोअमा ! हरिवासस्स दाहिणेणं,

हेमवयस्स वासस्स उत्तरेणं,

पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,

पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ।

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिण्णे पलिअंकसंठाणसंठिए

वुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए-जाव-पुट्ठे

पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे ।

दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

पण्णासं जोअणाइं उव्वेहेणं,[1]

चत्तारि जोअणसहस्साइं दोण्णि य दसुत्तरे जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं ।

तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णव जोअणसहस्साइं दोण्णि य दसुत्तरे जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं ।

तस्स जीवा उत्तरेण पाईण-पडीणायया, वुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा,

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए-जाव-पुट्ठा ।

तेवण्णं[2] जोअणसहस्साइं नव य एगतीसे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसाहिए आयामेणं ।

१—सम. १०२ सूत्र २

२—सम. ५३ सूत्र २

तस्स धणुं दाहिणेणं सत्तावण्णं[1] जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेगउए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।

रुअगसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते ।

महाहिमवंतस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-णाणाविहपंच-वण्णेहिं मणीहिं तणेहि य उवसोभिए-जाव-आसयंति सयंति य[2] ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ७९ पृ. ३०१

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में महाहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! हरिवर्ष से दक्षिण में, हैमवत वर्ष से उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में एवं पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीप स्थित महाहिमवन्त नामक वर्षधर पर्व है। यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, पलंग के आकार का तथा दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर से पूर्वी लवणसमुद्र से और पश्चिम की ओर से पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है।

इसकी ऊंचाई दो सौ योजन, गहराई पचास योजन एवं चौड़ाई ४२१०$\frac{१२}{१९}$ योजन है।

इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम की ओर ९२७६$\frac{६}{९}$+$\frac{१}{२}$ योजन लम्बी है।

इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी एवं दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर से पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, पश्चिम की ओर से पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है। यह ५३९३१$\frac{६}{९}$ योजन से कुछ अधिक लम्बी है। इसका धनुपृष्ठ दक्षिण की ओर ५७२९३$\frac{१२}{१९}$ योजन की परिधिवाला है। यह रुचक के आकार का, सर्वरत्नमय, स्वच्छ एवं दोनों ओर से दो पद्मवर-वेदिकाओं व दो वनखण्डों से घिरा है।

महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत के ऊपर अति सम एवं रमणीय भूमि है-यावत्-वह नानाविध पंचवर्ण मणियों और तृणों से सुशोभित है-यावत्-(यहां देव) बैठते और शयन करते हैं।

महापद्मद्रह

[२] महाहिमवंतस्स णं बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं एगे महापउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ।
दो जोअणसहस्साइं आयामेणं,[3]
एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं,
दस जोअणाइं उव्वेहेणं
अच्छे रययामयकूले
एवं आयाम-विक्खंभविहूणा जा चेव पउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव णेअव्वा ।
पउमप्पमाणं दो जोअणाइं, अट्ठो—जाव—
महापउमद्दहवण्णाभाइं
हिरी अ इत्थ देवी—जाव—पलिओवमट्ठिइया परिवसइ ।
से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ ।
अदुत्तरं च णं गोअमा ! महापउमद्दहस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते
जं ण कयाइ णासी ३ ।

---

१. सम. ५७ सूत्र ५

२. महाहिमवयस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं बासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—सम. ८२ सूत्र ३

३. सम० ११५

[२] महाहिमवन्त पर्वत के मध्य में एक महापद्मद्रह नामक द्रह है। यह दो हजार योजन लम्बा, एक हजार योजन चौड़ा, दस योजन गहरा, स्वच्छ, रजतमय किनारों वाला—यावत्—लम्बाई-चौड़ाई को छोड़ कर शेष बातों में पद्मद्रह के ही समान है।

इसके पद्म का प्रमाण दो योजन का है। इसके नाम का कारण (कह लेना चाहिए)—यावत्—यहां महापद्मद्रह के वर्ण जैसे (कमल आदि हैं)।

ह्री नामक देवी यहां निवास करती है जो—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली है।

इस कारण गौतम ! (इसे महापद्मद्रह) कहते है। इसके अतिरिक्त गौतम ! महापद्मद्रह का यह नाम शाश्वत है जो न कभी नहीं था, (न कभी नही है और जो न कभी नहीं होगा।)

रोहिता महानदी का उद्गम

[३] **तस्स णं महापउमद्दहस्स[1] दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं**
रोहिआ महाणई पवूढा समाणी
सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच एगूणवीसइभाए जोअणस्स दक्खिणाभिमुही पच्चएणं गंता
महया घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं
साइरेगदोजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।
रोहिआ णं महाणई जओ पवडइ
एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता।
सा णं जिब्भिया जोअणं आयामेणं
अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं
कोसं बाहल्लेणं
मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिया सव्ववइरामयी अच्छा।
रोहिआ णं महाणई जहिं पवडइ
एत्थ णं महं एगे रोहिअप्पवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते।[2]
सवीसं जोअणसयं आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णि असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं,
दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे, सण्हे,
सो चेव वण्णओ।
वइरतले वट्टे समतीरे—जाव—तोरणा।

[३] इस महापद्मद्रह के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकल कर १६०५$\frac{५}{१९}$ योजन दक्षिण की ओर पर्वत पर जाकर विशाल घट के मुख से निकलते हुए (मल्-मल्-खल्-खल् शब्द करते हुए) एवं मुक्तावली हार के सदृश दो सौ योजन से कुछ अधिक (चौड़े) प्रवाह से नीचे गिरती है।

जहां रोहिता महानदी गिरती है वहां एक विशाल जिह्विका (नाली) है। यह नाली एक योजन लंबी, साढ़े बारह योजन चौड़ी, एक कोस मोटी, खुले हुए मगर के मुख के आकार की, सर्ववज्रमयी और स्वच्छ है।

जहां रोहिता महानदी गिरती है वहां रोहिताप्रपात नामक एक विशाल कुंड है। यह एक सौ बीस योजन लंबा-चौड़ा, तीन सौ अस्सी योजन से कुछ कम परिधि वाला, दस योजन गहरा, स्वच्छ, चिकना (आदि विशेषणों से युक्त) है। इसका तल वज्रमय है, यह वर्तुलाकार व सम किनारों वाला है—यावत्—तोरण हैं।

१-२—ठा. अ, २ उ. ३ सूत्र ८८ पृ० ६८

रोहिताद्वीप

[४] तस्स णं रोहिअप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे रोहिअद्दीवे णामं दीवे पण्णत्ते ।
सोलस जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं ।
साइरेगाइं पण्णासं जोअणाइं परिक्खेवेणं ।
दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्ववइरामए अच्छे ।
से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
रोहिअद्दीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ।
तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते ।
कोसं आयामेणं, सेसं तं चेव,
पमाणं च अट्ठो अ भाणिअव्वो ।

[४] इस रोहिताप्रपात कुंड के मध्य में रोहिताद्वीप नामक एक विशाल द्वीप है। यह सोलह योजन लम्बा-चौड़ा, पचास योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला, जल की सतह से दो कोस ऊंचा, सर्ववज्रमय एवं स्वच्छ है। यह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा है।

रोहिताद्वीप के ऊपर अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग है। इस सम एवं रमणीय भूभाग के मध्य में एक विशाल भवन है। यह एक कोस लम्बा है। शेष वक्तव्यता वही (गंगाद्वीप आदि के समान) है। इसका प्रमाण और नाम का हेतु कह लेना चाहिए।

रोहिता महानदी का संगम

[५] तस्स णं रोहिअप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं
रोहिआ महाणई पवूढा समाणी
हेमवयं वासं एज्जमाणी-एज्जमाणी
सद्दावइं वट्टवेयड्ढपव्वयं अद्धजोअणेणं असंपत्ता
पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी
हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी-विभयमाणी
अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा
अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ।
रोहिआ णं जहा रोहिअंसा तहा पवाहे अ मुहे अ भाणिअव्वा
इति-जाव-संपरिक्खित्ता ।

[५] इस रोहिताकुंड के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकल कर हैमवत क्षेत्र में आती हुई शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत से आधे योजन की दूरी पर पूर्वाभिमुख मुड़ती हुई, हैमवत वर्ष को दो भागों में विभाजित करती हुई, अट्ठाईस हजार नदियों सहित, नीचे की भूमि को काटती हुई पूर्वी लवणसमुद्र में गिरती है।

रोहिता का प्रवाह और मुख आदि का प्रमाण रोहितांसा नदी के समान समझना चाहिए-यावत् यह (पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से) संपरिक्षिप्त है।

हरिकान्ता महानदी का उद्गम

[६] तस्स णं [1]महापउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं
हरिकंता महाणई पवूढा समाणी
सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता
महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं
साइरेगदुजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ ।
हरिकंता महाणई जओ पवडइ
एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता ।
दो जोअणाइं आयामेणं, पणवीस जोअणाइं विक्खंभेणं,
अद्धजोयणं बाहल्लेणं ।
मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्वरयणामई अच्छा ।
हरिकंता णं महाणई जहिं पवडइ
एत्थ णं महं एगे हरिकंतप्पवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ।
दोण्णि अ चत्तालेजोअणसए आयाम-विक्खंभेणं,
सत्तअउणट्ठे जोअणसए परिक्खेवेणं ।
अच्छे एवं कुंडवत्तव्वआ सव्वा नेयव्वा—जाव—तोरणा ।

[६] इस (उल्लिखित) महापद्मद्रह के उत्तरीय तोरण से हरिकान्ता महानदी निकल कर १६०५ $\frac{५}{१९}$ योजन उत्तर की ओर पर्वत पर बह कर विशाल घटमुख से गिरते हुए (जल के समान खल् खल् शब्द करती हुई) मुक्तावली हार के समान, दो सौ योजन से कुछ अधिक (चौड़े) प्रपात से नीचे गिरती है ।

जहाँ हरिकान्ता महानदी गिरती है वहाँ एक विशाल नालिका है । वह दो योजन लंबी, पच्चीस योजन चौड़ी, आधा योजन मोटी, मगर के खुले मुख के समान आकार वाली, सर्वरत्नमयी व स्वच्छ है । जहाँ हरिकान्ता महानदी गिरती है वहाँ हरिकान्ता-प्रपात नामक एक विशाल कुंड है । यह दो सौ चालीस योजन लंबा-चौड़ा, सात सौ उनसठ योजन की परिधि वाला और स्वच्छ है । यहाँ सम्पूर्ण कुंडवक्तव्यता कह लेनी चाहिए—यावत्—तोरण है ।

हरिकान्ताद्वीप

[७] तस्स णं हरिकंतप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे हरिकंतदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ।
बत्तीसं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
एगुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं,
दो कोसे ऊसिए जलंताओ,
सव्वरयणामए अच्छे ।
से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं—जाव—संपरिक्खित्ते । वण्णओ भाणिअव्वोत्ति ।
पमाणं च, सयणिज्जं च, अट्ठो अ भाणिअव्वो ।

[७] उस हरिकान्ताप्रपात कुंड के मध्य में हरिकान्ताद्वीप नामक एक विशाल द्वीप है । यह बत्तीस योजन लम्बा-चौड़ा, एक सौ एक योजन की परिधि वाला, जल से दो कोस ऊँचा, सर्वरत्नमय एवं स्वच्छ है । यह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सभी ओर से घिरा हुआ है । इनका वर्णक यहाँ कह लेना चाहिए । प्रमाण, शय्या तथा नाम का हेतु भी कह लेना चाहिए ।

१—ठा. अ. २ उ, ३ सूत्र ८८ पृ० ३८

हरिकान्ता नदी का संगम

[८] तस्स णं हरिकंतप्पवायकुंडस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं—जाव—पवूढा समाणी
हरिवासं वासं एज्जमाणी-एज्जमाणी
विअडावइं वट्टवेअड्ढं जोअणेणं असंपत्ता
पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी
हरिवासं दुहा विभयमाणी-विभयमाणी
छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दलइत्ता
पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ।
हरिकंता णं महाणई पवहे पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धजोअणं उव्वेहेणं,
तयाणंतरं च णं मायाए-मायाए परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी
मुहमूले अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
पंचजोयणाइं उव्वेहेणं ।
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ८० पृ. ३७२

[८] हरिकान्ता प्रपात कुंड के उत्तरीय तोरण से (हरिकान्ता महानदी) निकल कर हरिवर्ष क्षेत्र में आती हुई विकटापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत से एक योजन दूर पश्चिम की ओर मुड़ती हुई हरिवर्ष क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती है। फिर छप्पन हजार नदियों सहित, नीचे की भूमि को काटती हुई पश्चिमी लवण-समुद्र में मिल जाती है।
उद्गम में हरिकान्ता महानदी का प्रवाह पच्चीस योजन चौड़ा व आधा योजन गहरा है। तत्पश्चात् अनुक्रम से बढ़ता-बढ़ता मुखमूल में अढ़ाई सौ योजन चौड़ा और पांच योजन गहरा हो गया है।
इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएँ और दो वनखण्ड हैं।

महाहिमवंत पर्वत के कूट

[९] [१] प्र०—महाहिमवंते णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?
उ०—गोअमा ! अट्ठ[1] कूडा पण्णत्ता, तंजहा—
सिद्धाययणकूडे १, महाहिमवंत[2]कूडे २, हेमवयकूडे ३, रोहिअकूडे ४, हिरिकूडे ५, हरिकंतकूडे ६, हरिवासकूडे ७ वेरुलिअकूडे ८ ।
एवं चुल्लहिमवंतकूडाणं जा चेव वक्तव्वया सच्चेव णेअव्वा ।

[९] [१] प्र०—भगवन् ! महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत पर कितने कूट हैं ?
उ०—गौतम ! आठ कूट हैं, यथा—(१) सिद्धायतनकूट (२) महाहिमवन्तकूट (३) हैमवतकूट (४) रोहिताकूट (५) ह्रीकूट (६) हरिकान्ताकूट (७) हरिवर्षकूट और (८) वैडूर्यकूट।
चुल्ल हिमवन्त पर्वत के कूटों की जो वक्तव्यता कही गई है वही इनकी समझ लेनी चाहिए।

१—(क) ठा. ८ उ. ३ सूत्र ६४३ पृ. ४१३
(ख) " २ उ. ३ सूत्र ८७ पृ. ६५

२—(क) महाहिमवंतकूडस्स णं उवरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—सम. ८७ सूत्र ६

(ख) महाहिमवंतकूडस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं सत्त जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—सम. ११० सूत्र ५

महाहिमवंत नाम का हेतु

[१०] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-महाहिमवंते वासहरपव्वए २ ?

उ०—गोअमा ! महाहिमवंते णं वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं पणिहाय आयामु-च्चत्त-ुव्वेह-विक्खंभ-परिक्खेवेणं महंततराए चेव, बाहततराए चेव।

महाहिमवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए—जाव—पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।

—जम्बू. वक्ष ४ सूत्र ८१ पृ. ३०४

[१०][१] प्र०—भगवन् ! महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत महाहिमवन्त क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम ! महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत की अपेक्षा लंबाई, ऊँचाई, गहराई, चौड़ाई, परिधि आदि में बड़ा है।

यहाँ महाहिमवन्त नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है। (इस कारण यह महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत कहलाता है।)

निषध पर्वत

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! महाविदेहस्स वासस्स दक्खिणेणं,

हरिवासस्स उत्तरेणं,

पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,

पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते।

पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे,

वुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे,

पुरत्थिमिल्लाए—जाव—पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए—जाव—पुट्ठे।

चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं,[1]

सोलस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए

दोण्णि य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं।

तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं वीसं जोअणसहस्साइं एगं च पणट्ठं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं।

तस्स जीवा उत्तरेणं-जाव-चउणवइं जोअणसहस्साइं एगं च छप्पण्णं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणंति।[2]

तस्स धणुं दाहिणेणं एगं जोअणसयसहस्सं चउवीसं च जोअणसहस्साइं तिण्णि अ छायाले जोअणसए णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणंति।

१—(क)–सम. १०६ सूत्र. २

(ख)–ठा. ४ उ. २ सूत्र ३०२ पृ. २१२

२—सम. ९४ सूत्र १

रुअगसंठाणसंठिए सव्वतवणिज्जमए अच्छे
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं—जाव—संपरिक्खित्तो ।
णिसहस्स णं पव्वयस्स उप्पिं बहुसम-रमणिज्जो भूमिभागे पण्णत्तो—जाव—आसयंति सयंति ।

[१] [२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में निषध नामक वर्षधर पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! महाविदेह क्षेत्र के दक्षिण में, हरिवर्ष क्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवण समुद्र के पश्चिम में और पश्चिमी लवण समुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीपस्थित निषध नामक वर्षधर पर्वत है । यह पूर्व-पश्चिम में लंबा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा एवं दो ओर से लवण समुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवण समुद्र से स्पृष्ट है ।

यह चार सौ योजन ऊंचा, चार सौ कोस (एक सौ योजन) गहरा एवं १६८४२$\frac{३}{९}$ योजन चौड़ा है । इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम की ओर २०१६५$\frac{३}{९}$ + $\frac{१}{२}$ योजन लम्बी है ।

इसकी जीवा उत्तर में—यावत्—९४१५६$\frac{३}{९}$ योजन लंबी है ।

इसकी धनुःपीठिका दक्षिण में १२४३४६$\frac{६}{९}$ योजन की परिधि में है ।

यह रुचकाकार, सर्वसुवर्णमय एवं स्वच्छ है । इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं और वनखण्ड हैं ।

निषध पर्वत पर अति सम एवं रमणीय भूमि-भाग है—यावत्—(यहाँ देवराज) बैठते और शयन करते हैं ।

तिगिञ्छि द्रह

[२] **तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए**
एत्थ णं महं एगे तिगिंछिद्दहे णामं दहे पण्णत्ते । [१]
पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे,
चत्तारि जोअणसहस्साइं आयामेणं [२]
दो जोअणसहस्साइं विक्खंभेणं,
दस जोयणाइं उव्वेहेणं,
अच्छे सण्हे रययामयकूले ।
तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता ।
एवं—जाव—आयाम-विक्खंभविहूणा जा चेव महापउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव तिगिंछिद्दहस्स वि वत्तव्वया ।
तं चेव पउमद्दहप्पमाणं ।
अट्ठो—जाव—तिगिंछिवण्णाइं ।
धिई अ इत्थ देवी पलिओवमट्ठिइआ परिवसइ ।
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ तिगिंछिद्दहे तिगिंछिद्दहे ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ८३ ३०६

[२] इस अति सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य में तिगिंछि नामक एक विशाल द्रह है । यह पूर्व और पश्चिम में लम्बा, उत्तर और दक्षिण में चौड़ा, चार हजार योजन लम्बा, दो हजार योजन चौड़ा, दस योजन गहरा, स्वच्छ, चिकना एवं रत्नमय किनारों वाला है ।

१—ठा. उ. ३ सूत्र. ८८ पृ. ६८
२—सम०. ४००० सूत्र. ११७

इस तिगिंछि द्रह की चारों दिशाओं में चार प्रतिरूप त्रिसोपान (पंक्तियाँ) हैं। लम्बाई और चौड़ाई को छोड़कर तिगिंछि द्रह का समस्त वर्णन महापद्मद्रह के समान समझना चाहिए। (धृति देवी के) पद्मों-कमलों का प्रमाण भी वही (एक करोड़ बीस लाख पचास हजार एक सौ बीस) समझना चाहिए।

तिगिंछिद्रह का अर्थ कह लेना चाहिए—यावत्—तिगिंछिद्रह के वर्ण जैसे (उत्पलादि हैं।) यहां धृति नामक पल्योपम की स्थिति वाली देवी निवास करती है। इस कारण गौतम! तिगिंछिद्रह, तिगिंछिद्रह कहलाता है।

हरिसलिला महानदी

[३] **तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं हरि (सलिला) महाणई पवूढा समाणी[1]**
सत्त जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एकवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता
महया घडमुहपवित्तिएणं–जाव–
साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।
एवं जा चेव हरिकंताए वत्तव्वया सा चेव हरीए वि णेअव्वा।
जिब्भिआए, कुंडस्स, दीवस्स, भवणस्स तं चेव पमाणं।
अट्ठो वि भाणिअव्वो–जाव–
अहे जगइं दालइत्ता छप्पणाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमं लवणसमुद्दं समप्पेइ।
तं चेव पवहे अ मुहमूले अ पमाणं।
उव्वेहो अ जो हरिकंताए–जाव–वणसंडपरिक्खित्ता।

[३] इस तिगिंछिद्रह के दक्षिण तोरण से हरि या हरिसलिला महानदी निकल कर ७४२१$\frac{1}{19}$ योजन दक्षिण की ओर पर्वत पर जाकर विशाल घटमुख से निकले (खल्-खल् शब्द करते हुए एवं मुक्तावलिहार के सदृश) कुछ अधिक चार सौ योजन के प्रपात से नीचे गिरती है।

इस प्रकार हरिकान्ता का जो वर्णन किया गया है वही हरि महानदी के विषय में भी समझ लेना चाहिए। प्रणालिका, कुंड, द्वीप और भवन का प्रमाण भी उसी प्रकार है। –यावत्–नीचे की भूमि को काट कर छप्पन हजार नदियों के साथ पूर्वी लवणसमुद्र में मिलती है। इसके (प्रवाह एवं गिरते समय के मुख का प्रमाण तथा गहराई भी हरिकान्ता के समान है। –यावत्– यह (दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो) वनखण्डों से घिरी हुई है।

शीतोदा महानदी-उद्गम

[४] **तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं**
सीओआ महणई पवूढा समाणी
सत्त जोयणसहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं–जाव–साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ।
सीओआ णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता।
चत्तारि जोअणाइं आयामेणं, पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं,
मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा।
सीओआ णं महाणई जहिं पवडइ

१—ठा० २ उ० ३ सूत्र ८८ पृ० ६८

एत्थ णं महं एगे सीओअप्पवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते,[1]
चत्तारि असीएजोअणसए आयाम-विक्खंभेणं,
पण्णरस-अट्ठारे जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, अच्छे ।
एवं कुंडवत्तव्वया णेअव्वा–जाव–तोरणा ।

[४] इस तिगिंछि द्रह के उत्तरीय तोरण से शीतोदा (अथवा सीतोदा) महानदी निकल कर ७४२१$\frac{१२}{१९}$ योजन उत्तर की ओर पर्वत पर जाकर विशाल घटमुख से गिरते (मुक्तावलिहार के समान)–यावत्–चार सौ योजन के प्रपात से नीचे गिरती है। जहां सीतोदा महानदी गिरती है वहां एक विशाल जिह्विका है। यह जिह्विका (नाली) चार सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी, एक योजन मोटी, मगर के मुख के आकार की, सर्ववज्रमयी एवं स्वच्छ है।

इस प्रकार कुंड की वक्तव्यता जान लेना चाहिए–यावत्–तोरण हैं।

शीतोदाद्वीप

[५] तस्स णं सीओअप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे सीओअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ।
चउसट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
दोण्णि बिउत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं,
दो कोसे ऊसिए जलंताओ
सव्ववइरामए अच्छे
सेसं तमेव वेइया-वणसंड-भूमिभाग-भवण-सयणिज्ज-अट्ठो भाणिअव्वो ।

[५] इस शीतोदाप्रपातकुण्ड के मध्य में शीतोदा द्वीप नामक एक विशाल द्वीप है। वह चौसठ योजन लम्बा-चौड़ा, दो सौ दो योजन की परिधिवाला, जल की सतह से दो कोस ऊंचा, सर्ववज्रमय और स्वच्छ है। वेदिका, वनखण्ड, भूमि, भवन, शय्या तथा अर्थ का कथन समझ लेना चाहिए।

शीतोदा–संगम

[६] तस्स णं सीओअप्पवायकुंडस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओआ महाणई पवूढा समाणी देवकुरुं एज्जमाणा-एज्जमाणा,
चित्त-विचित्तकूडे पव्वए निसढ-देवकुरु-सूर-सुलस-विज्जुप्पभद्दहे अ दुहा विभयमाणी-विभयमाणी ।
चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी-आपूरेमाणी भद्दसालवणं एज्जमाणी-एज्जमाणी,
मंदरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी
अहे विज्जुप्पभं वक्खारपव्वयं दारइत्ता
मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं अवरविदेहं वासं दुहा विभयमाणी-विभयमाणी
एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए-अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी-आपूरेमाणी पंचहिं सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा,
अहे जयंतस्स दारस्स जगइं दालइत्ता
पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेति ।
सीओआ णं महाणई पवहे पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं, जोअणं उव्वेहेणं,
तयणंतरं च णं मायाए-मायाए परिवड्ढमाणी-परिवड्ढमाणी,

१—सम० ७४ सूत्र २

मुहमूले पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
दस जोअणाइं उव्वेहेणं,[1]
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं
दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ।

[६] शीतोदाप्रपात कुण्ड के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी निकलकर देवकुरु क्षेत्र में आती हुई चित्र-विचित्र कूट पर्वतों एवं निषध, देवकुरु, सूर्य, सुलस तथा विद्युत्प्रभ द्रहों को दो भागों में विभक्त करती हुई, चौरासी हजार नदियों को अपने में मिलाती हुई, भद्रशाल वन में आती हुई, मेरु पर्वत से दो योजन की दूरी पर पश्चिम की ओर मुडती हुई, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत को नीचे से भेद कर मेरु पर्वत से पश्चिम की ओर अपरविदेह क्षेत्र को दो भागो मे विभक्त करती हुई, प्रत्येक चक्रवर्तीविजय की अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियों को अपने में मिलाती हुई (सब मिलाकर) पांच लाख एवं बतीस हजार नदियों सहित जयन्त द्वार के नीचे की भूमि को फोडकर पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है ।
सीतोदा महानदी का पचास योजन चौड़ा व एक योजन गहरा प्रवाह अनुक्रम से बढ़ता हुआ संगम की जगह पांच सौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा हो जाता है ।
इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं व दो वनखण्ड हैं ।

निषधपर्वत के कूट

[७] [१] **प्र०—णिसढे णं भंते ! वासहरपव्वए णं कति कूडा पण्णत्ता ?**
उ०—गोयमा ! णव[2] कूडा पण्णत्ता, तंजहा—
सिद्धाययणकूडे १, णिसढकूडे[3] २, हरिवासकूडे ३, पुव्वविदेहकूडे ४, हरिकडे ५, धिईकूडे ६, सीओआकूडे ७, अवरविदेहकूडे ८, रुअगकूडे ९ ।
जो चेव चुल्लहिमवंतकूडाणं उच्चत्त-विक्खंभपरिक्खेवो पुव्ववण्णिओ रायहाणी अ सच्चेव इहंपि णेअव्वो ।

[७] [२] प्र०—भगवन् ! निषध वर्षधर पर्वत पर कितने कूट है ?
उ०—गौतम ! नव कूट हैं, यथा—
(१) सिद्धायतनकूट (२) निषधकूट (३) हरिवर्षकूट (४) पूर्वविदेहकूट (५) हरिकूट (६) धृतिकूट (७) सीतोदाकूट (८) अपरविदेहकूट (९) रुचककूट ।
चुल्लहिमवन्त पर्वत के कूटों की ऊंचाई, चौड़ाई, परिधि, राजधानी आदि का जो कथन पहले किया जा चुका है वही यहां भी समझ लेना चाहिए ।

'निषध' संज्ञा का हेतु

[८] [१] **प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-णिसहे वासहरपव्वए २ ?**
उ०—गोअमा ! णिसहे णं वासहरपव्वए बहवे कूडा णिसहसंठाणसंठिआ, उसभसंठाणसंठिआ, णिसहे अ इत्थ देवे महिड्ढिए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ णिसहे वासहरपव्वए २ ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ८४ पृ. ३०८

---

१. ठा. १०, सूत्र ७७९ पृ. ४९८
२. (क) ठा. २, उ. ३ सूत्र ८७ पृ. ६५
(ख) ठा. ९, सूत्र ६८९ पृ. ४३०-३१
३. **णिसढस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झ-देसभाए एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।**

—सम. ११२ सूत्र ६

[८]]२] प्र०—भगवन्! निषध पर्वत, निषधपर्वत क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम! निषधपर्वत पर बहुत-से कूट निषध अर्थात् बैल के आकार के या वृषभ (बैल) के आकार के हैं। इसके अतिरिक्त यहां निषध नामक देव निवास करता है जो महर्द्धिक-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाला है।

इस कारण गौतम! निषध वर्षधर पर्वत निषध वर्षधर पर्वत कहलाता है।

नीलवन्त पर्वत

[२] [२] प्र०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे णीलवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा! महाविदेहस्स वासस्स उत्तरेणं,
रम्मगवासस्स दक्खिणेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे णीलवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते।
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे,
णिसहवत्तव्वया णीलवंतस्स भाणिअव्वा।
णवरं जीवा दाहिणेणं, धणुं उत्तरेणं।
एत्थ णं केसरिद्दहो।
दाहिणेणं सीआ[1] महाणई पवूढा समाणी उत्तरकुरुं एज्जमाणी-एज्जमाणी
जमगपव्वए णीलवंत-उत्तरकुरु-चंदेरावत-मालवंतद्दहे अ दुहा विभयमाणी-विभयमाणी
चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी-आपूरेमाणी
भद्दसालवणं एज्जमाणी-एज्जमाणी
मंदरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं असंपत्ता
पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी
अहे मालवंतवक्खारपव्वयं दालयित्ता
मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं
पुव्वविदेहवासं दुहा विभयमाणी-विभयमाणी
एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए-अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी-आपूरेमाणी
पंचहिं सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए य सलिलासहस्सेहिं समग्गा
अहे विजयस्स दारस्स जगइं दालइत्ता
पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।
अवसिट्ठं तं चेवत्ति।
एवं णारिकंतावि उत्तराभिमुही णेअव्वा।
णवरमिमं णाणत्तं गंधावइवट्टवेअड्ढपव्वयं जोअणेणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी
अवसिट्ठं तं चेव पवहे अ मुहे अ जहा हरिकंता सलिला इति।

[१] [१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप में नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम! महाविदेह क्षेत्र से उत्तर में, रम्यकवर्ष से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीपस्थित नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत है। यह पूर्वपश्चिम में

१—(क) ठा० २ उ. ३ सूत्र ८८ पृ० ६८
(ख) सम. ७४ सूत्र ३

लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। नीलवन्त पर्वत का वर्णन निषधपर्वत के समान कर लेना चाहिए। विशेषता यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में एवं धनुःपृष्ठ उत्तर में है।

यहाँ केसरी नामक द्रह है। इसके दक्षिण से सीता महानदी निकल कर उत्तरकुरु में होती हुई यमक पर्वतों को तथा नीलवन्त, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत व माल्यवन्त द्रहों को दो भागों में विभक्त करती हुई ८४००० सलिलाओं से आपूरित होती हुई, भद्रशाल वन में आती हुई, मेरु पर्वत से दो योजन की दूरी पर पूर्वाभिमुख मुड़ती हुई, माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत को नीचे से भेद कर मेरु पर्वत से पूर्व पूर्वमहाविदेह क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई, प्रत्येक चक्रवर्त्तीविजय की अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियों को अपने मे मिलाती हुई, कुल ५३२००० नदियों सहित विजयद्वार के नीचे की भूमि को भेद कर पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत् है।
इसी प्रकार उत्तराभिमुखी नारीकान्ता का भी वर्णन कर लेना चाहिए।

विशेषता यह है कि नारीकान्ता गन्धापातीवृत्तवैताढ्य पर्वत से एक योजन की दूरी पर पश्चिम में मुड़ती हुई (पश्चिमी लवणसमुद्र मे मिलती है।) शेष वर्णन उसी प्रकार है। प्रवाह (उद्गम) और मुख (संगम की जगह के प्रवाह) का प्रमाण हरिकान्ता नदी के समान है।

नीलवन्त पर्वत के कूट

[२] [१] प्र०—**णीलवंते णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?**

उ०—**गोअमा ! णव[1] कूडा पण्णत्ता, तंजहा—सिद्धाययणकूडे —**

सिद्धे १ णीले[2]-२ पुव्वविदेहे ३ सीआ य ४ कित्ति ५ णारी अ ६।
अवरविदेहे ७ रम्मग कूडे ८ उवदंसणे ९ चेव ।। १ ।।
सव्वे एए कूडा पंचसइआ, रायहाणीउ उत्तरेणं।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत पर कितने कूट हैं ?

उ०—गौतम ! नौ कूट हैं, यथा—सिद्धायतन कूट आदि। गाथार्थ—

(१) सिद्धायतन कूट (२) नीलवन्त कूट (३) पूर्वविदेह कूट (४) सीता कूट (५) कीर्त्ति कूट (६) नारीकान्ता कूट (७) अपरविदेह कूट (८) रम्यक कूट और (९) उपदर्शन कूट।
ये सब कूट पांच सौ योजन ऊंचे हैं। (इनके अधिष्ठायक देवों की) राजधानियां उत्तर में हैं।

नीलवन्त नाम का हेतु

[३] [१] प्र०—**से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—णीलवंते वासहरपव्वए २ ?**

उ०—**गोअमा ! णीले णीलोभासे णीलवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-परिवसइ।**
सव्ववेरुलिआमए णीलवंते-जाव-णिच्चेति।

—जम्बू, वक्ष, ४ सूत्र ११० पृ० ३७६

[३] [१] प्र०—भगवन् ! इसे नीलवन्त वर्षधर पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! (यह पर्वत) नील एवं नीलावभास है। यहां नीलवंत नामक देव निवास करता है। यह पूरी तरह वैडूर्यमय है—यावत्—(इसका नीलवन्त नाम) नित्य है।

---

१ (क) ठा० ९ सूत्र ६८९ पृ० ४३१
(ख) ,, २ उ० ३ सूत्र ८७ पृ० ६५
२—सम ११२ सूत्र ७

रुक्मीपर्वत

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?
गोअमा ! रम्मगवासस्स उत्तरेणं,
हेरण्णवयवासस्स दक्खिणेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ।
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविस्थिण्णे,
एवं जा चेव महाहिमवंतवत्तव्वया सा चेव रुप्पिस्स वि ।
णवरं दाहिणेणं जीवा, उत्तरेणं धणुं । अवसेसं तं चेव ।
महापुण्डरीए दहे
णरकंता[1] णदी दक्खिणेणं णेअव्वा जहा रोहिआ पुरत्थिमेणं गच्छइ ।
रुप्पकूला[2] उत्तरेणं णेअव्वा जहा हरिकंता पच्चत्थिमेणं गच्छइ ।
अवसेसं तं चेअत्ति ।

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में रुक्मी नामक वर्षधर पर्वत कहां है ?
गौतम ! रम्यक क्षेत्र से उत्तर में, हैरण्यवत क्षेत्र से दक्षिण में, पूर्वी लवण समुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवण समुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीप स्थित रुक्मी नामक वर्षधर पर्वत है ।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । इस प्रकार महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत की जो वक्तव्यता है वही रुक्मी की भी है । विशेष बात यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में और धनुपृष्ठ उत्तर में है । शेष सब वही है ।

यहां महापुण्डरीक नामक द्रह है । इसके दक्षिण से नरकान्ता नदी निकलती है जो रोहिता की तरह पूर्वदिशा में जाती है । इसके उत्तर से रूप्यकूला निकलती है जो हरिकान्ता की तरह पश्चिम में जाती है । शेष वर्णन उसी प्रकार है ।

रुक्मी पर्वत के कूट

[२] [१] प्र०—रुप्पिम्मि णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?
उ०—गोअमा ! अट्ठ[3] कूडा पण्णत्ता, तंजहा—
गाहा—
सिद्धे १ रुप्पी[4] २ रम्मग ३ णरकंता ४ बुद्धि ५ रुप्पकूला ६ य ।
हेरण्णवय ७ मणिकंचण ८ अट्ठ य रुप्पिम्मि कूडाइं ॥१॥
सव्वेवि एए पंचसइआ ।
रायहाणीओ उत्तरेणं ।

१—२—ठा २ उ० ३ सूत्र ८८ पृ० ६८

३. (क) ठा. ८ उ. ३ सूत्र ६४३ पृ. ४१३
(ख) " २ उ. ३ सूत्र ८७ पृ. ६५

४. (क) सम. ८७ सूत्र ७
(ख) सम. ११० सूत्र ६

[२] [१] प्र०—भगवन् ! रुक्मी वर्षधर पर्वत पर कितने कूट हैं ?

उ०—गौतम ! आठ कूट हैं, यथा—

गाथार्थ—

(१) सिद्धायतन (२) रुक्मी (३) रम्यक (४) नरकान्ता (५) बुद्धि (६) रूप्यकूला (७) हैरण्यवत और (८) मणिकांचनकूट। रुक्मी पर्वत पर ये आठ कूट है।

'रुक्मी' संज्ञा का हेतु

[३] [१] प्र०—से केट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-रुप्पी वासहरपव्वए २ ?

उ०—गोअमा ! रुप्पीणामवासहरपव्वए रुप्पी रुप्पपट्टे रुप्पोभासे सव्वरुप्पामए,

रुप्पी अ इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।

से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइत्ति ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १११ पृ. ३७८

[३] [१] प्र०—भगवन् ! इसे रुक्मी वर्षधर पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! रुक्मी वर्षधर पर्वत रुक्म (रूप्य-चांदी) का है, रुक्म के समान चमकीला है, रुक्ममय है। और यहाँ रुक्मी नामक पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है। इस कारण गौतम ! इसे (रुक्मी वर्षधर पर्वत) कहते हैं।

शिखरी पर्वत

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सिहरी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! हेरण्णवयस्स उत्तरेणं,

एरावयस्स दाहिणेणं,

पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,

पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,

एवं जह चेव चुल्लहिमवंतो तह चेव सिहरी वि।

णवरं जीवा दाहिणेणं, धणुं उत्तरेणं।

अवसिट्ठं तं चेव।

पुंडरीए दहे[1], सुवण्णकूला[2] महाणई दाहिणेणं णेअव्वा।

जहा रोहिअंसा पुरत्थिमेणं गच्छइ।

एवं जह चेव गंगा-सिंधूओ तह चेव रत्ता[3]—

रत्तवईओ[4] णेअव्वाओ।

पुरत्थिमेणं रत्ता, पच्चत्थिमेणं रत्तवई।[5]

अवसिट्ठं तं चेव अवसेसं भाणिअव्वंति।

१—ठा. ६ सूत्र ५२२ पृ. ३५०

२–३–४–(क) ठा. ३ उ. ३ सूत्र १६७ पृ. १५०

(ख) सम. २५ सूत्र ८

५—जंबूमंदरस्स उत्तरेणं रत्ता महाणई पंच महाणईओ समप्पेंति, तंजहा-(१) किण्हा, (२) महाकिण्हा, (३) नीला, (४) महानीला, (५) महातीरा।

जंबूमंदरस्स उत्तरेणं रत्तवई महाणई पंच महाणईओ समप्पेंति, तंजहा-(१) इंदा, (२) इंदसेणा, (३) सुसेणा, (४) वारिसेणा, (५) महाभोया।

(क) ठा. ५ उ. ३ सूत्र ४७० पृ. ३३३

(ख) „ १० सूत्र ७१७ पृ. ४५३

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में शिखरी नामक पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! हैरण्यवत क्षेत्र से उत्तर में, ऐरावत क्षेत्र से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में (शिखरी नामक वर्षधर पर्वत है।) जैसा चुल्लहिमवन्त वैसा ही शिखरी पर्वत। विशेषता यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में और धनुपृष्ठ उत्तर में है। शेष वक्तव्यता वही है।

यहाँ पुण्डरीक नामक द्रह है और दक्षिण की ओर से सुवर्णकूला महानदी निकली है, जैसे रोहितांसा महानदी, मगर यह पश्चिम में जाती है।

जैसी गंगा-सिन्धु की वक्तव्यता कही वैसी ही रक्ता और रक्तवती की जानना चाहिए। पूर्व में रक्ता, पश्चिम में रक्तवती, शेष समस्त वक्तव्यता वही (गंगा-सिन्धु के सदृश है।)

शिखरी पर्वत के कूट

[२] [१] प्र—सिहरिम्मि णं भंते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! इक्कारस कूडा पण्णत्ता, तंजहा—

सिद्धायणकूडे १, सिहरिकूडे[1] २, हेरण्णवयकूडे ३, सुवण्णकूलाकूडे ४, सुरादेवीकूडे ५, रत्ताकूडे ६, लच्छीकूडे ७, रत्तवईकूडे ८, इलादेवीकूडे ९, एरवयकूडे १०, तिगिच्छिकूडे ११।
एवं सव्वेवि कूडा पंचसइआ,[2] रायहाणीओ उत्तरेणं।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! शिखरी वर्षधर पर्वत पर कितने कूट हैं ?

उ०—गौतम ! ग्यारह कूट हैं, यथा—

(१) सिद्धायतनकूट (२) शिखरीकूट (३) हैरण्यवतकूट (४) सुवर्णकूलाकूट (५) सुरादेवीकूट (६) रक्ताकूट (७) लक्ष्मीकूट (८) रक्तवतीकूट (९) इलादेवीकूट (१०) ऐरवतकूट और (११) तिगिंछिकूट।

ये सभी कूट पांच सौ योजन ऊँचे हैं। (इनके अधिष्ठाता देवों की) राजधानियाँ उत्तर दिशा में हैं।

'शिखरी' संज्ञा का हेतु

[३] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिहरिवासहरपव्वए २ ?

उ०—गोअमा ! सिहरिम्मि वासहरपव्वए बहवे कूडा सिहरिसंठाणसंठिआ, सव्वरयणामया,
सिहरी अ इत्थ देवे—जाव—परिवसइ।
से तेणट्ठेणं ०

—जम्बू. वक्ष. सूत्र १११ पृ. ३७९

[३] [१] प्र०—शिखरी पर्वत किस कारण से शिखरी वर्षधर-पर्वत कहलाता है ?

उ०—गौतम ! शिखरी वर्षधर पर्वत के ऊपर (पूर्वोक्त ग्यारह कूटों के अतिरिक्त) बहुत से कूट हैं जो शिखरी अर्थात् वृक्ष के आकार के हैं और वे सर्वरत्नमय हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ शिखरी नामक देव—यावत्—निवास करता है। इस कारण (गौतम ! यह पर्वत शिखरी कहलाता है।)

१—(क) ठा. २ उ. ३ सूत्र ८७ पृ. ६५
(ख) " ६ सूत्र ५२२ पृ. ३५०

२—सम. १०८ सूत्र २

अपराजित द्वार : उत्तर
उत्तर द्वार : पश्चिम
पुष्कर समुद्र
कालोदधि समुद्र
मनुष्योत्तर पर्वत
मनुष्योत्तर पर्वत
विजय द्वार : पूर्व
वैजयंत द्वार : दक्षिण

अढाई द्वीप का नकशा

जम्बूद्वीप में वर्ष

[१] [१] प्र०—**जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कति वासा पण्णत्ता ?**

उ०—गोअमा ! सत्तवासा,[1] तंजहा-भरहे, एरवए, हेमवए हिरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे, महाविदेहे ।

—जम्बू. वक्ष. ६ सूत्र १२५ पृ. ४२६

—ठा. ७ सूत्र ५५५ पृ. ३७७

—सम. ७ सूत्र ५

[१] !१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कितने वर्ष (क्षेत्र) है ?

उ०—गौतम ! सात वर्ष हैं, यथा-भरत, ऐरावत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्मकवर्ष और महाविदेह ।

कर्मभूमियाँ

[२] **जंबुद्दीवे दीवे तओ कम्ममूमीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-भरहे, एरवते, महाविदेहे ।**
एवं धायइसंडे दीवे पुरच्छिमद्धे-जाव-पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे ।

—ठा. ३ उ. ३ सूत्र १८३ पृ. १४०

[३] जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे तीन कर्मभूमियां कही हैं, यथा-भरत, ऐरवत और महाविदेह ।
इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में, पश्चिमार्ध में और पुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्ध में (तीन-तीन कर्मभूमियां हैं) ।

अकर्मभूमियाँ

[३] **जंबुद्दीवे दीवे छ अकम्ममूमीओ पण्णत्ताओ,[2] तंजहा-हेमवते, हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा ।**

—ठा. ६ उ. ३ सूत्र ५२२ पृ. ३५०

[३] जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह अकर्मभूमियां कही हैं, यथा-हैमवंत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु ।

उत्तर-दक्षिण के क्षेत्रों की समानता

[४] **जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो वासा बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्नं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तंजहा—**

---

१. (क) ठा. ६ सूत्र ५२२ पृ. ३५०

(ख) **जम्बुद्दीवे दीवे बस खेत्ता प० तं०-भरहे, एरवते, हेमवते, हेरन्नवते, हरिवस्से, रम्मगवस्से, पुव्वविदेहे, अवर-विदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा ।**

—ठा. १०, सूत्र ७२३ पृ. ४५३

(ग) **जंबूमंदरस्स दाहिणेणं ततो वासा प० तं० भरहे, हेमवए, हरिवासे ।**
जंबूमंदरस्स उत्तरेणं ततो वासा प० तं०-रम्मगवासे, हेरन्नवते, एरवए ।

—ठा. ३ सूत्र १९७ पृ. १५०

२. (क) ठा. ३ उ. ४ सूत्र १९७ पृ. १५०

(ख) ठा. ४ उ. २ सूत्र ३०२ पृ. २१२

भरहे चेव एरवए चेव,
एवमेएणमहिलावेणं हिमवए चेव हेरन्नवते चेव,
हरिवासे चेव रम्मगवासे चेव,
जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिम-पच्चत्थिमेणं दो खित्ता बहुसमतुल्ला अविसेस०-जाव-पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव,
जंबुमंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं दो कुराओ बहुसमतुल्लाओ-जाव-देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव ।

—ठा. २, उ. ३ सूत्र ८५ पृ. ३३

[४] जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से उत्तर और दक्षिण में दो वर्ष बिल्कुल समान, विशेषतारहित, नानात्वहीन एवं ऐसे हैं जो लम्बाई, चौड़ाई, विस्तार, संस्थान और परिधि में एक दूसरे भिन्न नहीं हैं, यथा— भरत और ऐरवत, इसी प्रकार हैमवत और हैरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यकवर्ष ।

जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से पूर्व और पश्चिम में दो क्षेत्र बिल्कुल एक जैसे हैं— यावत्-देवकुरु और उत्तरकुरु ।

[५] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,
दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते,
खाणुबहुले कंटकबहुले विसमबहुले दुग्गबहुले पव्वयबहुले पवायबहुले उज्झरबहुले णिज्झरबहुले खड्डाबहुले दरीबहुले णईबहुले वहबहुले रुक्खबहुले गुच्छबहुले गुम्मबहुले लयाबहुले वल्लीबहुले अडवीबहुले सावयबहुले तेणबहुले तक्करबहुले डिम्बबहुले डमरबहुले दुब्भिक्खबहुले दुक्कालबहुले पासंडबहुले किवणबहुले वणीमगबहुले ईतिबहुले मारिबहुले कुवुट्ठिबहुले अणावुट्ठिबहुले रायबहुले रोगबहुले संकिलेसबहुले अभिक्खणं-अभिक्खणं संखोहबहुले,
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छि (त्थि)न्ने,
उत्तरओ पलिअंकसंठाणसंठिए,
दाहिणतो धणुपिट्ठसंठिए,
तिधा लवणसमुद्दं पुट्ठे,
गंगासिंधूहिं महाणईहिं वेयड्ढेण य पव्वएण छब्भागपविभत्ते,
जंबुद्दीवदीवणउयसयभागे
पंचछव्वीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खंभेणं ।
भरहस्स णं वासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, जे णं भरहं वासं दुहा विभयमाणे-विभयमाणे चिट्ठइ, तंजहा—
दाहिणड्ढभरहं च उत्तरड्ढभरहं च ।

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र १० पृ. ६५, ६६

[५] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत नामक वर्ष (क्षेत्र) कहाँ है ?

उ०—गौतम ! चुल्लहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणी लवणसमुद्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में, जम्बूद्वीप के अन्दर भरत नामक वर्ष (क्षेत्र) है । इस क्षेत्र में ठूंठ, कंटक, विषम भूमि, दुर्ग प्रदेश, पर्वत, प्रपात, निर्झर, गड्ढे, गुफा, नदी, द्रह, वृक्ष- गुच्छ, गुल्म, लता, वल्लरी, अटवी, श्वापद (हिंस्र जन्तु), स्तेन (चोर), तस्कर, डिम्ब (स्वराजा का उपद्रव) डमर (परराजा का उपद्रव), दुर्भिक्ष, दुष्काल, पाखंड, कृपण

वनीपक (भिखारी), ईति, मारी, कुवृष्टि, अनावृष्टि, राजा, रोग, संक्लेश, संक्षोभ, इत्यादि की बहुलता है।

यह वर्ष पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, उत्तर में पर्यंक के आकार का, दक्षिण में धनुष की पीठ के आकार का तथा तीन तरफ लवण समुद्र से स्पृष्ट है। गंगा और सिन्धु नामक महानदियों तथा वैताढ्य नामक पर्वत से यह छह भागों में विभक्त है। जम्बूद्वीप नामक द्वीप के १९० भाग करने पर ५२६$\frac{६}{१९}$ एक भाग होता है। यही भरत क्षेत्र का विस्तार है।

भरत क्षेत्र के मध्य भाग में वैताढ्य नामक पर्वत है जो भरत क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करता है—दक्षिणार्ध भरत और उत्तरार्ध भरत।

'भरत' संज्ञा का हेतु

[६] [१] **प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–भरहे वासे ?**

उ०—गोयमा ! भरहे णं वासे वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं,
चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एगस्स य एगूणवीसइ भाए जोयणस्स अबाहाए,
लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अबाहाए,
गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं,
सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं,
दाहिणड्ढभरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए,
एत्थ णं विणीआ णामं रायहाणी पण्णत्ता[1],
पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा णवजोयणवित्थिण्णा,
धणवइमतिणिम्माया चामीयरपायारा णाणामणिपंचवण्णकविसीसगपरिमंडिआभिरामा अलकापुरी-संकासा पमुइयपक्कीलिआ पच्चक्खं देवलोगभूआ रिद्धित्थिमिअसमिद्धा पमुइअजण-जाणवया—जाव-पडिरूवा।
तत्थ णं विणीआए रायहाणीए भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी समुप्पज्जित्था.....

—जम्बू० वक्ष० ३ सूत्र ४१-४२ पृ० १७९-८०

[६] [१] प्र०—भगवन् ! भरतवर्ष भरतवर्ष क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम ! भरत वर्ष में, वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में ११४$\frac{१}{१९}$ योजन पर, लवण समुद्र से उत्तर में ११४$\frac{१}{१९}$ योजन पर, गंगा महानदी के पश्चिम में, सिन्धु महानदी से पूर्व में, दक्षिणार्ध भरत के मध्य के त्रिभाग के ठीक बीचोंबीच विनीता नामक राजधानी कही है।

वह पूर्व-पश्चिम में लंबी, उत्तर-दक्षिण में चौड़ी, बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी है। वह कुबेर की बुद्धि से निर्मित, स्वर्णमय प्राकार वाली, नाना मणियों के पंचरंगे कंगूरों से मंडित होने से रमणीय, अलकापुरी के सदृश, प्रमुदित एवं प्रकीडित जैसी, प्रत्यक्ष देवलोक के समान, ऋद्धि-भवन-जनसमूह से समृद्ध, नगरनिवासी जनों एवं आगत जनों को प्रमोद उत्पन्न करने वाली-यावत्-प्रतिरूप है।

उस विनीता राजधानी में भरत नामक राजा चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने वाला चक्रवर्त्ती उत्पन्न हुआ।

१—**जंबुद्दीवे दीवे भरहवासे दस रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—**
(१) चंपा (२) महुरा (३) वाणारसी य सावत्थी (४) तह य साएतं।
(६) हत्थिणउर (७) कम्पिल्लं, (८) मिहिला (९) कोसंबि (१०) रायगिहं ॥

—ठा० १० सूत्र ७१८ पृ० ४५३

भरहे अ इत्थ देवे महिड्ढिए महज्जुईए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ,
से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ भरहे वासे २ इति ।
अदुत्तरं च णं गोयमा ! भरहस्स वासस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ, भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ, धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे भरहे वासे ।

जम्बू० वक्ष० ३ सू० ७१ पृ० २८०

यहाँ भरत नामक देव रहता है जो महर्द्धिक एवं महाद्युतियुक्त है—यावत्-पल्योपम की स्थिति वाला है । इस कारण गौतम ! इसका नाम भरतवर्ष है ।

भरतवर्ष का यह नाम शाश्वत है, जो न कभी नहीं था, न कभी नहीं है, न कभी नहीं होगा । वह था, है और रहेगा । यह नाम ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है, नित्य है ।

दक्षिणार्ध भरत की अवस्थिति

[७] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे भरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! वेयड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं,
दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते,
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छि(त्थि)ण्णे,
अद्धचंदसंठाणसंठिए,
तिहा लवणसमुद्दं पुट्ठे,
गंगा-सिंधूहि महाणईहिं तिभागपविभत्ते,
दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्ण अ एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खंभेणं,
तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया,
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा,
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा,
पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा,
णव जोयणसहस्साइं सत्त य अडयाले जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं । [१]
तीसे धणुपुट्ठे दाहिणेणं णव जोयणसहस्साइं,
सत्तछावट्ठे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते । [२]

[७] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में दक्षिणार्ध भरत नामक वर्ष कहां है ?

उ०—गौतम ! वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणी लवण समुद्र के उत्तर में, पूर्वी लवण समुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवण समुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप नामक द्वीप का दक्षिणार्ध भरत नामक वर्ष है । यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । इसका आकार अर्ध-चन्द्र के समान है । यह तीन ओर से लवण समुद्र से स्पृष्ट है तथा गंगा और सिन्धु नामक महानदियों से तीन भागों में विभक्त है । इसकी चौड़ाई २३८$\frac{3}{19}$ योजन है ।

१—सम. ९०००, सूत्र १२२,
२—सम. ९८, सूत्र ४,

इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लंबी तथा दोनों ओर से लवण समुद्र से स्पृष्ट है। पूर्व की ओर पूर्वी लवण समुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवण समुद्र से स्पृष्ट है। इसकी लम्बाई ९७४८$\frac{12}{19}$ योजन है। इसकी धनुर्पीठिका दक्षिण में ९७६६$\frac{1}{19}$ योजन से किंचित् विशेष अधिक परिधि वाली है।

दक्षिणार्ध भरत का आकारभाव

[८] [१] प्र०—दाहिणड्ढभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।

से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा—जाव—णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए। तंजहा-कित्तिमेहि चेव, अकित्तिमेहि चेव।

[२] प्र०—दाहिणड्ढभरहे णं भंते ! वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा बहुसंठाणा

बहुउच्चत्तपज्जवा बहुआउपज्जवा, बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता

अप्पेगइया णिरयगामी,

अप्पेगइया तिरियगामी,

अप्पेगइया मणुयगामी,

अप्पेगइया देवगामी,

अप्पेगइया सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

जम्बू. वक्ष. १ सूत्र ११ पृ. ६८

[८] [१] प्र०—भगवन् ! दक्षिणार्ध भरत का आकारभाव-स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! इसका भूमिभाग बहुत सम और रमणीय है, जैसे मानों आलिंगपुष्कर हो—यावत्—नाना प्रकार की पंचवर्ण मणियों से तथा तृणों से शोभित है। ये मणियां और तृण कृत्रिम और अकृत्रिम (दो तरह के) है।

[२] प्र०—भगवन् ! दक्षिणार्ध भरतवर्ष के मनुष्यों का आकारभाव-स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! ये मनुष्य अनेक प्रकार के संहनन, अनेक प्रकार के संस्थान, अनेक प्रकार की ऊँचाई तथा अनेक प्रकार की आयु वाले हैं। वे बहुत वर्षों की आयु भोगकर कोई-कोई नरक में जाते हैं, कोई तिर्यंचगति में जाते हैं, कोई मनुष्य गति में जाते हैं, कोई-कोई देवगति में जाते हैं। कोई-कोई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होकर सब दुःखों का अन्त करते हैं।

उत्तरार्ध भरतवर्ष

[९] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,

वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेणं,

पुरच्छिमलवणसमुद्दस्स पच्चच्छिमेणं,

पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरच्छिमेणं,

एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते,

पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिन्ने, पलिअंकसंठिए,

दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे,

पुरच्छिमिल्लाए कोडीए पुरच्छिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पच्चत्थिमिल्लाए—जाव—पुट्ठे,
गंगा-सिन्धूहि महाणईहि तिभागपविभत्ते,
दोण्णि अट्ठतीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणं,
तस्स बाहा पुरच्छिम-पच्चच्छिमेणं अट्ठारस बाणउए जोअणसए सत्त य एगूण वीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं ।
तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया,
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा,
तहेव—जाव—[1]चोद्दस जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एक्कहत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचि विसेसूणे आयामेणं पण्णत्ते ।
तीसे णं धणुपट्ठे दाहिणेणं चोद्दस जोअणसहस्साइं पंच अट्ठावीसे जोअणसए एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।

[९] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में उत्तरार्ध भरत नामक वर्ष (क्षेत्र) कहाँ है ?

उ०—गौतम ! चुल्लहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, वैताढ्य पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवण समुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप का उत्तरार्ध भरत नामक वर्ष है । यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । इसका आकार पर्यंक (पलंग) के समान है । यह दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है और पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । गंगा और सिन्धु नामक महानदियाँ इसे तीन भागों में विभक्त करती हैं । इसकी चौड़ाई $२३८\frac{३}{१९}$ योजन है । पूर्व-पश्चिम में इसकी बाहु $१८९२\frac{७}{१९} + \frac{१}{२}$ योजन लम्बी है ।

इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी है तथा दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । यह $१४४७१\frac{६}{१९}$ योजन से कुछ कम लंबी है ।

इसका धनुषपृष्ठ दक्षिण में $१४५२८\frac{११}{१९}$ योजन की परिधि वाला है ।

उत्तरार्ध भरत का आकारभाव-स्वरूप

[१०][१] प्र०—उत्तरड्ढभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा—जाव—कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव ।

[२] प्र०—उत्तरड्ढभरहे णं भंते ! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा—जाव—अप्पेगइया सिज्झंति-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ।

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र १६ पृ. ८५

[१०][१] प्र०—भगवन् ! उत्तरार्ध भरत का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! इसका भूमिभाग अति सम एवं रमणीय है । यह आलिंगपुष्कर के समान है—यावत्—कृत्रिम तथा अकृत्रिम मणियों और तृणों से सुशोभित है ।

[२] प्र०—भगवन् ! उत्तरार्ध भरत क्षेत्र के मनुष्यों का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! यहाँ के मनुष्य अनेक प्रकार के संहनन वाले हैं—यावत्—कोई-कोई सिद्ध होकर सब दुःखों का अन्त करने वाले हैं ।

१—सम. १४ सूत्र ६

ऋषभकूट पर्वत

[११][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! गंगाकुंडस्स पच्चत्थिमेणं,
सिंधुकुंडस्स पुरच्छिमेणं,
चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणल्ले नितंबे,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे वासे उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते[1] ।
अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
दो जोयणाइं उव्वेहेणं,
मूले अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं,
मज्झे छ जोयणाइं विक्खंभेणं,
उवरि चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं,
मूले साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं,
मज्झे साइरेगाइं अट्ठारस जोअणाइं परिक्खेवेणं
उवरिं साइरेगाइं बुवालस जोअणाइं परिक्खेवेणं,[2]
मूले विच्छिन्ने, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए,
गोपुच्छसंठाणसठिए, सव्वजंबूणयामए
अच्छे सण्हे—जाव—पडिरूवे ।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए तहेव—जाव—
भवणं कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं,
देसऊणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं,
अट्ठो तहेव उप्पलाणि पउमाणि—जाव—
दाहिणेणं रायहाणी तहेव मंदरस्स पव्वयस्स जहा विजयस्स अविसेसियं ।

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र १७ पृ. ८६

[११][१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध भरत वर्ष में ऋषभकूट नामक पर्वत कहां है ?

गौतम! गंगाकुंड के पश्चिम मे सिन्धुकुंड के पूर्व में चुल्लहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिण के नितम्ब (निम्न भाग) में जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध भरत वर्ष का ऋषभकूट नामक पर्वत है। यह आठ योजन ऊंचा, दो योजन गहरा, मूल में आठ योजन चौड़ा, मध्य में छह योजन चौड़ा और ऊपर चार योजन चौड़ा है। इसकी परिधि मूल में पच्चीस योजन से कुछ अधिक तथा ऊपर बारह योजन से कुछ अधिक है।

१—ठा. ८ सूत्र ६३९ पृ. ४१३

२—पाठान्तरं—मूले बारस जोअणाइं विक्खंभेणं,
मज्झे अट्ठ जोअणाइं विक्खंभेणं,
उप्पिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं,
मूले साइरेगाइं सत्तातीस जोअणाइं परिक्खेवेणं,
मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं,
उप्पिं साइरेगाइं बारस जोयणाइं परिक्खेवेणं,

पाठान्तर के अनुसार—यह ऋषभकूट पर्वत मूल में बारह योजन चौड़ा, मध्य में आठ योजन चौड़ा, ऊपर चार योजन चौड़ा, मूल में सैंतीस योजन से अधिक की परिधि वाला, मध्य में पच्चीस योजन से अधिक की परिधि वाला, ऊपर बारह योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला है।

मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतला है।
यह गोपुच्छ के आकार का, सर्वसुवर्णमय, स्वच्छ, चिकना—यावत्—प्रतिरूप है।
यह एक पद्मवरवेदिका से वेष्टित है—यावत्—भवन पर्यन्त सम्पूर्ण वर्णन से युक्त है। इसकी वेदिका की लम्बाई एक कोस, चौड़ाई आधा कोस, तथा ऊंचाई एक कोस से कुछ कम है। अर्थ उसी प्रकार है। यहां उत्पल एवं पद्म हैं,—यावत्—ऋषभ नामक महर्धिक देव रहता है—यावत्—मेरुपर्वत से दक्षिण में इसकी राजधानी है। शेष वर्णन विजय देव की राजधानी (विजया) के समान समझना चाहिए।

वैताढ्य पर्वत

[१२][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे वेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! उत्तरड्ढभरहवासस्स दाहिणेणं,
दाहिणभरयवासस्स उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते।
पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणविच्छिन्ने,
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पणवीसं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1]
छ सकोसाइं जोअणाइं उव्वेहेणं,[2]
पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं,[3]
तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं चत्तारि अट्ठासीए जोयणसए सोलस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ता,
तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया,
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा,
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा,
पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा,
दस जोअणसहस्साइं सत य वीसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स आयामेणं,
तीसे धणुपिट्ठे दाहिणेणं दस जोअणसहस्साइं सत य तेआले जोयणसए पण्णरस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं।
रुअगसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे णीरए णिम्मले णिप्पंके णिक्कंकडच्छाए सप्पभे सस्सिरीए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, दोहि य वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।
ताओ णं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं—वण्णओ—भाणियव्वो।

१—सम० १०० सूत्र ६ पृ. १०८
२—सम० २५ सूत्र ३ पृ. ५१
३—सम० ५० सूत्र ४ पृ. ८२

ते णं वणसंडा देसूणाइं दो जोअणाइं विक्खंभेणं,
पउमवरवेइयासमगा आयामेणं,
किण्हा किण्होभासा—जाव—वण्णओ ।

—जंबू. वक्ष. १ सूत्र १२ पृ. ७०

[१२][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरत वर्ष में वैताढ्य नामक पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! उत्तरार्ध भरत क्षेत्र के दक्षिण में, दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम मे, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व मे जम्बूद्वीप के भरत वर्ष का वैताढ्य नामक पर्वत है । यह पर्वत पूर्व-पश्चिम में लम्बा एव उत्तर-दक्षिण मे चौडा है तथा दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व में पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है तथा पश्चिम में पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । इसकी ऊँचाई पच्चीस योजन, गहराई सवा छह योजन एव चौड़ाई पचास योजन है ।

इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम में $४८८\frac{१६}{१९} + \frac{१}{२}$ योजन लम्बी है ।

इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लंबी तथा दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है ।

पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है तथा पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । इसकी लंबाई $१०७२०\frac{१२}{१९}$ योजन है ।

इसका धनुःपृष्ठ दक्षिण में $१०७४३\frac{१५}{१९}$ योजन की परिधि वाला है ।

वैताढ्य पर्वत रुचक (ग्रीवा के आभूषण) के आकार का है, सर्वात्मना रजतमय है, स्वच्छ, चिकना, लष्ट, मृष्ट, नीरज, निर्मल, निष्पंक, निष्ककडच्छाय, सप्रभ, सश्रीक, प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है ।

इसके दोनों पार्श्व दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से चारों ओर से घिरे हैं । ये पद्मवर-वेदिकाएँ अर्ध योजन ऊँची, पांच सौ धनुष चौड़ी एवं पर्वत जितनी लम्बी हैं । इनका वर्णन कह लेना चाहिए । वनखण्ड दो योजन से कुछ कम चौड़े, पद्मवरवेदिका जितने लंबे, कृष्णवर्ण एवं कृष्ण आभास वाले हैं—यावत्—इनका भी वर्णन समझ लेना चाहिए ।

तमिस्रगुफा और खण्डप्रपातगुफा

[१३] **वेयड्ढस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिम-पच्चच्छिमेणं दो गुहाओ पण्णत्ताओ,**
उत्तर-दाहिणायताओ पाईण-पडीणवित्थिन्नाओ,
पण्णासं[१] जोअणाइं आयामेणं,
दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं,
अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं[२],
वइरामयकवाडोहाडिआओ, जमल-जुअलकवाड-घणदुप्पवेसाओ, णिच्चंधयारतिमिस्साओ, ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसपहाओ-जाव-पडिरूवाओ, तंजहा—
तमिसगुहा चेव खंडप्पवायगुहा चेव ।
तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया महज्जुइया महाबला महायसा महासुक्खा महाणुभागा पलिओवमट्ठिईओ परिवसंति । तंजहा—
कयमालए चेव णट्टमालए चेव[३] ।

जंबू० वक्ष० १, सूत्र १२, पृ० ७१ ।

---

१ सम० ५०, सूत्र ६ ।
२ ठा० ८ सूत्र ६३६ पृ० ४१२
३ ठा० २ उ० ३ सूत्र ८७ पृ० ६५

[१३] वैताढ्य पर्वत के पूर्व और पश्चिम में दो गुफाएं हैं। ये उत्तर-दक्षिण में लम्बी और पूर्व-पश्चिम में चौड़ी हैं। इनकी लम्बाई पचास योजन, चौड़ाई बारह योजन और ऊंचाई आठ योजन है। ये वज्रमय कपाटों से युक्त हैं। इनके जुगल-जोड़ी वाले कपाट सघन और दुष्प्रवेश्य हैं। ये गुफाएं सदैव अंधकार से व्याप्त रहती हैं। इनमें ग्रह, चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्र रूप ज्योतिष्कों की प्रभा का अभाव है। —यावत्—ये प्रतिरूप हैं। इनके नाम हैं—

तमिस्रगुफा और खण्डप्रपातगुफा।

इन गुफाओं में दो देव रहते हैं जो महर्धिक, महद्द्युतिक, महाबली, महायशस्वी, महासुखी, महानुभाग एवं पल्योपम की स्थिति वाले है। उनके नाम हैं। कृतमाल और नृत्यमाल।

विद्याधरश्रेणियां

[१४] **तेसि णं वणसंडाणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेयड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस दस जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे विज्जाहरसेढीओ पण्णत्ताओ,**
पाईण-पडीणायताओ उदीण-दाहिणविच्छिण्णाओ दस दस जोअणाइं विक्खंभेणं[1],
पव्वयसमियाओ आयामेणं,
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ।
ताओ णं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं,
पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं,
पव्वयसमियाओ आयामेणं,
वण्णओ णेयव्वो।
वणसंडावि पउमवरवेइयासमगा आयामेणं, वण्णओ।

[१५][१] **प्र०—विज्जाहरसेढीणं भंते! भूमीणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?**

उ०—गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा-जाव-णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए
तंजहा-कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव
तत्थ णं दाहिणिल्लाए विज्जाहरसेढीए गगन-वल्लभपामोक्खा पण्णासं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता।
उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए रहनेउरचक्कवालपामोक्खा सट्ठिं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता।
एवामेव सपुव्वावरेणं दाहिणिल्लाए उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए एगं दसुत्तरं विज्जाहरणगरावाससयं भवतीतिमक्खायं।
ते विज्जाहरणगरा रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजण-जाणवया—जाव—पडिरूवा।
तेसु णं विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसंति
महयाहिमवंत-मलय-मंदर-महिंदसारा-रायवण्णओ भाणिअव्वो।

[२] **प्र०—विज्जाहरसेढीणं भंते! मणुआण केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?**

उ०—गोयमा! ते णं मणुआ बहुसंघयणा बहुसंठाणा
बहुउच्चत्तपज्जवा—जाव—सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

जम्बू. वक्ष. १, सूत्र १२, पृ. ७१

[१४] इन वनखंडों के अति सम एवं रमणीय भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दस-दस योजन ऊपर जाने पर दो विद्याधरश्रेणियां आती हैं। ये पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी और उत्तर-दक्षिण

---

१ ठा० १० सूत्र ७७४, पृ० ४९२

की ओर चौड़ी हैं। इनकी चौड़ाई दस-दस योजन व लम्बाई पर्वत के बराबर है। इनके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं तथा दो वनखण्ड हैं। ये पद्मवरवेदिकाएं आधा योजन ऊंची, पांच सौ धनुष चौड़ी तथा पर्वत जितनी लम्बी हैं। इसी प्रकार तत्संबंधी समस्त विचार कर लेना चाहिए। वनखण्ड भी पद्मवरवेदिका के बराबर लम्बे समझने चाहिए।

[१५][१] प्र०—भगवन्! विद्याधरश्रेणियों की भूमियों का स्वरूप कैसा है?

उ०—गौतम! इनका भूमिभाग सम और रमणीय है। वह आलिंगपुष्कर के समान—यावत्—नानाविध पंचवर्ण मणियों और तृणों से शोभित है। (ये मणियां और तृण) कृत्रिम भी हैं और अकृत्रिम भी है।

इनमें से दक्षिण की विद्याधरश्रेणी में गगनवल्लभ वगैरह पचास विद्याधरों के नगरावास हैं। उत्तरस्थित विद्याधरश्रेणी में रथनूपुर-चक्रवाल आदि साठ विद्याधरों के नगरावास हैं। इस प्रकार सब मिलकर दक्षिण और उत्तर की विद्याधरश्रेणियों में एक सौ दस विद्याधरों के नगरावास है।

ये विद्याधरनगर ऋद्धि तथा भवनों आदि से समृद्ध हैं, प्रमुदित जनों और जानपदों से युक्त—यावत्—प्रतिरूप हैं। इन विद्याधरनगरों में विद्याधर राजा रहते हैं। ये महाहिमवन्त, मलय, मन्दर, महेन्द्र गिरि के समान महान् है। यहां राजा का वर्णन कह लेना चाहिए।

[२] प्र०—भगवन्! विद्याधरश्रेणियों के मनुष्यों का स्वरूप कैसा है?

उ०—गौतम! वहाँ के मनुष्य अनेक प्रकार के संहनन वाले, अनेक प्रकार के संस्थान वाले, अनेक प्रकार की ऊंचाई वाले तथा—यावत्—कोई-कोई सब दुखों का अन्त करने वाले हैं।

आभियोग्यश्रेणियाँ

[१६] तासि णं विज्जाहरसेढीण बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेयड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस दस जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ।

पाईण-पडीणायताओ उदीण-दाहिणवित्थिण्णाओ दस दस जोयणाइं विक्खंभेणं,[1] पव्वयसमियाओ आयामेणं, उभओ पासिं दोहि पउमवरवेइयाहिं दोहि य वनसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ, वण्णओ दोण्ह वि, पव्वयसमियाओ आयामेणं।

[१७][१] प्र०—अभिओगसेढीण भंते! केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

उ०—गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—जाव—तणेहिं उवसोभिए।

वण्णाइं—जाव—तणाणं सद्दोत्ति।

तासि णं अभिओगसेढीणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं—जाव—आणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति सयंति—जाव—फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

तासु णं आभिओगसेढीसु सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो,

सोम-जम-वरुण-वेसमणकाइआणं आभिओगाणं देवाणं बहवे भवणा पण्णत्ता।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा,

वण्णओ—जाव—अच्छरगणसंघविकिण्णा—जाव—पडिरूवा।

तत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो

१—ठा. १० सूत्र ७७४ पृ. ४९३

सोम-जम-वरुण-वेसमणकाइआ बहवे आभिओगा देवा,
महिड्ढीया महज्जुईया—जाव—महासुक्खा पलिओवमट्ठिइया परिवसंति ।

—जंबू. वक्ष. १, सूत्र १२, पृ. ७१

[१६] इन विद्याधर श्रेणियों के अति सम रमणीय भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दस-दस योजन ऊपर जाने पर दो आभियोग्यश्रेणियां आती हैं । ये पूर्व-पश्चिम में लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ी हैं। इनकी चौड़ाई दस-दस योजन व लम्बाई पर्वत जितनी है । इनके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं और दो वनखण्ड हैं । इनका वर्णन समझ लेना चाहिए । इन दोनों की लम्बाई पर्वत जितनी है ।

[१७][१] प्र०—भगवन् ! आभियोग्यश्रेणियों का स्वरूप किस प्रकार का है ?

उ०—गौतम ! ये अति सम एवं रमणीय भूमिभाग वाली है—यावत्—तृणों से सुशोभित हैं । वर्ण आदि के विषय मे भी उसी प्रकार समझ लेना चाहिए ।

इन आभियोगिकश्रेणियों के देश-देश में यत्र-तत्र वाणव्यन्तर देव और देवियां बैठते हैं, सोते हैं—यावत्—पुण्य फल आदि का अनुभव करते हुए विचरते हैं ।

इन आभियोग्यश्रेणियों में देवेन्द्र देवराज शक्र के सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण नामक दिक्पालों के परिवार रूप अनेक आभियोगिक देवों के अनेक भवन हैं ।

ये भवन बाहर से गोल, अन्दर से चौकोर—यावत्—अप्सराओं के समूह से व्याप्त हैं—यावत्—प्रतिरूप हैं । इनमें देवेन्द्र देवराज शक्र के सोम, यम, वरुण एव वैश्रमण नामक दिक्पालों के परिवारभूत (आश्रित) अनेक आभियोगिक देव रहते हैं जो महर्धिक, महद्द्युतिक—यावत्—महासुख वाले तथा पल्योपम की स्थिति वाले हैं ।

वैताढ्य का शिखर

[१८] **तासि णं आभिओगसेढीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेयड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं पंच पंच जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं वेअड्ढस्स पव्वयस्स सिहरतले पण्णत्ते ।**
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे
दस जोयणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमगे आयामेणं,
से णं इक्काए पउमवरवेइयाए इक्केण वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।
पमाणं वण्णगो दोण्हंपि ।

[१९][१] **प्र०—वेयड्ढस्स णं भंते पव्वयस्स सिहरतलस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?**
उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,
से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा—जाव—
णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए—जाव—
वावीओ पुक्खरिणीओ—जाव—
वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति—जाव—भुंजमाणा विहरंति ।

जम्बू. वक्ष. १, सूत्र १२, पृ. ७२

[१८] इन आभियोगिकश्रेणियों के अति सम एवं रमणीय भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर पांच-पांच योजन ऊपर जाने पर वैताढ्य पर्वत का शिखरतल आता है ।

यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । इसकी चौड़ाई दस योजन की और लम्बाई पर्वत जितनी है । इसके चारों ओर पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड है । इन दोनों का प्रमाण और वर्णक समझ लेना चाहिए ।

]१९][१] प्र०—भगवन् ! वैताढ्य पर्वत के शिखर तल का स्वरूप कैसा है ?

उ७—गौतम ! इसका भूमिभाग अति सम एवं रमणीय है। वह आलिंगपुष्कर (मृदंग पर मढ़े हुए चमड़े) के समान समतल—यावत्—नानाविध पंचवर्ण मणियों से सुशोभित है। —यावत्—वापिकाओं तथा पुष्करिणियों से युक्त है—यावत्—वहां वाणव्यन्तर देव एवं देवियाँ बैठते हैं—यावत्—भोग भोगते हुए विचरते है।

वैताढ्य के कूट

[२०][१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे वेअड्ढपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता[1], तंजहा—

सिद्धाययणकूडे १, दाहिणड्ढभरहकूडे २, खंडप्पवायगुहाकूडे ३, माणिभद्दकूडे ४, वेअड्ढकूडे ५, पुण्णभद्दकूडे ६, तिमिसगुहाकूडे ७, उत्तरड्ढभरहकूडे ८, वेसमणकूडे ९।

—जम्बू. वक्ष. १, सूत्र १२, पृ. ७२

[२०][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप मे भरत वर्ष के वैताढ्य पर्वत पर कितने कूट है ?

उ०—गौतम ! नौ कूट है, यथा—१-सिद्धायतनकूट, २-दक्षिणार्ध भरत कूट, ३-खण्डप्रपातगुफा कूट, ४-माणिभद्र कूट, ५-वैताढ्य कूट, ६-पूर्णभद्र कूट, ७-तमिश्रगुफा कूट, ८-उत्तरार्ध भरत कूट, ९-वैश्रमण कूट।

सिद्धायतनकूट

[२१][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेअड्ढपव्वए सिद्धायतणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पुरच्छिमलवणसमुद्दस्स पच्चच्छिमेणं,
दाहिणड्ढभरहकूडस्स पुरच्छिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेअड्ढे पव्वए सिद्धायतणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते।
छ सक्कोसाइं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
मूले छ सक्कोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं,
मज्झे देसूणाइं पंच जोअणाइं विक्खंभेणं,
उवरिं साइरेगाइं तिण्णि जोअणाइं विक्खंभेणं,
मूले देसूणाइं बावीस जोअणाइं परिक्खेवेणं,
मज्झे देसूणाइं पण्णरस जोअणाइं परिक्खेवेणं,
उवरिं साइरेगाइं णव जोअणाइं परिक्खेवेणं,
मूले विच्छि(त्थि)ण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए,
गोपुच्छसंठाणसंठिए,
सव्वरयणामए अच्छे सण्हे—जाव—पडिरूवे।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।
पमाणं वण्णओ दोण्हंपि।
सिद्धायतणकूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,
से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा—जाव—वाणमंतरा देवा य—जाव—विहरंति।
तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे पण्णत्ते,
कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं।
अणेगखंभसयसन्निविट्ठे, खंभुग्गयसुकयवइरवेइआ-तोरण-वररइअसालभंजिअ-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-

---

१—ठा०, ९, सूत्र ६८९ पृ० ४३०.

संठिअ-पसत्थ-वेरुलिअविमलखंभे, णाणामणिरयणखचिअ-उज्जल-बहुसम-सुविभत्तभूमिभागे, ईहामिग-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्ते, कंचण-मणिरयणथूभियाए णाणाविहपंचवण्णघंटापडागपरिमंडिअग्गसिहरे, धवले, मरीइकवयं विणिम्मुअंते लाउल्लोइअमहिए—जाव—भया ।

तस्स णं सिद्धायतणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता,

ते णं दारा पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं,

तावइयं चेव पवेसेणं,

सेआवरकणगथूभिआगा,

दारवण्णओ—जाव—वणमाला ।

तस्स णं सिद्धायतणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,

से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा—जाव—

तस्स णं सिद्धाययणस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे देवच्छंदए पण्णत्ते,

पंच धणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,

साइरेगाइं पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,

सव्वरयणामए,

एत्थ णं अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताणं संनिक्खित्तं चिट्ठइ, एवं—जाव—धूवकडुच्छुगा ।

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र १३ पृ. ७७-७८

[२१][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत पर सिद्धायतन कूट कहाँ है ?

उ०—गौतम ! पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में तथा दक्षिणार्ध भरतकूट से पूर्व में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का वैताढ्य पर्वतस्थित सिद्धायतन कूट नामक कूट है। यह सवा छह योजन ऊँचा, मूल में सवा छह योजन चौड़ा, बीच में पांच योजन से कुछ कम चौड़ा, ऊपर तीन योजन से अधिक चौड़ा, मूल में बाईस योजन से कुछ कम की परिधि वाला, मध्य में पन्द्रह योजन से कुछ कम की परिधि वाला, ऊपर नौ योजन से अधिक की परिधि वाला, मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर से पतला, गोपुच्छ के आकार वाला, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकना—यावत्—प्रतिरूप है। इसके चारों ओर एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड है। इन दोनों का प्रमाण और वर्णन समझ लेना चाहिए।

सिद्धायतन कूट के ऊपर अति सम और रमणीय भूमिभाग है। यह आलिंगपुष्कर के समान है-यावत्—वाणव्यन्तर आदि देव वहाँ विहार करते हैं।

इस अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य में एक विशाल सिद्धायतन है। यह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, तथा एक कोस से कुछ कम ऊँचा है। कई सौ स्तंभों द्वारा निर्मित है। स्तंभों पर स्थित और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिका एवं तोरण हैं। श्रेष्ठ और आनन्ददायिनी पुतलियों से युक्त, सम्बद्ध, विशिष्ट एवं मनोज्ञ आकार के प्रशस्त वैडूर्यमणि के विमल स्तंभ हैं। इसका भूमिभाग विविध प्रकार के मणि-रत्नों से खचित, उज्ज्वल और अति सुविभक्त है। ईहामृग (भेड़िया) वृषभ. तुरंग, नर, मकर विहग, सर्प, किन्नर, रुरु, शरभ, चमर, कुंजर, वनलता तथा पद्मलता के चित्रों से दीवारें सुशोभित हैं। इसकी स्तूपिका कंचन एवं मणिरत्नों की है। नाना प्रकार के पंचवर्ण पुष्पों के उपचार से युक्त हैं। अग्र शिखर घंटा-पताकाओं से परिमंडित है। यह धवल प्रभा से युक्त, किरणों के समूह को विकीर्ण करता हुआ, लिपा-पुता-यावत्-ध्वजा से युक्त है।

इस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं। ये द्वार पांच सौ धनुष ऊँचे, अढ़ाई सौ धनुष चौड़े, इतने ही प्रवेश वाले, श्वेत तथा श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिकाओं वाले हैं। यहाँ द्वारों का वर्णन कह लेना चाहिए—यावत्—वनमाला पर्यन्त वर्णन समझ लेना चाहिए। इस सिद्धायतन के अन्दर का प्रदेश अति सम एवं रमणीय भूमिभाग वाला है। आलिंगपुष्कर के समान है—यावत्—इस सिद्धायतन के अति सम रमणीय भूमिभाग के मध्य में एक विशाल देवच्छद है जो पांच सौ धनुष लम्बा-चौड़ा एवं पांच सौ धनुष से अधिक ऊँचा है। यह सर्वरत्नमय है। यहाँ जिन भगवान् की ऊँचाई के बराबर ऊँची एक सौ आठ जिन प्रतिमाएँ है, इसी प्रकार—यावत्—धूपदानियाँ हैं।

दक्षिणार्ध भरतकूट

[२२][१] प्र०—कहि णं भंते ! वेयड्ढे पव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! खंडप्पवायकूडस्स पुरच्छिमेणं,
सिद्धाययणकूडस्स पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं वेयड्ढपव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते।
सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे—जाव–
तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसए पण्णत्ते।
कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं,
अब्भुग्गयमूसियपहसिए-जाव-पासाईए।
तस्स णं पासायवडिंसगस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिया पण्णत्ता।
पंच धणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,
अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं,
सव्वमणिमई,
तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं सीहासणं पण्णत्तं,
सपरिवारं भाणियव्वं।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-दाहिणड्ढभरहकूडे २ ?

उ०—गोयमा ! दाहिणड्ढभरहकूडे णं दाहिणड्ढभरहे णामं देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमट्ठिईए परिवसइ,
से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं,
चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं,
तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं,
सत्तण्हं अणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं,
दाहिणड्ढभरहकूडस्स दाहिणड्ढाए रायहाणीए अण्णेसिं बहूणं देवाण य देवीण य-जाव-विहरइ।

[३] प्र०—कहि णं भंते ! दाहिणड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढा णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जदीवसमुद्दे वीईवइत्ता,
अण्णं (अण्णंमि) जंबुद्दीवे दीवे दक्खिणेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,
एत्थ णं दाहिणड्ढभरहकूडस्स देवस्स दाहिणड्ढभरहा णामं रायहाणी भाणिअव्वा जहा विजयस्स देवस्स।

[२२][१] प्र०—भगवन् ! वैताढ्य पर्वत पर दक्षिणार्धभरतकूट नामक कूट कहाँ है ?

उ०—गौतम ! खंडप्रपात कूट से पूर्व में व सिद्धायतन कूट से पश्चिम में वैताढ्य पर्वत का दक्षिणार्ध-भरतकूट नामक कूट है। यह प्रमाण की दृष्टि से सिद्धायतन कूट के समान है-यावत्-इसके अति

सम रमणीय भूमिभाग के मध्य में एक विशाल प्रासादावतंसक है। यह एक कोस ऊँचा, आधा कोस चौड़ा, ऊँचा और खिला हुआ है-यावत्-दर्शकों के चित्त को प्रसन्नता प्रदान करने वाला है।

इस प्रासादावतंसक के मध्य भाग में एक विशाल मणिपीठिका है जो पांच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी एवं अढ़ाई सौ धनुष मोटी है। यह सर्वात्मना मणिमयी है। इस मणिपीठिका के ऊपर सिंहासन है जो सपरिवार है।

[२] प्र०—भगवन् ! दक्षिणार्धभरतकूट क्यों दक्षिणार्धभरतकूट कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! (क्योंकि) दक्षिणार्धभरतकूट पर दक्षिणार्धभरत नामक देव रहता है जो महर्द्धिक-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाला है। यह देव वहाँ चार सहस्र सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात अनीकों का, सात अनीकाधिपति देवों का, सोलह सहस्र आत्मरक्षक देवों का, दक्षिणार्धभरतकूट की दक्षिणार्धा राजधानी का तथा अन्य बहुत-से देवों और देवियों का (अधिपतित्व करता हुआ-यावत्) रहता है।

[३] प्र० —भगवन् ! दक्षिणार्ध भरतकूट के देव की दक्षिणार्धा नामक राजधानी कहाँ है ?

उ०—गौतम ! मंदर (मेरु) पर्वत से दक्षिण की ओर तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर दूसरे जम्बूद्वीप से दक्षिण की ओर बारह हजार योजन जाने पर दक्षिणार्धभरतकूट के देव की दक्षिणार्धभरता नामक राजधानी है। इसका वर्णन विजय देव की राजधानी के समान कर लेना चाहिए।

शेष कूट

[२३] **एवं सव्वकूडा णेयव्वा—जाव—वेसमणकूडे।**
परोप्परं पुरच्छिम-पच्चत्थिमेणं।
इमेसिं वण्णावासे गाहा—
मज्झे वेअड्डस्स उ कणयमया तिण्णि होंति कूडाउ।
सेसा पव्वयकूडा सव्वे रयणामया होंति ॥१॥
माणिभद्दकूडे १ वेअड्डकूडे २ पुण्णभद्दकूडे ३ एए तिण्णिकूडा कणगामया सेसा छप्पि रयणमया।
दोण्हं विसरिसणामया देवा कयमालए चेव णट्टमालए चेव,
सेसाणं छण्हं सरिसणामया, गाहा—
जण्णामया य कूडा तन्नामा खलु हवंति ते देवा।
पलिओवमट्ठिईया हवंति पत्तेअपत्तेयं ॥१॥
रायहाणीओ जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरिअं असंखेज्जदीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता
एत्थ णं रायहाणीओ भाणिअव्वाओ विजयरायहाणीसरिसयाओ।

जम्बू. वक्ष. १, सूत्र १४ पृ. ८३

[२३] इसी प्रकार वैश्रमणकूट पर्यन्त सब कूटों को समझ लेना चाहिए। ये सब परस्पर (अनुक्रम से) पूर्वपश्चिम में हैं। इनकी वर्णनविषयक गाथा है—'वैताढ्य पर्वत के मध्य में तीन कूट कनकमय हैं, शेष सब कूट रत्नमय हैं।'

माणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट और पूर्णभद्रकूट, ये तीनों कूट सुवर्णमय हैं, शेष छह रत्नमय हैं। दो कूटों के देवों के नाम विसदृश हैं, यथा—(तमिस्रगुफाकूट के देव का नाम) कृतमाल और (खंडप्रपातगुफा कूट के देव का नाम) नृत्यमाल है। शेष छह कूटों के देवों के नाम सदृश हैं, अर्थात् जो नाम कूट का है वही उसके देव का है।

[सिद्धायतन स्वयं प्रधान होने से उस कट के देव के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है ।]

प्रत्येक देव की स्थिति एक—एक पल्योपम की है । इनकी राजधानियां जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण में तिर्छे असंख्यात द्वीप–समुद्रों को लांघने पर आने वाले दूसरे जम्बूद्वीप में बारह सहस्र योजन जाने पर आती हैं । इनका वर्णन विजया राजधानी के समान समझ लेना चाहिए ।

'वैताढ्य' नाम का हेतु

[२४][१] प्र०—**से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—वेयड्ढे पव्वए वेयड्ढे पव्वए ?**

उ०—**गोयमा ! वेअड्ढे णं पव्वए भरहं वासं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ, तंजहा—**

दाहिणड्ढभरहं च उत्तरड्ढभरहं च ।

वेयड्ढगिरिकुमारे अ इत्थ देवे महिड्ढीए—जाव—पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—वेअड्ढे पव्वए २ ।

अदुत्तरं च णं गोअमा ! वेयड्ढस्स पव्वयस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते,

जं ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ ण अत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ,

भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ,

धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे ।

—जम्बू. वक्ष. १ सूत्र १५ पृ० ८४

[२४][१] प्र०—भगवन् ! वैताढ्य पर्वत, वैताढ्यपर्वत क्यो कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! वैताढ्यपर्वत भरतवर्ष को दो भागों मे विभक्त करता है, यथा—दक्षिणार्ध भरत और उत्तरार्ध भरत ।

और यहां वैताढ्यगिरिकुमार नामक देव रहता है जो महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला है । इस कारण गौतम ! इसे वैताढ्य पर्वत कहते है ।

इसके अतिरिक्त, गौतम ! वैताढ्य पर्वत का यह नाम शाश्वत है । यह न कभी नही था, न कभी नही है, न कभी नहीं होगा । यह था, है और रहेगा । यह नाम ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अवस्थित है, नित्य है ।

ऐरावत वर्ष

[१] [१] प्र.—**कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते ?**

उ०—**गोअमा ! सिहरिस्स उत्तरेणं, उत्तरलवणसमुद्दस्स दक्खिणेणं,**

पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते ।

खाणुबहुले, कंटकबहुले

एवं जच्चेव भरहस्स वत्तव्वया सच्चेव सव्वा निरवसेसा णेअव्वा

सओअवणा सणिक्खमणा सपरिनिव्वाणा

णवरं एरावओ चक्कवट्टी, एरावतो देवो, से तेणट्ठेणं एरावए वासे २ ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १११

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में ऐरावत नामक वर्ष (क्षेत्र) कहां है ?

उ०—गौतम ! शिखरिपर्वत के उत्तर में, उत्तर लवणसमुद्र के दक्षिण में, पूर्व लवणसमुद्र के पश्चिम में और पश्चिम लवणसमुद्र के पूर्व में, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में ऐरावत नामक वर्ष कहा है ।

वह स्थाणु (ठूंठ) बहुल और कंटकबहुल है । इस प्रकार जो वक्तव्यता भरत वर्ष की कही है वही सब इसकी समझ लेनी चाहिए-षट्खण्ड की साधना सहित, निष्क्रमण सहित और निर्वाण-सहित ।

महाविदेह वर्ष

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं,
णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते ।
पाडीण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिन्ने
पलिअंकसंठाणसंठिए
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पुरत्थिम-जाव-पुट्ठे
पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं-जाव-पुट्ठे
तित्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च चुलसीए जोअणसए
चत्तारि अ एगूणवीसइभागे जोअणस्स विक्खंभेणं ति ।
तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं तेतीसं जोअणसहस्साइं सत्त य सतसट्ठे जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं ति ।
तस्स जीवा बहुमज्झदेसभाए पाईण-पडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं-जाव-पुट्ठा
एवं पच्चत्थिमिल्लाए- जाव-पुट्ठा ।
एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणं ति ।
तस्स धणुं उभओ पासिं उत्तर-दाहिणेणं
एगं जोयणसयसहस्सं अट्ठावण्णं जोअणसहस्साइं एगं च तेरसुत्तरं जोअणसयं सोलस य एगूणवीस-इभागे जोयणस्स किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणंति ।
महाविदेहे णं वासे चउव्विहे[1] चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तंजहा—
पुव्वविदेहे १, अवरविदेहे २, देवकुरा ३, उत्तरकुरा ४, ।

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में महाविदेह नामक वर्ष (क्षेत्र) कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, पूर्व लवणसमुद्र से पश्चिम में तथा पश्चिम लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह नामक वर्ष है । यह पूर्व और पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा, पर्यंक (पलंग) के आकार का एवं दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पश्चिम की ओर से पश्चिमी लवणसमुद्र से (एवं पूर्व की ओर से पूर्वी लवणसमुद्र से) स्पृष्ट है । यह ३३६८४$\frac{४}{६}$ योजन चौड़ा है । इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम की ओर ३३७६७$\frac{७}{१९}$ योजन लम्बी है ।
इसकी जीवा मध्य में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी है एवं दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, आदि । यह एक लाख योजन लम्बी है ।
इसका धनुःपृष्ठ दोनों ओर उत्तर-दक्षिण में १५८११३$\frac{१}{१९}$ योजन से कुछ अधिक की परिधि में है ।

---

१ ठा० ४ उ० २ सूत्र ३०२ पृ० २१२

महाविदेह वर्ष चार भागों में विभक्त है, यथा—(१) पूर्वमहाविदेह (२) अपर महाविदेह (३) देवकुरु और (४) उत्तरकुरु।

महाविदेह का स्वरूप

[२] [१] प्र०—**महाविदेहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते ?**

उ०—**गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते**

—जाव—कित्तिमेहिं अकित्तिमेहिं चेव।

[२] प्र०—**महाविदेहे णं भंते ! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?**

उ०—**गोअमा ! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउअं पालेंति, पालेत्ता अप्पेगइआ निरयगामी—जाव—अप्पेगइआ सिज्झंति—जाव—अंतं करेंति।**

[२] [१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! इसकी भूमि बहुत सम और रमणीय है।—यावत्—कृत्रिम और अकृत्रिम (मणियों तथा तृणों) से (सुशोभित है)।

[२] प्र०—भगवन् ! महाविदेह के मनुष्यों का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! वहां के मनुष्य छह प्रकार के संहनन और छह प्रकार के संस्थान वाले हैं, उत्कृष्ट पांच सौ धनुष ऊंचाई वाले हैं। वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट पूर्वकोटि की आयु भोगकर कोई-कोई नरक मे जाते है—यावत्—कोई-कोई सिद्ध होते हैं—यावत्—(सब प्रकार के दुःखों का, अन्त करते हैं।

महाविदेह संज्ञा का हेतु

[३] [१] प्र०—**से केणट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चइ—महाविदेहे वासे २ ?**

उ०—**गोअमा ! महाविदेहे णं वासे**

भरहे-रवय-हेमवय-हेरण्णवय-हरिवास-रम्मगवासेहिंतो आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं

विच्छिन्नतराए चेव, विपुलतराए चेव,

महंततराए चेव, सुप्पमाणतराए चेव,

महाविदेहा य इत्थ मणूसा परिवसंति।

महाविदेहे अ इत्थ देवे महिड्ढिए—जाव—पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—महाविदेहेवासे २।

अदुत्तरं च णं गोअमा ! महाविदेहस्स वासस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते,

जं ण कयाइ णासि ३।

जम्बू वक्ष. ४ सूत्र ८५ पृ. ३११

[३] [१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष महाविदेह वर्ष क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम ! महाविदेह वर्ष भरत, ऐरावत. हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष और रम्यक वर्ष से लंबाई, चौड़ाई, संस्थान (आकार) और परिधि में अधिक विस्तीर्ण है, अधिक विपुल है, अधिक विशाल है और अधिक सुप्रमाण वाला है।

यहां महाविदेह अर्थात् बड़े ऊंचे शरीर वाले मनुष्य रहते हैं।

यहां महाविदेह नामक महर्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। इस हेतु से, गौतम! यह महाविदेह वर्ष कहलाता है। अथवा गौतम! इसका यह नाम शाश्वत है, जो न कभी नहीं था, इत्यादि।

गंधमादन पर्वत

[४] [१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे गंधमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,
मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं,
गंधिलावइस्स विजयस्स पुरच्छिमेणं[1],
एत्थ णं महाविदेहे वासे गंधमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते[2]।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणवित्थिन्ने,
तीसं जोअणसहस्साइं दुण्णि अ णउत्तरे जोअणसए छच्च य एगूणवीसइभागे जोअणस्स आयामेणं,
णीलवंतवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं,
पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
तयाणंतरं च णं मायाए २ उस्सेहुव्वेहपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणे २
विक्खंभपरिहाणीए परिहायमाणे २
मंदरपव्वयंतेणं पंचजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
पंच गाउअसयाइं उव्वेहेणं,[3],
अंगुलस्स असंखेज्जइभागं विक्खंभेणं पण्णत्ते।
गयदंतसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, दोहि य वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।
गंधमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।
—जाव—आसयंति।

[४] [१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में गंधमादन नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, मेरु पर्वत से उत्तर-पश्चिम में, गंधिलावती विजय से पूर्व में एवं उत्तरकुरु से पश्चिम में महाविदेह वर्ष में गंधमादन नामक वक्षस्कार पर्वत है। यह उत्तर-दक्षिण में लंबा, पूर्व-पश्चिम मे चौड़ा एवं ३०२०९$\frac{६}{९}$ योजन लम्बा है। नीलवन्त वर्षधर पर्वत के पास चार सौ योजन ऊंचा, चार सौ कोस गहरा और पांच सौ योजन चौड़ा है। तदनन्तर क्रमशः ऊँचाई और गहराई में बढ़ता-बढ़ता किन्तु विस्तार में कम होता-होता मेरु पर्वत के पास पांच सौ योजन ऊँचा पांच सौ कोस गहरा एवं अंगुल के असंख्यातवें भाग चौड़ा हो जाता है।
यह गजदन्त के आकार का है, सर्वात्मना रत्नमय एवं स्वच्छ है।
इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएँ और दो वनखण्ड हैं। गंधमादन वक्षस्कार पर्वत पर अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग है।
—यावत्—(वहाँ देवगण क्रीड़ा करते हैं) बैठते हैं।

१—ठा. २ उ. ३ सूत्र ८७ पृ. ६५
२—ठा. ४ उ. २ सूत्र ३०२ पृ. २१२
३—(क) सम. ५०० सूत्र १-५ पृ. ११२
(ख) ठा. ५ उ. २ सूत्र ४३४ पृ. ३१०

गंधमादन पर्वत के कूट

[५] [१] प्र०—गंधमायणे णं वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सत्त कूडा पण्णत्ता[1], तंजहा—

सिद्धाययणकूडे १, गंधमायणकूडे २, गंधिलावईकूडे ३, उत्तरकुरुकूडे ४, फलिहकूडे ५, लोहियक्खकूडे ६, आणंदकूडे ७ ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-पच्चत्थिमेणं गंधमायणकूडस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं गंधमायणे वक्खारपव्वए,

सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।

जं चेव चुल्लहिमवंते सिद्धाययणकूडस्स पमाणं तं चेव सव्वंसि सव्वेसिं भाणिअव्वं ।

एवं चेव विदिसाहिं तिण्णि कूडा भाणिअव्वा ।

चउत्थे ततिअस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं पंचमस्स दाहिणेणं ।

सेसा उ उत्तर-दाहिणेणं ।

फलिह-लोहिअक्खेसु भोगंकर-भोगवईओ देवयाओ सेसेसु सरिसणामया देवा ।

छसु वि पासायवडेंसगा ।

रायहाणीओ विदिसासु ।

[५] [१] प्र०—भगवन् ! गंधमादन वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट हैं ?

उ०—गौतम ! सात कूट है, यथा—(१) सिद्धायतनकूट (२) गंधमादनकूट (३) गंधिलावतीकूट (४) उत्तरकुरुकूट (५) स्फटिककूट (६) लोहिताक्षकूट और (७) आनन्दकूट ।

[२] प्र०—भगवन् ! गंधमादन वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन नामक कूट कहाँ है ?

उ०—गौतम ! मेरु पर्वत से उत्तर-पश्चिम में एवं गधमादनकूट से दक्षिण-पूर्व में गंधमादन वक्षस्कार पर्वत का सिद्धायतन नामक कूट है ।

चुल्लहिमवन्त के सिद्धायतन कूट का जो प्रमाण है वही इन सब का कह लेना चाहिए । इसी प्रकार विदिशाओं में तीन कूट कहने चाहिए । चौथा (कूट) तीसरे के उत्तर-पश्चिम में और पांचवें के दक्षिण में है । शेष उत्तर-दक्षिण में है । स्फटिक और लोहिताक्ष कूटों पर भोगंकरी और भोगवती नामक (दिक् कुमारी) देवियाँ है । शेष मे कूटों के सदृश नाम वाले देव हैं । छहों पर प्रासादावतंसक हैं । राजधानियाँ विदिशा में हैं ।

'गन्धमादन' संज्ञा का कारण

[६] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-गंधमायणे वक्खारपव्वए २ ?

उ०—गोयमा ! गंधमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स गंधे

से जहाणामए कोट्टपुडाण वा—जाव—

पीसिज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा

विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा-जाव-ओराला मणुण्णा-जाव-गंधा अभिणिस्सवंति ।

भवे एयारूवे ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

१—ठा. ७ सूत्र ५६० पृ. ३६३

गंधमायणस्स णं इत्तो इट्ठतराए चेव-जाव गंधे पण्णत्ते ।
से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ-गंधमायणे वक्खारपव्वए २ ।
गंधामायणे अ इत्थ देवे महिड्ढिए परिवसइ,
अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे इति ।

—जंबू० वक्ष० ४ सूत्र ८६ पृ० ३१३

[६]]१] प्र०—भगवन् ! इसे गंधमादन वक्षस्कार पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! गंधमादन वक्षस्कार पर्वत की गंध क्या कोष्ठ नामक सुगंधी द्रव्य के पुट-यावत्-जो पीसे जा रहे हों, उत्कीर्ण किये जा रहे हों, बिखेरे जा रहे हों, उपभोग में लिये जा रहे हों—यावत्-उनसे जो मनोज्ञ एवं मनोरम गंध निकलती है, वैसी है ? नहीं, ऐसा नहीं है । गंधमादन पर्वत की गंध उनसे भी अधिक इष्ट है—इष्टतर है । इस कारण गौतम ! यह गंधमादन (अपनी गंध से मतवाला बना देनेवाला) पर्वत कहलाता है ।

यहाँ गंधमादन नामक महर्द्धिक देव रहता है । इसके अतिरिक्त यह नाम शाश्वत है ।

महाविदेह में माल्यवन्त पर्वत

[७] [१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,
उत्तरकुराए पुरत्थिमेणं,
वच्छस्स चक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते,
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्ण (त्थि) न्ने, जं चेव गंधमायणस्स पमाणं विक्खम्भो अ,
णवरमिमं णाणत्तं-सव्ववेरुलिआमए, अवसिट्ठं तं चेव-जाव-गोअमा ! नव कूडा पण्णत्ता,[1] तंजहा-
सिद्धाययणकूडे०
सिद्धे य मालवन्ते, उत्तरकुरु कच्छसायरे रयए ।
सीओय पुण्णभद्दे, हरिस्सहे[2] चेव बोद्धव्वे ।।१।।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! मालवन्ते वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं मालवन्तस्स कूडस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं एत्थ णं सिद्धाययणे कूडे पण्णत्ते,
पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अवसिट्ठं तं चेव-जाव-रायहाणी ।
एवं मालवन्तस्स कूडस्स, उत्तरकुरुकूडस्स, कच्छकूडस्स,
एए चत्तारि कूडा दिसाहिं पमाणेहिं णेअव्वा,
कूडसरिसनामया देवा ।

[७] [१] प्र०—भगवन् ! महाविदेहवर्ष में माल्यवन्त नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत से उत्तर-पूर्व में, नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, उत्तरकुरु से पूर्व में और वत्स नामक चक्रवर्त्तिविजय से पश्चिम में, महाविदेह वर्ष में माल्यवन्त नामक वक्षस्कार पर्वत है । वह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में विस्तीर्ण और गंधमादन पर्वत के बराबर प्रमाण एवं विष्कंभ वाला है । विशेषता यह है कि यह (माल्यवन्त पर्वत) सर्वात्मना

१—ठा० ९, सूत्र ६८९ पृ० ४३०
२. सम० ११३, सूत्र ५

वैडूर्यमय है, शेष वर्णन वही है—यावत्-गौतम ! सिद्धायतनकूट आदि नौ कूट कहे गए हैं। (गाथार्थ)—(१) सिद्धायतनकूट (२) माल्यवन्त कूट (३) उत्तरकुरुकूट (४) कच्छकूट (५) सागर कूट (६) रजतकूट (७) शीतोदाकूट (८) पूर्णभद्रकूट और (९) हरिस्सहकूट, (ये नौ कूट) जानने चाहिए।

[२] प्र०—भगवन् ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन कूट नामककूट कहाँ है ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत से उत्तर-पूर्व में एवं माल्यवन्तकूट से दक्षिण-पश्चिम में सिद्धायतन कूट कहा गया है। यह पांच सौ योजन ऊँचा है। राजधानी पर्यन्त शेष सब वर्णन वही है।

इसी प्रकार माल्यवन्त कूट, उत्तरकुरुकूट और कच्छकूट का (वर्णन समझना चाहिए)। इन चारों कूटों की दिशा और प्रमाण (सिद्धायतनकूट के समान) समझ लेना चाहिए। उनके देव कूट के सदृश नाम वाले हैं।

माल्यवन्त का सागर कूट

[८] [१] **प्र०—कहि णं भंते ! मालवन्ते सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?**

उ०—गोअमा! कच्छकूडस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं, रम्मयकूडस्स दक्खिणेणं, एत्थ णं सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते,
पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अवसिट्ठं तं चेव,
सुभोगा देवी, रायहाणी उत्तर-पुरत्थिमेणं,
रययकूडे भोगमालिणी देवी, रायहाणी उत्तर-पुरत्थिमेणं,
अवसिट्ठा कूडा उत्तरदाहिणेणं णेअव्वा एक्केणं पमाणेणं।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ९१, पृ. ३३७

[८] [१] प्र०—भगवन् ! माल्यवन्त पर्वत पर सागर कूट नामक कूट कहां है ?

उ०—गौतम ! कच्छ कूट से उत्तर-पूर्व में तथा रजत कूट से दक्षिण मे सागर कूट है।

यह पांच सौ योजन ऊँचा है, शेष सब वही। वहाँ सुभोगा देवी है (उसकी) राजधानी उत्तर-पूर्व में है।

रजतकूट पर भोगमालिनी देवी है (उसकी) राजधानी उत्तर-पूर्व में है।

शेष कूट उत्तर-दक्षिण में जानने चाहिए। इन सब का प्रमाण एक (हिमवत् कूट के बराबर) है।

माल्यवन्त का हरिस्सह कूट

[९] [१] **प्र०—कहि णं भंते ! मालवन्ते हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?**

उ०—गोअमा ! पुण्णभद्दस्स उत्तरेणं, णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, एत्थ णं हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते,
एगं जोअणसहस्सं उद्धं उच्चत्तेणं, जमगपमाणेणं णेअव्वं,
रायहाणी उत्तरेणं असंखेज्जे दीवे अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे उत्तरेणं बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता
एत्थ णं हरिस्सहस्स देवस्स हरिस्सहाणामं रायहाणी पण्णत्ता,
चउरासीइं जोअणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,
बे जोयणसयसहस्साइं पण्णट्ठिं च सहस्साइं छच्च छत्तीसे जोअणसए परिक्खेवेणं,
सेसं जहा चमरचंचाए रायहाणीए तहा पमाणं भाणिअव्वं,
महिड्ढीए महज्जुईए

[९] [१] प्र०—भगवन् ! माल्यवन्त पर्वत पर हरिस्सह कूट नामक कूट कहाँ है ?

उ०—गौतम ! पूर्णभद्र कूट से उत्तर में नीलवन्त पर्वत से दक्षिण में हरिस्सह कूट नामक कूट है।

यह एक हजार योजन ऊँचा है। उसका प्रमाण यमक पर्वत के बराबर जानना चाहिए।

राजधानी उत्तर दिशा में, असंख्यात द्वीप-समुद्रों के आगे, अन्य जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, उत्तर की ओर बारह हजार योजन अवगाहन करके हरिस्सह देव की हरिस्सहा नामक राजधानी कही गई है। वह चौरासी हजार योजन लम्बी-चौड़ी है। उसकी परिधि २६५६३६ योजन है। शेष कथन चमरचंचा राजधानी के समान है। वही प्रमाण है। (यहां हरिस्सह नामक) महर्द्धिक और महाद्युतिमान् (देव निवास करता है, अतएव उसका नाम हरिस्सह कूट है।)

'माल्यवन्त' संज्ञा का हेतु

[१०][१] प्र०—**से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-मालवन्ते वक्खारपव्वए २ ?**

उ०—**गोअमा ! मालवन्ते णं वक्खारपव्वए तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे सरिआगुम्मा णोमालिआगुम्मा-जाव-मगदन्तिआ गुम्मा,**

ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमेंति,

जे णं तं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसाला मुक्कपुप्फ-पुंजोवयारकलिअं करेन्ति,

मालवन्ते अ इत्थ देवे महिद्धीए-जाव-पलिओवमट्ठिइए परिवसइ,

से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ,

अदुत्तरं च णं-जाव-णिच्चे।

—जम्बू० वक्ष० ४ सूत्र ९२ पृ० ३६८—३३९

[२०][१] प्र०—भगवन् ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत को माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत पर स्थान स्थान पर सरिकागुल्म, नवमालिकागुल्म-यावत्-मगदन्तिकागुल्म हैं। वे गुल्म पंचरंगी कुसुमों को उत्पन्न करते हैं, जो (कुसुम) माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के अत्यन्त समतल एवं रमणीय भूमिभाग को, वायु के संचार से, शाखाओं के अग्रभाग के हिलने से जो कुसुम झड़ते हैं, उन कुसुमों के द्वारा वे गुल्म सुशोभित करते हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ माल्यवन्त नामक महर्द्धिक-यावत् पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है। गौतम! इस कारण यह पर्वत माल्यवन्त कहलाता है। इसके अतिरिक्त (यह नाम) यावत्-नित्य है।

सौमनस वक्षस्कार पर्वत

[२१][१] प्र०—**कहि णं भंते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?**

उ०—**गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,**

मंदरस्स पव्वयस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं,

मंगलावईविजयस्स पच्चत्थिमेणं,

देवकुराए पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते,

उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणवित्थिन्ने,

जहा मालवन्ते वक्खारपव्वए तहा, णवरं-सव्वरययामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

णिसहवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोयणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं,

सेसं तहेव सव्वं,

णवरं-अट्ठो से गोअमा ! सोमणसे णं वक्खारपव्वए बहवे देवा य देवीओ य सोमा सुमणा, सोमणसे य इत्थ देवे महिद्धीए-जाव-परिवसइ, से एणट्ठेणं गोअमा !-जाव-णिच्चे।

]११][१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में सौमनस नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम! निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, मन्दर पर्वत से दक्षिण-पूर्व में मंगलावती विजय से पश्चिम में और देवकुरु से पूर्व में, जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में सौमनस नामक वक्षस्कार पर्वत है। वह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम में विस्तीर्ण है। इसकी वक्तव्यता माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के समान है। विशेष यह कि यह पर्वत सर्व-रजतमय है, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप है। निषध नामक वर्षधर पर्वत के अन्त से चार सौ योजन ऊँचा और चार सौ गव्यूति गहरा है। शेष सब कथन उसी प्रकार है।

विशेष-उसके नाम का कारण कह लेना चाहिए-गौतम! सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर बहुत से सौम्य और शुद्ध मन वाले देव-देवियों का निवास है। यहां सौमनस नामक महर्द्धिक देव-यावत् निवास करता है। इस कारण गौतम! यह पर्वत सौमनस कहलाता है। इसके सिवाय इसका नाम-यावत्-नित्य है।

सौमनस पर्वत के कूट

[१२][१] प्र०—**सोमणसे वक्खारपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?**

उ०—**गोयमा ! सत्त कूडा पण्णत्ता, तंजहा-**

सिद्धे सोमणसे विय, बोद्धव्वे मंगलावई कूडे।
देवकुरु विमल कंचण वसिट्ठकूडे अ बोद्धव्वे ॥१॥
एवं सव्वे पंचसइया कूडा,
एएसिं पुच्छा दिसि-विदिसाए भाणिअव्वा जहा गंधमायणस्स,
विमल-कंचणकूडेसु णवरिं देवयाओ सुवच्छा वच्छमित्ता य, अवसिट्ठेसु कूडेसु सरिसणामया देवा, रायहाणीओ दक्खिणेणंति।

—जम्बू० वक्ष० ४ सूत्र ९७ पृ० ३५३

[१२][१] प्र०—सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट है ?

उ०—गौतम! सात कूट है, यथा- (१) सिद्धायतन कूट, (२) सौमनसकूट, (३) मंगलावतीकूट, (४) देवकुरुकूट, (५) विमलकूट, (६) कांचनकूट और (७) वशिष्ठकूट।

ये सब कूट पांच सौ योजन ऊंचे है। दिशाओं एवं विदिशाओं में इनके संबंध में प्रश्न (उत्तर) गंधमादन की तरह समझ लेने चाहिए।

विशेष बात यह है कि इसके विमल और कांचन कूटों पर सुवत्सा और वत्समित्रा देवियाँ हैं। शेष कूटों पर उनके नाम के समान नाम वाले देव हैं। उनकी राजधानियां दक्षिण में है।

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत

[१३][१] प्र०—**कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे णामं वक्खारपव्वए पन्नत्ते ?**

उ०—**गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,**
मंदरस्स पव्वयस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं,
देवकुराए पच्चत्थिमेणं,
पम्हस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए पण्णत्ते।
उत्तर-दाहिणायए एवं जहा मालवन्ते, णवरि सव्वतवणिज्जमए अच्छे—जाव—देवा आसयन्ति।

[१३][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! निषध नामक वर्षधर पर्वत से उत्तर में, मंदर पर्वत से दक्षिण-पश्चिम में, देवकुरु के पश्चिम में और पक्ष्मविजय के पूर्व में, जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत है।

वह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है, इत्यादि वर्णन माल्यवन्त के समान समझना चाहिए। विशेष यह कि यह पर्वत सर्वतपनीय-स्वर्णमय है, स्वच्छ है—यावत्—वहाँ देवगण विहार करते हैं।

विद्युत्प्रभ पर्वत के कूट

[१४][१] प्र०—विज्जुप्पभे णं भंते ! वक्खारपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! नव कूडा पण्णत्ता, तंजहा—सिद्धायणकूडे विज्जुप्पभकूडे देवकुरुकूडे पम्हकूडे कणगकूडे सोवत्थिअकूडे सीओआकूडे सयज्जलकूडे हरिकूडे।[1]

सिद्धे अ विज्जुणामे देवकुरु पम्ह-कणग-सोवत्थी।
सीओआ य सयज्जल-हरिकूडे चेव बोद्धव्वे ॥१॥
एए हरिकूडवज्जा पंचसइआ णेअव्वा,
एएसिं कूडाणं पुच्छा दिसि-विदिसाओ णेअव्वाओ,
जहा मालवन्तस्स हरिस्सहकूडे तह चेवहरिकूडे,
रायहाणी जह चेव दाहिणेणं चमरचंचा रायहाणी तह णेअव्वा,
कणग-सोवत्थिअकूडेसु वारिसेण-बलाहयाओ दो देवयाओ,
अवसिट्ठेसु कूडेसु कूडसरिसणामया देवा, रायहाणीओ दाहिणेणं।

प्र०—से केणट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चइ-विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए २ ?

उ०—गोयमा ! विज्जुप्पभे णं वक्खारपव्वए विज्जुमिव सव्वओ समंता ओभासेइ उज्जोवेइ पभासेइ, विज्जुप्पभे य इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए—जाव—परिवसइ।
से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-विज्जुप्पभे २, अदुत्तरं च णं—जाव—णिच्चे।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०१ पृ. ३५५

]१४][१] प्र०—भगवन् ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट हैं ?

उ०—गौतम ! नौ कूट हैं, यथा—(१) सिद्धायतनकूट (२) विद्युत्प्रभकूट (३) देवकुरुकूट (४) पक्ष्मकूट (५) कनककूट (६) सौवस्तिककूट (७) शीतोदाकूट (८) शतज्वलकूट और (९) हरिकूट। सिद्धायतन, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पक्ष्म, कनक, सौवस्तिक, शीतोदा, शतज्वल और हरिकूट जानने चाहिए ॥१॥ हरिकूट को छोड़कर ये सब कूट पांच सौ योजन ऊँचे समझ लेना चाहिए। दिशा-विदिशा में इनके विषय में पृच्छा कर लेनी चाहिए। हरिकूट का कथन माल्यवन्त के हरिस्सहकूट के समान है। राजधानी चमरचंचा के समान ही दक्षिण में कह लेनी चाहिए। कनककूट और सौवस्तिककूट पर वारिषेणा और बलाहका नामक देवियाँ हैं। शेष कूटों पर कूटों के नाम के समान नाम वाले देव हैं। इनकी राजधानियाँ दक्षिण में हैं।

प्र०—भगवन् ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत किस कारण से विद्युत्प्रभ कहलाता है ?

उ०—गौतम ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत बिजली की तरह सब दिशा-विदिशाओं में अवभासित, उद्योतित और प्रभासित होता रहता है। तथा यहाँ विद्युत्प्रभ नामक पल्योपम की स्थिति वाला देव—यावत्—निवास करता है, गौतम ! इस कारण यह विद्युत्प्रभ कहलाता है। इसके अतिरिक्त यह नाम—यावत्—नित्य है।

१—ठा. ९ सूत्र ६८९ पृ. ४३०

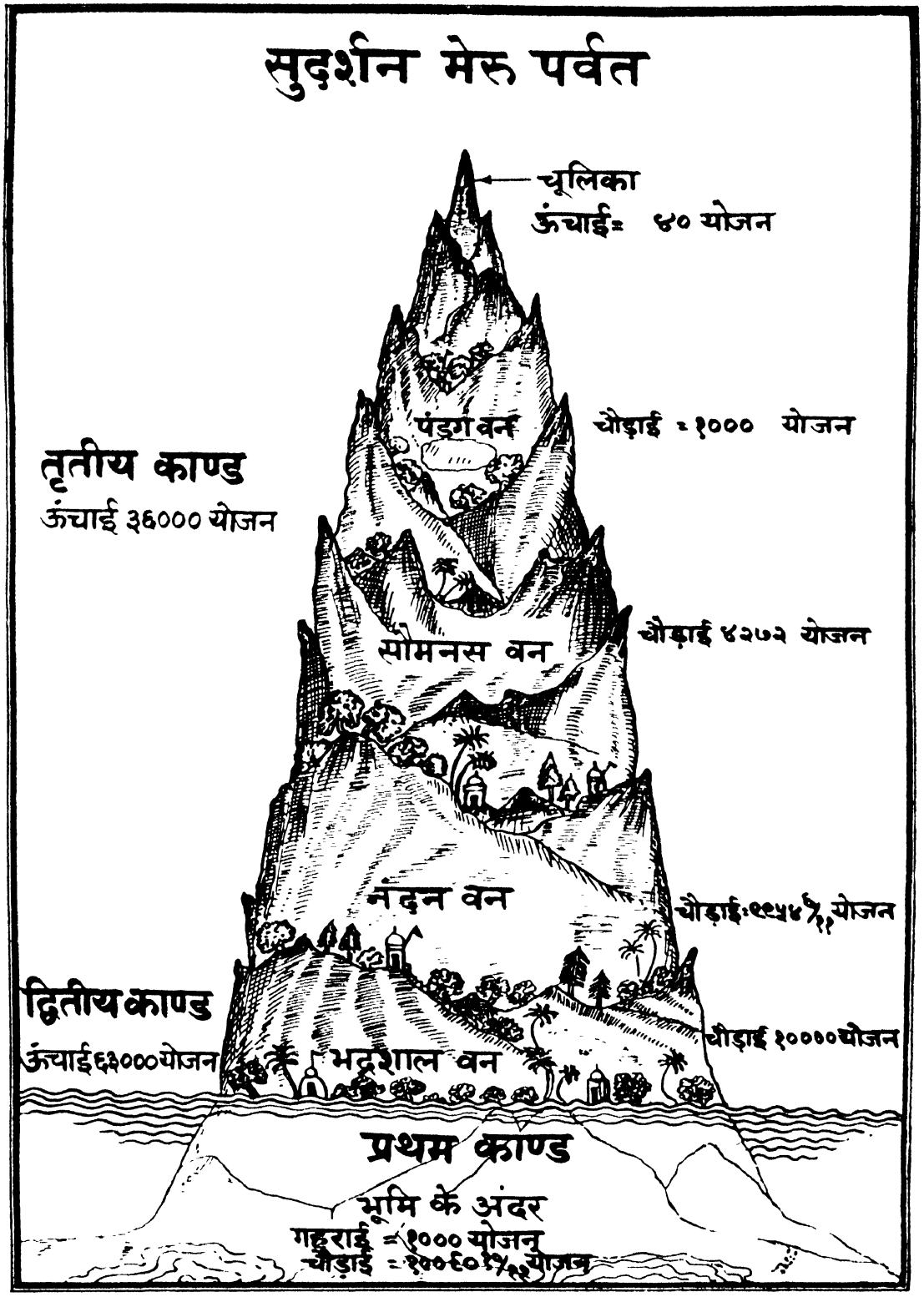
सुदर्शन मेरु पर्वत
चूलिका
ऊंचाई= ४० योजन
पंडग वन
चौड़ाई = १००० योजन
तृतीय काण्ड
ऊंचाई ३६००० योजन
सोमनस वन
चौड़ाई ४२७२ योजन
नंदन वन
चौड़ाई ९९५४ 2/11 योजन
द्वितीय काण्ड
ऊंचाई ६३००० योजन
चौड़ाई १००००० योजन
भद्रशाल वन
प्रथम काण्ड
भूमि के अंदर
गहराई = १००० योजन
चौड़ाई = १००६०

मन्दर पर्वत

[१५] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदरे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! उत्तरकुराए दक्खिणेणं,

देवकुराए उत्तरेणं,

पुव्वविदेहस्स वासस्स पच्चत्थिमेणं,

अवरविदेहस्स वासस्स पुरच्छिमेणं,

जंबुद्दीवस्स बहुमज्झदेसभाए,

एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरे णामं पव्वए पण्णत्ते ।

णवणउति जोअणसहस्साइं उद्धं उच्चत्तेणं,[1]

एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं,

मूले दसजोअणसहस्साइं णवइं च जोअणाइं दस य एगारसभाए जोअणस्स विक्खंभेणं,

धरणिअले दस जोअणसहस्साइं विक्खंभेणं,[2]

तयणंतरं च णं मायाए २ परिहायमाणे-परिहायमाणे उवरितले एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं,[3]

मूले एक्कतीसं जोअणसहस्साइं णव य वसुत्तरे जोअणसए तिण्णि अ एगारसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं

धरणियले एकत्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोअणसए परिक्खेवेणं,[4]

उवरितले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं,

मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उवरि तणुए,

गोपुच्छसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे, सण्हेत्ति ।[5]

से ण एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं

सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वण्णओ त्ति ।

१—(क) सम. ९९, सूत्र १
(ख) सम. ८५ सूत्र, २
(ग) ठा, १० सूत्र ७२१ पृ. ४५३
(घ) सम. ८४, सूत्र ६

२—(क) सम. १०, सूत्र ३
(ख) सम. सूत्र १२३
(ग) ठा. १०, सूत्र ७१९ पृ० ४५३

३—मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारसभागपरिहीणे उच्चत्तेणं पण्णत्ते । सम. ११ सू. ७

४—सम. ३१, सूत्र २

५—मंदरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं पि पणयालीसं २ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । —सम. ४५, सूत्र ६

—मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ विजयदारस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं पणयन्नजोयण-सहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—एवं चउद्दिसिंपि वेजयंत-जयंत-अपराजियं ति । —सम. ५५, २-३

[१५] [१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष में मेरु (मन्दर) नामक पर्वत कहां है?

उ०—गौतम! उत्तर कुरु से दक्षिण में, देव कुरु से उत्तर में, पूर्व महाविदेह से पश्चिम में एवं अपरविदेह से पूर्व में, जम्बूद्वीप के ठीक मध्य में जम्बूद्वीपस्थित मंदर नामक पर्वत है। यह ९९००० योजन ऊंचा, १००० योजन गहरा, मूल में १००९०$\frac{१२}{१९}$ योजन विस्तार वाला तथा पृथ्वी-तल पर १०००० योजन विस्तृत है। तदनन्तर धीरे-धीरे कम होते-होते उपरितल पर १००० योजन विस्तार वाला रह गया है। इसकी परिधि मूल में ३१९१०$\frac{३}{१९}$ योजन की, पृथ्वीतल पर ३१६२३ योजन की तथा उपरितल पर ३१६२ योजन से कुछ अधिक की है। यह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर पतला, गोपुच्छ के आकार का, सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ और चिकना है।

यह चारों ओर से एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से घिरा है। इनका वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए।

भद्रशालवन

[१६][१] प्र०—मंदरे णं भंते! पव्वए कइ वणा पण्णत्ता[१]?

प्र०—गोयमा! चत्तारि वणा पण्णत्ता, तंजहा—
भद्दसालवणे १, णंदणवणे २, सोमणसवणे ३, पंडगवणे ४।

[२] प्र०—कहिं णं भंते! मंदरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पण्णत्ते?

उ०—गोअमा! धरणिअले एत्थ णं मंदरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पण्णत्ते—
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिन्ने,
सोमणस-विज्जुप्पह-गंधमायण-मालवंतेहिं वक्खारपव्वएहिं सीआ-सीओआहिं अ महाणईहिं अट्ठभागपविभत्ते।
मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं बावीसं बावीसं जोअणसहस्साइं आयामेणं,
उत्तर-दाहिणेणं अड्ढाइज्जाइं अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणंति।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।
दुण्हवि वण्णओ भाणिअव्वो।
किण्हे किण्होभासे-जाव-देवा आसयंति सयंति।

[१६] [१] प्र०—भगवन्! मेरु पर्वत पर कितने वन हैं?

उ०—गौतम! चार वन हैं, यथा-भद्रशाल वन, नन्दन वन, सौमनस वन और पंडक वन।

प्र०—भगवन्! मेरु पर्वत पर भद्रशाल नामक वन कहां है?

उ०—गौतम! मेरु पर्वत के पृथ्वीतल पर भद्रशाल नामक वन है। यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। सौमनस, विद्युत्प्रभ, गंधमादन और माल्यवन्त नामक वक्षस्कार पर्वतों और सीता तथा सीतोदा महानदियों के कारण आठ भागों में विभक्त हो गया है।

यह मेरु पर्वत से पूर्व-पश्चिम की ओर २२००० योजन लम्बा है और उत्तर-दक्षिण में २५० योजन चौड़ा है। इसके चारों ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है। यहां इन दोनों का वर्णन कह लेना चाहिए।

यह (भद्रशाल वन) कृष्ण व कृष्णावभास है-यावत्-यहां देव (क्रीड़ा करते एवं) बैठते सोते हैं।

---

१. ठा. ४ उ. २ सूत्र ३०२ पृ. २१२

सिद्धायतनवर्णन

[१७] मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे पण्णत्ते,
पण्णासं जोअणाइं आयामेणं,
पणवीसं जोयणाइं विक्खंभेणं,
छत्तीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे, वण्णओ ।
तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता,
ते णं दारा अट्ठ जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं,
तावइयं चेव पवेसेणं ।
सेया वरकणगथूभिआगा-जाव-वणमालाओ,
भूमिभागो य भाणिअव्वो ।
तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिया पण्णत्ता,
अट्ठजोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं,
सव्वरयणामई, अच्छा,
तीसे णं मणिपेढिआए उवरिं देवच्छंदए,
अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
—जाव—जिणपडिमावण्णओ ।
देवच्छंदगस्स-जाव-धूवकडुच्छुआणं इति ।
मंदरस्स णं पव्वयस्स दाहिणेणं भद्दसालवणं पण्णासं·····
एवं चउद्दिसिं पि मंदरस्स भद्दसालवणे चत्तारि सिद्धाययणा भाणिअव्वा ।

[१७] मेरु पर्वत से पूर्व की ओर भद्रशाल वन को पचास योजन अतिक्रमण करने पर एक विशाल सिद्धायतन कहा गया है । यह पचास योजन लम्बा, पच्चीस योजन चौड़ा, छत्तीस योजन ऊँचा और कई सौ स्तंभों से सन्निविष्ट है । इसका वर्णन कह लेना चाहिए ।

इस सिद्धायतन के तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । ये द्वार आठ योजन ऊंचे, चार योजन चौड़े एवं उतने ही प्रवेश वाले हैं । ये श्वेतवर्ण तथा श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिकाओं वाले हैं—यावत्—वनमालाएँ हैं । यहाँ की भूमि का भी वर्णन कर लेना चाहिए ।

इस (सिद्धायतन) के मध्य भाग में एक विशाल मणिपीठिका है । यह आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वरत्नमय व स्वच्छ है । इस मणिपीठिका पर एक देवच्छंद है । यह आठ योजन लम्बा-चौड़ा, सातिरेक आठ योजन ऊँचा—यावत्—जिनप्रतिमा से युक्त है । देवच्छंदक से लगाकर धूपकडुच्छुक (धूपदानी) पर्यन्त समस्त वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए ।

मेरु पर्वत से दक्षिण की ओर भद्रशाल वन को पचास योजन अतिक्रमण करने पर एक विशाल सिद्धायतन है ।

इस प्रकार मेरु की चारों दिशाओं में भद्रशाल वन में चार सिद्धायतन हैं ।

पुष्करिणीवर्णन

[१८] मंदरस्स णं पव्वयस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता
एत्थ णं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–
'पउमा १, पउमप्पभा २, चेव, कुमुदा ३, कुमुदप्पभा ४ ।'
ताओ णं पुक्खरिणीओ पण्णासं जोअणाइं आयामेणं,
पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं,
दस जोयणाइं उव्वेहेणं, वण्णओ ।
वेइया-वणसंडाणं भाणिअव्वो ।
चउद्दिसिं तोरणा-जाव-तासिं णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे ईसाणस्स देविंदस्स
देवरण्णो पासायवडिंसए पण्णत्ते–
पंच जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
अब्भुग्गयमूसिय.
एवं सपरिवारो पासायवडिंसओ भाणिअव्वो ।
मंदरस्स णं एवं दाहिणपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ उप्पलगुम्मा १ णलिणा २ उप्पला ३ उप्पलुज्जला ४ ।
तं चेव पमाणं । मज्झे पासायवडिंसओ सक्कस्स सपरिवारो ।
तेणं चेव पमाणेणं ।
दाहिण-पच्चत्थिमेण वि पुक्खरिणीओ–
'भिंगा १ भिंगनिभा २ चेव, अंजणा ३ अंजणप्पमा ४ ।'
पासायवडिंसओ, सक्कस्स सीहासणं सपरिवारं ।
उत्तरपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ—
'सिरिकंता १ सिरिचंदा २ सिरिमहिता ३ चेव सिरिणिलया ४ ।'
पासायवडिंसओ, ईसाणस्स सीहासणं सपरिवारंति ।

[१८] मेरु पर्वत से उत्तर-पूर्व की ओर भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर चार नन्दा पुष्करिणियां (वापिकाएं) आती हैं, यथा-पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा, कुमुदप्रभा ।

ये पुष्करिणियां पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी एवं दस योजन गहरी हैं ।

इनका वर्णन समझ लेना चाहिए-यावत्-इनके चारों ओर पद्मवरवेदिकाएं और वनखण्ड हैं। इन की चारों दिशाओं में (चार) तोरण हैं–यावत्–इन पुष्करिणियों के मध्य में ईशान-देवेन्द्र देवराज का एक विशाल उत्तम प्रासाद है—यह पांच सौ योजन ऊंचा, अढ़ाई सौ योजन चौड़ा एवं उन्नत शिखर वाला है । यहां सपरिवार प्रासादावतंसक का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

इसी प्रकार मेरु से दक्षिण-पूर्व में (चार) पुष्करिणियां हैं–उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला और उत्पलोज्ज्वला । इनका प्रमाण भी वही (पूर्वोक्त) है । इनके मध्य में शक्र (देवेन्द्र देवराज) का सपरिवार प्रासादावतंसक है । इसका प्रमाण भी वही है ।

दक्षिण-पश्चिम में भी (चार) पुष्करिणियां हैं—भृंगा, भृगनिभा, अंजना और अंजनप्रभा । (इनके मध्य में) प्रासादावतंसक एवं शक्र का सपरिवार सिंहासन है ।

उत्तर-पूर्व में (चार) पुष्करिणियां हैं—श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा, श्रीमहिता और श्रीनिलया । (इनके मध्य में) प्रासादावतंसक व ईशानेन्द्र का सपरिवार सिंहासन है ।

दिशाहस्तिकूट

[१६][१] प्र०—मंदरे णं भंते ! पव्वए भद्दसालवणे कइ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता,[1] तंजहा—

गाहा—पउमुत्तरे णीलवंते सुहत्थी अंजणागिरी ।
कुमुदे अ पलासे अ वडेंसे रोअणागिरी ।।१।।

[२] प्र०—कहि णं भंते मंदरे पव्वए भद्दसालवणे पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं पुरत्थिमिल्लाए सीआए उत्तरेणं,
एत्थ णं पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते,
पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
पंच गाउअसयाइं उव्वेहेणं,
एवं विक्खंभ-परिक्खेवो भाणियव्वो चुल्लहिमवंतसरिसो ।
पासायाणं य तं चेव,
पउमुत्तरो देवो, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं (१)
एवं णीलवंतविसाहत्थिकूडे,
मंदरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं पुरत्थिमिल्लाए सीआए दक्खिणेणं ।
एअस्स वि नीलवंतो देवो, रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं (२)
एवं सुहत्थिविसाहत्थिकूडे,
मंदरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं दक्खिणिल्लाए सीओआए पुरत्थिमेणं ।
एअस्सवि सुहत्थी देवो, रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं (३)
एवं चेव अंजणागिरिविसाहत्थिकूडे,
मंदरस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं दक्खिणिल्लाए सीओआए पच्चत्थिमेणं ।
एअस्स वि अंजणागिरी देवो, रायहाणी दाहिणपच्चत्थिमेणं (४)
एवं कुमुदे विदिसाहत्थिकूडे
मंदरस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए दक्खिणेणं ।
एअस्स वि कुमुदो देवो, रायहाणी दाहिण-पच्चत्थिमेणं (५)
एवं पलासे विदिसाहत्थिकूडे
मंदरस्स उत्तर-पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए उत्तरेणं,
एअस्स वि पलासो देवो, रायहाणी उत्तर-पच्चत्थिमेणं (६)
एवं वडेंसे विदिसाहत्थिकूडे
मंदरस्स उत्तर-पच्चत्थिमेणं, उत्तरिल्लाए सीआए महाणईए पच्चत्थिमेणं,
एअस्स वि वडेंसो देवो, रायहाणी उत्तर-पच्चत्थिमेणं (७)
एवं रोअणागिरी दिसाहत्थिकूडे
मंदरस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं, उत्तरिल्लाए सीआए पुरत्थिमेणं,
एयस्स वि रोअणागिरी देवो, रायहाणी उत्तर-पुरत्थिमेणं (८)

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०३ पृ. ३६०

[१६][१] प्र०—भगवन् ! मेरु पर्वत के भद्रशालवन में कितने दिक्हस्तिकूट (हाथी के आकार के कूट) हैं ?

उ०—गौतम ! आठ दिक्हस्तिकूट हैं, यथा—

गाथार्थ—(१) पद्मोत्तर (२) नीलवन्त (३) सुहस्ती (४) अंजनगिरि (५) कुमुद (६) पलास (७) अवतंसक (८) रोचनगिरि।

---

१ ठा० ८ सूत्र ६४२ पृ० ४१३

[२] प्र०—भगवन् ! मेरु पर्वत के भद्रशालवन में पद्मोत्तर नामक दिक्हस्तिकूट कहाँ है ?

उ०—मेरु पर्वत के उत्तर-पूर्व में एवं पूर्वी शीता (महानदी) के उत्तर में पद्मोत्तर नामक दिक्हस्तिकूट है। यह पांच सौ योजन ऊँचा एवं पांच सौ योजन गहरा है। इसकी चौड़ाई एवं परिधि चुल्ल-हिमवंत के समान है। प्रासाद आदि भी वैसे ही हैं। यहाँ पद्मोत्तर देव है। इसकी राजधानी उत्तर-पूर्व में हैं। इसी प्रकार नीलवन्त दिक्हस्तिकूट मेरु के दक्षिण-पूर्व में तथा पूर्वी शीता नदी के दक्षिण में है। इसका देव नीलवन्त है और राजधानी दक्षिण-पूर्व में है।

इसी प्रकार सुहस्ती दिक्हस्तिकूट मेरु के दक्षिण-पूर्व में तथा दक्षिणी शीतोदा नदी के पूर्व में है। यहां सुहस्ती देव है। राजधानी दक्षिण-पूर्व में है।

इसी प्रकार अंजनगिरि दिक्हस्तिकूट मेरु के दक्षिण-पश्चिम में तथा दक्षिणी शीतोदा के पश्चिम में है। यहाँ अंजनगिरि देव है व राजधानी दक्षिण-पश्चिम में है।

इसी प्रकार कुमुद विदिक्हस्तिकूट मेरु के दक्षिण-पश्चिम में तथा पश्चिमी शीतोदा नदी के उत्तर में है। यहाँ कुमुद देव है। राजधानी दक्षिण-पश्चिम में है।

इसी प्रकार पलास विदिक्हस्तिकूट मेरु के उत्तर-पश्चिम में तथा शीतोदा नदी के उत्तर में है। यहाँ पलास देव है। राजधानी उत्तर-पश्चिम में है।

इसी प्रकार अवतंसक विदिक्हस्तिकूट मेरु के उत्तर-पश्चिम में तथा शीता महानदी के में है। यहाँ अवतंसक देव है और उत्तर-पश्चिम में राजधानी है।

इसी प्रकार रोचनगिरि दिक्हस्तिकूट मेरु के उत्तर-पूर्व में तथा शीता महानदी के पूर्व में है। यहाँ रोचनगिरि देव है। राजधानी उत्तर-पूर्व में है।*

नन्दनवन

[२०][१] प्र०—कहि णं भंते ! मंदरे पव्वए णंदणवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! भद्दसालवणस्स बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ पंचजोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं मंदरे पव्वए णंदणवणे णामं वणे पण्णत्ते[1]।

पंचजोयणसयाइं चक्कवालविक्खंभेणं वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए,

जे णं मंदरं पव्वयं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ त्ति।

णवजोयणसयाइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिविक्खंभो,

एगत्तीसं जोयणसहस्साइं चत्तारि अ अउणासीए जोअणसए किंचि विसेसाहिए बाहिं गिरिपरिरएणं,

अट्ठ जोअणसहस्साइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिविक्खंभो,

अट्ठावीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि य सोलसुत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिपरिरएणं।

सेणं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

वण्णओ-जाव-देवा आसयंति।

मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं

---

* मूल पाठ में, आठ में से पांच को दिक्हस्तिकूट और तीन को विदिक्हस्तिकूट कहा गया है, जबकि विदिक्हस्तिकूट चार होने चाहिए। संभवतः प्रथमकूट पद्मोत्तर भी विदिक्हस्तिकूट है, जैसा कि टीकाकार के इस उल्लेख से ज्ञात होता है—'पद्मोत्तरऽत्र देवः, तस्य राजधानी उत्तरपूर्वस्यां उक्तविदिग्वर्त्तिकूटाधिपत्वादस्येति।'

१. नंदणवणस्स णं हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं पंचासीइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम० ८५, सूत्र ४.

—नंदणवणस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ पंडुयवणस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम० ९८ सूत्र १.

—नंदणवणस्स णं पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं नवनउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम० ९९ सूत्र २.

एवं चउद्दिसिं चत्तारि सिद्धाययणा,
विदिसासु पुक्खरिणीओ
तं चेव पमाणं सिद्धाययणाणं पुक्खरिणीणं च ।
पासायवडिंसगा तह चेव सक्केसाणाणं, तेण चेव पमाणेणं ।

[२०][१] प्र०—भगवन् ! मेरु पर्वत पर नन्दन नामक वन कहां है ?

उ०—गौतम ! भद्रशाल वन के अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग से पांच सौ योजन ऊँचा जाने पर मेरु पर्वत पर नन्दन नामक वन आता है। यह पाँच सौ योजन चक्राकार विस्तार वाला, वर्तुल एवं वलयाकार है। इसने मेरु पर्वत को सभी ओर से घेरा हुआ है। बाहर का गिरिविष्कंभ (मेरु पर्वत की चौड़ाई) ९९५४$\frac{६}{११}$ योजन है। बाहर की गिरिपरिधि ३१४७९ योजन से किंचित् अधिक है। अन्दर का गिरिविष्कंभ ८९५४$\frac{६}{११}$ योजन है अन्दर की गिरिपरिधि २८३१६$\frac{५}{११}$ योजन है। इस (नन्दनवन) के चारों ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है। यहाँ इनका वर्णन समझ लेना चाहिए-यावत्-यहाँ देव बैठते है। मेरु पर्वत के पूर्व में एक विशाल सिद्धायतन है, इसी प्रकार चारों दिशाओं में चार सिद्धायतन है। विदिशाओं में पुष्करिणियां हैं। सिद्धायतनों, पुष्करिणियों एवं शक्र-ईशान के प्रासादावतंसकों का प्रमाण पूर्ववत् ही है ।

नन्दनवन के कूट

[२१][१] प्र०—णंदणवणे णं भंते ! कइ कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णव[1] कूडा पण्णत्ता, तंजहा—णंदणवणकूडे १, मंदरकूडे २, णिसहकूडे ३, हिमवयकूडे ४, रययकूडे ५, रुअगकूडे ६, सागरचित्तकूडे ७, वइरकूडे ८, बलकूडे[2] ९ ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! णंदणवणे णंदणवणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लसिद्धाययणस्स उत्तरेणं,
उत्तर-पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसयस्स दक्खिणेणं,
एत्थ णं णंदणवणे णंदणवणे णामं कूडे पण्णत्ते ।
पंचसइआ कूडा पुव्ववण्णिआ भाणिअव्वा ।
देवी मेहंकरा,
रायहाणी विदिसाए त्ति १ ।
एआहिं चेव पुव्वाभिलावेणं णेअव्वा
इमे कूडा इमाहिं दिसाहिं
पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं,
दाहिण—पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं,
मंदरे कूडे, मेहवई देवी, रायहाणी पुव्वेणं २ ।
दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं,
दाहिण-पुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं,
णिसहे कूडे, सुमेहा देवी, रायहाणी दक्खिणेणं ३ ।
दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं,
दक्खिण-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं,
हेमवए कूडे, हेममालिनी देवी, रायहाणी दक्खिणेणं ४ ।
एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे पण्णत्ते ।

---

१. ठा० ९, सूत्र ६८९ प्र० ४३० ।
२. सम. ११३, सूत्र ६

पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दक्खिणेणं,
दाहिण-पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं,
रयए कूडे, सुवच्छा देवी, रायहाणी पच्चत्थिमेणं ५ ।
पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं
उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं,
रुअगे कूडे, वच्छमित्ता देवी, रायहाणी पच्चत्थिमेणं ६ ।
उत्तरिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं
उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं
सागरचित्ते कूडे, वइरसेना देवी, रायहाणी उत्तरेणं ७ ।
उत्तरिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं
उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं
वइरकूडे, बलाहया देवी, रायहाणी उत्तरेणंति ८ ।

[३] प्र०—कहि णं भंते ! णंदणवणे बलकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?
उ०—गोअमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं
एत्थ णं णंदणवणे बलकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।
एवं जं चेव हरिस्सहकूडस्स पमाणं रायहाणी अ तं चेव बलकूडस्स वि ।
णवरं बलो देवो, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणंति ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र१०४ पृ. १६६–७

[२१][१] प्र०—भगवन् ! नन्दनवन में कितने कूट हैं ?
उ०—गौतम ! नौ कूट हैं, यथा—(१) नन्दनवनकूट (२) मन्दरकूट (३) निषधकूट (४) हिमवतकूट (५) रजतकूट (६) रुचककूट (७) सागरचित्तकूट (८) वज्रकूट और (९) बलकूट ।

[२] प्र०—भगवन् ! नन्दनवन में नन्दनवनकूट कहाँ है ?
उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत के पूर्वीय सिद्धायतन के उत्तर में तथा उत्तरपूर्वीय प्रासादावतंसक के दक्षिण में नन्दनवन नामक कूट है । यहां पांच सौ कूट पूर्ववर्णित (विदिक्-हस्तिकूट प्रकरण में कथित) कह लेने चाहिए । यहां की देवी मेघंकरा है । राजधानी विदिशा (उत्तर-पूर्व) में है । इस पूर्वोक्त कथन के साथ आगे कहे जाने वाले कूट इन आगे कही जाने वाली दिशाओं में समझ लेना चाहिए ।

पूर्वीय भवन के दक्षिण में तथा दक्षिणपूर्वीय प्रासादावतंसक के उत्तर में मंदर कूट है । यहां की देवी मेघवती है । इसकी राजधानी पूर्व में है ।

दक्षिणी भवन के पूर्व में तथा दक्षिण-पूर्व के प्रासादावतंसक के पश्चिम में निषधकूट है । देवी सुमेधा है और राजधानी दक्षिण में है ।

दक्षिणी भवन के पश्चिम में तथा दक्षिण-पश्चिम के प्रासादावतंसक के पूर्व में हैमवतकूट है । देवी हेममालिनी है । उसकी राजधानी दक्षिण में है ।

पश्चिम के भवन के दक्षिण में तथा दक्षिण-पश्चिम के प्रासादावतंसक के उत्तर में रजतकूट है । सुवत्सा देवी है । राजधानी पश्चिम में है ।

पश्चिमी भवन के उत्तर में तथा उत्तर-पश्चिम के प्रासादावतंसक के दक्षिण में रुचककूट है । वत्स-मित्रा देवी है । राजधानी पश्चिम में है ।

उत्तरीय भवन के पश्चिम में तथा उत्तर-पश्चिम के प्रासादावतंसक के पूर्व में सागरचित्तकूट है । वज्रसेना देवी है । राजधानी उत्तर में है ।

उत्तरीय भवन के पूर्व में तथा उत्तर-पूर्वीय प्रासादावतंसक के पश्चिम में वज्रकूट है । बलाहका देवी है । राजधानी उत्तर में है ।

[३] प्र०—भगवन् ! नन्दनवन में बलकूट नामक कूट कहां है ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत से उत्तर-पूर्व में नन्दनवन में बलकूट नामक कूट है।
हरिस्सहकूट का जो प्रमाण और राजधानी है वही बलकूट का प्रमाण और राजधानी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि बलकूट में देव बल नामक है और राजधानी उत्तर-पूर्व में है।

सौमनस वन

[२२][१] प्र०—कहि णं भंते ! मंदरए पव्वए सोमणसवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णंदणवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठावट्ठिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता
एत्थ णं मंदरे पव्वए सोमणसवणे णामं वणे पण्णत्ते।
पंच जोयणसयाइं चक्कवालविक्खंभेण
वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए
जे णं मंदरं पव्वयं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ।
चत्तारि जोयणसहस्साइं दुण्णि य बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स
बाहिं गिरिविक्खंभेणं।
तेरस जोअणसहस्साइं पंच य एक्कारे जोअणसए छच्च इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिपरिरएणं।
तिण्णि जोअणसहस्साइं दुण्णि अ बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोयणस्स अंतो
गिरिविक्खंभेणं।
दस जोअणसहस्साइं तिण्णि य अउणापण्णे जोअणसए तिण्णि अ इक्कारसभाए जोअणस्स
अंतो गिरिपरिरएणंति।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।
वण्णओ। किण्हे किण्होभासे—जाव—आसयंति।
एवं कूडवज्जा सच्चेव णंदणवणवत्तव्वया भाणियव्वा।
तं चेव ओगाहिऊण—जाव—पासायवडेंसगा सक्कीसाणाणंति।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०५ पृ. ३६९

[२२][१] प्र०—भगवन्! मेरु पर्वत पर सौमनस वन नामक वन कहां है ?

उ०—गौतम! नन्दनवन के अति सम एवं रमणीय भूमिभाग से ६२५०० योजन ऊपर जाने पर मेरु पर्वत पर सौमनस नामक वन आता है। यह ५०० योजन चक्राकार चौड़ा, वर्तुल, वलयाकार एवं मेरु पर्वत को चारों ओर से घेरे हुए है। इसके बाहर का गिरिविष्कंभ ४२७२$\frac{६}{११}$ योजन है। गिरिपरिधि १३५११$\frac{६}{११}$ योजन है। अंदर का गिरि-विष्कंभ ३२७२$\frac{६}{११}$ योजन है। अंदर की गिरि-परिधि १०३४९$\frac{३}{११}$ योजन है। सौमनस वन के सब ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है। यहां उनका वर्णन समझ लेना चाहिए। यह कृष्ण और कृष्णावभास है—यावत्—(यहां देव क्रीड़ा करते और) बैठते हैं।

इस प्रकार कूटों को छोड़कर शेष वर्णन नन्दनवन के समान कर लेना चाहिए। उतनी ही दूरी पर यावत्—शक्र-ईशानेन्द्र के प्रासादावतंसक हैं।

पंडकवन

[२३][१] प्र०—कहि णं भंते ! मंदरपव्वए पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सोमणसवणस्स बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ छत्तीसं जोअणसहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता
एत्थ णं मंदरे पव्वए सिहरतले पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते ।
चत्तारि चउणउए जोयणसए चक्कवालविक्खंभेणं
वट्टे वलयाकारसंठिए ।
जे णं मंदरचूलिअं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ ।
तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं ।
से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेण य वणसंडेणं—जाव—किण्हे, देवा आसयंति ।
पंडगवणस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं मंदरचूलिआ णामं चूलिआ पण्णत्ता,
चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1]
मूले बारस जोअणाइं विक्खंभेणं,[2]
मज्झे अट्ठ जोअणाइं विक्खंभेणं,[3]
उप्पिं चत्तारि जोअणाइं विक्खंभेणं ।
मूले साइरेगाइं सत्तत्तीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं,
मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं,
उप्पिं साइरेगाइं बारस जोयणाइं परिक्खेवेणं ।
मूले वित्थिन्ना, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ ।
गोपुच्छसंठाणसंठिआ, सव्ववेरुलिआमई, अच्छा ।
सा णं एगाए पउमवरवेइयाए—जाव—संपरिक्खित्ता इति ।
उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे—जाव—सिद्धाययणं ।
बहुमज्झदेसभाए कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं ।
अणेगखंभसय—जाव—धूवकडुच्छुगा ।
मंदरचूलिआए णं पुरत्थिमेणं पंडगवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता
एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते ।
एवं जच्चेव सोमणसे पुव्ववण्णिओ गमो
भवणाणं पुक्खरिणीणं पासायवडेंसगाण य सो चेव णेअव्वो
—जाव—सक्कीसाणवडेंसगा तेण चेव परिमाणेणं ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०६ पृ. ३७०

[२३][१] प्र०—भगवन् ! मेरु पर्वत पर पंडक नामक वन कहाँ है ?

उ०—गौतम ! सौमनस वन के अति सम एवं रमणीय भूमिभाग से छत्तीस हजार योजन ऊपर जाने पर मेरुपर्वत के शिखरतल पर पंडक नामक वन है । यह ४९४ योजन चक्राकार चौड़ा, वर्तुल, वलयाकार एवं मेरुचूलिका को सभी ओर से घेरे हुए है । इसकी परिधि ३१६२ योजन से कुछ अधिक है । यह एक पद्मवरवेदिका से और एक वनखण्ड से (सब ओर घिरा है)—यावत्—कृष्ण है । देव यहां बैठते हैं ।

१—सम. ४०, सूत्र २
२— „ १२, सूत्र ६
३—ठा. ८, उ. ३ सूत्र ६४० पृ. ४१३

पंडकवन के मध्य में मंदरचूलिका नामक चूलिका है। यह चालीस योजन ऊँची, मूल में बारह योजन चौड़ी, मध्य में आठ योजन चौड़ी, ऊपर चार योजन चौड़ी, मूल में साधिक सैंतीस योजन की परिधि वाली, मध्य में साधिक पच्चीस योजन की परिधि वाली, ऊपर साधिक बारह योजन की परिधि वाली, मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर पतली, गोपुच्छाकार, सर्ववैडूर्यमय एवं स्वच्छ है। यह एक पद्मवरवेदिका से—यावत्—घिरी है। इस पर अति सम और रमणीय भूमि-भाग है—यावत्—मध्य में सिद्धायतन है। यह एक कोस लंबा, आधा कोस चौड़ा, कुछ कम एक कोस ऊँचा, सैकड़ों स्तम्भों (से सन्निविष्ट)—यावत्—धूपदानियों से युक्त है।

मंदरचूलिका से पूर्व में पंडकवन को पचास योजन पार करने पर एक विशाल भवन आता है। इस प्रकार जो वर्णन सौमनसवन के प्रकरण में किया गया है, वह सब यहां के भवनों, पुष्करणियों एवं प्रासादावतंसकों के विषय में समझ लेना चाहिए—यावत्—शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के अवतंसक उसी परिमाण के हैं।

अभिषेक शिलाएं

पाण्डुशिला

[२४][१] प्र०—पण्डकवणे णं भंते ! कइ अभिसेअसिलाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि अभिसेअसिलाओ पण्णत्ताओ[1], तंजहा—
पंडुसिला, पंडुकंबलसिला, रत्तसिला, रत्तकंबलसिलेत्ति ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! पंडगवणे पंडुसिला णामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरचूलिआए पुरत्थिमेणं पंडगवणपुरत्थिमपेरंते
एत्थ णं पंडगवणे पंडुसिला णामं सिला पण्णत्ता ।
उत्तर-दाहिणायया, पाईण-पडीणविच्छ(त्थि)न्ना,
अद्धचंदसंठाणसंठिया ।
पंचजोअणसयाइं आयामेणं,
अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं,
सव्वकणगमई अच्छा ।
वेइआ-वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता वण्णओ ।
तीसे णं पंडुसिलाए चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता-जाव-तोरणा । वण्णओ ।
तीसे णं पंडुसिलाए उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-देवा आसयंति ।
तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए उत्तर-दाहिणेणं
एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता,
पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,
अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं ।
सीहासणवण्णओ भाणिअव्वो विजयदूसवज्जो त्ति ।
तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे

---

१. ठा० ४ उ० २ सूत्र० ३०२ पृ० २१२

तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ कच्छाइया तित्थयरा अभिसिच्चंति ।
तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे
तत्थ णं बहूहिं भवण-जाव-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ वच्छाईया तित्थयरा अभिसिच्चंति ।

[२४][१] प्र०—भगवन् ! पंडकवन में अभिषेक-शिलाएं कितनी हैं ?

उ०—गौतम ! चार अभिषेक-शिलाएं हैं, यथा—
(१) पाण्डुशिला (२) पाण्डुकंबलशिला (३) रक्तशिला (४) रक्तकंबलशिला ।

[२] प्र०—भगवन् ! पंडकवन में पाण्डुशिला कहाँ है ?

उ०—गौतम ! मंदरचूला से पूर्व में और पंडकवन के पूर्वान्त में पंडकवनस्थित पांडुशिला है । यह उत्तर-दक्षिण में लम्बी, पूर्व-पश्चिम में चौड़ी, अर्द्धचन्द्राकार, पाँच सौ योजन लम्बी, अढ़ाई सौ योजन चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वकनकमयी, स्वच्छ एवं वेदिका तथा वनखण्ड से सब ओर से घिरी हुई है ।

इस पांडुशिला की चारों दिशाओं में चार प्रतिरूप त्रिसोपान (पंक्तियाँ) हैं,—यावत्-तोरण पर्यन्त सब वर्णन समझ लेना चाहिए ।
इस पाण्डुशिला पर अतिशय सम और रमणीय भूभाग है जहाँ देव बैठते हैं, आदि ।
इस सम एवं रमणीय भूभाग के बीच में उत्तर-दक्षिण की ओर दो सिंहासन हैं । ये पाँच सौ धनुष लम्बे-चौड़े और अढ़ाई सौ धनुष मोटे हैं । यहाँ सिंहासन का वर्णन कह लेना चाहिए किन्तु विजयदूष्य का कथन नहीं करना चाहिए ।

इनमें से जो उत्तर की ओर का सिंहासन है वहां अनेक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव-देवियाँ कच्छ आदि (आठ विजयों) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।
इनमें जो दक्षिण की ओर का सिंहासन है वहाँ भवनपति-यावत्-वैमानिक देव वत्स आदि (आठ विजयों) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

पाण्डुकंबलशिला

[२५][१] प्र०—कहि णं भंते ! पंडगवणे पंडुकंबलासिलाणामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! मंदरचूलिआए दक्खिणेणं, पंडगवणदाहिणपेरंते
एत्थ णं पंडगवणे पंडुकंबलसिलाणामं सिला पण्णत्ता ।
पाईण-पडीणायया, उत्तर-दाहिणविच्छिन्ना ।
एवं तं चेव पमाणं वत्तव्वया य भाणिअव्वा—जाव—तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं महं एगे सीहासणे पण्णत्ते ।
तं चेव सीहासणप्पमाणं ।
तत्थ णं बहूहिं भवण—जाव—भारहगा तित्थयरा अहिसिच्चंति ।

[२५][१] प्र०—भगवन् ! पंडकवन में पाण्डुकम्बल नामक शिला कहां है ?

उ०—गौतम ! मेरु पर्वत के दक्षिण में एवं पण्डक वन के दक्षिणी चरमान्त में पंडकवनस्थित पाण्डुकंबल नामक शिला है । यह पूर्व-पश्चिम में लम्बी और उत्तर-दक्षिण में चौड़ी है । इसका सम्पूर्ण प्रमाण पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—इसके समतल रमणीय भूमिभाग के बीचों बीच एक विशाल सिंहासन है । इस सिंहासन का प्रमाण वही (पूर्वोक्त) है । यहां अनेक भवनपति—यावत्—भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

रक्तशिला

[२६][१] प्र०—कहि णं भंते ! पंडगवणे रत्तसिलाणामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! मंदरचूलिआए पच्चत्थिमेणं पंडगवणपच्चत्थिमपेरंते
एत्थ णं पंडगवणे रत्तसिलाणामं सिला पण्णत्ता ।
उत्तर-दाहिणायया, पाईण-पडीणविच्छिन्ना—जाव—
तं चेव पमाणं, सव्वतवणिज्जमई, अच्छा,
उत्तर-दाहिणेणं एत्थ ण दुवे सीहासणा पण्णत्ता ।
तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे
तत्थ णं बहूहिं भवण—जाव— पम्हाइआ तित्थयरा अहिसिच्चंति ।
तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे
तत्थ णं बहूहिं भवण— जाव—वप्पाइआ तित्थयरा अहिसिच्चंति ।

[२६][१] प्र०—भगवन् ! पंडकवन मे रक्तशिला कहां है ?

उ०—गौतम ! मेरु पर्वत के पश्चिम मे एव पंडकवन के पश्चिमी चरमान्त में पंडकवनस्थित रक्तशिला नामक शिला है । यह उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बी और पूर्व-पश्चिम में चौड़ी है ।—यावत्—इसका प्रमाण भी वही है । यह सर्वात्मना तपनीय स्वर्णमयी और स्वच्छ है ।
इसके उत्तर-दक्षिण मे दो सिहासन है । इनमें से जो दक्षिण का सिहासन है वहां अनेक भवनपति आदि पद्मादि (आठ विजयो) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते है । इनमें जो उत्तर का सिहासन है वहां अनेक भवनपति आदि वप्र आदि (आठ विजयों) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

रक्तकंबलशिला

[२७][१] प्र०—कहि णं भंते ! पंडगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! मंदरचूलिआए उत्तरेणं, पंडगवणउत्तरचरिमंते एत्थ णं पंडगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता ।
पाईण-पडीणायया, उदीण-दाहिणविच्छिन्ना,
सव्वतवणिज्जमई, अच्छा—जाव—
मज्झदेसभाए सीहासणं ।
तत्थ णं बहूहिं भवणवइ—जाव—देवेहिं देवीहि य एरावयगा तित्थयरा अहिसिच्चंति ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०७ पृ. ३७२

[२७][१] प्र०—भगवन् ! पंडकवन में रक्तकंबल नामक शिला कहां है ?

उ०—गौतम ! मेरु पर्वत के उत्तर में एवं पंडकवन के उत्तरीय चरमान्त में पंडकवन स्थित रक्तकंबल-शिला नामक शिला है । यह पूर्व-पश्चिम में लम्बी, उत्तर-दक्षिण में चौड़ी, सर्वसुवर्णमय एवं स्वच्छ है,—यावत्—इसके मध्य में सिहासन है । यहां अनेक भवनपति आदि देव-देवियां ऐरावत (वर्ष) के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

मंदर पर्वत के काण्ड

[२८][१] प्र०—मंदरस्स णं भंते ! पव्वयस्स कइ कंडा पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! तओ कंडा पण्णत्ता, तंजहा—
हिट्ठिल्ले कंडे, मज्झिल्ले कंडे, उवरिल्ले कंडे ।

[२] प्र०—मंदरस्स णं भंते ! पढवयस्स हिट्ठिल्ले कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?
उ०—गोअमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—पुढवी १, उवले २, वइरे ३, सक्करा ४।

[३] प्र०—मज्झिमिल्ले णं भंते ! कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?
उ०—गोअमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—
अंके १, फलिहे २, जायरूवे ३, रयए ४।

[४] प्र०—उवरिल्ले कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?
उ०—गोअमा ! एगागारे पण्णत्ते—सव्वजंबूणयामए।

[५] प्र०—मंदरस्स णं भंते ! पढवयस्स हेट्ठिल्ले कंडे केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
उ०—गोअमा ! एगं जोअणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते[1]।

[६] प्र०—मज्झिमिल्ले कंडे पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! तेवट्ठि जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते[2]।

[७] प्र०—उवरिल्ले पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! छत्तीसं जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते[3]।
एवामेव सपुव्वावरेणं मंदरे पढवए [4]एगं जोयणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०८

[२८][१] प्र०—भगवन् ! मेरुपर्वत पर कितने काण्ड हैं ?
उ०—गौतम ! तीन काण्ड हैं, यथा-(१) निचला काण्ड (२) मंझला काण्ड और (२) ऊपरला काण्ड।

[२] प्र०—भगवन् ! मेरुपर्वत का निचला काण्ड कितने प्रकार का है ?
उ०—गौतम ! चार प्रकार का है—पृथ्वी, उपल (पाषाण), वज्र और शर्करा।

[३] प्र०—भगवन् ! मंझला काण्ड कितने प्रकार का है ?
उ०—गौतम ! चार प्रकार का है, यथा-अंक, स्फटिक, जातरूप (स्वर्ण) और रजत।

[४] प्र०—भगवन् ! ऊपरला काण्ड कितने प्रकार का है ?
उ०—गौतम ! एक ही प्रकार का है अर्थात् पूर्णरूपेण जाम्बूनदमय है।

[५] प्र०—भगवन् ! मेरुपर्वत का अधःकाण्ड कितना ऊंचा है ?
उ०—गौतम ! एक हजार योजन ऊंचा है।

[६] प्र०—मध्यकाण्ड की ऊंचाई ?
उ०—गौतम ! त्रेसठ हजार योजन है।

[७] प्र०—ऊपरले काण्ड की ऊंचाई ?
उ०—गौतम ! छत्तीस हजार योजन है।
इस प्रकार सब मिलाकर मेरुपर्वत की ऊंचाई एक लाख योजन की है।

---

१. ठा. १०, सूत्र ७१६ पृ० ४५३
२. मंदरस्स णं पढवयस्स पढमे कंडे एगसट्ठिजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। —सम० ६१ सूत्र २
३. अत्थस्स णं पढवयरण्णो बितिए कंडे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते। सम० ३८ सूत्र ३.
४. ठा. १०, सूत्र ७१६ पृ० ४५३

मंदरपर्वत के नाम

[२९][१] प्र०—मंदरस्स णं भंते पव्वयस्स कति णामधेज्जा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सोलस णामधेज्जा पण्णत्ता, [1] तंजहा-गाहाओ—

(१) मंदर (२) मेरु (३) मणोरम (४) सुदंसण (५) सयंपभे य (६) गिरिराया ।
(७) रयणोच्चय (८) सिलोच्चय (९) मज्झे लोगस्स (१०) णाभी य ॥१॥
(११) अच्छे अ (१२) सूरियावत्ते, (१३) सूरिआवरणेति आ ।
(१४) उत्तमे अ (१५) दिसादी अ (१६) वडेंसेति अ सोलसे ॥२॥

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—मंदरे पव्वए २ ?

उ०—गोअमा ! मंदरे पव्वए मंदरे णामं देवे परिवसइ महिड्ढिए—जाव—पलिओवमट्ठिइए ।
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ—मंदरे पव्वए २ । अदुत्तरं तं चेवत्ति ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०९ पृ. ३७५

[२९][१] प्र०—भगवन् ! मेरुपर्वत के कितने नाम है ?

उ०—गौतम ! सोलह नाम है, यथा—

(१) मन्दर (२) मेरु (३) मनोरम (४) सुदर्शन (५) स्वयंप्रभ (६) गिरिराज (७) रत्नोच्चय (८) शिलोच्चय (९) लोकमध्य (१०) लोकनाभि (११) अच्छ (१२) सूर्यावर्त्त (१३) सूर्यावरण (१४) उत्तम (१५) दिशादि (१६) अवतंसक ।

[२] प्र०—भगवन् ! इसे मंदर पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत पर मन्दर नामक देव निवास करता है जो महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला है । इस कारण गौतम ! मन्दर पर्वत, मन्दर पर्वत कहलाता है । अथवा वही पूर्वोक्त, अर्थात् यह नाम शाश्वत है, इत्यादि ।

कच्छविजय

[३०][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते [2] ?

उ०—गोअमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं,
चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते ।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे,
पलिअंकसंठाणसंठिए
गंगा-सिंधूहि महाणईहिं वेयड्ढेणं य पव्वएणं छब्भागपविभत्ते,
सोलस जोयणसहस्साइं पंच य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं,
दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणसए किंचिविसेसूणे विक्खंभेणंति ।

१—सम. १६, सूत्र ३.
२—(क) सम. ३४, सूत्र २
(ख) ठा. ८ सूत्र ६३७ पृ० ४१३

कच्छस्स णं विजयस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते,
जे णं कच्छं विजयं दुहा विभयमाणे-विभयमाणे चिट्ठइ, तंजहा—
दाहिणड्ढकच्छं च उत्तरड्ढकच्छं चेति ।

[३०][१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष में कच्छ नामक विजय कहाँ है ?

उ०—गौतम! सीता महानदी से उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में एवं माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में कच्छ नामक विजय है। यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में चौड़ा एवं पलंग के आकार का है। गंगा और सिन्धु महानदियों तथा वैताढ्य पर्वत से यह छह भागों में विभक्त है। इसकी लम्बाई १६५९२ योजन $\frac{3}{19}$ और चौड़ाई २२१३ योजन से कुछ कम है।

कच्छ विजय के मध्य में वैताढ्य नामक पर्वत है जो इसे दो भागों में विभक्त करता है, यथा—दक्षिणार्धकच्छ और उत्तरार्धकच्छ।

दक्षिणार्ध कच्छ

[३१][१] प्र०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणड्ढकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा! वेयड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं,
सीआए महाणईए उत्तरेणं,
चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे,
दाहिणड्ढकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिन्ने,
अट्ठ जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगतत्तरे जोअणसए एक्कं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स आयामेणं,
दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणसए किंचिविसेसूणे विक्खंभेणं,
पलिअंकसंठाणसंठिए ।

[२] प्र०—दाहिणड्ढकच्छस्स णं भंते! विजयस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा! बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तंजहा—जाव—कत्तिमेहिं चेव अकत्तिमेहिं चेव ।

[३] प्र०—दाहिणड्ढकच्छे णं भंते! विजए मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे—जाव—सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ।

[३१][१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष में दक्षिणार्ध कच्छ नामक विजय कहाँ है ?

उ०—गौतम! वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में, सीता महानदी से उत्तर में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में एवं माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष में दक्षिणार्ध कच्छ नामक विजय है। यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है। ८२७१ $\frac{3}{19}$ योजन लम्बा है, २२१३ योजन से कुछ कम चौड़ा है और पलंग के आकार का है।

[२] प्र०—भगवन्! दक्षिणार्धकच्छ विजय का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम! यह अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग वाला है—यावत् कृत्रिम तथा अकृत्रिम (मणि-तृणों) से (सुशोभित है)।

[३] प्र०—भगवन्! दक्षिणार्ध कच्छ विजय के मनुष्यों का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम! यहाँ के मनुष्य छह प्रकार के संहनन वाले—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करने वाले हैं।

कच्छविजय का वैताढ्य पर्वत

[३२][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे विजए वेअड्ढे णामं पव्वए ?

उ०—गोअमा ! दाहिणड्ढकच्छविजयस्स उत्तरेणं,
उत्तरड्ढकच्छस्स दाहिणेणं,
चित्तकूडस्स पच्चत्थिमेणं,
मालवंतस्सवक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं कच्छे विजए वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, तंजहा—
पाडीण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे,
वुहा वक्खारपव्वए पुट्ठे,
पुरत्थिमिल्लाए कोडिए—जाव—दोहिवि पुट्ठे,
भरहवेअड्ढसरिसए ।
णवरं दो बाहाओ जीवा, धणुपट्ठं च ण कायव्वं ।
विजयविक्खंभसरिसे आयामेणं,
विक्खंभो उच्चत्तं उव्वेहो तहेव च ।
विज्जाहरआभिओगसेढीओ तहेव ।
णवरं पणपण्णं—पणपण्णं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता ।
आभिओगसेढीए उत्तरिल्लाओ सेढीओ ।
सीआए ईसाणस्स, सेसाओ सक्कस्स त्ति ।
गाहा—
कूडा सिद्धे १, कच्छे २, खंडग ३, माणी ४, वेअड्ढ ५, पुण्ण ६, तिमिसगुहा ७ ।
कच्छे ८, वेसमणे ९, वेअड्ढे होंति [1]कूडाइं ॥१॥

[३२][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष के कच्छ विजय में वैताढ्य नामक पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! दक्षिणार्ध कच्छ विजय के उत्तर में, उत्तरार्ध कच्छ (विजय) के दक्षिण में, चित्रकूट के पश्चिम में एवं माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में कच्छ विजयस्थित वैताढ्य नामक पर्वत है । यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर-दक्षिण में चौड़ा एवं दो ओर से वक्षस्कार पर्वत से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर से पूर्वी वक्षस्कार एवं पश्चिम की ओर से पश्चिमी वक्षस्कार से स्पृष्ट है । यह भरत-वर्ष के वैताढ्य के समान है । अन्तर इतना है कि इसके दो भुजाएं व जीवा है किन्तु धनुपृष्ठ नहीं है । यह विजय के समान ही लम्बा, चौड़ा, ऊंचा और गहरा है । इस पर भी उसी प्रकार विद्याधरों एवं आभियोगिक देवों की श्रेणियां हैं । विशेषता यह है कि यहां विद्याधरों के पचपन-पचपन नगरावास हैं । आभियोगिक श्रेणियों में से उत्तर की श्रेणियों का स्वामी ईशानेन्द्र तथा शेष का (स्वामी) शक्रेन्द्र है । (इस पर) कूट (इस प्रकार) हैं—

गाथार्थ—
(१) सिद्धायतन (२) दक्षिणार्धकच्छ (३) खण्ड (प्रपात) (४) माणि (भद्र) (५) वैताढ्य (६) पूर्ण (भद्र) (७) तमिस्रगुफा (८) (उत्तरार्ध) कच्छ और (९) वैश्रमण । वैताढ्य पर ये कूट हैं ।

१—ठा. ९, सूत्र ६८९ पृ. ४३०

उत्तरार्धकच्छ

[३३][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरड्ढकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेण,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,
मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे—जाव—सिज्झंति ।
तहेव णेअव्वं सव्वं ।

[३३][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित महाविदेहवर्ष में उत्तरार्धकच्छ नामक विजय कहां है ?

उ०—गौतम ! वैताढ्य पर्वत से उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में एवं चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष में उत्तरार्धकच्छ नामक विजय है । —यावत्—(वहां के कोई—कोई मनुष्य) सिद्ध होते हैं । इस प्रकार सब कथन पूर्ववत् जान लेना चाहिए ।

उत्तरार्ध कच्छ का सिन्धु कूट

[३४][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरड्ढकच्छे विजए सिंधुकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
उसभकूडस्स पच्चत्थिमेणं,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले नितंबे,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरड्ढकच्छविजए सिंधुकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ।
सट्ठिं जोअणाणि आयाम-विक्खंभेणं—जाव—भवणं अट्ठो । रायहाणी अ णेअव्वा ।
भरहसिंधुकुंडसरिसं सव्वं णेअव्वं—जाव—
तस्स णं सिंधुकुंडस्स दाहिणिल्लेण तोरणेणं सिंधुमहाणई पवूढा समाणी
उत्तरड्ढकच्छविजयं एज्जमाणी-एज्जमाणी,
सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी-आपूरेमाणी,
अहे तिमिसगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालयित्ता दाहिणकच्छविजयं एज्जमाणी-एज्जमाणी,
चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीयं महाणइं समप्पेइ ।
सिंधुमहाणई पवहे अ मूले अ भरहसिंधुसरिसा पमाणेणं—जाव—दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ।

[३४][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष के उत्तरार्धकच्छ विजय में सिन्धुकुंड नामक कुंड कहाँ है ?

उ०—गौतम ! माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, ऋषभकूट के पश्चिम में तथा नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र के उत्तरार्धकच्छ विजय में सिन्धुकुंड नामक कुंड है । यह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है—यावत्—भवन तथा राजधानी पर्यन्त पूर्ववत् समझ लेना चाहिए । भरत क्षेत्र के सिन्धुकुंड के समान सब वर्णन जानना चाहिए—यावत्—इस सिन्धुकुंड के दक्षिणी द्वार से सिन्धु महानदी निकल कर उत्तरार्ध कच्छविजय में आती हुई, सात हजार नदियों

से आपूरित होती हुई तिमिस्रगुफा के नीचे वैताढ्य पर्वत को भेद कर दक्षिणार्ध कच्छविजय में होती हुई, चौदह हजार नदियों सहित दक्षिण में सीता महानदी में मिलती है। सिन्धु महानदी का प्रवाह व गिरते समय के मुख का प्रमाण भरतक्षेत्र की सिन्धु नदी के समान है—यावत्—यह दो वनखण्डों से घिरी हुई है।

ऋषभकूट पर्वत

[३५][१] प्र०—कहि णं भंते ! उत्तरड्ढकच्छविजए उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! सिंधुकुंडस्स पुरत्थिमेणं,
गंगाकुंडस्स पच्चत्थिमेणं,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणे नितंबे,
एत्थ णं उत्तरड्ढकच्छविजए उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते।
अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
तं चेव पमाणं—जाव—रायहाणी।
से णवरं उत्तरेणं भाणिअव्वा।

[३५][१] प्र०—भगवन् ! उत्तरार्ध कच्छ विजय मे ऋषभकूट नामक पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! सिन्धुकुंड के पूर्व मे, गंगाकुंड के पश्चिम में तथा नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब मे उत्तरार्ध कच्छ विजय मे ऋषभकूट नामक पर्वत है।
यह आठ योजन ऊँचा है, इत्यादि प्रमाण उसी प्रकार है। अन्तर यह है कि राजधानी उत्तर में है।

गंगा कुंड

[३६][१] प्र०—कहि णं भंते ! उत्तरड्ढकच्छे विजए गंगाकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
उसहकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे,
एत्थ णं उत्तरड्ढकच्छे गंगाकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते।
सट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
तहेव जहा सिंधु—जाव—वणसंडेण य संपरिक्खित्ता।

[३६][१] प्र०—भगवन् ! उत्तरार्ध कच्छ विजय में गंगाकुंड नामक कुंड कहाँ है ?

उ०—गौतम ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ऋषभकूट पर्वत के पूर्व में तथा नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में, उत्तरार्ध कच्छ में गंगाकुंड नामक कुंड है।
यह साठ योजन लम्बा-चौड़ा है, इत्यादि वर्णन सिन्धु कुंड के समान है।—यावत्—वनखण्ड से घिरा है।

'कच्छ' संज्ञा का कारण

[३७][१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-कच्छे विजए कच्छे विजए ?

उ०—गोयमा ! कच्छे विजए वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं,
सीआए महाणईए उत्तरेणं,
गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं,
सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं,
दाहिणड्ढकच्छविजयस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं खेमा णामं रायहाणी पण्णत्ता।

विणीआरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा ।
तत्थ णं खेमाए रायहाणीए कच्छे णामं राया समुप्पज्जइ ।
महयाहिमवंत—जाव—सव्वं भरहोअवणं भाणियव्वं निक्खमणवज्जं,
सेसं सव्वं भाणिअव्वं—जाव—भुंजए माणुस्सए सुहे ।
कच्छणामधेज्जे अ कच्छे इत्थ देवे महिड्ढिए—जाव—पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।
एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ—
कच्छे विजए कच्छे विजए—जाव—णिच्चे ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ९३ पृ. ३४१

[३७][१] प्र०—भगवन् ! कच्छ विजय को कच्छ विजय क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! कच्छ विजय में वैताढ्य पर्वत से दक्षिण में, सीता महानदी से उत्तर में, गंगा महानदी से पश्चिम में तथा सिन्धु महानदी से पूर्व में दक्षिणार्ध कच्छ विजय के मध्य में क्षेमा नामक राजधानी है । इसका वर्णन विनीता राजधानी के समान समझ लेना चाहिए ।

क्षेमा राजधानी में कच्छ नामक राजा उत्पन्न होता है । वह महाहिमवन्त पर्वत के समान होता है—यावत्—निष्क्रमण (दीक्षा) को छोड़कर उसका सब वर्णन भरत (चक्रवर्ती) के समान समझना चाहिए । —यावत्—वह मानवीय सुखों का उपभोग करता हुआ रहता है ।

यहाँ कच्छ नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है । इस कारण गौतम ! कच्छ विजय को कच्छ विजय कहते हैं ।—यावत्—(यह नाम) नित्य है ।

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत

[३८][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते[1] ?

उ०—गोअमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,
कच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं,
सुकच्छविजयस्स पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे,
सोलसजोअणसहस्साइं पंच य बाणउए जोअणसए दुण्णि य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं,
पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
नीलवंतवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं,
तयणंतरं च णं मायाए-मायाए उस्सेहोव्वेहपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणे-परिवड्ढमाणे
सीआमहाणई-अंतेणं पंच जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,
पंच गाउअसयाइं उव्वेहेणं,[2]
अस्सखंधसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए, अच्छे सण्हे—जाव—पडिरूवे,
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि अ वणसंडेहि संपरिक्खित्ते ।
वण्णओ दुण्ह वि ।
चित्तकूडस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,
—जाव—आसयंति ।

१—ठा. ४ उ. २ सूत्र ३०२ पृ. २१२
२—सम. ११३ सूत्र ३

[३८][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप स्थित महाविदेह वर्ष में चित्रकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! सीता महानदी के उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, कच्छ विजय के पूर्व में तथा सुकच्छ विजय के पश्चिम में जम्बूद्वीप स्थित महाविदेह क्षेत्र में चित्रकूट नामक वक्षस्कार पर्वत है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा, पूर्व-पश्चिम में चौड़ा, १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन लम्बा और ५०० योजन चौड़ा है। नीलवन्त वर्षधर पर्वत के पास इसकी ऊँचाई चार सौ योजन तथा गहराई चार सौ कोस की है। तदनन्तर अनुक्रम से ऊँचाई और गहराई बढ़ती-बढ़ती सीता महानदी के पास पांच सौ योजन की ऊँचाई व पांच सौ कोस की गहराई हो जाती है।

यह (वक्षस्कार पर्वत) अश्व के स्कंध के आकार का, सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ, चिकना—यावत्—प्रतिरूप है।

इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं और दो वनखण्ड हैं। इन दोनों का यहाँ वर्णन समझ लेना चाहिए।

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के ऊपर अति सम एवं रमणीय भूमिभाग है, जहां (देव-देवियाँ क्रीड़ा करते हैं)—यावत्—बैठते हैं।

चित्रकूट के कूट

[३९][१] **प्र०—चित्तकूडे णं भंते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?**

उ०—गोअमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तंजहा—

सिद्धाययणकूडे चित्तकूडे कच्छकूडे सुकच्छकूडे।

सभा उत्तर-दाहिणेणं परुप्परं ति।

पढमं सीआए उत्तरेणं, चउत्थए नीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,

एत्थ णं चित्तकूडे णामं देवे महिड्ढीए—जाव—रायहाणी सेत्ति।

—जम्बू, वक्ष. ४ सूत्र ९४, पृ०३४४

[३९][१] प्र०—भगवन् ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत पर कितने कूट हैं ?

उ०—गौतम ! चार कूट हैं, यथा—सिद्धायतनकूट, चित्रकूट, कच्छकूट और सुकच्छकूट। (चारों कूट) उत्तर-दक्षिण में सम हैं। प्रथम कूट शीता (महानदी) के उत्तर में तथा चतुर्थ (कूट) नीलवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में है।

यहां चित्रकूट नामक महर्द्धिक देव रहता है,—यावत्—राजधानी पर्यन्त सब वर्णन समझ लेना चाहिए।

सुकच्छ विजय

[४०][१] **प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?**

उ०—गोअमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं,

णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,

गाहावईए महाणईए पच्चत्थिमेणं,

चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते।

उत्तर-दाहिणायए,

जहेव कच्छे विजए तहेव सुकच्छे विजए।

णवरं खेमपुरा रायहाणी, सुकच्छे राया समुप्पज्जइ, तहेव सव्वं।

[४०][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष में सुकच्छ नामक राजधानी कहां है ?

उ०—गौतम ! सीता महानदी के उत्तर में, नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, ग्राहावती महानदी के पश्चिम में एवं चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ नामक विजय है ।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है । जैसा कच्छ विजय का वर्णन किया, वैसा ही सुकच्छ विजय का समझना चाहिए । विशेषता यह है कि यहां की राजधानी खेमपुरा है तथा यहां सुकच्छ नामक राजा होता है ।

ग्राहावती कुण्ड

[४१][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे गाहावइकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सुकच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं,
महाकच्छस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं,
णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे गाहावइकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ।
जहेव रोहिअंसाकुंडे तहेव—जाव—गाहावइदीवे भवणे ।
तस्स णं गाहावइस्स कुंडस्स दाहिणिल्लेणं तोरणेणं गाहावई महाणई पवूढा समाणी
सुकच्छ-महाकच्छविजए दुहा विभयमाणी २
अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ ।
गाहावई णं महाणई पवहे अ मुहे अ सव्वत्थ समा पणवीसं जोअणसयं विक्खंभेणं,
अड्ढाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं,
उभओ पासिं दोहि अ पउमवरवेइयाहि दोहि अ वणसंडेहिं—जाव—दुण्ह वि वण्णओ इति ।

[४१]][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह क्षेत्र में ग्राहावती कुंड कहां है ?

उ०—गौतम ! सुकच्छ विजय के पूर्व में, महाकच्छ विजय के पश्चिम में तथा नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब के निकट जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष में ग्राहावती नामक कुंड है । इसका स्वरूप रोहितांशा कुंड के समान—यावत्—ग्राहावती द्वीप तथा भवन पर्यन्त समझ लेना चाहिए ।

इस ग्राहावती कुंड के दक्षिणी तोरण से ग्राहावती महानदी निकल कर सुकच्छ और महाकच्छ विजयों को दो भागों में विभक्त करती हुई, अट्ठाईस हजार नदियों के साथ दक्षिण दिशा में शीता महानदी में मिलती है ।

ग्राहावती नदी का प्रारंभिक प्रवाह और मुख-मिलने के स्थान अर्थात् संगम पर सर्वत्र समान है । यह एक सौ पच्चीस योजन चौड़ी एवं अढ़ाई योजन गहरी है । इस (कुंड) के दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं और दो वनखण्ड हैं । यहाँ दोनों का कथन समझ लेना चाहिए ।

महाकच्छ विजय

[४२][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,
सीआए महाणईए उत्तरेणं,
पम्हकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
गाहावईए महाणईए पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ।
सेसं जहा कच्छविजयस्स—जाव—
महाकच्छे इत्थ देवे महिड्ढीए, अट्ठो अ भाणिअव्वो ।

[४२][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में महाकच्छ नामक विजय कहाँ है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर मे, ब्रह्मकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में एवं ग्राहावती महानदी के पूर्व में महाविदेह वर्ष स्थित महाकच्छ नामक विजय है। शेष वर्णन कच्छ विजय के समान है।—यावत्—यहाँ महाकच्छ नामक महर्द्धिक देव रहता है। इसका वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए।

ब्रह्मकूट वक्षस्कार पर्वत

[४३][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स दक्खिणेणं,
सीआए महाणईए उत्तरेणं,
महाकच्छस्स पुरत्थिमेणं,
कच्छावईए पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे,
सेसं जहा चित्तकूडस्स—जाव—आसयंति।
पम्हकूडे चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तंजहा—
सिद्धायणकूडे, पम्हकूडे, महाकच्छकूडे, कच्छावइकूडे।
एवं—जाव—अट्ठो।
पम्हकूडे इत्थ देवे महिड्ढिए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ०।

[४३][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष मे ब्रह्मकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त (वर्षधर पर्वत) के दक्षिण में, सीता महानदी के उत्तर में, महाकच्छ (विजय) के पूर्व में एव कच्छवती (विजय) के पश्चिम में महाविदेह स्थित ब्रह्मकूट नामक वक्षस्कार पर्वत है। यह उत्तर-दक्षिण मे लम्बा और पूर्व-पश्चिम मे चौड़ा है। शेप वर्णन चित्रकूट (वक्षस्कार पर्वत) के समान समझना चाहिए—यावत्—यहां देवादि बैठते है।

ब्रह्मकूट पर्वत पर चार कूट हैं यथा—सिद्धायतनकूट, ब्रह्मकूट, महाकच्छकूट और कच्छवतीकूट। इनका वर्णन पूर्ववत् है। यहां ब्रह्मकूट नामक महर्द्धिक एवं पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। इस कारण गौतम ! इसे (ब्रह्मकूट) कहते हैं।

कच्छगावती विजय

[४४][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स दाहिणेणं,
सीआए महाणईए उत्तरेणं,
दहावतीए महाणईए पच्चत्थिमेणं,
पम्हकूडस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पण्णत्ते।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे,
सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स—जाव—
कच्छगावई अ इत्थ देवे।

[४४][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में कच्छगावती नामक विजय कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त पर्वत के दक्षिण में, सीता महानदी के उत्तर में, द्रहावती महानदी के पश्चिम में एवं ब्रह्मकूट (पर्वत) के पूर्व में महाविदेहस्थित कच्छगावती विजय है।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम के चौड़ा, है। शेष वर्णन कच्छ विजय के समान है। —यावत्—यहां कच्छगावती नामक देव है।

द्रहावती कुण्ड

[४५][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे दहावई कुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! आवत्तस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं,
कच्छगावईए विजयस्स पुरत्थिमेणं,
णीलवंतस्स दाहिणिल्ले नितंबे,
एत्थ णं महाविदेहे वासे दहावईकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ।
सेसं जहा गाहावईकुंडस्स-जाव-अट्ठो ।
तस्स णं दहावईकुंडस्स दाहिणेण तोरणेणं दहावई महाणई पवूढा समाणी
कच्छावई-आवत्ते विजए दुहा विभयमाणी २
दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ ।
सेसं जहा गाहावईए ।

[४५][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में द्रहावती नामक कुंड कहां है ?

उ०—गौतम ! आवर्त्त विजय के पश्चिम में, कच्छगावती विजय के पूर्व में तथा नीलवन्त पर्वत के दक्षिणी नितंब के निकट महाविदेहस्थित द्रहावती नामक कुंड है। शेष वर्णन ग्राहावती कुंड के समान है—यावत्—अर्थ कह लेना चाहिए।

इस द्रहावती कुंड के दक्षिणी तोरण से द्रहावती महानदी निकलकर कच्छवती तथा आवर्त्त विजयों के दो विभाग करती हुई सीता महानदी के दक्षिणी किनारे पर मिलती है, शेष वर्णन ग्राहावती के समान है।

आवर्त्त विजय

[४६][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं,
सीआए महाणईए उत्तरेणं,
णलिणकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
दहावतीए महाणईए पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते ।
सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स इति ।

[४६][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में आवर्त्त नामक विजय कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, सीता महानदी से उत्तर में, नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में तथा द्रहावती महानदी से पूर्व में, महाविदेह वर्ष में आवर्त्त नामक विजय है। शेष कथन कच्छ विजय के समान है।

नलिनकूट वक्षस्कारपर्वत

[४७][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णीलवंतस्स दाहिणेणं,
सीआए उत्तरेणं,
मंगलावइस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं,
आवत्तस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे,
सेसं जहा चित्तकूडस्स-जाव-आसयंति ।

[२] प्र०—णलिणकूडे णं भंते ! कति कूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तंजहा—

सिद्धायणकूडे, णलिणकूडे, आवत्तकूडे, मंगलावत्तकूडे ।

एए कूडा पंचसइआ, रायहाणीओ उत्तरेणं ।

[४७][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में नलिनकूट नामक वक्षस्कार पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त पर्वत से दक्षिण में, सीता से उत्तर में, मंगलावती विजय से पश्चिम में तथा आवर्त्त विजय से पूर्व में महाविदेह वर्ष में नलिनकूट नामक वक्षस्कार पर्वत है ।

यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा और पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है । शेष वर्णन वित्रकूट के समान है—यावत्—(यहां देव-देवियां) बैठते है ।

[२] प्र०—भगवन् ! नलिनकूट (पर्वत) पर कितने कूट है ?

उ०—गौतम ! चार कूट है, यथा—सिद्धायतनकूट, नलिनकूट, आवर्त्तकूट और मंगलावर्त्तकूट ।

ये कूट पांच सौ योजन (ऊंचे) है । इनकी राजधानियां उत्तर में हैं ।

मंगलावर्त विजय

[४८][१] प्र०—**कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?**

उ०—**गोअमा ! णीलवंतस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं,**

णलिणकूडस्स पुरत्थिमेणं, पंकावईए पच्चत्थिमेणं,

एत्थ णं मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ।

जहा कच्छस्स विजए तहा एसो भाणिअव्वो—जाव—मंगलावत्ते अ इत्थ देवे परिवसइ ।

से एएणट्ठेणं० ।

[४८][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में मंगलावर्त्त नामक विजय कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त से दक्षिण में सीता से उत्तर में, नलिनकूट से पूर्व में और पंकावती से पश्चिम में मगलावर्त्त नामक विजय है । कच्छ विजय की भांति इसका भी वर्णन जान लेना चाहिए—यावत्—यहां मंगलावर्त्त नामक देव रहता है । इस कारण (गौतम! इसका नाम मंगलावर्त्त विजय है) ।

पंकावती कुंड

[४९][१] प्र०—**कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पंकावई कुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ?**

उ०—**गोअमा ! मंगलावत्तस्स पुरत्थिमेणं,**

पुक्खलविजयस्स पच्चत्थिमेणं,

णीलवंतस्स दाहिणे णितंबे,

एत्थ णं पंकावई—जाव—कुंडे पण्णत्ते ।

तं चेव गाहावइकुंडप्पमाणं—जाव—

मंगलावत्त—पुक्खलावत्तविजए दुहा विभयमाणी२,

अवसेसं तं चेव जं चेव गाहावईए ।

[४९][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में पंकावती नामक कुंड कहां है ?

उ०—गौतम ! मंगलावर्त्त के पूर्व में, पुष्कल विजय के पश्चिम में तथा नीलवन्त के दक्षिणी नितम्ब में पंकावती नामक कुंड है । इसका प्रमाण ग्राहावती कुंड के बराबर है । —यावत्—(पंकावती नदी) मंगलावर्त्त तथा पुष्कलावर्त विजयों को दो भागों में विभक्त करती हुई ग्राहावती महानदी के समान ही (सीता नदी में मिलती है) ।

पुष्कलावर्त्त विजय

[५०][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स दाहिणेणं, सीआए उत्तरेणं,
पंकावईए पुरत्थिमेणं, एक्कसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ।
जहा कच्छविजए तहा भाणिअव्वं—जाव—
पुक्खले अ इत्थ देवे महिड्ढिए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।
से एएणट्ठेणं० ।

[५०][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में पुष्कलावर्त्त नामक विजय कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, पंकावती के पूर्व में तथा एकशैल वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में पुष्कलावर्त्त नामक विजय है ।
इसका वर्णन कच्छ विजय के समान जानना चाहिए । —यावत्—यहां पुष्कल नामक महान् ऋद्धिमान् एवं पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है । इस कारण (गौतम ! इसे पुष्कलावर्त्त विजय कहते हैं) ।

एकशैल वक्षस्कार पर्वत

[५१][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पुक्खलावत्तचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं,
पोक्खलावती चक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं,
णीलवंतस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं,
एत्थ णं एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ।
चित्तकूडगमेणं णेअव्वो—जाव—देवा आसयंति ।
चत्तारि कूडा, तंजहा—
सिद्धाययणकूडे, एगसेलकूडे, पुक्खलावत्तकूडे, पुक्खलावईकूडे ।
कूडाणं तं चेव पंचसइअं परिमाणं—जाव—
एगसेले अ देवे महिड्ढिए ।

[५१][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! पुष्कलावर्त्त चक्रवर्त्ती-विजय से पूर्व में, पुष्कलावती चक्रवर्त्ती-विजय से पश्चिम में, नीलवंत से दक्षिण में तथा शीता से उत्तर में एकशैल नामक वक्षस्कार पर्वत है । चित्रकूट के समान इसका वर्णन जानना चाहिए —यावत्—यहां देव बैठते हैं ।
इस पर चार कूट हैं, यथा—सिद्धायतन कूट, एकशैलकूट, पुष्कलावर्त्तकूट और पुष्कलावतीकूट । इनका परिमाण वही पांच सौ योजन है—यावत्—इस पर्वत पर एकशैल नामक महर्द्धिक देव रहता है ।

पुष्कलावती विजय

[५२][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं चक्कवट्टिविजए पण्णत्ते ?

उ०— गोअमा ! णीलवंतस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं,
उत्तरिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं,
एगसेलस्स य वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते ।
उत्तर-दाहिणायए,
एवं जहा कच्छ विजयस्स—जाव—पुक्खलावई अ इत्थ देवे परिवसइ ।
एएणट्ठेणं० ।

[५२][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष मे पुष्कलावती नामक चक्रवर्ती—विजय कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त के दक्षिण में, शीता के उत्तर मे, उत्तरी शीतामुख वन के पश्चिम में तथा एकशैल वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में महाविदेहस्थित पुष्कलावती नामक विजय है । यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है । शेष वर्णन कच्छ विजय के समान है—यावत्—यहा पुष्कलावती देव रहता है । इस कारण (इसका नाम पुष्कलावती विजय है) ।

उत्तरीय शीतामुखवन

[५३][१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे सीआए महाणईए उत्तरिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स दक्खिणेणं,
सीआए उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पुक्खलावइचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते ।
उत्तर-दाहिणायए, पाईण-पडीणविच्छिण्णे,
सोलस जोअणसहस्साइं पंच य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं,
सीआए महाणईए अंतेणं दो जोअणसहस्साइं नव य बावीसे जोयणसए विक्खंभेणं ।
तयाणंतरं च णं मायाए २ परिहायमाणे २ णीलवंतवासहरपव्वयंतेणं एगं एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खंभेणंति ।
से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं संपरिक्खित्ते । वण्णओ सीआमुहवणस्स—जाव—देवा आसयंति ।
एवं उत्तरिल्लं पासं समत्तं ।
विजया भणिआ, रायहाणीओ इमाओ—
गाहा—
(१) खेमा (२) खेमपुरा चेव, (३) रिट्ठा (४) रिट्ठपुरा तहा ।
(५) खग्गी (६) मंजूसा अवि अ, (७) ओसही (८) पुंडरीगिणी ।[1]

[५३][१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में शीता महानदी के उत्तर में शीतामुख नामक वन कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त से दक्षिण में, शीता नदी से उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में तथा पुष्कलावती चक्रवर्त्ती विजय से पूर्व मे शीतामुख नामक वन है । यह उत्तर—दक्षिण में लम्बा और पूर्व—पश्चिम मे चौड़ा है । १६५९२ $\frac{३}{१९}$ योजन लम्बा तथा शीता महानदी के पास २९२२ योजन चौड़ा है । तदनन्तर क्रमशः कम होता-होता नीलवन्त वर्षधर पर्वत के पास $\frac{१}{९}$ योजन चौड़ा रह गया है । यह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड से घिरा है ।

१—ठा० ८, उ० ३ सूत्र ६३७ पृ० ४१३

शीतामुख वन का देवों के बैठने तक का वर्णन कर लेना चाहिए। इसी प्रकार सब उत्तरीय विजयों का वर्णन समझ लेना चाहिए। इनकी राजधानियां इस प्रकार हैं —

गाथार्थ—(१) क्षेमा (२) क्षेमपुरा (३) अरिष्टा (४) अरिष्टपुरा (४) खड्गी (६) मंजूषा (७) औषधि और (८) पुण्डरीकिणी

उत्तर की शेष वक्तव्यता

[५४] **सोलस विज्जाहरसेढीओ तावइयाओ, अभिओगसेढीओ,**
सव्वाओ इमाओ ईसाणस्स।
सव्वेसु विजएसु कच्छवत्तव्वया—जाव—अट्ठो।
रायाणो सरिसणामगा।
विजएसु सोलसण्हं वक्खारपव्वयाणं चित्तकूडवत्तव्वया—जाव—कूडा चत्तारि—चत्तारि,
बारसण्हं णईणं गाहावइवत्तव्वया—जाव—उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं वणसंडेहि अ वण्णओ।

—जम्बू० वक्ष० ४ सूत्र ९५ पृ० ३४७

[५४] यहां सोलह विद्याधर श्रेणियां तथा सोलह आभियोगिक श्रेणियां हैं। ये सब ईशानेन्द्र की हैं। इन सब विजयों की वक्तव्यता कच्छ विजय के समान है। उनके राजाओं के नाम विजयों के समान समझने चाहिए।

विजयों के सोलह वक्षस्कार पर्वतों का वर्णन चित्रकूट के सदृश है—यावत्—प्रत्येक पर चार—चार कूट हैं।

बारह नदियों का वर्णन ग्राहावती के समान है—यावत्—प्रत्येक के दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएं एवं दो वनखण्ड हैं।

दक्षिणी शीतामुख वन

[५५][१] **प्र०—कहि णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीयामुहवणे णामं वणे पण्णत्ते?**

उ०—एवं जह चेव उत्तरिल्लं सीआमुहवणं तह चेव दाहिणं पि भाणिअव्वं।
णवरं णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,
सीआए महाणईए दाहिणेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
वच्छस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते।
उत्तर-दाहिणायए, तहेव सव्वं,
णवरं णिसहवासहरपव्वयंतेणं एगूणवीइभागं जोअणस्स विक्खंभेणं,
किण्हे किण्हेभासे—जाव—महया गंधद्धणि मुअंते—जाव—आसयंति।
उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, वणखण्णओ इति।

[५५][१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप स्थित महाविदेह वर्ष में शीता महानदी के दक्षिण में शीतामुख नामक वन कहां है?

उ०—उत्तरीय शीतामुख वन की ही भांति दक्षिणी (शीतामुख वन) का भी वर्णन कर लेना चाहिए। विशेषता इतनी है कि जम्बूद्वीपस्थित महाविदेह वर्ष की शीता महानदी का दक्षिणी शीतामुख वन

निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीता महानदी से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में एवं वत्स विजय से पूर्व में है। यह उत्तर-दक्षिण में लम्बा है, इत्यादि।

निषध वर्षधर पर्वत के पास इसकी चौड़ाई $_{16}^{1}$ योजन की है। यह कृष्ण और कृष्णावभास है—यावत्—इससे गंध का समूह निकलता है।—'यावत्'—यहाँ (देव) बैठते हैं।

इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएँ और दो वनखण्ड हैं।

वत्स आदि विजय

[५६][१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,
सीआए महाणईए दाहिणेणं,
दाहिणिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं,
तिउडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते।
तं चेव पमाणं,
सुसीमा रायहाणी। (१)
तिउडे वक्खारपव्वए, सुवच्छे विजए कुंडला रायहाणी। (२)
तत्तजला णई, महावच्छे विजए, अपराजिता रायहाणी (३)
वेसमणकूड वक्खारपव्वए, वच्छावई विजए, पभंकरा रायहाणी। (४)
मत्तजला णई, रम्मे विजए, अंकावई रायहाणी। (५)
अंजणे वक्खारपव्वए, रम्मगे विजए, पम्हावई रायहाणी। (६)
उम्मत्तजला महाणई, रमणिज्जे विजए, सुभा रायहाणी। (७)
मायंजले वक्खारपव्वए, मंगलावई विजए, रयणसंचया रायहाणीति। (८)
एवं जह चेव सीआए महाणईए उत्तरं पासं
तह चेव दक्खिणिल्लं भाणिअव्वं।

दाहिणिल्लसीआमुहवणाइ, इमे वक्खारकूडा, तंजहा—
तिऊडे १, वेसमणकूडे २, अंजणे ३, मायंजणे ४।
णईउ—तत्तजला १, मत्तजला २, उम्मत्तजला ३।

विजया तंजहा—
गाहा—
वच्छे[१] सुवच्छे[२] महावच्छे[३], चउत्थे वच्छगावई[४]।
रम्मे[४] रम्मए[६] चेव, रमणिज्जे[७] मंगलावई[८] ॥१॥

रायहाणीओ, तंजहा—
गाहा—
सुसीमा[१] कुंडला[२] चेव, अवराइअ[३] पहंकरा।[४]
अंकावई[४] पम्हावई[६] सुभा[७] रयणसंचया[८] ॥२॥

वच्छस्स विजयस्स णिसहे दाहिणेणं, सीआ उत्तरेणं।
दाहिणिल्लसीयामुहवणे पुरत्थिमेणं, तिऊडे पच्चत्थिमेणं।
सुसीमा रायहाणी, पमाणं तं चेवेति।
वच्छाणंतरं तिऊडे तओ सुवच्छे विजए।

एएणं कमेणं तत्तजला णई महावच्छे विजए ।
वेसमणकूडे वक्खारपव्वए, वच्छावई विजए ।
मत्तजला णई, रम्मे विजए ।
अंजणे वक्खारपव्वए रम्मए विजए ।
उम्मत्तजला णई, रमणिज्जे विजए ।
मायंजणे वक्खारपव्वए, मंगलावई विजए ।

—जम्बू. वक्ष, ४ सूत्र ९६ पृ. ३५२

[५६][१] प्र०—भगवन्! जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में वत्स (वच्छ) नामक विजय कहां है ?

उ०—गौतम! निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीता महानदी से दक्षिण में, दक्षिणी शीतामुख वन से पश्चिम में एवं त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में वत्स नामक विजय है। इसका प्रमाण पूर्ववत् (कच्छ विजय के समान) समझना चाहिए। इसकी राजधानी का नाम सुसीमा है। (आगे) त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत, सुवत्स विजय और कुण्डला राजधानी है; तप्तजला नदी, महावत्स विजय और अपराजिता राजधानी; वैश्रमणकूट वक्षस्कार पर्वत, वत्सावती विजय और प्रभंकरा राजधानी; मत्तजला नदी, रम्य विजय और अंकावती राजधानी; अंजन वक्षस्कार पर्वत, रम्यक विजय और पक्ष्मावती राजधानी; उन्मत्तजला महानदी, रमणीय विजय और शुभा राजधानी; मातंजन वक्षस्कार पर्वत, मंगलावती विजय और रत्नसंचया राजधानी है।

इस प्रकार जैसे शीता महानदी के उत्तर भाग में कहा वैसा ही कथन दक्षिण भाग में भी समझ लेना चाहिए—दाक्षिणात्य शीतामुखवन आदि।

गाथार्थ—त्रिकूट, वैश्रमणकूट, अंजन और मातंजन (ये वक्षस्कार पर्वत हैं)।
नदियों के नाम ये हैं—तप्तजला, मत्तजला, और उन्मत्तजला।
विजयों के नाम—वत्स, सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय और मंगलावती।
राजधानियों के नाम इस प्रकार है—

गाथार्थ—
सुसीमा, कुंडला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंकावती, पद्मावती, सुभा और रत्नसंचया।
निषध के दक्षिण में, शीता नदी के उत्तर में, दक्षिणी सीतामुख वन के पूर्व में एवं त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में वत्स विजय की सुसीमा राजधानी है। इसका प्रमाण पूर्ववत् ही है। वत्स के बाद त्रिकूट पर्वत, सुवत्स विजय, तप्तजला नदी, महाकच्छ विजय, वैश्रमण कूट वक्षस्कार पर्वत, वत्सावती विजय, मत्तजला नदी, रम्य विजय, अंजन वक्षस्कार पर्वत, रम्यक विजय, उन्मत्तजला नदी, रमणीय विजय, मातंजन वक्षस्कार पर्वत एवं मंगलावती विजय की अनुक्रम से वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

शेष विजयादि वक्तव्यता

[५७] **एवं पम्हे विजए, अस्सपुरा रायहाणी, अंकावई पक्खारपव्वए [१]**
सुपम्हे विजए, सीहपुरा रायहाणी, खीरोदा महाणई (२)
महापम्हे विजए, महापुरा रायहाणी, पम्हावई वक्खारपव्वए [३]
पम्हगावई विजए, विजयपुरा रायहाणी, सीअसोआ महाणई [४]
संखे विजए, अपराइआ रायहाणी, आसीविसे वक्खारपव्वए [५]
कुमुदे विजए, अरजा रायहाणी, अंतोवाहिणी महाणई (६)
णलिणे विजए, असोगा रायहाणी, सुहावहे वक्खारपव्वए [७]
णलिणावई विजए, वीयसोगा रायहाणी [८] दाहिणिल्ले साओआमुखवणसंडे ।
उत्तरिल्ले वि एमेव भाणियव्वे जहा सीआए ।

वप्पे विजए, विजया रायहाणी, चन्दे वक्खार पव्वए [१]
सुवप्पे विजए, जयंती रायहाणी, ओम्मिमालिणी णई [२]
महावप्पे विजए, जयंती रायहाणी, सूरे वक्खारपव्वए [३]
वप्पावई विजए, अपराइआ रायहाणी, फेणमालिणी णई [४]
वग्गू विजए, चक्कपुरा रायहाणी, णागे वक्खारपव्वए [५]
सुवग्गू विजए, खग्गपुरा रायहाणी, गंभीरमालिणी अंतरणई [६]
गंधिले विजए, अवज्झा रायहाणी, देवे वक्खारपव्वए [७]
गंधिलावई विजए, अओज्झा रायहाणी
एवं मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ल पासं भाणिअव्वं ।
तत्थ ताव सीओआए णईए दक्खिणिल्ले णं कूले इमे विजया, तंजहा—
गाहा—
पम्हे सुपम्हे महापम्हे, चउत्थे पम्हगावई ।
संखे कुमुए णलिणे, अट्ठमे णलिणावई ।।१।।
इमाओ रायहाणीओ, तंजहा—
गाहा—
आसपुरा सीहपुरा महापुरा चेव हवइ विजयपुरा ।
अवराइआ य अरया, असोगा तह वीअसोगा अ ।।२।।
इमे वक्खारा, तंजहा—
अंके पम्हे आसीविसे सुहावहे एवं इत्थ परिवाडीए दो दो विजया कूडसरिसणामया भाणिअव्वा,
दिसा—विदिसाओ य भाणिअव्वाओ ।
सीओआमुहवणं च भाणिअव्वं, सीओआए दाहिणिल्लं उत्तरिल्लं च ।
सीओआए उत्तरिल्ले पासे इमे विजया, तंजहा—
गाहा—
वप्पे सुवप्पे महावप्पे, चउत्थे वप्पयावई ।
वग्गू अ सुवग्गू अ, गंधिले गंधिलावई ।।१।।
रायहाणीओ इमाओ, तंजहा—
गाहा—
विजया वेजयंती जयंती अपराजिया ।
चक्कपुरा खग्गपुरा, हवइ अवज्झा अउज्झा य ।।२।।
इमे वक्खारा, तंजहा—
चंदपव्वए १, सूरपव्वए २, नागपव्वए ३, देवपव्वए ४,
इमाओ णईओ सीओआए महाणईए दाहिणिल्ले कूले खीरोआ, सीअसोया अंतरवाहिणीओ
णईओ, उम्मिमालिणी फेणमालिणी गंभीरमालिणी
उत्तरिल्लविजयाणंतराउ त्ति ।
इत्थ परिवाडीए दो दो कूडा विजयसरिसणामया भाणिअव्वा ।
इमे दो दो कूडा अवट्ठिया, तंजहा—
सिद्धाययणकूडे, पव्वयसरिसणामकूडे ।

जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०२ पृ० ३५७

[५७] (महाविदेह वर्ष के तीसरे दाक्षिणत्य–पश्चिम विभाग में विजयादि के नाम इस प्रका हैं–)

१—पक्ष्म विजय, अश्वपुरी राजधानी, अंकावती वक्षस्कार पर्वत ।
२—सुपक्ष्म विजय, सिंहपुरा राजधानी, क्षीरोदा महानदी

३—महापक्ष्म विजय, महापुरी राजधानी, पक्ष्मावती वक्षस्कारपर्वत ।

४—पक्ष्मावती विजय विजयपुरी राजधानी, शीतस्रोता महानदी ।

५—शंख विजय, अपराजिता राजधानी, आशीविष वक्षस्कारपर्वत ।

६—कुमुद विजय, अरजा राजधानी, अन्तर्वाहिनी महानदी ।

७—नलिन विजय, अशोका राजधानी, सुखावह वक्षस्कारपर्वत ।

८—नलिनावती विजय, वीतशोका राजधानी । दाक्षिणात्य सीतोदामुखवनखण्ड ।

(चतुर्थ विभाग के विजय आदि इस प्रकार हैं—)

१—वप्र विजय, विजया राजधानी, चन्द्र वक्षस्कारपर्वत ।

२—सुवप्र विजय, वैजयन्ती राजधानी, ऊर्मिमालिनी नदी ।

३—महावप्र विजय, जयन्ती राजधानी, सूर्य वक्षस्कार पर्वत ।

४—वप्रावती विजय, अपराजिता राजधानी, फेनमालिनी नदी ।

५—वल्गु विजय, चक्रपुरा राजधानी, नाग वक्षस्कार पर्वत ।

६—सुवल्गु विजय, खड्गपुरी राजधानी, गंभीरमालिनी अन्तर नदी ।

७—गंधिल विजय, अवध्या राजधानी, देव वक्षस्कार पर्वत ।

८—गंधिलावती विजय, अयोध्या राजधानी

इसी प्रकार मेरु के पश्चिमी पार्श्व का वर्णन करना चाहिए । सीतोदा नदी के दक्षिणी किनारे पर ये विजय हैं—

गाथार्थ—
पक्ष्म, सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मावती, शंख, कुमुद, नलिन और नलिनावती ।
राजधानियां इस प्रकार हैं—
अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अरजा, अशोका और वीतशोका ।
वक्षस्कार पर्वत ये हैं—
अंक, पक्ष्म, आशीविष और सुखावह ।

यहां दो-दो विजय कूटसदृश नाम वाले जानने चाहिए । दिशा और विदिशा का भी कथन कर लेना चाहिए । तथा सीतोदामुखवन का भी कथन समझ लेना चाहिए । सीतोदा के दक्षिणी व उत्तरी (किनारे) हैं । उसके उत्तरी किनारे पर ये विजय हैं—

गाथार्थ—
वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावती, वल्गु, सुवल्गु, गंधिल और गंधिलावती ।
राजधानियां ये हैं—
गाथार्थ—
विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरा, खड्गपुरी, अवध्या और अयोध्या ।
वक्षस्कार पर्वत ये हैं—चन्द्रपर्वत, सूर्य पर्वत, नाग पर्वत और देव पर्वत ।
सीतोदा महानदी के दक्षिणी किनारे पर ये नदियां हैं—क्षीरोदा, शीतस्रोता और अन्तर्वाहिनी ।
ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी और गंभीरमालिनी, ये उत्तरीय विजयों की अन्तरनदियां हैं ।

यहां परिपाटी से दो-दो कूट विजयसदृश नाम वाले हैं तथा दो-दो कूट अवस्थित-नियत हैं—सिद्धायतनकूट तथा पर्वतसदृश नाम वाला कूट । (इस प्रकार प्रत्येक पर्वत पर चार कूट हैं ।)

हैमवत वर्ष

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं,
चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते,
पाईण-पडीणायए, उदीह-दाहिणविच्छिण्णे,
पलिअंकसंठाणसंठिए,
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
दोण्णि जोअणसहस्साइं एगं च पंचुत्तरं जोअणसयं पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं ।
तस्स बाहा[1] पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं छज्जोयणसहस्साइं सत्त य पणवण्णे जोअणसए तिण्णी अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं ।
तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया,
दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा,
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा,
पच्चत्थिमिल्लाए—जाव—पुट्ठा ।
सत्ततीसं जोअणसहस्साइं[2] छच्च चउवत्तरे जोअणसए सोलस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसूणं आयामेणं,
तस्स धणुं दाहिणेणं अट्ठतीसं जोअणसहस्साइं[3] सत्त य चत्तालं जोअणसए दस य एगूणवीसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।

[२] प्र०—हेमवयस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभाव-पडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ।
एवं तइअसमाणुभावो णेअव्वोत्ति ।

—जम्बू, वक्ष, ४ सूत्र ७६ पृ० २९८

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप मे हैमवत नामक वर्ष कहाँ है ?

उ०—गौतम ! महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, चुल्ल हिमवन्त पर्वत से उत्तर में, पूर्वी लवण-समुद्र से पश्चिम मे तथा पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व मे जम्बूद्वीप का हैमवत नामक वर्ष है । यह पूर्व और पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । पलंग के आकार का है तथा दो ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, पश्चिम की ओर पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । यह २१०५$\frac{5}{19}$ योजन चौड़ा है । इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम में ६७५५$\frac{3}{19}$ योजन लम्बी है । इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी एवं दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर से पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पश्चिम की ओर से पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । यह ३७६७४$\frac{16}{19}$ योजन से कुछ कम लम्बी है । इसका धनुःपृष्ठ दक्षिण में ३८७४०$\frac{10}{19}$ योजन की परिधि वाला है ।

१—सम. ६७ सूत्र २
२— „ ३७ सूत्र २
३— „ ३८ सूत्र २

[२] प्र०—भगवन् ! हैमवत वर्ष का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! इसका भूमिभाग अति सम एवं रमणीय है। इसका वर्णन (भरत क्षेत्र के) तीसरे आरे के स्वरूपवर्णन जैसा जानना चाहिए।

शब्दापाती पर्वत

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते ! हेमवए वासे सद्दावई णामं वट्टवेयड्डपव्वए पण्णत्ते[1] ?

उ०—गोअमा ! रोहिआए महाणईए पच्चत्थिमेणं,
रोहिअंसाए महाणईए पुरत्थिमेणं,
हेमवयवासस्स बहुमज्झदेसभाए,
एत्थ णं सद्दावई णामं वट्टवेयड्डपव्वए पण्णत्ते[1]।
एगं जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं,
अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं,
सव्वत्थ समे, पल्लगसंठाणसंठिए,
एगं जोअणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते[2]।
सव्वरयणामए अच्छे,
से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते,
वेइआ-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो।
सद्दावइस्स णं वट्टवेयड्डपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते।
तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते।
बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उड्ढं उच्चत्तेणं,
इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं,
—जाव—सीहासणं सपरिवारं।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सद्दावईवट्टवेअड्डपव्वए ?

उ०—गोअमा ! सद्दावईवट्टवेयड्डपव्वए णं खुड्डा खुड्डियासु बावीसु—जाव—बिलपंतिआसु बहवे उप्पलाइं पउमाइं सद्दावइप्पभाइं सद्दावइवण्णाइं सद्दावई अ इत्थ देवे महिड्ढीए—जाव—महाणुभावे पलिओवमट्ठिइए परिवसइ त्ति।
से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं—जाव—रायहाणी मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं अण्णंमि जंबुद्दीवे दीवे०।[3]
—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ७७ पृ० २९९

---

१. सव्वेसि णं वट्टवेयड्डपव्वयाणं सिहरतलाओ सोगंधिककंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं नउइजोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। —सम. ९० सूत्र ५

२. (क) ठा. २ उ. ३ सूत्र ८७ पृ. ६५
(ख) सम. ११३
(ग) ठा. १० सूत्र ७२२ पृ. ४५३

३. वृत्त वैताढ्य पर्वतों की संख्या ४ है, यह निर्विवाद है। उनके नामों के संबंध में भी कोई मतभेद नहीं है। किन्तु उनकी अवस्थिति स्थानांग और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में कुछ भिन्न प्रकार की है, यथा—

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार	स्थानांग के अनुसार
हैमवत में—शब्दापाती	हैमवत में—शब्दापाती
हरिवर्ष में—विकटापाती	हरिवर्ष में—गंधापाती
रम्यक में—गंधापाती	रम्यक में माल्यवन्त (पर्याय)
हैरण्यवत में—माल्यवन्त	हैरण्यवत में—शब्दापाती

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के टीकाकार के समक्ष भी यह मतभेद रहा है, उन्होंने 'तत्वं तु केवलिगम्यम्' लिखकर छोड़ दिया है। —सम्पादक

[२] [१] प्र०—भगवन् ! हैमवत वर्ष में शब्दापाती नामक वृत्त (गोल) वैताढ्य पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! रोहिता नदी से पश्चिम में तथा रोहितांसा महानदी से पूर्व में हैमवत वर्ष के मध्य में शब्दापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत है ।

यह एक हजार योजन ऊँचा, अढ़ाई सौ योजन गहरा, सर्वत्र सम (बराबर) पल्य के आकार का, एक हजार योजन लम्बा-चौड़ा, तीन हजार एक सौ बासठ योजन से किंचित् विशेष अधिक परिधि वाला है । यह सर्वात्मना रत्नमय एवं स्वच्छ है । इसके सभी ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है । यहाँ वेदिका और वनखण्ड का वर्णन कह लेना चाहिए ।

शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत के ऊपर अति सम और रमणीय भूमिभाग है । इस सम एवं रमणीय भूमिभाग के मध्य मे एक विशाल प्रासादावतंसक है । यह प्रासाद साढ़े बासठ योजन ऊँचा, सवा इकतीस योजन लंबा-चौड़ा—यावत्—सपरिवार सिंहासन से युक्त है ।

[२] प्र०—भगवन् ! इसे शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत पर छोटी-बड़ी वापिकाओं में—यावत्—बिलपंक्तियों में अनेक उत्पल और पद्म है, जो शब्दापाती के समान प्रभा वाले, शब्दापाती के समान वर्ण वाले एवं शब्दापाती के समान आभा वाले हैं । यहाँ पल्योपम की स्थिति वाला शब्दापाती नामक महर्द्धिक —यावत्—महान् प्रभाववान् देव रहता है । यहाँ वह चार हजार सामानिक (देवों आदि का अधिपतित्व करता विचरता है)—यावत्—मेरु पर्वत से दक्षिण में अन्य जम्बूद्वीप में (उसकी) राजधानी है ।

'हैमवत' संज्ञा का हेतु

[३] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-हेमवए वासे ?

उ०—गोअमा ! चुल्लहिमवंत-महाहिमवंतेहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समवगूढे ।

णिच्चं हेमं दलइ, णिच्चं हेमं पगासइ,

हेमवए य इत्थ देवे महिड्ढीए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ,

से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ—हेमवए वासे हेमवए वासे ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ७८ पृ० ३००

[३] [१] प्र०—भगवन् ! (हैमवत वर्ष को) हैमवत वर्ष क्यों कहते है ?

उ०—गौतम ! यह चुल्लहिमवन्त और महाहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वतों से समवगूढ़-संश्लिष्ट अर्थात् मर्यादित है । यह सदैव (आसनप्रदान आदि द्वारा) हेम-स्वर्ण देता है, सदैव हेम को प्रकाशित करता है तथा हैमवत नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव यहाँ निवास करता है । इस कारण, गौतम ! हैमवत वर्ष हैमवत वर्ष कहलाता है ।

हैरण्यवत वर्ष

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे हेरण्णवए वासे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—हरिस्स उत्तरेणं, सिहरिस्स दक्खिणेणं,

पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,

पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,

एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हिरण्णवए वासे पण्णत्ते ।

एवं जह चेव हेमवयं तह चेव हेरण्णवयं पि भाणियव्वं ।

णवरं जीवा दाहिणेणं, उत्तरेणं धणुं अवसिट्ठं तं चेवत्ति ।

—जम्बू, वक्ष, ४ सूत्र १११ पृ. ३७८–७९.

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में हैरण्यवत वर्ष नामक वर्ष कहाँ है ?

उ०—रुक्मि पर्वत से उत्तर में, शिखरि पर्वत से दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में, जम्बूद्वीप में हैरण्यवत वर्ष है।

जैसा हैमवत वर्ष का कथन किया वैसा ही हैरण्यवत वर्ष भी कह लेना चाहिए। विशेषता यह है कि इसकी जीवा दक्षिण में और धनुःपृष्ठ उत्तर में है। शेष कथन वही है।

माल्यवन्तपर्याय पर्वत

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते ! हेरण्णवए वासे मालवंतपरिआए णामं वट्टवेयड्डपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! सुवण्णकूलाए पच्चत्थिमेणं,
रुप्पकूलाए पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं हेरण्णवयस्स वासस्स बहुमज्झदेसभाए
मालवंतपरिआए णामं वट्टवेअड्ढे पण्णत्ते।
जह चेव सद्दावई तह चेव मालवंतपरिआए वि।
अट्ठो—उप्पलाइं पउमाइं मालवंतप्पभाइं, मालवंत-वण्णाइं, मालवंत-वण्णाभाइं,
पभासे अ इत्थ देवे महिड्ढीए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ,
से एएणट्ठेणं०
रायहाणी उत्तरेणंति।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! हैरण्यवत वर्ष में माल्यवन्तपर्याय नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! सुवर्णकूला (महानदी) से पश्चिम में, रुप्यकूला (महानदी) से पूर्व में, हैरण्यवत वर्ष के ठीक मध्य में माल्यवन्तपर्याय नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत है। जैसा शब्दापाती का वर्णन है वैसा ही माल्यवन्त पर्याय का भी है।

माल्यवन्तपर्याय नाम का कारण—यहां माल्यवंत की प्रभा वाले, माल्यवन्त के वर्ण के, एवं माल्यवन्त की आभा वाले उत्पल-पद्म हैं। यहां पल्योपम की स्थिति वाला प्रभास नामक महर्धिक देव निवास करता है। इस कारण (इसका नाम माल्यवन्तपर्याय) है।
राजधानी उत्तर में है।

'हैरण्यवत' संज्ञा का हेतु

[३] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—हेरण्णवए वासे हेरण्णवए वासे ?

उ०—गोअमा ! हेरण्णवए णं वासे रुप्पी-सिहरीहिं वासहरपव्वएहिं बुहओ समवगूढे।
णिच्चं हिरण्णं हिरण्णं दलइ, णिच्चं हिरण्णं मुंचइ, णिच्चं हिरण्णं पगासइ,
हेरण्णवए अ इत्थ देवे परिवसइ,
से एएणट्ठेणंति।

[३] [१] प्र०—भगवन् ! हैरण्यवत वर्ष हैरण्यवत वर्ष क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम ! हैरण्यवत वर्ष रुक्मि और शिखरी नामक वर्षधर पर्वतों से मर्यादित है। यह नित्य हिरण्य को प्रदान करता है, हिरण्य को त्यागता तथा प्रकाशित करता है। यहां हैरण्यवत देव निवास करता है। इस कारण (इसका नाम हैरण्यवत वर्ष) है।

हरिवर्ष

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं,
महाहिमवंतवासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं,
एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते ।
एवं—जाव—पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे,
अट्ठ जोअणसहस्साइं[1] चत्तारि अ एगवीसे जोयणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खंभेणं,
तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं तेरस जोअणसहस्साइं, तिण्णि अ एगसट्ठे जोअणसए, छच्च एगूण वीसइभाए जोअणस्स, अद्धभागं च आयामेणंति ।
तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया,
दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा,
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं-जाव-लवणसमुद्दं पुट्ठा,
तेवत्तरिं जोअणसहस्साइं[2] णव अ एगुत्तरे जोअणसए सत्तरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्ध-भागं च आयामेणं ।
तस्स धणुं दाहिणेणं चउरासीइं जोअणसहस्साइं[3] सोलस जोअणाइं चत्तारि एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।

[२] प्र०—हरिवासस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-मणीहिं तणेहि अ उवसोभिए ।
एवं मणीणं तणाण य वण्णो गंधो फासो सद्दो भाणिअव्वो ।
हरिवासे णं तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे खुड्डा खुड्डियाओ
एवं जो सुसमाए अणुभावो सो चेव अपरिसेसो वत्तव्वोत्ति ।

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में हरिवर्ष नामक वर्ष कहां है ?

उ०—गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत से उत्तर में, पूर्वी लवण-समुद्र से पश्चिम में और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व में जम्बूद्वीपस्थित हरिवर्ष नामक वर्ष है । यह —यावत्--पश्चिम की ओर से पश्चिमी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है इसकी चौड़ाई ८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन की है ।
इसकी बाहु पूर्व-पश्चिम में १३३६१+$\frac{१७}{१९}$ योजन लम्बी है ।
इसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी है और दोनों ओर से लवणसमुद्र से स्पृष्ट है । पूर्व की ओर से पूर्वी लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, इत्यादि । यह ७३९०१$\frac{१७}{१९}$+$\frac{१}{२}$ योजन लम्बी है ।
इसकी धनुःपीठिका दक्षिण मे ८४०१६$\frac{४}{१९}$ योजन की परिधि में है ।

१—सम. १२१
२— " ७३ सूत्र १
३— " ८४ सूत्र ५

[२] प्र०—भगवन् ! हरिवर्ष का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गौतम ! यह अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग वाला—यावत्—मणियों तथा तृणों से सुशोभित है। मणियों और तृणों के वर्ण, गंध, (रस) और स्पर्श तथा शब्द का वर्णन कर लेना चाहिए। हरिवर्ष में जगह—जगह—यत्र—तत्र छोटी—बड़ी वापिकाएं आदि हैं।

इस प्रकार सुषमा काल (द्वितीय आरे) की भांति वर्णन कह लेना चाहिए।

विकटापाती पर्वत

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते ! हरिवासे वासे विअडावई णामं वट्टवेयड्डपव्वए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! हरीए महाणईए पच्चत्थिमेणं,
हरिकंताए महाणईए पुरत्थिमेणं,
हरिवासस्स वासस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं विअडावई णामं वट्टवेअड्डपव्वए पण्णत्ते।
एवं जो चेव सद्दावइस्स विक्खंभुच्चत्तुव्वेहपरिक्खेव-संठाणवण्णावासे अ सो चेव विअडावइस्स वि भाणिअव्वो।
णवरं अरुणो देवो, पउमाइं—जाव—विअडावइण्णाभाइं,
अरुणे अ इत्थ देवे महिड्ढीए
एवं—जाव—दाहिणेणं रायहाणी णेअव्वा।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! हरिवर्ष में विकटापाती नामक वृत्त (गोल) वैताढ्य पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! हरित महानदी से पश्चिम में एवं हरितकान्ता महानदी से पूर्व में, हरिवर्ष के मध्य में विकटापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत है।

शब्दापाती (वृत्त वैताढ्य पर्वत) की जो चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई, परिधि, आकृति आदि है वही विकटापाती की भी कह लेनी चाहिए।

विशेष यह है कि यहां अरुण नामक महर्द्धिक देव है तथा विकटापाती पर्वत के समान वर्ण वाले पद्म—यावत्—हैं। इस प्रकार—यावत्—दक्षिण में (देव की) राजधानी जाननी चाहिए।

'हरिवर्ष' संज्ञा का हेतु

[३] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—हरिवासे हरिवासे ?

उ०—गोअमा ! हरिवासे णं वासे मणुआ अरुणा अरुणोभासा सेआ णं संखदलसण्णिकासा
हरिवये अ इत्थ देवे महिड्ढीए—जाव—पलिओवमट्ठिइए परिवसइ।
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ—हरिवासे हरिवासे।

—जम्बू० वक्ष० ४ सूत्र ८२ पृ. ३०४

[३] [१] प्र०—भगवन् ! हरिवर्ष, हरिवर्ष क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम ! हरिवर्ष में (कुछ) मनुष्य अरुण वर्ण वाले एवं अरुण कान्ति वाले हैं। (कुछ) मनुष्य शंखखण्ड के समान श्वेत वर्ण वाले हैं। यहां हरिवर्ष नामक महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। इस कारण गौतम ! हरिवर्ष, हरिवर्ष कहलाता है।

रम्यकवर्ष

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे रम्मए णामं वासे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स उत्तरेणं,
रुप्पिस्स दक्खिणेणं,
पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं,
एवं जह चेव हरिवासं तह चेव रम्मयं वासं भाणिअव्वं ।
णवरं दक्खिणेणं जीवा, उत्तरेणं धणुं, अवसेसं तं चेव ।

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में रम्यकवर्ष कहां है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त (वर्षधर पर्वत) से उत्तर मे, रुक्मि (पर्वत) से दक्षिण मे पूर्वी लवणसमुद्र से पश्चिम मे और पश्चिमी लवणसमुद्र से पूर्व मे (रम्यकवर्ष) है। हरिवर्ष का जैसा कथन किया गया है वैसा ही रम्यकवर्ष का कह लेना चाहिए। विशेषता यह है कि इसकी जीवा दक्षिण मे है, धनुःपृष्ठ उत्तर मे। शेष वक्तव्यता वही है।

गन्धापाती पर्वत

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते ! रम्मए वासे गंधावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते ? ।

उ०—गोअमा ! णरकंताए पच्चत्थिमेणं,
णारीकंताए पुरत्थिमेणं,
रम्मगवासस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं गंधावईणामं वट्टवेअड्ढे पव्वए पण्णत्ते ।
जं चेव विअडावइस्स तं चेव गंधावइस्स वि वत्तव्वं, अट्ठो बहवे उप्पलाइं—जाव—
गंधावईवण्णाइं गंधावइप्पभाइं,
पउमे अ इत्थ देवे महिड्ढिए—जाव—पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।
रायहाणी उत्तरेणं ति ।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! रम्यकवर्ष में गंधापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत कहां है ?

उ०—गौतम ! नरकान्ता (महानदी) से पश्चिम में, नारीकान्ता (महानदी) से पूर्व में, रम्यकवर्ष के बीचो बीच गंधापाती नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत है।
विकटापाती पर्वत का जो कथन है वही गंधापाती का भी कहना चाहिए।
गंधापाती का अर्थ—वहां के उत्पल—यावत्— गंधापाती के वर्ण के, गंधापाती जैसी प्रभा वाले है, पद्म भी (ऐसे ही हैं) यहां महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है।
(उसकी) राजधानी उत्तर में है।

'रम्यकवर्ष' संज्ञा का हेतु

[३] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—रम्मएवासे रम्मए वासे ?

उ०—गोअमा ! रम्मए वासे णं रम्मे रम्मए रमणिज्जे,
रम्मए अ इत्थ देवे—जाव—परिवसइ ।
से तेणट्ठेणं० ।

[३] [२] प्र०—भगवन् ! रम्यकवर्ष किस कारण से रम्यकवर्ष कहलाता है ?

उ०—गौतम ! रम्यकवर्ष अत्यन्त रम्य एवं रमणीय है तथा यहां रम्यक नामक देव—यावत्—निवास करता है। इस कारण से (यह रम्यक वर्ष कहा जाता है।)

उत्तरकुरु की अवस्थिति

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं,
णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं,
गंधमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता,
पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणविच्छिन्ना अद्ध चंदसंठाणसंठिया,
इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणंति, तीसे जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया, दुहा वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तंजहा—
पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा,
एवं पच्चत्थिमिल्लाए—जाव—पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा,
तेवण्णं जोअणसहस्साइं आयामेणंति,
तीसे णं धणुं दाहिणेणं सट्ठिं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अट्ठारसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोअणस्स परिक्खेवेणं ।[1]

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ८७ पृ. ३१३

[१] [१] प्र०—भगवन् ! महाविदेह वर्ष में उत्तरकुरु नामक कुरु कहाँ है ?

उ०—गौतम ! मन्दर पर्वत से उत्तर में, नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत से दक्षिण में, गंधमादन वक्षार पर्वत से पूर्व में और माल्यवन्त वक्षार पर्वत से पश्चिम में उत्तर-कुरु नामक कुरु है ।

वह पूर्व-पश्चिम में लंबा, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण तथा अर्धचन्द्राकार है वह ११८४२$\frac{२}{९}$ विष्कंभ वाला है । उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम में लम्बी है और दोनों ओर से वक्षार पर्वत से स्पृष्ट है, यथा—पूर्वीय किनारे से पूर्वी वक्षार पर्वत से स्पृष्ट है तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी वक्षार पर्वत से स्पृष्ट है ।

उसकी लम्बाई ५३ हजार योजन है । धनुपृष्ठ दक्षिण में ६०४१८$\frac{१२}{१९}$ योजन की परिधि वाला है ।

उत्तरकुरु का स्वरूप

प्र०—उत्तरकुराए णं भंते ! कुराए केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?

[२] [१] उ०—गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,

एवं पुव्ववण्णिआ जच्चेव सुसमसुसमावत्तव्वया सच्चेव णेअव्वा—जाव—पउमगंधा मिअगंधा अममा सहा तेतली सणिचारी ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ८७ पृ. ३१३

[२] [१] प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरु नामक कुरु का स्वरूप कैसा है ।

उ०—गौतम ! वहाँ भूमिभाग बहुत सम एवं रमणीय है । इस प्रकार पूर्ववर्णित सुषमासुषमा की जो वक्तव्यता है वही यहाँ समझ लेनी चाहिए—यावत्—वहाँ छह प्रकार के मनुष्य होते हैं—पद्मगंध, मृगगंध, अमम, सह, तेतली और शनैश्चारी ।

१—जीवा. सूत्र १४७ पृ. २६२

उत्तरकुरु में यमक पर्वत

[३] [१] प्र०—कहि णं भंते ! उत्तरकुराए जमगाणामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठ जोअणसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए उभओ कूले एत्थ णं जमगा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ।

जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1]
अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उव्वेहेणं,
मूले एगं जोअणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं,
मज्झे अद्धट्ठमाणि जोअणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,
उवरिं पंच जोअणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,
मूले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं,
मज्झे दो जोअणसहस्साइं तिण्णि बावत्तरे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं,
उवरिं एगं जोअणसहस्सं पंच य एकासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं,
मूले विच्छिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ,
जमगसंठाणसंठिया सव्वकणगामया अच्छा सण्हा,
पत्तेअं २ पउमवरवेइयापरिक्खित्ता,
पत्तेअं २ वणसंडपरिक्खित्ता ।
ताओ णं पउमवरवेइआओ दो गाऊआइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं,
वेइआ-वणसण्डवण्णओ भाणिअव्वो ।
तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—जाव—
तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे पासायवडेंसगा पण्णत्ता,
ते णं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं,
इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं,
पासायवण्णओ भाणिअव्वो, सीहासणा सपरिवारा,
—जाव—एत्थ णं जमगाणं देवाणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।[2]

[३] [१] प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरु में यमक नामक दो पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से लेकर ८३४४ योजन के अन्तराल में, शीता महानदी के दोनों तटों पर यमक नामक दो पर्वत हैं । उनकी ऊँचाई एक हजार योजन की एवं गहराई अढ़ाई सौ योजन की है । उनकी लम्बाई-चौड़ाई मूल में एक हजार योजन, मध्य में साढ़े सात सौ योजन और ऊपर पांच सौ योजन की है । उनकी परिधि मूल में ३१६२ योजन से कुछ अधिक है, मध्य में २३७२ योजन से कुछ अधिक और ऊपर १५८१ से कुछ अधिक है ।

ये मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं । वे यमकों (एक साथ उत्पन्न दो भाइयों) की आकृति के समान हैं अर्थात् दोनों का आकार एक समान है । सर्वकनकमय, स्वच्छ एवं चिकने हैं । प्रत्येक पद्मवरवेदिका से घिरा है और प्रत्येक एक-एक वनखण्ड से घिरा है ।

वे पद्मवरवेदिकाएँ दो गव्यूति ऊँची एवं पांच सौ धनुष चौड़ी हैं । यहाँ पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

१—सम, ११३ सूत्र २
२—जीवा. सूत्र १४८, पृ. २८६-८७

उन यमक पर्वतों के ऊपर अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग हैं,—यावत्—उस सम और रमणीय भूमिभाग के बीचोंबीच दो प्रासादावतंसक हैं। वे प्रासादावतंसक ६२।। योजन ऊँचे हैं। ३१। योजन लम्बे-चौड़े हैं।

यहाँ प्रासाद का वर्णन समझ लेना चाहिऐ। वहाँ सपरिवार सिंहासन हैं—यावत्—वहाँ यमक देवों के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के सोलह हजार भद्रासन हैं।

'यमक पर्वत' संज्ञा का हेतु

[४] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जमगा पव्वया २ ?

उ०—गोअमा ! जमगपव्वएसु णं तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे खुड्डाखुड्डियासु वावीसु—जाव—बिलपंतियासु बहवे उप्पलाइं—जाव—जमगवण्णाभाइं,

जमगा य इत्थ दुवे देवा महिड्ढीया,

ते णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं—जाव—भुंजमाणा विहरंति,

से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ-जमगपव्वया २।

अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे—जाव—जमगपव्वया २।

[४] [१] प्र०—भगवन् ! यमक पर्वत यमक पर्वत क्यों कहलाते हैं ?

उ०—गौतम ! यमक पर्वतों पर स्थान-स्थान पर बहुत-सी छोटी-छोटी वापियों में—यावत्—बिलपंक्तियों में बहुत-से उत्पल—यावत्—यमक के वर्ण की आभा वाले हैं। वहाँ यमक नामक दो महर्द्धिक देव निवास करते हैं। वे चार हजार सामानिक देवों का आधिपत्य करते हुए—यावत्—भोग भोगते हुए रहते हैं। गौतम ! इस कारण यमक पर्वत, यमक पर्वत कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त 'यमक पर्वत' यह (उनका) शाश्वत नाम है।

यमक देवों की राजधानियाँ

[५] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोअमा ! जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं अण्णंमि जम्बुद्दीवे दीवे बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ,

बारस जोअणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,

सत्तत्तीसं जोअणसहस्साइं णव अ अडयाले जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं,

पत्तेअं २ पायार परिक्खित्ता,

ते णं पागारा सत्तत्तीसं जोअणाइं अद्धजोयणं च उद्धं उच्चत्तेणं,

मूले अद्धतेरस जोअणाइं विक्खंभेणं,

मज्झे छसकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं,

उवरिं तिण्णि सअद्धकोसाइं, जोअणाइं विक्खंभेणं,

मूले विच्छिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ,

बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा, सव्वरयणामया अच्छा।

ते णं पागारा णाणामणिपंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोहिआ,

तंजहा-किण्हेहिं—जाव—सुक्किल्लेहिं।

ते णं कविसीसगा अद्धकोसं आयामेणं, देसूणं अद्धकोसं उद्धं उच्चत्तेणं, पंच धणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमया अच्छा।

जमिगाणं रायहाणीणं एगमेगाए बाहाए पणवीसं-पणवीसं दारसयं पण्णत्तं।

ते णं दारा बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोयणं च उद्धं उच्चत्तेणं,

तेसिं णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ,

अद्धजोअणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईआ, सीहासणा भाणिअव्वा।

इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खंभेणं,
तावइअं चेव पवेसेणं,
सेआ वरकणग थूभिआगा,
एवं रायप्पसेणइज्जविमाणवत्तव्वयाए दारवण्णओ—जाव—अट्ठट्ठमंगलगाइं ति ।
जमियाणं रायहाणीणं चउद्दिसिं पंच-पंच जोअणसए अबाहाए चत्तारि वणसण्डा पण्णत्ता, तंजहा—
असोगवणे, सत्तिवण्णवणे, चंपगवणे, चूअवणे ।
ते णं वणसंडा साइरेगाइं बारसजोअणसहस्साइं आयामेणं,
पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं,
पत्तेअं २ पागार परिक्खित्ता, किण्हा,
वणसण्डवण्णओ, भूमीओ, पासायवडेंसगा य भाणिअव्वा,
जमिगाणं रायहाणीणं अंतो बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, वण्णगोत्ति ।
तेसि णं बहुसम-रमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे उवयारियालयणा पण्णत्ता,
बारस जोअणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णि जोअणसहस्साइं सत्त य पंचाणउए जोअणसए परिक्खेवेणं,
अद्धकोसं च बाहल्लेणं,
सव्व जंबूणयामया, अच्छा, पत्तेअं २ पउमवरवेइआपरिक्खित्ता,
पत्तेअं २ वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो, तिसोवाणपडिरूवगा तोरण चउद्दिसिं भूमिभागा य भाणिअव्वत्ति,
तस्स णं बहुमज्झ देसभाए एत्थ णं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते,
बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं,
इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं,
वण्णओ, उल्लोआ, भूमिभागा, सीहासणा सपरिवारा,
एवं पासायपंतीओ, (एत्थ पढमा पंती ते णं पासायवडिंसगा) एक्कतीसं जोअणाइं कोसं च उद्धं उच्चत्तेणं,
साइरेगाइं अद्धसोलसजोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं
बिइअपासायपंती ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धसोलस जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं,
साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
तइयपासायपंती ते णं पासायवडेंसया साइरेयाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं,
साइरेगाइं अद्धट्ठजोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
वण्णओ, सीहासणा सपरिवारा,
तेसि णं मूलपासायवडिंसयाणं उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं जमगाणं देवाणं सहाओ सुहम्माओ पण्णत्ताओ,
अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं,
छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं,
णव जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं,
अणेगखंभसयसण्णिविट्ठा, सभावण्णओ,
तासि णं सभाणं सुहम्माणं तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता,
ते णं दारा दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, जोअणं विक्खंभेणं, तावइअं चेव पवेसेणं,
सेआ वण्णओ—जाव—वणमाला ।
तेसि णं दाराणं पुरओ पत्तेअं २ तओ मुहमंडवा पण्णत्ता,
ते णं मुहमंडवा अद्धतेरस जोअणाइं आयामेणं, छस्सकोसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं, साइरेगाइं दो जोअणाइं
उद्धं उच्चत्तेणं—जाव—दारा—भूमिभागा य त्ति,
पेच्छाघरमंडवाणं तं चेव पमाणं, भूमिभागो, मणिपेढियाओत्ति,
ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयाम-विक्खंभेणं,

ताओ णं मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
जोअणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ,
तासि णं उप्पिं पत्तेअं २ तओ थूभा,
ते णं थूभा दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दो जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
सेआ संखदल—जाव—अट्ठट्ठमंगलया,
तेसि णं थूभाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ,
ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयाम-विक्खंभेणं,
अद्धजोअणं बाहल्लेणं,
जिणपडिमाओ वत्तव्वाओ,
चेइअरुक्खाणं मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं, चेइअरुक्ख-वण्णओत्ति,
तेसि णं चेइअरुक्खाणं पुरओ ताओ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ,
ताओ णं मणिपेढिआओ जोयणं आयाम-विक्खंभेणं,
अद्धजोअणं बाहल्लेणं,
तासि णं उप्पिं पत्तेअं २ महिंदज्झया पण्णत्ता,
ते णं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, वइरामयवट्ट वण्णओ, वेइआ-वणसंड-तिसोवाण-तोरणा य भाणियव्वा,
तासि णं सभाणं सुहम्माणं छच्चमणोगुलियासाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ पण्णत्ताओ, पच्चत्थिमेणं दो साहस्सीओ, दक्खिणेणं एगा साहस्सी, उत्तरेणं एगा,-जाव-दामा चिट्ठंतित्ति ।
एवं गोमाणसिआओ, णवरं धूवघडिआओत्ति ।
तासि णं सुहम्माणं सभाणं अंतो बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,
मणिपेढिआ दो जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं,
तासि णं मणिपेढिआणं उप्पिं माणवए चेइअखंभे महिंदज्झयप्पमाणे,
उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता, हेट्ठा छक्कोसे वज्जित्ता जिणसकहाओ पण्णत्ताओत्ति ।
माणवगस्स पुव्वेणं सीहासणा सपरिवारा,
पच्चत्थिमेणं सयणिज्जवण्णओ,
सयणिज्जाणं उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए खुड्डगमहिंदज्झया मणिपेढिआ विहूणा महिंदज्झयप्पमाणा,
तेसिं अवरेणं चोप्फाला पहरणकोसा,
तत्थ णं बहवे फलिहरयणपामुक्खा—जाव— चिट्ठंति ।
सुहम्माणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा,
तासि णं उत्तरपुरत्थिमेणं सिद्धायतणा,
एस चेव जिणघराणवि गमोत्ति ।
णवरं इमं णाणत्तं—एतेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं,
तासिं उप्पिं पत्तेअं २ देवच्छंदया पण्णत्ता
दो जोअणाइं आयामविक्खंभेणं,
साइरेगाइं दो जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं,
सव्वरयणामया, जिणपडिमावण्णओ—जाव—धूवकडुच्छुगा,
एवं अवसेसाणवि सभाणं—जाव—उववायसभाए,
सयणिज्जं हरओ य अभिसेअसभाए बहुआभिसेक्के भंडे,
अलंकारिअसभाए बहु अलंकारिअ भंडे चिट्ठइ,
ववसायसभासु पुत्थयरयणा,

णंदा पुक्खरिणीओ, बलिपेढा वो जोअणाइं आयामविक्खंभेणं, जोअणं बाहल्लेणं जावत्ति—

गाहाओ—उववाओ संकप्पो, अभिसेअविहूसणा य ववसाओ ।
अच्चणिअसुधम्मगमो, जहा य परिवारणाइड्ढी ।।१।।
जावइयंमि पमाणंमि, हुंति जमगाओ णीलवंताओ ।
तावइअमंतरं खलु, जमगवहाणं वहाणं च ।।२।।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ८८, पृ. ३१८

[५] [१] प्र०— भगवन् ! यमक देवों की यमिका राजधानियाँ कहाँ हैं ?

उ०—गोतम ! जम्बूद्वीप में स्थित मन्दर पर्वत के उत्तर में, दूसरे जम्बूद्वीप में बारह हजार योजन जाने पर वहाँ यमक देवों की यमिका राजधानियाँ हैं ।

वे बारह हजार योजन लम्बी-चौड़ी हैं । उनकी परिधि ३७९४८ योजन से किंचित् अधिक है । (दोनों में से) प्रत्येक प्राकार से घिरी है ।

वे प्राकार साढ़े सैंतीस योजन ऊँचे है । मूल में साढ़े बारह योजन विस्तार वाले, मध्य में सवा छह योजन विस्तार वाले और ऊपर तीन योजन एवं आधा कोस विस्तार वाले हैं । मूल में विस्तीर्ण मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतले हैं । बाहर से वृत्ताकार एवं अन्दर से चौकोर हैं । सर्वात्मना रत्नमय और स्वच्छ हैं । वे प्राकार नाना प्रकार की पंचरंगी मणियों के कंगूरों से शोभित हैं । वह इस प्रकार—कृष्ण—यावत्—शुक्ल वर्ण के हैं ।

वे कंगूरे अर्ध कोस लम्बे, कुछ कम अर्ध कोस ऊँचे और पाँच सौ धनुष मोटाई वाले हैं, सर्वमणिमय और स्वच्छ हैं ।

यमिका राजधानियों की एक-एक बाहु में पच्चीस—पच्चीस सौ द्वार हैं । वे द्वार ६२।। योजन ऊँचे हैं । ३१। योजन चौडे हैं और उतने ही प्रवेश वाले हैं । श्वेतवर्ण तथा श्रेष्ठ स्वर्णमय स्तूपिकाओं वाले हैं । इस प्रकार राजप्रश्नीय में कथित विमान की वक्तव्यता के अनुसार द्वारों का वर्णन समझ लेना चाहिए—यावत्-आठ-आठ मंगलद्रव्य हैं ।

यमिका राजधानियों की चारों दिशाओं में पाँच-पाँच सो योजन पर चार वनखण्ड हैं, यथा—अशोकवन, सप्तपर्णवन, चंपकवन, चूतवन । ये वन किंचित् अधिक बारह हजार योजन लम्बे, पाँचसौ योजन चौड़े हैं । इनमें से प्रत्येक प्राकार से घिरा है । वे कृष्ण हैं, इत्यादि वनखण्ड की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए और भूमियों तथा प्रासादावतंसकों का भी कथन कर लेना चाहिए ।

यमिका राजधानियों के अन्दर अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमिभाग है, उसका वर्णन समझ लेना चाहिए । उन अतिसम एवं रमणीय भूमिभागों के बीचों बीच दो अवतारिकालयन हैं, जो बारह सौ योजन लम्बे—चौड़े हैं, ३७९५ योजन की परिधि वाले, आधा कोस की मोटाई वाले, सर्वात्मना जम्बूनदमय और स्वच्छ हैं । (उनमें से) प्रत्येक पद्मवर वेदिका से घिरा है ।

प्रत्येक के वनखण्ड का वर्णन कह लेना चाहिए, तीन सोपान प्रतिरूपक, तोरण, चारों ओर भूमि-भाग भी कह लेने चाहिए ।

उसके ठीक मध्यभाग में एक प्रासादावतंसक कहा गया है । वह ६२।। योजन ऊँचा एवं ३१। योजन लम्बा-चौड़ा है । उसके छत, भूमिभाग तथा सपरिवार सिंहासन का वर्णन कह लेना चाहिए । इसी प्रकार (मूल प्रासादावतंसक के चारों ओर अन्य) प्रासादों की पंक्तियाँ हैं । उनमें प्रथम पंक्ति के प्रासादों की ऊँचाई ३१। योजन की, लम्बाई-चौड़ाई किंचित् अधिक साढ़े पन्द्रह योजन की है । दूसरी पंक्ति के प्रासादों की ऊँचाई कुछ अधिक साढ़े पन्द्रह योजन की है तथा लम्बाई-चौड़ाई साढ़े सात योजन से कुछ अधिक है । तीसरी पंक्ति के प्रासादों की ऊँचाई कुछ अधिक साढ़े सात योजन की तथा लम्बाई-चौड़ाई कुछ अधिक साढ़े तीन योजन की है । इन का वर्णन समझ लेना चाहिए । वहां सपरिवार सिंहासन हैं ।

उन मूल प्रासादावतंसकों के उत्तर पूर्व दिक्कोण में यमक देवों की सुधर्मा सभाएँ हैं। वे साढ़े बारह योजन लम्बी, सवा छह योजन विस्तृत और नौ योजन ऊँची हैं। वे अनेक सैकडों स्तंभों पर सन्निविष्ट हैं, इत्यादि सभा का वर्णन कर लेना चाहिए।

सुधर्मा सभाओं की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं वे द्वार दो योजन ऊँचे, एक योजन चौडे और उतने ही प्रवेश वाले हैं श्वेत वर्ण वाले हैं। वन माला पर्यन्त उनका वर्णन समझ लेना चाहिए।

उन द्वारों के सामने अलग—अलग तीन मुखमंडप हैं। वे मुखमंडप साढ़े बारह योजन लम्बे, सवा छह योजन चौड़े और कुछ अधिक दो योजन उँचे हें—यावत्—द्वार एवं भूमिभाग समझ लेना चाहिए।

प्रेक्षागृहमंडपों का भी वही प्रमाण है। भूमिभाग तथा मणिपीठिकाओं का कथन कर लेना चाहिए।

वे मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी-चौड़ी, आधा योजन मोटी, सर्वमणिमय हैं। (उन पर) सिंहासनों का कथन कह लेना चाहिए।

उन प्रेक्षागृहमंडपों के सामने मणिपीठिकाएँ है। वे मणिपीठिकाएँ दो योजन लम्बी–चौड़ी, एक योजन मोटी एवं सर्वमणिमयी हैं। उनके ऊपर अलग २ तीन स्तूप हैं। वे स्तूप दो योजन ऊँचे और दो योजन लम्बे-चौड़े है। वे शंखखण्ड के समान श्वेत हैं—यावत्—आठ-आठ मंगल-द्रव्य हैं।

उन स्तूपों के चारों ओर चार मणिपीठिकाएँ हैं। वे एक योजन लम्बी–चौड़ी और आधा योजन मोटी हैं। (यहाँ) जिन प्रतिमाओं का कथन समझ लेना चाहिए। चैत्यवृक्षों का भी कथन कर लेना चाहिए। (वहाँ की) मणिपीठिकाएँ दो योजन लम्बी–चौड़ी, एक योजन मोटी हैं।

चैत्यवृक्षों के सामने मणिपीठिकाएँ हैं जो एक योजन लम्बी–चौड़ी और आधा योजन मोटी हैं। उनके ऊपर अलग–अलग महेन्द्रध्वजाएँ हैं जो साढ़े बारह योजन ऊँची, आधा कोस गहरी, आधा कोस मोटी एवं वज्रमय पट्ट वाली हैं, इत्यादि वर्णन कहना चाहिए। वेदिका, वनखण्ड, त्रिसोपान और तोरण कह लेने चाहिए।

सुधर्मा सभाओं में छह हजार मनोगुलिकाएँ–पीठिकाएँ हैं। वे इस प्रकार–पूर्व में दो हजार पश्चिम में दो हजार, दक्षिण में एक हजार और उत्तर में एक हजार–यावत्–वहाँ दाम (मालाएँ) हैं। इसी प्रकार गोमानसिकाएँ (शय्यारूप स्थान विशेष) भी हैं। विशेष यह कि वहाँ धूपघटिकाएँ हैं।

उन सुधर्मा सभाओं के अन्दर अति सम एवं रमणीय भूमिभाग है। वहाँ की मणिपीठिका दो योजन लम्बी–चौड़ी और एक योजन मोटी है। उन मणिपीठिकाओं पर माणवक चैत्यस्तंभ हैं जो महेन्द्रध्वज के बराबर प्रमाण वाला है। (उसके) ऊपर छह कोस अवगाहन करने पर और नीचे छह कोस छोड़ कर जिन की अस्थियां हैं। माणवक (चैत्यस्तंभ) के पूर्व में सपरिवार सिंहासन हैं। पश्चिम में शय्याओं का वर्णन करना चाहिए। शय्याओं के उत्तर–पूर्व कोण में छोटे महेन्द्रध्वज हैं। वे मणिपीठिका से रहित हैं और महेन्द्रध्वज के बराबर प्रमाण वाले हैं। पश्चिम में चोप्पाल नामक शस्त्रागार है। उनमें परिघरत्न आदि–यावत्–शस्त्र रक्खे हैं।

सुधर्मा सभाओं के ऊपर आठ–आठ मंगलद्रव्य हैं। उनके उत्तर-पूर्व में सिद्धायतन हैं। जिनगृहों का भी यही गम है। विशेषता यह है कि–इनके ठीक मध्यभाग में अलग–अलग मणिपीठिकाएँ हैं जो दो योजन लम्बी–चौड़ी और एक योजन मोटी हैं। उनके ऊएर अलग२ देवच्छंदक हैं। वे दो योजन लम्बे–चौड़े, कुछ अधिक दो योजन ऊँचे, सर्वरत्नमय हैं। यहाँ जिन प्रतिमाओं का वर्णन धूपदानी पर्यन्त कह लेना चाहिए।

इसी प्रकार शेष सभाओं का–यावत्–उपपातसभा का वर्णन समझना चाहिए। ह्रदों का भी वर्णन कर लेना चाहिए।

अभिषेकसभा में बहुत-से अभिषेक के योग्य भाण्ड रक्खे हैं। अलंकारिकसभा में अलंकार योग्य बहुत-से भाण्ड हैं। व्यवसायसभाओं में पुस्तकरत्न हैं। नन्दा पुष्करिणी हैं। बलिपीठ हैं जो दो योजन लम्बे-चौड़े एवं एक योजन मोटे हैं।-यावत्-

(दोनों यमक देवों का) उपपात, संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय, (सिद्धायतन आदि की) अर्चा, सुधर्मा सभा में गमन तथा परिवार का स्थापन (इन सब का वर्णन करना चाहिए) ॥१॥

जितने प्रमाण वाले नीलवन्त के यमक पर्वत कहे गए हैं, निश्चित रूप से उतना ही प्रमाण यमकद्रहों का एवं द्रहों का समझना चाहिए ॥२॥

उत्तरकुरु में नीलवन्त द्रह

[६] [१] प्र०—कहि णं भंते ! उत्तरकुराए णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! जमगाणं दक्खिणिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते।

दाहिण-उत्तरायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे, जहेव पउमद्दहे तहेव वण्णओ णेअव्वो,

णाणत्तं-दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते,

णीलवन्ते णामं णागकुमारे देवे, सेसं तं चेव णेअव्वं।

णीलवन्तद्दहस्स पुव्वावरे पासे दस २ जोआणाइं अबाहाए एत्थ णं वीसं कंचणगपव्वया पण्णत्ता[1],

एगं जोअणसयं उद्धं उच्चत्तेणं—

गाहाओ—मूलंमि जोअणसयं, पण्णत्तरि जोअणाइं मज्झंमि।

उवरितले कंचणगा, पण्णासं जोअणा हुंति ॥१॥

मूलंमि तिण्णि सोले, सत्तत्तीसाइं दुण्णि मज्झंमि।

अट्ठावण्णं च सयं, उवरितले परिरओ होइ[2] ॥२॥

पढमित्थ णीलवन्तो, बितिओ उत्तरकुरु मुणेअव्वो।

चंदद्दहोत्थ तइओ, एरावय-मालवन्तो[3] अ ॥३॥

एवं वण्णओ अट्ठो पमाणं पलिओवमट्ठिइआ देवा[4]।

—जम्बू, वक्ष० ४ सूत्र ८९ पृ० ३२९

[६] [१] प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरु में नीलवन्तद्रह नामक द्रह कहाँ है ?

उ०—यमक पर्वतों के दक्षिणी चरमान्त से ८३४४ योजन छोड़ कर शीता महानदी के बहुमध्य देशभाग में नीलवन्तद्रह नामक द्रह कहा गया है। वह दक्षिण-उत्तर लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम में चौड़ा है। पद्मद्रह के समान उसका वर्णन समझ लेना चाहिए।

भिन्नता इसमें यह है कि-यह दो पद्मवरवेदिकाओं से और दो वनखण्डों से घिरा है।

यहाँ नीलवन्त नामक नागकुमार देव है, शेष वर्णन वही समझना चाहिए।

नीलवन्तद्रह के पूर्व और पश्चिम पार्श्व में दस-दस योजन पर बीस कंचनक पर्वत है। वे एक सौ योजन ऊंचे हैं। इनका विस्तार मूल में एक सौ योजन, मध्य में पचहत्तर योजन और ऊपर पचास योजन है। परिधि मूल में ३१६ योजन, मध्य में २३७ योजन और ऊपर १८५ योजन है।

प्रथम नीलवन्त, दूसरा उत्तरकुरु, तीसरा चन्द्रद्रह, चौथा ऐरावत और पांचवां माल्यवन्त द्रह है। नीलवन्त द्रह के समान उनके नाम का कारण, प्रमाण एवं पल्योपम स्थिति वाले देव, इत्यादि वर्णन समझ लेना चाहिए।

१—सम० १०२ सूत्र ३

२(क) सम० ५०, सूत्र ३

(ख) सम० १०० सूत्र ८

३—ठा० ५ उ० २ सूत्र ४३४ पृ० ३१०

४—जीवा० सूत्र १४०-१५० पृ० २८८-९१

'उत्तरकुरु' संज्ञा का हेतु

[७] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–उत्तरकुरा २ ?

उ०—गोअमा ! उत्तरकुराए उत्तरकुरु णामं देवे परिवसइ,
महिड्ढीए–जाव–पलिओवमट्ठिइए,
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ उत्तरकुरा २ !
अदुत्तरं च णं ति–जाव–सासए ।

[७] [१] प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरु को उत्तरकुरु क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! उत्तरकुरु में उत्तरकुरु नामक महर्द्धिक–यावत्–पल्योपम की स्थिति वाला देव निवास करता है इस कारण उत्तरकुरु, उत्तरकुरु कहलाता है। इसके अतिरिक्त यह नाम—यावत्—शाश्वत है।

जम्बूपीठ

[८] [१] प्र०—कहिणं भंते ! उत्तरकुराए २ जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते !

उ०—गोअमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं,
मन्दरस्स उत्तरेणं,
मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
सीआए महाणईए पुरत्थिमिल्ले कूले,
एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते,
पंच जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,
पण्णरस एक्कासीयाइं जोअणसयाइं किंचिविसेसाहिआइं परिक्खेवेणं,
बहुमज्झदेसभाए बारस जोयणाइं बाहल्लेणं,
तयणन्तरं च णं मायाए २ पदेसपरिहाणीए २ सव्वेसु णं चरिमपेरंतेसु दो दो गाउआइं बाहल्लेणं,
सव्वजम्बूणयामए अच्छे,
से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते,
दुण्हंपि वण्णओ,
तस्स णं जम्बूपेढस्स चउद्दिसिं एए चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ—जाव—तोरणाइं,
तस्स णं जम्बूपेढस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मणिपेढिआ पण्णत्ता,
अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं,[1] अद्धजोयणं उव्वेहेणं,
तीसे णं खंधो दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं,

[८] [१] प्र०—भगवन् ! उत्तरकुरु नामक कुरु में जम्बूपीठ नामक पीठ कहाँ है ?

उ०—गौतम ! नीलवन्त वर्षधर से दक्षिण में, मन्दर पर्वत से उत्तर में, माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में और शीता महानदी के पूर्वी तट पर उत्तरकुरु नामक कुरु का जम्बूपीठ कहा गया है। वह पांच सौ योजन लम्बा-चौड़ा, १५८१ योजन से कुछ अधिक परिक्षेप वाला एवं बीचों बीच बारह योजन मोटा है। तदनन्तर अनुक्रम से प्रदेशों की हानि होते-होते—अन्तिम प्रदेशों में दो-दो गव्यूति मोटा है। सर्वजम्बूनदमय है। स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से सब ओर से घिरा है। यहाँ दोनों का वर्णन समझ लेना चाहिए।

उस जम्बूपीठ के चारों ओर चार त्रिसोपानप्रतिरूपक हैं। तोरणों पर्यन्त सब वर्णन समझ लेना चाहिए।

उस जम्बूपीठ के बीचों बीच एक मणिपीठिका है। वह आठ योजन ऊँची है, आधा योजन मोटी है, उसका स्कन्ध (कन्द से ऊपर का भाग) दो योजन ऊँचा और आधा योजन मोटा है।

१—सम. ८ सूत्र. ५

जम्बूसुदर्शना

[६] तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं जम्बूसुदंसणा पण्णत्ता,
अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धजोअणं उव्वेहेणं,
तीसे णं खंधो दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धजोयणं बाहल्लेणं,
तीसे णं साला छ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं,
साइरेगाइं अट्ठ जोअणाइं सव्वग्गेणं,
तीसे णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—
वइरामया मूला, रययसुपइट्ठविडिमा—जाव—अहिअमणणिव्वुइकरी पासाईआ दरिसणिज्जा ।
जंबूए सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता,
तेसि णं सालाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं सिद्धाययणे पण्णत्ते,
कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे—
जाव—दारा पंचधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं—जाव—वणमालाओ ।
मणिपेढिआ पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं,
तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं देवच्छन्दए पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं,
साइरेगाइं पंचधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं,
जिणपडिमावण्णओ णेअव्वोत्ति ।
तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं भवणे पण्णत्ते कोसं आयामेणं,
एवमेव णवरमित्थ सयणिज्जं, सेसेसु पासायवडेंसया सीहासणा य सपरिवारा इति ।
जम्बू णं बारसहिं पउमवरवेइआहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता,
वेइआणं वण्णओ ।
जम्बू णं अण्णेणं अट्ठसएणं जम्बूणं तदद्धुच्चत्ताणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता,
तासि णं वण्णओ,
ताओ णं जम्बू छहिं पउमवरवेइयाहिं संपरिक्खित्ता,
जम्बूए णं सुदंसणाए उत्तर-पुरत्थिमेणं उत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं एत्थ णं अणाढिअस्स देवस्स चउण्हं
सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि जम्बूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ,
तीसे णं पुरत्थिमेणं चउण्हं अग्गमहिसीणं चत्तारि जंबूओ पण्णत्ताओ—

गाहाओ—दक्खिणपुरत्थिमे दक्खिणेण तह अवरदक्खिणेणं च ।
अट्ठ दस बारसेव य भवन्ति जम्बूसहस्साइं ।।१।।
अणिआहिवाण पच्चत्थिमेण सत्तेव होंति जंबूओ ।
सोलस साहस्सीओ चउद्दिसिं आयरक्खाणं ।।२।।

जंबूए णं तिहिं सइएहिं वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता,
जंबूए णं पुरत्थिमेणं पण्णासं जोअणाइं पढमं वणसंडं ओगाहित्ता एत्थ णं भवणे पण्णत्ते,
कोसं आयामेणं, सो चेव वण्णओ सयणिज्जं च,
एवं सेसासु वि दिसासु भवणा ।
जम्बूए णं उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि पुक्ख-
रिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-पउमा, पउमप्पभा, कुमुदा, कुमुदप्पभा ।
ताओ णं कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, पंचधणुसयाइं उव्वेहेणं, वण्णओ,
तासि णं मज्झे पासायवडेंसगा कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं,
वण्णओ, सीहासणा सपरिवारा,
एवं सेसासु विदिसासु,

गाहाओ—पउमा पउमप्पभा चेव, कुमुदा कुमुदप्पभा ।
उप्पलगुम्मा णलिणा, उप्पला उप्पलुज्जला ।।१।।

भिंगा भिंगप्पभा चेव, अंजणा कज्जलप्पभा ।
सिरिकंता सिरिमहिआ, सिरिचंदा चेव सिरिनिलया ।।२।।
जंबूए णं पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं एत्थ णं कूडे पण्णत्ते,
अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दो जोअणाइं उव्वेहेणं, मूले अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, बहुमज्झदेसभाए छ जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, उवरिं चत्तारि जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं—
गाहा—पणवीसट्ठारस बारसेव मूले अ मज्झि उवरिं च ।
सविसेसाइं परिरओ, कूडस्स इमस्स बोद्धव्वो ।।१।।
मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उवरिं तणुए, सव्वकणगामए अच्छे, वेइया-वणसंडवण्णओ,
एवं सेसावि कूडा इति ।

[९] उस मणिपीठिका के ऊपर सुदर्शना नामक जम्बू (जामुन) है। वह आठ योजन ऊंचा, आधा योजन गहरा है। उसका स्कंध दो योजन ऊँचा और आधा योजन मोटा है। उसकी शाखा छह योजन ऊँची है। मध्य भाग में आठ योजन लम्बी-चौड़ी हैं और उसका सर्वाग्र कुछ अधिक आठ योजन का है।

उसका वर्णन इस प्रकार है—उसके मूल वज्रमय हैं। उसकी विडिमा रजतमयी और सुप्रतिष्ठित है। वह—यावत्—मन को अत्यन्त आनन्द उत्पन्न करने वाली है। प्रसादजनक एवं दर्शनीय है।

सुदर्शना जम्बू की चारों दिशाओं में चार शाखाएं कही गई हैं। उन शाखाओं के बीचोंबीच सिद्धायतन है। वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, कुछ कम एक कोस ऊँचा, कई सौ खंभों पर खड़ा हुआ है—यावत्—द्वारों का कथन समझ लेना चाहिए। वे पांच सौ धनुष ऊंचे है—यावत्—वनमालाएं हैं। मणिपीठिका पांच सौ धनुष लम्बी-चौड़ी है एवं अढ़ाई सौ धनुष मोटी है। उस मणिपीठिका के ऊपर देवच्छन्दक है जो पाँच सौ धनुष लम्बा-चौड़ा है, किंचित् अधिक पाँच सौ धनुष ऊंचा है। यहाँ जिनप्रतिमा का वर्णन समझ लेना चाहिए।

उसकी जो पूर्वी शाखा है, उस पर एक भवन है जो एक कोस लम्बा है। उसका वर्णन इसी प्रकार-सिद्धायतन के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ शय्या का कथन करना चाहिए।

शेष शाखाओं पर प्रासादावतंसक हैं। सपरिवार सिंहासन भी समझ लेने चाहिए।
यह (सुदर्शना) जम्बू सब ओर से बाहर पद्मवरवेदिकाओं से परिवृत है। यहाँ वेदिका का वर्णन समझ लेना चाहिए।

यह जम्बू अन्य एक सौ आठ जम्बूओं से सब ओर से घिरा है, जिनकी ऊँचाई इससे आधी है। उन सबका वर्णन कह लेना चाहिए। वे (जम्बू) छह पद्मवरवेदिकाओं से घिरे हैं।

इस सुदर्शना जम्बू से उत्तर--पूर्व में, उत्तर में तथा उत्तर--पश्चिम में अनादृत देव के चार हजार सामानिक देवों के चार हजार जम्बू हैं। उस (सुदर्शना जम्बू) से पूर्व में (अनादृत देव की) चार अग्रमहिषियों की चार जम्बू हैं।

दक्षिण--पूर्व में दक्षिण में तथा दक्षिण--पश्चिम में क्रमशः आठ हजार, दस हजार और बारह हजार जम्बू हैं। (अनादृत देव के अनीकाधिपतियों के) पश्चिम दिशा में सात ही जम्बू हैं। चारों दिशाओं में आत्मरक्षक देवों के (चार--चार के हिसाब से) सोलह हजार जम्बू हैं।

वह जम्बू सौ योजन प्रमाण तीन वनखण्डों से सब ओर से घिरी हैं।

जम्बू से पूर्व दिशा से पचास योजन प्रथम वनखण्ड में जाने पर एक भवन कहा गया है। वह एक कोस लम्बा है। उसका वर्णन वही (पूर्ववत्) है। शय्या का भी कथन कर लेना चाहिए। इसी प्रकार शेष दिशाओं में भी भवन हैं। जम्बू से उत्तर--पूर्व दिशा में, प्रथम वनखण्ड में पचास,

योजन अवगाहन करने पर चार पुष्करिणियाँ हैं, वे इस प्रकार हैं—पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा और कुमुदप्रभा। वे एक कोस लम्बी, आधा कोस चौड़ी और पांच सौ धनुष गहरी हैं। उनक वर्णन समझ लेना चाहिए।

उनके मध्य में प्रासादावतंसक हैं, जो एक कोस लम्बे, आधा कोस चौड़े और देशोन एक कोस ऊंचे है। सपरिवार सिंहासन आदि का वर्णन समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार शेष विदिशाओं में भी प्रासाद और भवन कह लेना चाहिए)।

गाथार्थ इस प्रकार है—

पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा, कुमुदप्रभा, उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला, उत्पलोज्ज्वला, भृंगा, भृंगप्रभा, अंजना, कज्जलप्रभा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता, श्रीचन्द्रा और श्रीनिलया (ये सब पुष्करिणियों के नाम है)।

जम्बू के पूर्वीय प्रासाद के उत्तर में, उत्तर-पूर्व दिशा के प्रासाद के दक्षिण में कूट है। वह आठ योजन ऊचा और दो योजन गहरा है। मूल मे आठ योजन लम्बा--चौड़ा है, मध्यभाग में छह योजन लम्बा--चौड़ा है और ऊपर चार योजन लम्बा-चौड़ा है। इस कूट की परिधि मूल में कुछ अधिक पच्चीस योजन, मध्य मे अठारह योजन और ऊपर बारह योजन की है। यह मूल में विस्तीर्ण, मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर पतला है। सर्वकनकमय एवं स्वच्छ है। यहाँ वेदिका और वनखण्ड का वर्णन कर लेना चाहिए। इसी प्रकार शेष (सात) कूट भी समझ लेने चाहिए।

जम्बू सुदर्शना के नाम

[१०][१] **जंबूए णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा—**

गाहाओ—सुदंसणा अमोहा य, सुप्पबुद्धा जसोहरा।
विदेहजम्बू सोमणसा, णिअया णिच्चमंडिआ ॥१॥
सुभद्दा य विसाला य सुजाया सुमणा वि आ।
सुदंसणाए जंबूए, णामधेज्जा दुवालस ॥२॥

जंबूए णं अट्ठट्ठमंगलगा०

[१०][१] सुदर्शना जम्बू के बारह नाम कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) सुदर्शना (२) अमोघा (३) सुप्रबुद्धा (४) यशोधरा (५) विदेहजम्बू (६) सौमनस्या (७) नियता (८) नित्यमण्डिता (९) सुभद्रा (१०) विशाला (११) सुजाता और (१२) सुमना।

जम्बू के (आगे) आठ–आठ मंगल आदि (ध्वजा, छत्र आदि) हैं।

'जम्बू सुदर्शना' संज्ञा का कारण

[११][१] **प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–जम्बू सुदंसणा २ ?**

उ०—गोअमा ! जंबूए णं सुदंसणाए अणाढिए णामं जंबुद्दीवाहिवई परिवसइ, महिड्ढीए,
से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं–जाव–आयरक्खदेवसाहस्सीणं, जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स जम्बूए सुदंसणाए अणाढियाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं देवाणं य देवीण य–जाव–विहरइ,
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एव वुच्चइ,
अदुत्तरा च णं गोअमा ! जम्बूसुदंसणा–जाव–भुवि च, ३ धुवा णियया सासया अक्खया जाव—अवट्ठिया।

[११][१] प्र०—भगवन् ! जम्बू सुदर्शना को जम्बू सुदर्शना क्यों कहते हैं ?

उ०—सुदर्शना जम्बू पर जम्बूद्वीप का अधिपति अनाहत देव निवास करता है। वह महान् ऋद्धि का धारक है। वह चार हजार सामानिक देवों का—यावत्—सहस्रों आत्मरक्षक देवों का, जम्बूद्वीप का, सुदर्शना जम्बू का अनाहता राजधानी का तथा बहुत-से देवों और देवियों का (अधिपतित्व करता हुआ)—यावत्—रहता है। गौतम ! इस कारण ऐसा कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, गौतम ! सुदर्शना जम्बू—यावत्—सदा था, वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय—यावत्—अवस्थित है।

अनाहत देव की राजधानी

[१२][१] प्र०—**कहि णं भंते ! अणाहिअस्स देवस्स अणाहिआ णामं रायहाणी पण्णत्ता ?**

उ०—**गोअमा ! जम्बुद्दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, जं चेव पुव्ववण्णिअं जमिगापमाणं तं चेव णेअव्वं, —जाव—उववाओ अभिसेओ अ निरवसेसोत्ति[1]।**

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ९० पृ. ३३०—३३२

[१२][१] प्र०—भगवन् ! अनाहत देव की अनाहता नामक राजधानी कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से उत्तर में है, यमिका राजधानी का जो वर्णन पहले किया गया है वही प्रमाण यहां समझ लेना चाहिए,—यावत्—उपपात एवं अभिषेक पूरा कह लेना चाहिए।

देवकुरु

[१] [१] प्र०—**कहि णं भंते ! महाविदेहे वासे देवकुराणामं कुरा पण्णत्ता ?**

उ०—**गोअमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं,**
णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,
विज्जुप्पहस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
सोमणसवक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
एत्थ णं महाविदेहे वासे देवकुराणामं कुरा पण्णत्ता।
पाईण—पडीणायया, उदीण—दाहिणवित्थिण्णा
इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं।
जहा उत्तरकुराए वत्तव्वया[2]—जाव—अणुसज्जमाणा
पम्हगंधा मिअगंधा अममा सहा तेतली सणिचारीति ६।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ९७

[१] [१[प्र०—भगवन् ! महाविदेहवर्ष में देवकुरु नामक कुरु कहाँ है ?

उ०—गौतम ! मेरुपर्वत से दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत से पूर्व में तथा सौमनस वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में, महाविदेह वर्ष में देवकुरु नामक कुरु है।

यह पूर्व—पश्चिम में लम्बा और उत्तर—दक्षिण में चौड़ा है। इसकी चौड़ाई ११८४२$\frac{2}{19}$ योजन है। इसका वर्णन उत्तरकुरु के समान—यावत्—प्रवाह रूप से रहने वाले (१) पद्मगंध (२) मृगगंध (३) अमम (४) सह (५) तेजस्तलिन और (६) शनैश्चारी (जाति के मनुष्य वहाँ रहते हैं।),

---

१—जीवा. सूत्र १५१—५२ पृ. २९२—९७.

२—जीवा. प्र. ३ सूत्र १४७ पृ. २६२

चित्रकूट-विचित्रकूट पर्वत

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते ? देवकुराए चित्त-विचित्त कूडा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठ चोत्तीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं उभओ कूले

एत्थ णं चित्त-विचित्तकूडा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता[1] ।

एवं जच्चेव जमगपव्वयाणं सच्चेव एएसिं,

रायहाणीओ दक्खिणेणंति ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ९८

[२] [१] प्र०—भगवन् ! देवकुरु में चित्र-विचित्रकूट नामक दो पर्वत कहां हैं ?

उ०—गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तरीय चरमान्त से ८३४⅘ योजन दूर सीतोदा महानदी के पूर्व-पश्चिम के दोनों किनारों पर चित्र-विचित्रकूट नामक दो पर्वत हैं। इनका सब वर्णन यमक पर्वतों की ही भांति जानना चाहिए। (इनके अधिपति चित्रविचित्र देवों की) राजधानियां दक्षिण में हैं।

निषधादि पांच द्रह

[३] [१] प्र०—कहि णं भंते ! देवकुराए कुराए णिसढद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! तेसिं चित्त-विचित्तकूडाणं पव्वयाणं उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठ चोत्तीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए

एत्थ णं णिसहद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ।

एवं जच्चेव नीलवंत-उत्तरकुरु-चंद-एरावय-मालवंताणं वत्तव्वया सच्चेव णिसह-देवकुरु-सूर-सुलस विज्जुप्पभाणं णेअव्वा[2] ।

रायहाणीओ दक्खिणेणंति ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र ९९

[३] [१] द्र०—भगवन् ! देवकुरु में निषधद्रह नामक द्रह कहां है ?

उ०—गौतम ! उन चित्र-विचित्रकूट पर्वतों के उत्तरीय चरमान्त से ८३४⅘ की दूरी पर सीतोदा महानदी के बीचों बीच निषधद्रह नामक द्रह हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त नीलवन्त, उत्तरकुरु चन्द्र, ऐरावत और माल्यवन्त (नामक उत्तर कुरु के पांच द्रहों) की वक्तव्यता के समान निषध, देवकुरु, सूर्य, सुलस तथा विद्युत्प्रभ द्रह की वक्तव्यता जान लेनी चाहिए।
(इनके अधिपति देवों की) राजधानियां दक्षिण में हैं।

कूटशाल्मली पीठ

[४] [१] प्र०—कहि णं भंते ! देवकुराए कुराए कूडसामलिपेढे णामं पेढे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं,

णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,

---

१. ठा० अ० १० सूत्र ७६८ पृ० ४९१

२. ठा० अ० ५ उ० २ सूत्र ४३४ पृ० ३१०

विज्जुप्पभस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
सीओआए महाणईए पच्चत्थिमेणं,
देवकुरुपच्चत्थिमद्धस्स बहुमज्झदेसभाए
एत्थ णं देवकुराए कुराए कूडसामलीपेढे णामं पेढे पण्णत्ते[1] ।
एवं जच्चेव जंबूए सुदंसणाए[2] वत्तव्वया सच्चेव सामलीए वि भाणियव्वा णामविहूणा ।
गरुलदेवे, रायहाणी दक्खिणेणं ।
अवसिट्ठं तं चेव–जाव–देवकुरु अ इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ।
से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ–देवकुरा देवकुरा ।
अदुत्तरं च णं देवकुराए० ।

—जम्बू. वक्ष. ४ सूत्र १०० पृ. ३५५

[४] [१] प्र०—भगवन् ! देवकुरु में कूटशाल्मली पीठ नामक पीठ कहां है ?

उ०—गौतम ! मेरु पर्वत से दक्षिण–पश्चिम में, निषध वर्षधर पर्वत से उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत से पूर्व मे, शीतोदा महानदी से पश्चिम में तथा देवकुरु के पश्चिमार्ध के मध्य में देवकुरु स्थित कूटशाल्मली नामक पीठ है । जम्बूसुदर्शन (वृक्ष) की भांति शाल्मली का भी, नाम को छोड़ कर समस्त वर्णन कर लेना चाहिए ।

यहां गरुड़ नामक देव रहता है । (इस देव की) राजधानी दक्षिण में है । शेष वर्णन पूर्ववत् है । —यावत्—यहां (देवकुरु में) देवकुरु नामक पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है । इस कारण, गौतम ! देवकुरु, देवकुरु कहलाता है । इस के अतिरिक्त देवकुरु का यह नाम शाश्वत है ।

जम्बूद्वीपवर्त्ती पदार्थ

संग्रह गाथा—खंडा जोअण वासा, पव्वय कूडा य तित्थ सेढीओ ।
विजय-द्दह–सलिलाओ, पिंडए होइ संगहणी ।।१।।

[१] [१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहप्पमाणमेत्तेहिं खंडेहिं केवइअं खंडगणिएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णउअं खंडसयं खंडगणिएणं पण्णत्ते ।

[२] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं जोअणगणिएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा !

सत्तेव य कोडिसया, णउआ छप्पण्ण सयसहस्साइं ।
चउणवइं च सहस्सा, सयं विवड्ढं च गणिअपयं ।।१।।

[३] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कति वासा पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! सत्त वासा, तंजहा—भरहे एरवए हेमवए हिरण्णवए हरिवासे रम्मगवासे महाविदेहे ।

[४] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कति केवइआ वासहरा पण्णत्ता ?

केवइआ मंदरा पव्वया पण्णत्ता ? केवइआ चित्तकूडा, केवइआ विचित्तकूडा, केवइआ जमगपव्वया, केवइया कंचणपव्वया, केवइआ वक्खारा, केवइआ दीहवेअड्ढा, केवइआ वट्टवेअड्ढा पण्णत्ता ?

---

१ ठा० अ० १० सूत्र ७६४ पृ० ४९० ।
२ " " "

उ०—गोअमा ! जंबुद्दीवे छ वासहरपव्वया, एगे मंदरे पव्वए, एगे चित्तकूडे, एगे विचित्तकूडे, दो जमगपव्वया, दो कंचणगपव्वयसया,[1] वीसं वक्खारपव्वया,[2] चोत्तीसं वीहवेअड्ढा,[3] चत्तारि वट्टवेअड्ढा,[4] एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे दुण्णि अउणत्तरा पव्वयसया भवंतीतिमक्खायंति ।

[५] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइया वासहरकूडा, केवइया वक्खारकूडा, केवइआ वेअड्ढकूडा, केवइआ मंदरकूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! छप्पण्णं वासहरकूडा, छण्णउइं वक्खारकूडा, तिण्णि छलुत्तरा वेअड्ढकूडसया, नव मंदरकूडा पण्णत्ता ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे चत्तारि सत्तसट्ठा कूडसया भवन्तीतिमक्खायं ।

[६] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे कति तित्था ?

उ०—गोयमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तंजहा--मागहे, वरदामे, पभासे ।[5]

[७] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे एरवए वासे कति तित्था पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तंजहा-मागहे, वरदामे, पभासे ।

[८] प्र०—एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे २ महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजए कति तित्था पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! तओ तित्था पण्णत्ता, तंजहा-मागहे, वरदामे, पभासे ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे २ एगे बिउत्तरे तित्थसए भवंतीतिमक्खायंति ।

[९] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ विज्जाहरसेढीओ, केवइआ आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोअमा ! जंबुद्दीवे दीवे अट्ठसट्ठी विज्जाहरसेढीओ, अट्ठसट्ठी आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे छत्तीसे सेढिसए भवंतीतिमक्खायं ।

[१०] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे केवइआ चक्कवट्टिविजया, केवइयाओ रायहाणीओ, केवइआओ तिमिसगुहाओ, केवइआओ खंडप्पवायगुहाओ, केवइआ कयमालया देवा, केवइया णट्टमालया देवा, केवइआ उसभकूडा पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! जंबुद्दीवे दीवे चोत्तीसं चक्कवट्टिविजया,

चोत्तीसं रायहाणीओ, चोत्तीसं तिमिसगुहाओ, चोत्तीसं खंडप्पवायगुहाओ, चोत्तीसं कयमालया देवा, चोत्तीसं णट्टमालया देवा, चोत्तीसं उसभकूडा पव्वयापण्णत्ता ।

[११] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ महद्दहा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सोलस महद्दहा पण्णत्ता ।[6]

१—सम० १०२ सूत्र ३

२—(क) ठा० २, उ० ३ सूत्र ८७ पृ० ६५

(ख) ,, ४, उ० २ ,, ३०२ पृ० ३१२

(ग) ठा० ५ उ० २ सूत्र ४३४ पृ० ३१०

(घ) ,, ८ सूत्र ६३७ पृ० ४१२-१३

(ङ) ,, १० सूत्र ७६८. ४९१

३—सम० ३४ सूत्र ३

४—ठा० ४ उ० २ सूत्र ३०२ पृ० २१२-१३

५—ठा. ३ उ. १ सूत्र १४२ पृ. ११६

६—ठा. ६ सूत्र ५२२ पृ. ३५०

संग्रहगाथा का अर्थ—
खण्ड, योजन, वर्ष, पर्वत, कूट, तीर्थ, श्रेणियाँ, विजय, ह्रद, नदियाँ—इन सब पदार्थों का सामान्य निर्देश करने वाली यह संग्रहगाथा है ।

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र के बराबर खंडों से खंडों की संख्या कितनी है ?
उ०—खण्ड संख्या से १९० खण्ड कहे गए हैं ।

[२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप योजन संख्या से अर्थात् योजनप्रमाण सम चौकोर खंडों से कितना है ?
उ०—गौतम ! ७९०५६९४१५० योजन जम्बूद्वीप का गणितपद—क्षेत्र है ।

[३] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कितने वर्ष हैं ?
उ०—गौतम ! सात वर्ष हैं—(१) भरत (२) ऐरवत (३) हैमवत (४) हैरण्यवत (५) हरिवर्ष रम्यकवर्ष (७) महाविदेह ।

[४] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने वर्षधर (पर्वत) हैं ? कितने मन्दर पर्वत हैं ? कितने चित्रकूट, कितने विचित्रकूट, कितने यमकपर्वत, कितने कांचनपर्वत, कितने वक्षस्कार, कितने दीर्घवैताढ्य और कितने वृत्तवैताढ्य (पर्वत) हैं ?
उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में छह वर्षधर पर्वत है, एक मन्दर पर्वत है, एक चित्रकूट है, एक विचित्रकूट है, दो यमक पर्वत हैं, दो सौ कांचनक पर्वत हैं, बीस वक्षस्कार पर्वत हैं, चौतीस दीर्घ वैताढ्य हैं, चार वृत्त वैताढ्य हैं, इस प्रकार अगले-पिछले मिलाकर सब २६९ पर्वत हैं ।

[५] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने वर्षधरकूट हैं, कितने वक्षस्कारकूट हैं ?
उ०—गौतम ! छप्पन वर्षधरकूट हैं, छियानवे वक्षस्कारकूट हैं, तीन सौ छह वैताढ्यकूट हैं, नौ मन्दर-कूट हैं ।
इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप में चार सौ सड़सठ कूट हैं ।

[६] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरत वर्ष में कितने तीर्थ हैं ?
उ०—गौतम ! तीन तीर्थ हैं, वे इस प्रकार—मागध, वरदाम और प्रभास ।

[७] प्र०—जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में कितने तीर्थ हैं ?
उ०—गौतम ! तीन तीर्थ हैं, वे इस प्रकार—मागध, वरदाम, प्रभास ।

[८] प्र०—इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में प्रत्येक चक्रवर्ती-विजय में कितने तीर्थ हैं ?
उ०—गौतम ! तीन तीर्थ हैं, वे इस प्रकार—मागध, वरदाम और प्रभास ।
इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप में १०२ तीर्थ हैं ।

[९] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितनी विद्याधरश्रेणियाँ हैं और कितनी आभियोगिकश्रेणियाँ हैं ?
उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में ६८ विद्याधर श्रेणियाँ और ६८ आभियोगिकश्रेणियाँ हैं ।
इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप में एक सौ छत्तीस श्रेणियाँ हैं ।

[१०] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने चक्रवर्ती-विजय हैं, कितनी राजधानियाँ हैं, कितनी तमिस्रगुफाएँ हैं, कितनी खण्डप्रपात गुफाएँ हैं, कितने कृतमाल देव हैं, कितने नक्तमाल देव हैं, और कितने ऋषभ-कूट हैं ?
उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में चौंतीस चक्रवर्ती-विजय हैं, चौंतीस राजधानियाँ हैं, चौंतीस तमिस्र गुफाएँ हैं, चौंतीस खंडप्रपात गुफाएँ हैं, चौंतीस कृतमाल देव और चौंतीस नक्तमाल देव हैं । चौंतीस ऋषभकूट हैं ।

[११] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने महाह्रद हैं ।
उ०—गौतम ! सोलह महाह्रद हैं ।

जम्बूद्वीप में नदियाँ

[१२] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयाओ महाणईओ वासहरपवहाओ, केवइयाओ महाणईओ कुंडप्पवहाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस महाणईओ वासहरपवहाओ,[1]
छावत्तरि महाणईओ कुंडप्पवहाओ,
एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे णउति महाणईओ भवंतीतिमक्खायं ।

[१३] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे भरहेर[2]वएसु[3] वासेसु कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
गंगा, सिंधू, रत्ता, रत्तवई ।
तत्थ णं एगमेगा महाणई चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ,
एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे भरह-एरवएसु वासेसु छप्पण्णं सलिलासहस्सा भवंतीतिमक्खायति ।

[१४] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! हेमवय[4]हेरण्णवएसु[5] वासेसु कति महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
रोहिता, रोहिअंसा, सुवण्णकूला, रुप्पकूला ।
तत्थ णं एगमेगा महाणई अट्ठावीसाए-अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ।
एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे हेमवय-हेरण्णवएसु वासेसु बारसुत्तरे सलिलासयसहस्से भवंतीतिमक्खायं इति ।

[१५] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे हरिवास[6]-रम्मगवासेसु[7] कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
हरी, हरिकंता, नरकंता, नारिकंता ।
तत्थ णं एगमेगा महाणई छप्पण्णाए-छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ,
एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे हरिवास-रम्मगवासेसु दो चउवीसा सलिलासयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं ।

[१६] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे महाविदेहे वासे कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! दो महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
सीआ य सीओआ य [8]।
तत्थ णं एगमेगा महाणई पंचहिं २ सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ,
एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दस सलिलासयसहस्सा चउसट्ठिं च सलिलासहस्सा भवंतीतिमक्खायं ।

१—(क) ठा. ६ सूत्र ५२२ पृ. ३५०
(ख) ठा. ७ सूत्र ५५५ पृ. ३७७
२-७-ठा. २ उ. ३ सूत्र ८८ पृ. ६५
८—ठा० २ उ० सूत्र ८८ पृ० ६५

[१७] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं केवइया सलिलासयसहस्सा पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिमपच्चत्थिमाभिमुहे लवणसमुद्दं समप्पेंतित्ति ।

[१८] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं केवइआ सलिलासयसहस्सा पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहे—जाव— समप्पेइ ।

[१९] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिलासयसहस्सा पुरत्थाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! सत्त सलिलासयसहस्सा अट्ठवीसं च सहस्सा—जाव—समप्पेंति ।

[२०] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिलासयसहस्सा पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?

उ०—गोयमा ! सत्त सलिलासयसहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा—जाव—समप्पेंति ।
एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासयसहस्सा छप्पण्णं च सहस्सा भवंतीति—मक्खायं इति ।

—जम्बू० वक्ष० ६ सूत्र १२५ पृ० ४२५—४२७

[१२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे कितनी महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से उद्गत होने वाली और कितनी महानदियाँ कुंडों से उद्गत होने वाली हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में चौदह महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से उद्गत होती-निकलती हैं और ७६ महानदियाँ कुंडों से उद्गत होती हैं । इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप में नब्बे महानदियाँ हैं ।

[१३] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत वर्ष में कितनी महानदियाँ हैं ?

उ०—गौतम ! चार महानदियाँ हैं, यथा—गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती ।
इनमें से प्रत्येक महानदी चौदह हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती हैं । इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत वर्ष में छप्पन हजार नदियाँ हैं ।

[१४] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में हैमवत और हैरण्यवत वर्षों में कितनी महानदियाँ हैं ?

उ०—गौतम ! चार महानदियाँ कही हैं, यथा—रोहिता, रोहितास्या, स्वर्णकूला और रूप्यकूला ।
इनमें से प्रत्येक नदी अट्ठाईस-अट्ठाईस हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती हैं ।

इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप के हैमवत और हैरण्यवत वर्षों में एक लाख बारह हजार नदियाँ हैं ।

[१५] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के हरिवर्ष और रम्यकवर्ष में कितनी नदियाँ कही गई हैं ?

उ०—गौतम ! चार महानदियाँ कही हैं, यथा—हरि, हरिकान्ता, नरकान्ता और नारीकान्ता ।
इनमें से प्रत्येक नदी छप्पन छप्पन हजार नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती हैं ।

इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप के हरिवर्ष और रम्यकवर्ष में दो लाख चौवीस हजार नदियाँ हैं ।

[१६] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में कितनी महानदियाँ हैं ?

उ०—गौतम ! दो महानदियाँ है, यथा-शीता और शीतोदा ।

इनमें से प्रत्येक नदी पांच लाख बत्तीस नदियों से युक्त होकर पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती है। इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप के महाविदेह वर्ष में दस लाख चौंसठ हजार नदियाँ हैं ।

[१७] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप मे, मन्दर पर्वत के दक्षिण में कितनी लाख नदियाँ पूर्व और पश्चिम लवण-समुद्र में मिलती है ?

उ०—गौतम ! एक सौ छयानवे लाख नदियाँ पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती हैं ।

[१८] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में कितनी लाख नदियाँ पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र मे मिलती है ?

उ०—गौतम ! एक सौ छयानवे लाख नदियाँ पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में मिलती है ।

[१९] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप मे कितनी लाख नदियाँ पूर्वाभिमुख होकर लवणसमुद्र मे मिलती है ?

उ०—गौतम ! सात लाख अट्ठाईस हजार नदियाँ—यावत्—मिलती है ।

[२०] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप मे कितनी लाख नदियाँ पश्चिमाभिमुख होकर लवणसमुद्र में मिलती हैं ?

उ०—गौतम ! सात लाख अट्ठाईस हजार नदियाँ—यावत्—मिलती है ।

इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप में चौदह लाख छप्पन हजार नदियाँ हैं, ऐसा कहा गया है ।

जम्बूद्वीप-लवणसमुद्र के प्रदेशों का स्पर्श

[१] [१] **प्र०—जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स पदेसा लवणसमुद्दं पुट्ठा ?**

उ०—हंता पुट्ठा ।

[२] **प्र०—ते णं भंते ! किं जंबुद्दीवे दीवे, लवणसमुद्दे ?**

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे, णो खलु लवणसमुद्दे ।

एवं लवणसमुद्दस्सवि पएसा जंबुद्दीवे पुट्ठा भाणिअव्वा इति[1] ।

—जम्बू० व० ६ सूत्र १२४ पृ० १२४

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के प्रदेश क्या लवणसमुद्र से स्पृष्ट हैं ?

उ०—हाँ, स्पृष्ट है ।

[२] प्र०—भगवन् ! वे (प्रदेश) क्या जम्बूद्वीप हैं या लवणसमुद्र ?

उ०—गौतम ! (वे) जम्बूद्वीप हैं, लवणसमुद्र नहीं ।

इसी प्रकार लवणसमुद्र के प्रदेश जम्बूद्वीप से स्पृष्ट कह लेने चाहिए ।

१—जीवा० सूत्र १४६ पृ० २६१

लवणसमुद्रवर्णन

[१] जंबुद्दीवं णाम दीवं
लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते
सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति ।

[१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिते ?
उ०—गोयमा ! समचक्कवालसंठिए, तो विसमचक्कवालसंठिए ।

[२] प्र०—लवणे णं भंते समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,[1]
पन्नरसजोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगोणचत्तालीसे किंचिविसेसाहिए लवणोदधिणो चक्कवालपरिक्खेवेणं,[2] ।
से णं एक्काए पउमवरवेइयाए
एगेण य वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ ।
दोण्ह वि वण्णओ ।
सा णं पउमवर० अद्धजोयणं उड्ढं०[3]
पंचधणुसयविक्खंभेणं लवणसमुद्दसमियपरिक्खेवेणं, सेसं तहेव,
से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं-जाव-विहरइ ।

[१] लवण समुद्र नामक समुद्र, जो वृत्त एवं वलयाकार है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप को सभी ओर से घेर कर स्थित है ।

[१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र सम चक्रवाल आकार का है, या विषमचक्रवाल आकार का ?
उ०—गौतम ! समचक्रवाल-आकार का है, विषमचक्रवाल-आकार का नहीं ।

[२] प्र०—भगवन् ! लवण समुद्र का चक्राकार कितना विस्तृत और कितनी परिधि वाला है ?
उ०—गौतम ! लवण समुद्र का चक्राकार दो लाख योजन चौड़ा है एवं १५८११३९ योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला है ।

इसके चारों ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है । इन दोनों का वर्णन समझ लेना चाहिए । यह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊंची, पांच सौ धनुष चौड़ी एवं लवणसमुद्र के बराबर परिधि वाली है । शेष वर्णन उसी प्रकार है । वनखण्ड कुछ कम दो योजन है-यावत्-(यहाँ देव) विचरता है ।

---

१. (क) ठा. २ उ० ३ सूत्र ९१ पृ० ७४ ।
(ख) सम. सूत्र १२५ पृ० ११८ ।
२. लवणस्समुद्दस्स णं पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं पंच जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । स० १२८
३. ठा. २, उ. ३ सूत्र ९१ पृ. ७४

लवणसमुद्र की गहराई

[२] [१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं उव्वेहपरिवुड्ढीते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणस्स[1] णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउति २ पदेसे गंता पदेसं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

पंचाणउति २ वालग्गाइं गंता वालग्गं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

पंचाणउति २ लिक्खाओ गंता लिक्खा उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

एवं जूया जवाओ जवमज्झे अंगुल-विहत्थि-रयणी-कुच्छी-धणुउव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

गाउय-जोयण-जोयणसत-जोयणसहस्साइं गंता जोयणसहस्सं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

[२] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवतियं उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउति पदेसे गंता सोलसपदेसे उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स एएणेव कमेणं-जाव-पंचाणउति २ जोयणसहस्साइं गंता सोलस[2] जोयणसहस्साइं उस्सेधपरिवुड्ढीए पण्णत्ते ।

[२] [१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में गहराई की वृद्धि कितनी है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों ओर (जम्बूद्वीप की वेदिका एवं लवणसमुद्र की वेदिका के अन्त से आरम्भ करके) पचानवे-पचानवे प्रदेश जाने पर एक प्रदेश की गहराई की वृद्धि होती है। पचानवे-पचानवे वालाग्र जाने पर एक वालाग्र की गहराई की वृद्धि होती है, पंचानवे-पंचानवे लिक्षा (लीख) जाने पर एक लिक्षा की गहराई की वृद्धि होती है। इसी प्रकार पचानवे यव, यवमध्य, अंगुल, वितस्ति, रत्नि, कुक्षि, धनुष आदि की वृद्धि समझ लेनी चाहिए। गव्यूति, योजन, सौ योजन और हजार योजन जाने पर गव्यूति, योजन, सौ योजन और हजार योजन की गहराई की वृद्धि होती है।

[२] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की शिखावृद्धि कितनी है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों ओर पंचानवे-पंचानवे प्रदेश जाने पर सोलह प्रदेशों की शिखावृद्धि होती है। गौतम ! इसी क्रम से-यावत्-पंचानवे हजार योजन पर्यन्त जाने पर सोलह हजार योजन की शिखावृद्धि समझ लेनी चाहिए।

लवणसमुद्र के जल की हानि-वृद्धि

[३] [१] प्र०—कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे चाउद्दस-टुमु-दिट्ठ-पुण्णिमासिणीसु अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चउद्दिसिं बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पंचाणउतिं २ जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता[3] एत्थ णं चत्तारि महालिजरसंठाणसंठिया महइमहालया महापायाला पण्णत्ता, तंजहा—

वलयामुहे १ केतूए २ जूवे ३ ईसरे[4] ४।

ते णं महापायाला एगमेगं जोयणसयसहस्सं उव्वेहेणं,

१—सम. ९५ सूत्र ३ (संक्षिप्त)

२— „ १६ पृ. २ („)

३—सम. ९५ सूत्र २

४—ठा. ४, उ. २ सूत्र ३०५ पृ. २१५।

मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,
मज्झे एगपदेसियाए सेढीए जोयणसतसहस्सं विक्खंभेणं,
उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,[1]
तेसि णं महापायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा,
दस जोयणसतबाहल्ला पण्णत्ता,
सव्ववइरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा !
तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति,
सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठयाए,
वण्णपज्जवेहिं ० असासया ।
तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तंजहा—
काले १ महाकाले २ वेलंबे ३ पभंजणे ४
तेसि णं महापायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तंजहा—
हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिमे तिभागे ।
ते णं तिभागा तेत्तीसं जोयणसहस्सा तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसतं जोयणतिभागं च बाहल्लेणं,
तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठति,
तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए य आउकाए य संचिट्ठति,
तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे एत्थ णं आउकाए संचिट्ठति ।
अवुत्तरं च णं गोयमा ! लवणसमुद्दे तत्थ २ देसे बहवे खुड्डागिंजरसंठाणसंठिया खुड्डपायालकलसा पण्णत्ता ।
ते णं खुड्डा पाताला एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,
मूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं,
मज्झे एगपदेसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं,
उप्पिं मुहमूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं ।
तेसि णं खुड्डागपायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा,
दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता
सव्ववइरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।
तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य जाव-असासया वि ।
पत्तेयं २ अद्धपलिओवमट्ठितीयाहिं देवताहिं परिग्गहिया ।
तेसि णं खुड्डगपातालाणं ततो तिभागा पण्णत्ता, तंजहा—
हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिल्ले तिभागे ।
ते णं तिभागा तिण्णि तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागं च बाहल्लेणं पण्णत्ते ।
तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ, मज्झिल्ले तिभागे वाउआए आउयाए य, उवरिल्ले आउकाए ।
एवामेव सपुव्वावरेणं लवणसमुद्दे सत्त पायालसहस्सा अट्ठ य चुलसीता पातालसता भवंतीति मक्खाया ।
तेसि णं महापायालाणं खुड्डगपायालाण य हेट्ठिममज्झिमिल्लेसु तिभागेसु बहवे ओराला वाया,
संसेयंति संमुच्छिमंति एयंति चलंति कंपंति खुब्भंति घट्टंति फंदंति तं तं भावं परिणमंति,
तया णं से उदए उण्णामिज्जति ।
जया णं तेसिं महापायालाणं खुड्डागपायालाण य हेट्ठिल्लमज्झिल्लेसु तिभागेसु नो बहवे ओराला-जाव-तं तं भावं न परिणमंति ।

१—ठा. अ. १० सूत्र ७२० पृ. ४५३ (सामान्य पाठभेद)

तया णं से उदए नो उस्सामिज्जइ ।
अंतरा वि य णं ते वायं उदीरेंति ।
अंतरा वि य णं से उदगे उस्सामिज्जइ ।
अंतरा वि य णं ते वाया नो उदीरंति ।
अंतरा वि य णं से उदगे णो उस्सामिज्जइ ।
एवं खलु गोयमा ! लवणसमुद्दे चाउद्दस-ट्ठमु-द्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु अइरेगं २ वड्ढति वा हायति वा ।

—जीवा. सूत्र १५६ पृ. ३०४-५

[३] [१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र (का पानी) चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को अधिकाधिक बढ़ता व घटता क्यों है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के चारों ओर की बाहरी वेदिकाओं के अन्त मे लवणसमुद्र में ९५ हजार योजन आगे जाने पर महा आलिंजर (विशाल कुम्भ) के आकार के चार बड़े-बड़े महापाताल कहे गये है। उनके नाम ये है—(१) वलयमुख (२) केतुक (३) यूप और (४) ईश्वर। ये महापाताल एक लाख योजन गहरे एवं मूल मे दस हजार योजन चौड़े है। एक-एक प्रदेश की श्रेणी मे (बढ़ते-बढ़ते) मध्य में एक लाख योजन चौड़े हो गए है। ऊपर के मुखमूल में (एक-एक प्रदेश की श्रेणी से कम होते-होते) दस हजार योजन रह गए है। इन महापातालों की कुड्य (दीवार) सर्वत्र समान है। यह एक हजार योजन मोटी, सर्ववज्रमय, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप है।

यहां अनेक जीव और पुद्गल जाते है, उत्पन्न होते हैं, चय और उपचय को प्राप्त होते हैं। यह कुड्य द्रव्य दृष्टि से शाश्वत तथा वर्णपर्याय आदि की दृष्टि से अशाश्वत है।

यहाँ महर्द्धिक—यावत्—एवं पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते हैं, यथा—(१) काल (२) महाकाल (३) वेलम्ब और (४) प्रभंजन।

इन महापातालों के तीन त्रिभाग है, यथा—नीचे का त्रिभाग, मध्य का त्रिभाग और ऊपर का त्रिभाग।

त्रिभाग ३३३३३$\frac{1}{3}$ योजन मोटे है। इनमें से जो नीचे का त्रिभाग है उसमें वायुकाय है। इनमें जो मध्य का त्रिभाग है उसमें वायुकाय और अप्काय है। इन में जो ऊपर का त्रिभाग है उसमें अप्काय है। इसके अतिरिक्त, गौतम ! लवणसमुद्र में यत्र-तत्र छोटे कुम्भ के आकार के क्षुद्र पातालकलश हैं।

ये क्षुद्र पाताल एक हजार योजन गहरे एवं मूल में सौ योजन चौड़े हैं। मध्य में एक-एक प्रदेश बढ़ते बढ़ते एक हजार योजन चौड़े हो गए है। ऊपर के मुखमूल में (एक-एक प्रदेश घटते-घटते) सौ योजन चौड़े रह गए हैं।

इन क्षुद्र पातालों की कुड्य (दीवार) सर्वत्र समान है। इसकी मोटाई दस योजन है। यह सर्व-वज्रमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है। यहाँ बहुत-से जीव और पुद्गल (जाते, उत्पन्न होते हैं) यावत् (यह वर्णादि पर्यायों से) अशाश्वत है। यहाँ पृथक्-पृथक् अर्ध पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

इन क्षुद्र पातालों के तीन त्रिभाग हैं, यथा—निचला त्रिभाग, बिचला त्रिभाग और ऊपरला त्रिभाग।

ये त्रिभाग ३३३$\frac{1}{3}$ योजन मोटे हैं। इनमें जो निचला त्रिभाग है उसमें वायुकाय है, बिचले त्रिभाग मे वायुकाय और अप्काय हैं और ऊपरले त्रिभाग में अप्काय है।

इस प्रकार सब मिलकर लवणसमुद्र में ७८८४ पाताल हैं।

इन महापातालों और क्षुद्रपातालों के निचले और बिचले त्रिभागों में अनेक उदार (ऊर्ध्व गमन करने वाले) वायुकाय (के जीव) उत्पन्न होते हैं, सम्मूछित होते हैं, हिलते हैं, चलते हैं, कम्पित

होते है, क्षुब्ध होते हैं, रगड़ते हैं, घर्षित होते हैं और अनेक प्रकार की क्रियाएँ करते हैं। तब वहाँ का पानी ऊँचा उछलता है। जब इन महापातालों एवं क्षुद्र पातालों के निचले और बिचले त्रिभागों मे अनेक उदार (वायुकाय के जीव) यावत्—विविध प्रकार की क्रियाएँ नहीं करते, तब पानी ऊँचा नहीं उछलता है। इसके अतिरिक्त समय में भी जब वायुकाय की उदीरणा होती है तो पानी उछलता है और जब वायुकाय की उदीरणा नहीं होती तो पानी नहीं उछलता। इस प्रकार गौतम ! लवणसमुद्र में चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को पानी अधिकाधिक बढ़ता है और घटता है।

[४] [१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं कतिखुत्तो अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ—
लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं २ वड्ढइ वा हायइ वा ?

उ०—गोयमा ! उड्ढमंतेसु पायालेसु वड्ढइ,
आपूरितेसु पायालेसु हायइ,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं २ वड्ढइ, वा हायइ वा।

[३] प्र०—लवणसिहा णं भंते ! केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं,
केवतियं अइरेगं २ वड्ढति वा हायति या ?

उ०—गोयमा ! लवणसिहाए णं दस जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,
अद्धजोयणं अतिरेगं वड्ढति वा हायति वा।

[४] [१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में तीस मुहूर्त (अहोरात्रि) में कितनी बार पानी अधिकाधिक बढ़ता व घटता है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र में तीस मुहूर्त्त में दो वार पानी अधिकाधिक बढ़ता व घटता है।

[२] प्र०—भगवन् ! किस कारण ऐसा कहा गया है कि लवणसमुद्र में तीस मुहूर्त्त में दो वार पानी अधिकाधिक बढ़ता व घटता है ?

उ०—गौतम ! पातालों में (पानी) ऊंचा आने पर बढ़ता है और पातालों में (वायु) भर जाने पर घटता है। इस कारण गौतम ! लवणसमुद्र में तीस मुहूर्त्त में दो वार पानी अधिकाधिक बढ़ता व घटता है।

[३] प्र०—भगवन् ! लवणशिखा की चक्राकार चौड़ाई कितनी है तथा यह कितनी अधिकाधिक बढ़ती और घटती है ?

उ०—गौतम ! लवणशिखा दस हजार योजन चक्राकार चौड़ी है व आधा योजन से कुछ कम अधिकाधिक बढ़ती और घटती है।

लवणसमुद्र का वेलाधारण

[५] [१] प्र०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धरेंति ?
कइ णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धरंति ?
कइ णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धरेंति ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दस्स बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारेंति,[1]
बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति[2],
सट्ठिं णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति[3],
एवामेव सपुव्वावरेणं एगा णागसतसाहस्सी
चोवत्तरिं च णागसहस्सा भवंतीति मक्खाया ।

जीवा. सूत्र १५६ पृ. ३०४-५

[५] [१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को कितने हजार नाग धारण करते हैं ? बाह्य वेला को कितने हजार नाग धारण करते हैं ? और अग्रोदक को कितने हजार नाग धारण करते हैं ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को ४२ हजार नाग धारण करते हैं, बाह्य वेला को ७२ हजार नाग धारण करते हैं और अग्रोदक को ६० हजार नाग धारण करते है । इस प्रकार सब मिलकर एक लाख, चौहत्तर हजार नाग हैं ।

लवणसमुद्र में वेलंधर आदि

[६] [१] प्र०—अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे वेलंधराति वा णागराया, खन्नाति वा, अग्घाति वा, सिहाति वा, विजाती वा, हासवट्टीति वा ?

उ०—हंता अत्थि ।

[२] प्र०—जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे अत्थि वेलंधराति वा णागराया, अग्घा सिहा विजाती वा, हासवट्टीति वा, तहा णं बाहिरएसु समुद्देसु अत्थि वेलंधराइ वा णागरायाति वा अग्घाति वा सीहाति वा विजातीति वा हासवट्टीति वा ?

उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

—जीवा० सूत्र १६८ पृ० ३२०

[६]]१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में वेलंधर नागराज हैं ? खन्न, अग्घ, सीह, विजाति तथा हासवट्टी मच्छ, कच्छ हैं ?

उ०—हाँ हैं ।

[२] प्र०—भगवन् ! जिस प्रकार लवणसमुद्र में नागराज वेलंधर, अग्घ, सिंह, विजाति एवं हासवट्टी हैं, उसी प्रकार क्या बाह्य समुद्रों में वेलंधर नागराज, अग्घ, सिंह, विजाति एवं हासवट्टी (मच्छ-कच्छ) हैं ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् नही है ।

वेलंधर नागराज

[७] [१] प्र०—कति णं भंते वेलंधरा णागराया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि वेलंधरा णागराया पण्णत्ता, तंजहा—
गोथूभे, सिवए, संखे, मणोसिलए ।

[२] प्र०—एतेसि णं भंते ! चउण्हं वेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वता पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तंजहा—
गोथूभे, उदगभासे, संखे, दगसीमाए ।

१—सम. ४२ सूत्र ७.
२—सम. ७२ सूत्र २.
३—सम. ६० सूत्र २.

[३] प्र०—कहि णं भंते ! गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते[1] ?

उ०—गोयमा ! जंबूदीवे दीवे मन्दरस्स पुरत्थिमेणं,
लवणं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,
एत्थ णं गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते[2],
सत्तरसएक्कवीसाइं जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं[3],

१—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं बायालीसं जोयणसहस्साइं अबाहातो अंतरे पण्णत्ते । एवं चउद्दिसि पि दओभासे, संखे, दयसीमे य ।

—सम० ४२ सूत्र २–३

जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं चउद्दिसि पि दगभासे संखे दयसीमे य ।

—सम० ४३ सूत्र ३–४

गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं बावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं दगभासस्स केउगस्स, संखस्स जूयगस्स, दगसीमस्स ईसरस्स ।

—सम० ५२ सूत्र० २–३

गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं सत्तावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं दगभासस्स केउयस्स य, संखस्स जूयस्स य, दयसीमस्स ईसरस्स य ।

सम० ५७ सूत्र० २–३

गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं अट्ठावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं चउदिसिं पि नेयव्वं ।

—सम० ५८ सूत्र० ३–४

मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ दगभासस्स आवासपव्वयस्स उत्तरिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
एवं मंदरस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ संखस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
एवं चेव मंदरस्स उत्तरिल्लाओ चरमंताओ दगसीमस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीई जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—सम० ८७ सूत्र १–४

मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागाओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं बाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं चउण्हंपि आवासपव्वयाणं ।

—सम० ९२ सूत्र० ३–४

मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं सत्ताणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं चउदिसिं पि ।

—सम० ९७ सूत्र० १–२

मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइजोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । एवं चउदिसिंपि ।

—सम० ९८ सूत्र० २ ३

२– ठाणा० ४ उ० २ सूत्र० ३०५ पृ० २१५

३– सम० १७ सूत्र० ४

चत्तारि तीसे जोयणसते कोसं च उव्वेधेणं,
मूले दस बावीसे जोयणसते आयाम-विक्खंभेणं,
मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसते,
उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसए आयाम-विक्खंभेणं,
मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसूणे, परिक्खेवेणं,
मज्झे दो जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं,
उवरिं एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य ईयाले जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं,
मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए, गोपुच्छ-संठाणसंठिए, सव्वकणगामए, अच्छे—जाव पडिरूवे ।
से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दोण्हवि वण्णओ ।
गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—जाव—आसयंति ।
तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण एगे महं पासायवडेंसए बावट्ठं जोयणद्धं च उड्ढं उच्चत्तेणं,
तं चेव पमाणं, अद्धं आयाम-विक्खंभेणं, वण्णओ-जाव-सीहासण सपरिवारं ।

[४] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ गोथूभे आवासपव्वए २ ?

उ०—गोयमा ! गोथूभे णं आवासपव्वते तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ-जाव-गोथूभ-वण्णाइं बहूइं उप्पलाइं, तहेव-जाव-गोथूभे तत्थ देवे महिड्ढीए -जाव-पलिओवमट्ठितीए परिवसति,
से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं-जाव-गोथूभयस्स आवासपव्वयस्स, गोथूभाए रायहाणीए-जाव-विहरति ।
से तेणट्ठेणं-जाव-णिच्चे ।

[५] प्र०—रायहाणि-पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! गोथूभयस्स आवासपव्वतस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीतिवइत्ता अण्णंसि लवणसमुद्दे, तं चेव पमाणं, तहेव सव्वं ।

[६] प्र०—कहि णं भंते ! सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासणामे आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं, लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते ।
तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स, णवरि सव्वअंकामए अच्छे-जाव-पडिरूवे-जाव-अट्ठो भाणियव्वो ।
गोयमा ! दओभासे णं आवासपव्वते लवणसमुद्दे अट्ठजोयणियखेत्ते दगं सव्वतो समंता ओभासेति उज्जोवेति तवति पभासेति ।
सिवए इत्थ देवे महिड्ढीए-जाव- रायहाणी से दक्खिणेणं सिविगा दओभासस्स, सेसं तं चेव ।

[७] प्र०—कहि णं भंते ! संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं बायालीसं जोयणसहस्साइं एत्थ णं संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वते,
तं चेव पमाणं, णवरं सव्वरययामए अच्छे ।
से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेणं-जाव-अट्ठो,
बहूओ खुड्डाखुड्डिआओ-जाव- बहूइं उप्पलाइं संखाभाइं संखवण्णाइं संखवण्णाभाइं,
संखे एत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-रायहाणीए पच्चत्थिमेणं संखस्स आवासपव्वयस्स संखा नाम रायहाणी
तं चेव पमाणं,

[८] प्र०—कहि णं भंते ! मणोसिलकस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स उत्तरेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते,
तं चेव पमाणं, णवरि सव्वफलिहामए अच्छे-जाव-अट्ठो ।
गोयमा ! दगसीमंते णं आवासपव्वते सीता-सीतोदगाणं महाणदीणं तत्थ गतो सोए पडिहम्मति, से तेणट्ठेणं-जाव- णिच्चे ।
मणोसिलए एत्थ देवे महिड्ढीए-जाव-से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं-जाव-विहरति ।

[९] प्र०—कहि णं भंते ! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स मणोसिला णाम रायहाणी ?

उ०—गोयमा ! दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्तरेणं तिरियं० अण्णंमि लवणे, एत्थ णं मणोसिलिया णाम रायहाणी पण्णत्ता, तं चेव पमाणं-जाव-मणोसिलाए देवे ।
गाहा—कणगंकरययफालियमया य वेलंधराणमावासा ।
अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया ।।१।।

—जीवा. सूत्र १५९ पृ. ३०९-१०.

[७] [१] प्र०—भगवन् ! वेलंधर नागराज कितने हैं ?

उ०—गौतम ! वेलंधर नागराज चार हैं, यथा—गोस्तूप, शिवक, शंख और मनःशिलाक ।

[२] प्र०—भगवन् ! इन वेलंधर नागराजों के कितने आवास-पर्वत हैं ?

उ०—गौतम ! चार आवास-पर्वत हैं, यथा—गोस्तूप, उदकभास, शंख और दकसीम ।

[३] प्र०—भगवन् ! गोस्तूप वेलंधर नागराज का गोस्तूप नामक आवास-पर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीपस्थित मन्दर (पर्वत) से पूर्व में, बयालीस हजार योजन लवणसमुद्र में अवगाहन करने पर, यहाँ गोस्तूप वेलंधर नागराज का गोस्तूप नामक आवास-पर्वत है। वह १७२१ योजन ऊँचा, ४३० योजन और एक कोस गहरा, मूल में १०२२ योजन लम्बा-चौड़ा, मध्य में ७२३। योजन और ऊपर ४२४ योजन लम्बा-चौड़ा है ।

उसकी परिधि मूल में ३२३२ योजन से कुछ कम, मध्य में २२८६ योजन से कुछ अधिक और ऊपर १३४१ योजन से कुछ कम है। अतएव वह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर पतला है। गोपुच्छ के आकार का, सर्वकनकमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।

वह पर्वत एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा है। यहाँ दोनों का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

गोस्तूप आवास पर्वत के ऊपर अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमिभाग है—यावत्—देवगण वहाँ बैठते हैं ।

उस सम एवं रमणीय भूमिभाग के बीचोंबीच एक महान् प्रासादावतंसक है जो ६२।। योजन ऊँचा है। उसका वही प्रमाण है। आधा (३२।) योजन लम्बा-चौड़ा है। उसका वर्णन समझ लेना चाहिए—यावत्—सपरिवार सिंहासन है ।

[४] प्र०—भगवन् ! गोस्तूप आवास पर्वत, गोस्तूप आवास पर्वत क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम ! गोस्तूप आवास पर्वत के ऊपर स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी वापियाँ—यावत्—गोस्तूप के वर्ण के बहुत उत्पल हैं, इत्यादि ।—यावत्—वहाँ गोस्तूप देव रहता है जो महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला है। वह वहाँ चार हजार सामानिक देवों का—यावत्—गोस्तूप आवास पर्वत का, गोस्तूपा राजधानी का (आधिपत्य करता हुआ)—यावत्—रहता है। इस कारण से (इसका नाम गोस्तूप) है—यावत्—(यह नाम) नित्य है ।

[५] प्र०—राजधानी संबंधी प्रश्न ?

उ०—गौतम ! गोस्तूप आवास-पर्वत से पूर्व मे, तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लांघने पर दूसरे लवण-समुद्र में है। वही उसका प्रमाण है, सब उसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

[६] प्र०—भगवन् ! शिवक वेलंधर नागराज का दकभास नामक आवासपर्वत कहाँ है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत मे दक्षिण में, बयालीस हजार योजन लवणसमुद्र में जाने पर शिवक वेलंधर नागराज का दकभास नामक आवासपर्वत है। गोस्तूप पर्वत का जो प्रमाण है वही इसका है। विशेष यह कि यह पर्वत सर्वअंकरत्नमय है, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।—यावत्—इसके नाम का कारण कह लेना चाहिए। गौतम ! दकभास आवासपर्वत लवणसमुद्र मे आठ योजन क्षेत्र में जल को दिशाओं और विदिशाओ में अवभासित, उद्योतित, तप्त और प्रभासित करता है। यहाँ शिवक नामक महर्द्धिक देव निवास करता है।—यावत्—उसकी शिविका राजधानी दक्षिण में है। शेष सब वर्णन वही है।

[७] प्र०—शंख वेलंधर नागराज का शंख नामक आवासपर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पश्चिम मे, लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन जाने पर वेलंधर नागराज शंख का शंख नामक आवास पर्वत है। उसका प्रमाण वही है। विशेष यह कि यह पर्वत सर्वरजतमय है, स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से (घिरा है)—यावत्—उसके नाम का हेतु समझ लेना चाहिए। वहाँ बहुतेरी छोटी-छोटी (वापिकाएँ है)—यावत्—शंख की आभा वाले, शंख के वर्ण के, शख के वर्ण की आभा वाले बहुत-से उत्पल (कमल) हैं। यहाँ शंख नामक महर्द्धिक देव है—यावत्—शंख आवासपर्वत से पश्चिम में शंखा नामक राजधानी है। उसका प्रमाण वही है।

[८] प्र०—भगवन् ! मनःशिलाक वेलंधर नागराज का उदकसीम नामक आवासपर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में, लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन जाने पर मनःशिलाक वेलंधर नागराज का उदकसीम नामक आवासपर्वत है। उसका प्रमाण वही है। विशेषता यह कि यह पर्वत सर्वस्फटिकमय, स्वच्छ है—यावत्—उसके नाम का कारण समझ लेना चाहिए।

गौतम ! उदकसीम आवासपर्वत वहाँ के शीता और शीतोदा महानदियों के जलप्रवाह को प्रतिहत करता है, इस कारण (यह पर्वत दकसीम कहलाता है)—यावत्—(इसका यह नाम) नित्य है। यहाँ मनःशिलाक नामक महर्द्धिक देव है जो—यावत्—चार हजार सामानिक देवों का अधिपतित्व करता हुआ विहार करता है।

[९] प्र०—मनःशिलाक वेलंधर नागराज की मनःशिला नामक राजधानी कहाँ है ?

उ०—गौतम ! दकसीम आवासपर्वत से उत्तर में, तिर्छे, अन्य लवणसमुद्र में मनःशिला नामक राजधानी है। उसका प्रमाण वही है—यावत्—वहाँ मनःशिलाक देव है। (गाथार्थ) वेलंधरों के आवास-(पर्वत) कनकमय, अंकरत्नमय, रजत और स्फटिकमय हैं। अनुवेलंधरराजों के पर्वत रत्नमय होते हैं ॥१॥

अनुवेलंधर नागराज

[८] [१] प्र०—कइ णं भंते ! अणुवेलंधररायाणो पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि अणुवेलंधरणागरायाणो पण्णत्ता, तंजहा—कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे।

[२] प्र०—एतेसि णं भंते ! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता तंजहा—कक्कोडए, विज्जुप्पभे, कइलासे, अरुणप्पभे।

[३] प्र०—कहि णं भंते ! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णाम आवासपव्वते पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-पुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,

एत्थ णं कक्कोडगस्स नागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते,

सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसताइं-तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स, णवरि सव्वरयणामए अच्छे-जाव-निरवसेसं-जाव-सपरिवारं,

अट्ठो से बहूइं उप्पलाइं कक्कोडप्पभाइं, सेसं तं चेव,

णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तर-पुरच्छिमेणं,

एवं तं चेव सव्वं ।

कद्दमस्सवि सो चेव गमओ अपरिसेसो, णवरि दाहिणपुरच्छिमेणं आवासो, विज्जुप्पभा रायहाणी दाहिणपुरच्छिमेणं, कइलासेवि एवं चेव, णवरि दाहिणपच्चत्थिमेणं, कइलासावि रायहाणी ताए चेव दिसाए, अरुणप्पभेवि उत्तरपच्चत्थिमेणं, रायहाणीवि ताए चेव दिसाए ।

चत्तारि विगप्पमाणा सव्वरयणामया य ।

—जीवा. सूत्र १६० पृ. ३१३

[८] [१] प्र०—अनुवेलंधर नागराज कितने हैं ?

उ०—गौतम ! अनुवेलंधरनागराज चार हैं, यथा—कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ ।

[२] प्र०—इन चार अनुवेलंधर नागराजों के आवासपर्वत कितने हैं ?

उ०—गौतम ! चार आवासपर्वत हैं, यथा—कर्कोटक, विद्युत्प्रभ, कैलाश और अरुणप्रभ ।

[३] प्र०—कर्कोटक अनुवेलंधर नागराज का कर्कोटक नामक आवासपर्वत कहाँ है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत से उत्तर-पूर्व में, बयालीस हजार योजन लवण-समुद्र में जाने पर, यहाँ कर्कोटक नागराज का कर्कोटक नामक आवासपर्वत है । यह पर्वत १७२१ योजन ऊंचा है, इत्यादि प्रमाण गोस्तूप पर्वत के बराबर ही है । विशेष यह है कि यह पर्वत सर्व-रत्नमय है, स्वच्छ है, इत्यादि वक्तव्यता पूर्ववत् समझ लेना चाहिए-यावत्-सपरिवार सिंहासन है । उसके नाम का कारण भी कह लेना चाहिए । वहाँ बहुत-से उत्पल कर्कोटक की आभा वाले हैं । कर्कोटक नागराज की राजधानी उत्तर-पूर्व में है, शेष सब पूर्ववत् ।

कर्दम के विषय में भी वही पूरा गम समझना चाहिए । विशेष-दक्षिण-पूर्व में आवास है और दक्षिण-पूर्व में विद्युत्प्रभा राजधानी है ।

कैलाश का वर्णन भी ऐसा ही है । विशेष-इसका आवास दक्षिण-पश्चिम में है और कैलाश राज-धानी भी उसी दिशा में है ।

अरुणप्रभ की वक्तव्यता भी वैसी ही है । आवास उत्तर-पश्चिम में है, राजधानी भी उसी दिशा में है । चारों पर्वत सर्वरत्नमय हैं ।

लवणसमुद्र का आकार-विस्तार

[९] [१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे किसंठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! गोतित्थसंठिते, नावासंठाणसंठिते, सिप्पिसंपुडसंठिते, आसखंधसंठिते, वलभिसंठिते, वट्टे, वलयागारसंठाणसंठिते पण्णत्ते ।

[२] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे

केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं,

केवतियं परिक्खेवेणं,

केवतियं उव्वेहेणं,

केवतियं उस्सेहेणं,

केवतियं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,
पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एकासीतिं च सहस्साइं,
सतं च इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं,
एगं जोयणसहस्सं उव्वेधेणं,
सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं,[1]
सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते[2] ।

[९] [१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का संस्थान (आकार) कैसा है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र गोतीर्थ के संस्थान का, नौका के संस्थान का, शुक्तिका (सीप) के संपुट के आकार का, अश्व के स्कंध के आकार का, वलभीगृह के आकार का, गोल एवं वलयाकार है ।

[२] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की चक्राकार चौडाई कितनी, परिधि कितनी, गहराई कितनी, ऊंचाई (शिखा) कितनी और सर्वपरिमाण कितना है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र का चक्रवाल विष्कंभ (चौड़ाई) दो लाख योजन की, परिधि १५ लाख ८१ हजार १३९ योजन से कुछ कम, गहराई एक हजार योजन की, ऊंचाई सोलह हजार योजन की और सर्वप्रमाण सत्तरह हजार योजन का है ।

जम्बूद्वीप को जलमग्न न करने के हेतु

[१०][१] प्र०—जइ णं भंते ! लवणसमुद्दे दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,
पण्णरसजोयणसयसहस्साइं एकासीतिं च सहस्साइं
सतं इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं,
एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,
सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेधेणं,
सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्तो,
कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति, नो उप्पीलेति, नो चेव णं एक्कोदगं करेति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेरवएसु वासेसु अरहंत-चक्कवट्टि-बलदेवा वासुदेवा
चारणा विज्जाधरा समणा समणीओ सावया साविआओ पगतिभद्दया पगतिविणीया पगतिउवसंता
पगतिपयणुकोह-माण-माया-लोभा, मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दगा विणीता, तेसि णं पणिहाते
लवणे समुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति, नो उप्पीलेति, नो चेव णं एगोदगं करेति ।
गंगा-सिंधु-रत्ता-रत्तवईसु सलिलासु देवया महिड्ढियाओ-जाव-पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति,
तेसि णं पणिहाए लवणसमुद्दे-जाव-नो चेव णं एगोदगं करेति ।
चुल्लहिमवंत-सिहरेसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्ढिया, तेसि णं पणिहाए०
हेमवते-रण्णवतेसु वासेसु मणुया पगतिभद्दया०,
रोहितंस-सुवण्णकूल-रुप्पकूलासु सलिलासु देवयाओ महिड्ढियाओ, तासिं पणि०,
सद्दावति-वियडावति-वट्टवेयड्ढपव्वतेसु देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठितीया०,
हरिवास-रम्मयवासेसु मणुया पगतिभद्दगा०,
गंधावति-मालवंतपरिताएसु वट्टवेयड्ढपव्वतेसु देवा महिड्ढिया०,
णिसढ-नीलवंतेसु वासधरपव्वतेसु देवा महिड्ढिया० ।

१—सम. १६ सूत्र ७
२—सम, १७ सूत्र ३

सव्वाओ वहदेवयाओ भाणियव्वा,
पउमद्दह-तिगिच्छ-केसरिदहावसाणेसु देवा महिड्ढियाओ, तासिं पणिहाए० ।
पुव्वविदेहा-वरविदेहेसु वासेसु अरहंत-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेवा
चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावगा साविआओ मणुया पगति०, तेसिं पणिहाए लवण० ।
सीया-सीतोदगासु सलिलासु देवता महिड्ढिया० ।
देवकुरु-उत्तरकुरुसु मणुया पगतिभद्दगा० मंदरे पव्वते देवता महिड्ढीया० ।
जंबूए य सुदंसणाए जंबूदीवाहिवती अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए-जाव-पलिओवमठितीए परिवसति,
तस्स पणिहाए लवणसमुद्दे नो उवीलेति, नो उप्पीलेति नो चेव णं एकोदगं करेति ।
अदुत्तरं च णं गोयमा ! लोगट्ठिती[1] लोगाणुभावे जण्णं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति, नो उप्पीलेति, नो चेव णमेगोदगं करेति ।

—जीवा. सूत्र १५४-१७३ पृ ३००-३२५

[१०][१] प्र०—भगवन् ! यदि लवणसमुद्र का चक्रवालविष्कंभ दो लाख योजन का, परिधि १५८११३९ योजन से कुछ कम, गहराई एक हजार योजन की, ऊंचाई सोलह हजार योजन की और सर्वप्रमाण सत्तरह हजार योजन का है तो लवणसमुद्र जम्बूद्वीप को बहाता क्यों नही ? उत्पीडित क्यों नहीं करता ? जलमग्न क्यों नही कर देता ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत क्षेत्रों में अर्हत् (तीर्थंकर) चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण (मुनि), विद्याधर, श्रमण, श्रमणियां, श्रावक, श्राविकाएँ एवं अन्य भद्रप्रकृति, विनीतप्रकृति, उपशान्तप्रकृति, स्वभाव से ही प्रतनु (पतले) क्रोध मान माया लोभ वाले, मृदुतासम्पन्न, आलीन (अलिप्त), भद्र एवं विनीत मनुष्य रहते हैं। इनके प्रणिधान (प्रभाव) से लवणसमुद्र जम्बूद्वीप को नहीं बहाता, नहीं उत्पीडित करता और नहीं जलप्लावित करता है।

गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती नदियों में महर्द्धिक,—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाली देवता रहती हैं। इनके प्रभाव के कारण भी लवणसमुद्र—यावत्—जम्बूद्वीप को जलमग्न नहीं करता। चुल्लहिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वतों पर महर्द्धिक देव हैं जिनके प्रभाव के कारण भी (लवणसमुद्र का जल जम्बूद्वीप को प्लावित नहीं करता)

हैमवत एवं हैरण्यवत वर्षों में भद्रप्रकृति के मनुष्य रहते हैं।

रोहितास्या, सुवर्णकूला और रूप्यकूला आदि नदियों में महर्द्धिक देवता हैं। इनके प्रणिधान के कारण भी (लवणसमुद्र जम्बूद्वीप को जलमग्न नहीं करता)

इसी प्रकार शब्दापाति एवं विकटापाति वृत्त वैताढ्य पर्वतों पर महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं। हरिवर्ष और रम्यकवर्ष में भद्र प्रकृति के मनुष्य हैं। गंधापाति और माल्यवन्त वृत्त वैताढ्य पर्वतों पर महर्द्धिक देव हैं। निषध एवं नीलवन्त वर्षधर पर्वतों पर महर्द्धिक देव हैं, सब द्रहों में देवियां हैं, पद्मद्रह, तिगिंछ द्रह और केसरी द्रहों के अवसान-भागों में महर्द्धिक देव हैं। पूर्वविदेह और अपरविदेह में अर्हत्, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण, विद्याधर, श्रमण, श्रमणियां, श्रावक, श्राविकाएं एवं प्रकृतिभद्र अन्य मनुष्य हैं। सीता एवं सीतोदा नदियों में महर्द्धिक देवता हैं। देवकुरु और उत्तरकुरु में प्रकृतिभद्र मनुष्य हैं। मेरु पर्वत पर महान् ऋद्धि के धारक देव हैं। जम्बू-सुदर्शन में जम्बूद्वीपाधिपति अनादृत देव रहता है, जो महर्द्धिक—

१–(क) विवा० भाग २ श. ३ उ. ३ पृ. ८२ प्र. १८
(ख) विवा० भाग २ श. ५ उ. २ पृ. १६३ प्र. १९

यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला है। इन सब के प्रभाव से लवणसमुद्र (जम्बूद्वीप को) नहीं बहाता, उत्पीडित या जलमग्न नहीं करता। अथवा गौतम ! लोकस्थिति एवं लोकानुभाव ही ऐसा है जिसके कारण लवणसमुद्र जम्बूद्वीप को नहीं बहाता, नहीं उत्पीडित करता और नहीं जल-मग्न करता है।

गोतीर्थ

[११][१] प्र०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउति २ जोयणसहस्साइं गोतित्थं पण्णत्तं।

[२] प्र०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! लवणस्स ण समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं[1] गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते।

[३] प्र०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए उदगमाले पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्त[2]।

[११][१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का गोतीर्थ (क्रमश निम्न, निम्नतर अर्थात् ढालू भाग) कितना है ?
उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों ओर से—जम्बूद्वीप की वेदिकान्त से और लवणसमुद्र की वेदिका के अन्त से—पंचानवे-पंचानवे हजार योजन जाने पर गोतीर्थ आता है।

[२] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का गोतीर्थ विरहित (बिना उतार-चढाव का) क्षेत्र कितना है ?
उ०—गौतम ! लवणसमुद्र का दस हजार योजन का क्षेत्र गोतीर्थ-विरहित है।

[३] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र की उदकमाला कितनी है ?
उ०—गौतम ! दस हजार योजन की उदकमाला है।

छप्पन अन्तरद्वीप

[१२] जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं,
चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु,
तिन्नि २ जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता, तंजहा—
एगूरुयदीवे, आभासियदीवे, वेसाणियदीवे, णंगोलियदीवे।
तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा—
एगूरुया, आभासिया, वेसाणिया, णंगोलिया।
तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं चत्तारि २ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता,
तंजहा-हयकण्णदीवे, गयकण्णदीवे, गोकण्णदीवे, संकुलिकण्णदीवे,
तेसु णं दीवेसु चउव्विधा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा—
हयकन्ना, गयकन्ना, गोकन्ना, संकुलिकन्ना।
तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं पंच २ जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता,
तंजहा-आयंसमुहदीवे, मेंढमुहदीवे, अओमुहदीवे, गोमुहदीवे।

---

१. ठाणा. १० उ. १ सूत्र ७२० पृ. ४५३
२. " " "

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा ।
तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं छ छ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तंजहा-आसमुहदीवे, हत्थिमुहदीवे, सीहमुहदीवे, वग्घमुहदीवे ।
तेसु णं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा ।
तेसि णं दीवाण चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं सत्त-सत्त जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तंजहा-आसकण्णदीवे, हत्थिकण्णदीवे, अकण्णदीवे, कण्णपाउरणदीवे ।
तेसु णं दीवेसु मणुया भाणियव्वा ।
तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं अट्ठट्ठ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता,
तंजहा—
उक्कामुहदीवे, मेहमुहदीवे, विज्जुमुहदीवे, विज्जुदंतदीवे ।
तेसु णं दीवेसु मणुस्सा भाणियव्वा ।[1]
तेसि ण दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं णव-णव जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता, तंजहा—
घणदन्तदीवे, लट्ठदन्तदीवे, गूढदन्तदीवे, सुद्धदन्तदीवे ।
तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा—
घणदन्ता, लट्ठदन्ता, गूढदन्ता, सुद्धदन्ता ।[2]
जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिण्णि-तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता एत्थ णं चत्तारि अन्तरदीवा पण्णत्ता, तंजहा—
एगूरुयदीवे, सेसं तहेव निरवसेसं भाणियव्वं—जाव—सुद्धदंता ।[3]

—ठा० ४ उ. २ सूत्र ३०४ पृ. २१४-१५

[१२] जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में, चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं में तीन-तीन सौ योजन आगे जाने पर चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा—एकोरुकद्वीप, आभाषिकद्वीप, वैषाणिक द्वीप और लांगूलिकद्वीप ।

उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य निवास करते है, यथा—एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक और लांगूलिक ।

इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में चार-चार सौ योजन आगे जाने पर वहां चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा—हयकर्णद्वीप, गजकर्णद्वीप, गोकर्णद्वीप और शष्कुलिकर्णद्वीप । उन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं, यथा—हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलिकर्ण ।
इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में पांच-पांच सौ योजन आगे जाने पर वहां चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा—आदर्शमुखद्वीप, मेंढमुखद्वीप, अजामुखद्वीप और गोमुखद्वीप । इन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य कहने चाहिए ।

इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र मे छह-छह सौ योजन आगे जाने पर वहां चार अन्तरद्वीप हैं, यथा—अश्वमुखद्वीप हस्तिमुखद्वीप, सिंहमुखद्वीप और व्याघ्रमुखद्वीप । इन द्वीपों में (इन्हीं नामों वाले चार प्रकार के) मनुष्य कह लेने चाहिए ।

१—ठा. ८ सूत्र ६३० पृ. ४११
२—ठा. ९ सूत्र ६९८ पृ. ४४४
३—(क) जीवा, प्रति० २ सूत्र १०९-११२ पृ० १४४-१५६.
(ख) विवा. भाग ३ श. ९ उ. ३-३० पृ० १२७
(ग) ,, ,, श. १० उ. ७-३४ पृ० २०५

इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र में सात-सात सौ योजन आगे जाने पर वहां चार अन्तरद्वीप हैं, यथा—अश्वकर्णद्वीप, हस्तिकर्णद्वीप अकर्णद्वीप और कर्णप्रावरणद्वीप। इन द्वीपों मे (चार प्रकार के) मनुष्य कह लेने चाहिए।

इन द्वीपो से चारों विदिशाओं मे लवणसमुद्र में आठ-आठ सौ योजन अवगाहन करने पर वहां चार अन्तरद्वीप हैं, यथा—उल्कामुखद्वीप, मेघमुखद्वीप, विद्युन्मुखद्वीप और विद्युद्दन्तद्वीप। इन द्वीपों मे मनुष्यों का कथन कर लेना चाहिए।

इन द्वीपों से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र मे नौ-नौ सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप कहे हैं, यथा-घनदन्तद्वीप, लष्टदन्तद्वीप, गूढदन्तद्वीप और शुद्धदन्तद्वीप। इन द्वीपों में चार प्रकार के मनुष्य निवास करते है, यथा-घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त और शुद्धदन्त।

जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर में शिखरि वर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं मे, लवणसमुद्र में तीन-तीन सौ योजन आगे जाने पर वहाँ चार अन्तरद्वीप हैं, यथा—एकोरुकद्वीप (आदि पूर्ववत्)। शेष सब वक्तव्यता (उसी प्रकार) कह लेनी चाहिए—यावत्—शुद्धदन्त मनुष्य रहते हैं।

गौतमद्वीप

[१३][१] प्र०—कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,
लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,
एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे २ पण्णत्ते।[1]
बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, सत्ततीसं जोयणसहस्साइं नव य अडयाले|जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं,
जंबूदीवंतेणं अद्धेकोणणउते जोयणाइं चत्तालीसं पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिए, जलंताओ लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिते जलंताओ।
से णं एगाए य पउमवरवेइयाए, एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता तहेव, वण्णओ दोण्ह वि।
गोयमदीवस्स णं दीवस्स अंतो—जाव—बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहानामए आलिंग०-जाव-आसयंति।
तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स एगे महं अइक्कीलावासे नामं भोमेज्जविहारे पण्णत्ते,
बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं,
अणेगखंभसतसन्निविट्ठे, भवणवण्णओ भाणियव्वो।
अइक्कीलावासस्स णं भोमेज्जविहारस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—जाव—मणीणं भासो।

१—(क) मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमदीवस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तसट्ठिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

—सम. ६७ सूत्र ३

(ख) मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमदीवस्स पच्चत्थिमिल्ले चरमंते एस णं एगूणसत्तरिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

—सम. ९६ सूत्र ३

तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ एगा मणिपेढिया पण्णत्ता । सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमयी अच्छा —जाव— पडिरूवा ।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, वण्णओ ।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति-गोयमदीवे णं दीवे ?

उ०—तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं बहूइं उप्पलाइं—जाव—गोयमप्पभाइं से एएणट्ठेणं गोयमा !—जाव— णिच्चे ।

[३] प्र०—कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स सुट्ठिया णामं रायहाणी पण्णत्ता ?

उ०—गोयमदीवस्स पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे—जाव—अण्णंमि लवणसमुद्दे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,

एवं तहेव सव्व णेयव्वं—जाव—सुत्थिए देवे ।

—जीवा. सूत्र १६१ पृ. ११४

[१३][१] प्र०—भगवन् ! लवणाधिपति सुस्थित (देव) का गौतमद्वीप नामक द्वीप कहां है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत से पश्चिम में, लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर यहाँ लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतमद्वीप है ! वह बारह हजार योजन लम्बा-चौड़ा है । ३७९४८ योजन से कुछ कम परिधि वाला है । जम्बूद्वीप की ओर ८८।।$\frac{४}{११}$ योजन जलपर्यन्त से ऊँचा है, अर्थात् इतना जल से बाहर निकला हुआ है । लवणसमुद्र की ओर जलान्त से दो कोस ऊँचा है ।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा है । दोनों का वर्णन कर लेना चाहिए ।

गौतम द्वीप के अन्दर बहुत सम एवं रमणीय भूमिभाग है । वह आलिंगपुष्कर आदि के समान है—यावत्—देवगण वहां बैठते-विहार करते हैं । उस सम एवं रमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में लवणाधिपति सुस्थित का अति क्रीडावास नामक भौमेय विहार है । वह ६२।। योजन ऊँचा, ३१। योजन चौड़ा, अनेक सैकड़ों स्तंभों पर टिका हुआ है । यहां भवन का वर्णन कह लेना चाहिए ।
अतिक्रीडावास भौमेयविहार के अन्दर अति सम एवं रमणीय भूमिभाग है—यावत्—मणियों का भास है । उस सम एवं रमणीय भूभाग के ठीक मध्य में एक मणिपीठिका है । वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी-चौड़ी, एक योजन मोटी, सर्वमणिमयी, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है ।
उस मणिपीठिका के ऊपर एक देवशय्या है, उसका वर्णन समझ लेना चाहिये ।

[२] प्र०—भगवन् ! गौतमद्वीप किस हेतु से गौतमद्वीप कहलाता है ?

उ०—वहां स्थान-स्थान पर बहुत-से उत्पल—यावत्—गौतम-प्रभा वाले हैं । इस कारण से, गौतम ! (यह गौतमद्वीप कहा जाता है)—यावत्—(यह नाम) नित्य है ।

[३] प्र०—भगवन् ! लवणाधिपति सुस्थित देव की सुस्थिता नामक राजधानी कहाँ है ?

उ०—गौतमद्वीप के पश्चिम में, तिर्छे, असंख्यात (द्वीप-समुद्र छोड़ कर) अन्य लवणसमुद्र में बारह हजार योजन अवगाहन करने पर है । इस प्रकार सब कथन उसी प्रकार समझना चाहिए—यावत्—सुस्थित देव (विचरता है ।)

लवणसमुद्र के द्वार

[१४][१] प्र०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—
विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिते ।[1]

[२] प्र०—कहि णं भंते ! लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते
धायइसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महानदीए उप्पिं एत्थ णं लवणस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते,
अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं ।
एवं तं चेव सव्वं जहा जंबुद्दीवस्स विजयस्सरिसे वि (दारसरिसमेयंपि) रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णंमि लवणसमुद्दे ।

[३] प्र०—कहि णं भंते ! लवणसमुद्दे वेजयंते नामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धातइसंडदीवस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं,
सेसं तं चेव ।
एवं जयंते वि ।
णवरं सीयाए महाणदीए उप्पिं भाणियव्वे,
एवं अपराजिते वि,
णवरं दिसीभागो भाणियव्वो ।

[४] प्र०—लवणस्स णं भंते ! दारस्स य २ एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा !

गाहा—तिण्णेव सतसहस्सा पंचाणउतिं भवे सहस्साइं ।
दो जोयणसत असिता कोसं दारंतरे लवणे ।।१।।
—जाव—अबाधाए अंतरे पण्णत्ते

[१४][१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के कितने द्वार हैं ?

उ०—गौतम ! चार द्वार हैं, यथा–विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ।

[२] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र का विजय नामक द्वार कहाँ है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के पूर्वान्त में, धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में एवं सीतोदा महानदी के ऊपर लवणसमुद्र का विजय नामक द्वार है । यह आठ योजन ऊंचा और चार योजन चौड़ा है । इसका सम्पूर्ण वर्णन जम्बूद्वीप के विजय द्वार के समान है । इसकी राजधानी भी पूर्व की ओर अन्य लवणसमुद्र में है ।

[३] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में वैजयन्त नामक द्वार कहाँ है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के दक्षिणान्त में एवं धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिणार्ध के उत्तर में (वैजयन्त द्वार) है । शेष सब वर्णन उसी प्रकार है ।
इसी प्रकार जयन्त द्वार के विषय में भी कहना चाहिए । विशेषता यह है कि यह सीता महानदी के ऊपर है । इसी प्रकार अपराजित द्वार भी समझना चाहिए । अन्तर यह है कि यहाँ दिग्भाग कहना चाहिए ।

१—ठा. ४ उ. २ सूत्र ३०५ पृ. २१५ ।

[४] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के एक द्वार से दूसरे द्वार तक कितना अन्तर है ?
उ०—गौतम ! (गाथार्थ—) लवणसमुद्र के द्वारों का अन्तर ३९५२८० योजन और एक कोस का है ।

लवणसमुद्र संज्ञा का हेतु

[१५][१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—लवणसमुद्दे लवणसमुद्दे ?
उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे
उदगे आविले रइले लोणे लिंदे खारए कडुए अप्पेज्जे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सिरीसवाणं,
नण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं ।
सोत्थिए एत्थ लवणाहिवई देवे महिड्ढिए पलिओवमट्ठिईए,
से णं तत्थ सामाणिय—जाव—लवणसमुद्दस्स सुत्थियाए रायहाणीए अण्णेसिं—जाव—विहरइ ।
से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—लवणसमुद्दे लवणसमुद्दे ।
अदुत्तरं च णं गोयमा ! लवणसमुद्दे सासए—जाव—णिच्चे ।

[१५][१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र को लवणसमुद्र क्यों कहते है ?
उ०—गौतम ! लवणसमुद्र का पानी मैला है, कीचड़ वाला है, लवण सरीखा है, गोबर जैसा है, खारा है, कटुक है, अनेक द्विपदों, चतुष्पदों, मृगों, पशुओं, पक्षियों एवं सरीसृपों आदि के लिए पीने योग्य नहीं है; केवल उसमें उत्पन्न होने वाले प्राणियों के लिए ही पेय है । यहाँ सुस्थित नामक लवणाधिपति देव महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाला निवास करता है । वह देव अपने सामानिक देवों पर—यावत्—सुस्थिता नामक राजधानी पर तथा अन्य बहुत—से देवों पर अधिपतित्व करता हुआ विचरता है । इस कारण गौतम ! इसे लवणसमुद्र कहते हैं । अथवा गौतम ! लवणसमुद्र (का यह नाम) शाश्वत—यावत्—नित्य है ।

लवणसमुद्र-धातकीखंड के प्रदेशों का स्पर्श आदि

[१६] लवणस्स णं पएसा धायइसंडं दीवं पुट्ठा,
तहेव जहा जंबूदीवे धायइसंडे वि सो चेव गमो ।
लवणे णं भंते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता सा चेव विही ।
एवं धायइसंडे वि ।

[१६] क्या लवणसमुद्र के प्रदेश धातकीखण्ड द्वीप से स्पृष्ट है ?
जम्बूद्वीप की ही भांति धातकीखण्ड से भी स्पृष्ट हैं ।
क्या लवणसमुद्र के जीव मर कर (धातकीखण्ड में उत्पन्न होते हैं) ?
जम्बूद्वीप की तरह धातकीखण्ड के विषय में भी समझना चाहिए ।

लवणादि समुद्रों के जल की विशेषता

[१७][१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे
किं ऊसितोदके, किं पत्थडोदगे,
किं खुभियजले, किं अखुभियजले ?
उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे
उस्सितोदगे, नो पत्थडोदगे,
खुभियजले, नो अक्खुभियजले ।

[२] प्र०—जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे
उस्सिओदगे, नो पत्थडोदगे,
खुभियजले, नो अक्खुभियजले,
तहा णं बाहिरगा समुद्दा
किं उस्सिओदगा, पत्थडोदगा, खुभियजला, अक्खुभियजला ?

उ०—गोयमा ! बाहिरगा समुद्दा
नो उस्सिओदगा, पत्थडोदगा,
नो खुभियजला, अक्खुभियजला,
पुण्णा, पुण्णप्पमाणा, वोलट्टमाणा, वोसट्टमाणा,
समभरघडत्ताए चिट्ठंति ।[1]

लवणादि समुद्रों में मेघ

[१८][१] प्र०—अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवो ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वा वासं वासंति वा ?

उ०—हंता अत्थि ।

[२] प्र०—जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति वा,
तहा णं बाहिरिएसु वि समुद्देसु बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति ?

उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[३] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडियाए चिट्ठंति ?

उ०—गोयमा ! बाहिरएसु णं समुद्देसु
बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य
उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति,
से तेणट्ठेणं एवं वुच्चति—
बाहिरगा समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा—जाव—समभरघडत्ताए चिट्ठंति ।

[१७][१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र ऊर्ध्वोदक (ऊँचे जल वाला) है या प्रस्तट (सर्वत्र समान) जल वाला है ? क्षुभित जल वाला है या अक्षुभित जल वाला है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र ऊर्ध्वोदक है, प्रस्तट जल वाला नहीं; क्षुभित जल वाला है, अक्षुभित जल वाला नहीं ।

[२] प्र०—भगवन् ! जिस प्रकार लवणसमुद्र ऊर्ध्वोदक है, प्रस्तटोदक नहीं तथा क्षुब्ध जल वाला है, अक्षुब्ध जल वाला नहीं, उसी प्रकार क्या बाह्य समुद्र भी ऊर्ध्वोदक, प्रस्तटोदक, क्षुभितजल या अक्षुभितजल हैं ?

उ०—गौतम ! बाह्य समुद्र ऊर्ध्वोदक नही हैं किन्तु प्रस्तट अर्थात् सर्वत्र सम न जल वाले हैं, क्षुब्ध जल वाले नहीं हैं किन्तु अक्षुब्ध जल वाले हैं। ये (जल से) पूर्ण, अपने प्रमाण तक जल से परिपूर्ण, लबालब भरे हुए, ऊपर से बहते हुए जैसे तथा पूरी तरह भरे हुए घट के समान हैं ।

[१८][१] प्र०—भगवन् ! क्या लवणसमुद्र में बहुत-से उदार मेघ बनने लगते हैं, बनते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

उ०—हाँ ऐसा होता है ।

१—विवा. श. ६ उ. ८ प्र. १९ पृ. ३३३-३३४

[२] प्र०—भगवन्! जिस प्रकार लवण समुद्र से उदार मेघ बनने लगते हैं, बनते हैं और वर्षा बरसाते हैं, उसी प्रकार क्या बाह्य समुद्रों में भी अनेक उदार मेघ बनने लगते हैं, बनते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

उ०—नहीं, ऐसी बात नहीं है ।

[३] प्र०—भगवन्! बाह्य समुद्र पूर्ण, अपने प्रमाण तक जल से परिपूर्ण, लबालब भरे हुए, ऊपर से बहते जैसे हैं, ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उ०—गौतम! बाह्य समुद्रों में बहुत-से जलयोनिक जीव तथा पुद्गल जल रूप से जाते हैं, उत्पन्न होते हैं, च्युत होते हैं, उपचय को प्राप्त होते हैं । इस कारण ऐसा कहा जाता है कि बाह्य समुद्र पूर्ण, पूर्ण-प्रमाण-यावत्-परिपूर्ण भरे हुए घट के समान हैं ।

धातकीखण्ड द्वीप

[१] लवणसमुद्दं धायइसंडे नाम दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ ।

[१] प्र०—धायइसंडे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठिते, विसमचक्कवालसंठिते ?

उ०—गोयमा! समचक्कवालसंठिते, नो विसमचक्कवालसंठिते ।

[२] प्र०—धायइसंडे णं भंते! दीवे केवतियं चक्कवाल-विक्खंभेणं,
केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा! चत्तारि जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,[1]
एगयालीसं जोयणसतसहस्साइं दसजोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।
से णं एगाए पउमवरवेदियाए, एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते ।
दोण्ह वि वण्णओ दीवसमिया परिक्खेवेणं ।[2]

[३] प्र०—धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए ।

[४] प्र०—कहि णं भंते! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते, कालोयसमुद्द-पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं, सीयाए महाणदीए उप्पिं, एत्थ णं धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ।
तं चेव पमाणं, रायहाणीओ अण्णंमि धायइसंडे दीवे,
दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा ।
एवं चत्तारि वि दारा भाणियव्वा ।

[५] प्र०—धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य २ एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा! दस जोयणसयसहस्साइं, सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं, सत्तपणतीसे जोयणसए, तिन्नि य कोसे दारस्स य २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

१—(क) सम० स० ४ सूत्र १२७ पृ० ११८
(ख) ठा० अ० ४ उ० २ सूत्र० ३०६ पृ० २१५ ।

२—ठा० अ० २ उ० ३ सूत्र ९२ पृ० ७५ ।

[६] प्र०—धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स पदेसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा ?

उ०—हंता पुट्ठा ।

[७] प्र०—ते णं भंते ! किं धायइसंडे दीवे कालोए समुद्दे ?

उ०—ते धायइसंडे, नो खलु ते कालोयसमुद्दे । एवं कालोयस्स वि ।

[८] प्र०—धायइसंडदीवे जीवा उद्दाइत्ता २ कालोए समुद्दे पच्चायंति ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगतिया पच्चायंति, अत्थेगतिया नो पच्चायंति ।
एवं कालोए वि अत्थेगतिया पच्चायंति अत्थेगतिया नो पच्चायंति ।

[९] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति-धायइसंडे दीवे २ ?

उ०—गोयमा ! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ पएसे धायइरुक्खा धायइवणा धायइसंडा णिच्चं कुसुमिया—जाव—उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति, धायइ-महाधायइरुक्खेसु सुदंसण-पियदंसणा दुवे देवा महिड्ढिया—जाव—पलिओवमट्ठितीया परिवसंति से एएणट्ठेणं०,
अदुत्तरं च णं गोयमा ! —जाव—णिच्चे ।[1]

—जीवा. प्रति. ३ उ. २. सू. १७४

[१] वर्तुल एवं वलयाकार धातकीखण्ड नामक द्वीप लवणसमुद्र को चारों ओर से घेर कर रहा हुआ है ।

[१] प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप सम चक्राकार है अथवा विषम चक्राकार है ?

उ०—गौतम ! सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नहीं ।

[२] प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड की चक्राकार चौड़ाई एवं परिधि कितनी है ?

उ०—गौतम ! चार लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई एवं ४११०९६१ योजन से कुछ कम की परिधि है ।
इसके चारों ओर एक पद्मवरवेदिका व एक वनखण्ड है । इन दोनों का वर्णन यथावत् समझ लेना चाहिए । (इनकी) परिधि द्वीप के समान ही है ।

[३] प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप के कितने द्वार हैं ?

उ०—गौतम ! चार द्वार हैं–विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ।

[४] प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप का विजय नामक द्वार कहाँ है ?

१–(क) ठा० अ० २ उ० ३ सूत्र ९२ पृ० ७५
(ख) ठा० अ० ३ उ० १ सूत्र १४२ पृ० ११६
(ग) ठा० अ० ३ उ० ३ सूत्र १८३ पृ० १४०
(घ) ठा० अ० ३ उ० ४ सूत्र १९७ पृ० १५०
(ङ) ठा० अ० ४ उ० २ सूत्र ३०२ पृ० २१३
(च) ठा० अ० ५ उ० २ सूत्र ४३४ पृ० ३०९
(छ) ठा० अ० ७ सूत्र ५५५ पृ० ३७७
(ज) ठा० अ० ८ सूत्र ६४१ पृ० ४१३
(झ) ठा० अ० १० सूत्र ७६८ पृ० ४९१
(ञ) सम० ६८ सूत्र ४
(ट) सम० ३७ सूत्र ३

उ०—गौतम ! धातकीखण्ड के पूर्वान्त में, कालोद समुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में एव सीता महानदी के ऊपर धातकीखण्ड द्वीप का विजय नामक द्वार है। इसका प्रमाण वही है। राजधानी अन्य धातकीखण्ड द्वीप में है।

द्वीप का वर्णन समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार चारों द्वारों का वर्णन भी समझ लेना चाहिए।

[५] प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार की कितनी दूरी है ?

उ०—गौतम ! प्रत्येक द्वार में १०२७७३५ योजन तथा तीन कोस का अन्तर है।

[६] प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप के प्रदेश क्या कालोद समुद्र से स्पृष्ट हैं ?

उ०—हां स्पृष्ट हैं।

[७] प्र०—भगवन् ! वे (प्रदेश) धातकीखण्ड द्वीप के है अथवा कालोद समुद्र के ?

उ०—वे धातकीखण्ड के है, कालोद समुद्र के नहीं।

इसी प्रकार कालोद समुद्र के (प्रदेशों के) विषय में भी कहना चाहिए।

[८] प्र०—क्या धातकीखण्ड द्वीप के जीव मर कर कालोद समुद्र में उत्पन्न होते है ?

उ०—गौतम ! कोई-कोई उत्पन्न होते हैं, कोई-कोई नहीं उत्पन्न होते।

इसी प्रकार कालोद समुद्र के भी कोई-कोई जीव मर कर धातकीखण्ड द्वीप में उत्पन्न होते हैं और कोई-कोई उत्पन्न नही होते।

[९] प्र०—भगवन् ! इसे धातकीखण्ड द्वीप क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! धातकीखण्ड द्वीप में जगह-जगह धातकी वृक्ष, धातकी वन और धातकी खण्ड हैं जो नित्य कुसुमित-यावत्-सुशोभित रहते हैं। धातकी और महाधातकी वृक्षों पर सुदर्शन और प्रियदर्शन नामक दो देव रहते हैं। वे महर्द्धिक-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाले है। (इस कारण इसे धातकीखण्ड द्वीप कहते हैं)।

अथवा गौतम ! (यह नाम)-यावत्-नित्य है।

कालोद समुद्र

[१] धायइसंडं णं दीवं कालोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ।

[१] प्र०—कालोदे णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिते, विसम० ?

उ०—गोयमा ! समचक्कवाल०, णो विसमचक्कवालसंठिते।

[२] प्र०—कालोदे णं भंते ! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अट्ठजोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,[1]

एकाणउति जोयणसयसहस्साइं, सत्तरि सहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते[2]।

से णं एगाए पउमवरवेदियाए, एगेणं वणसंडेणं-दोण्ह वि वण्णओ[3]।

---

१. ठा. अ. ८ सूत्र ६३१ पृ. ४११

२. सम. ९१ सूत्र २ पृ. १०३

३. ठा. २ उ. ३ सूत्र ९३ पृ. ७५

[३] प्र०—कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा-विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए ।

[४] प्र०—कहि णं भंते ! कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कालोदे समुद्दे पुरत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं, सीतोदाए महाणदीए उप्पिं, एत्थ णं कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ।
अट्ठ जोयणाइं, तं चेव पमाणं-जाव-रायहाणीओ ।

[५] प्र०—कहि णं भंते ! कालोयस्स समुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स दक्खिणपेरंते, पुक्खरवरदीवस्स दक्खिणद्धस्स उत्तरेणं, एत्थ णं कालोय-समुद्दस्स वेजयंते नामं दारे पन्नत्ते ।

[६] प्र०—कहि णं भंते ! कालोयसमुद्दस्स जयंते नामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स पच्चत्थिमपेरंते, पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं, सीताए महाणदीए उप्पिं जयंते नामं दारे पण्णत्ते ।

[७] प्र०—कहि णं भंते ! अपराजिए नामं दारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स उत्तरद्धपेरंते, पुक्खरवरदीवोत्तरद्धस्स दाहिणओ, एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स अपराजिए णामं दारे०
सेसं तं चेव ।

[८] प्र०—कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा !
गाहा—बावीससयसहस्सा, बाणउति खलु भवे सहस्साइं ।
छच्च सया बायाला, दारंतर तिन्नि कोसा य ।।१।।
दारस्स य २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।
कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स पएसा पुक्खरवरदीव० तहेव,
एवं पुक्खरवरदीवस्स वि जीवा उद्दाइत्ता २ तहेव भाणियव्वं ।

[९] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति-कालोए समुद्दे २ ?

उ०—गोयमा ! कालोयस्स णं समुद्दस्स उदके आसले मासले पेसले कालए मासरासिवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते ।

काल-महाकाला एत्थ दुवे देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव-णिच्चे ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १७५

[१] कालोद नामक समुद्र, जो वृत्त और वलयाकार है, धातकीखण्ड द्वीप को सभी ओर से घेर कर स्थित है ।

[१] प्र०—कालोद समुद्र सम चक्राकार है अथवा विषम चक्राकार है ?

उ०—गौतम ! सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नहीं ।

[२] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र की चक्राकार चौड़ाई व परिधि कितनी है ?

उ०—गौतम ! आठ लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई व ९१ लाख १७ हजार ६७५ योजन से कुछ

विशेष अधिक की परिधि है।

इसके चारों ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है। इन दोनों का वर्णन यथावत् कर लेना चाहिए।

[३] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र के कितने द्वार है ?

उ०—गौतम ! चार द्वार हैं, यथा-विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित।

[४] प्र०—भगवान् ! कालोद समुद्र का विजय नामक द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! कालोद समुद्र के पूर्वान्त में, पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में, एवं सीतोदा महानदी के ऊपर कालोद समुद्र का विजय नामक द्वार है। यह आठ योजन (ऊंचा) है, इत्यादि प्रमाण पूर्ववत् ही है-यावत्-राजधानी है।

[५] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र का वैजयन्त द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! कालोद समुद्र के दक्षिणान्त में एवं पुष्करवर द्वीप के दक्षिणार्ध के उत्तर में कालोद समुद्र का वैजयन्त नामक द्वार है।

[६] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र का जयन्त नामक द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! कालोद समुद्र के पश्चिमान्त में, पुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्ध के पूर्व में एवं सीता महानदी के ऊपर जयन्त नामक द्वार है।

[७] प्र०—भगवन् ! अपराजित नामक द्वार कहां है ?

उ०—गौतम ! कालोद समुद्र के उत्तरार्ध के अन्त में एवं पुष्करवर द्वीप के उत्तरार्ध के दक्षिण में कालोद समुद्र का अपराजित नामक द्वार है। शेष वर्णन पूर्ववत् है।

[८] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र के प्रत्येक द्वार में कितना अन्तर है ?

उ०—गौतम !

गाथार्थ—प्रत्येक द्वार में बाईस लाख, बानवे हजार, छह सौ बयालीस योजन तथा तीन कोस का अन्तर होता है।

भगवन् ! कालोद समुद्र के प्रदेश क्या पुष्करवर द्वीप से स्पृष्ट हैं ? एवं पुष्करवर द्वीप के जीव मर कर क्या—(कालोद समुद्र में उत्पन्न होते है ?) इत्यादि कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

[९] प्र०—भगवन् ! इसे कालोद समुद्र क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! कालोद समुद्र का पानी आस्वादनीय, पुष्टिकारक, पेशल (बढ़िया) कृष्ण, माष (उड़द) की राशि के वर्ण का एवं स्वाभाविक पानी के रस वाला है। यहाँ काल और महाकाल नामक महर्द्धिक-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं। इस कारण गौतम ! इसे कालोद समुद्र कहते हैं। (अथवा यह नाम) नित्य है।

पुष्करवर द्वीप

[१] कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वतो समंता संपरि०तहेव —जाव—समचक्कवालसंठाणसंठिते, नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए।

[१] प्र०—पुक्खरवरे णं भंते ! दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सोलस जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं।

गाहा—एगा जोयणकोडी बायालीसं खलु भवे सयसहस्सा ।
अउणाणउतिं अट्ठ सया चउणउया य (परिरओ) पुक्खरवरस्स ।।१।।
से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेण संपरि०, दोण्ह वि वण्णओ ।

[२] प्र०—पुक्खरवरस्स णं भंते ! कति दारा पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—
विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिते ।

[३] प्र०—कहि णं भंते ! पुक्खरवरस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा ! पुक्खरवरदीवपुरच्छिमपेरंते, पुक्खरोदसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ।
तं चेव सव्वं, एवं चत्तारि वि दारा,
सीया-सीओदा णत्थि भाणितव्वाओ ।

[४] प्र०—पुक्खरवरस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?
उ०—गोयमा !

गाहा—अडयालसयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं ।
अगुणुत्तरा य चउरो दारंतर पुक्खरवरस्स ।।१।।
पदेसा दोण्ह वि पुट्ठा, जीवा दोसु भाणियव्वा ।

[५] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति-पुक्खरवरदीवे २ ?
उ०—गोयमा ! पुक्खरवरे णं दीवे तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहवे पउमरुक्खा, पउमवणसंडा णिच्चं कुसुमिता—जाव—चिट्ठंति,
पउम-महापउमरुक्खे एत्थ णं पउम-पुंडरीया णामं दुवे देवा महिड्ढिया—जाव—पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति-पुक्खरवरदीवे २—जाव—णिच्चे[1] ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १७६

१– (क) ठा. अ. ८ सूत्र ६३२ पृ. ४११
(ख) ठा. अ. २, उ. ३ सूत्र ९३ पृ, ७५
(ग) ठा. अ. ३, उ. १ सूत्र १४२–१४३ पृ. ११६
(घ) ठा. अ. ३ उ. ३ सूत्र १८३ पृ. १४०
(ङ) ठा. अ. ३ उ. ४ सूत्र १९७ पृ. १५०
(च) ठा. अ. ५ उ. २ सूत्र ४३४ पृ. ३०९
(छ) ठा. अ. ६ सूत्र ५२२ पृ. ३५०
(ज) ठा. अ. ७ सूत्र ५५५ पृ. ३७७
(झ) ठा. अ. ८ सूत्र ६४१ पृ. ४१३
(ञ) ठा. अ. १० सूत्र ७६८ पृ. ४९१
(ट) ,, ,, ,, ७२१ पृ. ४५३
(ठ) सम. ६८ सूत्र १ पृ. ९०
(ड) सम. ३७ सूत्र ३ पृ. ७५

[१] कालोद समुद्र के चारों ओर वृत्त और वलयाकार पुष्करवर द्वीप स्थित है । वह—यावत्—सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नहीं।

[१] प्र०—भगवन् ! पुष्करवर द्वीप का चक्रवालविष्कंभ एवं परिक्षेप कितना है ?

उ०—गौतम ! सोलह लाख योजन का चक्रवाल विष्कंभ है ।

गाथार्थ—पुष्करवर द्वीप की परिधि एक करोड़, बानवे लाख, नवासी हजार, आठ सौ, चौरानवे (१९२८९-८९४) योजन की है ।

इसके चारों ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है । इनका वर्णन पूर्ववत् कह लेना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! पुष्करवरद्वीप के कितने द्वार हैं ?

उ०—गौतम ! चार द्वार है, यथा—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ।

[३] प्र०—भगवन् ! पुष्करवर द्वीप का विजय नामक द्वार कहाँ है ?

उ०—गौतम ! पुष्करवर द्वीप के पूर्वान्त में एवं पुष्करोद समुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में पुष्करवर द्वीप का विजय नामक द्वार है । उसका सब वर्णन पूर्ववत् है । इसी प्रकार चारों द्वारों के विषय मे समझना चाहिए । किन्तु यहां सीता और सीतोदा महानदियो का कथन नहीं करना चाहिए ।

[४] प्र०—भगवन् ! पुष्करवर द्वीप के प्रत्येक द्वार में कितना अन्तर है ?

उ०—गौतम !

गाथार्थ—पुष्करवर द्वीप के चारों द्वारों का अन्तर अड़तालीस लाख, बाईस हजार, चार सौ उनसत्तर योजन का है ।

दोनों के प्रदेश परस्पर स्पृष्ट हैं । दोनों में जीव (मर कर दोनों में उत्पन्न होते हैं) ऐसा कह लेना चाहिए ।

[५] प्र०—भगवन् ! पुष्करवर द्वीप पुष्करवर द्वीप क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम ! पुष्करवर द्वीप में स्थान-स्थान पर यत्र-तत्र बहुत-से पद्मवृक्ष एवं पद्मवनखण्ड नित्य कुसुमित—यावत्—हैं । यहाँ पद्म और महापद्म वृक्ष पर पद्म और पुण्डरीक नामक दो देव रहते हैं, जो महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले हैं । इस कारण गौतम ! यह पुष्करवर द्वीप कहलाता है । (अथवा यह नाम)—यावत्—नित्य है ।

समयक्षेत्र

[१]]१] प्र०—समयखेत्ते णं भंते ! केवतियं आयामविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं,[1] एगा जोयणकोडी-जाव-अब्भितर-पुक्खरद्धपरिरओ से भाणियव्वो-जाव-अउणपण्णे ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १७६

---

१. (क) सम. ४५ सूत्र १ पृ. ८०

(ख) ठा. ३ उ. २ सूत्र १४८ पृ. ११९

(ग) ठा. ४ उ. ३ सूत्र ३२८ पृ. २३८

(घ) समयखेत्ते एगूणचत्तालीसं कुलपव्वया पण्णत्ता, तंजहा—तीसं वासहरा, पंच मंदरा, चत्तारि उसुकारा ।

—सम. ३९ सूत्र २

(ङ) समयखित्ते णं मंदरवज्जा एगूणसत्तरिं वासा वासधरपव्वया पण्णत्ता, तंजहा-पणतीसं वासा, तीसं वासहरा, चत्तारि उसुयारा ।

—सम. ६९ सूत्र १

[१] [१] प्र०— भगवन्! समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) कितना लम्बा-चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है?

उ०—गौतम! ४५ लाख योजन लम्बा-चौड़ा है और एक करोड़ योजन-यावत्-आभ्यन्तर पुष्करार्ध के बराबर (अर्थात् १४२३०२४९ योजन से किंचित् अधिक) परिधि वाला है।

'मनुष्यक्षेत्र' संज्ञा का हेतु

[२] [१] प्र०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति-माणुसखेत्ते २?

उ०—गोयमा! माणुसखेत्ते णं तिविधा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा-कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति-माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १७६

[२] [१] प्र०—भगवन्! मनुष्यक्षेत्र (समयक्षेत्र) मनुष्यक्षेत्र क्यों कहा जाता है?

उ०—गौतम! मनुष्यक्षेत्र में तीन प्रकार के मनुष्य रहते हैं, यथा-कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर-द्वीपज। इस कारण गौतम! मनुष्यक्षेत्र मनुष्यक्षेत्र कहलाता है।

मानुषोत्तर पर्वत

[३] [१] प्र०—१-माणुसुत्तरे णं भंते! पव्वते केवतियं उड्ढं उच्चत्तेणं?

२-केवतियं उव्वेहेणं?

३-केवतियं मूले विक्खंभेणं?

४-केवतियं मज्झे विक्खंभेणं?

५-केवतियं सिहरे विक्खंभेणं?

६-केवतियं अंतो गिरिपरिरएणं?

७-केवतियं बाहिं गिरिपरिरएणं?

८-केवतियं मज्झे गिरिपरिरएणं?

९-केवतियं उवरि गिरिपरिरएणं?

उ०—१-गोयमा! माणुसुत्तरे णं पव्वते सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1]

२-चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं,

३-मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं,[2]

४-मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसते विक्खंभेणं,

(च) अंतो णं मणुस्सखेत्तस्स दो समुद्दा पण्णत्ता, तंजहा-लवणे चेव कालोदे चेव।

—ठा० २ उ. ४ सूत्र १११ पृ. ९३

(छ) समयखेत्ते णं पंच भरहाइं, पंच एरवयाइं, एवं जहा चउट्ठाणे बितीय उद्देसे तहा एत्थ वि भाणिअव्वं-जाव-पंच मंदरा, पंच मंदरचूलियाओ, णवरं-उसुयारा णत्थि।

—ठा० ५ उ. २ सूत्र ४३४ पृ. ३१०

(ज) समयखेत्ते णं दस कुरा पण्णत्ता, तंजहा-पंच देवकुराओ, पंच उत्तरकुराओ,

तत्थ णं दस महइमहालया महादुमा पण्णत्ता, तंजहा-(१) जंबू सुदंसणा, (२) धायइरुक्खे, (३) महाधायइरुक्खे, (४) पउमरुक्खे, (५) महापउमरुक्खे, (६-१०) पंच कूडसामलीओ।

तत्थ णं दस देवा महिड्ढीया-जाव-परिवसंति, तंजहा-(१) अणाढिए जंबुद्दीवाहिवई, (२) सुदंसणे, (३) पियदंसणे, (४) पोंडरीए, (५) महापोंडरीए, (६-१०) पंच गरुला वेणुदेवा।

—ठा. १० सूत्र ७६४ पृ. ४९०

१-सम० १७ सूत्र ३ पृ० ३४।

२-ठा १० सूत्र ७२४ पृ० ४५३।

५–उवरि चत्तारिचउवीसे जोयणसते विक्खंभेणं,

६–अंतो गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं, तीसं च सहस्साइं, दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं;

७–बाहिर गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं, छत्तीसं च सहस्साइं सत्त चोद्दसोत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं,

८–मज्झे गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी, बायालीसं च सतसहस्साइं, चोत्तीसं च सहस्सा, अट्ठतेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं,

९–उवरि गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं, बत्तीसं च सहस्साइं नव य बत्तीसे जोयणसते परिक्खेवेणं,

मूले विच्छिन्न (त्थि) न्ने, मज्झे संखित्ते, उप्पिं तणुए,

अंतो सण्हे, मज्झे उदग्गे, बाहिं दरिसणिज्जे,

ईसि सण्णिसण्णे सीहणिसाई

अवद्धजवरासिसंठाणसंठिए

सव्वजम्बूणयामए अच्छे सण्हे—जाव—पडिरूवे ।

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेदियाहिं दोहि य वणसंडेहिं

सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते,

वण्णओ दोण्ह वि ।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—माणुसुत्तरे पव्वते २ ?

उ०—गोयमा ! माणुसुत्तरस्स णं पव्वतस्स अंतो मणुया, उप्पिं सुवण्णा, बाहिं देवा ।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! माणुसुत्तरपव्वतं मणुया ण कयाइ वीतिवइंसु वा वीतिवयंति वा वीतिवइस्संति वा,

णण्णत्थ चारणेहिं वा विज्जाहरेहिं वा देवकम्मुणा वावि, से तेणट्ठेणं गोयमा ! ० ।

अदुत्तरं च णं—जाव—णिच्चेति ।[1]

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सू. १७८

[३] [१] प्र०—भगवन् ! मानुषोत्तर पर्वत कितना ऊंचा, कितना गहरा, कितना मूल में चौड़ा, कितना मध्य में चौड़ा, कितना शिखर पर चौड़ा, कितनी अन्दर की परिधि वाला, कितनी बाहर की परिधि वाला, कितनी बीच की परिधि वाला एवं कितनी ऊपर की परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! मानुषोत्तर पर्वत १७२१ योजन ऊंचा, ४३० योजन और एक कोस गहरा, मूल में १०२२ योजन चौड़ा, मध्य में ७२३ योजन चौड़ा, ऊपर (शिखर पर) ४२४ योजन चौड़ा, अन्दर १४२-३०२४९ योजन से कुछ विशेषाधिक की परिधि वाला, बाहर १४२३६७१४ योजन की परिधि वाला, बीच में १४२३४८२३ योजन की परिधि वाला एवं ऊपर १४२३२९३२ योजन की परिधि वाला है ।

मूल में विस्तीर्ण, बीच में संक्षिप्त, ऊपर पतला, अन्दर चिकना, बीच में उदग्र (ऊंचा उठा हुआ) बाहर दर्शनीय, ईषत् आसीन (कुछ बैठे हुए) सिंह के समान, आधे यव के आकार का, सर्व जम्बूनदमय, स्वच्छ, चिकना-यावत्-प्रतिरूप है ।

(इसकी) दोनों दिशाओं में पद्मवरवेदिकाएँ और दो वनखण्ड चारों ओर व्याप्त हैं । इन दोनों का वर्णन समझ लेना चाहिए ।

१–ठा० ३ उ० ४ सूत्र २०४ पृ० १५६ ।

[२] प्र०—भगवन्! मानुषोत्तर पर्वत मानुषोत्तर पर्वत क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम! मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर (अढ़ाई द्वीप के अन्तर्गत भाग में) मनुष्य है, ऊपर सुवर्णकुमार देव हैं, और बाहर देव हैं। अथवा गौतम! मानुषोत्तर पर्वत को मनुष्यों ने न कभी उल्लंघन किया है, न कभी उल्लंघन करते हैं, न कभी उल्लंघन करेंगे। केवल चारणों, विद्याधरों अथवा देवकर्म के कारण (मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत का उल्लंघन करते हैं) इस कारण गौतम! यह मानुषोत्तर पर्वत कहलाता है। अथवा (यह नाम)-यावत्-नित्य है।

पुष्करोद समुद्र

[१] पुक्खरवरण्णं दीवं पुक्खरोदे समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाण-संठिते-जाव-संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति।

[१] प्र०—पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

[२] प्र०—पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तहेव सव्वं, पुक्खरोदसमुद्दपुरत्थिमपेरंते, वरुणवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खरोदस्स विजए नामं दारे पण्णत्ते,
एवं सेसाण वि।
दारंतरंमि संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते, एवं सेसाण वि।
पदेसा जीवा य तहेव।

[३] प्र०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-पुक्खरोदे समुद्दे २ ?

उ०—गोयमा! पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स उदगे अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं, सिरिधर-सिरिप्पभा य दो देवा-जाव-महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, से एतेणट्ठेणं -जाव-णिच्चे।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १८०

[१] पुष्करवर द्वीप को वर्तुल एवं वलयाकार पुष्करोद समुद्र सभी ओर से घेरे हुए है।

[१] प्र०—भगवन्! पुष्करोद समुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ और परिक्षेप (परिधि) कितना है ?

उ०—गौतम! संख्यात लाख योजन का विष्कंभ है और संख्यात लाख योजन का परिक्षेप है।

[२] प्र०—पुष्करोद समुद्र के द्वार कितने है ?

उ०—गौतम! चार द्वार है। ये सब उसी प्रकार (पूर्ववत्) हैं। पुष्करोद समुद्र के पूर्वान्त में एवं वरुणवर द्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में पुष्करोद का विजय नामक द्वार है। इसी प्रकार शेष द्वारों का भी कथन करना चाहिए।
द्वारों का पारस्परिक अन्तर संख्येय लाख योजन का है। प्रदेशों के स्पर्श का तथा जीवों (के उत्पन्न होने) का कथन भी उसी प्रकार है।

[३] प्र०—भगवन्! पुष्करोद समुद्र पुष्करोद समुद्र क्यों कहलाता है ?

उ०—गौतम! पुष्करोद समुद्र का जल स्वच्छ, पथ्य, उत्तम जाति का, हल्का, स्फटिक के वर्ण का, एवं स्वभाव से ही पानी जैसा स्वाद वाला है। यहां श्रीधर एवं श्रीप्रभ नामक दो देव रहते हैं जो महर्द्धिक-यावत्-पल्योपम की स्थिति वाले हैं। इस कारण (इसे पुष्करोद समुद्र कहते हैं) अथवा (यह नाम) -यावत्-नित्य है।

वरुणवर द्वीप

[१] पुक्खरोदे णं समुद्दे वरुणवरे णं दीवे णं संपरि० वट्टे वलयागारे—जाव—चिट्ठति ।
तहेव समचक्कवालसंठिते ।

[१] प्र०—केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।
पउमवरवेदिया–वणसंडवण्णओ, दारंतरं, पदेसा, जीवा तहेव सव्वं ।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–वरुणवरे दीवे २ ?

उ०—गोयमा ! वरुणवरे णं दीवे तत्थ २ देसे २ तहिं २ बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ—जाव—बिलपंतियाओ अच्छाओ पत्तेयं २ पउमवरवेदियापरि० वण० वारुणिवरोदगपडिहत्थाओ पासातीताओ ४,
तासु णं खुड्डाखुड्डियासु—जाव—बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वता—जाव—खडहडगा सव्व-फलिहामया अच्छा, तहेव वरुण-वरुणप्पभा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया परिवसंति, से तेणट्ठेणं —जाव—णिच्चे ।

—जीवा, प्रति. ३ उ. २ सू. १८०

[१] पुष्करोद समुद्र के चारों ओर वरुणवर नामक द्वीप वृत्त वलयाकार रूप में स्थित है । यह उसी प्रकार सम चक्राकार है ।

[१] प्र०—उसकी चक्राकार चौड़ाई और परिधि कितनी है ?

उ०—गौतम ! संख्येय लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई एवं संख्येय लाख योजन की परिधि है ।
पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वारों का परस्पर अन्तर, प्रदेश, जीव आदि का वर्णन उसी प्रकार समझना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! इसे वरुणवर द्वीप क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! वरुणवर द्वीप में यत्र-तत्र अनेक छोटी-बड़ी—यावत्—बिलपंक्तियां है जो स्वच्छ हैं । इनमें से प्रत्येक के चारों ओर पद्मवरवेदिका आदि हैं । ये वारुणी के समान पानी से परिपूर्ण हैं—यावत्—प्रसादजनक हैं ।
इन छोटी-बड़ी—यावत्—बिलपंक्तियों में अनेक उत्पात पर्वत—यावत्—खडहडग हैं जो उसी प्रकार सर्वस्फटिकमय एवं स्वच्छ हैं । यहाँ वरुण और वरुणप्रभ नामक दो महर्धिक देव रहते हैं । इस कारण (इसे वरुणवर द्वीप कहते हैं । अथवा यह नाम)—यावत्—नित्य है ।

वरुणोद समुद्र

[१] वरुणवरण्णं दीवं वरुणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागार०—जाव—चिट्ठति । समचक्क० विसम-चक्क० तहेव सव्वं भाणियव्वं ।

विक्खंभ–परिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसहस्साइं दारंतरं च पउमवर०, वणसंडे, पएसा, जीवा, अट्ठो ।

गोयमा ! वारुणोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहानामए चंदप्पभाइ वा, मणिसिलागाइ वा, वरसीधु-वरवारुणीइ वा, पत्तासवेइ वा, पुप्फासवेइ वा, चोयासवेइ वा, फलासवेइ वा, महु-मेरएइ वा, जातिप्पसन्नाइ वा, खज्जूरसारेइ वा, मुद्दियासारेइ वा, कापिसायणाइ वा, सुपक्कखोयरसेइ वा, पभूतसंभारसंचिता पोसमाससतभिसयजोगवासिता निरुवहतविसिट्ठदिव्वकालोवयारा सुझोता उक्को-

सगअट्ठपिट्ठपुट्ठा (पिट्ठनिट्ठिज्जा) आसला मांसला पेसला वण्णेणं उववेया, गंधेणं उववेया, रसेणं उववेया, फासेणं उववेया, भवे एयारूवे सिया ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।
वारुणस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरे—जाव—उदए आसाएणं पण्णत्ते ।
तत्थ णं वारुणि-वारुणकंता देवा महिड्ढीया०—जाव—परिवसंति,
से एएणट्ठेणं—जाव—णिच्चे ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सू. १८०

[१] वरुणवर द्वीप के चारों ओर वरुणोद नामक समुद्र गोल वलयाकार रूप में रहा हुआ है ।

वह सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नहीं, इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए । इसकी चक्रवाल चौडाई एवं परिधि संख्यात योजन की है ।

द्वारों का अन्तर (फासला), पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, प्रदेश, जीवों (का जन्म) इत्यादि वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए ।

गौतम ! वरुणोद समुद्र का पानी क्या चन्द्रप्रभा, मणिशिला, प्रधान सीधु, श्रेष्ठ वारुणी, पत्रासव, पुष्पासव, चोयासव, फलासव, मधुमेरक, जातिप्रसन्ना, खजूर के सार, मुद्रिकासार (द्राक्षारस), कापिशयन नामक मद्य, सुपक्व इक्षुरस, अथवा अति संभार पूर्वक संचित, पौष मास के पूरे योग से युक्त, निरुपहत विशिष्ट उपचार से निर्मित, सुधा के समकक्ष, आठ वार पिष्ट प्रदान से निष्पन्न, आस्वादनीय, मांसल (बहल), मनोज्ञ, वर्णयुक्त, गंधयुक्त, रसयुक्त एवं स्पर्शयुक्त (सुरा) के समान है ?

गौतम ! ऐसी बात नही है । वरुणोद समुद्र का जल इससे भी अधिक इष्ट आस्वाद वाला कहा गया है ।

यहाँ वारुणि और वारुणकान्त नामक दो महर्द्धिक—यावत्—देव निवास करते है । इस कारण (इसे वरुणोद समुद्र कहते हैं, अथवा यह नाम)—यावत्—नित्य है ।

क्षीरवर द्वीप

[१] वारुणोदण्णं समुद्दं खीरवरे णामं दीवे वट्टे—जाव—चिट्ठति,
सव्वं संखेज्जगं विक्खंभे य परिक्खेवो य—जाव—अट्ठो,
बहूओ खुड्डा० वावीओ—जाव—सरसरपंतियाओ खीरोदगपडिहत्थाओ पासातीयाओ ४,
तासु णं खुड्डियासु—जाव—बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वयगा० सव्वरयणामया—जाव पडिरूवा ।
पुंडरीग-पुप्फदंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया—जाव—परिवसंति,
से एतेणट्ठेणं—जाव—णिच्चे,
जोतिसं सव्वं संखेज्जं ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १८१

[१] वृत्त-वलयाकार क्षीरवर नामक द्वीप वारुणोद समुद्र को सभी तरफ से घेरे हुए स्थित है । इसका विस्तार और परिक्षेप सब संख्यात योजन का है, आदि अर्थ तक सब कथन पूर्ववत् कह लेना चाहिए ।

यहाँ बहुत-सी छोड़ी-बड़ी बावड़ियाँ—यावत्—सरसर पंक्तियाँ हैं जो क्षीरोदक (दूध के समान जल) से परिपूर्ण हैं—यावत्—प्रसादजनक है । इन छोटी-बड़ी वापियों—यावत्—बिल-पंक्तियों में बहुत से उत्पात पर्वत आदि हैं जो सर्वरत्नमय—यावत्—प्रतिरूप हैं । यहाँ पुण्डरीक और पुष्पदन्त नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं । इस कारण—यावत्—अथवा इसका यह नाम नित्य है । यहाँ सब ज्योतिष्क (चन्द्र सूर्य आदि) संख्यात हैं ।

क्षीरोद समुद्र

[१] खीरवरण्णं दीवं० खीरोए नामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते—जाव—परिक्खिवित्ता णं चिट्ठति,
समचक्कवालसंठिते, नो विसमचक्कवालसंठिते,
संखेज्जाइं जोयणस० विक्खंभ-परिक्खेवो, तहेव सव्वं—जाव—अट्ठो ।
गोयमा ! खीरोयस्स णं समुद्दस्स उदगं खंड-गुड-मच्छंडितोववेते रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स उवट्ठविते आसायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे—जाव—सव्विंदिय-गातपल्हातणिज्जे—जाव—वण्णेणं उववेते—जाव फासेणं, भवे एयारूवे सिया ?
णो इणट्ठे समट्ठे । खीरोदस्स णं से उदए एत्तो इट्ठतराए चेव—जाव—आसाएणं पण्णत्ते, विमल-विमलप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढीया—जाव—परिवसंति से तेणट्ठेणं,
संखेज्ज चंदा—जाव—तारा ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १८१

[१] वृत्त एवं वलयाकार क्षीरोद नामक समुद्र क्षीरवर द्वीप को सभी ओर से घेरे हुए स्थित है । सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नहीं । इसका विस्तार और परिक्षेप संख्येय योजन का है । इसी प्रकार सब वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ।

गौतम ! क्षीरोद समुद्र का पानी क्या खांड, गुड या मत्स्यांडिका (दानेदार मिस्री शक्कर) डालकर चतुःस्थान परिणाम को प्राप्त गोक्षीर के समान है जो चक्रवर्ती राजा के लिए तैयार किया जाता है, आस्वादनीय, विशेष रूप से आस्वादनीय, पुष्टिकारक—यावत्—सर्वेन्द्रिय-गात्र को आह्लाद देने वाले—यावत्—प्रशस्त वर्ण से युक्त—यावत्—स्पर्श से युक्त होता है ?

नहीं, ऐसा नहीं है । क्षीरोद समुद्र का जल इससे भी इष्टतर—यावत्—आस्वाद युक्त है । यहां विमल और विमलप्रभ नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं । इस कारण इसे क्षीरोद समुद्र कहते हैं ।—यावत्—यहाँ संख्येय चन्द्र—यावत्—तारे हैं ।

घृतवर द्वीप

[१] खीरोदण्णं समुद्दं घयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते—जाव—परिक्खिवित्ता ।
समचक्कवाल० नो विसम० संखेज्जविक्खंभ-परि०पदेसा—जाव—अट्ठो ।
गोयमा ! घयवरे णं दीवे तत्थ-तत्थ बहवे खुड्डाखुड्डीओ वावीओ—जाव—घयोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वगा—जाव—खडहड० सव्वकंचणमया अच्छा—जाव—पडिरूवा,
कणय-कणयप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढीया, चंदा संखेज्जा ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १८२

[१] क्षीरोद समुद्र के चारों ओर घृतवर नामक द्वीप वर्तुल एवं वलयाकार रूप में स्थित है । यह सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नहीं । इसकी चौड़ाई एवं परिधि संख्यात योजन की है । प्रदेशों का स्पर्श—यावत्—अर्थ यहाँ कह लेना चाहिए ।

गौतम ! घृतवर द्वीप में यत्र-तत्र अनेक छोटी-बड़ी वापिकाएँ—यावत्—घृतोदक (घृत के समान पानी) से परिपूर्ण हैं । इनमें उत्पात पर्वत—यावत्—खडहड हैं जो सर्वकांचनमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं । यहाँ कनक एवं कनकप्रभ नामक महान् ऋद्धि के धारक दो देव रहते हैं । संख्यात चन्द्र आदि हैं ।

घृतोद समुद्र

[१] **घयवरणं दीवं च घतोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते—जाव—चिट्ठति,**
समचक्क० तहेव दार-पदेसा जीवा य अट्ठो ।
गोयमा ! घयोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा० पप्फुल्लसल्लइ-विमुकुलकण्णियार-सरसव-सुविबुद्धकोरेंट-वामपिंडितरस्स निद्धगुणतेयदीवियनिरुवहयविसिट्ठसुंदर-तरस्स सुजायदहिमहिय-तद्दिवसगहियनवणीयपडुवणाविय-मुक्कड्डियउद्दावसज्जबीसंदियस्स अहियं पीवरसुरहिगंध-मणहरमहुरपरिणामवरिसणिज्जस्स पत्थनिम्मलसुहोवभोगस्स सरयकालंमि होज्ज गोघतवरस्स मंडए, भवे एतारूवे सिया ?
णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! घतोदस्स णं समुद्दस्स एत्तो इट्ठतर—जाव—अस्साएणं प०, कंत-सुकंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया—जाव—परिवसंति ।
सेसं तं चेव—जाव—तारागणकोडीकोडीओ ।

—जीवा. प्रति ३ उ २ सू. १८२

[१] घृतवर द्वीप के चारों ओर घृतोद नामक समुद्र गोल एवं वलयाकार में रहा हुआ है । यह सम चक्राकार है एवं उसी प्रकार द्वारों, प्रदेश, जीव आदि का कथन समझ लेना चाहिए ।

गौतम ! घृतोद समुद्र का जल क्या विकसित शल्लकी, विकसित कनेर, सरसों, खिले हुए कोरंट पुष्पों की गुंथी माला के वर्ण के समान वर्ण वाले, स्निग्ध गुण वाले, अग्नि पर पकाए हुए किन्तु निरुपहत एवं विशिष्ट सुन्दर, दधि को मथ कर निकाले हुए उसी दिन के नवनीत को तपाकर तैयार किए हुए, ताजा, अतिश्रेष्ठ, सुगन्धयुक्त, मनोहर, मधुर परिणमन से युक्त, दर्शनीय, पथ्य, निर्मल, सुखोपभोग्य, शरत्कालीन गोघृत के सार के समान है ?

नहीं, ऐसा नहीं है । गौतम ! घृतोद समुद्र का जल इससे भी अधिक इष्ट—यावत्—आस्वादनीय है । यहाँ कान्त और सुकान्त नामक दो महर्धिक देव रहते हैं । शेष वर्णन उसी प्रकार है,—यावत्—यहाँ कोटि-कोटि तारे है ।

क्षोदवर द्वीप

[१] **घतोदण्णं समुद्दं खोदवरे णाम दीवे वट्टे वलयागारे—जाव—चिट्ठति, तहेव—जाव—अट्ठो ।**
खोतवरे णं दीवे तत्थ २ देसे २ तहिं २ खुड्डा वावीओ—जाव—खोदोदगपडिहत्थाओ, उप्पाय-पव्वयता सव्ववेरुलियामया—जाव—पडिरूवा,
सुप्पभ-महप्पभा य दो देवा महिड्ढीया—जाव—परिवसंति ।
से एतेणं ०,
सव्वं जोतिसं तं चेव—जाव—तारा० ।

—जीवा० प्रति० ३ उ० २ सूत्र० १८२

[१] घृतोद समुद्र को सब तरफ से घेरे हुए वृत्त एवं वलयाकार क्षोदवर द्वीप स्थित है । इसका वर्णन पूर्ववत् ही अर्थ पर्यन्त समझ लेना चाहिए ।

क्षोदवर द्वीप में जगह—जगह छोटी-बड़ी वापियां हैं जो—यावत्—इक्षुरस से परिपूर्ण हैं । यहाँ उत्पात पर्वत सर्ववैडूर्यमय—यावत्—प्रतिरूप हैं । सुप्रभ और महाप्रभ नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं । (इस कारण इसे क्षोदवर द्वीप कहते हैं) । सर्वज्योतिष्क—यावत्—तारे उसी प्रकार कह लेने चाहिए ।

क्षोदोद समुद्र

[१] खोयवरण्णं दीवं खोदोदे नाम समुद्दे वट्टे वलया०—जाव—संखेज्जाइं जोयणसतपरिक्खेवेणं—जाव—अट्ठे ।

गोयमा ! खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए जहा से० आसलमंसलपसत्थवीसंतनिद्धसुकुमाल-भूमिभागे सुच्छिन्ने सुकट्ठलट्ठविसिट्ठनिरुवहयाजीयवावीतसुकासजपयत्तनियणपरिकम्मअणु-पालियसुवुड्ढिवुड्ढाणं सुजाताणं लवणतणदोसवज्जियाणं णयायपरिवड्ढियाणं निम्मातसुंदराणं तिभायणिच्छोडियवाडिगाणं अवणितमूलाणं गंठिपरिसोहिताणं कुसलणरकप्पियाणं—जाव—पोंडियाणं बलवगणरजसजन्तपरिगालितमेत्ताणं खोयरसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिते अहियपत्थलहुके वण्णोववेते तहेव, भवे एयारूवे सिया ? णो तिणट्ठे समट्ठे । खोयरसस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरए चेव—जाव—आसाएणं प० । पुण्णभद्द-माणिभद्दा य इत्थ दुवे देवा—जाव परिवसंति सेसं तहेव, जोइसं संखेज्जं चंदा० [1] ।

—जीवा० प्रति० ३ उ० २ सूत्र १८२

[१] क्षोदवर द्वीप के चारों ओर क्षोदवर नामक समुद्र वृत्त एवं वलयाकार रूप में स्थित है । परिधि आदि उसी प्रकार संख्यात योजन की है ।

गौतम ! क्या क्षोदवर समुद्र का जल ऐसा है जैसे सुस्वादु मस्त प्रशस्त विश्रान्त स्निग्ध एवं सुकुमाल भूमिभाग को कोई निपुण कृषिकार सुकाष्ठ के सुन्दर एवं विशिष्ट हल से जोत कर ईख बोये, निपुण रक्षक उसकी रक्षा करे, अच्छी तरह निदाण करने से वह ईख सुवृद्धि से बड़े, निष्पन्न हो, तृण आदि के दोष से रहित हो, निर्मल रूप से परिवर्धित हो, पूर्ण सुन्दर जिसका ऊपर का तीसरा भाग हटा दिया गया है, नीचे का भाग निकाल दिया गवा है, गांठें साफ कर दी गई हैं, कुशल पुरुष द्वारा काटा गया है, बलवान् पुरुष द्वारा यंत्र में पीला गया है, वस्त्र से छाने हुए, इलायची आदि से सुवासित, पथ्यकर एवं उत्तम वर्ण आदि वाले, क्या क्षोदवर समुद्र का पानी इस प्रकार (के इक्षुरस के समान) है ?

नहीं यह बात नहीं है । क्षोदवर समुद्र का जल इससे भी इष्टतर है—यावत्—आस्वादपूर्ण है । यहां पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दो देव रहते हैं । शेष वर्णन उसी प्रकार है । यहाँ चंद्र आदि ज्योतिष्क संख्यात हैं ।

नन्दीश्वरवर द्वीप

[१] खोदोदण्णं समुद्दं णंदीसरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठिते तहेव [2]—जाव—परिक्खेवो । पउमवर० वणसंडपरि० दारा दारंतरप्पदेसे जीवा तहेव ।

से केणट्ठेणं भंते ?

गोयमा ! देसे :२ बहुओ खुड्डा० वावीओ—जाव—बिलपंतियाओ खोदोदग-पडिहत्थाओ उप्पायपव्वगा सव्ववइरामया अच्छा—जाव—पडिरूवा ।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! णंदीसरदीवचक्कवालविक्खंभबहुमज्झदेसभागे एत्थ णं चउद्दिसिं चत्तारि अंजणपव्वता पण्णत्ता ।

ते णं अंजणपव्वयगा चतुरसीति जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, [3]

---

१. कुछ प्रतियों में यह पाठ अधिक देखा जाता है—
रसेणं परिणयमउपीणपोरभंगुरसुजायमधुररसपुप्फविरिइयाणं उवहवविवज्जियाणं सीयपरिफासियाणं अभिणव-तवग्गाणं अपालिताणं ।

२—ठा० ७ सूत्र० ५८० पृ० ३८५

३—सम० स० ८४ सूत्र ७ पृ० ९९

एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं,
मूले साइरेगाइं दस जोयणसहस्साइं,
धरणियले दस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं,[1]
ततोणंतरं च णं मायाए २ पदेसपरिहाणीए परिहायमाणा २
उवरिं एगमेगं जोयणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं,
मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं,
धरिणियले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते देसूणे परिक्खेवेणं,
सिहरतले तिण्णि जोयणसहस्साइं एकं च बा (छा) वट्ठं जोयणसतं किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।
मूले विच्छि (त्थि) न्ना, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुया,
गोपुच्छसंठाणसंठिता, सव्वंजणामया अच्छा—जाव-पत्तेयं २ पउमवरवेदियापरि०, पत्तेयं २ वणसंडपरिक्खित्ता, वण्णओ ।
तेसि णं अंजणपव्वयाणं उवरि पत्तेयं २ बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो पण्णत्तो, से जहाणामए आलिंग-पुक्खरेति वा —जाव— सयंति ।
तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं २ सिद्धायतणा एकमेकं जोयणसतं आयामेणं, पण्णासं जोअणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसत-संनिविट्ठा, वण्णओ ।
तेसि णं सिद्धायतणाणं पत्तेयं २ चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता—देवदारे असुरद्दारे णागद्दारे सुवण्णद्दारे ।
तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया—जाव—पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,
तंजहा—देवे असुरे णागे सुवण्णे ।
ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेण, तावतियं चेव पवेसेणं, सेतावरकणग० वन्नओ—जाव—वणमाला ।
तेसि णं दाराणं चउद्दिसिं चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता ।
ते णं मुहमंडवा एगमेगं जोयणसतं आयामेणं, पंचासजोयणाइं विक्खंभेणं, साइरेगाइं सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, वण्णओ ।
तेसि णं मुहमंडवाणं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता,
ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, तावतियं चेव पवेसेणं, सेसं तं चेव —जाव—वणमालाओ ।
एवं पेच्छाघरमंडवा वि, तं चेव पमाणं जं मुहमंडवाणं, दारावि तहेव ।
णवरि बहुमज्झदेसे पेच्छाघरमंडवाणं अक्खाडगा, मणिपेढियाओ अट्ठजोयणप्पमाणाओ सीहासणा अपरिवारा—जाव—दामा थूभाई चउद्दिसिं तहेव, णवरि सोलसजोयणप्पमाणा सातिरेगाइं सोलस जोयणाइं उच्चा, सेसं तहेव, —जाव—जिणपडिमा ।
चेइयरुक्खा तहेव चउद्दिसिं तं चेव पमाणं जहा विजयाए रायहाणीए णवरि मणिपेढियाए सोलस जोयणप्पमाणाओ ।
तेसि णं चेइयरुक्खाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ अट्ठजोयणविक्खंभाओ चउजोयणबाहल्लाओ महिंदज्झया चउसट्ठिजोयणुच्चा जोयणोव्वेधा जोयणविक्खंभा, सेसं तं चेव ।
एवं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ,
णवरि खोयरसपडिपुण्णाओ, जोयणसतं आयामेणं, पण्णासं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेधेणं, सेसं तं चेव ।

१—ठा० अ० १० सूत्र ७२५ पृ० ४५४ ।

मणुगुलियाणं गोमाणसीण य अडयालीसं २ सहस्साइं-पुरच्छिमेणवि सोलस, पच्चत्थिमेणवि सोलस, दाहिणेणवि अट्ठ, उत्तरेणवि अट्ठ साहस्सीओ, तहेव सेसं उल्लोया भूमिभागा—जाव—बहुमज्झदेसभागे मणिपेढिया सोलसजोयणा आयामविक्खंभेणं, अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं, तारिसं मणिपीढियाणं उप्पिं देवच्छंदगा सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं सातिरेगाइं सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सव्वरयणमया, अट्ठसयं जिणपडिमाणं सव्वो चेव गमो जहेव वेमाणियसिद्धायतणस्स ।

तत्थ णं जे से पुरच्छिमिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—'णंदुत्तरा य णंदा आणंदा णंदिवद्धणा ।'

ताओ णंदा पुक्खरिणीओ एगमेगं जोयणसतसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छाओ, सण्हाओ, पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, तत्थ—तत्थ—जाव—सोवाणपडिरूवगा तोरणा ।

तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेय पत्तेयं बहिमुहपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं,[1] एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा । तहा पत्तेयं-पत्तेय पउमवरवेइयावण्णओ वणसंडवण्णओ बहुसम०—जाव—आसयंति सयंति । सिद्धायतणं तं चेव पमाण, अंजणपव्वएसु सच्चेव वत्तव्वया णिरवसेसं भाणियव्वं—जाव—उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा ।

तत्थ णं जे से दक्खिणिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-'भद्दा य विसाला य कुमुया पुंडरीगिणी ।'

तं चेव पमाणं, तं चेव बहिमुहा पव्वया, तं चेव पमाणं—जाव—सिद्धायतणा ।

तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तंजहा—'णंदिसेणा अमोहा य गोत्थूभा य सुदंसणा ।' तं चेव सव्वं भाणियव्वं—जाव—सिद्धायतणा ।

तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ, तंजहा—'विजया वेजयंती जयंती अपराजिया ।' सेसं तहेव—जाव—सिद्धायतणा, सव्वा ते चिय वण्णणा णातव्वा ।[2]

१—सम. ६४ सूत्र ४ पृ. ८६

२ स्थानांगसूत्र में नि. लि. पाठ अधिक है—

णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभाए चउसु विदिसासु चत्तारि रतिकरगपव्वता पण्णत्ता, तंजहा—

उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए, दाहिणपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए, दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रइकरगपव्वते, उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए ।

ते णं रतिकरगपव्वता दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउतसताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा, झल्लरिसंठाणसंठिया, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, सव्वरयणामया, अच्छा—जाव—पडिरूवा ।

तत्थ णं जे से उत्तरपुरच्छिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबूदीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-णंदुत्तरा, णंदा, उत्तरकुरा, देवकुरा; कण्णाए कण्हराईए रामाए रामरक्खियाए ।

तत्थ णं जे से दाहिणपुरच्छिमिल्ले रतिकरगपव्वते-तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबूदीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—समणा, सोमणसा, अच्चिमाली, मणोरमा; पउमाए सिवाए, सतीए, अंजूए ।

तत्थ णं जे से दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तत्थ णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—भूता, भूतवडेंसा, गोथूभा, सुदंसणा; अमलाए, अच्छराए, णवमियाए, रोहिणीए ।

तत्थ णं बहवे भवणवइ--वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया देवा चाउम्मासियापडिवएसु संवच्छरिएसु वा अण्णेसु बहुसु जिणजम्मण-णिक्खमण-णाणुप्पत्ति-परिनिव्वाणमादिएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमितिसु य देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगतओ सहिता समुवागता समाणा पमुदित-पक्कीलिया अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहं सुहेणं विहरंति ।
कइलास-हरिवाहणा य तत्थ दुवे देवा महिड्ढीया-जाव-पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,
से एतेणट्ठेणं गोयमा ! -जाव-णिच्चा, जोतिसं संखेज्जं ।

—जीवा० प्रति० ३ उ० २ सूत्र १८३

[१] खोदवर समुद्र को वृत्त एव वलयाकार नन्दीश्वरवर द्वीप सब ओर से घेरे हुए स्थित है। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारों का अन्तर, प्रदेशों का स्पर्श और जीवों का मर कर उत्पन्न होना, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् है ।

प्र०—भगवन् ! इसे नन्दीश्वर द्वीप क्यों कहते हैं ?

उ०—गौतम ! (इस द्वीप में) यत्र-तत्र छोटी-बड़ी वापिकाएँ-यावत्-बिलपंक्तियां इक्षुरस के समान जल से परिपूर्ण हैं। यहां के उत्पात पर्वत सर्वरत्नमय, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप हैं ।

इसके अतिरिक्त, गौतम ! नन्दीश्वर द्वीप की चक्राकार चौड़ाई के मध्य भाग में चारों दिशाओं मे चार अजन पर्वत है। ये अंजन पर्वत ८४ हजार योजन ऊंचे, एक-एक हजार योजन गहरे, मूल में दस हजार योजन से कुछ अधिक एवं धरणीतल पर दस हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं। तदनन्तर अनुक्रम मे एक-एक प्रदेश कम होते-होते ऊपर एक हजार योजन लम्बे-चौड़े रह गए है।

मूल में इन की परिधि इकतीस हजार छह सौ तेईस (३१६२३) योजन से कुछ अधिक है। धरणीतल पर परिधि ३१६२३ योजन से कुछ कम है। शिखरतल पर परिधि तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ विशेषाधिक है ।

ये मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर पतले, गोपुच्छ के आकार के, सर्व अंजनमय एवं स्वच्छ हैं—यावत्—प्रत्येक पर्वत के चारों ओर पद्मवरवेदिका और वनखण्ड है। यहाँ इनका वर्णन कर लेना चाहिए ।

इन अंजन पर्वतों पर पृथक्-पृथक् अति रमणीय भूमिभाग हैं जो आलिंगपुष्कर के समान हैं,—यावत्— (यहां देवादि आकर) शयन करते हैं ।

इन अतिरमणीय भूमिभागों के मध्य में, प्रत्येक में पृथक्-पृथक् सिद्धायतन हैं। ये सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौडे, बहत्तर योजन ऊंचे एवं सैकड़ों स्तंभों से सन्निविष्ट हैं। इनका वर्णन यथावत् कर लेना चाहिए ।

इन सिद्धायतनो के पृथक्-पृथक् (प्रत्येक के) चार दिशाओं में चार द्वार हैं-देवद्वार, असुरद्वार, नागद्वार और सुवर्णद्वार। यहाँ (द्वारों पर) चार महर्धिक-यावत्-एक पल्योपम की स्थिति वाले देव निवास करते है, यथा-देव, असुर, नाग और सुवर्ण ।

ये द्वार सोलह योजन ऊंचे, आठ योजन चौड़े, उतने ही (आठ योजन के) प्रवेश वाले, श्वेत, कनकमय आदि है—यावत्—वनमालाओं से युक्त हैं ।

तत्थ णं जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तत्थ णं चउदिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो चउण्हमग्गम-हिसीणं जंबुद्दीवप्पमाणमित्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—रयणा, रयणुच्चया, सव्वरयणा, रतण-संचया ; वसूए, वसुगुत्ताए, वसुमित्ताए, वसुंधराए ।

—स्थानांग ४ उ. २ सूत्र ३०७

इन द्वारों के चारों ओर मुखमण्डप हैं। ये मुखमण्डप सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े एवं साधिक सोलह योजन ऊँचे हैं। इनका वर्णन कर लेना चाहिए।

इन मुखमण्डपों की चारों दिशाओं में चार द्वार हैं। ये द्वार सोलह योजन ऊँचे, आठ योजन चौड़े एवं उतने ही प्रवेश वाले हैं। शेष वर्णन वनमाला पर्यन्त उसी प्रकार है।

इसी प्रकार प्रेक्षागृह-मंडपों का भी वर्णन समझना चाहिए। इनके प्रमाण, द्वार आदि का वर्णन मुखमंडपों के समान है। विशेष यह है कि प्रेक्षागृह-मंडपों के मध्य में अक्षाटक (अखाड़े) हैं, आठ योजन प्रमाण मणिपीठिकाएँ हैं, इन पर विना परिवार के सिंहासन हैं—यावत्—मालाएँ हैं। चारों दिशाओं में उसी प्रकार स्तूप हैं। अन्तर यह है कि ये (स्तूप) सोलह योजन प्रमाण है एवं कुछ अधिक सोलह योजन ऊंचे है। शेष वर्णन उसी प्रकार है—यावत्—यहां जिनप्रतिमाएँ हैं।

यहाँ चारों दिशाओं में चैत्यवृक्ष उसी प्रकार हैं। इनका प्रमाण विजया राजधानी (के वर्णन में कथित प्रमाण) के ही समान है। अन्तर यह कि यहाँ मणिपीठिकाएँ सोलह योजन प्रमाण हैं।

चैत्यवृक्षों के चारों ओर चार मणिपीठिकाएँ है। ये आठ योजन चौड़ी, चार योजन मोटी है। पृथक्-पृथक् मणिपीठिका पर (एक-एक) महेन्द्रध्वज चौसठ योजन ऊँचे, एक योजन गहरे और एक योजन विस्तार वाले हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार है।

(महेन्द्रध्वजों के आगे) चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियां है। विशेषता यह है कि ये इक्षुरस (के समान जल) से परिपूर्ण हैं। इनकी लम्बाई सौ योजन, चौड़ाई पचास योजन और गहराई पचास योजन की है। शेष वर्णन उसी प्रकार है।

उन सिद्धायतनों में पृथक्-पृथक् ४८ हजार मनोगुलिकाएँ (पीठिकाएँ) हैं और इतनी ही गोमानुषियां (शय्या जैसे स्थान) हैं। वे सोलह हजार पूर्व में, सोलह हजार पश्चिम में, आठ हजार दक्षिण में और आठ हजार उत्तर में हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार है—यावत्—(सिद्धायतनों के) छतभाग, भूमिभाग आदि का कथन समझ लेना चाहिए। उनके मध्यभाग में सोलह योजन लंबी-चौड़ी और आठ योजन मोटी मणिपीठिकाएँ है।

इस प्रकार की मणिपीठिकाओं पर एक-एक देवच्छंदक है। ये देवच्छदक सोलह योजन लंबे-चौड़े, कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचे, सर्वरत्नमय हैं। इन पर (प्रत्येक पर) एक सौ आठ जिनप्रतिमाएं हैं। इनका समस्त वर्णन वैमानिक सिद्धायतन के समान है।

इनमें पूर्व का जो अंजन पर्वत है उसकी चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियां हैं, यथा—नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा और नन्दिवर्धना।

ये नन्दा पुष्करिणियां एक लाख योजन लम्बी-चौड़ी, दस योजन गहरी, स्वच्छ और चिकनी हैं। प्रत्येक के चारों ओर पद्मवरवेदिका और वनखण्ड है। वहां—यावत्—त्रिसोपान-पंक्तियां एवं तोरण आदि हैं।

इन पुष्करिणियों के मध्य में पृथक्-पृथक् दधिमुख पर्वत हैं। ये चौसठ हजार योजन ऊँचे, एक हजार योजन गहरे, सर्वत्र सम, पल्यंक के आकार के, दस हजार योजन चौड़े, ३१६२३ योजन की परिधि वाले, सर्वरत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं। प्रत्येक के चारों ओर पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड उसी प्रकार हैं। यहां की भूमि अतिरमणीय है—यावत्—यहां (देवगण) बैठते-सोते हैं। सिद्धायतनों का प्रमाण वही है। अंजन पर्वतों का सम्पूर्ण वर्णन यहां समझ लेना चाहिए, —यावत्—ऊपर आठ-आठ मंगल हैं।

इनमें जो दक्षिण दिशा का अंजन पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियां हैं, यथा—भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुण्डरीकिणी।

इनका प्रमाण वही ए ... पर्वत भी उसी प्रकार हैं, उनका प्रमाण वही है। सिद्धायतनों तक का वर्णन यहां समझ लेना चाहिए।

इनमें जो पश्चिम दिशा का अंजन पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं मे चार नन्दा पुष्करिणियां हैं, यथा—नन्दिसेना, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना। यहां भी सिद्धायतन पर्यन्त समस्त पूर्वोक्त वर्णन समझ लेना चाहिए।

इनमें जो उत्तर का अंजन पर्वत है उसकी चारों दिशाओं मे चार नन्दा पुष्करिणियां हैं, यथा—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता। शेष वर्णन सिद्धायतन पर्यन्त उसी प्रकार जानना चाहिए।

यहां अनेक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव चौमासी प्रतिपदा, संवत्सरी तथा अनेक तीर्थंकरजन्म, दीक्षा, केवलज्ञानोत्पत्ति, निर्वाण आदि के अवसरों पर देवकार्य, देवसमुदाय, देवसमिति, देवसमवाय, देवप्रयोजन आदि के निमित्त एकत्र होते हैं, आनन्द-क्रीड़ा करते हैं, अठाई महोत्सव करते हुए, पालते हुए सुखपूर्वक विचरते है।

यहां कैलाश और हरिवाहन नामक महर्धिक एवं पल्योपम की स्थिति वाले दो देव निवास करते है। इस कारण से गौतम ! (यह द्वीप नन्दीश्वर कहलाता है)—यावत्—(इसका यह नाम) नित्य है। यहां संख्येय ज्योतिष्क है।

नन्दीश्वरोद समुद्र

[१] **णंदिस्सरवरण्णं दीवं णंदीसरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते—जाव—सव्वं तहेव, अट्ठो जो खोदोदगस्स—जाव—सुमण-सोमणसभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया—जाव—परिवसंति, सेसं तहेव—जाव—तारग्गं।**

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १८४

[१] नन्दीश्वरवर द्वीप के चारों ओर नन्दीश्वरोद नामक समुद्र वर्तुल एवं वलयाकार में स्थित है, —यावत्—सब वर्णन उसी प्रकार है जैसा क्षोदोद समुद्र का है—यावत्—यहाँ सुमन और सोमनसभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार है,—यावत्—(संख्येय) तारे हैं।

अरुण द्वीप

[१] **णंदीसरोदं समुद्दं अरुणे णामं दीवे वट्टे वलयागार—जाव—संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति।**

[१] प्र०—**अरुणे णं भंते ! दीवे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिए ?**
उ०—**गोयमा ! समचक्कवालसंठिते, नो विसमचक्कवालसंठिते।**

[२] प्र०—**केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं संठिते ?**
उ०—**संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,**
संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।
पउमवर-वणसंड-दारा दारंतरा य तहेव, संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं दारंतरं—जाव—अट्ठो, वावीओ खोतोदगपडिहत्थाओ, उप्पातपव्वयका सव्ववइरामया अच्छा, असोग-वीतसोगा य एत्थ दुवे देवा महिड्ढीया—जाव—परिवसंति से तेणट्ठेणं—जाव—संखेज्जं सव्वं।

[१] नन्दीश्वरोद समुद्र के चारों ओर अरुण नामक द्वीप वृत्त एवं वलयाकार रूप में स्थित है।

[१] प्र०—भगवन् ! अरुणद्वीप सम चक्राकार है अथवा विषम चक्राकार है ?
उ०गौतम— ! सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नहीं।

[२] प्र०—इसकी चक्राकार चौड़ाई आदि कितनी है ?

उ०—संख्येय लाख योजन की चक्राकार चौड़ाई एवं संख्येय लाख योजन की परिधि है।

पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारों का अन्तर आदि उसी प्रकार है। संख्यात लाख योजन का एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर है, आदि सब वर्णन उसी प्रकार है। यहाँ की वापिकाएँ इक्षुरस के समान जल से परिपूर्ण है। उत्पात पर्वत सर्वरत्नमय एवं स्वच्छ हैं। यहाँ अशोक और वीतशोक नामक महर्धिक—यावत्—दो देव है। इस कारण (यह अरुणद्वीप कहलाता है)—यावत्—सब संख्येय है।

अरुणोद समुद्र

[१] **अरुणण्णं दीवं अरुणोदे णामं समुद्दे, तस्सवि तहेव परिक्खेवो, अट्ठो, खोतोदगे, णवरिं सुभद्द-सुमणभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया, सेसं तहेव।**

[१] अरुणद्वीप के चारों ओर अरुणोद समुद्र है। इसकी परिधि आदि भी उसी प्रकार है। इसका जल इक्षुरस के समान है। विशेषता यह है कि यहाँ सुभद्र और सुमनभद्र नामक दो महर्द्धिक देव है। शेष वर्णन उसी प्रकार है।

शेष द्वीप और समुद्र

[१] **अरुणोदगं समुद्दं अरुणवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते, तहेव संखेज्जगं सव्वं—जाव अट्ठो, खोयोदगपडिहत्थाओ, उप्पायपव्वतया सव्ववइरामया अच्छा, अरुणवरभद्द-अरुणवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया।**

[२] **एवं अरुणोववरोदे वि समुद्दे—जाव—देवा अरुणवर-अरुणमहावरा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया।**

[३] **अरुणवरोदण्णं समुद्दं अरुणवरावभासे णामं दीवे वट्टे—जाव—देवा अरुणवरावभासभद्दारुणवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया।**

[४] **एवं अरुणवरावभासे समुद्दे, णवरि देवा अरुणवरावभासारुणवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया।**

[५] **कुंडले दीवे कुंडलभद्द-कुंडलमहाभद्दा दो देवा महिड्ढीया।**

[६] **कुंडलोदे समुद्दे चक्खुसुभ-चक्खुकंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया।**

[७] **कुंडलवरे दीवे[1] कुंडलवरभद्द-कुंडलवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया।**

[८] **कुंडलवरोदे समुद्दे कुंडलवर-कुंडलवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया।**

[९] **कुंडलवरावभासे दीवे कुंडलवरावभासभद्द-कुंडलवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा०।**

[१०] **कुंडलवरोभासोदे समुद्दे कुंडलवरोभासवर-कुंडलवरोभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया—जाव—पलिओवमट्ठितीया परिवसंति।**

[११][१] **प्र०—कुंडलवरोभासं णं समुद्दं रुचगे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए—जाव—चिट्ठति। किं समचक्कवालसंठाणसंठिते, विसमचक्कवालसंठाणसंठिते ?**

उ०—गोयमा ! समचक्कवालसंठाणसंठिते, नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिते।

[२] **केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते ?**

सव्वट्ठ-मणोरमा एत्थ दो देवा, सेसं तहेव।

---

१. ठा० अ. १० सूत्र ७२६ पृ. ४५२।

[१२] खयगोदे नामं समुद्दे जहा खोदोदे समुद्दे, संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं परिक्खेवेणं, दारा, दारंतरंपि संखेज्जाइं, जोतिसंपि सव्वं संखेज्जं भाणियव्वं ।

अट्ठोवि जहेव खोदोदस्स, नवरि सुमण-सोमणसा एत्थ दो देवा महिड्ढीया, तहेव खुगाओ आढत्तं असंखेज्जं विक्खंभा परिक्खेवो दारा दारंतरं च, जोइसं च सव्वं असंखेज्जं भाणियव्वं ।

[१३] खयगोदण्णं समुद्दं खयगवरे णं दीवे वट्टे[1], खयगवरभद्द--खयगवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा,

[१४] खयगवरोदे खयगवर-खयगवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[१५] खयगवरावभासे दीवे खयगवरावभासभद्द-खयगवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[१६] खयगवरावभासे समुद्दे खयगवरावभासवर-खयगवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[१७] हारद्दीवे हारभद्द-हारमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[१८] हारसमुद्दे हारवर-हारवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[१९] हारवरदीवे हारवरभद्द-हारवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[२०] हारवरोए समुद्दे हारवर-हारवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[२१] हारवरावभासे दीवे हारवरावभासभद्द-हारवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[२२] हारवरावभासोए समुद्दे हारवरावभासवर-हारवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[२३] एवं सव्वेवि तिपडोयारा णेतव्वा—जाव—सूरवरोभासोए समुद्दे ।
दीवेसु भद्दनामा वरनामा होंति उदहीसु ।
—जाव—पच्छिमभावं च खोतवरादीसु सयंभूरमणपज्जंतेसु, वावीओ खोओदगपडिहत्थाओ, पव्वयका य सव्ववइरामया ।

[२४] देवदीवे दीवे दो देवा महिड्ढीया देवभद्द-देवमहाभद्दा एत्थ० ।

[२५] देवोदे समुद्दे देववर-देवमहावरा एत्थ दो देवा—जाव—सयंभूरमणे दीवे सयंभूरमणभद्द-सयंभूरमणमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ।

[२६] सयंभुरमणण्णं दीवं सयंभुरमणोदे नामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए—जाव—असंखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं परिक्खेवेणं—जाव—अट्ठो ।
गोयमा ! सयंभुरमणोदए उदए अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते ।
सयंभुरमणवर-सयंभुरमणमहावरा इत्थ दो देवा महिड्ढीया ।
सेसं तहेव—जाव—असंखेज्जाओ तारागणकोडिकोडीओ सोभेंसु वा ३ ।[2]

जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १८५

[१] अरुणोद समुद्र के चारों ओर अरुणवर नामक द्वीप वर्तुल एवं वलयाकार रूप में स्थित है । यह भी उसी प्रकार संख्येय (योजन की परिधि वाला) है, इत्यादि सब वर्णन समझ लेना चाहिए । यहाँ भी (वापिकाएँ आदि) इक्षुरस के समान पानी से परिपूर्ण हैं । उत्पातपर्वत सर्ववज्रमय एवं स्वच्छ हैं । यहाँ अरुणवरभद्र और अरुणवरमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव हैं ।

[२] इसी प्रकार अरुणवरोद समुद्र में भी—यावत्—अरुणवर और अरुणमहावर नामक दो महर्द्धिक देव हैं ।

१– ठा. १० सूत्र ७२६ पृ. ४५२ ।
२– (क) सूर्य० सूत्र १०३
(ख) जीवा. सूत्र १२३, पृ. १७६

[३] अरुणवरोद समुद्र के चारों ओर अरुणवरावभास नामक द्वीप वर्तुल (आदि रूप में स्थित) है, —यावत्—यहाँ अरुणवरावभासभद्र और अरुणवरावभासमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[४] इसी प्रकार अरुणवरावभास नामक समुद्र के विषय में समझना चाहिए। अन्तर यह है कि यहाँ अरुणवरावभासवर और अरुणवरावभासमहावर नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[५] कुंडल द्वीप में कुंडलभद्र और कुंडलमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[६] कुंडलोद समुद्र में चक्षुशुभ और चक्षुकान्त नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[७] कुंडलवर द्वीप में कुंडलवरभद्र और कुंडलवरमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[८] कुंडलवरोद समुद्र में कुंडलवर और कुंडलमहावर नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[९] कुंडलवरावभास द्वीप में कुंडलवरावभासभद्र और कुंडलवरावभासमहाभद्र नामक दो देव हैं।

[१०] कुंडलवरावभासोद समुद्र में कुंडलवरावभासवर और कुंडलवरावभासमहावर नामक दो महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

११][१] प्र०—कुंडलवरावभास समुद्र के चारों ओर रुचक नामक द्वीप वर्तुल एवं वलयाकार रूप मे स्थित है। यह समचक्राकार है अथवा विषमचक्राकार है?

उ०—गौतम! यह सम चक्राकार है, विषम चक्राकार नही।

[२] प्र०—इस चक्राकार की चौड़ाई आदि कितनी है?

उ०—(इत्यादि उसी प्रकार समझना चाहिए।) यहाँ सर्वार्थ और मनोरम नामक दो देव है। शेष वर्णन उसी प्रकार है।

[१२] रुचकोद नामक समुद्र क्षोदवरोद समुद्र के समान है। इसकी चक्राकार चौड़ाई संख्यात लाख योजन, परिधि संख्यात लाख योजन तथा द्वार एवं द्वारों का संख्यात योजन का अन्तर तथा ज्योतिष्क संख्यात (पूर्ववत्) कह लेना चाहिए। इसके नाम का अर्थ भी क्षोदोद समुद्र के सदृश है। अन्तर यह है कि यहाँ सुमना और सौमनस नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

रुचक से प्रारम्भ करके (द्वीप-समुद्रों का) विस्तार और परिक्षेप, द्वार, द्वारों का अन्तर तथा ज्योतिष्क-सब असंख्यात कहना चाहिए।

[१३] रुचकोद समुद्र के चारों ओर रुचकवर नामक द्वीप वर्तुल (रूप में स्थित) है। यहाँ रुचकवरभद्र और रुचकवरमहाभद्र नामक दो देव हैं।

[१४] रुचकवरोद (समुद्र) में रुचकवर और रुचकमहावर नामक दो महर्द्धिक देव है।

[१५] रुचकवरावभास द्वीप में रुचकवरावभासभद्र और रुचकवरावभासमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[१६] रुचकवरावभास समुद्र में रुचकवरावभासवर और रुचकवरावभासमहावर (नामक दो देव) हैं।

[१७] हार द्वीप में हारभद्र और हारमहाभद्र देव है।

[१८] हार समुद्र में हारवर और हारमहावर नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[१९] हारवरद्वीप में हारवरभद्र और हारवरमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[२०] हारवरोद समुद्र में हारवर (वर) और हारवरमहावर (नामक) देव हैं।

[२१] हारवरावभास द्वीप में हारवरावभासभद्र और हारवरावभासमहाभद्र (नामक देव) हैं।

[२२] हारवरावभासोद समुद्र में हारवरावभासवर और हारवरावभासमहावर (नामक देव) हैं।

[२३] इस प्रकार सब (द्वीप-समुद्र) त्रिपदावतार हैं अर्थात् तीन-तीन पदों में उनके नाम हैं—यावत्—सूर्यवरावभासोद समुद्र तक वर्णन करना चाहिए।
द्वीपों में (देवों के नाम) 'भद्र' (और महाभद्र) है तथा समुद्रों में वर (और महावर) है।
सब के पीछे (द्वीप एवं समुद्र का नाम) है।
स्वयंभूरमण पर्यन्त वापिकाएँ इक्षुरस के समान जल से परिपूर्ण हैं। पर्वत सर्व वज्रमय हैं।

[२४] देवद्वीप में देवभद्र और देवमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव हैं।

[२५] देवोद समुद्र मे देववर और देवमहावर (नामक देव) हैं।
—यावत्—स्वयंभूरमण द्वीप में स्वयंभूरमणभद्र और स्वयंभूरमणमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव है।

[२६] स्वयंभूरमण द्वीप के चारो ओर स्वयंभूरमणोद नामक समुद्र वर्तुल एवं वलयाकार है—यावत्—असंख्यात लाख योजन की परिधि आदि है।
गौतम ! स्वयंभूरमणोद समुद्र का जल स्वच्छ, पथ्य, उत्तम जाति का, हल्का, स्फटिक वर्ण का एवं स्वाभाविक पानी के स्वाद वाला है। यहाँ स्वयंभूरमणवर और स्वयंभूरमणमहावर नामक दो महर्द्धिक देव है। शेष वर्णन उसी प्रकार है—यावत्—यहाँ असंख्येय कोटि-कोटि तारागण सुशोभित हुए, होते है और होगे।

समुद्रों के जल का स्वाद

[१] [१] प्र०—लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! लवणस्स उदए आइले रइले लिंदे लवणे कडुए अपेज्जे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिग-पसु-पक्खि-सरिसवाणं, णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं।

[२] प्र०—कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! आसले पेसले मांसले कालए मासरासिवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते।

[३] प्र०—पुक्खरोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अच्छे जच्चे तणुए फालियवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते।

[४] प्र०—वरुणोदस्स णं भंते ?

उ०—गोयमा ! से जहाणामए पत्तासवेति वा चोयासवेति वा खज्जूरसारेतिवा, सुपिक्कखोतरसेति वा मेरएति वा काविसायणेति वा चंवप्पभाति वा मणसिलाति वा वरसीधूति वा पवर वारुणी वा अट्ठपिट्ठपरिणिट्ठितेति वा जंबूफलकालिया वरप्पसण्णा उक्कोसमदपत्ता ईसिउट्ठावलंबिणी ईसितंबच्छिकरणी ईसिवोच्छेयकरणी आसला मांसला पेसला वण्णेणं उववेता—जाव—णो तिणट्ठे समट्ठे, वारुणोदए इत्तो इट्ठतरए चेव—जाव—अस्साएणं पण्णत्ते।

[५] प्र०—खीरोदस्स णं भंते ! उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! से जहाणामए रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चाउरक्के गोखीरे पयत्तमंदग्गिसुकढिते आउत्तरखंडमच्छंडितोववेते वण्णेणं उववेते —जाव—फासेणं उववेते, भवे एयारूवे सिया ?
णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! खीरोदस्स उदए एत्तो इट्ठ—जाव—अस्साएणं पण्णत्ते।

[६] प्र०—घतोदस्स णं से जहाणामए सारतिकस्स गोघयवरस्स मंडे सल्लइ-कण्णियारपुप्फवण्णाभे सुकढितउदारसज्झवीसंविते वण्णेणं उववेते—जाव—फासेण य उववेए, भवे एयारूवे सिया ?

उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे, इत्तो इट्ठतरो०।

[७] प्र०—खोदोदस्स से जहाणामए उच्छूण जच्चपुंडकाण हरियालपिंडराणं भेरंडसुणाण वा कालपोराणं तिभागनिव्वाडियवाडगाणं बलवगगरजंतपरिगालियमित्ताणं जे य से रसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिते अहियपत्थे लहुए वण्णेणं उववेए—जाव—भवेयारूवे सिया ?

नो तिणट्ठे समट्ठे, एत्तो इट्ठुयराए चेव० ।

एवं सेसगाणवि समुद्दाणं भेदो—जाव—सयंभुरमणस्स ।

[८] प्र०—कति णं भंते ! समुद्दा पत्तेगरसा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि समुद्दा पत्तेगरसा पण्णत्ता, तंजहा-लवणे वरुणोदे खीरोदे घयोदे ।

[९] प्र०—कति णं भंते ! समुद्दा पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ समुद्दा पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ता, तंजहा—

कालोदे पुक्खरोए सयंभुरमणे ।

अवसेसा समुद्दा उस्सण्णं खोतरसा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

—जीवा० प्रति० ३ उ० २ सूत्र १८७

[१] [१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र के पानी का कैसा स्वाद है ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र का पानी मलीन, कीचड वाला, गोबर जैसा, लवण जैसा, कटुक, अनेक द्विपदों, चतुष्पदों, मृगों, पशुओं, पक्षियों एवं सरीसृपों आदि के पीने के अयोग्य है । केवल उसमें उत्पन्न होने वाले प्राणियों के लिए ही पेय है ।

[२] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र का पानी कैसे स्वाद वाला है ?

उ०—गौतम ! आस्वादनीय, पेशल, पुष्टिकारक, कृष्ण, माषराशि (उड़दों की राशि) के वर्ण का एवं स्वभावतः पानी जैसे स्वाद वाला है ।

[३] प्र०—भगवन् ! पुष्करोद समुद्र के पानी का स्वाद कैसा है ?

उ०—स्वच्छ, उत्तम जाति का, हल्का, स्फटिक के वर्ण का एवं प्रकृति से पानी जैसे स्वाद वाला है ।

[४] प्र०—भगवन् ! वरुणोद समुद्र का (पानी कैसा है) ?

उ०—गौतम ! क्या यह पत्रासव, चोयासव, खजूरसार, सुपक्व इक्षुरस, मेरक, कापिशायन चन्द्रप्रभा, मणिशिला, उत्तम सीधु, श्रेष्ठ वारुणी अथवा आठ वार पिष्ट प्रदान से निष्पन्न, आस्वादनीय, जामुन के समान कृष्णवर्ण एवं श्रेष्ठ रस से युक्त, उत्कृष्ट मद वाली, ईषत् ओष्ठावलंबिनी, ईषत् रक्त नेत्र करने वाली, ईषत् व्युच्छेदकारी, आस्वादयुक्त, पुष्टिकर, पेशल एवं सुन्दर वर्ण वाली (मदिरा) के समान है ?

नहीं, यह बात नहीं है । वरुणोद समुद्र का पानी इससे भी इष्टतर—यावत्—आस्वादयुक्त है ।

[५] प्र०—भगवन् ! क्षीरोद समुद्र के पानी का स्वाद कैसा है ?

उ०—गौतम ! क्या यह चातुरंत चक्रवर्ती के लिए तैयार किए गए चतुःस्थान परिणाम को प्राप्त एवं प्रयत्नपूर्वक मंद अग्नि में उकाले हुए तथा शक्कर और मिस्री डालकर तैयार किए वर्णोपेत—यावत्—स्पर्शोपेत गोक्षीर के समान है ?

नही, ऐसा नहीं है । क्षीरोद समुद्र का जल इससे भी इष्टतर—यावत्—आस्वादयुक्त है ।

[६] प्र०—घृतोद समुद्र का पानी सल्लकी तथा कनेर के पुष्प के वर्ण वाले, अच्छी तरह तपा कर निकाले हुए, ताजा, वर्णोपेत—यावत्—स्पर्शोपेत श्रेष्ठ शरत्कालिक गोघृत के समान है ?

उ०—नहीं, ऐसा नही है । यह इससे भी इष्टतर है ।

[७] प्र०—उत्तम जाति की एवं हड़ताल के समान पीत-वर्ण की ईख के टुकड़े के ऊपर व नीचे के भाग को काट कर, बीच के भाग की गांठों को निकालकर बलवान् पुरुष द्वारा प्रयत्नपूर्वक यंत्र से ताजा रस निकाला जाय एवं उसे वस्त्र से छानकर चातुर्जातिक—इलायची कालीमिर्च आदि—सुगंधित द्रव्यों से सुवासित किया जाय, अत्यन्त पथ्ययुक्त, हल्का और वर्णोपेत बनाया जाय, तो क्या इक्षुवर समुद्र का पानी इस प्रकार (के रस के समान) है ?

उ०—नही, ऐसा नहीं है। इसका पानी इससे भी इष्टतर है।

इसी प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त शेष समुद्रों के विषय में भी समझना चाहिए। विशेष यह है कि (स्वयंभूरमण का जल) पुष्करोद के समान स्वच्छ, जातिमान् एवं पथ्य है।

[८] प्र०—भगवन् ! कितने समुद्र ऐसे हैं जिनका जल असाधारण प्रकार का है ?

उ०—गौतम ! चार समुद्रों का पानी असाधारण रसवाला है, यथा—लवणोद, वरुणोद, क्षीरोद और घृतोद।

[९] प्र०—भगवन् ! कितने समुद्रों का पानी स्वाभाविक (पानी के) स्वाद वाला है ?

उ०—गौतम ! तीन समुद्रो का पानी स्वाभाविक (पानी के) स्वाद वाला है, यथा—कालोद, पुष्करोद और स्वयंभूरमण। आयुष्मान् श्रमणो ! शेष समुद्रों का पानी बहुल रूप मे इक्षुरस के समान है।

द्वीप-समुद्रों की संख्या

[१] [१] प्र०—केवतिया णं भंते ! दीव-समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जावतिया लोगे सुभा णामा, सुभा वण्णा—जाव—सुभा फासा, एवतिया दीव-समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

[२] प्र०—केवतिया णं भंते ! दीव-समुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जावतिया अड्ढाइज्जाणं सागरोवमाणं उद्धारसमया एवतिया दीव-समुद्दा पन्नत्ता।

—जीवा० प्रति० ३ उ० २ सूत्र १८९

[१] [१] प्र०—भगवन् ! द्वीप-समुद्रों के कितने नाम हैं ? अर्थात् कितने नाम वाले द्वीप-समुद्र हैं ?

उ०—गौतम ! लोक में जितने शुभनाम, शुभ वर्ण—यावत्—शुभ स्पर्श हैं, उतने ही द्वीप-समुद्रों के नाम हैं, अर्थात् उतने ही नामों वाले द्वीप-समुद्र हैं।

[२] प्र०—भगवन् ! अद्धासमय से द्वीप-समुद्र कितने हैं ?

उ०—गौतम ! अढ़ाई सागरोपम के जितने अद्धासमय होते हैं, उतने ही (असंख्यात) द्वीप-समुद्र हैं।

एक नाम के अनेक द्वीप-समुद्र

[१] [१] प्र०—केवइया णं भंते ! जंबुद्दीवा दीवा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जा जंबुद्दीवे दीवे नामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

[२] प्र०—केवतिया णं भंते ! लवणसमुद्दा २ पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! असंखेज्जा लवणसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

एवं धायइसंडा वि।

एवं—जाव—असंखेज्जा सूरदीवा नामधेज्जेहि य।

एगे देवोदे समुद्दे पण्णत्ते,

एवं नागे जक्खे—जाव—एगे सयंभूरमणे दीवे।

एगे सयंभूरमणसमुद्दे नामधेज्जेणं पण्णत्ते।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १८६.

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप नाम के कितने द्वीप हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नाम के असंख्य द्वीप हैं।

[२] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र नाम के कितने समुद्र हैं ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र नाम के असंख्य समुद्र हैं।

इसी प्रकार धातकीखण्ड के विषय में भी समझना चाहिए। इस प्रकार सूर्य द्वीप पर्यन्त एक-एक नाम के असंख्य (द्वीप–समुद्र) हैं। देव नामक द्वीप एक ही है। देवोद समुद्र भी एक ही है। इसी प्रकार नाग, यक्ष, भूत,—यावत्—स्वयंभूरमण पर्यन्त एक ही द्वीप है। स्वयंभूरमण समुद्र भी एक ही है।

द्वीप–समुद्रों का उपादान

[१] [१] प्र०—दीव-समुद्दा णं भंते ! किं पुढविपरिणामा, आउपरिणामा, जीवपरिणामा, पुग्गलपरिणामा ?

उ०—गोयमा ! पुढविपरिणामा वि, आउपरिणामा वि, जीवपरिणामा वि, पुग्गलपरिणामा वि।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १९०

[१] [१] प्र०—भगवन् ! द्वीप और समुद्र क्या पृथ्वी के परिणाम हैं, अप् के परिणाम है, जीव के परिणाम है अथवा पुद्गल के परिणमन हैं ?

उ०—गौतम ! (द्वीप-समुद्र) पृथ्वी परिणाम भी हैं, अप्परिणाम भी हैं, जीवपरिणाम भी हैं एवं पुद्गलपरिणाम भी हैं।

जम्बूद्वीपवर्त्ती चन्द्रों के चन्द्रद्वीप

[१] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं जंबूदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता।

जंबुद्दीवंतेणं अद्धेकोणणउइ जोयणाइं चत्तालीसं पंचाणउतिं भागे जोयणस्स ऊसिया जलंताओ, लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिया जलंताओ, बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, सेसं तं चेव जहा गोतमदीवस्स परिक्खेवो।

पउमवरवेइया पत्तेयं २ वणसंडपरिक्खित्ता, दोण्हवि वण्णओ, बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा—जाव—जोइसिया देवा आसयंति।

तेसि णं बहुसम-रमणिज्जे भूमिभागे पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइं, बहुमज्झदेसभाए मणिपेढिया ओ दो जोयणाइं—जाव—सीहासणा सपरिवारा भाणियव्वा।

तहेव अट्ठो, गोयमा ! बहुसु खुड्डासु खुड्डियासु बहूइं उप्पलाइं चंदवण्णाभाइं, चंदा एत्थ देवा महिड्ढीया—जाव—पलिओवमट्ठितीया परिवसंति।

ते णं तत्थ पत्तेयं २ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं—जाव—चंददीवाणं चंदाण य रायहाणीणं अन्नेसिं च बहूणं ओतिसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं—जाव—विहरंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! चंददीवा—जाव—णिच्चा।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंदाओ नाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! चंददीवाणं तिरियं—जाव—अण्णंमि जंबूदीवे २ बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, तं चेव पमाणं—जाव—एमहिड्ढीया चंदा देवा २।

[१] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपवर्त्ती चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत से पूर्व में, लवणसमुद्र में बारह हजार योजन अवगाहन करने पर यहाँ जम्बूद्वीपवर्त्ती चन्द्रों के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप हैं ।

वे द्वीप जम्बूद्वीप की ओर ८८।$\frac{४}{६}$ योजन जलान्त से ऊपर हैं और लवणसमुद्र की ओर जलान्त से दो कोस ऊँचे हैं । उनकी लम्बाई-चौड़ाई बारह हजार योजन की है । शेष सब वर्णन वही है । परिधि गौतमद्वीप के बराबर है । पद्मवरवेदिकाएँ अलग-अलग वनखण्डों से घिरी हैं । दोनों का वर्णन समझ लेना चाहिए । वहाँ अतिसम एवं रमणीय भूभाग है—यावत्—ज्योतिष्क देव विहार करते हैं ।

उन अतिसम एवं रमणीय भूमिभाग में प्रासादावतंसक है, (साढ़े) बासठ योजन (ऊँचे हैं) । मध्य मे मणिपीठिकाएँ दो योजन की है—यावत्—वहाँ सपरिवार सिंहासन कहने चाहिए । अर्थ (नाम का कारण) उसी प्रकार है । गौतम ! वहाँ बहुत-सी छोटी-छोटी (वापियों में) चन्द्र-वर्ण जैसे उत्पल है, महर्द्धिक—यावत्—पल्योपम की स्थिति वाले चन्द्र देव निवास करते हैं । वे देव पृथक्-पृथक् चार हजार सामानिक देवों का—यावत्—चन्द्रद्वीपों, चन्द्रा राजधानियों तथा अन्य बहुतेरे ज्योतिष्क देवों एवं देवियों का अधिपतित्व करते हुए—यावत् विहार करते है ।

गौतम ! इस कारण चन्द्रद्वीप (कहलाते है, इसके अतिरिक्त उनके ये नाम) —यावत्—नित्य हैं ।

[२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपवर्त्ती चन्द्रों की चन्द्रा नामक राजधानियाँ कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! चन्द्रद्वीपों से पूर्व में तिर्छे—यावत्—बारह हजार योजन अवगाहन करने पर अन्य जम्बूद्वीप में हैं । उनका प्रमाण वही है—यावत्—चन्द्रदेव इतने महर्द्धिक हैं ।

जम्बूद्वीपवर्ती सूर्यों के सूर्यद्वीप

[२] [१] प्र०—**कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?**

उ०—**गोयमा ! जंबुद्दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं,**
लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,
तं चेव उच्चत्तं, आयाम-विक्खंभेणं, परिक्खेवो, वेदिया, वणसंडा, भूमिभागा —जाव—आसयंति ।
पासायवडेंसगाणं तं चेव पमाणं, मणिपेढिया, सीहासणा सपरिवारा,
अट्ठो, उप्पलाइं सूरप्पभाइं, सूरा एत्थ देवा—जाव—रायहाणीओ सकाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि जंबूदीवे दीवे, सेसं तं चेव—जाव—सूरा देवा ।

—जीवा० सूत्र० १६२ पृ० ३१६

[२] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में स्थित मन्दर पर्वत से पश्चिम में, लवणसमुद्र में बारह हजार योजन जाने पर (सूर्यद्वीप हैं ।)उन की ऊँचाई, लम्बाई, चौड़ाई, परिधि, वेदिका, वनखण्ड, भूमिभाग उसी प्रकार हैं,—यावत्—वहाँ देवगण विहार करते हैं ।

प्रासादावतंसकों का प्रमाण वही है । मणिपीठिका, सिंहासन सपरिवार (कह लेना चाहिए ।)

नाम (का हेतु भी समझ लेना) । वहाँ सूर्य जैसी प्रभा वाले उत्पल हैं, सूर्य नामक देव हैं—यावत्—उनकी राजधानियां अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में अन्य जम्बूद्वीप में हैं । सूर्य देवों तक शेष वर्णन वही (पूर्ववत्) है ।

लवणसमुद्रवर्ती चन्द्र-सूर्यों के द्वीप

[३] [१] प्र०—कहि णं भंते ! अब्भितरलावणाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं,
लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं अब्भितर-लावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ।
जहा जंबूदीवगा चंदा तहा भाणियव्वा, णवरि रायहाणीओ अण्णंमि लवणे, सेसं तं चेव ।
एवं अब्भितरलावणगाणं सूराणवि लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं–जाव–रायहाणीओ ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! बाहिरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! लवणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ लवणसमुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं बाहिरलावणगाणं चंददीवा नामं दीवा पण्णत्ता,
धायतिसंडदीवंतेण अट्ठेकोणणवतिजोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिता जलंताओ,
लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिता,
बारस जोयणसहस्साइं आयाम–विक्खंभेणं,
पउमवरवेइया, वणसंडा, बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा, मणिपेढिया, सीहासणा सपरिवारा, सो चेव अट्ठो,
रायहाणीओ सगाण दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे०
अण्णंमि लवणसमुद्दे, तहेव सव्वं ।

[३] [१] प्र०—भगवन् ! अभ्यन्तर लावणिक (लवणसमुद्र की शिखा के अन्दर चलने वाले) चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से पूर्व में, लवणसमुद्र में बारह हजार योजन अवगाहन करने पर, यहाँ अभ्यन्तर लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं । इनका वर्णन जम्बूद्वीप के चन्द्रों के द्वीपों के समान कह लेना चाहिए । विशेष यह कि राजधानियाँ अन्य लवणसमुद्र में हैं । शेष सब कथन वही ।
इसी प्रकार अभ्यन्तर लावणिक सूर्यों के द्वीप भी समझ लेना चाहिए । ये द्वीप इसी लवणसमुद्र में बारह हजार योजन (अवगाहन करने पर है) शेष सब वर्णन—यावत्—राजधानी उसी प्रकार हैं ।

[२] प्र०—भगवन् ! बाह्य लावणिक चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से लवणसमुद्र में पश्चिम की ओर बारह हजार योजन अवगाहन करने पर बाह्य लावणिक (चन्द्र देवों) के चन्द्रद्वीप हैं ।
वे धातकीखण्ड द्वीप की ओर ८८।$\frac{४}{७}$ योजन जलान्त से ऊपर हैं और लवणसमुद्र की ओर दो कोस ऊँचे हैं । उनका आयाम-विष्कंभ बारह हजार योजन का है ।
पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, अतिसम एवं रमणीय भूमिभाग, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन आदि का कथन वही पूर्ववत् जान लेना चाहिए और नाम का कारण भी । इनकी राजधानियाँ अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में, तिर्छे, असंख्यात द्वीप-समुद्र लांघ कर अन्य लवणसमुद्र में हैं । शेष सब वर्णन वही है ।

[४] [१] प्र०—कहि णं भंते ! बाहिरलावणगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दपच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ लवणसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं, धायतिसंडदीवंतेणं अट्ठेकूणणउतिं जोयणाइं चत्तालीसं च पंचनउतिभागे जोयणस्स, दो कोसे ऊसिया, सेसं तहेव—जाव—रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे लवणे चेव, बारस जोयणा, तहेव सव्वं भाणियव्वं ।

—जीवा० प्रति० ३ उ० २ सूत्र १६३ पृ० ३१६

[४] [१] प्र०—भगवन् ! बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से, लवणसमुद्र में पूर्व की ओर बारह हजार योजन जाने पर (ये सूर्यद्वीप हैं) उनकी ऊँचाई धातकीखण्ड द्वीप की ओर ८८।।$\frac{४९}{१०}$ योजन (और लवण-समुद्र की ओर) दो कोस की है। शेष सब उसी प्रकार—यावत्—राजधानियाँ अपने द्वीपों के पश्चिम में, तिर्छे असंख्यात (द्वीप-समुद्र लांघने पर) लवणसमुद्र में है। बारह योजन विस्तीर्ण हैं। सब वर्णन उसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

धातकीखण्डवर्ती चन्द्र-सूर्यों के द्वीप

[५] [१] प्र०—कहि णं भंते ! धायतिसंडदीवगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! धायतिसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं धायतिसंडदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ।
सव्वतो समंता दो कोसा ऊसिता जलंताओ, बारस जोयणसहस्साइं तहेव विक्खंभ-परिक्खेवो, भूमिभागो, पासायवडिंसया, मणिपेढिया, सीहासणा सपरिवारा, अट्ठो, तहेव रायहाणीओ सकाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि धायतिसंडे दीवे,
सेसं तं चेव, एवं सूरदीवावि, नवरं-धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयण० तहेव सव्वं—जाव—रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे, सव्वं तहेव ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १६४ पृ. ३१७

[५] [१] प्र०—भगवन् ! धातकीखंड द्वीप के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! धातकीखंड द्वीप के पूर्वी वेदिकान्त से कालोद समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर, यहाँ धातकीखंड द्वीप के चन्द्र देवों के चन्द्रद्वीप हैं।

वे सब ओर से जल से दो कोस ऊंचे हैं। लंबाई-चौड़ाई पूर्ववत् है। भूमिभाग, प्रासादावतंसक, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन और अर्थ (नाम का कारण) उसी प्रकार है। इनकी राजधानियाँ अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में अन्य धातकीखंड द्वीप में हैं। शेष सब वही।

इसी प्रकार सूर्यद्वीप भी समझना। विशेष यह कि धातकीखंडद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से कालोद समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर, आदि कथन पूर्ववत् है।—यावत्—राजधानियाँ सूर्यद्वीपों के पश्चिम में अन्य धातकीखंड द्वीप में हैं। शेष वर्णन वही पूर्ववत् है।

कालोदवर्त्ती आदि चन्द्र-सूर्यों के द्वीप

[६] [१] प्र०—कहि णं भंते ! कालोयगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयण्णं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं कालोयगचंदाणं चंददीवा,
सव्वतो समंता दो कोसा ऊसिता जलंताओ, सेसं तहेव—जाव—रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरच्छिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे, बारस जोयणा, तं चेव सव्वं—जाव—चंदा देवा २ ।

एवं सूराणवि, णवरं-कालोयगपच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयसमुद्दपुरच्छिमेणं बारस जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता,
तहेव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे, तहेव सव्वं ।
एवं पुक्खरवरगाणं चंदाणं पुक्खरवरस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चंददीवा,
अण्णंमि पुक्खरवरे दीवे रायहाणीओ तहेव ।
एवं सूराणवि दीवा पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरोदं समुद्दं बारस जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता,
तहेव सव्वं—जाव—रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवे, समुद्दगाणं समुद्दे चेव,
एगाए अभिंतरपासे, एगाणं बाहिरपासे,
रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवेसु, समुद्दगाणं समुद्देसु सरिणामएसु ।
इमे णामा अणुगंतव्वा—
जंबुद्दीवे लवणे धायइ कालोद पुक्खरे वरुणे ।
खीर-घय-इक्खु (वरो य) णंदी अरुणवरे कुंडले रुयगे ॥१॥
आभरण-वत्थ-गंधे, उप्पल-तिलए य पुढवि णिहि-रयणे ।
वासहर-दह-णईओ, विजया वक्खार-कप्पिंदा ॥२॥
पुर-मंदर-आवासा, कूडा णक्खत्त-चंद-सूरा य ॥
एवं भाणियव्वं ।

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १६५-६६, पृ. ३१७

[६] [१] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र के चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! कालोद समुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से, कालोद समुद्र के पश्चिम में बारह हजार योजन अवगाहन करने पर कालोदवर्ती चन्द्रों के चन्द्रद्वीप हैं । वे सब ओर से जलान्त से दो कोस ऊंचे हैं । शेष वर्णन वही—पूर्ववत् । राजधानियाँ अपने द्वीपों के पूर्व में अन्य कालोदक समुद्र में, बारह योजन विस्तृत हैं । शेष सब वर्णन वही है—यावत्—चन्द्रदेव हैं ।

इसी प्रकार सूर्यों के द्वीप समझने चाहिए । विशेष यह कि कालोदक के पश्चिमी वेदिकान्त से, कालोद समुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन जाने पर हैं । उसी प्रकार राजधानियाँ अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में अन्य कालोद समुद्र में हैं । सब वर्णन वही है । इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपवर्ती चन्द्रों के चन्द्रद्वीप पुष्करवर द्वीप के पूर्वी वेदिकान्त से पुष्करवर समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर है । अन्य पुष्करवर द्वीप में राजधानियाँ हैं ।

इसी प्रकार सूर्य देवों के द्वीप, पुष्करवर द्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से पुष्करोद समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर हैं । सब वर्णन उसी प्रकार है । राजधानियाँ द्वीपवर्ती देवों की अन्य द्वीप में है और समुद्रवर्ती देवों की समुद्रों में हैं । किन्हीं की अभ्यन्तर पार्श्व में, किन्हीं की बाह्य पार्श्व में । राजधानियाँ द्वीपवर्ती देवों की द्वीपों में, समुद्रवर्ती देवों की समुद्रों में हैं ।

(द्वीप समुद्रों के) ये नाम जानने चाहिए—

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखंड, कालोद, पुष्करवर, वरुणवर, क्षीरवर, घृतवर, नन्दीश्वर, अरुणवर, कुंडलवर, रुचकवर, आभरण, वस्त्र, गंध, उत्पल, पृथ्वी, निधि, रत्न, वर्षधर, द्रह, नदियाँ, विजय, वक्षार, कल्प, इन्द्र, पुर, मंदर, आवास, कूट, नक्षत्र, चन्द्र और सूर्य, (इन सभी के नामों वाले द्वीप-समुद्र हैं ।) ऐसा कहना चाहिए ।

देवद्वीप-समुद्र आदि के चन्द्र-सूर्य देवों के द्वीप

[७] [१] प्र०—कहि णं भंते ! देवद्दीवगाणं चंदाणं चंदवीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! देवदीवस्स देवोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेण पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ—जाव—रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवद्दीवं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं देवदीवयाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ । सेसं तं चेव, देवदीवचंदा दीवा ।

एवं सूराण वि, णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पच्चत्थिमेणं च भाणितव्वा, तंमि चेव समुद्दे ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! देवसमुद्दगाणं चंदाणं चंदवीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! देवोदगस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं, तेणेव कमेणं—जाव—रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं देवोदगाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ ।

तं चेव सव्वं, एवं सूराण वि,

णवरि देवोदगस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं २ दीवाणं पुरत्थिमेण देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ।

एवं णागे जक्खे भूते वि चउण्हं दीव-समुद्दाणं ।

[७] [१] प्र०—भगवन् ! देवद्वीपवर्त्ती चन्द्र देवों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! देवद्वीप से देवोद समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर, उसी (पूर्वोक्त) क्रम से पूर्वी वेदिकान्त से—यावत्—अपने-अपने द्वीपों से पूर्व में, देवद्वीप से असंख्यात हजार योजन आगे जाकर देवद्वीप के चन्द्रों की चन्द्रा नामक राजधानियाँ हैं । शेष सब वक्तव्यता वही पूर्वोक्त है ।

सूर्य देवों के द्वीपों का कथन भी ऐसा ही समझना । विशेष यह है कि यहाँ पश्चिमी वेदिकान्त से और पश्चिम में कहना चाहिए । उनकी राजधानियाँ उसी समुद्र में है ।

[२] प्र०—भगवन् ! देवसमुद्रवर्त्ती चन्द्रों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—गौतम ! देवोद समुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से, देवोद समुद्र के पश्चिम में बारह हजार योजन अवगाहन करने पर हैं । इसी क्रम से—यावत्—अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में देवोद सागर में असंख्य हजार योजन जाकर यहाँ देवोदवर्त्ती चन्द्रदेवों की चन्द्रा नामक राजधानियाँ हैं ।

पूर्ववत् ही सब कह लेना चाहिए । सूर्यदेवों के द्वीपों के विषय में भी यही समझना चाहिए । विशेषता यह कि देवोद समुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से, देवोदक के पूर्व मे बारह हजार योजन आगे जाने पर राजधानियाँ हैं, जो अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में देवोदक से असंख्यात हजार योजन पर हैं ।

इसी प्रकार नागद्वीप, यक्षद्वीप और भूतद्वीप में भी चारों द्वीप-समुद्रों (द्वीपवर्त्ती चन्द्र-सूर्यों तथा समुद्रवर्त्ती चन्द्र-सूर्यों) के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए ।

[८] [१] प्र०—कहि णं भंते ! सयंभूरमणदीवगाणं चंदाणं चंदवीवा पण्णत्ता ?

उ०—सयंभूरमणस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लातो वेदियंतातो सयंभूरमणोदगं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं, तहेव रायहाणीओ सगाणं २ दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभूरमणोदगं समुद्दं पुरत्थिमेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं, तं चेव,

एवं सूराण वि, सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ रायहाणीओ सकाणं २ दीवाणं पच्चत्थिमिल्लाणं सयंभूरमणोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं ० सेसं तं चेव ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! सयंभूरमणसमुद्दकाणं चंदाणं ० ?

उ०—सयंभुरमणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ सयंभुरमणं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, सेसं तं चेव ।

एवं सूराण वि, सयंभुरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ सयंभुरमणोदं समुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता,

रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभूरमणं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ ण सयंभुरमण—जाव—सूरा देवा

—जीवा. प्रति. ३ उ. २ सूत्र १६७, पृ. ३२०

[८] [१] प्र०—भगवन् ! स्वयंभूरमण द्वीप के चन्द्र देवों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—(गौतम !) स्वयंभूरमण द्वीप के पूर्वी वेदिकान्त से स्वयंभूरमण समुद्र में बारह हजार योजन जाने पर—इत्यादि पूर्ववत् । राजधानियाँ अपने-अपने द्वीपों के पूर्व में स्वयंभूरमणोद समुद्र में, पूर्व में असंख्यात हजार योजन जाने पर–इत्यादि पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ।

सूर्यदेवों के सूर्यद्वीप भी इसी प्रकार समझना । विशेष—'स्वयंभूरमण के पश्चिमी वेदिकान्त से' ऐसा कहना । राजधानियाँ अपने-अपने द्वीपों के पश्चिम में स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात हजार योजन जाने पर हैं, शेष सब पूर्ववत् ।

[२] प्र०—भगवन् ! स्वयंभूरमण समुद्र के चन्द्रदेवों के चन्द्रद्वीप कहाँ हैं ?

उ०—स्वयंभूरमण समुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से स्वयंभूरमण समुद्र में पश्चिम में बारह हजार योजन अवगाहन करके हैं । शेष सब वही समझना ।

इसी प्रकार सूर्यों के भी कह लेना । स्वयंभूरमण के पश्चिमी वेदिकान्त से स्वयंभूरमण समुद्र के पूर्व में बारह हजार योजन अवगाहन करने पर हैं । राजधानियाँ अपने द्वीपों के पूर्व स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात हजार योजन अवगाहन करने पर हैं ।

भूकम्प के कारण

तिहिं ठाणेहिं देवे पुढवीए चलेज्जा, तंजहा—

[१] १—अहे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उराला पोग्गला णिवतेज्जा,
तते णं उराला पोग्गला णिवतमाणा देवं पुढवीए चलेज्जा,

२—महोरगे वा महिड्ढीए—जाव—महेसक्खे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उम्मज्जणिमज्जियं करेमाणे देवं पुढवीए चलेज्जा,

३—णाग-सुवण्णाण वा संगामंसि वट्टमाणंसि देवं पुढवीए चलेज्जा । इच्चेतेहिं तिहिं.....

तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा, तंजहा—

[२] १—अहे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाते गुप्पेज्जा,
तए णं से घणवाते गुविते समाणे घणोदहिमेएज्जा,
तए णं से घणोदही एइए समाणे केवलकप्पं पुढविं चालेज्जा,

२—देवे वा महिड्ढीए—जाव—महेसक्खे तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा इड्ढिं जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कारपरक्कमं उवदंसेमाणे केवलकप्पं पुढविं चालिज्जा,

३—देवासुरसंगामंसि वा वट्टमाणंसि केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा,
इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं.....

—ठा. ३ उ. ४ सूत्र १९८ पृ. १५१

तीन कारणों से पृथ्वी का एक देश (भाग) चलायमान होता है, वे इस प्रकार हैं—

[१] इस रत्नप्रभा पृथ्वी के स्थूल पुद्गल अलग हों अथवा (कहीं से आकर) लगें तो उन स्थूल पुद्गलों के बिछुड़ने या मिलने से पृथ्वी का एक भाग चलायमान होता है ।

[२] कोई महोरग (व्यन्तर देव) जो महर्द्धिक—यावत्—महेश आख्या वाला हो, वह इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे उत्पतन या निपतन करे तो पृथ्वी का एक भाग चलायमान होता है ।

[३] अथवा नागकुमारों और सुपर्णकुमारों का संग्राम होने पर पृथ्वी का एक भाग चलायमान होता है ।

इन तीन कारणों से पृथ्वी का एक भाग चलायमान होता है ।

तीन कारणों से सम्पूर्ण पृथ्वी चलायमान होती है, यथा—

[१] इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे घनवात क्षुब्ध हो जाय तो क्षुब्ध हुआ घनवात घनोदधि को कम्पित करता है और कम्पित हुआ घनोदधि सम्पूर्ण पृथ्वी को चलायमान करता है ।

[२] कोई महर्द्धिक—यावत्—महेश कहलाने वाला देव तथारूप श्रमण अथवा माहन को अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल वीर्य एवं पुरुषकार-पराक्रम प्रदर्शित करता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को चलायमान करता है।

[३] अथवा देव-असुरसंग्राम के होने पर सम्पूर्ण पृथ्वी चलायमान होती है ।

इन तीन कारणों से सम्पूर्ण पृथ्वी चलायमान होती है ।

ज्योतिष्कनिरूपणा

ज्योतिष्कों के भेद

[१] [१] प्र०—से किं तं जोइसिया ?

उ०—जोइसिया पंचविहा पन्नत्ता, तंजहा—
चंदा, सूरा, गहा, नक्खत्ता, तारा ।

—पन्न. पद १ पृ. २१२
—ठा. ५, उ० १ सूत्र ४०१ पृ० २८७
—भग. शत. ५ उ. ६ प्र. १७ पृ० २५२

[१] [१] प्र०—ज्योतिष्क कितने प्रकार के हैं ?

उ०—ज्योतिष्क पांच प्रकार के हैं, यथा—(१) चन्द्र (२) सूर्य (३) ग्रह (४) नक्षत्र और (५) तारे ।

ज्योतिष्क देवों के स्थान

[२] [१] प्र०—कहि णं भंते ! जोइसियाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?
कहि णं भंते ! जोइसिया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तणउए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरजोयणसयबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोइसविसए ।
एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं [1]तिरियमसंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं ।
ते णं विमाणा अद्धकविट्ठसंठाणसंठिया,[2] सव्वफलिहामया, अब्भुग्गय-भूसिअ-पहसिया इव, विविहमणिकणग-रयणभत्तिचित्ता,
वाउद्धूयविजयवेजयंती-पडागा-छत्ताइछत्तकलिया, तुंगा, गगणतलमहिलंघमाणसिहरा, जालंतर-रयणपंजरुम्मिलियव्व,
मणि-कणगथूभियागा, वियसियसयवत्त-पुंडरीया, तिलय-रयणद्धचंदचित्ता, नानामणिमयदामालंकिया, अंतो बहिं च सण्हा,
तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडा, सुहफासा,
सस्सिरिया, सुरूवा, पासाइया, दरिसणिज्जा, पडिरूवा ।
एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।
तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे ।

—पण्ण. पद २ पृ० २६४
—सम. सूत्र १५०
—ठा. २, उ. ३ सूत्र ६४ पृ० ८०
—जीवा. सूत्र १२२ पृ० १७४

१—भग. भाग ४ शत. १६ उ. ८ प्र. ५ पृ० ६०
२—जीवा. सूत्र १६७ पृ. ३७८ (एवं सूरविमाणे वि, गहविमाणे वि, नक्खत्तविमाणे वि, ताराविमाणे वि अद्धकविट्ठ-संठाणसंठिते) सूर. सूत्र ६४ पृ. २६२.

[२] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ज्योतिष्क देवों के स्थान कहां हैं ?
भगवन् ! ज्योतिष्क देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम एवं रमणीय भूमिभाग से ७९० योजन की ऊँचाई पर ११० योजन के विस्तार में तिर्यक् ज्योतिष्कों के असंख्य (स्थान हैं) यहां ज्योतिष्क देवों के तिर्यक् असंख्यात लाख ज्योतिष्क-विमानावास हैं। ये विमान अर्धकपित्थ (आधे कवीठ-कैथ) के आकार के, सर्वस्फटिकमय, ऊँचे उन्नत एवं अपनी प्रभा से हँसते हुए से, विविध मणियों, कनक एवं रत्नों की रचना से चित्र-विचित्र, वायु से उड़ती हुई विजय-वैजयंती, पताकाओं तथा छत्रातिछत्रों से सुशोभित, तुंग, गगनचुम्बी शिखरों वाले, जालियों में लगे हुए रत्नों वाले, मणि एवं कनकमय स्तूपिकाओं से युक्त, विकसित शतपत्र और पुण्डरीक कमलों वाले, तिलक एवं रत्नमय अर्धचन्द्रों से विचित्र, नाना मणिमय मालाओं से अलंकृत, अन्दर और बाहर चिकने, मुलायम तपनीय (लाल स्वर्ण) की वालुका वाले, सुखद स्पर्श वाले, शोभायुक्त, सुरूप, प्रासादिक, दर्शनीय एवं प्रतिरूप है।

यहां पर्याप्त-अपर्याप्त ज्योतिष्क देवों के स्थान हैं। ये स्वस्थान, उत्पत्ति एवं विक्रिया—तीनों दृष्टियों से लोक के असंख्यातवें भाग में है।

ज्योतिष्कविमानों का संस्थान

[३] [१] प्र०—ता कहं ते मंडलसंठिती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमातो अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ

१—तत्थेगे एवमाहंसु—
ता सव्वावि मंडलवता समचउरंससंठाणसंठिता पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

२—एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वावि णं मंडलवता विसमचउरंससंठाण-संठिता पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

३—एगे पुण एवमाहंसु—
सव्वावि णं मंडलवया समचतुक्कोणसंठिता पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

४—एगे पुण एवमाहंसु—
सव्वावि मंडलवता विसमचउक्कोणसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

५—एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वावि मंडलवया समचक्कवालसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

६—एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वावि मंडलवया विसमचक्कवालसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

७—एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वावि मंडलवया चक्कद्धचक्कवालसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

८—एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वावि मंडलवता छत्तागारसंठिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।
तत्थ जे ते एवमाहंसु-ता सव्वावि मंडलवता छत्ताकारसंठिता पण्णत्ता,
एतेणं जएणं णायव्वं, णो चेव णं इतरेहिं, (पाहुडगाहाओ भाणियव्वाओ[1])।

—सूर्य० सूत्र १९ पृ. ३६
—चन्द्र० सूत्र १९

१—ये गाथाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

[३] [१] प्र०—(भगवन् !) मंडलों का (चन्द्रादि के विमानों का) आकार किस प्रकार कहा गया है ?

उ०— एतद्विषयक (परतीर्थिकों की) आठ मान्यताएँ हैं—

१—एक मान्यता यह है कि ये सभी चन्द्रादि विमान समचतुरस्र हैं ।

२—एक मान्यता यह है कि ये सभी चन्द्रादि विमान विषमचतुरस्र हैं ।

३—एक मान्यता यह है कि ये सभी चन्द्रादि विमान समचतुष्कोण हैं ।

४—एक मान्यता ऐसी है कि सभी विमान विषमचतुष्कोण हैं ।

५—एक मान्यता ऐसी है कि सभी विमान समचक्राकार हैं ।

६—एक मान्यता ऐसी है कि ये सभी विमान विषमचक्राकार हैं ।

७—एक मान्यता ऐसी है कि ये सभी विमान अर्धचक्राकार हैं ।

८—एक मान्यता ऐसी है कि ये सभी विमान छत्राकार हैं ।

इनमें से जो ऐसा कहते हैं कि सभी विमान छत्र के आकार के हैं, वह इस नय-विशेष से (यथार्थ) समझना चाहिए, अन्य नयों से नहीं । (यहाँ प्राभृतगाथाएँ कह लेनी चाहिए)

जम्बूद्वीप में ज्योतिष्क

[४] [१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कइ चंदा पभासिंसु पभासंति पभासिस्संति ?
कइ सूरिया तवइंसु तवंति तविस्संति ?
केवइया णक्खत्ता जोगं जोइंसु जोअंति जोइस्संति ?
केवइया महग्गहा चारं चरिंसु चरंति चरिस्संति ?
केवइयाओ तारागणकोडाकोडीओ सोभिंसु सोभंति सोभिस्संति ?

उ०—गोयमा ! दो चंदा पभासिंसु [१],
दो सूरिया तवइंसु [२],
छप्पण्णं णक्खत्ता जोगं जोइंसु [३],
छावत्तरं महग्गहसयं चारं चरिंसु [४],
गाहाओ—
दो चंदा दो सूरा णक्खत्ता खलु हवंति छप्पण्णा ।
छावत्तरं गहसतं जंबुद्दीवे विचारीणं ॥१॥
एगं च सयसहस्सं, तित्तीसं खलु भवे सहस्साइं ।
णव य सता पण्णासा, तारागणकोडिकोडीणं[1] ॥२॥

—सूर्य सूत्र १०० पृ० २६८
—चन्द्र० सूत्र १०० पृ० ७४१
—जंबू० सूत्र १२६ पृ० ४३३
—जीवा० सूत्र १५३ पृ० ३००
—भग० भा० ३ श० ६ उ० १ पृ० १२६

१—प्र०—ता एगमेगस्स णं चंदस्स देवस्स केवतिया गहा परिवारो पण्णत्तो ?
केवतिया णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो ? केवतिया तारा परिवारो पण्णत्तो ?
उ०—ता एगमेगस्स णं चंदस्स देवस्स अट्ठासीति गहा परिवारो पण्णत्तो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो—
छावट्ठिसहस्साइं णव चेव सताइं पंचुत्तराइं (पंचसयराहं) ।
एगससीपरिवारो, तारागणकोडिकोडीणं ॥१॥
परिवारो पण्णत्तो ।

—सूर्य० सूत्र ६१ पृ० २५६,
—जम्बू० सूत्र १६३ पृ० ५२१
—जीवा० सूत्र १६४ पृ० ३७५

[४] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित हुए, प्रभासित होते हैं और प्रभासित होंगे ?
कितने सूर्य तपे हैं, तपते हैं और तपेंगे ?
कितने नक्षत्र योगयुक्त हुए हैं, योगयुक्त होते हैं और योगयुक्त होंगे ?
कितने महाग्रह चले, चलते हैं और चलेंगे ?
कितने कोड़ाकोड़ी तारागण शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होंगे ?

उ०—गौतम ! दो चन्द्र प्रभासित हुए (होते हैं, होंगे) । दो सूर्य तपे हैं (तपते हैं तपेंगे) ।
छप्पन नक्षत्र योगयुक्त हुए हैं (होते हैं, होंगे) ।
एक सौ छहत्तर महाग्रहों ने चार किया (करते हैं और करेंगे) ।
गाथार्थ—
जम्बूद्वीप में दो चन्द्र, दो सूर्य, छप्पन नक्षत्र, एक सौ छहत्तर ग्रह एवं एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी तारागण विचरते हैं ।

लवणसमुद्र में ज्योतिष्क

[५] [१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे कति चंदा पभासिंसु वा पभासिंसति वा पभासिस्संति वा ?
एवं पंचण्ह वि पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दे[1] चत्तारि चंदा पभासिंसु वा ३,
चत्तारि सूरिया तविंसु वा ३,
बारसुत्तरं नक्खत्तसयं जोगं जोएंसु वा ३,
तिण्णि बावण्णा महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३,
दुण्णि सयसहस्सा सत्तट्ठि च सहस्सा नव य सया तारागणकोडाकोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३,
—जीवा. सू. १५५ पृ. ३०३

गाहाओ—
चत्तारि चेव चंदा, चत्तारि सूरिया लवणतोए ।
बारसणक्खत्तसतं, गहाण तिण्णेव बावण्णा ।।१।।
दो च्चेव सतसहस्सा, सत्तट्ठि खलु भवे सहस्साइं ।
णव य सता लवणजले, तारागणकोडिकोडीणं ।।२।।

[५] [१] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में कितने चन्द्र प्रकाशित हुए, प्रकाशित है एवं प्रकाशित होंगे ? (इसी प्रकार सूर्य आदि के विषय में भी प्रश्न समझना चाहिए ।)

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र में चार चन्द्र प्रकाशित हुए, प्रकाशित हैं एवं प्रकाशित होंगे ।
चार सूर्य तपे, तपते हैं और तपेंगे ।
एक सौ बारह नक्षत्र (चन्द्रादि के साथ) युक्त हुए, युक्त होते हैं, युक्त होंगे ।
तीन सौ बावन ग्रह चले, चलते हैं, चलेंगे ।
दो लाख सड़सठ हजार नव सौ कोटाकोटी (२६७९०००००००००००००००) तारे शोभित हुए, शोभित होते हैं, शोभित होंगे ।
गाथार्थ—
लवणसमुद्र में चार चन्द्र, चार सूर्य, एक सौ बारह नक्षत्र, तीन सौ बावन ग्रह और दो लाख सड़सठ हजार नव सौ कोड़ाकोड़ी तारागण है ।

१– ठा० ४, उ० २ सूत्र ३०५ पृ० २२५ ।

धातकीखण्ड में ज्योतिष्क

[६] [१] प्र०—धायइसंडे णं भंते ! दीवे कति चंदा पभासिंसु वा ३, ?
कति सूरिया तविंसु वा ३ ?
कइ महग्गहा चारं चरिंसु वा ३ ?
कइ णक्खत्ता जोगं जोइंसु ३ ?
कइ तारागणकोडाकोडीओ सोभेंसु वा ३ ?

उ०—गोयमा ! बारस चंदा पभासिंसु वा ३ ?
गाहाओ—एवं—
चउवीसं ससि-रविणो णक्खत्तसता य तिन्नि छत्तीसा ।
एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायईसंडे ।।१।।
अट्ठेव सयसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं ।
धायईसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीणं ।।२।।
सोभेंसु वा ३ ।

—जीवा. सू. १७४ पृ. ३२७
—सूयं सू. १०० पृ. २६६
—चन्द्र. सू. १००
—भग. मा. ३ श. ६ उ. २ प्र. २ पृ. १२६

[६] [१] प्र०—भगवन् ! धातकीखण्ड द्वीप में कितने चन्द्र प्रभासित हुए हैं, इत्यादि ? कितने सूर्य तपे हैं, आदि ? कितने महाग्रह चले हैं, आदि ? कितने नक्षत्र योगयुक्त हुए हैं, आदि ? कितने कोड़ा-कोड़ी तारागण शोभित हुए हैं, आदि ?

उ०—गौतम ! धातकीखण्ड में बारह चन्द्र प्रभासित हुए हैं (होते हैं और होंगे) ।
गाथार्थ—
इसी प्रकार चौवीस चन्द्र-सूर्य (बारह चन्द्र और बारह सूर्य) तीन सौ छत्तीस नक्षत्र, एक हजार छप्पन ग्रह एवं आठ लाख तीन हजार सात सौ कोड़ाकोड़ी तारागण शोभित हुए हैं, आदि ।

कालोद समुद्र में ज्योतिष्क

[७] [१] प्र०—कालोए णं भंते ! समुद्दे कति चंदा पभासिंसु वा ३ ?
एवं पंचण्ह वि पुच्छा ।

उ०—गोयमा ! कालोए णं समुद्दे बायालीस चंदा पभासेंसु वा ३ ।
गाहाओ—
बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता ।
कालोदधिम्मि एते चरंति संबद्धलेसागा ।।१।।
णक्खत्ताण सहस्सं एगं बावत्तरं च सतमण्णं ।
छच्च सता छण्णउया महागहा तिण्णि य सहस्सा ।।२।।
अट्ठावीसं कालोदहिम्मि बारस य सयसहस्साइं ।
नव य सया पन्नासा तारागणकोडिकोडीणं ।।३।।
सोभेंसु वा ३ ।

—जीवा. सू. १७५ पृ. ३३०
—सूयं सू. १०० पृ. २६६
—चन्द्र. सू. १००
—भग. मा. ३, श. ६ उ. २ प्र.२ पृ. १२६
—सम. ४२ सूत्र ४

[७] [१] प्र०—भगवन् ! कालोद समुद्र में कितने चन्द्र प्रभासित हुए हैं, इत्यादि। (इसी प्रकार सूर्यादि के विषय में भी प्रश्न समझना चाहिए।)

उ०—गौतम ! कालोद समुद्र में बयालीस चन्द्र प्रभासित हुए हैं (होते हैं और होंगे।)

गाथार्थ—

कालोदधि समुद्र में सम्बद्ध लेश्या वाले बयालीस चन्द्र, बयालीस सूर्य, एक हजार एक सौ बहत्तर नक्षत्र, तीन हजार छह सौ छयानवे महाग्रह एवं अट्ठाईस लाख बारह हजार नौ सौ पचास कोड़ा-कोडी तारागण शोभित हुए हैं, इत्यादि।

पुष्करवरद्वीप में ज्योतिष्क

[८] [१] प्र०—पुक्खरवरे णं भंते ! दीवे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३ ?

एवं पंचण्हंवि पुच्छा।

उ०—गाहाओ—

चोयालं चंदसयं चउयालं चेव सूरियाण सय।
पुक्खरवरदीवंमि चरंति एते पभासेंता ॥१॥
चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव होंति णक्खत्ता।
छच्च सया बावत्तर महग्गहा बारह सहस्सा ॥२॥
छण्णउइ सयसहस्सा चत्तालीसं भवे सहस्साइं।
चत्तारि सया पुक्खरवर तारागणकोडिकोडीणं ॥३॥
सोभेंसु वा ३।

—जीवा. सू. १७६ पृ. ३३२
—सूर्य. सू. १०० पृ. २६६
—चन्द्र. सू. १००
—भग. भा. ३ श. ६ उ. २ प्र. २ पृ. १२६
—सम. ७२ सूत्र ५ पृ. ६२

[८] [१] प्र०—भगवन् ! पुष्करवरद्वीप मे कितने चन्द्र प्रभासित हुए हैं, इत्यादि।
इसी प्रकार पांचों (सूर्यादि) के विषय में प्रश्न समझना चाहिए।

उ०—गाथार्थ—

पुष्करवर द्वीप में एक सौ चवालीस चन्द्र, एक सौ चवालीस सूर्य, चार हजार बत्तीस नक्षत्र, बारह हजार छह सौ महाग्रह एवं छियानवे लाख चवालीस हजार चार सौ कोड़ाकोडी तारे शोभित हुए हैं (होते हैं और होंगे)।

आभ्यन्तर पुष्करार्ध में ज्योतिष्क

[९] [१] प्र०—अब्भितरपुक्खरद्धे णं भंते ! केवतिया चंदा पभासिंसु वा ३ ?

सा चेव पुच्छा—जाव—तारागणकोडाकोडीओ ?

उ०—गोयमा !

गाहाओ—

बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणकरा दित्ता ।
पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एते पभासेंता ।।१।।
तिन्नि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु ।
णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइ दुवे सहस्साइं ।।२।।
अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं ।
दोण्णिसया पुक्खरद्धे तारागणकोडिकोडीणं ।।३।।
सोभेंसु वा ३ ।

—जीवा. सू, १७६ पृ. ३३२
—सूर्य. सू. १०० पृ. २६६
—चन्द्र. सू. १००
—भग. भा. ३ श. ६ उ. २ प्र. २ पृ. १२६
—सम. ७२ सूत्र ४ पृ. ६२

[६] [१] प्र०—भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध द्वीप में कितनी चन्द्र प्रभासित हुए हैं, आदि ।
इसी प्रकार—यावत्— कोड़ाकोड़ी तारागणों के विषय में प्रश्न समझना चाहिए ।

उ०—गौतम !

गाथार्थ—
पुष्करवर द्वीपार्ध में बहत्तर चन्द्र, बहत्तर सूर्य, छह हजार तीन सौ छत्तीस महाग्रह, दो हजार सोलह नक्षत्र एवं अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोड़ाकोड़ी तारागण शोभित हुए हैं (होते हैं, होंगे) ।

मनुष्यक्षेत्र में ज्योतिष्क

[१०][१] प्र०—माणुसखेत्ते णं भंते ! कति चंदा पभासेंसु वा ३ ?
कइ सूरा तवइंसु वा ३ ?
एवं पंचण्ह वि ?

उ०—गोयमा !

बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं ।
सयलं मणुस्सलोयं, चरंति एता पभासेंता ।।१।।
एक्कारस य सहस्सा छप्पि य सोला महग्गहाणं तु ।
छच्च सया छण्णउया णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा ।।२।।
अडसीइ सयसहस्सा चत्तालीसं सहस्स मणुयलोगंमि ।
सत य सता अणूणा तारागणकोडकोडीणं ।।३।।
सोभं सोभेंसु[1] वा ३ ।

—जीवा. सू. १७७ पृ. ३३४
—सूर्य. सू १०० पृ. २७०
—चन्द्र. सू. १००
—भग. भा. ३ शत. ६ उ. २ प्र. २ पृ. १२६

[१०][१] प्र०—भगवन् ! मनुष्य क्षेत्र में कितने चन्द्र प्रभासित हुए हैं, इत्यादि ?

कितने सूर्य तपे हैं, इत्यादि ?

उ०—गौतम !

गाथार्थ—

मनुष्यलोक में एक सौ बत्तीस चन्द्र, एक सौ बत्तीस सूर्य, ग्यारह हजार छह सौ सोलह महाग्रह, तीस हजार छह सौ छियानवे नक्षत्र एवं अठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोड़ाकोड़ी तारागण सुशोभित हुए है (सुशोभित है, सुशोभित होंगे) ।

ज्योतिष्कों की ऊंचाई

[११][१] प्र०—ता कहं ते उच्चत्ते आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु—
ता एगं जोयणसहस्स सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं दिवड्ढं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

२—एगे पुण एवमाहंसु—
ता दो जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढातिज्जाइं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

३—एगे पुण एवमाहंसु—
ता तिन्नि जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धट्ठाइं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

४—एगे पुण एवमाहंसु—
ता चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धपंचमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

५—एगे पुण एवमाहंसु—
ता पंच जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धछट्ठाइं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

६—एगे पुण एवमाहंसु—
ता छ जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसत्तमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

१—बाहिणड्ढमाणुस्सखेत्ता णं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा ३,
छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा ३ ।
उत्तरड्ढमाणुस्सखेत्ता णं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा ३ ।
छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा ३ ।

—सम. ६६, सूत्र. १-४ पृ. ८९-९०.

दक्षिणार्ध मनुष्य क्षेत्र में छयासठ चन्द्र प्रभासित हुए है, प्रभासित होते है प्रभासित होंगे ।
छयासठ सूर्य तपे है, आदि ।
उत्तरार्ध मनुष्यक्षेत्र में छयासठ चन्द्र प्रभासित हुए हैं, प्रभासित होते हैं, प्रभासित होंगे ।
छयासठ सूर्य तपे है, आदि ।

७—एगे पुण एवमाहंसु–
ता सत्त जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धअट्ठमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

८—एगे पुण एवमाहंसु–
ता अट्ठ जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धनवमाइं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

९—एगे पुण एवमाहंसु–
ता नव जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धदसमाइं चंदे, एवमाहंसु ।

१०—एगे पुण एवमाहंसु–
ता दस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धएक्कारस चंदे, एगे एवमाहंसु ।

११—एगे पुण एवमाहंसु–
एक्कारस जोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धबारस चंदे ।
एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं—

१२—बारस सूरे अद्धतेरस चंदे ।

१३—तेरस सूरे अद्धचोद्दस चंदे ।

१४—चोद्दस सूरे अद्धपण्णरस चंदे ।

१५—पण्णरस सूरे अद्धसोलस चंदे ।

१६—सोलस सूरे अद्धसत्तरस चंदे ।

१७—सत्तरस सूरे अद्धअट्ठारस चंदे ।

१८—अट्ठारस सूरे अद्धएकूणवीसं चंदे ।

१९—एकोणवीसं सूरे अद्धवीसं चंदे ।

२०—वीसं सूरे अद्धएक्कवीसं चंदे ।

२१—एक्कवीसं सूरे अद्धबावीसं चंदे ।

२२—बावीसं सूरे अद्धतेवीसं चंदे ।

२३—तेवीसं सूरे अद्धचउवीसं चंदे ।

२४—चउवीसं सूरे अद्धपण्णवीसं चंदे, एगे एवमाहंसु ।

२५—एगे एवमाहंसु–
पणवीसंजोयणसहस्साइं सूरे उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धछव्वीसं चंदे, एगे एवमाहंसु ॥

वयं पुण एवं वदामो

ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ
सत्तणउइ जोयणसए उड्ढं उप्पतित्ता हिट्ठिल्ले तारविमाणे चारं चरति,
अट्ठ जोयणसते उड्ढं उप्पतित्ता सूरविमाणे चारं चरति ।
अट्ठसीए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणे चारं चरति ।

नवजोयणसताइं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिं तारविमाणे चारं चरति ।[1]
हेट्ठिल्लातो तारविमाणातो दसजोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता सूरविमाणा चारं चरंति ।
नउति जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणा चारं चरंति ।
दसोत्तरं जोयणसतं उड्ढं उप्पइत्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति ।
सूरविमाणातो असीतिं जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता चंदविमाणे चारं चरति ।
जोयणसतं उड्ढं उप्पइत्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति ।
ता चंदविमाणातो णं वीसं जोयणाइं उड्ढं उप्पतित्ता उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति ।
एवमेव सपुव्वावरेणं दसुत्तर जोयणसतं बाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोतिसविसए जोतिसं चारं चरति, आहितेति वदेज्जा ।

--- सूर्य. सू ८६ पृ. २५८–२५६
— चन्द्र. सू. ८६
-- जीवा. सू. १६५ पृ. ३७६–३७७
— जंबू. सू. १६४ पृ. ५२१

[११] [१]प्र०—भगवन् ! आपने चन्द्र आदि की कितनी ऊँचाई कही है, ऐसा कहना चाहिए ?

उ०—इस विषय मे ये पच्चीस मान्यताएं है—

१—कोई कहते है कि एक हजार योजन ऊचा सूर्य और डेढ़ हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

२—कुछ इस प्रकार कहते है कि दो हजार योजन ऊँचा सूर्य और अढ़ाई हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

३—कुछ ऐसा कहते है कि तीन हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढ़े तीन हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

४—कोई कहते हैं कि चार हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढ़े चार हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

५—कुछ इस प्रकार कहते हैं कि पांच हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढे पांच हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

६—कोई यों कहते हैं कि छह हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढ़े छह हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

७—किसी का कहना है कि सात हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढे सात हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

८—कुछ इस प्रकार कहते हैं कि आठ हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढ़े आठ हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

९—किसी का कथन है कि नव हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढ़े नौ हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

१०—कुछ ऐसा कहते हैं कि दस हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढ़े दस हजार योजन ऊँचा चन्द्र है ।

१—(क) भग. भा. ३ श. १४ उ. ८ प्र. ४ पृ. ३५८
(ख) ठा. अ. ६ सूत्र ६७० पृ. ४२४
(ग) सम. सू. १११, ११२
(घ) पन्न. पद २ सू. ४२ पृ. २६४

११—कुछ इस प्रकार कहते हैं कि ग्यारह हजार योजन ऊँचा सूर्य और साढ़े ग्यारह हजार योजन ऊँचा चन्द्र है।

पूर्वोक्त अभिलाप के साथ आगे यों समझना चाहिए—

१२—बारह हजार योजन सूर्य, साढ़े बारह हजार चन्द्र।

१३—तेरह हजार योजन सूर्य, साढ़े तेरह हजार चन्द्र।

१४—चौदह हजार सूर्य, साढ़े चौदह हजार चन्द्र।

१५—सूर्य पन्द्रह, चन्द्र साढ़े पन्द्रह।

१६—सूर्य सोलह, चन्द्र साढ़े सोलह।

१७—सूर्य सत्तरह, चन्द्र साढ़े सत्तरह।

१८—सूर्य अठारह, चन्द्र साढ़े अठारह।

१९—सूर्य उन्नीस, चन्द्र साढ़े उन्नीस।

२०—सूर्य वीस, चन्द्र साढ़े वीस।

२१—सूर्य इक्कीस, चन्द्र साढ़े इक्कीस।

२२—सूर्य वाईस, चन्द्र साढ़े वाईस

२३—सूर्य तेईस, चन्द्र साढ़े तेईस।

२४—सूर्य चौवीस, चन्द्र साढ़े चौवीस।

२५—कुछ इस प्रकार कहते है कि सूर्य पच्चीस हजार योजन और चन्द्र साढ़े पच्चीस हजार योजन ऊँचा है।

हम इस प्रकार कहते है कि इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम-रमणीय भूभाग से ७९० योजन ऊपर नीचे का तारा विमान चलता है। ८०० योजन ऊपर सूर्य विमान चलता है। ८८० योजन ऊपर चन्द्रमा-विमान चलता है। ९०० योजन ऊपर ऊपर का तारा विमान संचार करता है। नीचे के तारा विमान से दस योजन ऊपर सूर्य विमान विचरता है। ९० योजन ऊपर जाने पर चन्द्रविमान चलता है। ११० योजन ऊपर ऊपर का तारा विचरता है।

सूर्यविमान से ८० योजन ऊपर जाने पर चन्द्रविमान विचरता है। ११० योजन ऊपर ऊपरला तारा विचरण करता है।

चन्द्रविमान से २० योजन ऊपर ऊपरला तारा विचरण करता है।

इस प्रकार सब मिलाकर ११० योजन के विस्तार में तिर्यक् असंख्य ज्योतिष्क मनुष्यलोक में विचरण करते हैं।

मेरु और लोकान्त से ज्योतिष्कों की दूरी

[१२][१] प्र०—मंदरस्स णं भंते ! पव्वयस्स केवइआए अबाहाए जोइसं चारं चरइ ?

उ०—गोयमा ! इक्कारसहिं इक्कवीसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ।

प्र०—लोगंताओ णं भंते ! केवइआए अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एक्कारस एक्कारसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते[1]।

—जंबू. सू. १६४ पृ. ५२१

—सूर्य. सू. ९२ पृ. २५९

—चन्द्र. सू. ९२

—जीवा. सूत्र. १९६ पृ. ३७६

---

१. सम. ११ सूत्र २

[१२][१] प्र०—भगवन् ! मेरु पर्वत से कितनी दूरी पर ज्योतिष्क विचरण करते हैं ?

उ०—गौतम ! (मेरु पर्वत से) ग्यारह सौ इक्कीस योजन की दूरी पर ज्योतिष्क विचरण करते हैं।

प्र०—भगवन् ! लोकान्त से कितनी दूरी पर ज्योतिष्क हैं ?

उ०—गौतम ! (लोकान्त से) ग्यारह सौ ग्यारह योजन की दूरी पर ज्योतिष्क हैं।

चन्द्रविमान का परिवहन

[१३][१] प्र०—चंदविमाणे णं भंते ! कतिदेवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—गोयमा ! चंदविमाणस्स णं पुरच्छिमेणं

सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमल-निम्मलदधिघण-गोखीर-फेण-रययणिगरप्पगासाणं,

महुगुलियपिंगलक्खाणं,

थिर-लट्ठ-वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-सुविसिट्ठ-तिक्खदाढा-विडंबितमुहाणं,

रत्तुप्पल-पत्त-मउय-सुकुमालतालु-जीहाणं,

पसत्थसत्थवेदूलियभिसंतकक्कडनहाणं,

विसाल-पीवरोरु-पडिपुण्ण-विउलखंधाणं,

मिउ-विसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-विच्छिण्ण-केसर-सडोवसोभिताणं

चंकमित-ललिय-पुलित-धवल-गव्वितगतीणं,

उस्सिय-सुणिम्मिय-सुजाय-अप्फोडियणंगूलाणं,

वइरामयणक्खाणं, वइरामयदंताणं, वइरामयदाढाणं,

तवणिज्जजीहाणं, तवणिज्जतालुयाणं, तवणिज्जजोतगसुजोतिताणं,

कामगमाणं पीतिगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं,

अमियगतीणं अमियबलवीरिय-पुरिसकार-परक्कमाणं, महता अप्फोडिय-सीहनातीय-बोल-कलकल-रवेणं महुरेण मणहरेण य पूरिता अंबरं दिसाओ य सोभयंता,

चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारिणं देवाणं पुरच्छिमिल्लं बाहं परिवहंति।

—जीवा. सू. १९८ पृ. ३८०

—सूर्य. सू. ९४ पृ. २६२–२६३

—चन्द्र. सू. ९४

[१३][१] प्र०—भगवन् ! चन्द्रविमान को कितने हजार देव वहन करते हैं ?

उ०—गौतम ! चन्द्रविमान को पूर्व की ओर से श्वेत, सुभग, सुप्रभ, शंखदल के समान विमल, निर्मल दधिपिण्ड, गोदुग्ध, समुद्रफेन एवं रजतपिण्ड के समान आभा वाले, मधु की गुलिका के समान पीली आंखों वाले, स्थिर, लष्ट, पुष्ट, गोल, स्थूल, सुश्लिष्ट, सुविशिष्ट एवं तीक्ष्ण दाढों से युक्त मुख वाले, लाल कमल के पत्र के समान मृदुल एवं सुकुमाल तालु और जिह्वा वाले, प्रशस्त शस्त्र के समान वैडूर्यमय कर्कश नाखूनों वाले, विशाल व स्थूल उरु वाले, प्रतिपूर्ण एवं विशाल स्कंध वाले, मृदु विशद प्रशस्त सूक्ष्म लक्षणयुक्त एवं फैली हुई केसर समूह से सुशोभित, चक्रमित, ललित, पुलित, धवल एवं गर्वित गति वाले, ऊपर उठी हुई, सुनिर्मित एवं सुजात पूंछ वाले, वज्रमय नख वाले, वज्रमय दांत वाले, वज्रमय दाढों वाले, तपनीय-स्वर्ण के समान जिह्वा वाले, तपनीय-स्वर्ण के समान तालु वाले, तपनीयमय जोतों से जुते हुए, इच्छानुसार गमन करने वाले,

प्रीतिकर गति वाले, मन के समान (तीव्र) गति वाले, मनोरम, मनोहर, अमित गति वाले, अमित बल वीर्य पौरुष एवं पराक्रम वाले, महान्, मधुर, मनोहर, आस्फोटित, सिंहनाद, बोल, एवं कलरव से आकाश को पूरित करते हुए, दिशाओं को शोभित करते हुए चार हजार सिंह का रूप धारण करने वाले देव पूर्वी बाहु को उठाते हैं।

[१४] चंदविमाणस्स णं दक्खिणेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमल-निम्मल-दधिघण-गोखीर-फेण-रययणियरप्पगासाणं,
वइरामयकुंभजुयल सुट्ठिय-पीवर-वर-वइरसोंडवट्टियदित्त-सुरत्तपउमप्पकासाणं,
अब्भुण्णयगुणा (मुहा) णं,
तवणिज्ज-विसाल-चंचल-चलंत-चवल-कण्ण-विमलुज्जलाणं,
मधुवण्ण-भिसंत-णिद्ध-पिंगल-पत्तल-तिवण्णमणि-रयण-लोयणाणं,
अब्भुग्गतमउलि-मल्लियाणं,
धवल-सरिस-संठित-णिरुवण-दढ-कसिण-फालियामयसुजाय-दंतमुसलोवसोभिताणं,
कंचणकोसीपविट्ठदंतग्ग-विमलमणिरयणमुद्दगेवेज्जबद्धगलयवरभूसणाणं,
वेरुलियविचित्तदंड-णिम्मलवइरामय-तिक्ख-लट्ठ-अंकुस-कुंभ-जुयलंतरोवियाणं
तवणिज्ज-सुबद्ध-कच्चु-दप्पियबलुद्धराणं,
जंबूणय-विमलघणमंडल-वइरामय-लालालालिय-तालगाणा मणिरयण-घण्ट-पासग-रययामय-रज्जुबद्ध-लंबित-घंटाजुयल-महुर-सरमणहराणं,
अल्लीण-पमाणजुत्त-वट्टिय-सुजात-लक्खणपसत्थ-तवणिज्जवालगत्तपरिपुच्छणाणं,
उवचिय-पडिपुण्ण-कुम्मचलण-लहुविक्कमाणं,
अंकामयणक्खाणं, तवणिज्जतालुयाणं, तवणिज्जजीहाणं, तवणिज्जजोतगसुजोतियाणं,
कामकमाणं, पीतिकमाणं,
मणोगमाणं, मणोरमाणं, मणोहराणं,
अमियगतीणं, अमियबल-वीरिय-पुरिसकार-परक्कमाणं,
महया गंभीरगुलगुलाइयरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं, दिसाओ य सोभयंता,
चत्तारि देवसाहस्सी गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति।

—जीवा. सू. १९८ पृ० ३८०

[१४] चन्द्रविमान के दक्षिण में श्वेत, सुभग, सुप्रभ, शंखदल के समान विमल, निर्मल दधिपिण्ड, गोदुग्ध, समुद्रफेन व रजतपिण्ड के समान आभा वाले, वज्रमय कुंभयुगल से सुस्थित एवं पुष्ट वज्रमय शुण्ड से देदीप्यमान रक्त कमल के समान मुख वाले, तपनीयमय, विशाल, चंचल, चलायमान, चपल, विमल एवं उज्ज्वल कर्ण वाले, मधु के समान वर्ण के, देदीप्यमान स्निग्ध, पिंगल, बरौनियों से युक्त एवं त्रिवर्ण के मणि-रत्नमय लोचन वाले, उन्नत मौलि-मल्लिका वाले, धवल, एक समान, सुन्दराकार, व्रणरहित, दृढ़, सर्वस्फटिकमय एवं सुजात दन्तमुसलों से शोभित, स्वर्णमय कोसी में प्रविष्ट दन्ताग्र वाले, विमल मणि-रत्न निर्मित उत्कृष्ट आभूषणों से बद्ध गले वाले, वैडूर्यमय विचित्र दंड वाले, निर्मल, वज्रमय, तीक्ष्ण एवं लष्ट अंकुश से युक्त गण्डस्थल वाले, तपनीयमय सुबद्ध कटिबन्ध वाले, बलिष्ठ, जम्बूनदमय निर्मल निविड मंडल वाले, वज्रमय लालाओं से ललित ताड़न वाली एवं नाना मणि-रत्नमय पार्श्ववर्ती घंटा वाली रजतमय रज्जु से बधे हुए एवं लटकते हुए घंटायुगल के मधुर स्वर से मनोहर, चिपकी हुई, प्रमाणयुक्त, गोल, सुन्दर, लक्षणों से प्रशस्त एवं तपनीयमय गुच्छ से युक्त पूंछ वाले, पुष्ट, प्रतिपूर्ण, कूर्म के समान पैरों वाले, विक्रमवान्, अंकरत्नमय नाखूनों वाले, तपनीयमय तालु वाले, तपनीयमय जिह्वा वाले, तपनीयमय जोत से

जुते हुए, इच्छानुसार चलने वाले, प्रीतिकर चाल वाले, मन के समान गति वाले, मनोरम, मनोहर, अमित गति वाले, अमित बल, वीर्य, पुरुषार्थ एवं पराक्रम वाले, चार हजार गजरूपधारी देव महान गंभीर मधुर एवं मनोहर गुलगुलाइत (गुड़-गुड़) शब्द से आकाश को पूरित तथा दिशाओं को शोभित करते हुए दक्षिणी बाहु को वहन करते हैं।

[१५] चंदविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेताणं सुभगाणं सुप्पभाणं,
संकमिय-ललिय-पुलित-चल-चवल-ककुदसालीणं,
सण्णयपासाणं, संगयपासाणं, सुजायपासाणं, मियमाइत-पीणरइतपासाणं,
रिस-विहग-सुजातकुच्छीणं,
पसत्थ-णिद्ध-मधुगुलित-भिसंत-पिंगलक्खाणं,
विसाल-पीवरोरु-पडिपुण्ण-विपुलखंधाणं,
वट्ट-पडिपुण्ण-विपुलकवोलकलिताण,
घण-निचित-सुबद्ध-लक्खणुन्नत-ईसिआणयवसभोट्ठाणं,
संकमित-ललित-पुलिय-चक्कवाल-चवल-गव्वितगतीणं,
पीवरोरु-वट्टिय-सुसंठितकडीणं,
ओलंब-पलंब-लक्खण-पमाणजुत्त-पसत्थ-रमणिज्ज-वालगंडाणं,
समखुर-वालधाणीणं, समलिहित-तिक्खग्गसिगाणं,
तणु-सुहुम-सुजात-णिद्ध-लोमच्छविधराणं,
उवचित-मंसल-विसाल-पडिपुण्ण-खंधपएससुंदराणं,
वेरुलियभिसंतकडक्खसुणिरिक्खणाणं,
जुतप्पमाण-प्पधाण-लक्खणपसत्थ-रमणिज्ज-गग्गर-गलसोभिताणं,
घग्घरग-सुबद्ध-कंठपरिमंडियाणं,
नाणामणि-कणग-रयण-घंट-वेयच्छग-सुकय-रतिय-मालियाण,
वरघंटा-गलगलिय-सोभंतसस्सिरीयाणं,
पउमुप्पल-भसल-सुरभिमालाविभूसिताणं,
वइरखुराण, विविधविखुराणं
फालियामयदंताणं, तवणिज्जजीहाणं, तवणिज्जतालुयाणं,
तवणिज्जजोतसुजोतियाणं,
कामकमाणं पीतिकमाणं, मणोगमाणं, मणोरमाणं, मणोहराणं, अमितगतीणं,
अमियबल-वीरिय-पुरिसयार-परक्कमाणं,
महया गंभीरगज्जियरवेणं मधुरेण मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयता
चत्तारि देवसाहस्सीओ वसभरूवधारीणं देवाणं
पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति।

—जीवा. सू. १९८ पृ. ३८०-३८१

[१५] चन्द्रविमान के पश्चिम मे श्वेत; सुभग; सुप्रभ; चंक्रमित, ललित, पुलित गति (गतिविशेष) वाले, चलायमान एवं चपल ककुद (कांधले) से सुशोभित; सन्नत और संगत पार्श्व वाले; सुजात पार्श्व वाले, प्रमाणोपेत, सुन्दर, पुष्ट एवं सुरचित पार्श्व वाले; मत्स्य एवं पक्षी के समान सुजात कुक्षि वाले; प्रशस्त, स्निग्ध एवं मधुगुलिका के सदृश देदीप्यमान पीली आंखों वाले; विशाल स्थूल, पुष्ट प्रतिपूर्ण एवं विपुल स्कंध वाले; गोल, प्रतिपूर्ण एवं विपुल कपोलों से सुशोभित;

सघन, निचित, सुबद्ध, सुलक्षणयुक्त, किंचित् अवनत वृषभ-ओष्ठ वाले; चंक्रमित, ललित, पुलित, चक्रवाल-चपल एवं गर्वित गति वाले; पुष्ट, गोल एवं सुसंस्थित कटि वाले, अवलम्ब-प्रलम्ब, सुलक्षणों तथा प्रमाण से युक्त, प्रशस्त एवं रमणीय पूंछ वाले; समान खुरों और झौंरों वाले, एक से आलिखित एवं तीक्ष्ण शृंगाग्र वाले; तनु, सूक्ष्म, सुजात एवं स्निग्ध रोमराजि वाले; उपचित, मांसल, विशाल, प्रतिपूर्ण एवं सुन्दर स्कंध-प्रदेश वाले, वैडूर्य के समान चमकदार कटाक्ष एवं निरीक्षण वाले; युक्त, प्रमाणप्रधान, लक्षणप्रशस्त एवं रमणीय गलगलियों से शोभित गले वाले; सुबद्ध घूंघरमालों से परिमंडित कंठ वाले; नाना भांति की मणि, कनक एवं रत्नमय सुकृत सुरचित घंटों से, वैकक्ष से सुशोभित, श्रेष्ठ घंटा एवं गलगलियों से सुशोभित एवं सश्रीक. पद्मोत्पल की भ्रमरयुक्त सुगंधित माला से विभूषित, वज्रमय खुरों वाले, विविध खुरों वाले, स्फटिकमय दांतों वाले, तपनीयमय जिह्वा वाले, तपनीमय तालुवाले, तपनीयमय जोतों से जुते हुए, इच्छानुसार चलने वाले, प्रीतिकर गति वाले, मन के समान चपल गति वाले, मनोरम मनोहर एवं अमित गति वाले, अपरिमित बल, वीर्य, पुरुषार्थ एवं पराक्रम वाले; चार हजार वृषभरूपधारी देव महान् गंभीर मधुर एवं मनोहर गर्जित शब्दो से आकाश को पूरित करते हुए तथा दिशाओं को सुशोभित करते हुए पश्चिम की बाहु को उठाते है ।

[१६] चंदविमाणस्स णं उत्तरेण सेयाणं, सुभगाणं, सुप्पभाणं,
जच्चाणं तरमल्लिहायणाणं, हरिमेला-मउल-मल्लियच्छाणं,
(घण-णिचित-सुबद्ध-लक्खणुण्णताचंकमि) चंचुच्चियललिय-पुलिय-चल-चवल-चंचलगतीणं,
लंबण-वग्गण-धावण-धोरण-तिवइ-जइण-सिक्खितगईण, ललंतलामगललायवरभूसणाणं,
सण्णतपासाणं, संगतपासाणं, सुजायपासाणं, मितमाइत-पीण-रइयपासाणं,
झस-विहगसुजातकुच्छीणं, पीण-पीवर-वट्टित-सुसंठित-कडीणं,
ओलंब-पलंब-लक्खण-पमाणजुत्त-पसत्थ-रमणिज्ज-वालगंडाणं,
तणु-सुहुम-सुजाय-णिद्ध-लोमच्छविधराणं,
मिउ-विसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-विकिण्ण-केसर-वालिधराणं,
ललिय-सविलासगति ललंतथासगल लाड-वरभूसणाणं,
सुहमंड-गोचूल-चमर-थासग-परिमंडियकडीणं,
तवणिज्जखुराणं, तवणिज्जजीहाणं, तवणिज्जतालुयाणं,
तवणिज्जजोतगसुजोतियाणं,
कामगमाणं, पीतिगमाणं, मणोगमाणं, मणोरमाणं,
मनोहराणं, अमितगतीणं, अमियबल-वीरिय-पुरिसयार-परक्कमाणं,
महया हयहेसिय-किलकिलाइ-रवेणं महुरेणं मणोहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता
चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं
उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति ।

—जीवा. सू. १९८ पृ. ३८१

[१६] चन्द्रविमान को उत्तर की ओर से श्वेत, सुभग, सुन्दर प्रभा वाले, जातिमान्, यौवनवान्, हरिमेलक वनस्पति के मुकुल तथा मल्लिका के समान (श्वेत) नेत्रों वाले, ललित, पुलित एवं वायु के सदृश अत्यन्त चंचल गति वाले, लघन, वल्गन (कूदना) धावन (दौड़), धोरण (गतिकौशल), त्रिपदी (भूमि पर तीन पैर टेकना) तथा वेगवती गति की जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की है, जिनके गले में उत्तम आभूषण लटक रहे हैं; सन्नत, संगत, सुजात, प्रमाणोपेत, सुन्दर, पुष्ट एवं सुरचित पार्श्व वाले; मछली एवं विहग के समान सुन्दर कुक्षि वाले; मोटी, पुष्ट, गोलाकार एवं सुन्दराकार कटि से युक्त, आलंबनस्थानों पर लटकते हुए सुलक्षणों तथा प्रमाण से युक्त, प्रशस्त एव रमणीय झौंरे

वाले; बारीक, सूक्ष्म, सुन्दर, चिकने रोमों वाले; मृदु, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म, लक्षणयुक्त एवं फैली हुई अयाल वाले, सुन्दर स्थासक (आभरणविशेष) जिनके ललाट के उत्तम आभूषण हैं, मुखमंड (मुख का आभूषण), गोचूल, चमर तथा स्थासक से सुशोभित कटि वाले, तपनीयमय खुर जिह्वा तथा तालु वाले, तपनीयमय जोतों से जुते हुए, इच्छानुसार गति करने वाले, प्रीति से गति करने वाले, मन के समान गमन करने वाले, मनोरम, मनोहर, अपरिमित गति वाले, अपरिमित बल, वीर्य पुरुषकार-पराक्रम से सम्पन्न, मधुर एवं मनोहर हिनहिनाहट, और कल-कल ध्वनि से आकाश को व्याप्त करते हुए तथा दिशाओं को सुशोभित करते हुए अश्व रूपधारी चार हजार देव उत्तर की बाहु को वहन करते है ।

गाहाओ--

सोलस देवसहस्सा हवंति चंदेसु चेव सूरेसु ।
अट्ठेव सहस्साइं एक्केक्कंमि गहविमाणे ।।१।।

चत्तारि सहस्साइं णक्खत्तंमि अ हवंति इक्किक्के ।
दो चेव सहस्साइं तारारूवेक्कमेक्कंमि ।।२।।

एवं सूरविमाणाणं—जाव—तारारूवविमाणाणं,
णवरं एस देवसंघाएत्ति ।

—जंबू. सू. १६६ पृ ५२५-५२६
—जीवा. सू. १६८ पृ. ३८१-३८२
—सूर्य. सू. ६४ पृ. २६२-२६३

सोलह हजार देव चन्द्रविमानों को और इतने ही सूर्यविमानों को वहन करते हैं । एक-एक ग्रह-विमान को आठ-आठ हजार देव उठाते है । प्रत्येक नक्षत्रविमान को चार-चार हजार देव वहन करते है । प्रत्येक तारारूप विमान को दो-दो हजार देव वहन करते हैं । इसी प्रकार सूर्यविमानों-यावत्-तारारूप विमानो के विषय में समझना चाहिए ।
यह देवसंघात है ।

[१७][१] प्र०—ता गहविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—ता अट्ठ देवसाहस्सीओ परिवहंति, तंजहा—
पुरच्छिमेणं सिंहरूवधारीणं देवाणं दो देवसाहस्सीओ हरिवहंति,
एवं-जाव-उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं ।

[२] प्र०—ता णक्खत्तविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

उ०—ता चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, तंजहा—
पुरच्छिमेणं सीहरूवधारीणं देवाणं एक्का देवसाहस्सी परिवहति,
एवं-जाव-उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं देवाणं ।

[३] प्र०—ता ताराविमाणे णं कति देवसाहस्सीओ परिवहंति, तंजहा—

उ०—ता दो देवसाहस्सीओ परिवहंति, तंजहा—
पुरच्छिमेणं सीहरूवधारीणं देवाणं पंच देवसता परिवहंति,
एवं-जाव-उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं ।

—सूर्य. पृ. ६४ पृ. २६३
—चन्द्र. सू. ६४
—जम्बू. सू. १६६ पृ. ५२५-५२६

१७][१] प्र०—ग्रहविमानों को कितने हजार देव वहन करते हैं ?

उ०—इन्हें आठ हजार देव वहन करते हैं, यथा—पूर्व में सिंहरूपधारी दो हजार देव वहन करते हैं । इसी प्रकार-यावत्-उत्तर में अश्वरूपधारी (दो हजार देव वहन करते हैं) ।

[२] प्र०—नक्षत्रविमानों को कितने हजार देव वहन करते हैं ?

उ०—इन्हे चार हजार देव वहन करते हैं, यथा-पूर्व में सिंहरूपधारी एक हजार देव वहन करते हैं । इसी प्रकार-यावत्-उत्तर में अश्वरूपधारी (एक हजार देव वहन करते हैं) ।

[३] प्र०—ताराविमानों को कितने हजार देव वहन करते हैं ?

उ०—इन्हें दो हजार देव वहन करते हैं, यथा-पूर्व में सिंहरूपधारी पांच सौ देव वहन करते है । इसी प्रकार-यावत्-उत्तर में अश्वरूपधारी (पांच सौ देव वहन करते है) ।

ज्योतिष्कविमानों का परिमाण

[१८][१] प्र०—चंदविमाणे णं भंते ! केवतियं आयाम-विक्खंभेणं ?
केवतियं परिक्खेवेणं ?
केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! छप्पन्ने एगसट्ठिभागे जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं,[1]
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं,
अट्ठावीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

२] प्र०—सूरविमाणस्स वि सच्चेव पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं, [2]
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं,
चउवीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पन्नत्ते ।
एवं गहविमाणे वि अद्धजोयणं आयाम-विक्खंभेणं,
सविसेसं परिक्खेवेणं,
कोसं बाहल्लेणं ।
णक्खत्तविमाणे णं कोसं आयाम-विक्खंभेणं,
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं,
अद्धकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।
ताराविमाणे अद्धकोसं आयाम-विक्खंभेणं,
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं,
पंच धणुसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

—जीवा. सू. १९७. पृ. ३७८
—जंबू. सू. १६५ पृ. ५२४
—सूर्य. सू. ९४ पृ. २६२
—चन्द्र. सू. ९४

१– सम० ६१ सूत्र ३
२– (क) सम० ६१ सूत्र ४
(ख) ,, १३ सूत्र ८

[१८][१] प्र०—भगवन् ! चन्द्रविमान कितना लम्बा-चौड़ा, कितनी परिधि वाला एवं कितना मोटा है ?

उ०—गौतम ! (चन्द्रविमान) $\frac{५६}{६१}$ योजन लंबा-चौड़ा, इससे तिगुनी से अधिक परिधि वाला एवं $\frac{२८}{६१}$ योजन मोटा है,

[२] प्र०—सूर्यविमान के विषय में पृच्छा ?

उ०—गौतम ! (सूर्यविमान) $\frac{४८}{६१}$ योजन लंबा-चौडा, इससे तिगुनी से अधिक परिधि वाला एवं $\frac{२४}{६१}$ योजन मोटा है।

इसी प्रकार ग्रहविमान भी आधा योजन लंबा-चौड़ा, इससे तिगुनी से भी अधिक परिधि वाला एवं एक कोस मोटा है।

नक्षत्रविमान एक कोस लंबा-चौडा, इससे तिगुनी से अधिक परिधि वाला एवं आधा कोस मोटा है। तारविमान आधा कोस लंबा-चौड़ा, इससे तिगुनी से अधिक परिधि वाला एवं पांच सौ धनुष मोटा है।

ज्योतिष्कों की गति

[१९][१] प्र०—ता एगमेगेण मुहुत्तेणं चंदे केवतियाइं भागसताइं गच्छति ?

उ०—ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स सत्तरस अडसट्ठिं भागसते गच्छति ।
मंडलं सतसहस्सेणं अट्ठाणउतिसतेहिं छेत्ता ।

[२] प्र०—ता एगमेगेणं मुहुत्तेणं सूरिए केवतियाइं भागसयाइं गच्छति ।

उ०—ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तस्स तस्स मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारस तीसे भागसते गच्छति ।
मंडलं सतसहस्सेहिं अट्ठाणउतिसतेहिं छेत्ता ।

[३] प्र०—ता एगमेगेणं मुहुत्तेणं णक्खत्ते केवतियाइं भागसताइं गच्छति ?

उ०—ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारस्स पणतीसे भागसते गच्छति ।
मंडलं सतसहस्सेणं अट्ठाणउतीसतेहिं छेत्ता ।

[४] प्र०—ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं सूरे गतिसमावण्णे भवति,
से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेति ?

उ०—बावट्ठिभागे विसेसेति ।

[५] प्र०—ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं णक्खत्ते गतिसमावण्णे भवइ,
से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेइ ?

उ०—ता सतट्ठिं भागे विसेसेति ।

[६] प्र०—ता जता णं सूरं गतिसमावण्णं णक्खत्ते गतिसमावण्णे भवति,
से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेति ?

उ०—ता पंच भागे विसेसेति ।

ता जता णं चंदं गतिसमावण्णं अभीयीणक्खत्ते णं गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति,
पुरच्छिमाते भागाते समासादित्ता णव मुहुत्ते सतवीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोएति ।
जोअं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, जोअं जोएत्ता विप्पजहाति विगतजोई यावि भवति ।

ता जता णं चंदं गतिसमावण्णं सवणे णक्खत्ते गतिसमावण्णे
पुरच्छिमाति भागावे समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादेत्ता तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोअं जोएति, जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, जोएत्ता विप्पजहाति विगतजोई यावि भवइ ।
एवं एएणं अभिलावेणं णेतव्वं,
पण्णरसमुहुत्ताइं, तीसतिमुहुत्ताइं, पणयालीसमुहुत्ताइं भाणियव्वाइं—जाव—उत्तरासाढा ।
ता जता णं चंदं गतिसमावण्णं गहे गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादित्ता चंदेण सद्धिं जोगं जुंजति, जुंजित्ता जोगं अणुपरियट्टति, २ त्ता विप्पजहाति, विगयजोई यावि भवति ।

ता जता णं सूरं गतिसमावण्णं अभीयीणक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादेत्ता चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएति, २ त्ता अणुपरियट्टति २ त्ता विजेति विगयजोगी यावि भवति ।
एवं अहोरत्ता छ एक्कवीसं मुहुत्ता य तेरस अहोरत्ता बारस मुहुत्ता य वीसं अहोरत्ता तिण्णि मुहुत्ता य सव्वे भाणियव्वा—जाव—
जता णं सूरं गतिसमावण्णं उत्तरासाढणक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुर० त्ता वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएति, जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टति जोयं अणुपरियट्टइत्ता विजेति विजहति, विप्पजहति विगतजोगी यावि भवति,
ता जता णं सूरं गतिसमावण्णं णक्खत्ते (गहे) गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पु० २ त्ता सूरेण सद्धिं जोयं जुंजति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति २ त्ता—जाव—विजेति विगतजोगी यावि भवति ।

[१६][१] प्र०—एक मुहूर्त्त में चन्द्र कितने सौ भाग चलता है ?

उ०—वह जिस-जिस मंडल का उपसक्रमण कर चलता है उस-उस मंडल की परिधि का १७६८ भाग (एक मुहूर्त्त मे) चलता है । यह मंडल १०९८०० भागों में विभक्त किया जाता है । (अर्थात् १०९८०० भागों में से १७६८ भाग एक मुहूर्त्त मे चलता है ।

[२] प्र०—एक मुहूर्त्त में सूर्य कितने सौ भाग चलता है ?

उ०—वह जिस–जिस मंडल का उपसंक्रमण कर चलता है उस-उस मंडल की परिधि का १८३० भाग (एक मुहूर्त्त में) चलता है । यह मंडल भी १०९८०० भागों में विभक्त होता है ।

[३] प्र०—एक मुहूर्त्त में नक्षत्र कितने सौ भाग चलता है ?
वह जिस-जिस मंडल का उपसंक्रमण कर चलता है उस-उस मंडल की परिधि का १८३५ भाग (एक मुहूर्त्त में) चलता है । यह मंडल भी १०९८०० भागों में विभक्त है ।

[४] प्र०—जब चन्द्र अपनी गति पूरी करता है तब सूर्य भी अपनी गति पूरी करता है । इन दोनों गतियों में क्या विशेषता है ?

उ०—इनमें ६२ भागों की विशेषता है, अर्थात् सूर्य, चन्द्र से एक मुहूर्त्त में ६२ भाग आगे चलता है ।

[५] प्र०—जब चन्द्र अपनी गति पूरी करता है तब नक्षत्र भी अपनी गति पूरी करता है । इन दोनों गतियों में क्या विशेषता है ?

उ०—इनमें ६७ भागों की विशेषता है, अर्थात् नक्षत्र चन्द्र से एक मुहूर्त्त में ६७ भाग आगे निकल जाता है ।

[६] प्र०—जब सूर्य अपनी गति पूर्ण करता है तब नक्षत्र भी अपनी गति पूर्ण करता है । इन दोनों गतियों में क्या विशेषता है ?

उ०—इनमें पांच भागों की विशेषता है, अर्थात् नक्षत्र सूर्य से एक मुहूर्त्त में पांच भाग आगे चलता है।

जब चन्द्र गतिसमापन्न होता है और अभिजित नक्षत्र भी गतिसमापन्न होता है तब उसका पूर्व दिशा के भाग से योग होता है। पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर ६$\frac{३७}{६७}$ मुहूर्त्त तक वह चन्द्र के साथ योगयुक्त रहता है। योगयुक्त होकर उसी के साथ विचरता है। विचर कर उसके योग का त्याग करता है एवं विगतयोगी (वियुक्त) हो जाता है।

जब चन्द्र गतिसमापन्न होता है और श्रवण नक्षत्र भी गतिसमापन्न होता है तब उसका पूर्व दिशा के भाग से योग होता है। पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर ३० मुहूर्त्त पर्यन्त चन्द्र के साथ योगयुक्त रहता है। योगयुक्त होकर उसी के साथ विचरता है, विचर कर उसके योग का त्याग करता है एवं विगतयोगी होता है।

इसी प्रकार शेष नक्षत्रों के विषय में भी समझना चाहिए,—यावत्—उत्तराषाढापर्यन्त १५ मुहूर्त्त, ३० मुहूर्त्त एवं ४५ मुहूर्त्त का समय ग्रहण करना चाहिए।

जब चन्द्र गतिसमापन्न होता है एव ग्रह भी गतिसमापन्न होता है तब उसका पूर्व दिशा के भाग से योग होता है। पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है, योगयुक्त होकर उसके साथ पर्यटन करता है, पर्यटन कर उसके योग का त्याग करता है एवं विगतयोगी हो जाता है।

जब सूर्य गतिसमापन्न होता है एवं अभिजित नक्षत्र भी गतिसमापन्न होता है तब उसका पूर्व दिशा के भाग से योग होता है। पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर चार अहोरात्र व छह मुहूर्त्त पर्यन्त सूर्य के साथ योगयुक्त रहता है। योगयुक्त होकर उसी के साथ पर्यटन करता है। पर्यटन करके उसके योग का त्याग करता है एवं विगतयोग होता है।

इस प्रकार (शेष नक्षत्रों के लिए) ६ अहोरात्र व २१ मुहूर्त्त, १२ अहोरात्र व १२ मुहूर्त्त तथा २० अहोरात्र व ३ मुहूर्त्त का समय समझना चाहिए—यावत्—जब सूर्य गतिसमापन्न होता है एवं उत्तराषाढा नक्षत्र भी गतिसमापन्न होता है तब उसका पूर्व दिशा के भाग से योग होता है। पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर २० अहोरात्र व ३ मुहूर्त्त पर्यन्त सूर्य के साथ योगयुक्त रहता है, योगयुक्त होकर उसी के साथ भ्रमण करता है, भ्रमण कर उसका त्याग करता है, परित्याग करता है और विगतयोगी होता है।

जब सूर्य गतिसमापन्न होता है एवं नक्षत्र (ग्रह) भी गतिसमापन्न होता है तब उसका पूर्व दिशा के भाग से योग होता है। पूर्व दिशा के भाग से योग ग्रहण कर वह सूर्य के साथ योगयुक्त होता है। योगयुक्त होकर उसी के साथ भ्रमण करता है,—यावत्—उसका त्याग कर विगतयोग हो जाता है।

नक्षत्र मास में ज्योतिष्कों की गति

[२०][१] प्र०—ता णक्खत्तेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता तेरस मंडलाइं चरति, तेरस य सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

[२] प्र०—ता णक्खत्तेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—तेरस मंडलाइं चरति, चोतालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

[३] प्र०—ता णक्खत्तेणं मासेण णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता तेरस मंडलाइं चरति, अट्ठसीतालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

[२०][१] प्र०—नक्षत्रमास में चन्द्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—(नक्षत्रमास में चन्द्र) $१३\frac{१३}{६३}$ मंडल चलता है ।

[२] प्र०—नक्षत्रमास में सूर्य कितने मंडल चलता है ?
उ०—(नक्षत्रमास में सूर्य) $१३\frac{४४}{६३}$ मंडल चलता है ।

[३] प्र०—नक्षत्रमास मे नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—(नक्षत्रमास में नक्षत्र) $१३\frac{६३}{१३४}$ मंडल चलता है ।

चन्द्रमास में ज्योतिष्कों की गति

[२१][१] प्र०—ता चंदेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—चोद्दस चउभागाइं मंडलाइं चरति, एगं च चउव्वीससतं भागं मंडलस्स ।

[२] प्र०—ता चंदेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरति, एगं च चउवीससयभागं मंडलस्स ।

[३] प्र०—ता चदेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरति, छच्च चउवीससतभागे मंडलस्स ।

[२१][१] प्र०—चन्द्रमास मे चन्द्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—(चन्द्रमास मे चन्द्र) $१४\frac{१}{४}+{}_{१२}\frac{१}{४}$ मडल चलता है ।

[२] प्र०—चन्द्रमास में सूर्य कितने मंडल चलता है ?
उ०—$१४\frac{३}{४}+{}_{१२}\frac{१}{४}$ मंडल चलता है ।

[३] प्र०—चन्द्रमास मे नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—$१४\frac{३}{४}+{}_{१२}\frac{६}{४}$ मंडल चलता है ।

ऋतुमास में ज्योतिष्कों की गति

[२२][१] प्र०—ता उडुणा मासेणं चंदे कति भागाइं चरति ?
उ०—ता चोद्दस मंडलाइं चरति, तीसं च एगट्ठिभागे मंडलस्स ।

[२] प्र०—ता उडुणा मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता पण्णरस मंडलाइं चरति ।

[३] प्र०—ता उडुणा मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता पण्णरस मंडलाइं चरति, पंच य बावीससतभागे मंडलस्स ।

[२२][१] प्र०—ऋतुमास में चन्द्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—(ऋतुमास में चन्द्र) $१४\frac{३०}{६१}$ मंडल चलता है ।

[२] प्र०—ऋतुमास में सूर्य कितने मंडल चलता है ?
उ०—१५ मडल चलता है ।

[३] प्र०—ऋतुमास में नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—$१५\frac{५}{१२२}$ मण्डल चलता है ।

आदित्यमास में ज्योतिष्कगति

[२३][१] प्र०—ता आइच्चेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता चोद्दस मंडलाइं चरति, एक्कारसभागे मंडलस्स ।

[२] प्र०—ता आइच्चेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता पण्णरस चउभागाहिगाइं मंडलाइं चरति ।

[३] प्र०—ता आइच्चेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता पण्णरस चउभागाहियाइं मंडलाइं चरति, पणतीसं च चउवीससतभागमंडलाइं चरति ।

[२३][१] प्र०—आदित्यमास मे चन्द्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—(आदित्यमास में चन्द्र) $१४\frac{११}{१}$ मडल चलता है ।

[२] प्र०—आदित्यमास में सूर्य कितने मडल चलता है ?
उ०—$१५\frac{१}{४}$ मडल चलता है ।

[३] प्र०—आदित्यमास में नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—$१५\frac{१}{४}+\frac{३५}{१२४}$ मंडल चलता है ।

अभिवर्द्धित मास में ज्योतिष्कगति

[२४][१] प्र०—ता अभिवड्ढिएणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता पणरस मंडलाइं तेसीतिं छलसीयसतभागे मंडलस्स ।

[२] प्र०—ता अभिवड्ढितेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता सोलस मंडलाइं चरति, तिहिं भागेहिं ऊणगाइं दोहिं अडयालेहिं सएहिं मंडलं छित्ता ।

[३] प्र०—ता अभिवड्ढितेणं मासेणं नक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता सोलस मंडलाइं चरति, सीतालीसएहिं भागेहिं अहियाइं चोद्दसहिं अट्ठासीएहिं मंडलं छेत्ता ।

२४][१] प्र०—अभिवर्द्धित मास मे चन्द्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—(अभिवर्द्धित मास मे चन्द्र) $१५\frac{८३}{१८६}$ मंडल चलता है ।

[२] प्र०—अभिवर्द्धित मास में सूर्य कितने मंडल चलता है ?
उ०—$१५\frac{३४५}{२४८}$ मंडल चलता है ।

[३] प्र०—अभिवर्द्धित मास में नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?
उ०—$१६\frac{४७}{१४८८}$ मडल चलता है ।

एक अहोरात्र में ज्योतिष्कगति

[२५][१] प्र०—ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरति, एक्कतीसाए भागेहिं ऊणं णवहिं पण्णरसेहिं अद्धमंडलं छेत्ता ।

[२] प्र०—ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं सूरिए कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरति ।

[३] प्र०—ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?
उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरति, दोहिं भागेहिं अधियं सत्तहिं बत्तीसेहिं सएहिं अद्धमंडलं छेत्ता ।

[२५][१] प्र०—एक अहोरात्र में चन्द्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—(एक अहोरात्र में चन्द्र) $\frac{४४}{६१५}$ मंडल चलता है ।

[२] प्र०—एक अहोरात्र में सूर्य कितने मंडल चलता है ?

उ०—(एक अहोरात्र में सूर्य) $\frac{१}{२}$ मंडल चलता है ।

[३] प्र०—एक अहोरात्र में नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—(एक अहोरात्र में नक्षत्र) $\frac{३६७}{७३२}$ मंडल चलता है ।

एक-एक मंडल में ज्योतिष्क-चार

[२६][१] प्र०—ता एगमेगं मंडलं चंदे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति एक्कतीसाए भागेहिं अधिएहिं चउहिं चोतालेहिं सतेहिं राइंदिएहिं छेत्ता ।

[२] प्र०—ता एगमेगं मंडलं सूरे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति ।

[३] प्र०—ता एगमेगं मंडलं णक्खत्ते कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति,
दोहिं ऊणेहिं तिहिं सतसट्ठेहिं सतेहिं राइंदिएहिं छेत्ता ।

[२६][१] प्र०—चन्द्र प्रत्येक मण्डल कितने अहोरात्र में चलता है ?

उ०—(चन्द्र प्रत्येक मण्डल) २८$\frac{३१}{६४}$ अहोरात्र में चलता है ।

[२] प्र०—सूर्य प्रत्येक मण्डल कितने अहोरात्र में चलता है ?

उ०—(सूर्य प्रत्येक मण्डल) दो अहोरात्र में चलता है ।

[३] प्र०—नक्षत्र प्रत्येक मण्डल कितने अहोरात्र में चलता है ?

उ०—(नक्षत्र प्रत्येक मण्डल) १$\frac{३६५}{३६७}$ अहोरात्र में चलता है ।

एक युग में ज्योतिष्क-चार

[२७][१] प्र०—ता जुगेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता अट्ठ चुल्लसीते मंडलसते चरति ।

[२] प्र०—ता जुगेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ।

उ०—ता णवपण्णर मंडलसते चरति ।

[३] प्र०—ता जुगेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता अट्ठारस पणतीसे बुभाग मंडलसते चरति ।

इच्चेसा मुहुत्तगती रिक्खातिमास-राइंदिय-जुग-मंडलपविभत्ता सिग्घगती वत्थु आहेतेत्तिबेमि ।

—सूर्य. सू. ८३-८६ पृ. २४५-२५४

—चन्द्र. सू. ८३-८६

[२७][१] प्र०—चन्द्र एक युग में कितने मण्डल चलता है।

उ०—(चन्द्र एक युग में) ८८४ मण्डल चलता है।

[२] प्र०—सूर्य एक युग में कितने मण्डल चलता है ?

उ०—(सूर्य एक युग में) ९१५ मण्डल चलता है।

[३] प्र०—नक्षत्र एक युग मे कितने मण्डल चलता है ?

उ०—(नक्षत्र एक युग में) ९१७$\frac{1}{2}$ मण्डल चलता है। यह (पूर्वोक्त) मुहूर्त्तगति नक्षत्रादि-मास, अहोरात्र, युग को लेकर मण्डलप्ररूपणा तथा शीघ्रगति रूप वस्तु कही गई है, ऐसा मैं कहता हू।

ज्योतिष्कगति का तारतम्य

[२८][१] प्र०—एतेसि णं भंते! चंदिम-सूरिअ-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं कयरे सव्वसिग्घगई, कयरे सव्व-सिग्घतराए चेव ?

उ०—गोयमा! चंदेहिंतो सूरा सव्वसिग्घगई, सूरेहिंतो गहा सिग्घगई, गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगई, णक्खत्तेहिंतो तारारूवा सिग्घगई,
सव्वप्पगई चंदा, सव्वसिग्घगई तारारूवा इति।

[२८][१] प्र०—भगवन् ! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण मे कौन शीघ्र गति वाले हैं एवं कौन शीघ्रतर गति वाले है ?

उ०—गौतम ! चन्द्रो मे सूर्य शीघ्र गति वाले है। सूर्यो से ग्रह शीघ्र गति वाले हैं। ग्रहो से नक्षत्र शीघ्र गति वाले है। नक्षत्रों से तारागण शीघ्र गति वाले हैं।
सब से मन्द गति वाले चन्द्र है। सब से शीघ्र गतिवाले तारागण हैं।

—जंबू. सू. १६७ पृ. ५३१
—जीवा. सू. १९९ पृ. ३८२
—सूर्य. सू. ८३ पृ. २४५
—चन्द्र. सूत्र ८३

[२] **ता जया णं इमे चंदे गतिसमावण्णए भवति,**
तता णं इतरेवि चंदे गतिसमावण्णए भवति,
जता णं इतरेवि चंदे गतिसमावण्णए भवति,
तता णं इमेवि चंदे गतिसमावण्णए भवति।
ता जया णं इमे सूरिए गइसमावण्णे भवति,
तया णं इतरे सूरिए गइसमावण्णे भवति,
जया णं इतरे सूरिए गइसमावण्णे भवति,
तया णं इमेवि सूरिए गइसमावण्णे भवति,
एवं गहेवि, णक्खत्तेवि।

[२] जब यह (भरतक्षेत्र को प्रकाशित करने वाला) चन्द्र गतियुक्त होता है तब दूसरा (ऐरावत क्षेत्र को प्रकाशित करने वाला) चन्द्र भी गतियुक्त होता है। जब दूसरा चन्द्र गतियुक्त होता है तब यह चन्द्र भी गतियुक्त होता है।
जब यह सूर्य गतिसमापन्न होता है, तब दूसरा सूर्य भी गतिसमापन्न होता है। जब दूसरा सूर्य गतिसमापन्न होता है, तब यह सूर्य भी गतिसमापन्न होता है।
इसी प्रकार ग्रहों और नक्षत्रों के विषय में भी समझना चाहिए।

चन्द्रवर्णन

चन्द्रमा का उदय-अस्तमन

[१] **जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे चंदिमा उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति,**
जहा सूरवत्तव्वया—जाव—अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो !

—जंबू. सूत्र १५० पृ. ४८०
—भग. भाग २ श. ५ उ. १० प्र. १ पृ. २५३

[१] भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में चन्द्रमा उत्तर-पूर्व में उदित होकर पूर्व-दक्षिण में अस्त होता है ? इत्यादि वर्णन सूर्य के ही समान समझना चाहिए,—यावत्—हे आयुष्मन् श्रमणो ! वहां (मनुष्य-लोक से बाहर) काल अवस्थित है ।

चन्द्रमा की वृद्धि-हानि

[२] [१] **प्र०—ता कहं ते चंदमसो वड्ढोवड्ढी आहितेति वदेज्जा ?**

उ०—ता अट्ठ पंचासीते मुहुत्तसते तीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स,
ता दोसिणापक्खाओ अंधयारपक्खमयमाणे चंदे चत्तारि बायालसते छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चंदे रज्जति,[1] तंजहा—
पढमाए पढमं भागं, बितियाए बितियं भागं—जाव—पण्णरसीए पण्णरसमं भागं,
चरिमसमए चंदे रत्ते भवति,
अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवति,
इयण्णं अमावासा,
एत्थ णं पढमे पक्खे अमावासे, ता अंधारपक्खो,
तो णं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बातालसते छातालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स जाइं चंदे विरज्जति, तंजहा—
पढमाए पढमं भागं, बितियाए बितियं भागं—जाव—पण्णरसीए पण्णरसमं भागं,
चरिमे समए चंदे विरत्ते भवति ।
अवसेससमए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवति,
इयण्णं पुण्णिमासिणी, एत्थ णं दोच्चे पक्खे पुण्णिमासिणी ।

—पूर्य. सू ७९ पृ. २३४
—चन्द्र. सू ७९

१—**सुक्कपक्खस्स णं चंदे बासट्ठिं भागे दिवसे-दिवसे परिवड्ढइ, तं चेव बहुलपक्खे दिवसे-दिवसे परिहायइ ।**

—सम. ६२

शुक्लपक्ष में चन्द्र ६२ वां भाग प्रतिदिन बढ़ता है । कृष्णपक्ष में उतना ही प्रतिदिन कम होता है ।

[२] [१] प्र०— चन्द्रमा की वृद्धि-हानि किस प्रकार बतलाई गई है ?

उ०—यह ८८५$\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त्त की (बतलाई गई है)। शुक्लपक्ष से अंधकार पक्ष में आता हुआ चन्द्र ४४२$\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त्त रक्त रहता है, यथा—प्रतिपदा के दिन प्रथम भाग, द्वितीया के दिन द्वितीय भाग, —यावत्—अमावस्या के दिन पन्द्रहवां भाग (रक्त होता है)। (इस प्रकार) चरम समय में चन्द्र रक्त होता है। अवशेष समय में चन्द्र रक्त और विरक्त (दोनों) होता है। यही (अन्धकार पक्ष की पन्द्रहवी तिथि) अमावस्या है। यह प्रथम पक्ष अमावस्या का है। यह अन्धकार पक्ष (कहलाता) है। शुक्लपक्ष में आता हुआ चन्द्र ४४२$\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त्त विरक्त रहता है, यथा—प्रतिपदा के दिन प्रथम भाग, द्वितीया के दिन द्वितीय भाग,—यावत्—पूर्णिमा के दिन पन्द्रहवां भाग (विरक्त होता है)। (इस प्रकार) चरम समय में चन्द्र विरक्त होता है। अवशेष समय मे चन्द्र रक्त एवं विरक्त (दोनों) होता है। यही (शुक्लपक्ष की पन्द्रहवी तिथि) पूर्णिमा है। यह द्वितीय पक्ष पूर्णिमा का है।

ज्योत्स्ना का अल्प-बहुत्व

[३] [१] प्र०—ता कता ते दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता दोसिणापक्खे णं दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा।

[२] प्र०—ता कहं ते दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अंधकारपक्खओ णं दोसिणा बहू आहियाति वदेज्जा।

[३] प्र०—ता कहं ते अंधकारपक्खातो दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहिताति वदेज्जा ?

उ०—ता अंधकारपक्खातो णं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बायाले मुहुत्तसते छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चंदे विरज्जति, तंजहा-पढमाए पढमं भागं, बिदियाए बिदियं भागं-जाव-पण्णरसीए पण्णरसं भागं,
एवं खलु अंधकारपक्खातो दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहिताति वदेज्जा।

[४] प्र०—ता केवतिया णं दोसिणापक्खे दोसिणा बहू आहिताति वदेज्जा ?

उ०—ता परित्ता असंखेज्जा भागा।

[५] प्र०—ता कता ते अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अंधयारपक्खे णं अंधकारे आहिताति वदेज्जा।

[६] प्र०—ता कहं ते अंधकारपक्खे बहू अंधकारे आहिताति वदेज्जा ?

उ०—ता दोसिणापक्खातो अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहितेति वदेज्जा।

[७] प्र०—ता कहं ते दोसिणापक्खातो अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहिताति वदेज्जा ?

उ०—ता दोसिणापक्खातो णं अंधकारपक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बाताले मुहुत्तसते छायालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइं चंदे रज्जति, तंजहा—
पढमाए पढमं भागं, बिदियाए बिदियं भागं-जाव-पण्णरसीए पण्णरसमं भागं,
एवं खलु दोसिणापक्खातो अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहिताति वदेज्जा।

[८] प्र०—ता केवतिएणं अंधकारपक्खे अंधकारे बहू आहियाति वदेज्जा ?

उ०—परित्ता असंखेज्जा भागा।

—सूर्य सूत्र ८२ पृ. २४४
—चन्द्र. सूत्र ८२

[३] [१] प्र०—उद्योत अधिक किस (पक्ष) में कहा गया है ?

उ०—उद्योतपक्ष में उद्योत अधिक कहा गया है ।

[२] द्र०—उद्योतपक्ष में उद्योत अधिक कैसे कहा गया है ?

उ०—अंधकारपक्ष की अपेक्षा से (उद्योतपक्ष में) उद्योत अधिक बतलाया गया है ।

[३] प्र०—अंधकारपक्ष से उद्योतपक्ष में उद्योत अधिक क्यों बतलाया गया है ?

उ०—अंधकारपक्ष से उद्योतपक्ष में आता हुआ चन्द्र ४४२$\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त्त विरक्त रहता है, यथा-प्रतिपदा के दिन प्रथम भाग, द्वितीया के दिन द्वितीय भाग,—यावत्—पूर्णिमा के दिन पन्द्रहवां भाग (विरक्त होता है) । इस कारण अंधकारपक्ष से उद्योतपक्ष में उद्योत अधिक बतलाया गया है ।

[४] प्र०—उद्योतपक्ष मे उद्योत कितना अधिक कहा गया है ?

उ०—परिमित असंख्यात भाग ।

[५] प्र०—अन्धकार अधिक किस (पक्ष) मे कहा गया है ?

उ०—अन्धकारपक्ष में अन्धकार अधिक कहा गया है ।

[६] प्र०—अन्धकारपक्ष मे अन्धकार अधिक कैसे कहा गया है ?

उ०—उद्योतपक्ष की अपेक्षा से अन्धकारपक्ष में अन्धकार अधिक कहा गया है ।

[७] प्र०—उद्योतपक्ष से अन्धकारपक्ष में अन्धकार अधिक क्यों कहा गया है ?

उ०—उद्योतपक्ष से अन्धकारपक्ष में आता हुआ चन्द्र ४४२$\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त्त रक्त रहता है, यथा—प्रतिपदा के दिन प्रथम भाग, द्वितीया के दिन द्वितीय भाग, —यावत्—अमावस्या के दिन पन्द्रहवां भाग (रक्त होता है) । इस कारण उद्योतपक्ष से अन्धकारपक्ष में अन्धकार अधिक कहा गया है ।

[८] प्र०—अन्धकारपक्ष में अन्धकार कितना अधिक कहा गया है ?

उ०—परिमित असंख्यात भाग (अधिक कहा गया है) ।

चन्द्रमण्डलों की संख्या

[४] [१] प्र०—कइ णं भंते ! चंदमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! पण्णरस चंदमंडला पण्णत्ता ।

—सूर्य सूत्र ४५ पृ. १३८
—चन्द्र. सूत्र ४५
जम्बू. सूत्र १४२ पृ. ४६५

[४] [१] प्र०—भगवन् ! चन्द्र-मंडल कितने हैं ?

उ०—गौतम ! चन्द्र-मंडल पन्द्रह हैं ।

[५] [१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयं ओगाहित्ता केवइआ चंदमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे असीयं जोअणसयं ओगाहित्ता पंच चंदमंडला पण्णत्ता ।

[२] प्र०—लवणे णं भंते ! पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोयणसए ओगाहित्ता एत्थ णं दस चंदमंडला पण्णत्ता ।
एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे य समुद्दे पण्णरस चंदमंडला भवंतीतिमक्खायं ।

[५] [१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितना अवगाहन करने पर कितने चन्द्र-मंडल हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में एक सौ अस्सी योजन अवगाहन करने पर पांच चन्द्रमण्डल हैं।

[२] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में (कितना अवगाहन करने पर कितने चन्द्रमण्डल हैं) ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र में तीन सौ तीस योजन अवगाहन करने पर दस चन्द्र-मण्डल हैं। इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र में पन्द्रह चन्द्रमण्डल हैं।

चन्द्रमंडलों का अन्तर

[६]]१] प्र०—सव्वब्भंतराओ णं भंते ! चंदमंडलाओ णं केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पंच दसुत्तरे जोयणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पण्णत्ते ।

—जम्बू. सूत्र १४३ पृ. ४६५

[६] [१] प्र०—भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मंडल से सर्वबाह्य चन्द्र-मंडल कितना दूर है ?

उ०—गौतम ! (सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मंडल से) सर्वबाह्य चन्द्र-मंडल ५१० योजन दूर है।

चन्द्रमंडलों का विस्तार

[७[[१] प्र०—चंदमंडले णं भंते ! केवइयं आयाम-विक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं, केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! छप्पण्णं एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं,
तं तिगुण सविसेसं परिक्खेवेणं,
अट्ठावीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स बाहल्लेणं ।

—जम्बू. सूत्र १४५ पृ. ४६५

[७] [१] प्र०—भगवन् ! (प्रत्येक) चन्द्रमण्डल कितना लम्बा-चौड़ा, कितनी परिधि वाला और कितना मोटा है ?

उ०—गौतम ! (प्रत्येक चन्द्रमण्डल) $\frac{५६}{६१}$ योजन लम्बा-चौडा, इससे तिगुनी से कुछ अधिक परिधि वाला एवं $\frac{२८}{६१}$ योजन मोटा है ।

आभ्यन्तर और बाह्य चन्द्र-मंडलों का विस्तार

[८] [१] प्र०—सव्वब्भंतरे णं भंते ! चंदमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं अउणाणउतिं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

[२] प्र०—अब्भंतराणंतरे सा चेव पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! णवणउइं जोअणसहस्साइं सत्त य बारसुत्तरे जोअणसए एगावण्णं च एगट्ठिभागे जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पन्नर सहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं ।

[३] प्र०—अब्भंतरतच्चे णं—जाव—पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णवजउइं जोअणसहस्साइं सत्त य पंचासीए जोअणसए इगलातीसं च एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता दोण्णि अ चुण्णिआभाए आयाम–विक्खंभेणं,
तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं पंच य इगुणापण्णे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणंति ।

एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे—जाव—संकममाणे २ बावत्तरिं २ जोअणाइं एगावण्णं च एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं च चुण्णिआभागं एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि अभिवड्ढेमाणे २ दो दो तीसाइं जोयणसयाइं परिरयवुड्ढि अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

[४] प्र०—सव्वबाहिरए णं भंते ! चंदमंडले केवइयं आयाम–विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयाम–विक्खंभेणं,
तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेण ।

[५] प्र०—बाहिराणंतरे णं पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! एगं जोअणसयसहस्सं पंच सत्तासीए जोअणसए णव य एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए आयाम–विक्खंभेणं ।
तिण्णि य जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं पंचासीइं च जोअणाइं परिक्खेवेणं ।

[६] प्र०—बाहिरतच्चे णं भंते ! चंदमंडले ... पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगं जोअणसयसहस्सं पंच य चउदसुत्तरे जोअणसए एगूणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता पंच चुण्णिआभाए आयाम–विक्खंभेणं,
तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं सत्तरस सहस्साइं अट्ठ य पणवण्णे जोअणसए परिक्खेवेणं ।
एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चंदे—जाव—संकममाणे २ बावत्तरिं २ जोअणाइं एगावण्णं च एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं
एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि णिक्खुड्ढेमाणे २ दो दो तीसाइं जोयणसयाइं परिरयवुड्ढि णिक्खुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

—जंबू. सूत्र १४७ पृ. ४६८–४६९

[८] [१] प्र०—भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र–मंडल कितना लंबा–चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है ।

उ०—गौतम ! (सर्व–अभ्यन्तर चन्द्र–मंडल) ९९६४$\frac{1}{6}$, योजन लंबा–चौड़ा है एवं ३१५०८९ योजन से किंचित् विशेष अधिक परिधि वाला है ।

[२] प्र०—इसी प्रकार आभ्यन्तर के बाद के मंडल के विषय में पूछना चाहिए ?

उ०—गौतम ! आभ्यन्तर के बाद का अर्थात् दूसरा मंडल ९९७१२$\frac{5}{6}$ + ($\frac{1}{6}$ × $\frac{1}{3}$) योजन लम्बा–चौड़ा एवं ३१५३१९ योजन से किंचित् अधिक परिधि वाला है ।

[३] प्र०—इसी प्रकार आभ्यन्तर से तीसरे मण्डल के विषय में प्रश्न करना चाहिए ?

उ०—गौतम ! (आभ्यन्तर–तृतीय मण्डल) ९९७८५$\frac{4}{6}$ + ($\frac{1}{6}$ × $\frac{1}{3}$ × $\frac{1}{2}$) योजन लम्बा–चौड़ा है एवं ३१५५४९ योजन से किंचित् अधिक परिधि वाला है । इस प्रकार क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र–यावत्–संक्रमण करता हुआ ७२$\frac{5}{6}$ + ($\frac{1}{6}$ × $\frac{1}{3}$) योजन प्रत्येक मण्डल में लम्बाई–चौड़ाई में बढ़ता हुआ एवं २३० योजन परिधि में बढ़ता हुआ सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रमण करता हुआ गति करता है ।

[४] प्र०—भगवन् ! सर्वबाह्य मंडल कितना लम्बा-चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! १००६६० योजन लम्बा-चौड़ा एवं ३१८३१५ योजन की परिधि वाला है।

[५] प्र०—इसी प्रकार बाह्य के बाद के मंडल के विषय में प्रश्न करना चाहिए ?

उ०—गौतम ! (बाह्य के बाद का मण्डल) १००५८७$\frac{६}{६१}$ + ($\frac{१}{६१} \times \frac{१}{७} \times \frac{६}{१}$) योजन लम्बा-चौड़ा एवं ३१८०८५ योजन की परिधि वाला है।

[६] प्र०—इसी प्रकार बाह्यतृतीय अर्थात द्वितीय के बाद के मण्डल के विषय में प्रश्न करना चाहिए ?

उ०—गौतम ! (बाह्यतृतीय मण्डल) १००५१४ $\frac{१६}{६१}$ + ($\frac{१}{६१} \times \frac{१}{७} \times \frac{५}{१}$) योजन लंबा-चौड़ा एवं ३१७८५५ योजन की परिधि वाला है।

इस प्रकार इस क्रम से प्रविष्ट होता हुआ चन्द्र—यावत्—संक्रमण करता हुआ ७२$\frac{५}{६१}$ + ($\frac{१}{६१} \times \frac{१}{७}$) योजन प्रत्येक मण्डल मे (लम्बाई) चोड़ाई मे कम होता हुआ एव २३० योजन परिधि में कम होता हुआ सर्व-आभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रमण करता हुआ गति करता है।

चन्द्रमण्डलों का अंतर

[९] [१] प्र०—चंदमंडलस्स णं भंते ! चंदमंडलस्स केवइआए अन्तरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणतीसं २ जोअणाइं तीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए चंदमंडलस्स चंदमंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

—जम्बू. सूत्र १४४ पृ. ४६५

[९] [१] प्र०—भगवन् ! एक चन्द्र-मण्डल से दूसरे चन्द्र-मण्डल का कितना अन्तर है ?

उ०—गौतम ३५$\frac{३०}{६१}$ + ($\frac{१}{६१} \times \frac{१}{७} \times \frac{४}{७}$) योजन का एक चन्द्र-मण्डल से दूसरे चन्द्र-मण्डल का अन्तर है।

[२] प्र०—एगमेगे णं भंते ! मुहुत्तेणं चंदे केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स सत्तरस अट्ठे (अट्ठट्ठे ?) भागसए गच्छइ,
मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइए अ सएहिं छेत्ता इति।

—जम्बू. सूत्र १४९ पृ.४७४

[२] प्र०—भगवन् ! चन्द्र प्रतिमुहूर्त्त (मंडल का) कितना भाग चलता है ?

उ०—गौतम ! जिस-जिस मंडल पर आरूढ़ होकर गति करता है, उस-उस मंडल की परिधि का $\frac{१७०९}{१०३९००}$ भाग चलता है।

एक मुहूर्त्त में चन्द्र की गति

[१०][१] प्र०—जया णं भंते ! चंदे सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं तेवत्तरिं च जोअणाइं सत्तत्तरिं च चोआले भागसए गच्छइ,
मंडलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता इति।
तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोअणसएहिं एगवीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स चंदे चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ।

[२] प्र०—जया णं भंते ! चंदे अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
—जाव—केवइयं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं सत्तत्तरिं च जोअणाइं छत्तीसं च चोअत्तरे भागसए गच्छइ,
मंडलं तेरसहिं सहस्सेहिं—जाव–छेत्ता ।

[३] प्र०—जया णं भंते ! चंदे अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसहस्साइं असीइं च जोयणाइं तेरस य भागसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे
भागसए गच्छइ
मंडलं तेरसहिं—जाव–छेत्ता इति ।
एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे तयाणंतराओ-जाय-संकममाणे २ तिण्णि २ जोअणाइं
छण्णउइं च पंचावण्णे भागसए मंडले मुहुतगइं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिर मंडलं उवसंकमित्ता
चारं चरइ ।

[४] प्र०—जया णं भंते ! चंदे सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोअणसयं अउणत्तरिं च उणए भागसए गच्छइ,
मंडलं तेरसहिं भागसहस्सेहिं सत्तहि अ-जाव-छेत्ता इति ।
तया णं इहगयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोअण-सहस्सेहिं अट्ठहि अ एगत्तीसेहिं जोअणसएहिं चंदे
चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ।

[५] प्र०—जया णं बाहिराणंतरं पुच्छा ?

उ०—गोअमा ! पंच जोअणसहस्साइं एक्के च एक्कवीसं जोअणसयं एक्कारस य सट्ठे भागसहस्से गच्छइ,
मंडलं तेरसहिं-जाव-छेत्ता ।

[६] प्र०—जया णं बाहिरतच्चं पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं एगं च अट्ठारसुत्तरं जोअणसयं चोद्दस य पंचुत्तरे भागसए गच्छइ,
मंडलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहिं पणत्तीसेहिं सएहिं छेत्ता ।
एवं खलु एएणं उवाएणं-जाव-संकममाणे २ तिण्णि २ जोअणाइं छण्णउतिं च पंचावण्णे भागसए
एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं णिबुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

—जम्बू, सूत्र १४८ पृ. ४७०–४७१

[१०][१] प्र०—भगवन् ! जब चन्द्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल मे उपसक्रान्त होकर गति करता है तब एक-एक मुहूर्त्त में कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! ५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन चलता है । उस समय यहां रहे हुए मनुष्य को ४६२६३ $\frac{२१}{६०}$ योजन से चन्द्र दिखाई देता है ।

[२] प्र०—भगवन् ! जब चन्द्र आभ्यन्तर के बाद के मण्डल मे उपसक्रान्त होकर गति करता है तब वह एक-एक मुहूर्त्त में कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! ५०७७ $\frac{३६७४}{१३७२५}$ योजन चलता है ।

[३] प्र०—भगवन् ! जब चन्द्र आभ्यन्तर-तृतीय मंडल में उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब एक-एक मुहूर्त्त में कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! ५०८० $\frac{133}{1830}$ योजन चलता है। इस प्रकार इस क्रम से निष्क्रान्त होता हुआ चन्द्र एक के बाद-यावत्-संक्रान्त होता हुआ ३ $\frac{665}{1830}$ योजन की प्रत्येक मुहूर्त्त की गति में वृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

[४] प्र०—भगवन् ? जब चन्द्र सर्वबाह्य मंडल मे उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब वह एक-एक मुहुर्त्त मे कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! ५१२५ $\frac{660}{1830}$ योजन चलता है।
उस समय यहा स्थित मनुष्य को ३१८३१ योजन मे चन्द्र दृष्टिगोचर होता है।

[५] प्र०—भगवन् ! जब चन्द्र बाह्य के बाद के मंडल मे उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब ?

उ०—गौतम ! तब ५१२१ $\frac{1160}{1830}$ योजन चलता है।

[६] प्र०—भगवन् ! जब चन्द्र बाह्यतृतीय मंडल मे उपसंक्रान्त होकर चलता है तब ?

उ०—गौतम ! तब ५११८ $\frac{1805}{1830}$ योजन चलता है। इस प्रकार इस क्रम से-यावत्-संक्रान्त होता हुआ ३ $\frac{665}{1830}$ योजन की प्रत्येक मुहूर्त्त की गति में कमी करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल मे उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

मेरु से चन्द्रमंडलों का अंतर

[११][१] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतरए चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोयणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे चंदमंडले पण्णत्ते।

[२] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतराणंतरे चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य छप्पण्णे जोयणसए पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभागे अबाहाए अब्भंतराणंतरे चंदमंडले पण्णत्ते।

[३] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए अब्भंतरतच्चे मंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वाणउए जोअणसए एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं अबाहाए अब्भंतरतच्चे मंडले पण्णत्ते। एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ छत्तीसं छत्तीसं जोअणाइं पणवीसं च एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभागे एगमेगे मंडले अबाहाए बुड्ढि अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

[११][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मंडल कितनी दूर है ?

उ०—गौतम ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्रमण्डल ४४९२० योजन दूर है।

[२] प्र०—जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से आभ्यन्तर के बाद का चन्द्रमण्डल कितनी दूर है ?

उ०—गौतम ! ४४८५६ $\frac{35}{61}$ × ($\frac{1}{61}$ × $\frac{1}{3}$ × $\frac{5}{1}$) योजन दूर है।

[३] प्र०—जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से आभ्यन्तर–तृतीय चन्द्रमण्डल कितनी दूर है ?

उ०—गौतम ! आभ्यन्तर–तृतीय मण्डल ४४८२$\frac{५}{६१}$ + ($\frac{१}{६१}$ × $\frac{१}{३}$) योजन दूर है।

इस प्रकार इस क्रम से निष्क्रान्तन होता हुआ चन्द्र एक मण्डल के बाद दूसरे मण्डल में संक्रान्त होता हुआ ३६$\frac{३५}{६१}$ + ($\frac{१}{६१}$ × $\frac{१}{३}$ × $\frac{४}{६१}$) योजन की प्रत्येक मण्डल में वृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल में उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

[१२][१] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरे चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पण्णत्ते।

[२] प्र०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए बाहिराणंतरे चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोअणसए पणतालीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता तिण्णि चुण्णिआभाए बाहिराणंतरे चंदमंडले पण्णत्ते।

[३] प्र०—जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ सत्तावण्णे जोअणसए णव य एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमंडले पण्णत्ते।

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चंदे तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ छत्तीसं २ जोअणाइं पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मंडले अबाहाए वुड्ढि णिव्वुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

—जम्बू. सूत्र १४६ पृ. ४६६–६७

[१२][१] प्र०—जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल कितनी दूर है ?

उ०—सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल ४५३३० योजन दूर है।

[२ प्र०—जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से बाह्य के बाद का चन्द्र-मण्डल कितनी दूर है ?

उ०—गौतम ! बाह्य के बाद का चन्द्र-मण्डल ४५२९३$\frac{३५}{६१}$ ($\frac{१}{६१}$×$\frac{१}{३}$×$\frac{३}{६१}$) योजन दूर है।

[३] प्र०—जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से बाह्यतृतीय चन्द्र-मण्डल कितनी दूर है ?

उ०—गौतम ! बाह्यतृतीय चन्द्रमण्डल ४५२५७$\frac{६}{६१}$ + ($\frac{१}{६१}$×$\frac{१}{३}$×$\frac{६}{६१}$) योजन दूर है।

इस प्रकार इस क्रम से प्रविष्ट होता हुआ चन्द्र एक के बाद दूसरे मण्डल में संक्रान्त होता हुआ ३६$\frac{३५}{६१}$+ ($\frac{१}{६१}$×$\frac{१}{३}$×$\frac{४}{६१}$) योजन दूरी की प्रत्येक मडल में कमी करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल में उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

पक्ष में चन्द्र-मंडल गति

[१३][१] प्र०—ता चंदेणं अद्धमासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता चोद्दस चउब्भागमंडलाइं चरति एगं च चउवीस-सतभागं मंडलस्स।

[२] प्र०—ता आइच्चेणं अद्धमासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता सोलस मंडलाइं चरति।

सोलसमंडलचारी तदा अवराइं खलु दुवे अट्ठकाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णकाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति,

[३] प्र०—कतराइं खलु दुवे अट्ठकाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णकाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति ?

उ०—इमाइं खलु ते दुवे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति, तंजहा-निक्खममाणे चेव, अमावासंतेणं, पविसमाणे चेव पुण्णिमासिंतेणं,
एताइं खलु दुवे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणइ
असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति ।
ता पढमायणगते चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे चारं चरति ।

[४] प्र०—कतराइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे चारं चरति ?

उ०—इमाइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे चारं चरति, तंजहा-बिदिए अद्धमंडले, चउत्थे अद्धमंडले, छट्ठे अद्धमंडले, अट्ठमे अद्धमंडले, दसमे अद्धमंडले, बारसमे अद्धमंडले, चउदसमे अद्धमंडले ।
एताइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाते भागाते पविसमाणे चारं चरति ।
छ अद्धमण्डलाइं तेरस य सत्तट्ठि भागाइं अद्धमंडलस्स जाइं चंदे उत्तराते भागाए पविसमाणे चारं चरति ।

[५] प्र०—कतराइं खलु ताइं छ अद्धमंडलाइं तेरस य सत्तट्ठि-भागाइं अद्धमण्डलस्स जाइं चंदे उत्तराते भागाते पविसमाणे चारं चरति ?

उ०—इमाइं खलु ताइं छ अद्धमंडलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमण्डलाइं जाइं चंदे उत्तराते भागाते पविसमाणे चारं चरति, तंजहा—
तईए अद्धमंडले, पंचमे अद्धमण्डले, सत्तमे अद्धमंडले, नवमे अद्धमण्डले, एक्कारसमे अद्धमंडले, तेरसमे अद्धमंडले, पन्नरसमंडलस्स तेरस सत्तट्ठिभागाइं,
एताइं खलु ताइं छ अद्धमंडलाइं तेरस य सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे उत्तराते भागाते पविसमाणे चारं चरति,
एतावया च पढमे चंदायणे समत्ते भवति,
ता णक्खत्ते अद्धमासे नो चंदे अद्धमासे,
नो चंदे अद्धमासे णक्खत्ते अद्धमास ।

[१३][१] प्र०—अर्ध चन्द्रमास में चन्द्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—$१४\frac{१}{४}+_{१}\frac{१}{२४}$ मडल चलता है ।

[२] प्र०—अर्ध सूर्यमास में चन्द्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—सोलह मंडल चलता है ।
उस समय अन्य दो अष्टकों में चन्द्र स्वयमेव असामान्यतया प्रविष्ट होकर गति करता है ।

[३] प्र०—वे अन्य दो अष्टक कौन से है जिनमें चन्द्र स्वयमेव असामान्यतया प्रविष्ट होकर गति करता है ?

उ०—वे दो अष्टक ये है जिनमें चन्द्र स्वयमेव असामान्यतया प्रविष्ट होकर गति करता है, यथा—निष्क्रमण करता हुआ अमावस्या के दिन एव प्रविष्ट होता हुआ पूर्णिमा के दिन ।
इन दो अष्टकों में चन्द्र स्वयमेव असामान्यतया प्रविष्ट होकर गति करता है ।
प्रथमायनगत चन्द्र दक्षिण भाग से प्रविष्ट होता हुआ सात अर्ध मडलों मे जाकर दक्षिण भाग मे प्रविष्ट होकर गति करता है ।

[४] प्र०—वे सात अर्ध मंडल कौन-से हैं जिनमें जाकर चन्द्र दक्षिणी भाग में प्रविष्ट होता हुआ गति करता है ?

उ०—वे सात अर्ध मंडल ये हैं जिनमें होकर चन्द्र दक्षिणी भाग में प्रविष्ट होता हुआ गति करता है, यथा—द्वितीय अर्धमंडल, चतुर्थ अर्धमंडल, षष्ठ अर्धमंडल, अष्टम अर्धमंडल, दशम अर्धमंडल, द्वादश अर्धमंडल एवं चतुर्दश अर्धमंडल। ये सात अर्ध मंडल हैं जिनमें होकर चन्द्र दक्षिणी भाग में प्रविष्ट होता हुआ गति करता है। प्रथमायनगत चन्द्र उत्तरी भाग में प्रविष्ट होता हुआ $६+\frac{१३}{६२}$ अर्धमडलों में होकर उत्तरी भाग में प्रविष्ट होता हुआ गति करता है।

[५] प्र०—वे $६+\frac{१३}{६२}$ अर्धमंडल कौन-से हैं जिनमें होकर चन्द्र उत्तरी भाग मे प्रविष्ट होता हुआ गति करता है ?

उ०—वे $६+\frac{१३}{६२}$ अर्ध मडल ये हैं जिनमें होकर चन्द्र उत्तरी भाग में प्रविष्ट होता हुआ गति करता है, यथा—तृतीय अर्धमडल, पचम अर्धमडल, सप्तम अर्ध मडल, नवम अर्ध मंडल, एकादश अर्धमंडल, त्रयोदश अर्ध मंडल एवं पंचदश अर्धमडल का $\frac{१३}{६२}$ भाग।

ये $६\frac{१३}{६२}$ अर्धमंडल है जिनमें होकर चन्द्र उत्तरी भाग में प्रविष्ट होता हुआ गति करता है। इस ढंग से प्रथम चन्द्रायण समाप्त होता है। इसमे नक्षत्र-अर्धमास मे चन्द्र-अर्धमास नही होता और न चन्द्र-अर्धमास में नक्षत्र-अर्धमास ही होता है।

[१४][१] प्र०—ता नक्खत्ताओ अद्धमासातो ते चंदे चंदेणं अद्धमासेणं किमधियं चरति ?

उ०—एगं अद्धमंडलं चरति चत्तारि य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स सत्तट्ठिभागं एकतीसाए छेत्ता णव भागाइं,
ता दोच्चायणगते चंदे पुरच्छिमाते भागाते णिक्खममाणे सचउप्पण्णाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति,
सत्त तेरसकाइं जाइं चंदे अप्पणा चिण्णं चरति,
ता दोच्चायणगते चंदे पच्चत्थिमाए भागाए णिक्खममाणे चउप्पणाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति,
छ तेरसगाइं चंदे अप्पणो चिण्णं पडिचरति,
अवरगाइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति।

[२] प्र०—कतराइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति ?

उ०—इमाइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदो केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति सव्वब्भंतरे चेव मंडले, सव्वबाहिरे चेव मंडले,
एयाणि खलु ताणि दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ—जाव—चारं चरति।
एतावता दोच्चे चंदायणे समत्ते भवति।
ता णक्खत्ते मासे नो चंदमासे, चंदे मासे णो णक्खत्ते मासे।

[३] प्र०—णक्खत्ताते मासाए चंदेणं मासेणं किमधियं चरति ?

उ०—ता दो अद्धमंडलाइं चरति,
अट्ठ य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता अट्ठारस भागाइं,
ता तच्चायणगते चंदे पच्चत्थिमाते भागाए पविसमाणे
बाहिराणंतरस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स ईतालीसं सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरति,

तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति,
तेरस सत्तट्ठिभागाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरति,
एतावया बाहिराणंतरे पच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले समत्ते भवति ।
तच्चायणगते चंदे पुरच्छिमाए भागाए पविसमाणे बाहिरतच्चस्स पुरच्छिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स
ईतालीसं सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स चिण्णं पडिचरति,
तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति,
तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरति,
एतावता बाहिरतच्चे पुरच्छिमिल्ले अद्धमंडले समत्ते भवति ।
ता तच्चायणगते चंदे पच्चत्थिमाते भागाते पविसमाणे बाहिर चउत्थस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्ध-
मंडलस्स अद्धसत्तट्ठि भागाइं सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता,
अट्ठारस भागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्ण पडिचरति,
एतावता बाहिर चउत्थपच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले सम्मत्ते भवइ ।
एवं खलु चंदेणं मासेणं चंदे तेरस चउप्पण्णगाइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरति,
तेरस २ गाइं जाइं चदे अप्पणो चिण्णं पडिचरति,
दुवे ईतालीसगाइं अट्ठ सत्तट्ठिभागाइं सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छेत्ता,
अट्ठारसभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरति,
अवराइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ अस्सामन्नगाइं सयमेव पविट्ठित्ता २ चारं चरति,
इच्चेसो चंदमासोऽभिगमण-णिक्खमण-वुड्ढिणिवुड्ढि-अणवट्ठित-सठाणसंठिती-विउव्वणगिद्धिपत्ते रुवी
चंदे देवे २ आहितेति वदेज्जा ।

—सूर्य. सूत्र ८१ पृ. २३६-२३८
—चन्द्र. सूत्र ८१

[१४][१] प्र०—नक्षत्र-अर्धमास मे चन्द्र-अर्धमास मे चन्द्र कितना अधिक चलता है ?

उ०—$१\frac{४}{६७}+(\frac{१}{६७}\times\frac{१}{३१}\times\frac{६}{१})$ अर्धमंडल अधिक चलता है ।
द्वितीयायनगत चन्द्र पूर्वी भाग से निकलता हुआ $\frac{४}{६७}$ भाग चलकर अन्य (चन्द्रमण्डल) के क्षेत्र में गति करता है । $\frac{१३}{६७}$ भाग चलकर चन्द्र अपने क्षेत्र में गति करता है ।
द्वितीयायनगत चन्द्र पश्चिमी भाग मे निकलता हुआ $\frac{५४}{६७}$ भाग चल कर अन्य (चन्द्रमण्डल) के क्षेत्र में गति करता है । $\frac{१३}{६७}$ भाग चलकर चन्द्र अपने क्षेत्र में गति करता है । दूसरे (नक्षत्र-अर्ध-मास) में चन्द्र $\frac{१३}{६७}+\frac{२}{१}=\frac{२६}{६७}$ भाग में असामान्यतया स्वयमेव प्रविष्ट होकर गति करता है ।

[२] प्र०—वह $\frac{२६}{६७}$ भाग कौन-सा है जिसमे चन्द्र असामान्यतया स्वयमेव प्रविष्ट होकर गति करता है ?

उ०—यह वह $\frac{२६}{६७}$ भाग है जिसमें चन्द्र असामान्यतया स्वयमेव प्रविष्ट होकर गति करता है—सर्वाभ्य-न्तर मंडल और सर्वबाह्य मडल । ($\frac{१३}{६७}$ सर्वाभ्यन्तर मण्डल व $\frac{१३}{६७}$ सर्वबाह्य मडल) यह वह $\frac{२६}{६७}$ भाग है जिसमें चन्द्र—यावत्—गति करता है । इस ढग से द्वितीय चन्द्रायण समाप्त होता है । इसमें नक्षत्रमास मे चन्द्रमास नही होता और न चन्द्रमास में नक्षत्रमास ही होता है ।

[३] प्र०—नक्षत्रमास से चन्द्रमास मे चन्द्र कितना अधिक चलता है ?

उ०—$२\frac{५}{६७}+(\frac{१}{६७}\times\frac{१}{३१}\times\frac{१८}{१})$ अर्धमंडल अधिक चलता है ।
तृतीयायनगत चन्द्र पश्चिमी भाग से प्रविष्ट होता हुआ बाह्य के बाद के पश्चिमी अर्धमडल का $\frac{४}{६७}$ भाग चलकर अपने व अन्य के क्षेत्र में गति करता है । $\frac{१३}{६७}$ भाग चलकर चन्द्र अन्य के क्षेत्र में गति करता है । $\frac{१३}{६७}$ भाग चलकर चन्द्र अपने व पर के क्षेत्र में गति करता है । इस प्रकार बाह्य के बाद का पश्चिमी अर्धमंडल समाप्त होता है । तृतीयायनगत चन्द्र पूर्वी भाग से प्रविष्ट होता हुआ

बाह्यतृतीय के पूर्वी अर्धमंडल का $\frac{४१}{६७}$ भाग चल कर अपने व दूसरे के क्षेत्र में गति करता है। $\frac{१३}{३७}$ भाग चलकर चन्द्र पर के क्षेत्र में विचरता हैं। $\frac{१३}{६७}$ भाग चलकर चन्द्र अपने व पराये क्षेत्र मे विचरता है। इस ढंग से बाह्य-तृतीय का पूर्वी अर्धमंडल समाप्त होता है।

तृतीयायनगत चन्द्र पश्चिमी भाग से प्रविष्ट होता हुआ बाह्य-चतुर्थ के पश्चिमी अर्धमंडल का $\frac{१}{२}+\frac{१}{६७}+(\frac{१}{६७}\times\frac{१}{३१}\times\frac{१५}{१})$ भाग चलकर अपने व पर के क्षेत्र में विचरता है। इस ढंग से बाह्य-चतुर्थ का पश्चिमी अर्धमंडल समाप्त होता है।

इस प्रकार चन्द्रमास में चन्द्र $\frac{१३}{२१३}$ भाग चल कर पर के क्षेत्र मे विचरता है। $\frac{१३}{६७}$ भाग चल कर चन्द्र अपने क्षेत्र मे विचरता है। $\frac{२४१}{८६७}+(\frac{१}{६७}\times\frac{१}{३१}\times\frac{१५}{१})$ भाग चलकर चन्द्र अपने व पर के क्षेत्र में गति करता है। अन्य $\frac{१३}{६७}\times\frac{२}{१}$ भाग चल कर चन्द्र असामान्यतया स्वयमेव प्रविष्ट होकर गति करता है।

इस प्रकार चन्द्रमास मे गमन, निष्क्रमण, वृद्धि, निर्वृद्धि से अनवस्थित सस्थान वाला सस्थिति एवं विकुर्वणा ऋद्धिप्राप्त, अतिशय रूपवान् चन्द्र देव कहा गया है (दिखाई देने वाला विमान चन्द्र देव नहीं है) ऐसा कहना चाहिए।

विभिन्न मासों में चन्द्रादि का मंडल-चार

[१५][१] प्र०—ता णक्खत्तेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता तेरस मडलाइं चरति, तेरस य सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

[२] प्र०—ता णक्खत्तेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—तेरस मंडलाइं चरति, चोत्तालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

[३[प्र०—ता णक्खत्तेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता तेरस मंडलाइं चरति, अट्ठसीतालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स।

[४] प्र०—ता चंदेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—चोद्दस चउभागाइं मंडलाइं चरति, एगं च चउव्वीससतं भागं मंडलस्स।

[५] प्र०—ता चंदेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरति, एगं च चउवीससतभागं मंडलस्स।

[६] प्र०—ता चंदेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं चरति, छच्च चउवीससतभागे मंडलस्स।

[७] प्र०—ता उडुणा मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता चोद्दस मंडलाइं चरति, तीसं च एगट्ठिभागे मंडलस्स।

[८] प्र०—ता उडुणा मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता पण्णरस मंडलाइं चरति,

[९] प्र०—ता उडुणा मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता पण्णरस मंडलाइं चरति, पंच य बावीससतभागे मंडलस्स।

[१०] प्र०—ता आदिच्चेणं मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता चोद्दस मंडलाइं चरति, एक्कारस भागे मंडलस्स।

[११] प्र०—ता आदिच्चेणं मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता पण्णरस चउभागाहिगाइं मंडलाइं चरति ।

[१२] प्र०—ता आदिच्चेणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता पण्णरस चउभागाहिगाइं मंडलाइं चरति, पंचतीसं च चउवीससतभागमंडलाइं चरति ।

[१३] प्र०—ता अभिवड्ढिएण मासेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता पण्णरस मंडलाइं तेसीतिं छलसीयसतभागे मंडलस्स ।

[१४] प्र०—ता अभिवड्ढिएण मासेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता सोलस मंडलाइं चरति, तिहिं भागेहिं ऊणगाइं दोहिं अड्ढालेहिं सएहिं मंडलं छित्ता ।

[१५] प्र० —अभिवड्ढिएणं मासेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता सोलस मंडलाइं चरति, सीतालीसएहिं भागेहिं अहियाइं चोद्दसहिं अट्ठासीएहिं मंडलं छेत्ता ।

[१५][१] प्र०—नक्षत्रमास से चन्द्र कितने मडल चलता है ?

उ०—तेरह मंडल और एक मंडल का $\frac{13}{67}$ भाग चलता है ।

[२] प्र०—नक्षत्रमास से सूर्य कितने मडल चलता है ?

उ०—$13\frac{44}{67}$ मंडल चलता है ।

[३] प्र०—नक्षत्रमास से नक्षत्र कितने मडल चलता है ?

उ०—$13\frac{46}{67}$ मंडल चलता है ।

[४] प्र०—चन्द्रमास से चन्द्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—$14\frac{33}{124}$ मंडल चलता है ।

[५] प्र०—चन्द्रमास से सूर्य कितने मंडल चलता है ?

उ०—$14\frac{64}{124}$ मंडल चलता है ।

[६] प्र०—चन्द्रमास से नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—$14\frac{66}{124}$ मंडल चलता है ।

[७] प्र०—ऋतुमास से चन्द्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—$14\frac{30}{61}$ मंडल चलता है ।

[८] प्र०—ऋतुमास से सूर्य कितने मंडल चलता है ?

उ०—१५ मंडल चलता है ।

[९] प्र०—ऋतुमास से नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—$15\frac{7}{122}$ मंडल चलता है ।

[१०] प्र०—आदित्यमास से चन्द्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—$14\frac{11}{15}$ मंडल चलता है ।

[११] प्र०—आदित्यमास से सूर्य कितने मंडल चलता है ?

उ०—१५$\frac{१५}{६०}$ मंडल चलता है ।

[१२] प्र०—आदित्यमास से नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—१५$\frac{३५}{६२}$ मंडल चलता है ।

[१३] प्र०—अभिवर्द्धितमास से चन्द्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—१५$\frac{५३}{६२}$ मंडल चलता है ।

[१४] प्र०—अभिवर्द्धितमास से सूर्य कितने मंडल चलता है ?

उ०—१६$\frac{३४५}{६२}$ मंडल चलता है ।

[१५] प्र०—अभिवर्द्धितमास से नक्षत्र कितने मंडल चलता है ?

उ०—१६$\frac{४७}{६२}$ मंडल चलता है ।

अहोरात्र आदि में चन्द्रादि का मंडलचार

[१६][१] प्र०—ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरति, एक्कतीसाए भागेहिं ऊणं णवहिं ८७सएहिं अद्धमंडलं छेत्ता ।

[२] प्र०—ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं सूरिए कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरति ।

[३] प्र०—ता एगेणं अहोरत्तेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता एगं अद्धमंडलं चरति, दोहिं भागेहिं अधियं सत्तहिं बत्तीसेहिं सएहिं अद्धमंडलं छेत्ता ।

[४] प्र०—ता एगमेगं मंडलं चंदे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति, एक्कतीसाए भागेहिं अधिएहिं चउहिं चोतालेहिं सतेहिं राइंदिएहिं छेत्ता ।

[५] प्र०—ता एगमेगं मंडलं सूरे कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति ।

[६] प्र०—ता एगमेगं मंडलं णक्खत्ते कतिहिं अहोरत्तेहिं चरति ?

उ०—ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरति, दोहिं ऊणेहिं तिहिं सत्तसट्ठेहिं सतेहिं राइंएहिं छेत्ता ।

[७] प्र०—ता जुगेणं चंदे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता अट्ठ चुल्लसीते मंडलसते चरति ।

[८] प्र०—ता जुगेणं सूरे कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता णवपण्णर मंडल सते चरति ।

[९] प्र०—ता जुगेणं णक्खत्ते कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता अट्ठारस पणतीसे दुभागमंडलसते चरति ।

इच्चेसा मुहुत्तगती रिक्खातिमासा-राइंदिय-जुग-मंडलपविभत्ता सिग्घगती वत्थु आहितेत्ति बेमि ।

—सूर्य. सूत्र ८६ पृ. २५४

[१६][१] प्र०—चन्द्र एक-एक अहोरात्र में कितने मंडल चलता है ?

उ०—एक अर्धमंडल के ९१५ भाग वैसे ४४२ भाग चलता है ।

[२] प्र०—सूर्य एक-एक अहोरात्र में कितने मंडल चलता है ?

उ०—एक अर्द्ध मंडल चलता है ।

[३] प्र०—नक्षत्र एक-एक अहोरात्र में कितने मडल चलता है ?

उ०—एक मंडल के ७३२ भाग में से ३६७ भाग चलता है ।

[४] प्र०—चन्द्र एक-एक मंडल में कितने अहोरात्र चलता है ?

उ०—$२\frac{३१}{४२}$ अहोरात्र चलता है ।

[५] प्र०—सूर्य एक-एक मडल में कितने अहोरात्र चलता है ?

उ०—दो अहोरात्र चलता है ।

[६] प्र०—नक्षत्र एक-एक मंडल में कितने अहोरात्र चलता है ?

उ०—$१\frac{३६५}{३६७}$ अहोरात्र चलता है ।

[७] प्र०—चन्द्र एक युग मे कितने मडल चलता है ?

उ०—८८४ मडल चलता है ।

[८] प्र०—सूर्य एक युग मे कितने मडल चलता है ?

उ०—९१५ मंडल चलता है ।

[९] प्र०—नक्षत्र एक युग मे कितने मडल चलता है ?

उ०—१८३५ अर्धमडल चलता है ।

यह अनन्तरोक्त मुहुर्त्त गति है, नक्षत्रमास आदि अहोरात्र एवं युग को लेकर मंडलों की संख्या का निरूपण किया गया तथा शीघ्रगति रूप वस्तु का कथन किया गया है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

चन्द्रादि की गति की विशेषता

[१७][१] **प्र०—ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं सूरे गतिसमावण्णे भवति, से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेति ?**

उ०—ता बावट्ठिभागे विसेसेति ।

[२] **प्र०—ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं णक्खत्ते गतिसमावण्णे भवइ, से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेइ ?**

उ०—ता सत्तट्ठि भागे विसेसेति ।

[३] **प्र०—ता जया णं सूरं गतिसमावण्णं णक्खत्ते गतिसमावण्णे भवति, से णं गतिमाताए केवतियं विसेसेति ?**

उ०—ता पंच भागे विसेसेति ।

ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं अभीयीणक्खत्ते णं गतिसमावण्णे पुरच्छिमाए भागाए समासादेति, पुरच्छिमाए भागाए समासादित्ता णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोएति जोअं जोएत्ता अणुपरियट्टति, जोयं जोएत्ता विप्पजहाति, विगयजोई यावि भवति ।

ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं सवणे णक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाइ भागाए समासादेति, पुरच्छिमाए भागाए समासादेत्ता तीसं मुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोयं जोएति, जोयं जोएत्ता अणुपरियट्टति, जोयं जोएत्ता विप्पजहति, विगयजोई यावि भवइ ।

एवं एएणं अभिलावेणं णेतव्वं—

पण्णरसमुहुत्ताइं, तीसतिमुहुत्ताइं, पणयालीसमुहुत्ताइं, भाणितव्वाइं—जाव—उत्तरासाढा ।

ता जया णं चंदं गतिसमावण्णं गहे गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादेत्ता चंदेण सद्धिं जोगं जुंजति, जुंजित्ता जोगं अणुपरियट्टइ, अणुपरियट्टित्ता विप्पजहति, विगतजोई यावि भवति ।

ता जया णं सूरं गतिसमावण्णं अभीयीणक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुरच्छिमाए भागाए समासादित्ता चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएति, जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, अणुपरियट्टित्ता विजेति, विगयजोगी यावि भवति ।

एवं अहोरत्ता छ एक्कवीसं मुहुत्ता य, तेरस अहोरत्ता, बारस मुहुत्ता य, वीसं अहोरत्ता तिण्णि मुहुत्ता य सव्वे भणितव्वा—जाव—जया णं सूरं गतिसमावण्णं ।

उत्तरासाढाणक्खत्ते गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादेत्ता वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएति, जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, जोयं अणुपरियट्टित्ता विजेति, विजहति, विप्पजहति, विगयजोगी यावि भवइ

ता जता णं सूरं गतिसमावण्णं णक्खत्ते (गहे) गतिसमावण्णे पुरच्छिमाते भागाते समासादेति, पुरच्छिमाते भागाते समासादेत्ता सूरेण सद्धिं जोयं जुंजति, जुंजित्ता जोयं अणुपरियट्टति, अणुपरियट्टित्ता —जाव—विजेति, विगतजोगी यावि भवति ।

—सूर्य० सूत्र ८४ पृ. २४८

[१७][१] प्र०—जब चन्द्र को गतिसमापन्न विवक्षित करके सूर्य को गतिसमापन्न विवक्षित किया जाता है अर्थात् प्रति मुहूर्त्त चन्द्रगति की अपेक्षा से सूर्यगति का विचार किया जाता है तब सूर्य एक मुहूर्त्त के गतिपरिमाण से कितने भागों को आक्रान्त करता है ?

उ०—बासठ भागों को आक्रान्त करता है ।

[२] प्र०—जब चन्द्र को गतिसमापन्न विवक्षित करके नक्षत्र को गतिसमापन्न विवक्षित किया जाता है तब वह एक मुहूर्त्त के गतिपरिमाण से कितने भागों को आक्रान्त करता है ?

उ०—सड़सठ भागों को आक्रान्त करता है ।

[३] प्र०—जब सूर्य को गतिसमापन्न विवक्षित करके नक्षत्र को गतिसमापन्न विवक्षित किया जाता है तब वह गतिपरिमाण से कितने भागों को आक्रान्त करता है ?

उ०—पांच भागों को आक्रान्त करता है ।

जब चन्द्र को गतिसमापन्न विवक्षित करके अभिजित नक्षत्र को गतिसमापन्न विवक्षित किया जाता है तब वह पूर्वी भाग से चन्द्रमा को प्राप्त करता है । प्राप्त करके $६\frac{२३}{६७}$ मुहूर्त्त तक चन्द्रमा के साथ योगयुक्त रहता है, योगयुक्त रहकर योग को बदल देता है और योग का त्याग कर देता है, योगरहित हो जाता है ।

जब चन्द्र को गतिसमापन्न विवक्षित करके श्रवण नक्षत्र गतिसमापन्न विवक्षित किया जाता है, तब वह पूर्वी भाग से चन्द्रमा को प्राप्त करता है, पूर्वी भाग से प्राप्त करके तीस मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहता है, तत्पश्चात् योग को बदल देता है और योग को त्याग करके योगरहित हो जाता है ।

इसी प्रकार इन्हीं शब्दों में तीस मुहूर्त्त और पैंतालीस मुहूर्त्त कहना चाहिए—यावत्—उत्तराषाढा ।

जब चन्द्र को गतिसमापन्न विवक्षित करके ग्रह की गति का विचार किया जाता है तब वह उसे पूर्वी भाग से प्राप्त करता है, पूर्वी भाग से प्राप्त करके चन्द्रमा के साथ योग करता है, तत्पश्चात् उस योग को बदल देता है, बदल कर त्याग देता है और योगरहित हो जाता है ।

जब सूर्य को गतिसमापन्न विवक्षित करके अभिजित नक्षत्र के गतिपरिमाण का विचार किया जाता है तब वह अभिजित नक्षत्र सूर्य को पूर्वीभाग से प्राप्त करता है। पूर्वीभाग से प्राप्त करके चार अहोरात्र और छह मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योग करता है, तत्पश्चात् योग को बदल देता है और त्याग देता है तथा योगरहित हो जाता है।

इस प्रकार छह अहोरात्र और इक्कीस मुहूर्त्त, तेरह अहोरात्र और बारह मुहूर्त्त, बीस अहोरात्र और तीन मुहूर्त्त (क्रम से) सब कह लेने चाहिए—यावत्—उत्तराषाढा।

चन्द्र का नक्षत्रों से योग

[१८] तत्थ खलु इमे दसविधे जोए पण्णत्ते, तंजहा—
वसभाणुजोए १, वेणुयाणुजोए २, मंचे ३, मंचाइमंचे ४, छत्ते ५, छत्तातिच्छत्ते ६, जुअणद्धे ७, घणसंमद्दे ८, पीणिते ९, मण्डूकप्पुते १०, णामं दसमे।

[१] प्र०—एतासि णं पंचण्हं संवच्छराणं छत्ताइच्छत्तं जोयं चंदे [illegible] स देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईण-पडिणीआयताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मण्डलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता, दाहिण-पुरच्छिमिल्लंसि चउभागमण्डलंसि सत्तावीसं भागे उवादिणावेत्ता,
अट्ठावीसतिभागं वीसधा छेत्ता, अट्ठारसभागे उवादिणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहिं कलाहिं दाहिणपुरच्छिमिल्लं चउब्भागमंडलं असंपत्ते
एत्थ णं से चंदे छत्तातिच्छत्तं जोयं जोएति,
उप्पिं चंदो, मज्झे णक्खत्ते, हेट्ठा आइच्चे।

[२] प्र०—तं समयं च णं चंदे केण णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता चित्ताहिं चरमसमए।

—सूर्य. सूत्र. ७८ पृ. २३३
—चन्द्र. सूत्र ७८

[१८] दस प्रकार के ये योग कहे गए है—(१) वृषभानुजात (२) वेणुकानुजात (३) मंच (४) मंचातिमंच (५) छत्र (६) छत्रातिछत्र (७) युगनद्ध (८) घनसम्मर्द (९) प्रीणित और (१०) मंडूकप्लुत।

[१] प्र०—इन पांच संवत्सरों में से चन्द्रमा छत्रातिछत्र योग से किस देश में युक्त होता है ?

उ०—जम्बूद्वीप के ऊपर पूर्व-पश्चिम लम्बी और उत्तर-दक्षिण लम्बी जीवा से एक मण्डल के १२४ भाग किए जाएँ। [उसके चार भाग हो जाते है—एक भाग उत्तर-पूर्व में, एक दक्षिण-पूर्व में एक दक्षिण-पश्चिम में, एक पश्चिम-उत्तर में।] इनमें से दक्षिण-पूर्व के चतुर्भाग मंडल के २७ भाग निकाल कर २८ वें भाग के २० भाग किए जाएँ। इनमे से १८ भाग निकाल कर (१९ वें भाग के) तीन भाग किये जाएँ। इनके दो भागों-कलाओं से दक्षिण-पूर्व के चतुर्भाग मण्डल को असंप्राप्त होता हुआ चन्द्र छत्रातिछत्र योग से युक्त होता है (इस समय में) ऊपर चन्द्र, मध्य में नक्षत्र एव नीचे सूर्य होता है।

[२] प्र०—उस समय चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह चित्रा के साथ (चित्रा के) चरम समय में (योग करता है)।

[१९] तत्थ खलु इमाओ पंच वासिकीओ, पंच हेमंताओ आउट्टिओ पण्णत्ताओ।

[१] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं वासिकीं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता अभीयिणा, अभीयिस्स पढमसमएणं,

[२] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पूसेणं, पूस्स एगूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा ।

[३] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं बोच्चं वासिक्कं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता संठाणाहिं संठाणाणं एक्कारस मुहुत्ते ऊतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तेपण्णं चुण्णिया भागा सेसा ।

[४] प्र०—तं समयं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पूसेणं, पूसस्स णं तं चेव जं पढमया ।

[५] प्र०—एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं वासिक्कं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?

उ०—ता विसाहाहिं, विसाहाणं तेरस मुहुत्ता चउप्पण्णं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, चत्तालीसं चुण्णिया भागा सेसा ।

[६] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पूसेणं, पूसस्स तं चेव ।

[७] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थं वासिक्कं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता रेवतीहिं, रेवतीणं पणवीसं मुहुत्ता (बुवत्तीसं च) बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, बत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा ।

[८] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पूसेणं, पूसस्स तं चेव ।

[९] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराण पंचमं वासिक्किं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पुव्वाहिं फग्गुणीहिं, पुव्वाफग्गुणीणं बारस मुहुत्ता सत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तेरस चुण्णिया भागा सेसा ।

[१०] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पूसेणं, पूसस्स तं चेव ।

—सूर्य. सूत्र ७६ पृ. २१९–२२०
—चन्द्र. सूत्र ७६

[१६] यहां ये पांच वर्षाकाल संबंधी एवं पांच हेमन्तकाल संबंधी आवृत्तियां कही गई हैं ।

[१] प्र०—उक्त पांच संवत्सरों में वर्षा संबंधी प्रथम आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह अभिजित के साथ, अभिजित के प्रथम समय में (योग करता है) ।

[२] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह पुष्य के १९ + $\frac{43}{62}$ + ($\frac{1}{62} \times \frac{1}{67} \times \frac{33}{1}$) मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है) ।

[३] प्र०—इन पांच संवत्सरों में वर्षा संबंधी द्वितीय आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह संस्थानों के साथ, संस्थानों के ११ + $\frac{46}{62}$ + ($\frac{1}{62} \times \frac{1}{67} \times \frac{53}{1}$) मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है ।)

[४] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह पुष्य के साथ प्रथम आवृत्ति के समान ही (योग करता है।)

[५] प्र०—इन पांच संवत्सरों में वर्षा संबंधी तृतीय आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह विशाखाओं के साथ, विशाखा के $१३ + \frac{५४}{६२} + (\frac{१}{६२} \times \frac{१}{६७} \times \frac{४०}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है।)

[६] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह पुष्य के साथ उसी प्रकार (योग करता है।)

[७] प्र०—इन पांच संवत्सरों में वर्षा संबंधी चतुर्थ आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह रेवती के साथ, रेवती के $२५ + \frac{३२}{६२} + (\frac{१}{६२} \times \frac{१}{६७} \times \frac{२६}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है।)

[८] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह उसी प्रकार पुष्य के साथ (योग करता है।)

[९] प्र०—इन पांच संवत्सरो में वर्षा सबंधी पचम आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह पूर्वाफाल्गुनी के साथ पूर्वाफाल्गुनी के $१२ + \frac{४७}{६२} + (\frac{१}{६२} \times \frac{१}{६७} \times \frac{१३}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है।)

[१०] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह उसी प्रकार पुष्य के साथ (योग करता है।)

[२०][१] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं हेमंति आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता हत्थेणं, हत्थस्स णं पंच मुहुत्ता पण्णासं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, सट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा।

[२] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए।

[३] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं हेमंति आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता सतभिसयाहिं, सतभिसयाइं दुन्नि मुहुत्ता अट्ठावीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, छत्तालीसं चुण्णिया भागा सेसा।

[४] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए।

[५] प्र०—तेसिं णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं हेमंति आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पूसेणं, पूसस्स एकूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा।

[६] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए।

[७] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थिए हेमंति आउट्टि चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता मूलेणं, मूलस्स छ मुहुत्ता अट्ठावन्नं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, बीसं चुण्णिया भागा सेसा ।

[८] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए ।

[९] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमं हेमंति आउट्टि चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—कत्तियाहिं, कत्तियाणं अट्ठारस मुहुत्ता छत्तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, छ चुण्णिया भागा सेसा ।

[१०] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरिमसमए ।

—सूर्य. सूत्र. ७७ पृ. २२८–२९
—चन्द्र. ,, ,,

[२०][१] प्र०—इन पांच संवत्सरों में हेमन्त सम्बन्धी प्रथम आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह हस्त नक्षत्र के साथ, हस्त नक्षत्र के $५+\frac{०}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६}{१}^{०})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है) ।

[२] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह उत्तराषाढा के साथ उत्तराषाढा के चरम समय में (योग करता है) ।

[३] प्र०—इन पांच संवत्सरों में हेमन्त सम्बन्धी द्वितीय आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह शतभिषा के साथ, शतभिषा के $२+\frac{२५}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{४६}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है) ।

[४] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह उत्तराषाढा के साथ उत्तराषाढा के चरम समय में (योग करता है) ।

[५] प्र०—इन पांच संवत्सरों में हेमन्त सम्बन्धी तृतीय आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह पुष्य के साथ, पुष्य के $१९+\frac{४३}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{३३}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है) ।

[६] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह उत्तराषाढा के साथ उत्तरषाढा के चरम समय में (योग करता है) ।

[७] प्र०—इन पांच संवत्सरों में हेमन्त सम्बन्धी चतुर्थ आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह मूल नक्षत्र के साथ, मूल नक्षत्र के $६+\frac{५५}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{३}{१}^{०})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है) ।

[८] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह उत्तराषाढा के साथ उत्तराषाढा के चरम समय में (योग करता है) ।

[९] प्र०—इन पांच संवत्सरों में हेमन्त सम्बन्धी पंचम आवृत्ति में चन्द्र किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह कृत्तिका के साथ कृत्तिका के $१८ \times \frac{३५}{६२} + (\frac{१}{६२} \times \frac{१}{६७} \times \frac{१}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहने पर (योग करता है)।

[१०] प्र०—उस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?

उ०—वह उत्तराषाढा के साथ उत्तराषाढा के चरम समय में (योग करता है)।

पूर्णिमा में चन्द्र का नक्षत्रों के साथ योग

[१८][१] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता धणिट्ठाहिं, धणिट्ठाणं तिण्णि मुहुत्ता एकूणवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, पण्णट्ठि चुण्णिया भागा सेसा।

[२] प्र०—तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पुव्वाफग्गुणीहिं, पुव्वाफग्गुणीणं अट्ठावीसे मुहुत्ता अट्ठतीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, दुबत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा।

[३] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं पोट्ठवताहिं, उत्तराणं पोट्ठवताण सत्तावीसं मुहुत्ता चोद्दस य बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, बावट्ठि चुण्णिया भागा सेसा।

[४] प्र०—तं समयं च णं सूरे केण णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं फग्गुणीहिं, उत्तराफग्गुणीणं सत्त मुहुत्ता तेत्तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, एक्कतीसं चुण्णिया भागा सेसा।

[५] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता अस्सिणीहिं, अस्सिणीणं इक्कवीसं मुहुत्ता णव य एगट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तेवट्ठि चुण्णिया भागा सेसा।

[६] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता चित्ताहिं,चित्ताणं एक्को मुहुत्तो अट्ठावीसं च बावट्ठि भागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता तीसं चुण्णिया भागा सेसा।

[७] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेण जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं च आसाढाणं छवुवीसं मुहुत्ता छवुवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठि भागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता,
चउपण्णं चुण्णिया भागा सेसा।

[८] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स सोलसमुहुत्ता अट्ठ य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, वीसं चुण्णिया भागा सेसा।

[९] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए,

[१०] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पुस्सेणं, पुस्सस्स एकूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, तेतीसं चुण्णिया भागा सेसा।

—सूर्य० सूत्र ६७ पृ० १८५-८६
—चन्द्र ,, ,,

[१८][१] प्र०—इन पांच संवत्सरों मे प्रथम पूर्णिमा को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—धनिष्ठा से (योग करता है)। इस समय धनिष्ठा $३\frac{१६}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६५}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहता है।

[२] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—पूर्वाफाल्गुनी से (योग करता है)। इस समय पूर्वाफाल्गुनी के $२८\frac{३५}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{३२}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते है।

[३] प्र०—इन पांच सवत्सरों मे द्वितीय पूर्णिमा को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तरभाद्रपदा से (योग करता है)। इस समय उत्तरभाद्रपदा के $२७\frac{१४}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६४}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं।

[४] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तरफाल्गुनी से (योग करता है)। इस समय उत्तरफाल्गुनी के $७\frac{३३}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{३१}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते है।

[५] प्र०—इन पांच संवत्सरों में तृतीय पूर्णिमा को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—अश्विनी से (योग करता है)। इस समय अश्विनी के $२१\frac{६}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६३}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते है।

[६] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—चित्रा से (योग करता है)। इस समय चित्रा के $१\frac{२५}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{३०}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते है।

[७] प्र०—इन पांच संवत्सरों में बारहवी पूर्णिमा को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तराषाढा से (योग करता है)। इस समय उत्तराषाढा के $२६\frac{२६}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{५४}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते है।

[८] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—पुनर्वसु से (योग करता है)। इस समय पुनर्वसु के $१६\frac{५}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६२}\times\frac{२०}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं।

[९] प्र०—इन पांच संवत्सरो में अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तराषाढ़ा से (योग करता है)। इस समय उत्तराषाढा का अन्तिम समय होता है।

[१०] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—पुष्य से (योग करता है)। इस समय पुष्य के $१९\frac{४३}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{३७}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं।

अमावस्या में चन्द्र का नक्षत्रों के साथ योग

[१९][१] प्र०—एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता अस्सेसाहि, अस्सेसाणं एक्के मुहुत्ते चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, बावट्ठिं चुण्णिया सेसा।

[२] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता अस्सेसाहिं चेव, अस्सेसाणं एक्को मुहुत्तो चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं सत्तट्ठिधा छेत्ता, बावट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा ।

[३] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं फग्गुणीहिं, उत्तराणं फग्गुणीणं चत्तालीसं मुहुत्ता पणतीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, पण्णट्ठिं चुण्णिया भागा सेसा ।

[४] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता उत्तराहिं चेव फग्गुणीहिं, उत्तराणं फग्गुणीणं जहेव चंदस्स ।

[५] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता हत्थेणं, हत्थस्स चत्तारि मुहुत्ता तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, बावट्ठि चुण्णिया भागा सेसा ।

[६] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता हत्थेणं चेव, हत्थस्स जहा चंदस्स ।

[७] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—अद्दाहिं, अद्दाणं चत्तारि मुहुत्ता दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, चउपण्णं चुण्णिया भागा सेसा ।

[८] प्र०—तं समयं च णं सूरे केण णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता अद्दाहिं चेव, अद्दाणं जहा चंदस्स ।

[९] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स बावीसं मुहुत्ता बायालीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स सेसा ।

[१०] प्र०—तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएति ?

उ०—ता पुणव्वसुणा चेव-जाव-पुणव्वसुस्स णं जहा चंदस्स ।

—सूर्य० सूत्र ६८ पृ० १९०-९१

—चन्द्र० ,, ,,

[१९][१] प्र०—इन पांच संवत्सरों में प्रथम अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—आश्लेषा से (योग करता है) । इस समय आश्लेषा के $१\frac{४०}{६२} + (\frac{१}{६२} \times \frac{१}{६७} \times \frac{६६}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं ।

[२] प्र०—इस सयय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—आश्लेषा से (योग करता है) । इस समय आश्लेषा के $१\frac{४०}{६२} + (\frac{१}{६२} \times \frac{१}{६७} \times \frac{६६}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं ।

[३] प्र०—इन पांचों संवत्सरों में द्वितीय अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तर फाल्गुनी से (योग करता है) । इस समय उत्तरफाल्गुनी के $४०\frac{३५}{६२} + (\frac{१}{६२} \times \frac{१}{६७} \times \frac{६}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं ।

[४] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?

उ०—उत्तरफाल्गुनी से (योग करता है) । इस समय उत्तरफाल्गुनी के चन्द्र के समान ही (मुहूर्त्त शेष रहते हैं) ।

[५] प्र०—इन पांच संवत्सरों में तृतीय अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—हस्त नक्षत्र से (योग करता है) । इस समय हस्त के $४\frac{३०}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६४}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं।

[६] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—हस्त से ही (योग करता है) । इस समय हस्त के चन्द्र के ही समान (मुहूर्त्त शेष रहते हैं) ।

[७] प्र०—इन पांच संवत्सरों में बारहवी अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—आर्द्रा से (योग करता है) । इस समय आर्द्रा के $४\frac{१०}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६४}{१})$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं ।

[८] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—आर्द्रा से ही (योग करता है) । इस समय आर्द्रा के चन्द्र के समान ही (मुहूर्त्त शेष रहते है) ।

[९] प्र०—इन पांच संवत्सरों में अन्तिम बासठवी अमावस्या को चन्द्र किस नक्षत्र से योग करता है ?
उ०—पुनर्वसु से (योग करता है) । इस समय पुनर्वसु के $२२\frac{४३}{६२}$ मुहूर्त्त शेष रहते हैं ।

[१०] प्र०—इस समय सूर्य किस नक्षत्र के साथ योग करता है ?
उ०—पुनर्वसु से ही (योग करता है) । इस समय पुनर्वसु के चन्द्र के ही समान (मुहूर्त्त शेष रहते हैं) ।

[२०] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति जंसि देसंसि,
से णं इमाणि अट्ठ एकूणवीसाणि मुहुत्तसताइं चउवीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, छावट्ठि चुण्णिया भागे उवायिणावेत्ता,
पुणरवि से चंदे अण्णेणं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति अण्णंसि देसंसि ।

[२१] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति जंसि देसंसि,
से णं इमाइं सोलस अट्ठतीसे मुहुत्तसताइं अउणापण्णं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिधा छेत्ता, पण्णट्ठि चुण्णिया भागे उवायिणावेत्ता,
पुणरवि से णं चंदे तेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति अण्णंसि देसंसि ।

[२२] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति जंसि देसंसि,
से णं इमाइं चउप्पण्णमुहुत्तसहस्साइं णव य मुहुत्तसताइं उवादिणावित्ता,
पुणरवि से चंदे अण्णेणं तारिसएणं जोयं जोएति तंसि देसंसि ।

[२३] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएति, जंसि देसंसि,
से णं इमाइं एगं लक्खं नव य सहस्से अट्ठ य मुहुत्तसए उवायिणावित्ता पुणरवि से चंदे तेण णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि ।

[२४] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोयं जोएति जंसि देसंसि,
से णं इमाइं तिण्णि छावट्ठाइं राइंदियसताइं उवादिणावेत्ता,
पुणरवि से सूरिए अण्णेणं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति तंसि देसंसि ।

[२५] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोयं जोएति जंसि देसंसि,
से णं इमाइं सत्तावुतीसं राइंदियसताइं उवाइणावेत्ता,
पुणरवि से णं सूरे तेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति तंसि देसंसि ।

[२६] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोयं जोएति जंसि देसंसि,
से णं इमाइं अट्ठारस बीसाइं राइंदियसताइं उवादिणावेत्ता,
पुणरवि सूरे अण्णेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति तंसि देसंसि ।

[२७] ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं सूरे जोयं जोएति जंसि देसंसि,
तेणं इमाइं छत्तीसं सट्ठाइं राइंदियसयाइं उवाइणावित्ता,
पुणरवि से सूरे तेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएति तंसि देसंसि ।

—सूर्य० सूत्र ६६ पृ० १६४
—चन्द्र० ,, ,,

[२०] जिस नक्षत्र के साथ आज (किसी विवक्षित दिन में) चन्द्र का जिस देश में योग होता है, उस चन्द्र का $८१\frac{३४}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६६}{६१})$ मुहूर्त्त व्यतीत होने पर पुनः उसी के समान (नाम वाले) अन्य नक्षत्र के साथ अन्य देश में योग होता है ।

[२१] जिस नक्षत्र के साथ आज चन्द्र का जिस देश में योग होता है, उस चन्द्र का $१६३८\frac{४६}{६२}+(\frac{१}{६२}\times\frac{१}{६७}\times\frac{६५}{६१})$ मुहूर्त्त व्यतीत होने पर पुनः उसी नक्षत्र के साथ अन्य देश मे योग होता है ।

[२२] आज जिस नक्षत्र के साथ चन्द्र का जिस देश में योग होता है, उस चन्द्र का ५४६०० मुहूर्त्त व्यतीत होने पर पुनः उसी के समान (नाम के) अन्य (नक्षत्र) के साथ उसी देश में योग होता है ।

[२३] आज चन्द्रमा जिस नक्षत्र के साथ जिस देश में योग करता है वही एक लाख, नौ हजार, आठ सौ मुहूर्त्त व्यतीत होने पर पुनः उस नक्षत्र के साथ उस देश में योगयुक्त होता है ।

[२४] आज जिस नक्षत्र के साथ सूर्य जिस देश में योगयुक्त होता है, वही सूर्य ३६६ अहोरात्र व्यतीत होने पर पुनः उसके समान (नाम वाले) अन्य नक्षत्र के साथ उसी देश में योगयुक्त होता है ।

[२५] आज जिस नक्षत्र के साथ सूर्य जिस देश में योगयुक्त होता है, वही सूर्य ७३२ अहोरात्र व्यतीत होने पर पुनः उसी नक्षत्र के साथ उसी देश में योगयुक्त होता है ।

[२६] आज जिस नक्षत्र के साथ सूर्य जिस देश में योगयुक्त होता है, वही सूर्य १८३० रात्रि-दिन व्यतीत होने पर पुनः (उसी के समान) अन्य नक्षत्र के साथ उसी देश में योगयुक्त होता है ।

[२७] आज सूर्य जिस नक्षत्र के साथ जिस देश में योग करता है वही सूर्य ३६६० रात्रि-दिन व्यतीत होने पर उसी नक्षत्र के साथ उसी देश में योगयुक्त होता है ।

पूर्णिमा में चन्द्रयोग

[२८] तत्थ खलु इमाओ बावट्ठि पुण्णिमासिणीओ, बावट्ठि अमावासाओ पण्णत्ताओ—

[१] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?
उ०—ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमं बावट्ठि पुण्णिमासिणिं जोएति,
ताए तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाणातो मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता
दुबत्तीसं भागे उवातिणावित्ता एत्थ णं से चंदे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएति ।

[२] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?
उ०—ता जंसि णं देसंसि चंदे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएति,
ता तेणं पुण्णिमासिणिट्ठाणातो मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दुबत्तीसं भागे उवाइणावेत्ता
एत्थ णं से चंदे दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएति ।

[३] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि चंदो दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएति,
ताते पुण्णिमासिणीठाणातो मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता बुवत्तीसे भागे उवाइणावेत्ता एत्थ णं तच्चं चंदे पुण्णिमासिणिं जोएति ।

[४] प्र०—ता एतेणं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि चंदे तच्चं पुण्णिमासिणिं जोएति,
ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता दोण्णि अट्ठासीते भागसते उवायिणावेत्ता एत्थ णं चंदे दुवालसमं पुण्णिमासिणिं जोएति ।
एवं खलु एतेणुवाएणं ताते २ पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउवीसेणं सतेणं छेत्ता बुवत्तीसं भागे उवातिणावेत्ता तंसि २ देसंसि तं तं पुण्णिमासिणिं चंदे जोएति ।

[५] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पाईण-पडीणायताए उदीण-दाहिणायताए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता दाहिणिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि सत्तावीसं चउभागे उवायणावेत्ता अट्ठावीसतिभागे वीसहा छेत्ता अट्ठारसभागे उवातिणावेत्ता तिहिं भागेहिं दोहि य कलाहिं पच्चत्थिमिल्लं चउब्भाग-मंडलं असंपत्ते,
एत्थ णं चंदे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएति ।

—सूर्य. सूत्र ६३ पृ. १८०
—चन्द्र. ,, ,,

[२८][१] प्र०—(एक युग मे) ६२ पूर्णिमाएं एवं ६२ अमावस्याएं होती है । इन पाच संवत्सरों मे प्रथम पूर्णिमा को चन्द्र किस देश (स्थान) मे योग करता है ?

उ०—जिस देश में चन्द्र अन्तिम ६२ वी पूर्णिमा को योग करता है उस पूर्णिमास्थान से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ६२ वे भाग में पहुंच कर चन्द्र प्रथम पूर्णिमा को योग करता है ।

[२] प्र०—इन पांच संवत्सरों में द्वितीय पूर्णिमा को चन्द्र किस देश में योग करता है ।

उ०—जिस देश में चन्द्र प्रथम पूर्णिमा को योग करता है उस पूर्णिमास्थान से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ३२ वें भाग में पहुंच कर चन्द्र द्वितीय पूर्णिमा को योग करता है ।

[३] प्र०—इन पांच संवत्सरों में तृतीय पूर्णिमा को चन्द्र किस देश में योग करता है ?

उ०—जिस देश में चन्द्र द्वितीय पूर्णिमा को योग करता है उस पूर्णिमास्थान से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ३२ वें भाग में पहुंच कर चन्द्र तृतीय पूर्णिमा को योग करता है ।

[४] प्र०—इन पांच संवत्सरों में बारहवीं पूर्णिमा को चन्द्र जिस देश में योग करता है ?

उ०—जिस देश में चन्द्र तृतीय पूर्णिमा को योग करता है उस पूर्णिमास्थान से मण्डल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले (३२ × ९ =) २८८ वें भाग में पहुंच कर चन्द्र बारहवीं पूर्णिमा को योग करता है ।

इस प्रकार इसी क्रम से तत्–तत् पूर्णिमास्थान से मण्डल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ३२ वें भाग में पहुंच कर चन्द्र तत्–तत् देश में तत्–तत् पूर्णिमा को योग करता है ।

[५] प्र०—इन पाँच संवत्सरों में अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को चन्द्र किस देश में योग करता है ?

उ०—जम्बूद्वीप के पूर्व-पश्चिम में लंबी एवं उत्तर-दक्षिण में लम्बी जीवा से मण्डल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाला दक्षिण चतुर्भाग मण्डल का २७ वां भाग पूर्ण कर २८ वें भाग के कुल २० भागों में से १८ वें भाग को समाप्त कर १९ वें भाग के तीन भागों तथा दो कलाओं से पश्चिम के चतुर्भाग मण्डल को अमम्प्राप्त कर यहीं चन्द्र अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को योग करता है।

पूर्णिमा में सूर्ययोग

[२९][१] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएति,
ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणातो मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता चउणवतिं भागे उवातिणावेत्ता,
एत्थ णं सूरिए पढमं पुण्णिमासिणिं जोएइ।

[२] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे पढमं पुण्णिमासिणिं जोएइ,
ताए पुण्णिमासिणीठाणाओ मंडलं चउवीसं सएण छेत्ता चउणवइभागे उवाइणावित्ता,
एत्थ णं से सूरे दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ।

[३] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएइ ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि सूरे दोच्चं पुण्णिमासिणिं जोएति,
ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं छेत्ता, चउणवतिभागे उवातिणावेत्ता, एत्थ णं सूरे तच्चं पुण्णिमासिणिं जोएति।

[४] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंसि देसंसि सूरे तच्चं पुण्णिमासिणिं जोएइ ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता, अट्ठछत्ताले भागसते उवाइणावेत्ता एत्थ णं से सूरे दुवालसमं पुण्णिमासिणिं जोएति।
एवं खलु एतेणुवाएणं ताते २ पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता,
चउणवतिं २ भागे उवातिणावेत्ता, तंसि २ णं देसंसि तं त पुण्णिमासिणिं सूरे जोएति।

५] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणिं सूरे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंबुद्दीवस्स णं पाईण-पडीणायताए उदीण-दाहिणायताए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता, पुरच्छिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि सत्तावीसं भागे उवातिणावेत्ता, अट्ठावीसतिभागं वीसघा छेत्ता, अट्ठारसभागे उवादिणावेत्ता, तिहिं भागेहिं दोहि य कलाहिं दाहिणिल्लं चउभागमंडलं असंपत्ते, एत्थ णं सूरे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमं जोएति।

—सूर्य० सूत्र ६४ पृ.
—चन्द्र० ,, ,, १८२

[२९][१] प्र०—इन पांच संवत्सरों में प्रथम पूर्णिमा के दिन सूर्य किस देश मे योग करता है ?

उ०—जिस देश में सूर्य अन्तिम ६२ वीं पूर्णिमा के दिन योग करता है, उस पूर्णिमास्थान से मडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ९४ वें भाग मे पहुंच कर यही सूर्य प्रथम पूर्णिमा के दिन योग करता है।

[२] प्र०—इन पांच संवत्सरों में द्वितीय पूर्णिमा के दिन सूर्य किस देश से योग करता है ?

उ०—जिस देश में सूर्य प्रथम पूर्णिमा के दिन योग करता है, उस पूर्णिमास्थान से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ९४ वें भाग मे पहुंच कर यही सूर्य द्वितीय पूर्णिमा के दिन योग करता है।

[३] प्र०—इन पांच संवत्सरों में तृतीय पूर्णिमा के दिन सूर्य किस देश में योग करता है ?

उ०—जिस देश में सूर्य द्वितीय पूर्णिमा के दिन योग करता है, उस पूर्णिमास्थान से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ९४ वें भाग में पहुंच कर यहीं सूर्य तृतीय पूर्णिमा के दिन योग करता है।

[४] प्र०—इन पांच संवत्सरों में बारहवीं पूर्णिमा के दिन सूर्य किस देश में योग करता है ?

उ०—(जिस देश में सूर्य तृतीय पूर्णिमा के दिन योग करता है) उस पूर्णिमास्थान से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले (९४×९=) ८४६ वें भाग में पहुंच कर यहीं सूर्य बारहवीं पूर्णिमा के दिन योग करता है।

इस प्रकार इसी क्रम से तत्–तत् पूर्णिमास्थान से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ९४ वें भाग में पहुंच कर तत्–तत् देश में तत्–तत् पूर्णिमा के दिन सूर्य योग करता है।

[५] प्र०—इन पांच संवत्सरों में अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा के दिन सूर्य किस देश में योग करता है ?

जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम में लंबी एवं उत्तर-दक्षिण में लंबी जीवा से मंडल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाला पूर्वी चतुर्भाग मंडल का २७ वां भाग पूर्ण कर २८ वें भाग के कुल २० भागों में से १८ वें भाग को समाप्त कर १९ वें भाग के ३ भागों व दो कलाओं से दक्षिणी चतुर्भाग मडल को असंप्राप्त कर यही सूर्य अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा के दिन योग करता है।

अमावस्या में चन्द्रयोग

[३०][१] प्र०—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?

उ०—ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमबासट्ठिं अमावासं जोएति,
ताते अमावासट्ठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता, बुवत्तीसं भागे उवादिणावेत्ता,
एत्थ णं से चंदे पढमं अमावासं जोएति।
एवं जेणेव अभिलावेणं चंदस्स पुण्णिमासिणीओ,
तेणेव अभिलावेणं अमावासाओ भाणितव्वाओ, बीइया, ततिया, बुवालसती।
एवं खलु एतेणुवाएणं ताते २ अमावासाठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता,
बुवीसं २ भागे उवादिणावेत्ता, तंसि २ देसंसि तं तं अमावासं चंदेण जोएति।

[२] प्र०—ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएति ?
ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमं बासट्ठिं पुण्णिमासिणिं जोएति,
ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाए मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता सोलसभागे उक्कोवइत्ता,
एत्थ णं से चंदे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएति।

[३०][१] प्र०—इन पांच संवत्सरों में प्रथम अमावस्या को चन्द्र किस देश में योग करता है ?

उ०—जिस देश में चन्द्र अन्तिम बासठवीं अमावस को योग करता है, उस अमावस-स्थान से मण्डल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ३२ वें भाग में पहुंच कर यहीं चन्द्र प्रथम अमावस को योग करता है।

इस प्रकार जिस ढंग से चन्द्र की पूर्णिमाओं का कथन किया गया है, उसी ढंग से चन्द्र की द्वितीय, तृतीय एवं बारहवीं–इन तीनों अमावस्याओं का भी कथन कर लेना चाहिए।

इस प्रकार इसी क्रम से तत्–तत् अमावस्यास्थान से मण्डल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ३२ वें भाग में पहुंच कर तत्–तत् देश में तत्–तत् अमावस को चन्द्र योग करता है।

[२] प्र०—इन पाँच संवत्सरों में अन्तिम अमावस को चन्द्र किस देश में योग करता है ?

उ०—जिस देश में चन्द्र अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा को योग करता है, उस पूर्णिमास्थान से मण्डल के १२४ भागों में से १६ भाग पीछे जाकर यही चन्द्र अन्तिम बासठवी अमावस को योग करता है।

अमावस्या में सूर्ययोग

[३१][१] प्र०—**ता एतेसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं (अमावासं) सूरे कंसि देसंसि जोएति ?**

उ०— ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएति,
ताते अमावासट्ठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता चउणउतिभागे उवायिणावेत्ता,
एत्थ णं से सूरे पढमं अमावासं जोएति,
एवं जेणेव अभिलावेणं सूरियस्स पुण्णिमासिणीओ, तेणेव अमावासाओ वि, णंजहा—
बिदिया, तइया, दुवालसमी।
एवं खलु एतेणुवाएणं ताते अमावासट्ठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता,
चउणउतिं २ भागे उवायिणावेत्ता, ता जंसि णं देसंसि सूरे चरिमं बावट्ठिं पुण्णिमासिणं जोएति,
ताते पुण्णिमासिणिट्ठाणाते मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता, सत्तालीसं भागे उक्कोवइत्ता,
एत्थ णं से सूरे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएति ।

—सूर्य. सूत्र ६६ पृ० १८२
—चन्द्र ,, ,, ,,

[३२][१] प्र०—इन पाच सवत्सरों मे प्रथम अमावस्या के दिन सूर्य किस देश मे योग करता है ?

उ०—जिस देश मे सूर्य अन्तिम बासठवी अमावस्या के दिन योग करता है, उस अमावस्या-स्थान से मण्डल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ९४ वें भाग मे पहुंच कर यही सूर्य प्रथम अमावस्या के दिन योग करता है।

इस प्रकार जिस ढंग मे सूर्य की पूर्णिमाओं का कथन किया गया है, उसी ढंग से अमावस्याओं का भी कथन कर लेना चाहिए, यथा-दूसरी, तीसरी और बारहवी।

इस प्रकार इसी क्रम से तत्—तत् अमावस्या-स्थान से मण्डल के १२४ भाग करने पर प्राप्त होने वाले ९४ वें भाग में पहुंच कर (चन्द्रमा योग करता है)।

जिस देश में सूर्य अन्तिम बासठवीं पूर्णिमा के दिन योग करता है, उस पूर्णिमास्थान से मण्डल के १२४ भागों में से ४७ भाग पीछे जाकर यहीं सूर्य अन्तिम बासठवीं अमावस्या को योग करता है।

सूर्यवर्णन

सूर्यदर्शन

[१] [१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति,
मज्झंतिअमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति,
अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति, ?
उ०—हंता, गोयमा ! तं चेव—जाव—दीसंति ।

[२] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि अ, मज्झंतिअमुहुत्तंसि अ, अत्थमणमुहुत्तंसि अ सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं ?

उ०—हंता, तं चेव—जाव—उच्चत्तेणं ।

[३] प्र०—जइ णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि अ, मज्झंतिअमुहुत्तंसि अ, अत्थमणमुहुत्तंसि अ सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं,
कम्हा णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति ?

उ०—गोयमा ! लेसापडिघाएणं उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति इति,
लेसाहितावेणं मज्झंतिअमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति,
लेसापडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति,
एवं खलु गोयमा ! तं चेव—जाव—दीसंति[1] ।

—जम्बू. सू. १३६ पृ. ४५८

१–प्र०—जावइयाओ णं भंते ! उवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वं आगच्छति, अत्थमंते वि य णं सूरिए तावतियाओ चेव उवासंतराओ चक्खुप्फासं हव्वं आगच्छति ?

उ०—हंता, गोयमा ! जावइयाओ णं उवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं० ।
अत्थमंते वि सूरिए—जाव—हव्वं आगच्छति ।

प्र०—जावइया णं भंते ! खित्तं उदयंते सूरिए आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ,
अत्थमंते वि य णं सूरिए तावइयं चेव खित्तं आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ, ?

उ०—हंता, गोयमा ! जावतियं णं खेत्तं—जाव—पभासेइ ।

—विवा० भाग १ श० १ उ० ६ प्र० १९७–१९८, पृ० १६१

प्र०—भगवन् ! जितने अवकाशान्तर से—आकाश के व्यवधान से उदित होता हुआ सूर्य दृष्टिगोचर होता है उतने ही अवकाशान्तर से क्या अस्त होता हुआ सूर्य भी दृष्टिगोचर होता है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जितने अवकाशान्तर से उदित होता हुआ सूर्य दृष्टिगोचर होता है उतने ही अवकाशान्तर से अस्त होता हुआ सूर्य भी दृष्टिगोचर होता है ।

प्र०—भगवन् ! जितने क्षेत्र को उदित होता हुआ सूर्य अपने आतप से चारों ओर से प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तप्त करता है, प्रभासित करता है, उतने ही क्षेत्र को क्या अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने आतप से चारों ओर से प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तप्त करता है, प्रभासित करता है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जितने क्षेत्र को—यावत्—प्रभासित करता है

[१] [१] प्र०—भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य उदित होते समय दूर एवं मूल में दिखाई देते हैं, मध्याह्न में मूल में एवं दूर दिखाई देते हैं तथा अस्त होते समय दूर एवं मूल में दिखाई देते हैं ?

उ०—हाँ, गौतम !—यावत्—वैसे ही दिखाई देते हैं ।

[२] प्र०—भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य उदित होते समय, मध्याह्न मे एवं अस्त होते समय सर्वत्र समान रूप से ऊँचे होते हैं ?

उ०—हाँ, इसी प्रकार ऊँचे होते हैं ।

[३] प्र०—भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप में सूर्य उदयकाल में, मध्याह्न में एवं अस्तकाल में सर्वत्र समान रूप से ऊँचे होते हैं तो फिर क्यों जम्बूद्वीप में सूर्य उदयकाल मे दूर एवं मूल में दिखाई देते हैं, इत्यादि ?

उ०—गौतम ! लेश्या—तेज के प्रतिघात से उदयकाल में दूर एवं मूल में दिखाई देते हैं, लेश्या के अभिताप से मध्याह्न में मूल में एवं दूर दिखाई देते है तथा लेश्या—तेज—के प्रतिघात से अस्तकाल में दूर एवं मूल मे दिखाई देते हैं । इस प्रकार हे गौतम ! ये इसी प्रकार दिखाई देते हैं ।

[२] **जया णं सूरिए सव्वबाहिरियं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ**
तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एक्कतीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए सट्ठिभागे जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फास हव्वमागच्छइ ।

—सम. ३१ सूत्र ३

[३] **जया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमिता णं चारं चरइ**
तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं किंचि विसेसूणेहिं चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ।

—सम. ३३, सूत्र ४

[४] **जया णं सूरिए सव्वब्भिंतरमंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ**
तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स सत्तचत्तालीसं जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ ।

—सम. ४७, सूत्र १

[२] जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल में उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब यहाँ स्थित मनुष्य को ३१८३१ $\frac{३०}{६०}$ योजन की दूरी से दिखाई देता है ।

[३] जब सूर्य बाह्यानन्तर तीसरे मंडल मे उपसंक्रमण करके चलता है तब यहाँ स्थित पुरुष को ३३ हजार योजन से कुछ कम की दूरी से दृष्टिगोचर होता है ।

[४] जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल मे उपसंक्रान्त होकर चार करता है तब यहाँ के मनुष्य को ४७२६३ $\frac{३१}{६०}$ योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है ।

सूर्यबिम्ब की लम्बाई-चौड़ाई

[५] [१] **प्र०—सूरमंडले णं भंते ! केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं, केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?**

उ०—गोयमा ! अडयालीसं एकसट्ठिभाए जोयणस्स आयामविक्खंभेणं,[1]
तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, चउवीसं एगसट्ठिभाए जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

[५] [१] प्र०—भगवन् ! सूर्यमंडल कितना लम्बा-चौड़ा, कितनी परिधि वाला एवं कितना मोटा है ?

उ०—गौतम ! $\frac{४८}{६१}$ योजन लंबा-चौड़ा, इससे तिगुनी से कुछ अधिक परिधि वाला और $\frac{२४}{६१}$ योजन मोटा है ।

---

१ सम. ४८ सूत्र ३ पृ. ८१

सूर्य का उदय और अस्तमन

[६] [१] प्र०—ता कहं ते उदयसंठिती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

तत्थेगे एवमाहंसु—
ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तया णं उत्तरड्ढेवि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तया णं दाहिणड्ढेवि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
ता जदा णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तया णं उत्तरड्ढेवि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तदा णं दाहिणड्ढेवि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवति,
एवं परिहावेतव्वं,
सोलसमुहुत्ते दिवसे, पण्णरसमुहुत्ते दिवसे, चउद्दसमुहुत्ते दिवसे, तेरसमुहुत्ते दिवसे—जाव—णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे
तया णं उत्तरड्ढेवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जया णं उत्तरड्ढेवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तया णं दाहिणड्ढेवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिम-पच्चत्थिमेणं सया पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवति,
सया पण्णरसमुहुत्ता राई भवति,
अवट्ठिता णं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता समणाउसो ! एगे एवमाहंसु ।

एगे पुण एवमाहंसु—
जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति,
तया णं उत्तरड्ढेवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
तया णं दाहिणड्ढेवि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
एवं परिहावेतव्वं,
सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति, चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति, तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति ।
जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति,
तदा णं उत्तरड्ढेवि बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
तया णं दाहिणड्ढेवि बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति ।
तदा णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिम-पच्चत्थिमे णं णो सदा पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवति णो सदा पण्णरसमुहुत्ता राई भवति,
अणवट्ठिता णं तत्थ राइंदिया णं समणाउसो ! एगे एवमाहंसु ।

एगे पुण एवमाहंसु—
ता जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तदा णं उत्तरड्ढे बुवालसमुहुत्ता राई भवति,

जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तदा णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवति,
जया णं दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति,
तदा णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवति,
जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति,
तदा णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवति,

एवं णेतव्वे—
सगलेहि य अणंतरेहि य एक्केक्के दो दो आलावगा,
सव्वेहिं दुवालसमुहुत्ता राई भवति—जाव—
ता जया णं जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति,
तदा णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
जया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवति,
तदा णं दाहिणड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
तता णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिम-पच्चत्थिमे णं णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे,
णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवति,
वोच्छिण्णा णं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता समणाउसो ! एगे एवमाहंसु ।

—सूर्य. सूत्र २६ पृ. ८४–८५
—चन्द्र. सूत्र २६

[६] [१] प्र०—(सूर्य की) उदयसंस्थिति कैसी कही गई है ?

उ०—इस विषय मे तीन प्रतिपत्तियां हैं—

एक मान्यता यह है कि जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्तरार्ध में भी अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और जब उत्तरार्ध में अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्ध में भी अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है। जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध मे सत्तरह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्तरार्ध में भी सत्तरह मुहूर्त्त का दिन होता है और जब उत्तरार्ध मे सत्तरह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्ध में भी सत्तरह मुहूर्त्त का दिन होता है।

इस प्रकार सोलह मुहूर्त्त का दिन, पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन, चौदह मुहूर्त्त का दिन, तेरह मुहूर्त्त का दिन—यावत्—जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध मे (जब) बारह मुहूर्त्त का दिन (होता है) तब उत्तरार्ध में भी बारह मुहूर्त्त का दिन होता है और जब उत्तरार्ध मे बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्ध मे भी बारह मुहूर्त्त का दिन होता है, यह समझ लेना चाहिए। जब दक्षिणार्ध में बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब जम्बूद्वीपस्थित मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में सदैव पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं सदैव पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। आयुष्मन् श्रमणो ! वहां रात्रि-दिन अवस्थित रहते है।

एक मान्यता ऐसी है।

एक (दूसरी) मान्यता ऐसी भी है कि जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध मे अठारह मुहूर्त्तानन्तर (अठारह मुहूर्त्त से कुछ न्यून) का दिन होता है तब उत्तरार्ध मे भी अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है। जब उत्तरार्ध में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब दक्षिणार्ध मे भी अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है। इस प्रकार सत्तरह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, सोलह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, पन्द्रह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, चौदह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, तेरह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है—यावत्—जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध मे बारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब उत्तरार्ध में भी बारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है। और जब उत्तरार्ध में बारह मुहूर्त्ता-

नन्तर का दिन होता है तब दक्षिणार्ध में भी बारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है, यह समझ लेना चाहिए। उस समय जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में न तो हमेशा पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन होता है और न हमेशा पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। आयुष्मन् श्रमणो ! वहाँ रात्रि-दिन अनवस्थित रहते हैं। एक मान्यता ऐसी है।

एक (तीसरी) मान्यता ऐसी भी है कि जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब उत्तरार्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और जब उत्तरार्ध में अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब दक्षिणार्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। जब दक्षिणार्ध में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब उत्तरार्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और जब उत्तरार्ध में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब दक्षिणार्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

इसी प्रकार एक-एक के बाद दो-दो आलापक (यथा—सत्तरह मुहूर्त्त तथा सत्तरह मुहूर्त्तानन्तर का दिन, इत्यादि) समझ लेने चाहिए।

रात्रि सर्वत्र बारह मुहूर्त्त की ही होती है,—यावत्—जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में बारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब उत्तरार्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। और जब उत्तरार्ध में बारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब दक्षिणार्ध में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। उस समय जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में न तो पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन होता है और न पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। आयुष्मन् श्रमणो ! वहां रात्रि-दिन का व्यवच्छेद है।
एक (तीसरी) मान्यता ऐसी है।

वयं पुण एवं वदामो—

[तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं रायहाणी होत्था, वण्णओ।
तीसे ण चंपाए नयरीए पुणभद्दे नामं चेइए होत्था, वण्णओ।
सामी समोसढे—जाव—परिसा पडिगया।
तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे,
गोयमगोत्ते णं—जाव—एवं वयासी—]

[२] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति,
पाईण-दाहिणमुग्गच्छ दाहिणपडीणमागच्छंति,
दाहिण-पडीणमुग्गच्छ पडीण-उदीण (चि) मागच्छंति,
पडीण-उदीणमुग्गच्छ उदीचि-पादीणमागच्छंति ?

उ०—हंता, गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उदीची-पाईणमुग्गच्छ—जाव—उदीचिपाईणमागच्छंति।

[३] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे हवइ,
तया णं उत्तरड्ढे वि दिवसे भवइ,
जया णं उत्तरड्ढे वि दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई हवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वि दिवसे—जाव—राई भवइ।

[४] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं दिवसे भवइ,
तया णं पच्चत्थिमे वि दिवसे भवइ,
जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवइ,
तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरपुरत्थिमे णं दिवसे—जाव—राई भवइ।

[५] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,
तदा णं उत्तरड्ढे वि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,
जया णं उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठासरमुहुत्ते दिवसे भवइ,
तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे—जाव—दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ।

[६] प्र०—जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,
तया णं जंबुद्दीवे दीवे पच्चत्थिमेण वि उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,
जया ण पच्चत्थिमेणं उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ,
तया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरे दुवालसमुहुत्ता—जाव—राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा !—जाव—भवइ ।

[७] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
तया णं उत्तरे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
तया ण जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पठवयस्स पुरत्थिमे णं पच्चत्थिमे णं साइरेया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे—जाव—राई भवइ ।

[८] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पठवयस्स पुरत्थिमे णं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
तया णं पच्चत्थिमे णं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
जया णं पच्चत्थिमे णं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ,
तदा णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पठवयस्स उत्तरवाहिणे साइरेगदुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा !—जाव—भवइ ।
एवं एएणं कमेण ओसारेअव्वं सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई भवइ,
सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेया तेरसमुहुत्ता राई,
सोलसमुहुत्ते दिवसे चोद्दसमुहुत्ता राई,
सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगचउद्दसमुहुत्ता राई,
पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पन्नरसमुहुत्ता राई,
पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगा पण्णरसमुहुत्ता राई,
चोद्दसमुहुत्ते दिवसे सोलसमुहुत्ता राई,
चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगा सोलसमुहुत्ता राई,
तेरसमुहुत्ते दिवसे, सत्तरसमुहुत्ता राई,
तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगा सत्तरसमुहुत्ता राई ।

[९] प्र०—जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अहच्चए दुवालसमुहुत्ते दिवसे, भवइ,
तया णं उत्तरड्ढे वि,
जया णं उत्तरड्ढे तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पठवयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! एवं चेव उच्चारेअव्वं—जाव—राई भवइ ।

[१०] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि,
जया णं पच्चत्थिमेणं वि तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! —जाव—राई भवइ ।

—विवा. भाग २ श. ५ उ. १ प्र. १-९ पृ. १४५-१४८

हम इस प्रकार कहते हैं—
(उस काल और उस समय में चम्पा नामक राजधानी थी । उसका वर्णन समझ लेना चाहिए । उस चम्पा नगरी में पूर्णभद्र नामक चैत्य था । उसका भी वर्णन समझ लेना चाहिए । समवसरण हुआ—यावत्—परिषद् लौट गई ।
उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार—यावत्—इस प्रकार बोले–)

[२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में क्या सूर्य उत्तर-पूर्व में उदित होकर पूर्व-दक्षिण में आते हैं—अस्त होते हैं ?
पूर्व-दक्षिण में उदित हो दक्षिण-पश्चिम में आते हैं ?
दक्षिण-पश्चिम में उदित हो पश्चिम-उत्तर में आते है ?
एवं पश्चिम-उत्तर में उदित हो उत्तर-पूर्व में आते हैं ?

उ०—हाँ, गौतम ! जम्बूद्वीप में सूर्य उत्तर-पूर्व में उदित हो—यावत्—उत्तर-पूर्व मे आते है ।

[३] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में दिन होता है तब क्या उत्तरार्ध में भी दिन होता है ? एवं जब उत्तरार्ध में दिन होता है तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम मे रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में दिन—यावत्—रात्रि होती है ।

[४] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व मे दिन होता है तब क्या पश्चिम मे भी दिन होता है ? एवं जब पश्चिम मे दिन होता है तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण में रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जब जम्बूद्वीपस्थित मेरु के पूर्व में दिन—यावत्—रात्रि होती है ।

[५] उ०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब क्या उत्तरार्ध में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है ? एवं जब उत्तरार्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जब जम्बूद्वीप के—यावत्—बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ।

[६] प्र०—जब जम्बूद्वीपस्थित मेरु के पूर्व में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब क्या जम्बूद्वीप के पश्चिम में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है ? एवं जब पश्चिम में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब क्या भगवन् ! जम्बूद्वीप के उत्तर में बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! —यावत्—होती है ।

[७] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध मे अठारह मुहूर्त्तानन्तर (अठारह मुहूर्त्त से कुछ न्यून) का दिन होता है तब क्या उत्तरार्ध में भी अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है ? एवं जब उत्तरार्ध में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व तथा पश्चिम में साधिक बारह मुहूर्त्त (बारह मुहूर्त्त से कुछ अधिक) की रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जब जम्बूद्वीप के–यावत्–रात्रि होती है ।

[८] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब क्या पश्चिम में भी अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है ? एवं जब पश्चिम में अठारह मुहूर्त्तानन्तर का दिन होता है तब क्या मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण में साधिक बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती ?

उ०—हाँ, गौतम ! –यावत्–होती है ।

इस प्रकार पूर्वोक्त क्रम से सत्तरह मुहूर्त्त का दिन एवं तेरह मुहूर्त्त की रात्रि, सत्तरह मुहूर्त्तानन्तर का दिन और साधिक तेरह मुहूर्त्त की रात्रि, सोलह मुहूर्त्त का दिन और चौदह मुहूर्त्त की रात्रि, सोलह मुहूर्त्तानन्तर का दिन एवं साधिक चौदह मुहूर्त्त की रात्रि, पन्द्रह मुहूर्त्त का दिन एव पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि, पन्द्रह मुहूर्त्तान्तर का दिन एवं साधिक पन्द्रह मुहूर्त्त की रात्रि, चौदह मुहूर्त्त का दिन एव सोलह मुहूर्त्त की रात्रि, चौदह मुहूर्त्तानन्तर का दिन एवं साधिक सोलह मुहूर्त्त की रात्रि, तेरह मुहूर्त्त का दिन एवं सत्तरह मुहूर्त्त की रात्रि, तेरह मुहूर्त्तानन्तर का दिन और साधिक सत्तरह मुहूर्त्त की रात्रि होती है, यह समझ लेना चाहिए ।

[९] प्र०—जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध मे जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब क्या उत्तरार्ध में भी (जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है ?) एव जब उत्तरार्ध मे (बारह मुहूर्त्त का दिन होता है) तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम मे उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! इसी प्रकार कहना चाहिए,–यावत्–रात्रि होती है ।

[१०] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व मे जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है तब क्या पश्चिम मे भी (बारह मुहूर्त्त का दिन होता है ?) एवं जब पश्चिम मे (बारह मुहूर्त्त का दिन होता है) तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण मे उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! –यावत्–रात्रि होती है ।

[७] [१] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ
तया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ ?
जया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ,
तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं अणंतरपुरक्खडे समयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तह चेव—जाव—पडिवज्जइ ।

[२] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं पच्चत्थिमेण वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ,
जया णं पच्चत्थिमेण वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ,
तया णं—जाव—मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवन्ने भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं एवं चेव उच्चारेयव्वं—जाव—पडिवन्ने भवइ ।
एवं जहा समएणं अभिलावो भणिओ वासाणं तहा आवलियाए वि भाणियव्वो,
आणपाणूण वि, थोवेण वि, लवेण वि, मुहुत्तेण वि, अहोरत्तेण वि, पक्खेण वि, मासेण वि, उउणा वि, एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणियव्वो ।

[३] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ० ।

उ०—जहेव वासाणं अभिलावो तहेव हेमंताणं वि, गिम्हाण वि भाणियव्वो—जाव-उऊए ।
एवं तिण्णि वि, एएसि तीसं आलावगा भाणियव्वा ।

[४] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे अयणे पडिवज्जइ,
तया णं उत्तरड्ढे वि पढमे अयणे पडिवज्जइ ?

उ०—जहा समएणं अभिलावो तहा अयणेण वि भाणियव्वो—जाव—अणंतरपच्छाकडसमयंसि पढमे अयणे पडिवण्णे भवइ ।
जहा अयणेणं अभिलावो तहा संवच्छरेण वि भाणियव्वो,
जुएण वि, वाससएण वि, वाससहस्सेण वि, वाससयसहस्सेण वि, पुव्वंगेण वि, पुव्वेण वि, तुडियंगेण वि, तुडियेण वि,
एवं पुव्वंगे, पुव्वे, तुडिअंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे, अववंगे, अववे, हूहूयंगे, हूहूये, उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे, नलिणंगे, नलिणे, अत्थनिउरंगे, अत्थणिउरे, अउअंगे, अउए, णउअंगे, णउए, पउअंगे, पउए, चूलिअंगे, चूलिए, सीसपहेलिया, पलिओवमेण, सागरोवमेण वि भाणियव्वो ।

[५] प्र०—जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ,
तया णं उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ ?
जया णं उत्तरड्ढे वि पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं णेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी,
अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ! ?

उ०—हंता, गोयमा ! तं चेव—जाव—उच्चारेयव्वं—जाव—समणाउसो !
जहा ओसप्पिणीए आलावओ भणिओ एवं उस्सप्पिणीए वि भाणियव्वो ।

[७] [१] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में वर्षा का प्रथम समय होता है तब क्या उत्तरार्ध में भी वर्षा का प्रथम समय होता है ? एवं जब उत्तरार्ध में वर्षा का प्रथम समय होता है तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम में एक समय के अनन्तर वर्षा का प्रथम समय होता है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में वर्षा का प्रथम समय होता है--यावत्—उसी प्रकार है ।

[२] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप स्थित मेरु पर्वत के पूर्व में वर्षा का प्रथम समय होता है तब क्या पश्चिम में भी वर्षा का प्रथम समय होता है ? एवं जब पश्चिम में वर्षा का प्रथम समय होता है तब क्या —यावत्—मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण में एक समय पूर्व वर्षा का प्रथम समय प्रारंभ होता है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जब जम्बूद्वीप स्थित मेरु पर्वत के पूर्व में—यावत्—इसी प्रकार प्रारंभ होता है, ऐसा समझना चाहिए ।
जिस प्रकार वर्षा के प्रथम समय के लिए कहा गया है उसी प्रकार (वर्षारंभ की प्रथम) आवलिका, आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु आदि सब के लिए समझना चाहिए ।

[३] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप में हेमन्त का प्रथम समय होता है ?

उ०—जिस प्रकार वर्षा के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार हेमन्त और ग्रीष्म के विषय में भी कहना चाहिए—यावत्-तीनों के विषय में कहना चाहिए । इस प्रकार तीस आलापक होते हैं ।

[४] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के दक्षिणार्ध में प्रथम अयन होता है, उस समय क्या उत्तरार्ध में भी प्रथम अयन होता है ?

उ०—जिस प्रकार समय के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार अयन के विषय में भी समझना चाहिए, —यावत्–एक समय पूर्व प्रथम अयन प्रारंभ होता है ।

जिस प्रकार अयन के विषय में कहा है उसी प्रकार संवत्सर, युग, शताब्दी, सहस्राब्दी, शतसहस्राब्दी, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिपूरांग, अर्थनिपूर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम आदि के विषय में भी कथन कर लेना चाहिए ।

[५] प्र०—भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध मे प्रथम अवसर्पिणी होती है तब क्या उत्तरार्ध मे भी प्रथम अवसर्पिणी होती है ? एवं जब उत्तरार्ध मे (प्रथम अवसर्पिणी) होती है तब क्या जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत के पूर्व एवं पश्चिम मे अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी नही होती ? एवं श्रमणायुषो ! वहाँ क्या अवस्थित काल रहता है ?

उ०—हाँ, गौतम ! ऐसा ही है । जिस प्रकार अवसर्पिणी के विषय मे कथन किया गया, उसी प्रकार उत्सर्पिणी के विषय मे भी कह लेना चाहिए ।

लवणसमुद्र में उदयास्तवर्णन

[८] [१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे सूरिया उदीचि-पाईणमुग्गच्छ० ?

उ०—जच्चेव जंबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव सव्वा अपरिसेसिआ लवणसमुद्दस्स वि भाणियव्वा, नवरं अभिलावो इमो णेयव्वो—
जया णं भंते ! लवणे समुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ,
तं चेव—जाव—
तदा णं लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई भवति,
एएणं अभिलावेणं नेयव्वं ।

[२] प्र०—जया णं भंते ! लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ,
तया णं उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ,
जया णं उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ,
तया णं लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं नेवत्थि ओसप्पिणी नेवत्थि उस्सप्पिणी समणाउसो ?

उ०—हंता, गोयमा ! —जाव—समणाउसो !

[८] [१] प्र०—भगवन् ! क्या लवणसमुद्र में सूर्य उत्तर-पूर्व में उदित हो (पूर्व-दक्षिण में अस्त होते हैं, इत्यादि) ?

उ०—(इस विषय में) जो जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में कहा गया है वह सब अपरिशेष लवणसमुद्र के विषय में भी समझ लेना चाहिए । विशेष यह कि शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए—भगवन् ! जब लवणसमुद्र के दक्षिणार्ध में दिन होता है—यावत्—उसी प्रकार, तब लवणसमुद्र के पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है । इस प्रकार समझना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! जब लवणसमुद्र के दक्षिणार्ध में प्रथम अवसर्पिणी (अवसर्पिणी का प्रथम विभाग) होती है तब क्या उत्तरार्ध मे भी प्रथम अवसर्पिणी होती है ? एवं जब उत्तरार्ध मे प्रथम अवसर्पिणी होती है तब श्रमणायुषो ! क्या लवणसमुद्र के पूर्व-पश्चिम में अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी नहीं होती ?

उ०—हाँ, गौतम ! —यावत्—नहीं होती ।

धातकीखण्ड आदि में उदयास्तवर्णन

[९] [१] प्र०—धायइसंडे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीचि-पाईणमुग्गच्छ० ?

उ०—जहेव जंबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव धायइसंडस्स वि भाणियव्वा ।
नवरं—इमेणं अभिलावेणं सव्वा आलावगा भाणियव्वा—

[२] प्र०—जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ,
तदा णं उत्तरड्ढे वि ।
जया णं उत्तरड्ढे वि तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरच्छिम-पच्चत्थिमे णं राई भवइ ?

उ०—हंता गोयमा ! एवं चेव—जाव—राई भवइ ।

[३] प्र०—जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमेणं दिवसे भवइ
तया णं पच्चत्थिमेण वि ?
जया णं पच्चत्थिमेण वि तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं उत्तरेणं दाहिणेणं राई भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! —जाव—भवइ ।
एवं एएणं अभिलावेणं नेयव्वं—जाव०—

[४] प्र०—जया णं दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी तया णं उत्तरड्ढे ?
जया णं उत्तरड्ढे तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं नत्थि ओसप्पिणी
—जाव—समणाउसो ! ?

उ०—हंता, गोयमा ! —जाव—समणाउसो !
जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया तहा कालोदस्स वि भाणियव्वा,
नवरं—कालोदस्स नामं भाणियव्वं ।

[५] प्र०—अब्भितरपुक्खरद्धे णं भंते ! सूरिया उदीचि-पाईणमुग्गच्छ० ?

उ०—जहेव धायइसंडस्स वत्तव्वया तहेव अब्भितरपुक्खरद्धस्स वि भाणियव्वा,
नवरं—अभिलावो जा (भा) णियव्वो—जाव—तया णं अब्भितरपुक्खरद्धे मंदराणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं नेवत्थि अवसप्पिणी,
नेवत्थि उस्सप्पिणी—अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो !
सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति ।

—भग. भाग २ श. ५ उ. १ प्र. १०–२१, पृ. १५१–१५६
—जम्बू. सूत्र १५० पृ. ४८०
—सूर्य. सूत्र २९ पृ. ८५–८६
—चन्द्र. सूत्र २९

[९] [१] प्र०—भगवन् ! क्या धातकीखण्ड द्वीप में सूर्य उत्तर-पूर्व में उदित हो (पूर्व-दक्षिण में अस्त होते हैं, इत्यादि) ?

उ०—जिस प्रकार जम्बूद्वीप के विषय में कथन किया गया है, उसी प्रकार धातकीखण्ड के विषय में भी कह लेना चाहिए । वर्णन में केवल धातकीखण्ड का नाम कहना चाहिए ।

[२] प्र०—भगवन् ! जब धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिणार्ध में दिन होता है तब क्या उत्तरार्ध में भी (दिन होता है ?) एवं जब उत्तरार्ध में (दिन होता है) तब क्या धातकीखण्डस्थित मेरु पर्वतों के पूर्व-पश्चिम में रात्रि होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! इसी प्रकार (होता है)—यावत्—रात्रि होती है ।

[३] प्र०—भगवन् ! जब धातकीखण्डस्थित मेरु पर्वतों के पूर्व मे दिन होता है तब क्या पश्चिम मे भी (दिन होता है ?) एवं जब पश्चिम में (दिन होता है) तब क्या धातकीखण्डस्थित मेरु पर्वतों के उत्तर-दक्षिण में रात्रि होती है ?

उ०—हां, गौतम ! —यावत्—होती है । इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए ।

[४] प्र०—भगवन् ! जब दक्षिणार्ध मे प्रथम अवसर्पिणी होती है तब क्या उत्तरार्ध मे भी (प्रथम अवसर्पिणी होती है ?) एवं जब उत्तरार्ध मे प्रथम अवसर्पिणी होती है, तब क्या श्रमणायुषो ! धातकीखण्ड-द्वीपस्थित मेरु पर्वतों के पूर्व-पश्चिम मे अवसर्पिणी आदि नही होती ?

उ०—हां, गौतम ! —यावत्—श्रमणायुषो ! (अवसर्पिणी आदि नहीं होती) ।
जिस प्रकार लवणसमुद्र के विषय मे कहा गया है उसी प्रकार कालोदसमुद्र के विषय में भी समझना चाहिए । अन्तर यही है कि वहाँ 'कालोद' नाम का प्रयोग करना चाहिए ।

[५] प्र०—भगवन् ! क्या आभ्यन्तर पुष्करार्ध मे सूर्य उत्तर-पूर्व में उदित होकर (पूर्व-दक्षिण में अस्त होते है, इत्यादि) ?

उ०—जिस प्रकार धातकीखण्ड के विषय में कहा गया है उसी प्रकार आभ्यन्तर पुष्करार्ध के विषय में भी समझना चाहिए । अन्तर केवल नाम का है । —यावत्—उस समय आभ्यन्तर पुष्करार्धस्थित मेरु पर्वतों के पूर्व-पश्चिम मे न अवसर्पिणी होती है, न उत्सर्पिणी होती है । श्रमणायुषो ! वहाँ काल अवस्थित है ।
भगवन् ! यह ऐसा ही है, भगवन् ! यह ऐसा ही है ।

सूर्य के प्रकाश का वर्णन

[१०][१] प्र०—ता कहं ते ओयसंठिती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु
ता अणुसमयमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जे, अण्णा अवेति, एगे एवमाहंसु ।

२—एगे पुण एवमाहंसु
ता अणुमुहुत्तमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जति, अण्णा अवेति ।
एतेणं अभिलावेणं णेतव्वा—

३—ता अणुराइंदियमेव ४–ता अणुपक्खमे ५–ता अणुमासमेव ६–ता अणुउडुमेव ७–ता अणुअयणमेव ८–ता अणुसंवच्छरमेव ९–ता अणुजुगमेव १०–ता अणुवाससयमेव ११–ता अणुवाससहस्समेव १२–ता अणुवाससयसहस्समेव १३–ता अणुपुव्वमेव १४–ता अणुपुव्वसयमेव १५–अणुपुव्वसहस्समेव १६–ता अणुपुव्वसतसहस्समेव १७–ता अणुपलितोवममेव १८–ता अणुपलितोवमसयमेव १९–ता अणुपलितोवमसहस्समेव २०–ता अणुपलितोवमसयसहस्समेव २१–ता अणुसागरोवममेव २२–ता अणुसागरोवमसतमेव २३–ता अणुसागरोवमसहस्समेव २४–ता अणुसागरोवमसयसहस्समेव एगे एवमाहंसु ।
२५–ता अणुउस्सप्पिणी-ओसप्पिणिमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जति, अण्णा अवेति, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—

ता तीसं २ मुहुत्ते सूरियस्स ओया अवट्ठिता भवति,
तेण परं सूरियस्स ओया अणवट्ठिता भवति,
छम्मासे सूरिए ओयं णिवुड्ढेति,
छम्मासे सूरिए ओयं अभिवड्ढेति,
णिक्खममाणे सूरिए देसं णिवुड्ढेति,
पविसमाणे सूरिए देसं अभिवुड्ढेइ ।

[२] प्र०—तत्थ को हेतूति वदेज्जा ?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्द०—जाव—परिक्खेवेणं ।
जा जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति ।
से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं एगेणं राइंदिएणं एगं भागं ओयाए दिवसखित्तस्स णिवुड्ढिता रतणिक्खेत्तस्स अभिवड्ढिता चारं चरति,
मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं सतेहिं छित्ता,
तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवति
दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया ।
ता णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
ता जया णं सूरिए अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं दोहिं राइंदिएहिं दो भागे ओयाए दिवसखेत्तस्स णिवुड्ढित्ता,
रयणिखित्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरति,
मंडलं अट्ठारसतीसेहिं सएहिं छेत्ता,
तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवति
चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,
एवं खलु एतेणुवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे
संकममाणे एगमेगे मंडले एगमेगेणं राइंदिएणं एगमेगेणं २ भागं ओयाए
दिवसखेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे २ रयणिखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे २
सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलातो सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं सव्वब्भंतरं मंडलं पणिधाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसतेणं
एगं तेसीतं भागसतं ओयाए दिवसखेत्तस्स णिवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरति मंडलं
अट्ठारसहिं तीसेहिं छेत्ता,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति,
जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,

एस णं पढमछम्मासे,
एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।
ते पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासे अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि
बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं एगेणं राइंदिएणं एगं भाग ओयाए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरति,
मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं छेत्ता,
तता णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति
दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा,
दुवालसमुहुत्तो दिवसे भवति
दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिए,
से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
ता जया णं सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं दोहिं राइंदिएहिं दो भाए ओयाए
रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरति,
मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं छेत्ता, तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा,
दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिए ।
एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए तताणंतरातो तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २
एगमेगेणं राइंदिएणं एगमेगेणं भागं ओयाए रयणिखेत्तस्स णिवुड्ढेमाणे २ दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे २
सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरातो मंडलातो सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिधाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसएणं
एगं तेसीतं भागसतं ओयाए रयणिखित्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरति,
मंडलं अट्ठारसतीसेहिं सएहिं छेत्ता,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति ।[1]
एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।
एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस आदिच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे ।

—सूर्य. सूत्र २७ पृ. ७६–८०
—चन्द्र. सूत्र २७

[१०][१] प्र०—सूर्य की ओजसंस्थिति किस प्रकार की कही गई है ?

उ०—एतद्विषयक (अन्यतीर्थिकों की) निम्नोक्त पच्चीस मान्यताएँ हैं:—

१—एक मान्यता इस प्रकार है—प्रतिसमय सूर्य का ओज-प्रकाश नया उत्पन्न होता है और नया नष्ट होता है ।

२—एक मान्यता इस प्रकार है—सूर्य का प्रकाश प्रतिमुहूर्त्त नया उत्पन्न होता है और नष्ट होता है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए—

१— तेणउईमंडलगते णं सूरिए अतिवट्टमाणे वा निवट्टमाणे वा समं अहोरत्तं विसमं करेइ ।

—सम. ६२ सूत्र ३

३—प्रति रात्रि-दिन, ४–प्रतिपक्ष, ५–प्रतिमास, ६–प्रतिऋतु, ७–प्रतिअयन, ८–प्रतिवर्ष, ९–प्रतियुग, १०–प्रति वर्षशताब्दी, ११–प्रति वर्षसहस्राब्दी, १२–प्रति वर्षशतसहस्राब्दी, १३–प्रतिपूर्व, १४–प्रति पूर्वशत, १५–प्रति पूर्वसहस्र, १६–प्रति पूर्वशतसहस्र, १७–प्रति पल्योपम, १८–प्रति पल्योपमशत, १९–प्रति पल्योपमसहस्र, २०–प्रति पल्योपमशतसहस्र, २१–प्रति सागरोपम, २२–प्रति सागरोपमशत, २३–प्रति सागरोपममसहस्र, २४–प्रति सागरोपमशतसहस्र, २५—(यावत्) एक मान्यता ऐसी है कि प्रति उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में सूर्य का प्रकाश नया उत्पन्न होता एवं नष्ट होता है। हमारा कथन इस प्रकार है—

तीस मुहूर्त्त पर्यन्त सूर्य का प्रकाश अवस्थित रहता है। इसके पश्चात् सूर्य का प्रकाश अनवस्थित होता है। छह मास तक सूर्य का प्रकाश कम होता है एवं छह मास तक सूर्य का प्रकाश बढता है। निष्क्रान्त होते हुए सूर्य का क्षेत्र (देश) कम होता है एवं प्रविष्ट होते हुए सूर्य का क्षेत्र (देश) अधिक होता है।

[२] प्र०—इसका क्या कारण है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप सर्व द्वीप-समुद्रों के (मध्य में है)—यावत्—परिधि वाला है। इसमें जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। वहा से निष्क्रमित होता हुआ सूर्य नवीन संवत्सर मे आता हुआ प्रथम अहोरात्र में आभ्यन्तरानन्तर (आभ्यन्तर के बाद के) मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है। इस प्रकार सूर्य आभ्यन्तरानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब एक रात्रि-दिन में प्रकाश का एक भाग दिवस-क्षेत्र मे कम और रात्रि-क्षेत्र मे बढ़ाता हुआ गति करता है। यह एक भाग मंडल के १८३० भाग करने पर प्राप्त होता है। इस समय मुहूर्त्त के ६१ भागों में से दो भाग कम ($१८-\frac{२}{६१}=१७\frac{५९}{६१}$) मुहूर्त्त का दिन होता है एवं मुहूर्त्त के ६१ भागों में से दो भाग अधिक बारह ($१२+\frac{२}{६१}$) मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

वहां से निष्क्रान्त होता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में आभ्यन्तर-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है। जब सूर्य आभ्यन्तर-तृतीय मंडल पर उपसक्रान्त हो गति करता है तब दो रात्रि-दिन में एक मंडल के १८३० भागों में से प्रकाश के दो भाग दिवस-क्षेत्र में कम कर रात्रि-क्षेत्र में बढ़ाता हुआ गति करता है। इस समय मुहूर्त्त के ६१ भागों में से ४ भाग कम अठारह ($१८-\frac{४}{६१}$) मुहूर्त्त का दिन होता है एवं मुहूर्त्त के ६१ भागों में से ४ भाग अधिक बारह ($१२+\frac{४}{६१}$) मुहूर्त्त की रात्रि होती है। इस प्रकार निष्क्रान्त होता हुआ सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक रात्रि-दिन में प्रकाश का एक भाग दिवस-क्षेत्र में कम कर रजनी-क्षेत्र मे बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रमित होकर गति करता है तब १८३ रात्रि-दिन में एक मंडल के १८३० भागों में से १८३ भाग प्रकाश दिवस-क्षेत्र में कम कर रजनी-क्षेत्र में बढ़ाता हुआ गति करता है। इस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। यह प्रथम छह मास एवं प्रथम छह मास के पर्यवसान के विषय में है। प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय छह मास में आता हुआ प्रथम अहोरात्रि में बाह्यानन्तर (बाह्य के बाद के) मण्डल पर उपसंक्रमित होकर गति करता है। जब सूर्य बाह्यानन्तर मंडल पर उपसंक्रमित हो गति करता है तब एक रात्रि-दिन में मंडल के १८३० भागों में से एक भाग प्रकाश रजनी-क्षेत्र में कम कर दिवस-क्षेत्र में बढ़ाता हुआ गति करता है। इस समय मुहूर्त्त के ६१ भागों में से दो भाग कम अठारह ($१८-\frac{२}{६१}$) मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं मुहूर्त्त के ६१ भागों में से दो भाग अधिक बारह ($११+\frac{२}{६१}$) मुहूर्त्त का दिन होता है।

प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्रि में बाह्य-तृतीय मंडल पर उपसंक्रमित हो गति करता है। जब सूर्य बाह्यतृतीय मंडल पर उपसंक्रमित हो गति करता है तब दो रात्रि-दिन में मंडल के १८३०

भागों में से दो भाग प्रकाश रजनी-क्षेत्र में कम कर दिवस-क्षेत्र में बढ़ाता हुआ गति करता है। इस समय $\frac{४}{६१}$ भाग कम अठारह ($१८-\frac{४}{६१}$) मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं $\frac{४}{६१}$ भाग अधिक बारह ($१२+\frac{४}{६१}$) मुहूर्त्त का दिवस होता है।

इस प्रकार प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक रात्रि-दिन में एक भाग प्रकाश रजनी-क्षेत्र मे कम कर दिवस-क्षेत्र में बढाता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रमित हो गति करता है।

जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल मे सर्वाभ्यन्तर मडल पर उपसंक्रमित हो गति करता है तब १८३ रात्रि-दिनो मे मंडल के १८३० भागों मे से १८३ भाग प्रकाश रजनी-क्षेत्र मे कम कर दिवस-क्षेत्र में बढाता हुआ गति करता है। इस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

यह द्वितीय छह मास एव द्वितीय छह मास के पर्यवसान के विषय मे है।
यह आदित्यसंवत्सर (सौर वर्ष) एव आदित्यसंवत्सर के पर्यवसान के विषय मे है।

सूर्य का वरण

[११][१] प्र०—**ता के ते सूरियं वरंति आहितेति वदेज्जा ?**

उ०—**तत्थ खलु इमाओ वीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—**

तत्थेगे एवमाहंसु—
ता मंदरे णं पव्वते सूरियं वरयति आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु—
ता मेरू णं पव्वते सूरियं वरति आहितेति वदेज्जा,
एवं एएणं अभिलावेणं णेतव्वं—जाव[1]—
पव्वतराये णं पव्वते सूरियं वरयति आहितेति वदेज्जा, तं एगे एवमाहंसु।

वयं पुण एवं वदामो—
ता मंदरे वि पवुच्चति तहेव—जाव[2]—पव्वतराए वि पवुच्चति,
ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति ते पोग्गला सूरियं वरयंति,
अविट्ठावि णं पोग्गला सूरियं वरयंति,
चरमलेसंतरगता वि णं पोग्गला सूरियं वरयंति।

—सूर्य० सूत्र २८ पृ० ८३
—चन्द्र० सूत्र २८

[११][१] प्र०—सूर्य को कौन वरण करता है ? अर्थात् स्वप्रकाशक रूप में कौन स्वीकार करता है ?

उ०—इस विषय में (अन्यतीर्थिकों की) बीस मान्यताएँ है—एक मान्यता यह है कि मन्दर पर्वत सूर्य को (स्वप्रकाशक रूप में) वरण करता है।
एक मान्यता ऐसी है कि मेरु पर्वत सूर्य को वरण करता है। इस प्रकार इन्हीं शब्दों में—यावत्—पर्वतराज सूर्य को वरण करता है, ऐसा कहना चाहिए।
हम ऐसा कहते है—

---

१. सूर्य. सूत्र २६ पृ. ७७
२. " " " "

मन्दर पर्वत भी वही कहा जाता है—यावत्—पर्वतराज भी कहा जाता है ।
जो पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते हैं वे पुद्गल सूर्य को (स्वप्रकाशक रूप में) वरण करते है अर्थात् सूर्य द्वारा प्रकाशित होते है । अदृष्ट पुद्गल भी सूर्य को वरण करते हैं । चरमलेश्या को स्पर्श करने वाले पुद्गल भी सूर्य को वरण करते हैं ।

सूर्य-प्रकाश का प्रतिरोध

[१२][१] प्र०—ता कस्सि णं सूरियस्स लेस्सा पडिहताति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ वीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु—
ता मंदरंसि णं पव्वतंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहता आहिताति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ।

२—एगे पुण एवमाहंसु—
ता मेरुंसि णं पव्वतंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहता आहिताति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ।
एवं एतेणं अभिलावेणं भाणियव्वं—

३—ता मणोरमंसि णं पव्वयंसि,

४—ता सुदंसणंसि णं पव्वयंसि,

५—ता सयंपभंसि णं पव्वयंसि,

६—ता गिरिरायंसि णं पव्वयंसि,

७—ता रतणुच्चयंसि णं पव्वयंसि,

८—ता सिलुच्चयंसि णं पव्वयंसि,

९—ता लोयमज्झंसि णं पव्वयंसि,

१०—ता लोयणाभिसि णं पव्वतंसि,

११—ता अच्छंसि णं पव्वतंसि,

१२—ता सूरियावत्तंसि णं पव्वतंसि,

१३—ता सूरियावरणंसि णं पव्वतंसि,

१४—ता उत्तमंसि णं पव्वयंसि,

१५—ता दिसादिसि णं पव्वतंसि,

१६—ता अवतंसंसि णं पव्वतंसि,

१७—ता धरणिखीलंसि णं पव्वयंसि,

१८—ता धरणिसिगंसि णं पव्वयंसि,

१९—ता पव्वतिंदंसि णं पव्वतंसि,

२०—ता पव्वतरायंसि णं पव्वयंसि,
सूरियस्स लेसा पडिहता आहिताति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—
ता मंदरे वि पवुच्चति—जाव—पव्वयराया वुच्चति,
ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं पडिहणंति,
अविट्ठावि णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति,
चरिमलेसंतरगतावि णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति ।

—सूर्य. सूत्र २६ पृ. ७६–७७.
—चन्द्र. सूत्र २६.

[१२][१] प्र०—सूर्य के प्रकाश का प्रतिघात किस स्थान में होता है ?

उ०—इस विषय में (अन्य तीर्थिकों की) ये बीस मान्यताएं हैं—

१–एक मान्यता यह है कि मंदर पर्वत में सूर्य की लेश्या (प्रकाश) का प्रतिघात होता है।

२–एक मान्यता ऐसी भी है कि मेरु पर्वत में सूर्य की लेश्या का प्रतिघात होता है।

इन्ही शब्दों के साथ आगे भी समझना चाहिए—

३– मनोरम पर्वत में,	४–सुदर्शन पर्वत मे,
५– स्वयप्रभ पर्वत में,	६-गिरिराज पर्वत मे,
७– रत्नोच्चय पर्वत में,	८–शिलोच्चय पर्वत मे,
९– लोकमध्य पर्वत में,	१०–लोकनाभि पर्वत में,
११–अच्छ पर्वत में,	१२–सूर्यावर्त पर्वत में,
१३–सूर्यावरण पर्वत मे,	१४–उत्तम पर्वत में,
१५–दिगादि पर्वत मे,	१६–अवतम पर्वत मे,
१७–धरणीकीलक पर्वत मे,	१८–धरणीश्रृंग पर्वत मे,
१९–पर्वतेन्द्र पर्वत में,	२०–पर्वतराज पर्वत मे,

सूर्य की लेश्या का प्रतिघात होता है।

हमारा कथन इस प्रकार है—

मदर पर्वत—यावत्—पर्वतराज पर्वत मे (सूर्य के प्रकाश का) प्रतिघात होता है। जो पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते है, वे पुद्गल सूर्य के प्रकाश का प्रतिघात करते है। अदृष्ट पुद्गल भी सूर्य के प्रकाश का प्रतिघात करते है। चरमलेश्यान्तर्गत पुद्गल भी सूर्य के प्रकाश का प्रतिघात करते है।

सूर्यगति का क्षेत्र

[१३][१] प्र०—**जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ किं तीयं खेत्त गच्छन्ति, पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छंति, अणागयं खेत्तं गच्छंति ?**

उ०—**गोयमा ! णो तीअं खेत्तं गच्छंति, पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छंति, णो अणागयं खेत्तं गच्छंतित्ति।**

[२] प्र०—**तं भंते ! किं पुट्ठं गच्छंति ?**

उ०— —**जाव—नियमा छद्दिसिं**

एवं ओभासेंति,

[३] प्र०—**तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासेंति ?**

एवं आहारपयाइं णेअव्वाइं—पुट्ठो-गाढ-मणंतर-अणु-महआदिविसयाणुपुव्वी अ,

उ०— —**जाव—णिअमा छद्दिसिं,**

एवं उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति।

[४] प्र०—**जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआणं किं तीते खित्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पण्णे०, अणागए० ?**

उ०—**गोयमा ! णो तीए खित्ते किरिआ कज्जइ, पडुप्पण्णे०, अणागए०।**

[५] प्र०—**सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ० ?**

उ०—**गोयमा ! पुट्ठा ० णो अणापुट्ठा कज्जइ—जाव—णियमा छद्दिसिं।**

—जम्बू. सूत्र. १३७-३८, पृ. ४५८-५९

[१३][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य क्या अतीत क्षेत्र में जाते हैं, वर्त्तमान क्षेत्र में जाते हैं अथवा अनागत क्षेत्र में जाते हैं ?

उ०—गौतम ! अतीत क्षेत्र में नही जाते, वर्त्तमान क्षेत्र में जाते हैं, अनागत क्षेत्र में नहीं जाते ।

[२] प्र०—भगवन् ! क्या वे स्पृष्ट होकर जाते हैं ?

उ०—यावत्—नियमतः छहों दिशाओं में जाते हैं । इसी प्रकार अवभासित होते हैं ।

[३] प्र०—भगवन् ! क्या वे स्पृष्ट होकर प्रकाशित होते हैं ?

इस प्रकार आहारपद (प्रज्ञापनासूत्रोक्त) के समान स्पृष्ट, अवगाढ़, अनन्तर, अणु, महत् आदि विषयानुपूर्वी समझ लेना चाहिए ।

उ०— -यावत्— नियमतः छह दिशाओं में स्पृष्ट को प्रकाशित करते है । इसी प्रकार उद्योतित करते हैं, तपाते हैं, प्रकाशित करते हैं ।

[४] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में क्या सूर्य अतीत क्षेत्र में क्रिया करते है, वर्त्तमान क्षेत्र में क्रिया करते है अथवा अनागत क्षेत्र में क्रिया करते हैं ?

उ०—गौतम ! अतीत क्षेत्र में क्रिया नही करते, वर्त्तमान क्षेत्र में क्रिया करते हैं, अनागत क्षेत्र में क्रिया नहीं करते ।

[५] प्र०—भगवन् ! यह क्रिया क्या स्पृष्ट होकर करते है ?

उ०—गौतम ! स्पृष्ट होकर करते हैं, अस्पृष्ट होकर नहीं, —यावत्—नियम से छहों दिशाओं में ।

सूर्यों का परस्पर अन्तर

[१४][१] प्र०—ता केवइये एए दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरति आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमातो छ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१– तत्थ एगे एवमाहंसु—
ता एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसतं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरति आहितेति वदेज्जा,एगे एवमाहंसु ।

२– एगे पुण एवमाहंसु—
ता एगं जोयणसहस्सं एगं चउतीसं जोयणसयं अन्नमन्नस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरति आहियाति वइज्जा, एगे एवमाहंसु ।

३– एगे पुण एवमाहंसु—
ता एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ।

४– एगे पुण एवमाहंसु—
एगं दीवं, एगं समुद्दं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु० ।

५– पुण एवमाहंसु—
दो दीवे दो समुद्दे अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरति आहियाति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ।

६– एगे पुण एवमाहंसु—
तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति आहियाति वइज्जा, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो–

ता पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठि भागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्स अंतरं अभिवड्ढेमाणा वा निवड्ढेमाणा वा सूरिया चारं चरंति ।

[२] प्र०—तत्थ णं को हेऊ आहितेति वदेज्जा ?

उ०—१–ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे—जाव-परिक्खेवेणं पण्णत्ते,
ता जया णं एते दुवे सूरिया सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति,
तदा णं णवणउति जोयणसहस्साइं छच्चतालीसे जोयणसते अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहितेति वदेज्जा ।
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
ते निक्खममाणा सूरिया णवं संवच्छरं अयमाणा पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति ।

२–ता जया णं एते दुवे सूरिया अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति
तदा णं नवनवतिं जोयणसहस्साइं छच्च पणताले जोयणसते पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहितेति वदेज्जा ।
तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राती भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया,
ते णिक्खममाणे सूरिया दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति ।

३–ता जता दुवे सूरिया अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति
तया णं नवनवइं जोयणसहस्साइं छच्च इक्कावणे जोयणसए नव य एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहियाति वइज्जा,
तदा णं अट्ठारसमुहुत्तो दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया ।

४–एवं खलु एतेणुवाएणं णिक्खममाणा एते दुवे सूरिया ततोणंतरातो तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणा २ पंच-पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्स अंतरं अभिवड्ढेमाणा २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति,
तता णं जोयणसतसहस्सं छच्च सट्ठे जोयणसते अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति,
जहण्णए दुवालसमुहुत्तो दिवसे भवति,
एस णं पढमे छम्मासे,
एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।

१–ते पविसमाणा सूरिया दोच्चं छम्मासं अयमाणा पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति [1] ।

१–चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स हेमंताणं एक्कसत्तरीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं सव्वबाहिराओ मंडलाओ सूरिए आउट्टि करेइ ।

—सम. ७१ सूत्र १

२–ता जया णं एते दुवे सूरिया बाहिराणंतर मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति
तदा णं एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउप्पण्णे जोयणसते छव्वीसं च एकसट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति, आहितात्ति वदेज्जा,
तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा,
दुवालसमुहुत्तो दिवसे भवति दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,
ते पविसमाणा सूरिया दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति ।

३–ता जता णं एते दुवे सूरिया बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति
तता णं एगं जोयणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसते बावण्णं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति
तता णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा,
दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए ।

४–एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणा एते दुवे सूरिया
ततोणंतराओ तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणा
पंच-पंच जोयणाइं पणतीसे एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्संतरं णिवुड्ढेमाणा २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति ।

५–जया णं एते दुवे सूरिया सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं णवणउति जोयणसहस्साइ छच्च चत्ताले जोयणसते अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति ।
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
एस णं दोच्चे छम्मासे,
एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,
एस णं आइच्चे संवच्छरे,
एस णं आइच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ।

—सूर्य. सूत्र १५ पृ. २४–२५
—चन्द्र. सूत्र १५

[१४[[१] प्र०—(जम्बूद्वीपस्थित) ये दोनों सूर्य परस्पर कितने अन्तर से गति करते हैं ?

उ०—एतद्विषयक ये छह (अन्यतीर्थिकों की) मान्यताएं है—

१–एक मान्यता यह है कि ये सूर्य परस्पर ११३३ योजन के अन्तर से गति करते हैं ।

२–एक मान्यता यह है कि ये सूर्य परस्पर ११३४ योजन के अन्तर से गति करते हैं ।

३–एक मान्यता यह है कि ये सूर्य परस्पर ११३५ योजन के अन्तर से गति करते हैं ।

४–इसी प्रकार (एक मान्यता यह है कि ये) परस्पर एक द्वीप व एक समुद्र का अन्तर रखकर (गति करते हैं) ।

५–एक मान्यता यह है कि ये सूर्य परस्पर दो द्वीपों व दो समुद्रों का अन्तर रखकर गति करते हैं ।

६–एक मान्यता यह है कि ये सूर्य परस्पर तीन द्वीपों व तीन समुद्रों का अन्तर रखकर गति करते हैं ।

हमारा कथन इस प्रकार है—

ये सूर्य परस्पर $५\frac{३५}{६१}$ योजन का अन्तर रखकर प्रत्येक मंडल पर बढ़ते हुए अथवा घटते हुए गति करते हैं ।

[२] प्र०—इसका क्या कारण है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप—यावत्—परिधि वाला है। जब ये दोनों सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करते हैं तब इनमें परस्पर ९९६४० योजन का अन्तर होता है। इस समय अठारह मुहुर्त्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुमूर्त्त की रात्रि होती है। (सर्वाभ्यन्तर मंडल से) निकलते हुए सूर्य नये संवत्सर मे आते हुए प्रथम अहो-रात्र में आभ्यन्तरानन्तर मडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करते हैं।

जब ये दोनों सूर्य आभ्यन्तरान्तर मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करते है तब इनमे परस्पर ९९६४५$\frac{३५}{६१}$ योजन का अन्तर होता है। इस समय १८−$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है एवं १२+$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है। यहा से निकलते हुए सूर्य द्वितीय अहोरात्रि मे आभ्यन्तर-तृतीय मडल पर उपसक्रान्त हो गति करते है।

जब ये दोनों सूर्य आभ्यन्तर-तृतीय मंडल पर उपसक्रान्त हो गति करते है तब इनमें परस्पर ९९६५१$\frac{६}{६१}$ योजन का अन्तर होता है। इस समय १८−$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है एव १२+$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

इस प्रकार निकलते हुए ये दोनो सूर्य एक मडल से दूसरे मडल पर उपसंक्रान्त होते हुए प्रत्येक मंडल में परस्पर ५$\frac{३५}{६१}$ योजन के अन्तर की वृद्धि करते हुए सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करते है। उस समय इनमें परस्पर १००६६० योजन का अन्तर होता है। इस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एव जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। यह प्रथम छह मास एवं प्रथम छह मास के पर्यवसान के विषय मे है।

प्रविष्ट होते हुए ये सूर्य द्वितीय छह मास मे आते हुए प्रथम अहोरात्रि मे बाह्यानन्तर मडल पर उपसक्रान्त हो गति करते है।

जब ये दोनों सूर्य बाह्यानन्तर मंडल पर उपसक्रान्त हो गति करते है तब इनमें परस्पर १००६५४$\frac{२६}{६१}$ योजन का अन्तर होता है। इस समय १८−$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है एव १२+$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है। यहां से प्रविष्ट होते हुए सूर्य द्वितीय अहोरात्रि में बाह्य-तृतीय मण्डल पर उपसंक्रान्त हो गति करते हैं।

जब ये दोनों सूर्य बाह्य-तृतीय मडल पर उपसंक्रान्त हो गति करते हैं तब इनमें परस्पर १००६४८$\frac{१२}{६१}$ योजन का अन्तर होता है। इस समग १८−$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं १२+$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होना है।

इस प्रकार प्रविष्ट होते हुए ये दोनों सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल पर उपसंक्रान्त होते हुए प्रत्येक मंडल में परस्पर ५$\frac{३५}{६१}$ योजन का अन्तर कम करते हुए सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करते हैं।

जब ये दोनो सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसक्रान्त हो गति करते है तब इनमे परस्पर ९९६४० योजन का अन्तर होता है। इस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। यह द्वितीय छह मास एवं द्वितीय छह मास के पर्यवसान के विषय मे है। यह आदित्य-संवत्सर एवं आदित्य-सवत्सर के पर्यवसान के विषय में है।

[१५][१[प्र०—ता कतिकट्ठं ते सूरिए पोरिसीच्छायं णिव्वत्तेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१–तत्थेगे एवमाहंसु—

जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति, ते णं पोग्गला संतप्पंति,
ते णं पोग्गला संतप्पमाणा तदणंतराइं बायराइं पोग्गलाइं संतावेंतीति
एस णं से समिते तावक्खेत्ते एगे एवमाहंसु।

२-एगे पुण एवमाहंसु—
ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति, ते णं पोग्गला नो संतप्पंति,
ते णं पोग्गला असंतप्पमाणा तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं णो संतावेंतीति
एस णं से समिते तावक्खेत्ते, एगे एवमाहंसु ।

३–एगे पुण एवमाहंसु—
ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति,
ते णं पोग्गला अत्थेगतिया णो संतप्पंति, अत्थेगतिया संतप्पंति,
तत्थ अत्थेगइया संतप्पमाणा तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं अत्थेगतियाइं संतावेंति,
अत्थेगतियाइं णो संतावेंति,
एस णं समिते तावक्खेत्ते, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—
ता जाओ इमाओ चंदिम-सूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेसातो बहिता उच्छूढा अभिणिसट्ठाओ संतावेंति,
एतासि णं लेसाणं अंतरेसु अण्णतरीओ छिण्णलेसाओ संमुच्छंति,
तते णं ताओ छिण्णलेस्साओ संमुच्छियाओ समाणीओ तदणंतराइं बाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंतीति एस णं से समिते तावक्खेत्ते ।

—सूर्य० सूत्र ३० पृ० ९२–९३
—चन्द्र सूत्र ३०

[१५][१] प्र०—(भगवन्!) आपके मत में सूर्य कितनी पौरुषी छाया का निर्माण करता है ?

उ०—इस विषय मे (अन्य तीर्थिकों की) तीन मान्यताएं है—

१–एक मान्यता यह है कि जो पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते है वे पुद्गल तपते हैं। वे तपते हुए पुद्गल अपने अनन्तरवर्ती बाह्य पुद्गलों को तपाते है। यह सूर्य का तापक्षेत्र है।

२–एक मान्यता यह है कि जो पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते हैवे पुद्गल नही तपते हैं। वे पुद्गल न तपते हुए अपने से बाद के (अनन्तरवर्ती) बाहर के पुद्गलों को नही तपाते है। यह सूर्य का तापक्षेत्र है।

३–एक मान्यता यह है कि जो पुद्गल सूर्य के प्रकाश का स्पर्श करते हैं उनमें से कुछ पुद्गल तपते हैं, कुछ नही तपते हैं। कुछ पुद्गल तपने हुए अपने अनन्तरवर्ती बाहर के कुछ पुद्गलों को तपाते हैं एवं कुछ को नहीं तपाते। इस प्रकार सूर्य का तापक्षेत्र है।

हमारा कथन इस प्रकार है—

चन्द्र और सूर्य देवों के विमानों का जो यह प्रकाश (लेश्या) बाहर निकलकर बाह्य पदार्थों को प्रकाशित करता है, उन विमानों से निकली लेश्या के अपान्तरालों में कुछ छिन्न लेश्याए उत्पन्न होती हैं, वे मूल-छिन्न लेश्याएं अनन्तरवर्ती बाह्य पुद्गलों को प्रकाशित करती हैं। यह सूर्य का तापक्षेत्र है।

पुरुष की छाया का परिमाण

[१६][१] प्र०—ता कतिकट्ठे ते सूरिए पोरिसीच्छायं णिव्वत्तेति आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु—
ता अणुसमयमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिव्वत्तेइ आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ।

२—एगे पुण एवमाहंसु—
ता अणुमुहुत्तमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिव्वत्तेति आहितेति वदेज्जा,
एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं ता जाओ चेव ओयसंठितीए पणवीसं पडिवत्तीओ,
ताउगे चेव णेतव्वाओ—जाव—अणुउस्सप्पिणीमेव सूरिए पोरिसीएच्छायं णिव्वत्तेति आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—

ता सूरियस्स णं उच्चत्तं लेसं च पडुच्च छाउद्देसे, उच्चत्तं च छायं च पडुच्च लेसुद्देसे,
लेसं च छायं च पडुच्च उच्चतोद्देसे,
तत्थ खलु इमाओ दुवे पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु—
ता अत्थि णं से दिवसे, जंसि णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसीच्छायं निव्वत्तेइ,
अत्थि णं से दिवसे, जंसि णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसीच्छायं णिव्वत्तेति, एगे एवमाहंसु ।

२—एगे पुण एवमाहंसु—
ता अत्थि णं से दिवसे, जंसि णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसीच्छायं णिव्वत्तेति,
अत्थि णं से दिवसे, जंसि दिवसंसि सूरिए नो किंचि पोरिसीच्छायं णिव्वत्तेति ।

१—तत्थ जे ते एवमाहंसु
ता अत्थि ण से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसीयं छायं णिव्वत्तेति.
अत्थि णं से दिवसे जंसि ण दिवसंसि सूरिए दो पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ,
ते एवमाहंसु ।
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
तंसि च णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसीयं छायं निव्वत्तेति,
ता उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य लेसं अभिवड्ढेमाणे नो चेव णं निवुड्ढेमाणे ।
ता जता णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति,
जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तंसि णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं निव्वत्तेइ, तंजहा—
उग्गमणमुहुत्तंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य,
लेसं अभिवड्ढेमाणे नो चेव णं निवुड्ढेमाणे ।

२—तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—
ता अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं णिव्वत्तेइ,
अत्थि णं से दिवसे जंसि णं दिवसंसि सूरिए णो किंचि पोरिसियं छायं णिव्वत्तेति,
ते एवमाहंसु ।
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसिए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति
तंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं णिव्वत्तेति, तंजहा—
उग्गमणमुहुत्तंसि, अत्थमणमुहुत्तंसि य, लेसं अभिवड्ढेमाणे णो चेव णं निवुड्ढेमाणे ।
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति

तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति,
जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तंसि च णं दिवसंसि सूरिए णो किंचि पोरिसिए छायं णिव्वत्तेति, तंजहा—
उग्गमणमुहुतंसि य, अत्थमणमुहुत्तंसि य,
नो चेव णं लेसं अभिवड्ढेमाणे वा निवुड्ढेमाणे वा ।

[२] प्र०—ता कइकट्ठं ते सूरिए पोरिसीच्छायं निव्वत्तेइ आहियाति वइज्जा ?

उ०—तत्थ इमाओ छण्णउइ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु—
अत्थि णं ते से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए एगपोरिसीयं छायं निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु ।

२—एगे पुण एवमाहंसु—
ता अत्थि णं से देसे जंसि देसंसि सूरिए दुपोरिसियं छायं णिव्वत्तेति,
एवं एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं—जाव—छण्णउतिं पोरिसिय छाय णिव्वत्तेति,

१—तत्थ जे ते एवमाहंसु—
ता अत्थि णं से देसे, जंसि णं देसंसि सूरिए एगपोरिसियं छायं णिव्वत्तेति,
ते एवमाहंसु—
ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमातो सूरप्पडिहीतो बहिता अभिणिसट्ठाहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं
इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ जावतियं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं
एवतियाए एगाए अद्धाए
एगेणं छायाणुमाणप्पमाणेणं उमाए
तत्थ से सूरिए एगपोरिसीयं छायं णिव्वत्तेति ।

२—तत्थ जे ते एवमाहंसु—
ता अत्थि णं से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं णिव्वत्तेति,
ते एवमाहंसु,
ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमातो सूरियपडिधीतो बहिता अभिणिसट्ठिताहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं
इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागातो जावतियं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं
एवतियाहिं दोहिं अद्धाहिं दोहिं छायाणुमाणप्पमाणेहिं उमाए
एत्थ णं से सूरिए दुपोरिसियं छायं णिव्वत्तेति, एवं णेयव्वं—जाव—
९६, तत्थ जे ते एवमाहंसु—
ता अत्थि णं से देसे जंसि णं देसंसि सूरिए छण्णउतिं पोरिसियं छायं णिव्वत्तेति,
ते एवमाहंसु-
ता सूरियस्स णं सव्वहिट्ठिमातो सूरप्पडिधीओ बहिता अभिणिसट्ठाहिं लेसाहिं ताडिज्जमाणीहिं इमीसे
रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो जावतियं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं एवतियाहिं
छण्णवतीए छायाणुमाणप्पमाणेहिं उमाए
एत्थ णं सूरिए छण्णउतिं पोरिसियं छायं णिव्वत्तेति, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—

सातिरेगअउणट्ठिपोरिसीणं सूरिए पोरिसीछायं णिव्वत्तेति,
अवड्ढपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?
ता तिभागे गते वा सेसे वा ।

ता पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?
ता चउब्भागे गते वा सेसे वा ।
ता दिवड्ढपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?
ता पंचमभागे गते वा सेसे वा ।
एवं ३ द्धपोरिसिं छोढुं पुच्छा,
दिवसस्स भागं छोढुं वा करणं—जाव—ता अद्धअउणसट्ठिपोरिसी छाया दिवसस्सं क गते वा सेसे वा ?
ता एगूणवीससतभागे गते वा सेसे वा ।
ता अउणसट्ठिपोरिसी ण छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?
बावीससहस्सभागे गते वा सेसे वा ।
ता सातिरेग अउणसट्ठिपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गते वा सेसे वा ?
ता णत्थि किंचि गते वा सेसे वा ।
तत्थ खलु इमा पणवीसनिविट्ठ छाया पण्णत्ता,
तंजहा—
खंभछाया१, रज्जुछाया २, पागारछाया ३, पासायछाया ४, उवग्गछाया ५, उच्चत्तछाया ६, अणुलोमछाया ७, आरुभिता ८, समा ९, पडिहता १०, खीलच्छाया ११, पक्खच्छाया १२, पुरतोउदया १३, पुरिमकंठभाउवगता १४, पच्छिमकंठभाउवगता १५, छायाणुवादिणी १६, किट्टाणुवादिणी छाया १७, छाय-छाया १८, (गोलछाया—
तत्थ णं गोलच्छाया अट्ठविहा) पण्णत्ता, तंजहा—
गोलच्छाया १, अवड्ढगोलच्छाया २, गाढगोलछाया ३, अबड्ढगाढगोलछाया ४, गोलावलिच्छाया ५, अवड्ढगोलावलिच्छाया ६, गोलपुंजछाया ७, अवड्ढगोलपुंजछाया ८ ।

—सूर्य. सूत्र ३१ पृ. ९४-९५
—चन्द्र. सूत्र ३१

[१६][१] प्र०—सूर्य कितनी पौरुषी छाया का निर्माण करता है ?

उ०—इस विषय मे ये पच्चीस (अन्यतीर्थिको की) मान्यताएँ है—

१– एक मान्यता यह है कि प्रतिसमय सूर्य पौरुषी छाया का निर्माण करता है ।

२– एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त पौरुषी छाया का निर्माण करता है । इस प्रकार ओजसंस्थिति के समान यहां भी पच्चीस मान्यताएं समझ लेनी चाहिए । —यावत्—प्रतिउत्सर्पिणी में सूर्य पौरुषी छाया का निर्माण करता है ।

हम इस प्रकार कहते हैं—

सूर्य का प्रकाश जब बढ़ता है तब पौरुषी छाया कम होती है । छाया जब बढ़ती है तब प्रकाश कम होता है । प्रकाश जब मध्य अवस्था में होता है तब छाया भी मध्य अवस्था में होती है । एतद्विषयक ये दो मान्यताएँ हैं—

१– एक मान्यता यह है कि ऐसा भी दिन होता है जिसमे सूर्य चतुःपौरुषी छाया का निर्माण करता है और ऐसा भी दिन होता है जिसमें सूर्य द्विपौरुषी छाया का निर्माण करता है

२– एक मान्यता यह भी है कि—ऐसा भी दिन होता है जिसमें सूर्य द्विपौरुषी छाया बनाता है एवं ऐसा भी दिन होता है जिसमें सूर्य किंचित् भी पौरुषी छाया नही बनाता ।

१– इनमें से जो यह मानते हैं कि ऐसा भी दिन होता है जिसमें सूर्य चतुःपौरुषी छाया बनाता है एवं ऐसा भी दिन होता है जिसमें सूर्य द्विपौरुषी छाया का निर्माण करता है, उनका कथन

है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। उस दिन सूर्य चतुः पौरुषी छाया का निर्माण करता है। (यह छाया) उदयकाल में और अस्तकाल में (होती है) (उदयकाल से) प्रकाश बढ़ता है, न कि कम होता है। (अस्तकाल से प्रकाश कम होता है, न कि बढ़ता है।)

जब सूर्य सर्वबाह्यमंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। उस दिन सूर्य दोपौरुषी छाया का निर्माण करता है, यथा–उदयकाल में एवं अस्तकाल में। (उदयकाल से) प्रकाश बढ़ता है न कि कम होता है, इत्यादि।

२–जो यह मानते हैं कि ऐसा भी दिन होता है जिस दिन सूर्य द्विपौरुषी छाया का निर्माण करता है एवं ऐसा भी दिन होता है जब कि सूर्य किंचित् भी पौरुषी–छाया का निर्माण नहीं करता, उनका कथन है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। उस दिन सूर्य द्विपौरुषी छाया का निर्माण करता है, यथा–उदयकाल मे एवं अस्त- में। (उदयकाल से) प्रकाश बढ़ता है, न कि कम होता है, इत्यादि।

जब सूर्य सर्वबाह्यमंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। उस दिन सूर्य किंचित् भी पौरुषी छाया का निर्माण नही करता, यथा—उदयकाल मे एव अस्तकाल में। (इस समय) न तो प्रकाश की वृद्धि होती है, न हानि।

[२] प्र०—सूर्य कितनी पौरुषी छाया का निर्माण करता है ?

उ०—एतद्विषयक ये छियानवे मान्यताएँ हैं—

१–एक मान्यता यह है कि ऐसा भी देश (स्थान) है जिसमें सूर्य एक पौरुषी छाया का निर्माण करता है।

२–एक मान्यता यह है कि ऐसा भी देश है जिसमें सूर्य द्विपौरुषी छाया का निर्माण करता है। इस प्रकार छियानवे पौरुषी पर्यन्त समझना चाहिए।

१–इनमें से जिनकी मान्यता यह है कि ऐसा भी देश है जिसमें सूर्य एक पौरुषी छाया का निर्माण करता है, उनका कथन है कि सबसे नीचे रहा हुआ सूर्य बाहर निकलती हुई अपनी प्रभा से उद्योतित होता हुआ इस रत्नप्रभा पृथ्वी की अति सम एवं रमणीय भूमि से जितना ऊपर उठता है उतना एक अर्थ से एक छायानुमान-प्रमाण होता है। इस प्रकार सूर्य एक पौरुषी छाया का निर्माण करता है।

२–जिनकी मान्यता यह है कि ऐसा भी देश है जिसमें सूर्य द्विपौरुषी छाया का निर्माण करता है, उनका कथन है कि सबसे नीचे रहा हुआ सूर्य बाहर निकलती हुई अपनी प्रभा से उद्योतित होता हुता इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम एवं रमणीय भूभाग से जितना ऊपर उठता है उतना दूसरे अर्थ से दो छायानुमान प्रमाण होता है। इस प्रकार सूर्य द्विपौरुषी छाया का निर्माण करता है। इस प्रकार छियानवे (छायानुमान प्रमाण) पर्यन्त समझना चाहिए। —यावत्—जिनकी मान्यता यह है कि ऐसा भी देश है जिसमें सूर्य छियानवे पौरुषी छाया का निर्माण करता है, उनका कथन है कि सबसे नीचे रहा हुआ सूर्य बाहर निकलती हुई अपनी प्रभा से प्रकाशित होता हुआ इस रत्नप्रभा पृथ्वी की सम रमणीय भूमि से जितना

ऊंचा उठता है उतना छियानवे छायानुमान प्रमाण होता है। इस प्रकार सूर्य छियानवे पौरुषी छाया का निर्माण करता है।

हम इस प्रकार कहते हैं—

सूर्य उनसठ पौरुषी से अधिक पौरुषी-छाया का निर्माण करता है।

प्र०—अर्ध पौरुषी छाया आने पर दिन का कितना भाग व्यतीत हो जाता है एव कितना शेष रहता है ?

उ०—तृतीय भाग व्यतीत हो जाता है एवं बाकी का शेष रहता है।

प्र०—पौरुषी छाया आने पर दिन का कितना भाग व्यतीत हो जाता है एवं कितना शेष रहता है ?

उ०—चतुर्थ भाग व्यतीत हो जाता है एवं आगे का शेष रहता है।

प्र०—डेढ़ पौरुषी छाया आने पर दिन का कितना भाग व्यतीत हो जाता है एवं कितना शेष रहता है ?

उ०—पचम भाग व्यतीत हो जाता है एव बाद का शेष रहता है।

प्र०—इस प्रकार अर्ध पौरुषी बढ़ा-बढ़ा कर पूछना चाहिए एवं दिन का भाग भी बढ़ाते जाना चाहिए यावत्—साढ़े अठावन पौरुषी छाया आने पर दिन का कितना भाग व्यतीत हो जाता है एवं कितना शेष रहता है ?

उ०—एक सौ उन्नीसवां भाग व्यतीत हो जाता है एवं बाकी का शेष रहता है।

प्र०—उनसठ पौरुषी छाया आने पर दिन का कितना भाग व्यतीत हो जाता है एवं कितना शेष रहता है ?

उ०—एक हजार बाईसवा भाग व्यतीत हो जाता है एवं बाकी का शेष रहता है।

प्र०—उनसठ पौरुषी से अधिक छाया आने पर दिन का कितना भाग व्यतीत हो जाता है एवं कितना शेष रहता है ?

उ०—कुछ भी व्यतीत नही होता। सब शेष रहता है।

छाया पच्चीस प्रकार की है, यथा[1]—

(१) स्तम्भछाया (२) रज्जुछाया (३) प्राकारछाया (४) प्रासादछाया (५) उगग्गा (उपाग्र) छाया (६) उच्चत्वछाया (७) अनुलोमछाया (८) आरुभितछाया (९) समछाया (१०) प्रतिहत-छाया (११) कीलछाया (१२) पक्षछाया (१३) पुरतोउदया छाया (१४) पुरिमकंठभाउवगता छाया (१५) पच्छिमकठभाउवगता छाया (१६) छायानुवादिनी छाया (१७) किट्ठाणुवादिनी छाया (१८) छाया-छाया, एवं आठ प्रकार की गोलछाया—

(१) गोलछाया (२) अर्धगोलछाया (३) गाढगोलछाया (४) अर्धगाढलगोलछाया (५) गोलावलिछाया (६) अर्धगोलावलिछाया (७) गोलपुंजछाया (८) अर्धगोलपुंजछाया।

अर्धमंडल-भ्रमण-व्यवस्था

[१७][१] प्र०—ता कहं ते अद्धमंडलसंठिती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमे दुवे अद्धमंडलसंठिती पण्णत्ता, तंजहा—दाहिणा चेव अद्धमंडलसंठिता, उत्तरा चेव अद्धमंडलसंठिती।

[२] प्र०—ता कहं ते दाहिणअद्धमंडलसंठिती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्द०—जाव—परिक्खेवेणं,

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरंदाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,

---

१. छाया पच्चीस प्रकार की बतलाई गई है किन्तु भेदगणना करने पर छस भेद हो जाते हैं। टीकाकार ने भी इसी कारण कई व्यवीषिव को स्पष्ट नहीं किया।

तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राती भवति ।
से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाते अभिंतराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं अट्ठारसमुहुत्तेहिं दिवसे भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राती, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया ।
से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाए अभिंतरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलं संठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए अभिंतरतच्चं दाहिणं अद्धमंडलं संठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं अट्ठारसमुहुत्तेहिं दिवसे भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया ।
एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तदणंतराओऽणंतरंसि तंसि २ देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठितिं संकममाणे २ दाहिणाए २ अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाते,
सव्वबाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,
एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमछम्मासस्स पज्जवसाणे ।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि उत्तराते अंतरभागाते तस्सादिपदेसाते बाहिराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,
ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं दाहिणअद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा,
दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए ।
से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि
दाहिणाते अंतराए भागाते तस्सादिपदेसाते
बाहिराणंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं उत्तरअद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति
तदा णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया ।
एवं खलु एतेणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तदाणंतराउ तदाणंतरं तंसि २ देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठितिं संकममाणे संकममाणे उत्तराए अंतराभागाते तस्सादिपदेसाए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरदाहिणं अद्धमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।

एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस णं आदिच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ।

[३] प्र०—ता कहं ते उत्तरा अद्धमंडलसंठिती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-जाव-परिक्खेवेणं,
ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरउत्तरमंडलसंठितिं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
जहा दाहिणा तहा चेव, णवरं उत्तरट्ठिओ अभिंतराणंतरं दाहिणं उवसंकमइ ।

बाहिणातो अब्भिंतरं तच्चं उत्तरं उवसंकमति ।
एवं खलु एएणं उवाएणं—जाव-सव्वबाहिरं बाहिणं उवसंकमति,
सव्वबाहिणं बाहिणं उवसंकमति २ त्ता बाहिणातो बाहिराणंतरं उत्तरं उवसंकमति
उत्तरातो बाहिरं तच्चं बाहिणं, तच्चातो बाहिणातो संकममाणे २—जाव-सव्वब्भंतरं उवसंकमति, तहेव ।
एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।
एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस णं आदिच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे । गाहाओ ।

—सूर्य. सूत्र १२-१३ पृ. १६-१७
—चन्द्र. सूत्र १२-१३

[१७]]१] प्र०—(सूर्य की) अर्धमंडलपरिभ्रमणव्यवस्था अर्थात् प्रत्येक अहोरात्र में आधे मडल में भ्रमण करने की व्यवस्था किस प्रकार है ?

उ०—अर्धमंडलपरिभ्रमणव्यवस्था (अर्धमंडलसस्थिति) दो प्रकार की है—
दक्षिणार्ध मंडलसंस्थिति और उत्तरार्ध मंडलसंस्थिति ।

[२] प्र०—दक्षिणार्ध मंडलसस्थिति किस प्रकार की है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप समस्त द्वीप-समुद्रों (के मध्य मे है)—यावत्—परिधियुक्त है । जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर दक्षिणार्ध मडलसस्थिति पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एव जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है ।

वहां से निकलता हुआ सूर्य नये सवत्सर मे आता हुआ प्रथम अहोरात्र मे दक्षिण के अन्तर्भाग मे उसके प्रथम प्रदेश से आभ्यन्तरान्तर उत्तरार्ध मडल-संस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है । जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर उत्तरार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब १८−$\frac{३}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है एवं १२+$\frac{३}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है । वहां से निकलता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र मे उत्तर के अन्तर्भाग से उसके प्रथम प्रदेश मे आभ्यन्तर-तृतीय दक्षिणार्ध मडलसंस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है । जब सूर्य आभ्यन्तर-तृतीय दक्षिणार्ध मण्डल-संस्थिति पर संक्रान्त हो गति करता है तब १८−$\frac{५}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है एवं १२+$\frac{५}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है ।

इस प्रकार निकलता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे तत्-तत् प्रदेश से तत्-तत् अर्धमंडलसंस्थिति पर संक्रान्त होता हुआ दक्षिण के अन्तर्भाग से उसके प्रथम प्रदेश मे सर्वबाह्य उत्तरार्धमंडल संस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है ।

जब सूर्य सर्वबाह्य उत्तरार्धमंडल सस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एव जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है । यह प्रथम छह मास एवं प्रथम छह मास के पर्यवसान के विषय में है ।

वहां से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय छह मास में आता हुआ प्रथम अहोरात्र मे उत्तर के अन्तर्भाग से उसके प्रथम प्रदेश से बाह्यानन्तर दक्षिणार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है । जब सूर्य बाह्यानन्तर दक्षिणार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब १८−$\frac{३}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं १२+$\frac{३}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है ।

वहां से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में दक्षिण के अन्तर्भाग से उसके प्रथम प्रदेश से बाह्य-तृतीय उत्तरार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसक्रान्त हो गति करता है ।

जब सूर्य बाह्य-तृतीय उत्तरार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब १८−$\frac{५}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं १२+$\frac{५}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है ।

इस प्रकार प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे तत्-तत् प्रदेश से तत्-तत् अर्धमंडल-संस्थिति पर संक्रान्त होता हुआ उत्तर के अन्तर्मार्ग से उसके प्रथम प्रदेश से सर्वाभ्यन्तर दक्षिणार्ध मंडल संस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर दक्षिणार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है। यह द्वितीय छह मास एवं द्वितीय छह मास के पर्यवसान के विषय में है। यह आदित्यसंवत्सर एवं आदित्यसंवत्सर के पर्यवसान के सम्बन्ध में है।

[३] प्र०—उत्तरार्ध मंडलसंस्थिति कैसी है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप सर्वद्वीप—यावत्—परिधि वाला है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर उत्तरार्ध मंडलसस्थिति पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। यह सब दक्षिणार्ध मंडलसंस्थिति के समान ही है। इतना अन्तर है कि इसमें सूर्य उत्तर से आभ्यन्तरानन्तर दक्षिणार्धसंस्थिति पर उपसंक्रमण करता है एवं दक्षिण से आभ्यन्तर-तृतीय उत्तरार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसंक्रमण करता है।

इस प्रकार—यावत्—सर्वबाह्य दक्षिणार्ध मंडलसस्थिति पर उपसंक्रमण करता है। सर्वबाह्य दक्षिणार्ध मंडलसंस्थिति पर उपसंक्रान्त हो दक्षिण से बाह्यानन्तर उत्तरार्ध मंडल संस्थिति पर उपसंक्रमण करता है। उत्तर से बाह्यतृतीय दक्षिणार्ध मंडलसस्थिति पर (संक्रमण करता है)। तृतीय दक्षिणार्ध मंडलसस्थिति से संक्रमित होता हुआ—यावत्—उसी प्रकार सर्वाभ्यन्तर पर उपसंक्रान्त होता है। यह द्वितीय छह मास एवं द्वितीय छह मास के पर्यवसान के विषय में है। यह आदित्यसंवत्सर एवं आदित्यसंवत्सर के पर्यवसान के विषय में है।

सूर्यमंडलों की संख्या

[१८][१] प्र०—कइ णं भंते ! सूरमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोअमा ! एगे चउरासीए मंडलसए पण्णत्ते इति।

[१८][१] प्र०—भगवन् ! सूर्य के मंडल कितने है ?

उ०—गौतम ! १८४ सूर्य-मण्डल हैं।

जम्बूद्वीप में सूर्यमंडलों की संख्या

[१९][१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयं ओगाहित्ता केवइया सूरमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे २ असीयं जोयणसयं ओगाहित्ता एत्थ णं पण्णट्ठी सूरमंडला पण्णत्ता[1]।

[१९][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितना अवगाहन करने पर कितने सूर्य-मण्डल हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप में एक सौ अस्सी योजन क्षेत्र अवगाहन करके ६५ सूर्यमण्डल हैं।

लवणसमुद्र में सूर्यमंडलों की संख्या

[२०][१] प्र०—लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं ओगाहेत्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! लवणसमुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं एगूणवीसे सूरमंडलसए पण्णत्ते। एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे अ समुद्दे एगे चुलसीए सूरमंडलसए भवंतीतिमक्खायंति।

—जंबू. सूत्र १२७ पृ. ४३४

१– सम. ६५ सूत्र १

[२] प्र०—भगवन् ! लवणसमुद्र में कितने क्षेत्र में कितने सूर्य-मण्डल हैं ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र में ३३० योजन के क्षेत्र में ११९ सूर्य-मण्डल हैं।

इस प्रकार सब मिल कर जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र में १८४ सूर्य-मण्डल हैं।

निषध और नीलवंत पर्वत पर सूर्यमंडलों की संख्या

[२१] निसढे णं पव्वए तेवट्ठि सूरोदया पण्णत्ता।
एवं नीलवंते वि।

—सम० ६३ सूत्र ३-४

[२१] निषध पर्वत पर ६३ सूर्योदय (सूर्यमण्डल) कहे गए है।
इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत पर भी (६३ सूर्यमण्डल) हैं।

सूर्यमंडलों का क्षेत्र

[२२][१] प्र०—सव्वब्भंतराओ णं भंते सूरमंडलाओ केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए सूरमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए सूरमंडले पण्णत्ते।

—जंबू. सूत्र १२८ पृ. ४३४

[२२][१] प्र०—भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर सूर्यमण्डल से कितनी दूरी पर सर्वबाह्य सूर्यमण्डल है ?

उ०—गौतम ! ५१० योजन की दूरी पर सर्वबाह्य सूर्यमण्डल है।

मंडल का क्षेत्र

[२३][१] प्र०—ता के ते चिन्नं पडिचरंति आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमे दुवे सूरिया पण्णत्ता, तंजहा—
भारहे चेव सूरिए, एरवए चेव सूरिए।
ता एते णं दुवे सूरिए पत्तेयं पत्तेयं तीसाए-तीसाए मुहुत्तेहिं एगमेगं अद्धमंडलं चरंति,
सट्ठीए-सट्ठीए मुहुत्तेहिं एगमेगं मंडलं संघातंति।
ता णिक्खममाणे खलु एते दुवे सूरिया णो अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति,
पविसमाणा खलु एते दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति,
तं सतमेगं चोतालं।

[२] प्र०—तत्थ के हेऊ वदेज्जा ?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे—जाव—परिक्खेवेणं,
तत्थ णं अयं भारहए चेव सूरिए जंबुद्दीवस्स २ पाईण-पडीणायत-उदीण-दाहिणायताए जीवाय मंडलं चउवीसएणं सतेणं छेत्ता
दाहिण-पुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउतिय-सूरियसताइं जाइं अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरति,
उत्तर-पच्चत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि एक्काणउतिं सूरियसताइं जाइं सूरिए अप्पणो चेव चिण्णं पडिचरति,
तत्थ अयं भारहे सूरिए एरवतस्स सूरियस्स
जंबुद्दीवस्स२ पाईण-पडिणीयायताए उदीणदाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सतेणं छेत्ता
उत्तर-पुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउतिं सूरियसताइं-जाव-सूरिए परस्स चिण्णं पडिचरति,
दाहिण-पच्चत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि
एक्कूणणउतिं सूरियसताइं जाइं सूरिए परस्स चेव चिण्णं पडिचरति।

तत्थ अयं एरवए सूरिए जंबुद्दीवस्स २ पाईण-पडीणायताए
उदीण-दाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सतेणं छेत्ता
उत्तर-पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि बाणउतिं सूरियमयाइं-जाव—
सूरिए अप्पणो चेव चिण्णं पडिचरति ।
दाहिण-पुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि एक्काणउतिं-सूरियमताइं-जाव—
सूरिए अप्पणो चेव चिण्णं पडिचरति ।
तत्थ णं एयं एरवतिए सूरिए भारहस्स सूरियस्स जंबुद्दीवस्स पाईण-पडीणायताए
उदीण-दाहिणायताए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सतेणं छित्ता
दाहिण-पच्चत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउतिं सूरियमताइं-जाव—
सूरिए परस्स चिण्णं पडिचरति,
उत्तर-पुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि एक्काणउतिं सूरियमताइं जाइं
सूरिए परस्स चेव चिण्णं पडिचरति,
ता णिक्खममाणे खलु एते दुवे सूरिया णो अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति,
पविसमाणा खलु एते दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति,
सतमेगं चोतालं । गाहाओ ।

—सूर्य० सूत्र १४ पृ० २१-२२
—चन्द्र० सूत्र १४.

[२३][१] प्र०—भगवन् ! कौन-सा सूर्य (स्वयं या पर के द्वारा) चीर्ण (क्षेत्र) में प्रतिचार करता है ?

उ०—इस (जम्बूद्वीप) मे ये दो सूर्य हैं, यथा—भरत का सूर्य और ऐरावत का सूर्य । ये दोनों सूर्य भिन्न भिन्न तीस-तीस मुहूर्त्त में प्रत्येक अर्ध मण्डल पर गमन करते हैं एवं साठ-साठ मुहूर्त्त में प्रत्येक मण्डल को पूरा करते हैं ।

निकलते हुए ये दोनों सूर्य एक-दूसरे के क्षेत्र में नहीं चलते । प्रविष्ट होते हुए ये दोनों सूर्य एक-दूसरे के क्षेत्र में चलते हैं । यह (प्रवेश-क्षेत्र) १८४ (मण्डल) है ।

[२] प्र०—इसका क्या कारण है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप—यावत्—परिधि वाला है । यहां यह भरत का सूर्य जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम की लम्बाई व उत्तर-दक्षिण की चौड़ाई की जीवा से मण्डल के १२४ भाग करने पर दक्षिण-पूर्व के चतुर्भाग मण्डल में जब ९२ वें मण्डल से निकलता है तब वह अपने ही क्षेत्र में गमन करता है एवं उत्तर-पश्चिम के चतुर्भाग मण्डल मे जब ९१ वें मण्डल से निकलता है तब वह सूर्य अपने ही क्षेत्र में गमन करता है ।

यह भरत का सूर्य ऐरावत के सूर्यमण्डल के जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम की लम्बाई एवं उत्तर-दक्षिण की चौड़ाई की जीवा से १२४ भाग करने पर उत्तर-पूर्व के चतुर्भाग मण्डल में ९२ वें मण्डल से निकलने पर दूसरे के क्षेत्र में चलता है एवं दक्षिण-पश्चिम के चतुर्भाग मण्डल मे ९१ वें मण्डल से निकल कर दूसरे के क्षेत्र में ही गमन करता है ।

यह ऐरावत का सूर्य जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम की लम्बाई एवं उत्तर-दक्षिण की चौड़ाई की जीवा से मण्डल के १२४ भाग करने पर उत्तर-पूर्व के चतुर्भाग मण्डल में जब ९२ वें मण्डल से निकलता है तब वह अपने ही क्षेत्र में विचरण करता है एवं दक्षिण-पूर्व के चतुर्भाग मण्डल में जब ९१ वें मण्डल से निकलता है तब वह अपने ही क्षेत्र में विचरता है ।

यह ऐरावत का सूर्य जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम की लम्बाई एवं उत्तर-दक्षिण की चौड़ाई की जीवा से १२४ भाग करने पर दक्षिण-पश्चिम के चतुर्भाग मण्डल में ९२ वें मण्डल से निकलने

पर दूसरे के क्षेत्र में गमन करता है एवं उत्तर-पूर्व के चतुर्भाग मण्डल में ९१ वें मण्डल से निकलने पर दूसरे के क्षेत्र में ही गमन करता है।

इस प्रकार निकलते हुए ये दोनों सूर्य एक-दूसरे के क्षेत्र में नहीं जाते। प्रविष्ट होते हुए ये दोनों सूर्य एक-दूसरे के क्षेत्र में जाते हैं। यह प्रवेश (क्षेत्र) १८४ (मण्डल) है।

यहां गाथाएं है[1]।

मंडलों का परिमाण

[२४][१] प्र०—ता सव्वाणि णं मंडलवया केवतियं बाहल्लेणं,
केवतियं आयाम-विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं आहितात्ति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमा तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु—
ता सव्वाणि णं मंडलवता जोयणं बाहल्लेणं,
एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसतं आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसहस्साइ तिण्णि य नवणउए जोयणसते परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

२—एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वाणि णं मंडलवता जोयणं बाहल्लेणं,
एगं जोयणसहस्सं एगं च चउतीसं जोयणसतं आयाम-विक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसहस्साइं चत्तारि बिउत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

३—एगे पुण एवमाहंसु—
ता जोयणं बाहल्लेणं, एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसतं आयाम-विक्खंभेणं,
तिन्नि जोयणसहस्साइं चत्तारि पंचुत्तरे जोयणसते परिक्खेवेण पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु।

वयं पुण एवं वयामो—
ता सव्वावि मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं,
अणियता आयाम-विक्खंभेणं परिक्खेवेणं आहितात्ति वदेज्जा।

[२] प्र०—तत्थ णं को हेऊति वदेज्जा ?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे २—जाव—परिक्खेवेणं,
ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तया णं सा मंडलवता अडतालीसं[2] एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं,
णवणउइ जोयणसहस्साइं छच्च चत्तालीसे [3]जोयणसते आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसतसहस्साइं पण्णरस जोयणसहस्साइं एगूणणउति जोयणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति।
ता जया णं सूरिए अब्भिंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं सा मंडलवता अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं,

---

१. ये गाथाएँ उपलब्ध नहीं हैं।
२. सम० ४८ सूत्र ३।
३. सम० ९९ सूत्र ४-५-६.

णवणवई जोयणसहस्साइं छच्च पणताले जोयणसते पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसतसहस्साइं पन्नरसं च सहस्साइं एगं सत्तुत्तरं जोयणसतं किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं,
तदा णं दिवस-रातिप्पमाणं तहेव,
से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
ता जया णं सूरिए अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तया णं सा मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं,
णवणवति जोयणसहस्साइं छच्च एक्कावण्णे जोयणसते णव य एगट्ठिभागा जोयणस्स आयामविक्खंभेणं।
तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पन्नरस य सहस्साइं एगं च पणवीसं जोयणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते,
तता णं दिवस-राई तहेव।

एवं खलु एतेणं णएणं णिक्खममाणे सूरिए तताणंतरातो तदाणंतरं मंडलातो मंडलं उवसंकमाणे २ पंच २ जोयणाइं पणतीसं च एकट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि अभिवड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोयणाइं परिरयवुड्ढि अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति।
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तदा णं सा मंडलवता अडतालीसं एगट्ठिभागा जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोयणसते आयामविक्खंभेणं,
तिन्नि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं तिण्णि य पण्णरसुत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं,
तदा णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,
एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तता णं सा मंडलवया अडतालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं
एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउपण्णे जोयणसते छव्वीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं,
तिन्नि जोयणसतसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं दोण्णि य सताणउते जोयसते परिक्खेवेणं पण्णत्ता,
तता णं राइंदियं तहेव।
से पविसमाणे सूरिए दोच्चे अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
ता जया णं सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं सा मंडलवता अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं,
एगं जोयणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसए बावण्णं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसतसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं दोण्णि अउयणासीते जोयणसते परिक्खेवेणं पण्णत्ता,
दिवस-राई तहेव।

एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए तताणंतरातो तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ पंच २ जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि णिवुड्ढेमाणे २ अट्ठारस जोयणाइं परिरयवुड्ढि णिवुड्ढेमाणे सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति।
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं सा मंडलवया अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं,
णवणउतिं जोयणसहस्साइं छच्च चत्तालं जोयणसए आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पण्णरस य सहस्साइं अउणाउतिं च जोयणाइं किंचिविसेसाहियाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,

जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे,
एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस णं आदिच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे ।
ता सव्वावि णं मंडलवता अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं[1]
सव्वावि मंडलंतरिया दो जोयणाइं विक्खंभेणं,
एस णं अद्धा तेसीयसतपडुप्पणो पंचदसुत्तरे जोयणसते आहितात्ति वदेज्जा ।

[२] प्र०—ता अब्भितरातो मंडलवताओ बाहिरं मंडलवतं, बाहिराओ वा अब्भितरं मंडलवतं
एस णं अद्धा केवतियं आहितात्ति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसते अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स आहितात्ति वदेज्जा ।

[३] प्र०—ता अब्भंतराओ मंडलवतातो बाहिरमण्डलवता, बाहिरातो० अब्भंतरमंडलवता
एस णं अद्धा केवतियं आहितात्ति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचणवुत्तरे जोयणसते तेरस य एगट्ठिभागे जोयणस्स आहितात्ति वदेज्जा ।

[४] प्र०—अब्भितराते मंडलवताए बाहिरा मंडलवया, बाहिराते मंडलवताते अब्भंतरमंडलवया
एस णं अद्धा केवतियं आहितात्ति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचदसुत्तरे जोयणसए आहियाति वदेज्जा ?

—सूर्य. सूत्र २० पृ. ३७-३९
—चन्द्र. सूत्र २०
—जंबू. सूत्र १३२ पृ. ४३८

[२४][१] प्र०—ये सब मण्डल (सूर्यमंडल) कितने मोटे, कितने लंबे-चौड़े एवं कितनी परिधि वाले हैं ?

उ०—एतद्विषयक (अन्यतीर्थिकों की) निम्नलिखित तीन मान्यताएं हैं—

१–कोई कहते है कि ये सब मंडल एक योजन मोटे, ११३३ योजन लम्बे-चौड़े एवं ३३९९ योजन की परिधि वाले है ।

२–कोई-कोई कहते है कि ये सब मंडल एक योजन मोटे, ११३४ योजन लम्बे-चौड़े एवं ३४०२ योजन की परिधि वाले हैं ।

३–किसी का कथन है कि ये एक योजन मोटे, ११३५ योजन लम्बे-चौड़े एवं ३४०५ योजन की परिधि वाले हैं ।

हमारा कथन इस प्रकार है—
ये सब मंडल $\frac{४५}{६१}$ योजन मोटे, अनियत लम्बाई चौड़ाई एवं परिधि वाले हैं ।

[२] प्र०—इसका क्या कारण है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप-यावत्-परिधि वाला है । इसमें जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब वह मंडल $\frac{४५}{६१}$ योजन मोटा, ९९६४० योजन लंबा-चौड़ा एवं ३१५०८९ योजन से किंचित् विशेषाधिक परिधि वाला होता है । उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता

१–सम. ४८ सूत्र

है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। वहां से निकलता हुआ सूर्य नये संवत्सर में आता हुआ प्रथम अहोरात्र में आभ्यन्तरानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब वह मंडल $\frac{४}{६}$ योजन मोटा, ९९६४५$\frac{३५}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा एवं ३१५१०७ योजन से किंचित् विशेष न्यून परिधि वाला होता है। उस समय दिन-रात का प्रमाण भी उसी हिसाब से होता है।

वहां से निकलता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में आभ्यन्तर-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य आभ्यन्तर-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब वह मंडल $\frac{४}{६}$ योजन मोटा, ९९६५१ $\frac{६}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा एवं ३१५१२५ योजन की परिधि वाला होता है। उस समय दिन-रात उसी हिसाब से होता है।

इस प्रकार निकलता हुआ सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल पर उपसंक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल में ५$\frac{३५}{६१}$ योजन लंबाई-चौड़ाई सहित एवं १८ योजन परिधि में वृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है।

जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब वह मंडल $\frac{४}{६}$ योजन मोटा, १००६६० योजन लंबा-चौडा एवं ३१८३१५ योजन की परिधि वाला होता है। उस समय, उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। यह प्रथम छह मास एवं प्रथम छह मास के पर्यवसान के संबंध में है।

वहा मे प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय छह मास में आता हुआ प्रथम अहोरात्र मे बाह्यानन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है। जब सूर्य बाह्यानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब वह मंडल $\frac{४}{६}$ योजन मोटा, १००६५४$\frac{३६}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा एवं ३१८२९७ योजन की परिधि वाला होता है। उस समय रात-दिन उसी हिसाब से होते है।

वहां से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में बाह्य-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है। जब सूर्य बाह्य-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब वह मंडल $\frac{४}{६}$ योजन मोटा, १००६४८$\frac{२३}{६१}$ योजन लंबा-चौड़ा एवं ३१८२७९ योजन की परिधि वाला होता है। (उस समय) दिन-रात उसी हिसाब से होते हैं।

इस प्रकार प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल में ५$\frac{३५}{६१}$ योजन की चौड़ाई (लंबाई सहित) में एवं १८ योजन की परिधि में कमी करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब वह मंडल $\frac{४}{६}$ योजन मोटा, ९९६४० योजन लम्बा-चौड़ा एवं ३१५०८९ योजन से किंचित् विशेषाधिक की परिधि वाला होता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

यह द्वितीय छह मास एवं द्वितीय छह मास के पर्यवसान के विषय में है। यह आदित्यसंवत्सर एवं आदित्यसंवत्सर के पर्यवसान के विषय में समझना चाहिए।

ये सभी मंडल $\frac{४}{६}$ योजन मोटे हैं। सभी मंडलों का अन्तर दो योजन की चौड़ाई (लंबाई सहित) का है। उक्त मार्ग १८३ दिन में पूर्ण होने वाला ५१० योजन प्रमाण है।

[३] प्र०—अभ्यन्तर मंडल (के अंदर के अन्त) से बाह्य मंडल (के अन्दर के अन्त) तक एवं बाह्य मंडल (के अन्दर के अन्त) से अभ्यन्तर मंडल (के अन्दर के अन्त) तक का मार्ग कितना है ?

उ०—५१० योजन है।

[४] प्र०—अभ्यन्तर मंडल के (अन्दर के अन्त) से बाह्य मंडल के (बाह्यान्त) तक एवं बाह्य मंडल (के बाह्यान्त) से अभ्यन्तर मंडल (के अन्दर के अन्त) तक का मार्ग कितना है ?

उ०—५१०$\frac{४६}{६१}$ योजन है ।

[५] प्र०—आभ्यन्तर मंडल (के बाह्यान्त) से बाह्य मडल (के अन्दर के अन्त) तक एवं बाह्य मंडल (के अन्दर के अन्त) से अभ्यन्तर मंडल (के बाह्यान्त) तक का मार्ग कितना है ?

उ०—५०९$\frac{१३}{६१}$ योजन है ।

[६] प्र०—अभ्यन्तर मंडल (के बाह्यान्त) से बाह्य मंडल (के बाह्यान्त) तक एवं बाह्य मंडल (के बाह्यान्त) से अभ्यन्तर मंडल (के बाह्यान्त) तक का मार्ग कितना है ?

उ०—५१० योजन है ।

सूर्यमंडलों की लंबाई, चौड़ाई, हानि-वृद्धि

[२५][१] प्र०—**जंबुद्दीवे दीवे सव्वब्भंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?**

उ०—**गोयमा ! णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च चत्तालं जोयणसए आयामविक्खंभेणं,**
तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं पण्णरस य जोयणसहस्साइं एगूणणउइं च जोयणाइं किंचिविसेसाहिआइं परिक्खेवेणं ।

[२] प्र०—**अब्भंतराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?**

उ०—**गोयमा ! णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च पणयाले जोयणसए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयाम-विक्खंभेणं.**
तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पण्णरस य जोयणसहस्साइं एगं सत्तुत्तरं जोयणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

[३] प्र०—**अब्भंतरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?**

उ०—**गोयमा ! णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च एक्कावण्णे जोयणसए णव य एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयामविक्खंभेणं,**
तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं पण्णरस जोयणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोयणसयं परिक्खेवेणं, एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं उवसंकममाणे २ पंच २ जोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि अभिवड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोयणाइं परिरयवुड्ढि अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

[२५][२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित सर्वाभ्यन्तर सूर्यमंडल कितना लम्बा चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! ९९६४० योजन लंबा-चौड़ा एवं ३१५०८९ योजन से कुछ अधिक परिधि वाला है ।

[२] प्र०—भगवन् ! अभ्यन्तरानन्तर (दूसरा) सूर्यमंडल कितना लबा-चौड़ा और कितनी परिधि वाला है ।

उ०—गौतम ! ९९६४५$\frac{३५}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा और ३१५१०७ योजन की परिधि वाला है ।

[३] प्र०—भगवन् ! अभ्यन्तरतृतीय सूर्यमंडल कितना लम्बा-चौड़ा और कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! ९९६५१$\frac{६}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा और ३१५१२५ योजन की परिधि वाला है ।
इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मंडल पर उपसंक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल में ५$\frac{३५}{६१}$ योजन चौड़ाई (लम्बाई सहित) की वृद्धि करता हुआ एवं १८ योजन परिधि में बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है ।

[४] प्र०—सव्वबाहिरए णं भंते ! सूरमंडले केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोयणसए आयामविक्खंभेणं
तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि य पण्णरसुत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं ।

[५] प्र०—बाहिराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउप्पण्णे जोयणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउए जोअणसए परिक्खेवेणंति ।

[६] प्र०—बाहिरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइयं आयामविक्खंभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसए बावण्णं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स आयामविक्खंभेणं,
तिण्णि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि अ अउणासीए जोअणसए परिक्खेवेणं, एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ पंच-पंच जोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स
एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि णिक्खुड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोयणाइं परिरयवुड्ढि णिक्खुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

—जंबू० सूत्र १३२ पृ० ४३८
—सूर्य० सूत्र २० पृ० ३७-३९
—चन्द्र० ,, ,,

[४] प्र०—भगवन् ! सर्वबाह्य सूर्यमण्डल कितना लम्बा-चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! १००६६० योजन लम्बा-चौड़ा एवं ३१८३१५ योजन की परिधि वाला है ।

[५] प्र०—भगवन् ! बाह्यानन्तर (बाहर से दूसरा) सूर्यमण्डल कितना लम्बा-चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! १००६५४$\frac{६}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा, और ३१८२९७ योजन की परिधि वाला है ।

[६] प्र०—भगवन् ! (बाह्यतृतीय सूर्यमण्डल कितना लम्बा-चौड़ा और कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! १००६४८$\frac{५३}{६१}$ योजन लम्बा-चौड़ा और ३१८२७९ योजन की परिधि वाला है ।
इस क्रम से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मण्डल में ५$\frac{३}{६१}$ योजन चौड़ाई (लम्बाई सहित) की कमी करता हुआ एवं १८ योजन परिधि में घटाता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है ।

सूर्यमंडलों का अन्तर

[२५][१] प्र०—सूरमंडलस्स णं भंते ! सूरमंडलस्स य केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोअमा ! दो जोयणाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—जम्बू० सूत्र १२९ पृ० ४३४

[२५][१] प्र०—भगवन् ! (एक) सूर्यमण्डल से (दूसरे) सूर्यमण्डल का कितना अन्तर है ?

उ०—गौतम ! दो योजन का अन्तर है ।

मेरु पर्वत से सूर्यमंडलों का अन्तर

[२६][१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोयणसए सव्वब्भंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ।

[२] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए सव्वब्भंतराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य बावीसे जोयणसए अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स अबाहाए अब्भंतराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ।

[३] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्य केवइयाए अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोआलीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य पणवीसे जोयणसए पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते इति ।

एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयणंतरातो मंडलाओ तयणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे दो-दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अबाहाए बुड्ढि-अभिवड्ढेमाणे२ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइति ।

[४] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए सव्वबाहिरे सूरमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्ण य तीसे जोयणसए अबाहाए सव्वबाहिरे सूरमंडले पण्णत्ते ।

[५] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए सव्वबाहिराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तेरस य एगसट्ठिभाए जोयणस्स अबाहाए बाहिराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ।

[६] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयाए अबाहाए बाहिरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउवीसे जोयणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स अबाहाए बाहिरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते,

एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे-संकममाणे दो-दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे मंडले अबाहा बुद्धि णिबुड्ढेमाणे२ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

—जम्बू० सू० १३१ पृ० ४३६

[२६]]१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर सूर्यमंडल कितनी दूरी पर है ?

उ०—गौतम ! सर्वाभ्यन्तर सूर्यमंडल ४४८२० योजन की दूरी पर है ।

[२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से आभ्यंतरानन्तर सूर्यमंडल कितनी दूरी पर है ?

उ०—गौतम ! ४४८२२$\frac{४}{६१}$ योजन की दूरी पर आभ्यन्तरानन्तर मंडल है ।

[३] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से आभ्यन्तरतृतीय सूर्यमंडल कितनी दूरी पर है ?

उ०—गौतम ! आभ्यन्तरतृतीय सूर्यमडल ४४८२५$\frac{३५}{६१}$ योजन की दूरी पर है ।

इस क्रम से निकलता हूआ सूर्य एक के पश्चात् दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल की दूरी में २$\frac{४८}{६१}$ योजन की वृद्धि करता हूआ सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है ।

[४] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से सर्वबाह्य सूर्यमंडल कितनी दूरी पर है ?

उ०—गौतम ! ४५३३० योजन की दूरी पर सर्वबाह्य सूर्यमंडल है ।

[५] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से बाह्यानन्तर सूर्यमंडल कितनी दूरी पर है ?

उ०—गौतम ! ४५३२७$\frac{1}{3}$ योजन की दूरी पर बाह्यान्तर सूर्यमंडल है ।

[६] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीपस्थित मेरु पर्वत से बाह्यतृतीय सूर्यमंडल कितनी दूरी पर है ?

उ०—गौतम ! बाह्यतृतीय सूर्यमंडल ४५३२४$\frac{2}{3}$ योजन की दूरी पर है ।

इस क्रम से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मडल पर सक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल की दूरी में २$\frac{4}{6}$ योजन की कमी करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है ।

मंडलों में सूर्यगति

[२७][१] प्र०—ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरातो मंडलातो सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
सव्वबाहिरातो मंडलातो सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
एस णं अद्धा केवतियं रातिंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता तिण्णि छावट्ठे रातिंदियसए रातिंदियग्गेणं आहितेति वदेज्जा ।

[२] प्र०—ता एताए अद्धाए सूरिए कति मंडलाइं चरति ?

उ०—ता चुलसीयं मंडलसतं चरति, बासीति मंडलसतं दुक्खुत्तो चरति, तंजहा—
णिक्खममाणे चेव , पवेसमाणे चेव ।
दुवे य खलु मंडलाइं सव्वं चरति, तंजहा—
सव्वब्भंतरं चेव मंडलं, सव्वबाहिरं चेव मंडलं[1] ।

—सूर्य सू. ६-१० पृ. ११
—चन्द्र ,, ,,

[२७][१] प्र०—जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है एवं सर्वबाह्य मण्डल से सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब वह काल रात्रि-दिन के परिमाण से कितना होता है ?

उ०—(तब) वह (काल) ३६६ रात्रि-दिन का होता है ।

[२] प्र०—इस काल में सूर्य कितने मण्डल चलता है ?

उ०—(इस काल मे सूर्य) १८४ मण्डल चलता है, जिनमे से १८२ वें मण्डल पर दो वार चलता है, यथा—निकलता हुआ एवं प्रविष्ट होता हुआ । दो मण्डलों पर एक वार चलता है, यथा—सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर और सर्वबाह्य मण्डल पर ।

सूर्य का मंडलसंक्रमण

[२८][१] प्र०—ता कहं ते मंडलातो मंडलं संकममाणे २ सूरिए चारं चरति आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमातो दुवे पडिवत्तीओ पण्णताओ—
१—तत्थेगे एवमाहंसु
ता मंडलातो मंडलं संकममाणे २ सूरिए नेयघाएणं संकामइ, एगे एवमाहंसु ।

---

१. सम० ८२ सूत्र १.

२–एगे पुण एवमाहंसु

ता मंडलातो मंडलं संकममाणे २ सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेति, एगे एवमाहंसु

१–तत्थ जे ते एवमाहंसु

ता मंडलातो मंडलं संकममाणे २ भेयघाएणं संकमइ तेसि णं अयं दोसे—

ता जेणंतरेणं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ सूरिए भेयघाएणं संकमति,

एवतियं च णं अद्धं पुरतो न गच्छति,

पुरतो अगच्छमाणे मंडलकालं परिहवेति, तेसि णं अयं दोसे ।

२–तत्थ जे ते एवमाहंसु—

ता मंडलातो मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेति,

तेसि णं अयं विसेसे-ता जेणंतरेणं मंडलातो मंडलं सकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेति

एवतियं च णं अद्धं पुरतो गच्छति,

पुरतो गच्छमाणे मंडलकालं ण परिहवेति, तेसि णं अयं विसेसे ।

तत्थ जे ते एवमाहंसु,

मंडलातो मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेति,

एतेणं णएणं णेतव्वं, णो चेव णं इतरेणं ।

—सूर्य. सूत्र २२ पृ. ४८–४९

—चन्द्र. ,, ,,

[२८][१] प्र०—एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता हुआ सूर्य किस प्रकार गति करता है ?

उ०—एतद्विषयक दो मान्यताएं है—

१–एक मान्यता यह है कि एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर सक्रमण करता हुआ सूर्य भेदघात-पूर्वक गति करता है अर्थात् एक मण्डल को पूरा करके फिर अन्तराल मे गमन करके दूसरे मण्डल में संक्रमण करता है ।

२–एक मान्यता यह है कि एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता हुआ सूर्य कर्णकला (प्रथम कोटि भाग) का त्याग करता हुआ गति करता है ।

१–इनमें से जिनकी मान्यता यह है कि एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर सक्रमण करता हुआ सूर्य भेदघातपूर्वक गति करता है, उसमे यह दोष है कि जिस अन्तर से एक मण्डल से दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता हुआ सूर्य भेदघातपूर्वक गति करता है तो जब तक वह अपान्तराल में गमन करता है तब तक दूसरे मण्डल में गमन नहीं करता, अतः उसका मण्डलकाल कम हो जाता है ।

२–जिन की मान्यता यह है कि एक मंडल से दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ सूर्य कर्ण-कला की हानि करता हुआ गति करता है, उसमें यह विशेषता है कि जिस अन्तर से एक मंडल से दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ सूर्य कर्ण-कला की हानि करता हुआ गति करता है, उससे अर्द्ध (मंडल) पूर्ण करता हुआ चलता है एवं दूसरे मंडल में गमन करता हुआ मंडलकाल को कम नहीं करता ।

इनमें से जिनकी मान्यता यह है कि एक मंडल से दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ सूर्य कर्णकला की हानि करता हुआ गति करता है, उसे ठीक समझना चाहिए, अन्य को नहीं ।

अहोरात्र में सूर्य द्वारा मंडलों का स्पर्श

[२६][१] प्र०—ता केवतियं ते एगमेगेणं रातिंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति आहितेत्ति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ सत्त पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१–तत्थेगे एवमाहंसु

ता दो जोयणाइं अद्धबुचत्तालीसं तेसीतसयभागे जोयणस्स एगमेगेणं रातिंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ।

२–एगे पुण एवमाहंसु

ता अड्ढातिज्जाइं जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ।
ता तिभागूणाइं तिन्नि जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ।

३–एगे पुण एवमाहंसु

ता तिभागूणाइं तिन्नि जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु

४–एगे पुण एवमाहंसु

ता तिण्णि जोयणाइं अद्धसीतालीसं च तेसीतिसयभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ।

५–एगे पुण एवमाहंसु

ता अद्धट्ठाइं जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ।

६–एगे पुण एवमाहंसु

ता चउब्भागूणाइं चत्तारि जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु ।

७–एगे पुण एवमाहंसु

ता चत्तारि जोयणाइं अद्धबावण्णं च तेसीतिसतभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति,एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—

ता दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मंडलं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरति ।
तत्थ णं को हेतु इति वदेज्जा ?
ता अयण्णं जंबुद्दीवे२–जाव–परिक्खेवेणं ।
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अभिंतरातंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,

ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तदा णं दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता चारं चरति ।
तदा णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया,
से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि
अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चार चरति ।
ता जया णं सूरिए अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तदा णं पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहिं विकंपइत्ता चारं चरति,
तता णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवति, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अधिया ।
एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए ततोणंतराओ तदाणंतर मंडलातो मंडलं संकममाणे २
दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मंडलं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपमाणे २
सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलातो सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं सव्वब्भंतरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसतेणं पंचदसुत्तरजोयणसते विकंपइत्ता चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,
एस णं पढमछम्मासे, एस णं पढमछम्मासस्स पज्जवसाणे ।

से य पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे
पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
ता जता णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तया णं दो-दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता चारं चरति,
तता णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति, दोहिं एगट्ठिभागेहिं मुहुत्तेहिं अहिए ।
से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चंसि मंडलंसि उवसंकमित्ता चारं चरति,
ता जया णं सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमिता चारं चरति,
तया णं पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहिं विकंपइत्ता चारं चरति, राइंदिए तहेव ।
एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए ततोणंतरातो तयाणंतरं च णं मंडलं संकममाणे २ दो जोयणाइं अडयालीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरातो मंडलातो सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिधाय एगेणं तेसीतेणं राइंदियसतेणं पंचदसुत्तरे जोयणसते विकंपइत्ता चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति ।
एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।
एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस णं आदिच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे ।

—सूर्य० सूत्र १८ पृ० ३१-३३
—चन्द्र० ,, ,,

[२६][१] प्र०—प्रत्येक रात्रि-दिन में सूर्य कितना क्षेत्र विकम्पित अर्थात् उल्लंघित करके गति करता है ?

उ०—इस विषय में निम्नोक्त सात मान्यताएँ हैं—

१–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन में $२+\frac{४११\frac{१}{३}}{१८३}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन करके गति करता है।

२–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन में $२\frac{१}{३}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है।

३–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन में $३\frac{१}{३}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है।

४–एक मान्यता ऐसी है कि सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन में $३+\frac{४६\frac{१}{३}}{१८३}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है।

५–एक मान्यता ऐसी है कि सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन मे $३\frac{१}{३}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है।

६–एक मान्यता ऐसी है कि सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन में $४-\frac{१}{४}$ $(३\frac{३}{४})$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है।

७–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन मे $४+\frac{५१\frac{१}{३}}{१८३}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है।

हम इस प्रकार कहते हैं—

सूर्य प्रत्येक रात्रि-दिन में प्रत्येक मंडल के $२\frac{४}{६५}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है। इसमे क्या हेतु है ?

यह जम्बूद्वीप-यावत्-परिधि वाला है। इसमें जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

यहां से निकलता हुआ सूर्य नवीन संवत्सर मे आता हुआ प्रथम अहोरात्र में अभ्यन्तरानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य अभ्यन्तरानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब एक रात्रि-दिन में $२\frac{४}{६५}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गति करता है। उस समय $१८-\frac{३}{६५}$ मुहूर्त्त का दिन होता है एवं $१२+\frac{३}{६५}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है। यहां से निकलता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में अभ्यन्तरतृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य अभ्यन्तरतृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब दो रात्रि-दिन में $५\frac{३५}{६५}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन करके गतिशील होता है। उस समय $१८-\frac{५}{६५}$ मुहूर्त्त का दिन होता है एवं $१२+\frac{५}{६५}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य एक मंडल से दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक रात्रि-दिन में प्रत्येक मंडल के $२\frac{४}{६५}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन करता हुआ सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल से सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब सर्वाभ्यन्तर मंडल से प्रारंभ कर १८३ रात्रि-दिन में ५१० योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गतिशील होता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है और जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। यह प्रथम छह मास के एवं प्रथम छह मास के पर्यवसान के विषय में है।

वहां से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय छह मास में आता हुआ प्रथम अहो-रात्र में बाह्यानन्तर मंडल पर उपसक्रान्त होकर गति करता है। जब सूर्य बाह्यानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब एक रात्रि-दिन में $२\frac{४}{६१}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गमन करता है। उस समय $१८-\frac{३}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है और $१२+\frac{३}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है।

वहां से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में बाह्य-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब दो रात्रि-दिन में $५\frac{३५}{६१}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन कर गमन करता है। उस समय रात-दिन उसी हिसाब से होते हैं।

इस क्रम से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ रात्रि-दिन में $२\frac{४५}{६१}$ योजन क्षेत्र का उल्लंघन करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब सर्वबाह्य मंडल से प्रारंभ कर १८३ रात्रि-दिन में ५१० योजन क्षेत्र का उल्लंघन करके गमन करता है। उस समय अठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

यह द्वितीय छह मास एवं द्वितीय छह मास के पर्यवसान के विषय में है।

यह आदित्यसंवत्सर है एवं आदित्यसवत्सर के पर्यवसान के विषय में है।

द्वीप आदि में सूर्यगति का अन्तर

[३०][१] प्र०—ता केवतियं ते दीवं समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१–एगे एवमाहंसु

ता एगं जोयणसहस्स एगं च तेत्तीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु।

२–एगे पुण एवमाहंसु

ता एगं जोयणसहस्सं एगं च उतीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु।

३–एगे पुण एवमाहंसु

ता एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु।

४–एगे पुण एवमाहंसु

ता अवट्ठं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति, एगे एवमाहंसु।

५–एगे पुण एवमाहंसु

ता णो किंचि दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति।

१–तत्थ जे ते एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसतं दीवं वा समुद्दं वा उग्गाहित्ता सूरिए चारं चरति, ते एवमाहंसु—

जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति

तया णं जंबुद्दीवं एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसतं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति।

तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,

ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,
तया णं लवणसमुद्दं एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरति,
जया णं लवणसमुद्दं एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरइ,
तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णिए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ।

२–एवं चोत्तीसं जोयणसतं ।

३–एवं पणतीसं जोयणसतं—पणतीसे वि एवं चेव भाणियव्वं ।

४–तत्थ जे ते एवमाहंसु
ता अवड्ढं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति,
ते एवमाहंसु—
जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं अवड्ढं जंबुद्दीवं २ ओगाहित्ता चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
एवं सव्वबाहिरए वि, णवरं अवड्ढं लवणसमुद्दं, तता णं राइंदियं तहेव ।

५–तत्थ जे ते एवमाहंसु
ता णो किंचि दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति,
ते एवमाहंसु—
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं णो किंचि दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तहेव, एवं सव्वबाहिरए मंडले, णवरं णो किंचि लवणसमुद्दं ओगाहित्ता चारं चरति,
रातिंदियं तहेव, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—

ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं जंबुद्दीवे असीतं जोयणसतं ओगाहित्ता चारं चरति[1],
तदा णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
एवं सव्वबाहिरेवि, णवरं लवणसमुद्दं तिण्णि तीसे जोयणसते ओगाहित्ता चारं चरति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति ।
(गाथाओ भाणियव्वाओ)

—सूर्य. सूत्र १६–१७, पृ. २९–३१
—चन्द्र. ,, ,,

१. सम. ८० सूत्र ७.

[३०][१] प्र०—सूर्य द्वीप अथवा समुद्र का कितना क्षेत्र अवगाहित कर-व्याप्त कर-गति करता है ?

उ०—एतद्विषयक निम्नलिखित पाँच मान्यताएँ हैं—

१–एक मान्यता यह है कि सूर्य द्वीप अथवा समुद्र का ११३३ योजन क्षेत्र व्याप्त कर गति करता है।

२–एक मान्यता यह है कि सूर्य द्वीप अथवा समुद्र का ११३४ योजन क्षेत्र व्याप्त कर गति करता है।

३–एक मान्यता यह है कि सूर्य द्वीप अथवा समुद्र का ११३५ योजन क्षेत्र व्याप्त कर गति करता है।

४–एक मान्यता यह है कि सूर्य अर्ध द्वीप अथवा समुद्र को व्याप्त कर गति करता है।

५–एक मान्यता यह है कि सूर्य किंचिन्मात्र द्वीप अथवा समुद्र को व्याप्त न करता हुआ गति करता है।

१–इनमे से जिनकी मान्यता यह है कि सूर्य द्वीप अथवा समुद्र का ११३३ योजन क्षेत्र व्याप्त कर गति करता है, उनका कथन है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब जम्बूद्वीप का ११३३ योजन क्षेत्र व्याप्त करके गति करता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब लवणसमुद्र का ११३३ योजन क्षेत्र व्याप्त कर गतिशील होता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है।

२–इसी प्रकार ११३४ योजन क्षेत्र के विषय मे समझना चाहिए।

३–इसी प्रकार ११३५ योजन क्षेत्र के विषय मे समझना चाहिए।

४–जिनकी मान्यता यह है कि सूर्य अर्ध द्वीप अथवा समुद्र को व्याप्त कर गति करता है उनका कथन है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब अर्ध जम्बूद्वीप को व्याप्त कर गतिशील होता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। इसी प्रकार सर्वबाह्य (मंडल) के विषय मे भी समझना चाहिए। अन्तर यह है कि यहां अर्ध लवणसमुद्र ग्रहण करना चाहिए। उस समय रात्रि-दिन उसी हिसाब से होते है।

५–जिनकी मान्यता यह है कि सूर्य किंचिन्मात्र द्वीप अथवा समुद्र को व्याप्त न करते हुए गति करता है उनका कथन है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब किंचिन्मात्र जम्बूद्वीप को व्याप्त न करते हुए गतिशील होता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। इसी प्रकार सर्वबाह्य मंडल के विषय में भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि यहां किंचिन्मात्र लवणसमुद्र को व्याप्त न करते हुए गति करता है (ऐसा समझना चाहिए)। उस समय रात्रि-दिन उसी हिसाब से होते हैं।

हमारा कथन इस प्रकार है—

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब जम्बूद्वीप का १८० योजन क्षेत्र व्याप्त कर गतिशील होता है। उस समय अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है। इसी प्रकार सर्वबाह्य मंडल के विषय मे भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि इस समय (सूर्य) लवणसमुद्र का ३३० योजन क्षेत्र व्याप्त कर गति करता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है।

सूर्य की तिर्छी गति का परिमाण

[३१][१] प्र०—ता कहं तेरिच्छगती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१–तत्थेगे एवमाहंसु

ता पुरच्छिमातो लोगंताओ पादो मरीची आगासंसि उत्तिट्ठति,
से णं इमं लोयं तिरियं करेइ, तिरियं करेत्ता पच्चत्थिमंसि लोयंसि सायंमि रायं आगासंसि विद्धंसिस्सति, एगे एवमाहंसु ।

२–एगे पुण एवमाहंसु

ता पुरच्छिमातो लोअंतातो पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति,
से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेति, करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंसि सूरिए आगासंसि विद्धंसति, एगे एवमाहंसु ।

३–एगे पुण एवमाहंसु

ता पुरत्थिमाओ लोयंतातो पादो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति,
से इमं तिरियं लोयं तिरियं करेति करित्ता पच्चत्थिमंसि लोयंसि सायं अहे पडियागच्छति,
अधे पडियागच्छेत्ता पुणरवि अवरभूपुरत्थिमातो लोयंतातो पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति,
एगे एवमाहंसु ।

४–एगे पुण एवमाहंसु

ता पुरत्थिमाओ लोगंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठति,
से णं इमं तिरिय लोयं तिरियं करेति करेत्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायंसि विद्धंसइ, एगे एवमाहंसु ।

५–एगे पुण एवमाहंसु

पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठइ,
से ण इमं तिरियं लोयं तिरियं करेइ, करेत्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायंसि अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अहे पडियागच्छइ २ पुणरवि अवरभूपुरत्थिमाओ लोगंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठइ, एगे एवमाहंसु ।

६–एगे पुण एवमाहंसु

ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठइ,
से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेइ,
करेत्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि पाओ सूरिए आउकायंसि विद्धंसति, ऐगे एवमाहंसु ।

७–एगे पुण एवमाहंसु

ता पुरत्थिमातो लोगंतातो पाओ सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठति,
से णं इमं तिरियं लोयं तिरियं करेति,
करेत्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए आउकायंसि पविसइ,
पविसित्ता अहे पडियागच्छति २ त्ता पुणरवि अवरभूपुरत्थिमातो लोयंतातो पादो सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठति, एगे एवमाहंसु ।

८–एगे पुण एवमाहंसु

ता पुरत्थिमातो लोयंताओ बहूइं जोयणाइं, बहूइं जोयणसताइं, बहूइं जोयणसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पतित्ता एत्थ णं पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति,

से णं इमं दाहिणड्ढं लोयं तिरियं करेति, करेत्ता उत्तरड्ढलोयं तमेव रातो,

से णं इमाइं दाहिणुत्तरड्ढलोयाइं तिरियं करेइ, करित्ता पुरत्थिमाओ लोयंताओ बहूइं जोयणाइं, बहूयाइं जोयणसताइं, बहूइं जोयणसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पतित्ता एत्थ णं पातो सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठति, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वयामो

ता जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईण–पडीणायत–ओदीण–दाहिणायताए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता,

दाहिण-पुरच्छिमंसि उत्तर-पच्चत्थिमंसि य चउब्भागमंडलंसि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागाओ अट्ठ जोयणसताइं उड्ढं उप्पतित्ता एत्थ णं पादो दुवे सूरिया उत्तिट्ठंति ।

ते णं इमाइं दाहिणुत्तराइं जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति २ त्ता पुरत्थिम-पच्चत्थिमाइं जंबुद्दीव-भागाइं तामेव रातो,

ते णं इमाइं पुरच्छिम-पच्चत्थिमाइं जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति २ त्ता दाहिणुत्तराइं जंबुद्दीव-भागाइं तामेव रातो ।

ते णं इमाइं दाहिणुत्तराइं पुरच्छिम-पच्चत्थिमाणि य जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेति २ त्ता जंबुद्दीवस्स २ पाईण-पडीणायत-ओदीण–दाहिणायताए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सतेणं छेत्ता दाहिणपुरच्छिमिल्लंसि उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि य चउभागमंडलंसि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो अट्ठ जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता,

एत्थ णं पादो दुवे सूरिया आगासंसि उत्तिट्ठंति ।

—सूर्य. सूत्र. २१ पृ. ४५-४६

—चन्द्र. ,, ,,

[३१][१] प्र०—(सूर्य की) तिर्छी गति किस प्रकार की है ?

उ०—एतद्विषयक निम्नोक्त आठ मान्यताएँ है—

१–एक मान्यता यह है कि प्रातःकाल किरणसमूह पूर्वी लोकान्त (पूर्व दिशा) से आकाश में निकलता है एवं इस लोक को तिर्छा (प्रकाशित) करता है। प्रकाशित करके सायंकाल पश्चिमी लोकान्त मे आकाश में विध्वस्त हो जाता हे ।

२–एक मान्यता ऐसी है कि (देवतारूप) सूर्य प्रातःकाल पूर्वी लोकान्त मे आकाश मे उगता है एवं इस तिर्यक् लोक (में परिभ्रमण करता हुआ इस) को प्रकाशित करता है। प्रकाशित करके पश्चिमी लोकान्त में आकाश में विध्वस्त हो जाता है ।

३–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रातःकाल पूर्वी लोकान्त से आकाश में उगता है एवं इस तिर्यक् लोक (में भ्रमण करता हुआ इस) को प्रकाशित करता है। प्रकाशित करके सायंकाल पश्चिमी लोकान्त में नीचे चला जाता है। नीचे जाकर पुनः दूसरे दिन प्रातः पूर्वी लोकान्त मे आकाश मे उदित होता है ।

४–एक मान्यता ऐसी है कि सूर्य प्रातःकाल पूर्वी लोकान्त से पृथ्वी में से निकलता है एवं इस तिर्यक् लोक को तिर्छा (प्रकाशित) करता है। प्रकाशित करके सायंकाल पश्चिमी लोकान्त में पृथ्वी में विध्वस्त हो जाता है ।

५–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रातःकाल पूर्वी लोकान्त से पृथ्वी में से निकलता है एवं इस तिर्यक् लोक को प्रकाशित करता है। प्रकाशित करके सायंकाल पश्चिमी लोकान्त में पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाता है। प्रविष्ट होकर नीचे चला जाता है। नीचे जाकर पुनः दूसरे दिन प्रातः पूर्वी लोकान्त से पृथ्वी में से निकलता है।

६–एक मान्यता ऐसी है कि सूर्य प्रातःकाल पूर्वी लोकान्त से अप्काय-समुद्र में से निकलता है एव (तिर्यक् भ्रमण करके) तिर्यक् लोक को प्रकाशित करता है। प्रकाशित करके सायंकाल पश्चिमी लोकान्त में समुद्र में विध्वस्त हो जाता है।

७–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रातःकाल पूर्वी लोकान्त से समुद्र मे से निकलता है एवं इस तिर्यक् लोक को प्रकाशित करता है। प्रकाशित करके सायंकाल पश्चिमी लोकान्त मे समुद्र में प्रविष्ट हो जाता है। प्रविष्ट होकर नीचे चला जाता है। नीचे जाकर पुनः दूसरे दिन प्रातः पूर्वी लोकान्त से समुद्र में से निकलता है।

८–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रातःकाल पूर्वी लोकान्त से अनेक योजन, अनेक शत योजन, अनेक सहस्र योजन दूर ऊँचा जाकर आकाश मे उदित होता है एवं इस दक्षिणार्ध लोक को प्रकाशित करता है। उस समय उत्तरार्ध लोक में रात्रि होती है। इसके पश्चात् उत्तरार्ध लोक मे जाता है एवं उत्तरार्ध लोक को प्रकाशित करता है। उस समय दक्षिणार्ध लोक में रात्रि होती है। इस प्रकार दक्षिणार्ध एवं उत्तरार्ध लोक को प्रकाशित करता हुआ सूर्य पूर्वी लोकान्त से अनेक योजन, अनेक शत योजन, अनेक सहस्र योजन दूर ऊँचा जाकर प्रातः आकाश मे उदित होता है।

हम इस प्रकार कहते है—

जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम की लंबाई एवं उत्तर-दक्षिण की जीवा से सूर्यमंडल के १२४ भाग करके उन्हें दक्षिण-पूर्व एवं उत्तर-पश्चिम के चार भागों में विभक्त किया जाय। इन चतुर्भाग मंडलों में इस रत्नप्रभा पृथ्वी की अति रमणीय भूमि से ८०० योजन ऊपर जाकर प्रातःकाल दो सूर्य उदित होते है। ये दक्षिण एवं उत्तर के जम्बूद्वीप के भागों को प्रकाशित करते है। इस समय पूर्व एवं पश्चिम के जम्बूद्वीप के भागों में रात्रि होती है। इसके बाद पूर्व एवं पश्चिम के जम्बूद्वीप के भागो को प्रकाशित करते हैं। उस समय दक्षिण एव उत्तर के जम्बूद्वीप के भागों में रात्रि होती है। इस प्रकार जम्बूद्वीप के दक्षिण, उत्तर, पूर्व एवं पश्चिम के भागों को प्रकाशित करते हुए दोनों सूर्य जम्बूद्वीप की पूर्व-पश्चिम की लंबाई एवं उत्तर-दक्षिण की जीवा से सूर्यमडल के १२४ भाग करके उन्हे दक्षिण-पूर्व एवं उत्तर-पश्चिम के चार भागों में विभक्त करने पर बनने वाले चतुर्भाग मंडलों में इस रत्नप्रभा पृथ्वी की अति रमणीय भूमि से ८०० योजन ऊचे जाकर प्रातःकाल आकाश मे उदित होते हैं।

सूर्य की प्रतिमुहूर्त्त गति

[३२][१] प्र०—ता केवतियं तं खेत्तं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमातो चत्तारि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ,

१–तत्थ एगे एवमाहंसु

ता छ-छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेण गच्छति, एगे एवमाहंसु।

२–एगे पुण एवमाहंसु

ता पंच-पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, एगे एवमाहंसु।

३–एगे पुण एवमाहंसु
ता चत्तारि-चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, एगे एवमाहंसु ।

४–एगे पुण एवमाहंसु
ता छवि पंचवि चत्तारिवि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, एगे एवमाहंसु ।

१–तत्थ जे ते एवमाहंसु ता छ-छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति, ते एवमाहंसु--
जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चरति,
तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
तेसिं च णं दिवसंसि एगं जोयणसतसहस्सं अट्ठ य जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,
तेसिं च णं दिवसंसि बावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,
तया णं छ-छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति ।

२–तत्थ जे ते एवमाहंसु—
ता पंच-पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
ते एवमाहंसु—
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तहेव दिवस-राइप्पमाणं,
तंसि च णं तावखेत्ते नउइजोयणसहस्साइं,
ता जया णं सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं तं चेव राइंदियप्पमाणं,
तंसि च णं दिवसंसि सट्ठिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पन्नत्ते,
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति ।

३–तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—
ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं दिवस-राई तहेव,
तंसि णं दिवससि बावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं राइंदियं तहेव,
तंसि च णं दिवसंसि अडयालीसं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,
तता णं चत्तारि-चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति ।

४–तत्थ जे ते एवमाहंसु —
छवि पंचवि चत्तारि वि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति
ते एवमाहंसु—
ता सूरिए णं उग्गमणमुहुत्तेणं सिय अत्थमणमुहुत्तं सिग्घगता भवति,
तता णं छ-छ जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
मज्झिमतावखेत्तं समासादेमाणे २ सूरिए मज्झिमगता भवति,
तता ' पंच-पंच जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
मज्झिमं तावखेत्तं संपत्ते सूरिए मंदगती भवति,

ततो णं चत्तारि जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति ।
तत्थ को हेउत्ति वदेज्जा ?
ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे—जाव—परिक्खेवेणं,
ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं दिवस-राई तहेव,
तंसि च णं दिवसंसि एक्काणउतिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते,
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं राइंदियं तहेव,
तंसि च णं दिवसंसि एगट्ठिजोयणसहस्साइं तावखेत्ते पण्णत्ते,
तता णं छवि पंचवि चत्तारि वि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—

ता सातिरेगाइं पंच-पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति ।
तत्थ को हेतूति वदेज्जा ?
ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे—जाव—परिक्खेवेणं,
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एक्कावणे जोयणसए एगूणतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
तता णं इधगतस्स मणुसस्स सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसतेहिं एक-वीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति,[1]
तया णं दिवसे राई तहेव,
से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं व-उ संकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एकावण्णे जोयणसते सीतालीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेण गच्छति,
तता णं इहगयस्स मणूसस्स सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं अउणासीते य जोयणसते सत्तावण्णाए सट्ठिभागेहिं
जोयणस्स सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता अउणावीसाए चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमा-गच्छति,
तता णं दिवस-राई तहेव,
से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए अब्भितरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य बावण्णे जोयणसते पंच य सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
तता णं इहगयस्स मणूसस्स सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं छण्णउतीए य जोयणेहिं तेत्तीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा
छेत्ता दोहिं चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति,
तता णं दिवस-राई तहेव ।

१– सम० ४७ सूत्र १

एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तताणंतराओ तदाणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगतिं वा अभिवुड्ढेमाणे २ चुलसीतिं सीताइ जोयणाइं पुरिसच्छायं णिवुड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं तिन्नि य पंचुत्तरे जोयणसते पण्णरस य सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
तता णं इहगतस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणेहिं अट्ठहिं एक्कतीसेहिं जोयणसतेहिं तीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति,
एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे
पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
ता जता णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउरुत्तरे जोयणसते सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
तता णं इहगतस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं नवहि य सोलेहिं जोयणसएहिं एगूणतालीसाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिहा छेत्ता सट्ठिए चुण्णियाभागे सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छति,
तता णं राइंदियं तहेव,
से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति ।
ता जया णं सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं तिन्नि य चउत्तरे जोयणसते ऊणतालीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति,
तता णं इहगतस्स मणूसस्स एगाधिगेहिं बत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं एकावण्णाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता तेवीसाए चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ,[२]
राइंदियं तहेव,
एवं खलु एतेणुवाएणं पविसमाणे सूरिए तताणंतरातो तताणंतरं मंडलातो मंडलं संकममाणे २ अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोयणस्स
एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं णिवुड्ढेमाणे २ सातिरेगाइं पंचासीति२ जोयणाइं पुरिसच्छायं अभिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ताचारं चरति ।
ता जता णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ताचारं चरति
तता णं पंच-पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एक्कावण्णे जोयणसए अट्ठतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छति
तता णं इहगयस्स मणूसस्स सीतालीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहि य दोवट्ठेहिं जोयणसतेहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति,

---

१– सम० ३१
२– जया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चार चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेतीसाए जोयणसहस्सेहिं किंचिविसेसूणेहिं चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ।
—सम० ३३

तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति,
एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।
एस णं आदिच्चे संवच्छरे, एस णं आदिच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ।

—सूर्य० सूत्र २३ पृ० ५१-५२
—चन्द्र० ,, ,,
—जबू० सूत्र १३३ पृ० ४४०-४४१

[३२][१] प्र०—जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—इस विषय में (अन्ययूथिकों की) चार मान्यताएँ हैं—

१–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त छह हजार योजन चलता है ।

२–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त पाँच हजार योजन चलता है ।

३–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त चार हजार योजन चलता है ।

४–एक मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त छह हजार योजन भी चलता है, पाँच हजार योजन भी चलता है, चार हजार योजन भी चलता है ।

१–इनमे से जिनकी मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त छह हजार योजन चलता है, उनका कथन है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर चलता है तब उत्कृष्ट १८ मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य १२ मुहूर्त्त की रात्रि होती है । उस दिन १०८००० योजन का तापक्षेत्र होता है ।
जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर चलता है तब उत्कृष्ट १८ मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य १२ मुहूर्त्त का दिन होता है । उस दिन ७२००० योजन का तापक्षेत्र होता है । इस प्रकार सूर्य प्रतिमुहूर्त्त ($\frac{१०८०००}{१८}$=६०००, $\frac{७२०००}{१२}$=६०००) छह हजार योजन चलता है ।

२–जिनकी मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त ५ हजार योजन चलता है, उनका कथन है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर चलता है तब दिन और रात्रि का प्रमाण उसी प्रकार (पूर्वोक्त) होता है तथा उस दिन ९०००० योजन का तापक्षेत्र होता है । जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर चलता है तब रात्रि और दिन का प्रमाण उसी प्रकार होता है तथा उस दिन ६०००० योजन का तापक्षेत्र होता है । इस प्रकार सूर्य प्रतिमुहूर्त्त ($\frac{९००००}{१८}$=५०००; $\frac{६००००}{१२}$=५०००) पाँच हजार योजन चलता है ।

३–जिनकी मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त ४ हजार योजन चलता है, उनका कथन है कि जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर चलता है तब दिन-रात उसी प्रकार होते हैं । उस दिन ७२००० योजन का तापक्षेत्र होता है । जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब रात-दिन उसी प्रकार होते हैं । उस दिन ४८००० योजन का तापक्षेत्र होता है । इस प्रकार सूर्य प्रतिमुहूर्त्त ($\frac{७२०००}{१८}$=४०००; $\frac{४८०००}{१२}$=४०००) चार हजार योजन चलता है ।

४–जिनकी मान्यता यह है कि सूर्य प्रतिमुहूर्त्त छह हजार योजन भी चलता है, पाँच हजार योजन भी चलता है, और चार हजार योजन भी चलता है, उनका कथन है कि सूर्य उदय-मुहूर्त्त एवं अस्त-मुहूर्त्त में शीघ्र गति वाला होता है । उस समय वह प्रतिमुहूर्त्त छह हजार योजन चलता है । मध्यम ताप-क्षेत्र को प्राप्त होता हुआ सूर्य मध्यम गति वाल. उस समय वह

प्रतिमुहूर्त्त पाँच हजार योजन चलता है। मध्यम ताप-क्षेत्र को संप्राप्त सूर्य मंद गति वाला होता है। उस समय वह प्रतिमुहूर्त्त चार हजार योजन चलता है।
इसका क्या कारण है ?

यह जम्बूद्वीप–यावत्–परिधि वाला है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब दिन-रात उसी प्रकार होते हैं। उस दिन ९१००० योजन का तापक्षेत्र होता है। जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब रात-दिन उसी प्रकार होते हैं। उस दिन ६१००० योजन का ताप-क्षेत्र होता है। इस प्रकार सूर्य प्रतिमुहूर्त्त छह, पाँच और चार हजार योजन चलता है। (९१००० योजन का हिसाब इस प्रकार है—प्रथम मुहूर्त्त ६०००, अन्तिम मुहूर्त्त ६०००, मध्यम मुहूर्त्त ४००० एवं शेष १५ मुहूर्त्त ५०००×१५=७५०००; कुल ६०००+६०००+४०००+७५०००=९१०००; तथा ६१००० योजन का हिसाब इस प्रकार है—प्रथम मुहूर्त्त में ६०००, अन्तिम मुहूर्त्त में ६०००, मध्यम मुहूर्त्त में ४००० एवं शेष ९ मुहूर्त्त में ५०००×९=४५०००; कुल ६०००+६०००+४०००+४५०००=६१०००)

हमारा कथन इस प्रकार है—
सूर्य प्रतिमुहूर्त्त पाँच हजार योजन से कुछ अधिक चलता है।
इसमे क्या हेतु है ?

यह जम्बूद्वीप–यावत्–परिधि वाला है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त ५२५१$\frac{३९}{६०}$ योजन चलता है। उस समय इस क्षेत्र के मनुष्य को ४७२६३$\frac{२१}{६०}$ योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। उस समय दिन-रात उसी प्रकार होते हैं। वहाँ से निकलता हुआ सूर्य नवीन संवत्सर में प्रविष्ट होता हुआ प्रथम अहोरात्र में आभ्यन्तरानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त ५२५१$\frac{४७}{६०}$ योजन चलता है। उस समय इस क्षेत्र के मनुष्य को ४७१७९$\frac{५७}{६०}$+($\frac{१}{६०}$+$\frac{१}{६१}$+$\frac{१}{६१}$) योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। उस समय दिन-रात उसी हिसाब से होते है। वहाँ से निकलता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में आभ्यन्तर-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।
जब सूर्य आभ्यन्तर-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त ५२५२$\frac{५}{६०}$ योजन चलता है। उस समय इस क्षेत्र के मनुष्य को ४७०९६$\frac{३३}{६०}$+($\frac{१}{६०}$+$\frac{१}{६१}$+$\frac{२}{६१}$) योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। उस समय दिन-रात उसी हिसाब से होते हैं। इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मंडल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल पर $\frac{१८}{६०}$ योजन की मुहूर्त्तगति में वृद्धि करता हुआ एवं ८४ योजन से कुछ अधिक की दृष्टिगोचरता में कमी करता हुआ सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त ५३०५$\frac{१५}{६०}$ योजन चलता है। उस समय इस क्षेत्र के मनुष्य को ३१८३१$\frac{३}{६०}$ योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। यह प्रथम छह मास के विषय में है एवं प्रथम छह मास के पर्यवसान के विषय में है। वहाँ से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय छह मास में प्रवेश करता हुआ प्रथम अहो-रात्र में बाह्यानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है। जब सूर्य बाह्यानन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त ५३०४$\frac{५७}{६०}$ योजन चलता है। उस समय इस क्षेत्र के मनुष्य को ३१९१६$\frac{३९}{६०}$+($\frac{१}{६०}$+$\frac{१}{६१}$+$\frac{६०}{६१}$) योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। उस समय रात्रि-दिन उसी हिसाब से होते हैं। वहाँ से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में बाह्यतृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य बाह्य-तृतीय मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त ५३०४$\frac{३}{६०}$ योजन चलता है। उस समय इस क्षेत्र के मनुष्य को ३२००१$\frac{५१}{६०}$ + ($\frac{१}{६०}$+$\frac{१}{६१}$+$\frac{२}{३}$) योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। उस समय रात्रि-दिवस उसी हिसाब से होते हैं। इस क्रम से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक के पश्चात् दूसरे मंडल पर सक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल पर $\frac{१}{६०}$ योजन की मुहूर्त्तगति में कमी करता हुआ एवं ८५ योजन से कुछ अधिक की दृष्टिगोचरता में वृद्धि करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त ५२५१$\frac{३५}{६०}$ योजन चलता है। उस समय इस क्षेत्र के मनुष्य को ४७२६२$\frac{२१}{६०}$ योजन से सूर्य दृष्टिगोचर होता है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है और जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

यह द्वितीय छह मास एवं द्वितीय छह मास के पर्यवसान के विषय में है।

यह आदित्यसंवत्सर एवं आदित्यसंवत्सर के पर्यवसान के विषय में है।

नक्षत्रमंडल के भाग में सूर्य की एक मुहूर्त्त में गति

प्र०—एगमेगेणं भंते ! मुहुत्तेणं सूरिए केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारसतीसे भागसए गच्छइ मंडलं सयसहस्सेहिं अट्ठाणउतीए अ सएहिं छेत्ता।

—जम्बू० सूत्र १४६ पृ. ४७४

प्र०—भगवन् ! प्रतिमुहूर्त्त सूर्य (मंडल का) कितना भाग चलता है ?

उ०—गौतम ! जिस-जिस मंडल पर आरूढ़ होकर गति करता है, उस-उस मंडल की परिधि का $\frac{१८३०}{१०९८००}$ भाग चलता है।

दिन-रात्रि का परिमाण

[३४][१] प्र०—जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,
तया णं केमहालए दिवसे, केमहालिया राई भवति ?

उ०—गोयमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ,
से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ।

[२] प्र०—जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,
तया णं केमहालए दिवसे, केमहालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवति, दोहि अ एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति।

[३] प्र०—से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि—जाव—चारं चरइ
तया णं केमहालए दिवसे, केमहालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे,
दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिअत्ति।
एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे दो-दो एकट्ठिभागमुहुत्तेहिं मंडले दिवसखित्तस्स निव्वुड्ढेमाणे २ रयणिखित्तस्स अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइत्ति।

जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
तया णं सव्वब्भंतरमंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्त-सए दिवसखेत्तस्स निव्वुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ त्ति ।

[४] प्र०—जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
तया णं केमहालए दिवसे, केमहालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ त्ति ।
एस णं पढमे छम्मासे, एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासंअयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ,

[५] प्र०—जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
तया णं केमहालए दिवसे भवइ, केमहालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा
दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए,
से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ।

[६] प्र०—जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
तया णं केमहालए दिवसे भवइ, केमहालिया राई भवइ ?

उ०—गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा,

दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए इति ।
एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे-संकममाणे दो-दो एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं एगमेगे मंडले रयणिखित्तस्स निवुड्ढेमाणे २ दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइति ।

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिराओ मंडलाओ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
तया णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरइ,
एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दुच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।
एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते ।

—जंबू० सूत्र १३४ पृ० ४४६–४५०,
—सूर्य० सूत्र ११ पृ० ११–१२
—चन्द्र० सूत्र ११

[३५][१] प्र०—भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब कितना बड़ा दिन और कितनी बड़ी रात्रि होती है ?

उ०—गौतम ! उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है । वहां से निकलता हुआ सूर्य नवीन संवत्सर में प्रविष्ट होता हुआ प्रथम अहोरात्र में अभ्यन्तरानन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है ।

[२] प्र०—भगवन् ! जब सूर्य आभ्यन्तरानन्तर मण्डल पर उपसक्रान्त होकर गति करता है तब कितना बड़ा दिन और कितनी बड़ी रात्रि होती है ?

उ०—गौतम ! उस समय १८—$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन और १२+$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

[३] प्र०—वहां से निकलता हुआ सूर्य द्वितीय अहोरात्र में—यावत्—गति करता है। उस समय कितना बड़ा दिन और कितनी बड़ी रात्रि होती है ?

उ०—गौतम उस समय १८—$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है। एवं १२+$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है। इस क्रम से निकलता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता हुआ $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त की दिवस-क्षेत्र में कमी एव रजनी-क्षेत्र में वृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है। जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब सर्वाभ्यन्तर मण्डल से प्रारंभ कर १८३ रात्रि-दिन में $\frac{३६६}{६१}$ = ६ मुहूर्त्त दिवस-क्षेत्र में कम करके एवं रजनी-क्षेत्र में बढ़ा कर गतिशील होता है।

[४] प्र०—भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब कितना बड़ा दिन और कितनी बड़ी रात्रि होती है ?

उ०—गौतम ! उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है।

यह प्रथम छह मास एव प्रथम छह मास के पर्यवसान के विषय में है।
वहां से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य द्वितीय छह मास में प्रवेश करता हुआ प्रथम अहोरात्र मे बाह्यानन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त हो गति करता है।

[५] प्र०—भगवन् ! जब सूर्य बाह्यानन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब कितना बड़ा दिन और कितनी बड़ी रात्रि होती है ?

उ०—गौतम ! १८$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं १२+$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है।
वहां से प्रविष्ट होकर सूर्य द्वितीय अहोरात्र में बाह्य-तृतीय मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

[६] प्र०—भगवन् ! जब सूर्य बाह्य-तृतीय मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब कितना बडा दिन होता है ? कितनी बड़ी रात्रि होती है ?

उ०—गौतम ! उस समय १८—$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं १२+$\frac{४}{६१}$ मुहूर्त्त का दिन होता है। इस क्रम से प्रविष्ट होता हुआ सूर्य एक के बाद दूसरे मण्डल पर संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मंडल के रजनी-क्षेत्र में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त की कमी एवं दिवस-क्षेत्र में उतनी ही वृद्धि करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल से सर्वाभ्यन्तर मण्डल पर उपसक्रान्त होकर गति करता है तब सर्वबाह्य मण्डल से प्रारंभ कर १८३ रात्रि-दिन में $\frac{३६६}{६१}$ = ६ मुहूर्त्त की रजनी-क्षेत्र में कमी एवं दिवस-क्षेत्र में वृद्धि कर गतिशील होता है।

यह द्वितीय छह मास एवं द्वितीय छह माम के पर्यवसान के सम्बन्ध में है। यह आदित्य संवत्सर एव आदित्यसंवर के पर्यवसान के विषय में है।

सूर्य का ताप-क्षेत्र

[३६][१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ केवइयं खेत्तं उड्ढं तवयंति, अहे, तिरिअं च ?

उ०—गोयमा ! एगं जोयणसयं उड्ढं तवयंति,
अट्ठारससयजोयणाइं अहे तवयंति,[1]
सीआलीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि अ तेवट्ठे जोयणसए एगवीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स तिरिअं तवयंतित्ति ।

—जम्बू. सूत्र १३९ पृ. ४६२
— सूर्य. सू. २५ पृ. ६८
—चन्द्र. ,,
—विवा. भाग ३ श. ८ उ. ८ प्र. ४५ पृ. १००

[३६][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप मे सूर्य ऊपर कितना क्षेत्र तपाते है, नीचे कितना क्षेत्र तपाते है और तिर्छा कितना क्षेत्र तपाते हैं ?

उ०—गौतम ! सौ योजन ऊर्ध्व क्षेत्र तपाते है, १८०० योजन अध. क्षेत्र तपाते हैं एवं ४७२६३$\frac{१}{२}$ योजन तिर्यक् क्षेत्र तपाते है ।

चन्द्र-सूर्य का संस्थान

[३७][१] प्र०—ता कहं ते सेआते संठिईया आहितात्ति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमा दुविहा संठिती पण्णत्ता, तंजहा—चंदिम-सूरियसंठिती य, तावक्खेत्तसंठिती य ।

[२] प्र०—ता कहं ते चंदिम-सूरियासंठिती आहित[1]त्ति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमातो सोलस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१–तत्थेगे एवमाहंसु—
ता समचउरंससंठिता चंदिम-सूरियासंठिती, एगे एवमाहंसु ।

२–एगे पुण एवमाहंसु—
ता विसमचउरंससंठिता चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता ।

३–एवं समचउक्कोणसंठिता, ४–ता विसमचउक्कोणसंठिया, ५–समचक्कवालसंठिता, ६–विसमचक्कवालसठिता पण्णत्ता, ७–चक्कद्धचक्कवालसंठिता पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

८–एगे पुण एवमाहंसु—
ता छत्तागारसंठिता चदिम-सूरियसठिती पण्णत्ता ।
९–गेहसंठिता, १०–गेहावणसंठिता, ११–पासादसंठिता, १२–गोपुरसंठिया, १३–पेच्छाघरसंठिता, १४–वलभीसंठिता, १५–हम्मियतलसंठिता, १६–वालग्गपोतियासंठिता चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता ।

---

१. सम. १९ सूत्र २

तत्थ जे ते एवमाहंसु—
ता समचउरंससंठिता चंदिम-सूरियसंठिती पण्णत्ता,
एतेणं णएणं णेतव्वं, णो चेव णं इतरेहिं ।

—सूर्य. सूत्र २५ पृ. ६७
—चन्द्र. ,, ,,

[३७][१] प्र०—श्वेतता का संस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

उ०—यह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—चन्द्र-सूर्यसंस्थान अर्थात् उनके विमानों का आकार और तापक्षेत्रसंस्थान अर्थात् उनके तापक्षेत्र का आकार ।

[२] प्र०—इनमें से चन्द्र-सूर्यसंस्थान किस प्रकार का है ?

उ०—इस विषय में निम्नोक्त सोलह मान्यताएँ हैं :—

१–एक मान्यता यह है कि चन्द्र-सूर्य का संस्थान समचतुरस्र है ।
२–एक मान्यता यह है कि चन्द्र-सूर्यसंस्थान विषमचतुरस्र है ।
३–इसी प्रकार समचतुष्कोण, ४–विषमचतुष्कोण, ५–समचक्राकार, ६–विषमचक्राकार एवं ७–अर्धचक्राकार की मान्यताएँ हैं ।
८–एक मान्यता यह है कि चन्द्र-सूर्यसंस्थान छत्राकार है ।
९–इसी प्रकार चन्द्र-सूर्यसंस्थान के विषय में गृहाकार, १०–गृहापणाकार, ११–प्रासादाकार, १२–गोपुराकार, १३–प्रेक्षागृहाकार, १४–वलभीआकार, १५–हर्म्यतलाकार एवं १६–वालाग्रपोतिकाकार की मान्यताएँ है ।
इनमें से यह मान्यता कि चन्द्र-सूर्य का संस्थान समचतुरस्र है, ठीक है, अन्य नहीं ।

तापक्षेत्र का संस्थान

[३८][१] प्र०—ता कहं ते तावक्खेत्तसंठिती आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ सोलस पडिवत्तीओ पन्नत्ताओ-

१-८ – तत्थ णं एगे एवमाहंसु
ता गेहसंठिती तावखित्तसंठिती पण्णत्ता,
एवं-जाव-वालग्गपोतियासंठिता तावक्खेत्तसंठिती ।

९ – एगे पुण एवमाहंसु
ता जस्संठिते जंबुद्दीवे तस्संठिते तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

१०– एगे पुण एवमाहंसु
ता जस्संठिते भारहे वासे तस्संठिती पण्णत्ता,
एवं उज्जाणसंठिता, निज्जाणसंठिता, एगतो णिसहसंठिता, दुहतो णिसहसंठिता, सेयणगसंठिता,
एगे एवमाहंसु ।
एगे पुण एवमाहंसु
ता सेणगपट्ठसंठिता तावखेत्तसंठिती पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

—सूर्य० सू० २५ पृ० ६७
—चन्द्र० ,, ,,

[३८][१] प्र०—तापक्षेत्रसंस्थान किस प्रकार का है ?

उ०—एतद्विषयक निम्नोक्त सोलह मान्यताएं हैं:—

१ –एक मान्यता यह है कि तापक्षेत्रसस्थिति गृहाकार है । इस प्रकार-यावत्-(२–८) वालाग्रपोतिका के आकार की तापक्षेत्रसंस्थिति है ।

९ –एक मान्यता यह है कि जिस आकार का जम्बूद्वीप है उसी आकार की तापक्षेत्रसस्थिति है ।

१०–एक मान्यता यह है कि जिस आकार का भारतवर्ष है उसी आकार की (तापक्षेत्रसंस्थिति) है । इसी प्रकार ११-उद्यानाकार, १२-निर्याणाकार (निर्गमनाकार), १३-एकतः निषधाकार (रथ के एक ओर के बैल के आकार की), १४-द्वितः निषधाकार (रथ के दोनों ओर के बैलों के आकार की) एवं १५-श्येनकाकार वाली (तापक्षेत्रसंस्थिति) है ।

१६–एक मान्यता यह है कि तापक्षेत्रसंस्थिति श्येनपृष्ठ के आकार की है ।

वयं पुण एवं वदामो-

ता उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठिता तावक्खेत्तसंठिती पण्णत्ता—
अंतो संकुडा, बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा, बाहिं पिधुला,
अंतो अंकमुहसंठिता, बाहिं सत्थिमुहसंठिता,
उभतो पासेणं तीसे दुवे बाहाओ अवट्ठिताओ भवंति
पणतालीसं २ जोयणसहस्साइं आयामेणं,
तीसे दुवे बाहाओ अणवट्ठिताओ भवंति, तंजहा—
सव्वब्भंतरिआ चेव बाहा, सव्वबाहिरिया चेव बाहा ।
तत्थ को हेतूति वदेज्जा ?
ता अयण्णं जंबुद्दीवे २—जाव—परिक्खेवेणं,
ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठिता तावखेत्तसंठिती आहितात्ति वदेज्जा—
अंतो संकुडा, बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा, बाहिं पिधुला ।
अंतो अंकमुहसंठिता, बाहिं सत्थिमुहसंठिआ,
दुहओ पासेणं तीसे तथेव—जाव—सव्वबाहिरिया चेव बाहा,
तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं णव जोयणसहस्साइं चत्तारि य छलसीते जोयणसते णव य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ।
ता से णं परिक्खेवविसेसे कतो आहितेति वदेज्जा ?
ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता
दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहितात्ति वदेज्जा,
तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्देणं चउणउतिं जोयणसहस्साइं अट्ठ य अट्ठसट्ठे जोयणसते चत्तारि य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितात्ति वदेज्जा ।
ता से णं परिक्खेवविसेसे कतो आहितात्ति वदेज्जा ?
ता जे णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स परिक्खेवे, णं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहितात्ति वदेज्जा ।

[२] प्र०—**तीसे णं तावक्खेत्ते केवतियं आयामेणं आहितात्ति वदेज्जा ?**

उ०—**ता अट्ठत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागे च आयामेणं आहितेति वदेज्जा ।**

[३] प्र०—तया णं किसंठिया अंधगारसंठिई आहितेति वदेज्जा ?

उ०—उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठिता तहेव—जाव—बाहिरिया चेव बाहा ।

तीसे णं सव्वब्भंतरिया बाहा मंदरपव्वतंतेणं छज्जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउवीसे जोयणसते छच्च दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ।

[४] प्र०—तीसे णं परिक्खेवविसेसे कतो आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता जेणं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता सेसं तहेव ।

तीसे णं सव्वबाहिरिया बाहा लवणसमुद्देतेणं तेवट्ठि जोयणसहस्साइं दोण्णि य पणयाले जोयणसते छच्च दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहितेति वदेज्जा ।

[५] प्र०—ता से णं परिक्खेवविसेसे कतो आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता जे णं जंबुद्दीवस्स २ परिक्खेवे, तं परिक्खेवं दोहिं गुणित्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहितेति वदेज्जा ।

[६] प्र०—ता से णं अंधकारे केवतियं आयामेणं आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अट्ठत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागं च आयामेणं आहितेति वदेज्जा।

तता णं उत्तमकट्ठपत्ते अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति ।

[७] प्र०— ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तता णं किसंठिती तावक्खेत्तसंठिती आहितात्ति वदेज्जा ?

उ०— ता उद्धामुहकलंबुआपुप्फसंठिती तावक्खेत्तसंठिती आहितात्ति वदेज्जा ।

एवं जं अब्भितरमंडले अंधकारसंठितीए पमाणं तं बाहिरमंडले तावक्खेत्तसंठितीए,
जं तंहि तावखेत्तसंठितीए तं बाहिरमंडले अंधकारसंठितीए भाणियव्वं—जाव—
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवति, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति ।

—सूर्य. सूत्र २५ पृ. ६७-६८
—चन्द्र. " "
—जम्बू. सूत्र १३५ पृ. ४५३

हमारा कथन इस प्रकार है—

तापक्षेत्र संस्थिति ऊर्ध्वमुख कलंबुक (नालिका) के पुष्प के आकार की है । यह अंदर (मेरु की ओर) से संकड़ी और बाहर (लवणसमुद्र की ओर) से चोड़ी है । अंदर से गोल और बाहर से मोटी है । अंदर से अंकमुखाकार (अर्धवलयाकार) और बाहर स्वस्तिक के अग्रभाग के आकार की है । (मेरु पर्वत के दोनों ओर) इसकी दो बाहुएं अवस्थित हैं । ये ४५-४५ हजार योजन लंबी हैं । इसकी दो बाहुएँ अनवस्थित हैं, यथा-सर्वाभ्यन्तरा और सर्वबाह्य बाहु । इस (कथन) में क्या हेतु है ?

यह जम्बूद्वीप-यावत्-परिधि वाला है । इसमें जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब तापक्षेत्र संस्थिति ऊर्ध्वमुख कलंबुकपुष्प के आकार की होती है । यह अंदर से संकड़ी एवं बाहर से चौड़ी, अन्दर से गोल एवं बाहर से मोटी, अन्दर से अंकमुखाकार एवं बाहर से स्वस्तिक के अग्रभाग के आकार की होती है । इसकी दो ओर की बाहुएँ उसी प्रकार होती हैं,—यावत्—सर्वबाह्य बाहु तक समझना चाहिए । इसकी सर्वाभ्यन्तरिक बाहु मेरु पर्वत के पास ९३८६ $\frac{६}{१०}$ योजन की परिधि वाली है ।

[२] प्र०—यह परिधि किस प्रकार निकाली गई ?

उ०—मेरु पर्वत की जो परिधि है उसे त्रिगुणित कर दस का भाग देने से यह परिधि आती है। इसकी सर्वबाह्य बाहु की परिधि लवणसमुद्र के पास ९४८६८ $\frac{४}{१०}$ योजन की होती है।

[३] प्र०—यह परिधि कैसे निकाली गई ?

उ०—जम्बूद्वीप की जो परिधि है उसे त्रिगुणित कर दस का भाग देने से यह परिधि आती है।

[४] प्र०—इस तापक्षेत्र की लंबाई कितनी है ?

उ०—इसकी लबाई ७८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन है।

[५] प्र०—उस समय अंधकारस्थिति किस आकार की होती है ?

उ०—यह ऊर्ध्वमुख कलबुक-पुष्प के आकार की—यावत्–उसी प्रकार बाह्य बाहु वाली होती है। इसकी सर्वाभ्यन्तरिक बाहु मेरु पर्वत के पास ६३२४ $\frac{६}{१०}$ योजन की परिधि वाली होती है।

[६] प्र०—यह परिधि कैसे निकाली गई ?

उ०—मेरु पर्वत की जो परिधि है उसे द्विगुणित करके उसी प्रकार (दस का भाग देने से) यह परिधि आती है। इसकी सर्वबाह्य बाहु की परिधि लवणसमुद्र के पास ६३२४५ $\frac{६}{१०}$ योजन की होती है।

[७] प्र०—यह परिधि कैसे निकाली गई ?

उ०—जम्बूद्वीप की जो परिधि है उसे द्विगुणित करके दस का भाग देने से यह परिधि आती है।

[८] प्र०—इस अंधकार की लंबाई कितनी है ?

उ०—इसकी लबाई ७८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन है। उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त का दिन होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

[९] प्र०—जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब तापक्षेत्रसस्थिति किस आकार की होती है ?

उ०—तब तापक्षेत्रसंस्थिति ऊर्ध्वमुख कलंबुक-पुष्प के आकार की होती है। इस प्रकार जो अभ्यन्तर मंडल मे अंधकारसस्थिति का प्रमाण है वही बाह्य मंडल में तापक्षेत्रसंस्थिति का है एवं जो उस (अभ्यन्तर मडल) में तापक्षेत्रसस्थिति (का प्रमाण है) वही बाह्य मंडल में अंधकार संस्थिति का समझना चाहिए;—यावत्— उस समय उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है।

सर्वाभ्यन्तर मंडल में तापक्षेत्र-संस्थान

[३९][१] प्र०—जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किसंठिआ तावखित्तसंठिई पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ तावखेत्तसंठिई पण्णत्ता,
अंतो संकुआ, बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा, बाहिं विहुला,
अंतो अंकमुहसंठिआ, बाहिं सगडुद्धीमुहसंठिआ,
उभओ पासे णं तीसे दो बाहाओ अवट्ठिआओ हवंति पणयालीसं २ जोयणसहस्साइं आयामेणं,
दुवे अ णं तीसे बाहाओ अणवट्ठिआओ हवंति,
तजहा—

सव्वब्भंतरिआ चेव बाहा, सव्वबाहिरिआ चेव बाहा ।

तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं णव जोयणसहस्साइं चत्तारि छलसीए जोयणसए णव य दसभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं ।

[२] प्र०—एस णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएत्ति वएज्जा ?

उ०—गोयमा ! जे णं मंदरस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस परिक्खेवविसेसे आहिएत्ति वदेज्जा ।

तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्देतेणं चउणवई जोयणसहस्साइं अट्ठ य अट्ठसट्ठे जोयणसए चत्तारि य दसभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं ।

[३] प्र०—से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिए त्ति वएज्जा ?

उ०—गोयमा ! जे णं जंबुद्दीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसभागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिएत्ति वएज्जा इति ।

[४] प्र०—तया णं भंते ! तावखित्ते केवइयं आयामेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अट्ठहत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोयणसए जोयणस्स तिभागं च आयामेणं पण्णत्ते ।

गाहा—मेरुस्स मज्झयारे जाव य लवणस्स रुंदछब्भागे ।

तावायामो एसो, सगडुद्धीसंठिओ नियमा ॥१॥

[३९][१] प्र०—भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब तापक्षेत्रसंस्थिति किस प्रकार की होती है ?

उ०—गौतम ! तब तापक्षेत्रसंस्थिति ऊर्ध्वमुख कलंबुकपुष्प के आकार की होती है । यह अंदर से संकड़ी और बाहर से चौड़ी, अंदर से गोल एवं बाहर से मोटी, अंदर से अंकमुखाकार एवं बाहर से ऊर्ध्वमुख शकटाकार होती है । (मेरु पर्वत के) दो ओर की इसकी दो बाहुएं अवस्थित होती हैं, ये ४५-४५ हजार योजन लंबी होती हैं । इसकी दो बाहुएं अनवस्थित होती है, यथा-सर्वाभ्यन्तरिक बाहु एव सर्वबाह्य बाहु । इसकी सर्वाभ्यन्तरिक बाहु मेरु पर्वत के पास ९४८६$\frac{6}{9}$ योजन की परिधि वाली है ।

[२] प्र०—भगवन् ! यह परिधि कैसे निकाली गई है ?

उ०—गौतम ! जो मेरु पर्वत की परिधि है उसे त्रिगुणित कर दस का भाग देने मे यह परिधि आती है । इसकी सर्वबाह्य बाहु लवणसमुद्र के पास ९४८६८$\frac{6}{9}$ योजन की परिधि वाली है ।

[३] प्र०—भगवन् ! यह परिधि कैसे निकाली गई ?

उ०—गौतम ! जो जम्बूद्वीप की परिधि है उसे त्रिगुणित कर दस का भाग देने से यह परिधि आती है ।

[४] प्र०—भगवन् ! उस समय तापक्षेत्र की लंबाई कितनी होती है ?

उ०—गौतम ! लंबाई ७८३३३$\frac{1}{3}$ योजन होती है ।

गाथार्थ—मेरु पर्वत के मध्य में-यावत् लवणसमुद्र का छठा भाग ताप की लंबाई है । यह नियमत: ऊर्ध्वमुख शकट के आकार की है ।

अन्धकार का संस्थान

[४०][१] प्र०—तया णं भंते ! किंसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता,
अंतो संकुआ, बाहिं वित्थडा, तं चेव—जाव—तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं छज्जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउवीसे जोअणसए छच्च दसभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं ।

[२] प्र०—से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएत्ति वएज्जा ?

उ०—गोयमा ! जे णं मंदरस्स पव्वस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणं एस णं परिक्खेवविसेसे आहिए त्ति वएज्जा । तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्दं-तेणं तेसट्ठी जोयणसहस्साइं दोण्णि य पणयाले जोअणसए छच्च दसभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं ।

[३] प्र०—से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएत्ति वएज्जा ?

उ०—गोयमा ! जे णं जंबुद्दीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता—जाव—तं चेव ।

[४] प्र०—तया णं भंते ! अंधयारे केवइयं आयामेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अट्ठहत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोअणसए तिभागं च आयामेणं पण्णत्ते ।

[५] प्र०—जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ
तया णं किंसंठिआ तावखित्तसंठिई पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ पण्णत्ता ।
तं चेव सव्वं णेअव्वं, णवरं णाणत्तं जं अंधयारसंठिइए पुव्ववण्णिअं पमाणं तं तावखित्तसंठिईए णेअव्वं,
जं ताव खित्तसंठिईए पुव्ववण्णिअं पमाणं तं अंधयारसंठिईए णेअव्वंति ।

—जंबू० सूत्र १३५ पृ० ४५३
—सूर्य० सूत्र २५ पृ० ६७–६८
—चन्द्र० ,, ,,

[४०][१] प्र०—भगवन् ! (सूर्य जब सर्वाभ्यन्तर मण्डल मे गति करता है) उस समय अन्धकारसंस्थिति का आकार कैसा होता है ?

उ०—गौतम ! अंधकारसंस्थिति का आकार ऊर्ध्वमुख कलम्बुकपुष्प के समान होता है । यह अंदर से संकड़ी एव बाहर से चौड़ी—यावत्—उसी प्रकार होती है । इसकी सर्वाभ्यन्तर बाहु मेरु पर्वत के पास ६३२४$\frac{६}{१९}$ योजन की परिधि वाली होती है ।

[२] प्र०—भगवन् ! यह परिधि कैसे निकाली गई ?

उ०—गौतम ! जो मेरु पर्वत की परिधि है उसे द्विगुणित कर दस का भाग देने से यह परिधि आती है । इसकी सर्वबाह्य बाहु लवणसमुद्र के पास ६३२४५$\frac{६}{१९}$ योजन परिधि वाली है ।

[३] प्र०—भगवन् ! यह परिधि कैसे निकाली गई ?

उ०—गौतम ! जो जम्बूद्वीप की परिधि है उसे द्विगुणित कर—यावत्—उसी प्रकार (दस का भाग देने से यह परिधि आती) है ।

[४] प्र०—भगवन् ! उस समय अंधकार की लंबाई कितनी होती है ?

उ०—गौतम ! (अंधकार की) लम्बाई ७८३३३$\frac{१}{३}$ योजन होती है ।

[५] प्र०—भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तब तापक्षेत्रसंस्थिति का आकार कैसा होता है ?

उ०—गौतम ! ऊर्ध्वमुख कलम्बुकपुष्प के समान होता है—यावत्—सम्पूर्ण वर्णन उसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता इतनी है कि पहले अंधकारसंस्थिति के जिस प्रमाण का वर्णन किया गया है उसे तापक्षेत्रसंस्थिति के विषय में समझना चाहिए एवं पहले तापक्षेत्रसंस्थिति के जिस प्रमाण का वर्णन किया गया है उसे अंधकारसंस्थिति के विषय में समझना चाहिए।

चन्द्र-सूर्य का स्वरूप

[१] [१] प्र०—ता कहं ते अणुभावे आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ।

तत्थेगे एवमाहंसु—

ता चंदिम-सूरिया णं णो जीवा, अजीवा, णो घणा, झुसिरा, णो बादरबोंदिधरा, कलेवरा,

नत्थि णं तेसिं उट्ठाणेति वा, कम्मेति वा, बलेति वा विरिएति वा, पुरिसकार-परक्कमेति वा।

ते णो विज्जू लवंति, णो असणिं लवंति, णो थणितं लवंति,

अहे य णं बादरे वाउकाए संमुच्छति, अहे य णं बादरे वाउकाए संमुच्छिमा विज्जुंपि लवंति,

असणिं पि लवंति, थणितंपि लवंति, एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु—

ता चंदिम-सूरिया णं जीवा, णो अजीवा, घणा, नो झुसिरा,

बादरबुंदिधरा, नो कलेवरा, अत्थि णं तेसिं उट्ठाणेति वा—जाव—

ते विज्जुंपि लवंति३, एगे एवमाहंसु।

वयं पुण एवं वदामो—

ता चंदिम-सूरिया णं देवा णं महिड्ढिया—जाव—महाणुभागा वरवत्थधरा वरमल्लधरा वरामरणधारी

अवोच्छित्तिणयट्ठताए अन्ने चयंति अण्णे उववज्जंति।

—सूर्य० सूत्र १०४ पृ० २८५-२८६

—चन्द्र० सूत्र १०४

[१] [१] प्र०—इन (चन्द्र आदिक) का स्वरूप कैसा है ?

उ०—इनके विषय में (परतीर्थिकों के) दो मत है—

एक मत है कि ये चन्द्र-सूर्य जीव नही हैं, अजीव हैं, ठोस नहीं है, पोले हैं; बादर शरीर धारण करने वाले नही हैं, कलेवरमात्र है; इनमें बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम आदि कुछ नहीं है ये विद्युत् उत्पन्न नही करते, अशनि उत्पन्न नहीं करते, स्तनित (मेघगर्जन) उत्पन्न नहीं करते। (इनके) नीचे बादर वायुकाय विद्युत् को भी उत्पन्न करता है, अशनि को भी उत्पन्न करता है, स्तनित को भी उत्पन्न करता है। कोई ऐसा कहते हैं।

कोई (दूसरे) कहते है—

चंद्र और सूर्य जीव हैं, अजीव नहीं; ठोस हैं, पोले नही; बादर शरीर धारण करने वाले हैं, कलेवर मात्र नही। इनमें उत्थान आदि हैं। ये विद्युत् अशनि और स्तनित भी उत्पन्न करते हैं।

हम ऐसा कहते हैं—

ये चन्द्र-सूर्य देव है, महर्द्धिक-यावत्-महानुभाग हैं, श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाले हैं, श्रेष्ठ माला धारण करने वाले हैं, श्रेष्ठ आभरण धारण करने वाले हैं, अविच्छिन्न रूप से एक के च्युत होने पर दूसरे उत्पन्न होते रहते हैं।

चन्द्र-सूर्य का व्युत्पत्तिमूलक स्वरूप

[२][[१] प्र०—ता कहं ते चंदे ससी आहितेति वदेज्जा ?

उ०— ता चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो
मियंके विमाणे, कंता देवा, कंताओ देवीओ,
कंताइं आसण-सयण-खंभ भंड-मत्तोवयरणाइं,
अप्पणावि णं चंदे देवे जोतिसिंदे जोतिसराया
सोमे कंते सुभे पियदंसणे सुरूवे,
ता एवं खलु चंदे ससी चंदे ससी आहितेति वदेज्जा ।

[२] प्र०—ता कहं ते सूरिए आइच्चे सूरे २ आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता सूरादीया समयाति वा, आवलियाति वा, आणापाणूति वा, थोवेति वा-जाव-उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीति वा,
एवं खलु सूरे आदिच्चे २ आहितेति वदेज्जा ।

—सूर्य० सू० १०६ पृ० २६१
—चन्द्र० सू० १०६
—भग० मा० ३ श० १२ उ० ६ प्र० ३-४ पृ० २८०

[३] तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं गोयमे अचिरुग्गयं बालसूरियं जासुमणकुसुमपुंजप्पकासं लोहितगं पासइ । पासित्ता जायसड्ढे-जाव-समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ-जाव नमंसित्ता-जाव-एवं वयासी —

[१] प्र०—किमिदं भंते ! सूरिए ? किमिदं भंते ! सूरियस्स अट्ठे ?

उ०—गोयमा ! सुभे सूरिए, सुभे सूरियस्स अट्ठे ।

[२] प्र०—किमिदं भंते ! सूरिए, किमिदं भंते ! सूरियस्स पभा ?

उ०—एवं चेव, एवं छाया, एवं लेस्सा ।

—विवा० भाग ३ श० १४ उ० ६ प्र० १०-११ पृ० ३६१

[२] [१] प्र०—चन्द्र को 'ससी' क्यों कहते हैं ?

उ०—ज्योतिष्कों के इन्द्र एवं ज्योतिष्कों के राजा चन्द्र के मृगांक विमान में मनोहर देव, मनोहर देवियां तथा मनोज्ञ आसन, शयन, स्तभ, पात्र आदि उपकरण है । (इनके अतिरिक्त) ज्योतिष्केन्द्र एवं ज्योतिष्कराजा चन्द्रदेव स्वयं भी सौम्य, कान्त, सुभग, प्रियदर्शन एवं सुरूप है । इस कारण चन्द्र को 'ससी' (शशि या सश्री) कहते हैं ।

[२] प्र०—सूर्य को आदित्य क्यों कहते है ?

उ०—समय, आवलिका, श्वासोच्छ्वास, स्तोक—यावत्—उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी का आदिभूत कारण सूर्य है । इस कारण सूर्य को 'आदित्य' कहते हैं ।

[३] उस काल और उस समय में भगवान् गौतम अचिरोद्गत (अभी-अभी उगे हुए) जासुमन के पुष्पों के पुंज के समान आभा वाले रक्तवर्ण बालसूर्य को देखते है । देख कर श्रद्धावश—यावत्—कौतूहलवश हो जिधर श्रमण भगवान् महावीर हैं, उधर जाते हैं,—यावत्—नमस्कार करके—यावत्—इस प्रकार कहते हैं—

[१] प्र०—भगवन् ! सूर्य क्या है ? सूर्य का अर्थ क्या है ?

उ०—गौतम ! सूर्य शुभ है। सूर्य का अर्थ शुभ है।

[२] प्र०—भगवन् ! सूर्य क्या है ? भगवन् ! सूर्य की प्रभा क्या है ?

उ०—ये भी इसी प्रकार है। इसी प्रकार (सूर्य की) छाया एवं लेश्या (भी कहना चाहिए।)

चन्द्र-सूर्यों की संख्या

[४] [१] प्र०—ता कति णं चंदिम-सूरिया सव्वलोयं ओभासंति, उज्जोएंति, तवेंति, पभासेंति आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ बुवालस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१—तत्थेगे एवमाहंसु
ता एगे चंदे एगे सूरे सव्वलोगं ओभासति, उज्जोएति, तवेति, पभासति, एगे एवमाहंसु ।

२—एगे पुण एवमाहंसु
ता तिण्णि चंदा तिण्णि सूरा सव्वलोअं ओभासेंति, एगे एवमाहंसु।

३—एगे पुण एवमाहंसु
ता आउट्टिं चंदा, आउट्टिं सूरा सव्वलोअं ओभासेंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पगासिंति, एगे एवमाहंसु।
एगे पुण एवमाहंसु,
एतेणं अभिलावेणं णेतव्वं—

४—सत्त चंदा, सत्त सूरा, ५ दस चंदा, दस सूरा, ६ बारस चंदा, बारस सूरा, ७ बातालीसं चंदा, बातालीसं सूरा, ८ बावत्तरिं चंदा, बावत्तरिं सूरा, ९ बातालीसं चंदसतं, बातालीसं सूरसतं, १० बावत्तरिं चंदसयं, बावत्तरिं सूरसयं, ११ बायालीसं चंदसहस्सं, बायालीसं सूरसहस्सं, १२ बावत्तरं चंदसहस्सं, बावत्तरं सूरसहस्सं,
सव्वलोयं ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पगासंति,
एगे एवमाहंसु।

वयं पुण एवं वदामो

ता अयण्णं जंबुद्दीवे २—जाव—परिक्खेवेणं ।

—सूर्य. सू० १०० पृ. २६८
—चन्द्र. सू० १००

[४] [१] प्र०—कितने चन्द्र और सूर्य समस्त लोक में अवभास करते हैं, उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रभासित होते है ?

उ०—इस विषय में (अन्यतीर्थिकों की) ये बारह प्रतिपत्तियां हैं—

१–एक मत यह है कि एक चन्द्र और एक सूर्य समस्त लोक को अवभासित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है, प्रभासित करता है।

२–एक मत यह है कि तीन चन्द्र और तीन सूर्य समस्त लोक को अवभासित करते हैं, इत्यादि।

३–एक मत यह है कि साढ़े तीन चन्द्र और साढ़े तीन सूर्य समस्त लोक को अवभासित, उद्योतित, तप्त और प्रकाशित करते हैं।

४-१२-इसी प्रकार कोई-कोई कहते हैं—(४) सात चन्द्र और सात सूर्य (५) दस चन्द्र और दस सूर्य (६) बारह चन्द्र और बारह सूर्य (७) बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य (८) बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य (९) ४२०० चन्द्र और ४२०० सूर्य (१०) ७२०० चन्द्र और ७२०० सूर्य (११) ४२००० चन्द्र और ४२००० सूर्य (१२) ७२००० चन्द्र और ७२००० सूर्य सर्वलोक को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते है, तपाते हैं, प्रकाशित करते हैं।

हम ऐसा कहते है—यह जम्बूद्वीप-यावत्-परिधि वाला है।[1]

चन्द्र और सूर्य की गति

[५] [१] प्र०—ता कहं ते चारा आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमा दुविहा चारा पण्णत्ता, तंजहा—
आदिच्चचारा य, चंदचारा य।

[२] प्र०—ता कहं ते चंदचारा आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचसंवच्छरिएणं जुगे,
अभीइणक्खत्ते सत्तसट्ठिचारे चंदेण सद्धिं जोयं जोएति,
सवणे णं णक्खत्ते सत्तट्ठिं चारे चंदेण सद्धिं जोयं जोएति।
एवं—जाव—उत्तरासाढाणक्खत्ते सत्तट्ठिचारे चदेणं सद्धिं जोयं जोएति।

[३] प्र०—ता कहं ते आइच्चचारा आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता पंचसंवच्छरिएणं जुगे,
अभीयीणक्खत्ते पंचचारे सूरेण सद्धिं जोयं जोएति,
एवं—जाव—उत्तरासाढाणक्खत्ते पंचचारे सूरेण सद्धिं जोयं जोएति।

—सूर्य. सूत्र ५२ पृ. १५२

[५] [१] प्र०—(चन्द्र और सूर्य की) गति किस प्रकार की है ?

उ०—गति दो प्रकार की है, यथा–आदित्यगति और चन्द्रगति।

[२] प्र०—चन्द्रगति किस प्रकार की है ?

उ०—पाँच संवत्सर का युग होता है। उसमें अभिजित नक्षत्र ६७ बार चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। श्रवण नक्षत्र ६७ बार चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। इसी प्रकार–यावत्–उत्तराषाढा नक्षत्र ६७ बार चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है।

[३] प्र०—आदित्यगति किस प्रकार की है ?

उ०—पाँच संवत्सर के एक युग मे अभिजित नक्षत्र पाँच बार सूर्य के साथ योगयुक्त होता है। इसी प्रकार–यावत्–उत्तराषाढा नक्षत्र पाँच बार सूर्य के साथ योगयुक्त होता है।

चन्द्र-सूर्य का अवभासनक्षेत्र

[६] [१] प्र०—ता केवतियं खेत्तं चंदिम-सूरिया ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पभासंति आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ बारस पडिवत्तीओ पन्नत्ताओ—

---

१. स्पष्टीकरण के लिए देखिए पृ० २५२ से २५६

१–तत्थेगे एवमाहंसु—
ता एगं दीवं एगं समुद्दं चंदिम-सूरिया ओभासेंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पगासेंति, एगे एवमाहंसु ।

२–एगे पुण एवमाहंसु—
ता तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासंति०, एगे एवमाहंसु ।

३–एगे पुण एवमाहंसु—
ता अद्धचउत्थे दीव-समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभास ति उज्जोवेंति तवेंति पगासिंति, एगे एवमाहंसु ।

४–एगे पुण एवमाहंसु—
ता सत्त दीवे सत्त समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासिंति, एगे एवमाहंसु ।

५–एगे पुण एवमाहंसु—
ता दस दीवे दस समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभास ंति ४, एगे एवमाहंसु ।

६–एगे पुण एवमाहंसु—
ता बारस दीवे बारस समुद्दे चंदिमसू-रिया ओभास ंति ४, एगे एवमाहंसु ।

७–एगे पुण एवमाहंसु—
बायालीसं दीवे बायालीसं समुद्दे चंदिम-सू रिया ओभास ंति ४, एगे एवमाहंसु ।

८–एगे पुण एवमाहंसु—
बावत्तरिं दीवे बावत्तरिं समुद्दे चंदिम-सूरिया ओभासंति ४, एगे एवमाहंसु ।

९–एगे पुण एवमाहंसु—
ता बातालीसं दीवसतं बातालीसं समुद्दसतं चंदिम-सूरिया ओभासंति ४, एगे एवमाहंसु ।

१०–एगे पुण एवमाहंसु—
ता बावत्तरिं दीवसतं बावत्तरिं समुद्दसतं चदिम-सूरिया ओभासंति ४, एगे एवमाहंसु ।

११–एगे पुण एवमाहंसु—
ता बायालीसं दीवसहस्सं बायालं समुद्दसहस्सं चंदिम-सूरिया ओभासंति ४, एगे एवमाहंसु ।

१२–एगे पुण एवमाहंसु—
ता बावत्तरिं दीवसमुद्दं बावत्तरं समुद्दसहस्सं चंदिम-सूरिया ओभासंति ४, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो–
अयण्णं जंबुद्दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं—जाव—परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।
से णं एगाए जगतीए सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते,
सा णं जगती तहेव जहा जंबुद्दीवपन्नतीए—जाव—एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे २ चोद्दस सलिलासयसहस्सा छप्पन्नं च सलिलासहस्सा भवंतीति मक्खाया ।
जंबुद्दीवे णं दीवे पंचचक्कभागसंठिते आहितात्ति वदेज्जा ।
ता कहं जंबुद्दीवे २ पंचचक्कभागसंठिते आहितात्ति वदेज्जा ?
ता जता णं एते दुवे सूरिया सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति
तदा णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स तिण्णि पंचचक्कभागे ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पभासंति ।
तंजहा—
एगो वि एगं दिवड्ढं पंच चक्कभागं ओभासेति ४,
एगो वि एगं दिवड्ढं पंच चक्कभागं ओभासेति ४,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति,
जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवति ।
ता जता णं एते दुवे सूरिया सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति,

तदा णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स दोण्णि चक्कभागे ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पगासेंति ।
ता एगेवि एगं पंचचक्कवालभागं ओभासेति, उज्जोवेइ तवेइ पभासइ ।
एगेवि एक्कं पंच चक्कवालभागं ओभासइ ४,
तता णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवई, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवति ।

—सूर्य. सूत्र २४ पृ. ६३-६४
—चन्द्र. सूत्र २४

[६] [१] प्र०—चन्द्र-सूर्य कितने क्षेत्र मे अवभासित होते है, उद्योत करते है, तपते है, प्रकाशित होते है ?

उ०—इस विषय मे (अन्य तीर्थिको की) ये बारह प्रतिपत्तियाँ (मान्यताएँ) है—

१–कोई कहते है कि चन्द्र और सूर्य एक द्वीप व एक समुद्र मे अवभासित होते हैं, उद्योतित होते है, तपते है, प्रकाशित होते है ।

२–एक मान्यता ऐसी है कि चन्द्र-सूर्य तीन द्वीपों और तीन समुद्रो मे अवभासित होते है, आदि ।

३–एक मान्यता ऐसी है कि चन्द्र-सूर्य साढे तीन द्वीपों और साढ़े तीन समुद्रों को अवभासित करते है, उद्योतित करते है, तपते है, प्रकाशित करते है ।

४–एक मान्यता ऐसी है कि चन्द्र-सूर्य सात द्वीपो और सात समुद्रो को अवभासित करते हैं इत्यादि ।

५–एक मान्यता यह है कि चन्द्र-सूर्य दस द्वीपो व दस समुद्रों को अवभासित आदि करते हैं ।

६–कोई कहते है–चन्द्र–सूर्य बारह द्वीपों और बारह समुद्रों को अवभासित आदि करते हैं ।

७–किसी का कहना है कि चन्द्र-सूर्य बयालीस द्वीपों व समुद्रों को प्रकाशित आदि करते हैं ।

८–किसी के कथनानुसार चन्द्र-सूर्य बहत्तर द्वीपो और बहत्तर समुद्रों को अवभासित करते है, आदि ।

९–किसी का कथन है कि चन्द्र-सूर्य बयालीस सौ द्वीपों और बयालीस सौ समुद्रों को अवभासित करते है ।

१०–कोई कोई कहते है–चन्द्र–सूर्य बहत्तर सौ द्वीपों और बहत्तर सौ समुद्रों को अवभासित करते हैं, आदि ।

११–कोई कहते हैं कि चन्द्र और सूर्य बयालीस हजार द्वीपों और बयालीस हजार समुद्रों को अवभासित करते हैं, आदि ।

१२–किसी का कहना है कि चन्द्र और सूर्य बहत्तर हजार द्वीपों और बहत्तर हजार समुद्रों को अवभासित करते है, आदि ।

किन्तु हम ऐसा कहते है—
यह जम्बूद्वीप सर्व द्वीप-समुद्रों के (मध्य में है)—यावत्—परिधि वाला है । इसके चारों ओर एक जगती (कोट) है । यह जगती उसी प्रकार है जिस प्रकार जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में (वर्णन किया गया है)—यावत्—सब मिलाकर इस जम्बूद्वीप में चौदह लाख छप्पन हजार नदियां हैं ।
जम्बूद्वीप को पांच भागों में विभक्त करना चाहिए । जम्बूद्वीप को पांच भागों में विभक्त क्यों करना चाहिए ?

जब ये (जम्बूद्वीप के) दोनों सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में उपसंक्रान्त होकर गति करते हैं तब जम्बूद्वीप के पांच भागों में से तीन भागों में अवभास करते हैं, उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रभासित होते हैं—यथा–एक (सूर्य) पाँच भागों में से डेढ़ भाग ($\frac{3}{5}=\frac{3}{2}+\frac{1}{5}=\frac{3}{10}$) को अवभासित करता है। तथा दूसरा भी पाँच भागों मे से डेढ़ भाग को अवभासित करता है। इस समय उत्कृष्ट सीमा को प्राप्त सबसे बड़ा अठारह मुहूर्त्त का दिवस होता है एवं जघन्य बारह मुहूर्त्त की रात्रि होती है।

जब ये दोनों सूर्य सर्वबाह्य मंडल में उपसंक्रान्त होकर गति करते है तब जम्बूद्वीप के (पाँच भागों मे से) दो भागो ($\frac{2}{5}$) में अवभास करते हैं, उद्योत करते है, तपते है, प्रकाश करते हैं। एक सूर्य पाँच भागो मे से एक भाग को अवभासित करता है, उद्योतित करता है, तपता है, प्रभासित करता है और दूसरा भी पाँच भागों में से एक भाग को अवभासित आदि करता है। इस समय सर्वोत्कृष्ट सीमा को प्राप्त अठारह मुहूर्त्त की रात्रि और सर्वजघन्य बारह मुहूर्त्त का दिन होता है।

उद्योत का लक्षण

[७] [१] प्र०—ता कहं ते दोसिणालक्खणे आहितेति वदेज्जा ?
उ०—ता चंदलेसादी य दोसिणादी य।

[२] प्र०—दोसिणाई य चंदलेसादी य के अट्ठे किलक्खणे ?
उ०—ता एकट्ठे एगलक्खणे।
ता सूरलेस्सादी य आयवेइ य।

[३] प्र०—आतवेति य सूरलेस्सादी य के अट्ठे किलक्खणे ?
उ०—ता एगट्ठे एगलक्खणे।
ता अंधकारेति य छायाइ य।

[४] प्र०—छायाति य अंधकारेति य के अट्ठे किलक्खणे ?
उ०—ता एगट्ठे एगलक्खणे।

—सूर्य सूत्र ८७ पृ० २५६
—चन्द्र सूत्र ८७

[७] [१] प्र०—ज्योत्स्ना—उद्योत का क्या लक्षण कहा गया है ?
उ०—उद्योत चन्द्रलेश्या—चन्द्र के प्रकाश से होता है।

[२] प्र०—उद्योत एवं चन्द्रलेश्या का क्या अर्थ है ? क्या लक्षण है ?
उ०—इनका एक ही अर्थ है, एक ही लक्षण है।
सूर्यलेश्या—सूर्य के प्रकाश से आतप होता है।

[३] प्र०—आतप एवं सूर्य लेश्या का क्या अर्थ है एवं क्या लक्षण है ?
उ०—इनका एक ही अर्थ एवं एक ही लक्षण है।
अन्धकार से छाया होती है।

[४] प्र०—छाया एवं अंधकार का क्या अर्थ हे ? क्या लक्षण है ?
उ०—इनका एक ही अर्थ एवं एक ही लक्षण है।

ग्रहनिरूपण

अठासी महाग्रहों के नाम

[१] तत्थ खलु इमे अट्ठासीतो महग्गहा पण्णत्ता, तंजहा—
इंगालए, वियालए, लोहितंके, सणिच्छरे, आहुणिए,
पाहुणिए, कणो, कणए, कणकणए, कणवितागए १०,
कणगसंताणे, सोमे, सहिते, अस्सासणे, कज्जोवए,
कव्वरए, अयकरए, दुदुंभए, संखे, संखणामे, २०,
संखवण्णाभे, कंसे, कंसणाभे, कंसवण्णाभे, णीले,
णीलोभासे, रुप्पे, रुप्पोभासे,[1] भासे, भासरासी, ३०,
तिले, तिलपुप्फवण्णे, दगे, दगवण्णे, काये,
वंधे, इंदग्गी, धूमकेतू, हरी, पिंगलए, ४०
बुधे, सुक्के,[2] बहस्सती, राहू, अगत्थी,
माणवए, कामफासे, धुरे, पमुहे, वियडे, ५०,
विसधिकप्पेल्लए, पइल्ले, जडियालए, अरुणे, अग्गिल्लए,
काले, महाकाले, सोत्थिए, सोवत्थिए, वद्धमाणगे,[3] ६०
पलंबे, णिच्चालोए, णिच्चुज्जोते, सयपभे, ओभासे,
सेयंकरे, खेमंकरे, आभंकरे, पभंकरे, अरए, ७०
विरए, असोगे, वीतसोगे य, विमले, वितते,
विवत्थे, विसाले, साले, सुव्वते, अणियट्टी, ८०
एगजडी, बुजडी, कर, करिए, राय-गले, पुप्फकेतू, भावकेतू, [4]

—सूय० सूत्र १०७ पृ० २६४–६५
—चन्द्र० ,, ,,

[१] ये (निम्नलिखित) अठासी महाग्रह कहे गए है :—

१–अंगारक, २–विकालक, ३–लोहितक, ४–शनैश्चर, ५–आधुनिक, ६–प्राधुनिक, ७–कण, ८–कणक, ९–कणकणक, १०–कणवितानक, ११–कणसन्तानक, १२–सोम, १३–सहित, १४–आश्वासन, १५–कार्योपग, १६–कर्बटक, १७–अजकरक, १८–दुन्दुभक, १९–शंख, २०–शंखनाभ, २१–शंखवर्णाभ, २२–कंस, २३–कंसनाभ, २४–कंसवर्णाभ, २५–नील, २६–नीलावभास, २७–रुप्पी, २८–रुप्यवभास, २९–भस्म, ३०–भस्मराशि, ३१–तिल, ३२–तिलपुष्पवर्णक, ३३–दक, ३४–दकवर्ण, ३५–काय, ३६–बन्धय, ३७–इन्द्राग्नि, ३८–धूमकेतु, ३९–हरि, ४०–पिंगल, ४१–बुध, ४२–शुक्र, ४३–बृहस्पति, ४४–राहु, ४५–अगस्ति ४६–माणवक, ४७–कामस्पर्श, ४८–धुर, ४९–प्रमुख, ५०–विकट, ५१–विसंधिकल्प,

---

१– स्थानांग सूत्र में रुक्मी और रुक्माभास पहले तथा नील एवं नीलाभास उसके बाद में उल्लिखित हैं ।

२– सुक्के णं महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एगूणवीसं णक्खत्ताइं समं चारं चरित्ता अवरेणं अत्थमणं उवागच्छइ ।
—सम० १९ सूत्र ३

३– 'वद्धमाणग' और 'पलंब' के बीच स्थानांग में 'पूसमानक' और 'अंकुश' नामक दो ग्रह अधिक हैं ।

४– ठा० २ उ० सूत्र ९० पृ० ७३

५२-प्रकल्प, ५३-जटाल, ५४-अरुण, ५५-अग्नि, ५६-काल, ५७-महाकाल, ५८-स्वस्तिक, ५९-सौवस्तिक, ६०-वर्द्धमानक, ६१-प्रलम्ब, ६२-नित्यालोक, ६३-नित्योद्योत, ६४-स्वयंप्रभ, ६५-अवभास, ६६-श्रेयस्कर, ६७-क्षेमंकर, ६८-आभंकर, ६९-प्रभंकर, ७०-अरजा, ७१-विरजा, ७२-अशोक, ७३-वीतशोक, ७४-विवर्त्त, ७५-विवस्त्र, ७६-विशाल, ७७-शाल, ७८-सुव्रत, ७९-अनिवृत्ति, ८०-एकजटी, ८१-द्विजटी, ८२-कर, ८३-करिक, ८४-राज, ८५-अर्गल, ८६-पुष्प, ८७-भाव, ८८-केतु ।

राहु के भेद

[२] [१] प्र०—**कतिविधे णं राहू पण्णत्ते ?**

उ०—**दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—**

ता धुवराहू य पव्वराहू य ।

तत्थ णं जे से धुवराहू,

से णं बहुलपक्खस्स पाडिवए पण्णरसइभागेणं[1] भागं चंदस्स लेसं आवरेमाणे० चिट्ठति, तंजहा—

पढमाए पढमं भागं—जाव—पन्नरसम भागं,

चरमे समए चंदे रत्ते भवति, अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवइ ।

तमेव सुक्कपक्खे उवदंसेमाणे २ चिट्ठति, तंजहा—

पढमाए पढमं भागं—जाव—चंदे विरत्ते य भवइ ।

अवसेसे समए चंदे रत्ते विरत्ते य भवति ।

तत्थ णं जे ते पव्वराहू से जहण्णेणं छण्हं मासाणं,

उक्कसेणं बायालीसाए मासाणं चंदस्स अडयालीसाए संवच्छराणं सूरस्स ।

—सूर्य. सूत्र १०५ पृ. २८६-२८८

—चन्द्र. सूत्र १०५

—विवा. भाग ३ श. १२ उ. ६ प्र. १-२ पृ. २७९-२८०

[२] [१] प्र०—राहु कितने प्रकार के हैं ?

उ०—(राहु) दो प्रकार के हैं, यथा-ध्रुवराहु और पर्वराहु ।

इनमें जो ध्रुवराहु है वह कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अपने पन्द्रहवें भाग द्वारा चन्द्र के प्रकाश को आवृत करता हुआ स्थित रहता है । यथा—प्रतिपदा को प्रथम भाग—यावत्—(अमावस्या को) पन्द्रहवें भाग को (आवृत करता) है । इस प्रकार चरम समय में चन्द्र रक्त (आच्छादित) रहता है । अवशेष समय में चन्द्र रक्त तथा विरक्त (अनाच्छादित)—दोनों तरह रहता है । शुक्लपक्ष मे उसी को (चन्द्रमा के भाग को) दिखाता हुआ स्थित रहता है । यथा-प्रतिपदा को प्रथम भाग (—यावत्—पूर्णिमा को पन्द्रहवाँ भाग दिखाई देता है), —यावत्—(चरम समय में) चन्द्र विरक्त-अनाच्छादित होता है । अवशेष समय में चन्द्र रक्त-आच्छादित एवं विरक्त-अनाच्छादित दोनों तरह होता है ।

इनमें से जो पर्वराहु है वह जघन्य छह मास में (चन्द्र तथा सूर्य को) एवं उत्कृष्ट बयालीस मास मे चन्द्रमा को तथा अड़तालीस वर्ष में सूर्य को (आवृत करता है) ।

---

१. सम. १५ सूत्र ३ पृ. ३०

राहु का स्वरूप

[३] [१] प्र०—ता कहं ते राहुकम्मे आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१–तत्थेगे एवमाहंसु
अत्थि णं से राहू देवे, जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हति, एगे एवमाहंसु ।

२–एगे पुण एवमाहंसु
नत्थि णं से राहू देवे, जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हइ ।

१–तत्थ जे ते एवमाहंसु
ता अत्थि णं से राहू देवे, जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हति,
ता राहू णं देवे चंदं वा सूरं वा गेण्हमाणे
बुद्धंतेणं गिण्हित्ता बुद्धंतेणं मुयति,
बुद्धंतेणं गिण्हित्ता मुद्धंतेणं मुयइ,
मुद्धंतेणं गिण्हित्ता मुद्धंतेणं मुयति,
वामभुयंतेणं गिण्हित्ता वामभुयंतेणं मुयति,
वामभुयंतेणं गिण्हित्ता दाहिणभुयंतेणं मुयति,
दाहिणभुयंतेणं गिण्हित्ता वामभुयंतेणं मुयति,
दाहिणभुयंतेणं गिण्हित्ता दाहिणभुयंतेण मुयति ।

२–तत्थ जे ते एवमाहंसु—
ता नत्थि णं से राहू देवे, जे णं चंदं वा सूरं वा गेण्हति ते एवमाहंसु,
तत्थ णं इमे पण्णरस कसिणपोग्गला पण्णत्ता, तंजहा—सिंघाणए, जडिलए, खरए, खतए, अंजणे,
खंजणे, सीतले, हिमसीयले, केलासे अरुणाभे, परिज्जए, णभसूरए, कविलिए, पिंगलए, राहू ।
ता जया णं एते पण्णरस कसिणा २ पोग्गला
सदा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुबद्धचारिणो भवंति,
तता णं माणुसलोयंमि माणुसा एवं वदंति,
एवं खलु राहू चंदं वा सूरं वा गेण्हति, एवं २ ।
जता णं एते पण्णरस्स कसिणा२ पोग्गला णो सदा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुबद्धचारिणो
खलु, तदा माणुसलोयंमि मणुस्सा एवं वदंति, एवं णो खलु राहू चंदं वा सूरं वा गेण्हति,
एते एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—
ता राहू णं देवे महिड्ढीए-जाव-महाणुभावे, वरवत्थधरे-जाव-वराभरणधारी,
राहुस्स णं देवस्स णव णामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा—
सिंघाडए, जडिलए, खरए, खेतए, दद्दुरे, मगरे, मच्छे, कच्छभे, कण्णसप्पे ।
ता राहुस्स णं देवस्स विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता, तंजहा—
किण्हा, नीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला ।
अत्थि कालए राहुविमाणे खंजणवण्णाभे पण्णत्ते,
अत्थि नीलए राहुविमाणे लाउयवण्णाभे पण्णत्ते,
अत्थि लोहिए राहुविमाणे मंजिट्ठवण्णाभे पण्णत्ते,
अत्थि हालिद्दए राहुविमाणे हालिद्दवण्णाभे पण्णत्ते,
अत्थि सुक्किल्लए राहुविमाणे भासरासिवण्णाभे पण्णत्ते ।

१–ता जया णं राहुदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं पुरच्छिमेण आवरित्ता पच्चत्थिमेणं वीतीवतति,
तया णं पुरच्छिमेणं चंदे सूरे वा उवदंसेति, पच्चत्थिमेणं राहू ।

२–जदा णं राहुदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं दाहिणेणं आवरित्ता उत्तरेणं वीतीवतति,
तदा णं दाहिणेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेति, एवं उत्तरेणं राहू ।
एतेणं अभिलावेणं पच्चत्थिमेणं आवरित्ता पुरच्छिमेणं वीतीवतति,
उत्तरेणं आवरित्ता दाहिणेणं वीतीवतति ।

३–जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं दाहिणपुरच्छिमेणं आवरित्ता उत्तरपच्चत्थिमेणं वीईवयइ,
तया णं दाहिण-पुरच्छिमेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेइ, उत्तर-पच्चत्थिमेणं राहू ।

४–जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं दाहिणपच्चत्थिमेणं आवरित्ता उत्तरपुरच्छिमेणं वीतीवतति,
तदा णं दाहिणपच्चत्थिमेणं चदे वा सूरे वा उवदंसेति, उत्तरपुरच्छिमेणं राहू ।
एतेणं अभिलावेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं आवरेत्ता दाहिणपुरच्छिमेणं वीतीवतति,
उत्तरपुरच्छिमेणं आवरेत्ता दाहिणपच्चत्थिमेण वीतीवयइ ।

५–ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता वीतिवतति,
तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति—राहुणा चंदे सूरे वा गहिते ।

६–ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता पासेणं वीतीवतति,
तता णं मणुस्सलोअंमि मणुस्सा वदंति—चंदेण वा सूरेण वा राहुस्स कुच्छी भिण्णा ।

७–ता जता णं राहू देवे आगच्छमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता पच्चोसक्कति
तता णं मणुस्सलोए मणुस्सा एवं वदंति—
राहुणा चंदे वा सूरे वा वंते—राहुणा चंदे वा सूरे वा वंते ।

८–ता जता णं राहू देवे आगच्छमाणे वा० चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता मज्झं मज्झेणं वीतीवतति
तता णं मणुस्सलोयंसि मणुस्सा वदंति—
राहुणा चंदे वा सूरे वा विइयरिए—राहुणा चंदे वा सूरे वा विइयरिए ।

९–ता जता णं राहू देवे आगच्छमाणे०
चंदस्स वा सूरस्स वा लेसं आवरेत्ता णं अंधे सपक्खि सपडिदिसिं चिट्ठति,
तता णं मणुस्सलोअंमि मणुस्सा वदंति – राहुणा चंदे वा० घत्थे, राहुणा० २ ।

—सूर्य. सूत्र १०५ पृ. २८६-८७

[३] [१] प्र०—राहुकर्म किस प्रकार का बतलाया गया है ?

उ०—इस विषय में दो प्रतिपत्तियां—मत है—

१–एक मान्यता ऐसी है कि जो चन्द्र और सूर्य को ग्रसित—ग्रहण करता है वह राहु देव है ।

२–एक मान्यता ऐसी भी है कि जो चन्द्र और सूर्य को ग्रसित करता है वह राहु देव नही है ।

इनमें से जो ऐसा कहते है कि—जो चन्द्र व सूर्य को ग्रसित करता है वह राहु देव है, उनकी मान्यता इस प्रकार है—

राहुदेव चन्द्र या सूर्य को ग्रसित करते समय अधोभाग मे ग्रसित करना हुआ अधोभाग मे छोडता है, अधोभाग से ग्रहण करना हुआ ऊर्ध्वभाग से छोडता है । ऊर्ध्वभाग से ग्रहण करता हुआ ऊर्ध्वभाग से छोड़ता है, वाम भुजा से ग्रहण करता हुआ वाम भुजा से छोड़ता है, वाम भुजा से ग्रहण करता हुआ दक्षिण भुजा से छोड़ता है, दक्षिण भुजा मे ग्रहण करता हुआ वाम भुजा से छोड़ता है, दक्षिण भुजा से ग्रहण करता हुआ दक्षिण भुजा से छोड़ता है ।

जो ऐसा कहते है कि—जो चन्द्र व सूर्य को ग्रहण करता है वह राहु देव नही है, उनका कथन इस प्रकार है—

निम्नलिखित पन्द्रह प्रकार के कृष्ण पुद्गल होते है—

सिंघाणक, जटिलक, खर, क्षत्रक, अंजन, खंजन, शीतल, हिमशीतल, कैलाश,अरुणप्रभ, परिज्जय, नभसूरक, कपिलिक, पिंगलक और राहु । जब यह पन्द्रह प्रकार के कृष्ण पुद्गल चन्द्र अथवा सूर्य की लेश्या (प्रकाश) को आवृत कर लेते हैं तब मनुष्यलोक मे मनुष्य यों कहते हैं कि—राहु ने चन्द्र अथवा सूर्य को ग्रसित कर लिया है ।

जब ये पन्द्रह प्रकार के कृष्ण पुद्गल चन्द्र अथवा सूर्य की लेश्या को आच्छादित नहीं करते हैं तब मनुष्यलोक मे मनुष्य यों कहते है कि राहु ने चन्द्र अथवा सूर्य को ग्रसित नही किया है । वे ऐसा कहते हैं ।

हम इस प्रकार कहते है—

राहु महर्द्धिक—यावत्—महानुभाव, वरवस्त्रधारी—यावत्—वरभूषणधारी देव है ।

राहु के नौ नाम हैं—सिंघाडए, जडिलए, खरए, खेतए, दद्दुर, मगर, मच्छ, कच्छप, और कृष्णसर्प ।

राहु देव के विमान पाँच वर्ण वाले हैं—कृष्ण, नील, लोहित, पीत और शुक्ल । कृष्ण राहु-विमान खंजन-कज्जल के समान है । नील राहुविमान अलाबु (लौकी) के समान वर्ण वाला है । लोहित राहुविमान मजीठ के सदृश वर्ण वाला है । पीत राहुविमान हरिद्रा–हल्दी के समान रग वाला है । शुक्ल राहुविमान भस्मराशि के समान वर्ण वाला है ।

१–जब राहु देव आते हुए, जाते हुए, विकुर्वण करते हुए अथवा परिचारण करते हुए चन्द्र अथवा सूर्य की लेश्या को पूर्व से आवृत कर पश्चिम की ओर जाता है तब पूर्व मे चन्द्र अथवा सूर्य दिखाई देता है एव पश्चिम मे राहु (दृष्टिगोचर होता है) ।

२–जब राहु देव आते हुए, जाते हुए, विकुर्वण करते हुए अथवा परिचारण करते हुए चन्द्र या सूर्य की लेश्या-प्रकाश को दक्षिण से आवृत कर उत्तर की ओर जाता है तब दक्षिण मे चन्द्र अथवा सूर्य एवं उत्तर में राहु दिखाई देता है ।

३–इस प्रकार आते हुए, जाते हुए, विकुर्वण करते हुए अथवा परिचारण करते हुए चन्द्र अथवा सूर्य की लेश्या को दक्षिण-पूर्व से आवृत कर उत्तर-पश्चिम की ओर जाता है तब दक्षिण-पूर्व में चन्द्र अथवा सूर्य एवं उत्तर-पश्चिम मे राहु दिखाई देता है ।

४–जब राहु देव आते हुए, जाते हुए, विकुर्वण करते हुए अथवा परिचारण करते हुए चन्द्र अथवा सूर्य की लेश्या को दक्षिण-पश्चिम से आवृत कर उत्तर-पूर्व की ओर जाता है तब दक्षिण-पश्चिम मे चन्द्र अथवा सूर्य एवं उत्तर-पूर्व में राहु दिखाई देता है। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिम से आवृत कर दक्षिण-पश्चिम की ओर जाता है (इत्यादि कह लेना चाहिए)।

५–जब राहु देव आता हुआ (अथवा जाता हुआ अथवा विकुर्वण करता हुआ अथवा परिचारण करता हुआ) चन्द्र या सूर्य के प्रकाश को आवृत कर स्थित रहता है तब मनुष्यलोक में मनुष्य कहते है कि राहु ने चन्द्र अथवा सूर्य को ग्रसित किया है।

६–जब राहु देव आते-जाते हुए चन्द्र अथवा सूर्य के प्रकाश को आवृत कर पास से निकलता है तब मनुष्यलोक में कहते है कि चन्द्र अथवा सूर्य ने राहु की कुक्षि का भेदन किया।

७–जब राहु देव आते-जाते हुए चन्द्र अथवा सूर्य के प्रकाश को आवृत कर वापिस लौटता है तब मनुष्यलोक में मनुष्य कहते हैं कि राहु ने चन्द्र अथवा सूर्य का वमन किया है।

८–जब राहु देव आते-जाते चन्द्र अथवा सूर्य के प्रकाश को आवृत कर बीचों-बीच स्थित रहता है तब मनुष्यलोक मे मनुष्य कहते हैं कि राहु ने चन्द्र अथवा सूर्य को बीच से, भेद दिया है।

९–जब राहु देव आते, जाते चन्द्र अथवा सूर्य के प्रकाश को आवृत कर सभी ओर से ढंक देता है तब मनुष्यलोक मे मनुष्य कहते हैं कि राहु ने चन्द्र अथवा सूर्य को पूरी तरह ग्रसित कर लिया है।

नक्षत्रों की संख्या एवं नाम

[१] [१] प्र०—कइ णं भंते ! णक्खत्ता पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठावीसं णक्खत्ता पण्णत्ता, तंजहा—

अभिई १. सवणो २. धणिट्ठा ३. सयभिसया ४. पुव्वभद्दवया ५. उत्तरभद्दवया ६. रेवई ७. अस्सिणी ८. भरणी ९. कत्तिआ १०.रोहिणी ११. मिअसिर १२. अद्दा १३, पुणव्वसू १४. पूसो १५. अस्सेसा १६. मघा १७, पुव्वफग्गुणी १८. उत्तरफग्गुणी १९. हत्थो २०, चित्ता २१ साई २२. विसाहा २३. अणुराहा २४. जिट्ठा २५ मूलं २६. पुव्वासाढा २७. उत्तरासाढा २८. इति।

—जंबू० सूत्र १५५ पृ० ४९५
—सूर्य० सूत्र ४२ पृ० १३१

[१] [१] प्र०—भगवन् ! नक्षत्र कितने हैं ?

उ०—गौतम ! नक्षत्र २८ हैं, वे इस प्रकार—

१–अभिजित २–श्रवण ३–धनिष्ठा ४–शतभिषा ५–पूर्वभाद्रपदा ६–उत्तरभाद्रपदा ७–रेवती ८–अश्विनी ९–भरणी १०–कृत्तिका ११–रोहिणी १२–मृगशीर्ष १३–आर्द्रा १४–पुनर्वसु १५–पुष्य १६–अश्लेषा १७–मघा १८–पूर्वफाल्गुनी १९–उत्तरफाल्गुनी २०–हस्त २१–चित्रा २२–स्वाति २३–विशाखा २४–अनुराधा २५–ज्येष्ठा २६–मूल २७–पूर्वाषाढा २८–उत्तराषाढा।

१– देखिए- ठा० २ उ० ३ सूत्र ९० पृ० ७३।
यहाँ कृत्तिका से नक्षत्र प्रारंभ होकर भरणी पर समाप्त हुए हैं।

नक्षत्रनिरूपण के दस द्वार

गाहा—

[२] १ जोगा २ देवय ३ तारग्ग ४ गोत ५ संठाण ६ चंद-रविजोगा ।
७ कुल ८ पुण्णिम अवमंसा य, ९ सण्णिवाए अ १० णेता य ।।

—जंबू० सूत्र १५५ पृ० ४९५

[२] (नक्षत्रों का इन दस द्वारों से प्ररूपण किया जाता है—)
१–योग २–देवता ३–ताराग्र ४–गोत्र ५–सस्थान ६–चन्द्र-सूर्ययोग ७–कुल ८–पूर्णिमा-अमावस्या ९–सन्निपात और १०–नेता ।

नक्षत्रों का गणनाक्रम

[३] [१] प्र०—ता जोगेत्ति वत्थुस्स आवलियाणिवाते आहितेति वदेज्जा ?
ता कहं ते जोगेत्ति वत्थुस्स आवलियाणिवाते आहितेति वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पन्नत्ताओ—

१–तत्थेगे एवमाहंसु
ता सव्वेवि णं णक्खत्ता कत्तियादिया भरणिपज्जवसाणा, एगे एवमाहंसु ।

२–एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वेवि णं णक्खत्ता महादीया अस्सेसपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

३–एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वेवि णं णक्खत्ता धणिट्ठादीया सवणपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

४–एगे पुण एवमाहंसु—
ता सव्वेवि णं णक्खत्ता अस्सिणीआदीया रेवतिपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

५–एगे पुण एवमाहंसु—
सव्वेवि णं णक्खत्ता भरणीआदीया अस्सिणीपज्जवसाणा, एगे एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो—
सव्वेवि णं णक्खत्ता अभिईआदीया उत्तरासाढापज्जवसाणा पण्णत्ता, तंजहा—
अभिई सवणो—जाव—उत्तरासाढा ।[1]

—सूर्य. सू. ३२ पृ.९९
—चन्द्र. ,, ,,

[३] [१] प्र०—(चन्द्र-सूर्य के साथ) नक्षत्र अनुक्रम से योग करते है । यह योग किस क्रम से होता है ?

उ०—एतद्विषयक निम्नोक्त पांच मान्यताएँ हैं—

१–एक मान्यता यह है कि ये सब नक्षत्र कृत्तिका से प्रारम्भ होते हैं एवं भरणी तक समाप्त होते हैं ।

२–एक मान्यता यह है कि ये सब नक्षत्र मघा से प्रारम्भ होकर आश्लेषा पर समाप्त होते हैं ।

३–एक मान्यता यह है कि ये सब नक्षत्र धनिष्ठा से प्रारम्भ होकर श्रवण पर समाप्त होते हैं ।

---

१. जम्बू. सूत्र १५५ पृ. ४९५

४–एक मान्यता यह है कि ये सब नक्षत्र आश्विनी से प्रारम्भ होकर रेवती पर समाप्त होते हैं।
५–एक मान्यता यह है कि ये सब नक्षत्र भरणी से प्रारम्भ होकर अश्विनी पर समाप्त होते है।
हमारा कथन इस प्रकार है—
ये नक्षत्र अभिजित से प्रारम्भ होकर श्रवण आदि क्रम से उत्तराषाढा पर समाप्त होते है ।

नक्षत्रों के स्वामी देवता

[४] [१] प्र०—एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंदेवयाए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! बम्हदेवया पण्णत्ते, सवणे णक्खत्ते विण्हुदेवताए पण्णत्ते, धणिट्ठा वसुदेवया पण्णत्ता, एएणं कमेणं णेयव्वा अणुपरिवाडी,
इमाओ देवयाओ—
बम्हा १ विण्हू २ वसू ३ वरुणे ४ अय ५ अभिवद्धी ६ पूसे ७ आसे ८ जमे ९ अग्गी १० पयावई ११ सोमे १२ रुद्दे १३ अदिती १४ बहस्सई १५ सप्पे १६ पिउ १७ भगे १८ अज्जम १९ सविआ २० तट्ठा २१ वाउ २२ इंदग्गी २३ मित्तो २४ इंदे २५ निरई २६ आउ २७ विस्सा य २८ ।
एवं णक्खत्ताणं एआ परिवाडी णेयव्वा—जाव—उत्तरासाढा किंदेवया पण्णत्ता ?
गोयमा ! विस्सदेवया पण्णत्ता ।

—जम्बू. सू. १५७, १७१; पृ. ४९८
—सूर्य. सू. ४६ पृ. १४५–१४६
—चन्द्र. ,, ,,

[४] [१] प्र०—भगवन् ! इन २८ नक्षत्रों में से अभिजित नक्षत्र का देवता कौन है ?

उ०—गौतम ! ब्रह्म देवता है। श्रवण नक्षत्र का विष्णु देवता है। धनिष्ठा का वसु देवता है। इस प्रकार क्रमशः निम्नोक्त देवता समझना चाहिए—
१–ब्रह्मा, २–विष्णु, ३–वसु, ४–वरुण, ५–अज, ६–अभिवृद्धि, ७–पूषा, ८–अश्व, ९–यम, १०–अग्नि, ११–प्रजापति, १२–सोम, १३–रुद्र, १४–अदिति, १५–बृहस्पति, १६–सर्प, १७–पितृ, १६–भग, १९–अर्यमा, २०–सविता, २१–त्वष्टा, २२–वायु, २३–इन्द्राग्नि, २४–मित्र, २५–इन्द्र, २६–नैर्ऋत, २७–अप्, २८–विश्व ।
इस प्रकार नक्षत्रों की यह परिपाटी समझना चाहिए,
—यावत्—उत्तराषाढा का देवता कौन है ?
गौतम ! विश्व देवता है ।

नक्षत्रों का तारा-परिवार

[५] [१] प्र०—एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! तितारे

—सम. ३, ठा. सूत्र २२७

[२] प्र०—सवणे णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—तितारे पण्णत्ते ।

—सम. ३; ठा. सूत्र २२७

[३] प्र०—धनिट्ठाणक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—पणतारे पण्णत्ते ।

—सम. ५; ठा. सूत्र ४७३

[४] प्र०—सतभिया नक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—सततारे पण्णत्ते ।

—सम. १००

[५-६] प्र०—पुव्वापोट्ठवता कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—दुतारे पण्णत्ते, एवं उत्तरावि ।

—सम. २; ठा. सूत्र ११०

[७] प्र०—रेवती णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—बत्तीसइतारे पण्णत्ते

—सम. ३२

[८] प्र०—अस्सिणी णक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?

उ०—तितारे पण्णत्ते ।

—सम. ३; ठा. सूत्र २२७

एवं सव्वे पुच्छिज्जंति,
भरणी तितारे पण्णत्ते ।

—सम. ३; ठा. सूत्र २२७

कत्तिया छतारे पण्णत्ते ।

—सम. ६; ठा. सूत्र ५३९

रोहिणी पंचतारे पण्णत्ते ।

—सम. ५; ठा. सूत्र ४७३

मिगसरसंठाणा तितारे पण्णत्ते ।

—सम. ३; ठा. सूत्र २२७

अद्दा एगतारे पण्णत्ते ।

—सम. १; ठा. सूत्र ५५

पुणव्वसू पंचतारे पण्णत्ते ।

—सम. ५; ठा. सूत्र ४७३

पुस्से णक्खत्ते तितारे पण्णत्ते ।

—सम. ३; ठा. सूत्र २२७

अस्सेसा छतारे पण्णत्ते ।

—सम. ६; ठा. सूत्र ५३९

महा नक्खत्ते सततारे पण्णत्ते ।

—सम. ७; ठा. सूत्र ५८९

पुव्वाफग्गुणी दुतारे पण्णत्ते ।
एवं उत्तरावि ।

—सम. २; ठा. सूत्र ११०

हत्थे पंचतारे पण्णत्ते ।

—सम. ५; ठा. सूत्र ४७३

चित्ता एकतारे पण्णत्ते

—सम. १; ठा. सूत्र ५५

साती एकतारे पण्णत्ते ।

—सम. १; ठा. सूत्र ५५

विसाहा पंचतारे पण्णत्ते ।

—सम. ५; ठा. सूत्र ४७३

अणुराहा पंचतारे पण्णत्ते ।

—सम. ४; ठा. सूत्र ३८६

जेट्ठा तितारे पण्णत्ते ।[1]

—सम. ३; ठा. सूत्र २२७

(मूले एगतारे पण्णत्ते)

—सूर्य. सूत्र ४२

मूले नक्खत्ते एक्कारसतारे पण्णत्ते ।

—सम. ११

पुव्वासाढा चउतारे पण्णत्ते ।

[२८] **उत्तरासाढा णक्खत्ते चउतारे पण्णत्ते ।**[2]

—सम. ४; ठा. सूत्र ३८६

गाहाओ—

तिग-तिग-पंचग-सय-दुग-दुग-बत्तीसं तिगं तह तिगं च ।
छ-प्पंचग-तिग-इक्कग-पंचग-तिग-इक्कगं चेव ।।१।।
सत्तग-दुग-दुग-पंचग-इक्कि-क्कग-पंच-चउ-तिगं चेव ।
इक्कारसग-चउक्कं चउक्कगं चेव तारग्गं ।।२।।

—जंबू. सूत्र १५८ पृ. ४६८

[५] [१] प्र०— भगवन् ! इन २८ नक्षत्रों मे से अभिजित नक्षत्र के कितने तारे हैं ?

उ०—गौतम ! तीन तारे हैं ।

[२] प्र०—श्रवण नक्षत्र के कितने तारे हैं ?

उ०—तीन तारे हैं ।

[३] प्र०—धनिष्ठा नक्षत्र के कितने तारे हैं ?

उ०—पाँच तारे हैं ।

[४] प्र०—शतभिषा नक्षत्र के कितने तारे हैं ?

उ०—सौ तारे हैं ।

[५-६] प्र०—पूर्वाभाद्रपदा के कितने तारे हैं ?

उ०—दो (तारे) है । इसी प्रकार उत्तराभाद्रपदा के भी दो तारे है ।

[७] प्र०—रेवती नक्षत्र के कितने तारे हैं ?

उ०—बत्तीस तारे है ।

[८] प्र०—अश्विनी नक्षत्र के कितने तारे हैं ?

उ०—तीन तारे हैं ।

१—**रेवईपढम-जेट्ठापज्जवसाणाणं एगूणवीसाए नक्खत्ताणं अट्ठाणउइ ताराओ तारग्गेणं पन्नत्ताओ ।**

—सम. ६८

रेवती से प्रारंभ कर ज्येष्ठा पर्यन्त १६ नक्षत्रों के ६८ तारे होते हैं ।

२—**सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र ४२ पृ. १३१**

(सम. की गणना से ६८, जम्बू. की गणना से ६७ नक्षत्र होते हैं ।)

इसी प्रकार सब के विषय में प्रश्न समझ लेना चाहिए।
भरणी के तीन तारे हैं।
कृत्तिका के छह तारे हैं।
रोहिणी के पाँच तारे हैं।
मृगशीर्ष के तीन तारे हैं।
आर्द्रा का एक तारा है।
पुनर्वसु के पाँच तारे है।
पुष्य नक्षत्र के तीन तारे है।
आश्लेषा के छह तारे है।
मघा के सात तारे है।
पूर्वाफाल्गुनी के दो तारे है।
इसी प्रकार उत्तरा (फाल्गुनी) के (दो तारे) है।
हस्त के पाँच तारे हैं।
चित्रा का एक तारा है।
स्वाति का एक तारा है।
विशाखा के पाँच तारे है।
अनुराधा के पाँच तारे है।
ज्येष्ठा के तीन तारे है।
(मूल का एक तारा है।)
मूल नक्षत्र के ग्यारह तारे है।
पूर्वाषाढ़ा के चार तारे है।
उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चार तारे है।

[२८] गाथार्थ—ताराओं का परिमाण (अनुक्रम से) इस प्रकार है—
१–तीन, २–तीन, ३–पाँच, ४–सौ, ५–दो, ६–दो, ७–बत्तीस, ८–तीन, ९–तीन, १०–छह, ११–पाँच, १२–तीन, १३–एक, १४–पाँच, १५–तीन, १६–छह, १७–सात, १८–दो, १९–दो, २०–पाँच, २१–एक, २२–एक, २३–पाँच, २४–चार, २५–तीन, २६–ग्यारह, २७–चार और २८–चार।

नक्षत्रों के गोत्र

[६] [१] प्र०—एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंगोत्ते पण्णत्ते ?

उ०—मोग्गलायणसगोत्ते।

गाहाओ—

१ मोग्गल्लायण २ संखायणे ३ अ तह अग्गभाव ४ कण्णिल्ले।
५ तत्तो अ जाउकण्णे ६ धणंजए चेव बोद्धव्वे ॥१॥
७ पुस्सायणे अ ८ अस्सायणे अ ९ भग्गवेसे अ १० अग्गिवेसे अ।
११ गोअम १२ भारद्दाए १३ लोहिच्चे १४ चेव वासिट्ठे ॥२॥
१५ ओभज्जायण अ १६ मंडव्वायणे अ १७ पिंगायणे अ १८ गोवल्ले।
१९ कासव २० कोसिय २१ दब्भा य २२ चामरच्छाय २३ सुंगा य ॥३॥

२४ गोवल्लायण २५ तिगिच्छायणे अ २६ कच्चायणे हवइ मूले ।
२७ तत्तो अ वज्झिआयण २८ वग्घावच्चे अ गोत्ताइं ।।४।।

—जंबू. सूत्र १५९ पृ. ५००
—सूर्य सूत्र ५० पृ.१५०
—चन्द्र ,, ,,

[६] [१] प्र०—भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में से अभिजित नक्षत्र का क्या गोत्र है ?

उ०—गौतम ! मौद्गलायन गोत्र है ।

गाथार्थ—२८ नक्षत्रो के गोत्र क्रमशः इस प्रकार हैं—

१–मौद्गलायन, २–संख्यायन, ३–अग्रभाव, ४–कण्णिलायन, ५–जातुकर्ण, ६–धनंजय, ७–पुष्यायन, ८–आश्वायन, ९–मार्गवेश, १०–अग्निवेश्य, ११–गौतम, १२–भारद्वाज, १३–लौहित्यायन, १४–वासिष्ठ, १५–अवमज्जायन, १६–माण्डव्यायन, १७–पिंगायन, १८–गोवल्लायन, १९–काश्यप, २०–कौशिक, २१–दार्भायन, २२–चामरच्छायन, २३–शुंगायन, २४–गोलव्यायन, २५–चिकित्सायन, २६–कात्यायन, २७–बाभ्रव्यायन और व्याघ्रापत्य ।

नक्षत्रों के संस्थान

[७] [१] प्र०—एतेसि णं भंते! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! गोसीसावलिसंठिए पण्णत्ते ।

गाहाओ—

१ गोसीसावलि २ कासार ३ सउणि ४ पुप्फोवयार ५-६ वावी य ।
७ णावा ८ आसक्खंधग ९ भग १० छुरधरए अ ११ सगडुद्धी ।।१।।
१२ मिगसीसावलि १३ रुहिरबिंदु १४ तुल्ल १५ वद्धमाणग १६ पडागा ।
१७ पागारे १८-१९ पलिअंके २० हत्थे २१ मुहफुल्लए चेव ।।२।।
२२ खीलग २३ दामणि २४ एगावली अ २५ गयदंत २६ विच्छुअलेय ।
२७ गयविक्कमे अ ततो २८ सीहनिसीही अ संठाणा ।।३।।

—जम्बू, सूत्र १५९ पृ. ५००
—सूर्य. सूत्र ४१ पृ. १३०
—चन्द्र. ,, ,,

[७] [१] प्र०—भगवन् ! इन अट्ठाईस नक्षत्रों में से अभिजित नक्षत्र का कौन-सा संस्थान (आकार) है ?

उ०—गौतम ! गोशीर्षावलि जैसा संस्थान है ।

गाथार्थ—इन २८ नक्षत्रों के संस्थान क्रमशः इस प्रकार हैं—

१–गोशीर्षावलि, २–कासार, ३–शकुनिपंजर, ४–पुष्पोपचार, ५–६–वापी (दोनों भाद्रपदाओं का आकार अर्धवापी-अर्धवापी मिलकर पूर्ण वापी के समान है), ७–नौका, ८–अश्वस्कन्ध, ९–भग, १०–क्षुराधारा, ११–शकटोद्धि, १२–मृगशीर्षावली, १३–रुधिरबिन्दु, १४–तुला, १५–वर्धमानक, १६–पताका, १७–प्राकार, १८–१९–पर्यंक (आधा-आधा पर्यंक मिल कर दोनों फाल्गुनीनक्षत्रों का आकार पूर्ण पर्यंक के सदृश है), २०–हस्त २१–मुखपुष्प (मुखमंडन-स्वर्णपुष्प) २२–कीलक, २३–दामनि (पशु-रज्जु), २४–एकावली, २५–गजदन्त, २६–वृश्चिक लांगूल, २७–गजविक्रम, और २८–सिंहनिषीदन ।

नक्षत्रों के चन्द्र-योग की आदि

[८] [१] प्र०—ता कहं ते जोगस्स आदी आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अभीयी सवणा खलु दुवे णक्खत्ता पच्छाभागा समखित्ता सातिरेगऊतालीसतिमुहुत्ता तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ।
ततो पच्छा अवरं सातिरेगं दिवसं ।
एवं खलु अभिई सवणा दुवे णक्खत्ता एगराइं एगं च सातिरेगं दिवसं चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति, जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टंति, जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं धणिट्ठाणं समप्पंति ।
ता धणिट्ठा खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसतिमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोगं जोएति, २ त्ता (चंदेण सद्धिं जोयं जोएत्ता) ततो पच्छा राइं अवरं च दिवसं ।
एवं खलु धणिट्ठाणक्खत्ते एगं च राइं, एग च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति,
जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं सतभिसयाणं समप्पेति ।
ता सतभिसया खलु णक्खत्ते णत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पण्णरसमुहुत्ते पढमताए सागं चंदेण सद्धिं जोएति,
णो लभति अवरं दिवसं ।
एवं खलु सयभिसया णक्खत्ते एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति,
जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टति, जोयं अणुपरियट्टित्ता तो चंदं पुव्वाणं पोट्ठवताणं समप्पेति ।
ता पुव्वापोट्ठवता खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समखेत्ते तिसतिमुहुत्ते
तप्पढमताए पातो चदेण सद्धिं जोयं जोएति,
तओ पच्छा अवरराइं,
एवं खलु पुव्वापोट्ठवता णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति २ पातो चंदं उत्तरापोट्ठवताणं समप्पेति ।
ता उत्तरपोट्ठवता खलु णक्खत्ते उभयंभागे दिवड्ढखेत्ते पणतालीसमुहुत्ते
तप्पढमयाए पातो चंदेण सद्धिं जोयं जोएति,
अवरं च रातिं, तओ पच्छा अवरं दिवसं ।
एवं खलु उत्तरापोट्ठवता णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, अवरं च रातिं,
ततो पच्छा अवरं दिवसं ।
एवं खलु उत्तरापोट्ठवता णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति,
जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टति,
ता सायं चंदं रेवतीणं समप्पेति ।
ता रेवती खलु णक्खत्ते पच्छंभागे समक्खेत्ते तीसतिमुहुत्ते
तप्पढमयाए सागं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति,
ततो पच्छा अवरं दिवसं,
एवं खलु रेवतीणक्खत्ते एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति २ त्ता जोय अणुपरियट्टति २ त्ता साग चंदं अस्सिणीणं समप्पेति,
ता अस्सिणी खलु णक्खत्ते पच्छिमभागे समक्खेत्ते तीसतिमुहुत्ते
तप्पढमयाए सागं चंदेणं सद्धिं जोयं जोएति,
तओ पच्छा अवरं दिवसं,
एवं खलु अस्सिणीणक्खत्ते एगं च राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति २ त्ता जोगं अणुपरियट्टइ २ त्ता सागं चंदं भरणीणं समप्पेति ।
ता भरणी खलु णक्खत्ते णत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पण्णरसमुहुत्ते
तप्पढमयाए सागं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति, णो लभति अवरं दिवसं ।
एवं खलु भरणी णक्खत्ते एगं राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टति २ त्ता पावो चंदं कत्तियाणं समप्पेति ।

ता कसिया खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समक्खित्ते तीसइमुहुत्ते
तप्पढमयाए सागं चंदेण सद्धिं जोगं जोएति २ त्ता जोयं अणुपरियट्टइ २ त्ता पादो चंदं रोहिणीणं समप्पेति ।

रोहिणी जहा उत्तरभद्दवता, मगसिरं जहा धणिट्ठा, अद्दा जहा सतभिसया, पुणव्वसू जहा उत्तराभद्दवता, पुस्सो जहा धणिट्ठा, अस्सेसा जहा सतभिसया, मघा जहा पुव्वाफग्गुणी, पुव्वाफग्गुणी जहा पुव्वाभद्दवया, उत्तरफग्गुणी जहा उत्तरभद्दवता, हत्थो चित्ता य जहा धणिट्ठा, साती जहा सतभिसया, विसाहा जहा उत्तरभद्दवया, अणुराहा जहा धणिट्ठा, सतभिसया मूला पुव्वासाढा य जहा पुव्वभद्दवया, उत्तरासाढा जहा उत्तराभद्दवता ।

—सूर्य० सू० ३६ पृ० १०५-१०६
—चन्द्र० ,, ,,

[८] [१] प्र०—(चन्द्र के साथ नक्षत्रों के) योग की आदि किस प्रकार होती है ?

उ०—अभिजित और श्रवण-ये दोनों नक्षत्र पश्चाद्भाग समक्षेत्र मे साधिक ३९ मुहूर्त में प्रथम दिन सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होते हैं। बाद मे दूसरे दिन अभिजित और श्रवण-दोनों नक्षत्र एक रात्रि एवं साधिक एक दिवस पर्यन्त चन्द्र के साथ योगयुक्त अवस्था में रहते है। योगयुक्त अवस्था में रहकर योग का अनुपरिवर्त्तन करते हैं। योग का अनुपरिवर्तन करके सायंकाल चन्द्र को धनिष्ठा को समर्पित कर देते हैं ।

धनिष्ठा नक्षत्र पश्चाद्भाग समक्षेत्र ३० मुहूर्त में प्रथम दिन सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। इसके बाद धनिष्ठा नक्षत्र एक रात व एक दिन चन्द्र के साथ योगयुक्त अवस्था मे रहता है। योगयुक्त अवस्था मे रह कर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है। योग का अनुपरिवर्त्तन करके सायंकाल चन्द्र को शतभिषा को समर्पित कर देता है।

शतभिषानक्षत्र नक्तभाग अपार्ध क्षेत्र में १५ मुहूर्त्त में प्रथम दिन सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है, यह द्वितीय दिवस प्राप्त नहीं करता, अर्थात् शतभिषा नक्षत्र एक रात ही चन्द्र के साथ योगयुक्त अवस्था में रहता है। योगयुक्त अवस्था में रह कर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है। योग का अनुपरिवर्त्तन करके चन्द्र को पूर्वभाद्रपदा को समर्पित कर देता है।

पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र पूर्वभाग समक्षेत्र में ३० मुहूर्त्त में प्रथम दिन प्रातः चन्द्र के साथ योगयुक्त रहता है। योगयुक्त रह कर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है। योग का अनुपरिवर्त्तन कर के प्रातः चन्द्र को उत्तराभाद्रपदा को समर्पित कर देता है।

उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र उभयभाग दिवार्ध क्षेत्र में ४५ मुहूर्त्त में प्रथम दिन प्रातः चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। इसके बाद उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र दो दिन व एक रात चन्द्र के साथ योगयुक्त अवस्था में रहता है। योगयुक्त अवस्था में रहकर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है। योग का अनुपरिवर्त्तन करके सायंकाल चन्द्र को रेवती को समर्पित कर देता है।

रेवती नक्षत्र पश्चाद्भाग समक्षेत्र में ३० मुहूर्त्त में प्रथम दिन सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। इसके बाद रेवती नक्षत्र एक रात व एक दिन चन्द्र के साथ योगयुक्त अवस्था में रहता है। योगयुक्त अवस्था में रह कर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है। योग का अनुपरिवर्त्तन करके सायंकाल चन्द्र को अश्विनी को समर्पित कर देता है।

अश्विनी नक्षत्र पश्चिम भाग समक्षेत्र में ३० मुहूर्त्त में प्रथम दिन सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। इसके बाद अश्विनी नक्षत्र एक रात और एक दिन चन्द्र के साथ योगयुक्त अवस्था मे रहता है। योगयुक्त अवस्था में रहकर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है।

योग का अनुपरिवर्त्तन करके सायंकाल चन्द्र को भरणी को समर्पित कर देता है।

भरणी नक्षत्र नक्तभाग अपार्ध क्षेत्र में १५ मुहूर्त्त में प्रथम दिन सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। यह दूसरा दिवस प्राप्त नही करता, अर्थात् भरणी नक्षत्र एक रात ही चन्द्र के साथ योगयुक्त अवस्था मे रहता है। योगयुक्त अवस्था मे रहकर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है। योग का अनुपरिवर्त्तन करके प्रातःकाल चन्द्र को कृत्तिका के सिपुर्द कर देता है।

कृत्तिका नक्षत्र पूर्वभाग समक्षेत्र मे ३० मुहूर्त्त मे प्रथम दिन सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता है। योगयुक्त होकर योग का अनुपरिवर्त्तन करता है। योग का अनुपरिवर्त्तन करके प्रातःकाल चन्द्र को रोहिणी को समर्पित कर देता है।

रोहिणी का (प्रस्तुत) वर्णन उत्तरभाद्रपदा के समान, मृगशीर्ष का वर्णन धनिष्ठा के समान, आर्द्रा का वर्णन शतभिषा के समान, पुनर्वसु का वर्णन उत्तरभाद्रपदा के समान, पुष्य का वर्णन धनिष्ठा के समान, आश्लेषा का वर्णन शतभिषा के समान, मघा का वर्णन पूर्वफाल्गुनी के समान, पूर्वफाल्गुनी का वर्णन पूर्वभाद्रपदा के समान, उत्तरफाल्गुनी का वर्णन उत्तरभाद्रपदा के समान, हस्त एव चित्रा का वर्णन धनिष्ठा के समान, स्वाति का वर्णन शतभिषा के समान, विशाखा का वर्णन उत्तरभाद्रपदा के समान, अनुराधा का वर्णन धनिष्ठा के समान, शतभिषा, मूल एवं पूर्वाषाढ़ा का वर्णन उत्तरभाद्रपदा के समान है।

नक्षत्रों का चन्द्र के साथ दिशा-योग

[९] [१] प्र०—एतेसि ण भंते ! अट्ठावीसाए :णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेणं जोअं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणवि उत्तरेणवि पमद्दंपि जोगं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेणंपि पमद्दंपि जोयं जोएंति ?

कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोअं जोएंति ?

उ०—गोयमा ! एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति, ते णं छ, तंजहा—

गाहा—१ संठाण २ अद्द ३ पुस्सो ४ सिलेस ५ हत्थो तहेव ६ मूलो अ।
बाहिरओ बाहिरमंडलस्स छप्पेत णक्खत्ता ॥१॥

तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेणं जोयं जोएंति, ते णं बारस, तंजहा—अभिई, सवणा, धणिट्ठा, सयभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरापोट्ठवता, रेवई, अस्सिणी, भरणी, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, साई[1]।

तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणओवि उत्तरओ वि पमद्दंपि जोगं जोएंति ते णं सत्त, तंजहा—

कत्तिआ, रोहिणी, पुणव्वसू, मघा, चित्ता, विसाहा, अणुराहा।[2]

---

१. सम० ९ सूत्र ६.

२. सम० ८ सूत्र ९.

तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणओवि पमद्दंपि जोगं जोएंति, ताओ णं दुवे आसाढाओ सव्वबाहिरए मंडले जोगं जोअंसु वा ३ ।

तत्थ णं जे ते से णक्खत्ते जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोयं जोएइ, सा णं एगा जेट्ठा इति ।

—जम्बू. सू. १५६ पृ. ४९६-९७

—सूर्य. सू. ४४ पृ. १३७

—चन्द्र. ,, ,,

[९] [१] प्र०—भगवन् ! इन २८ नक्षत्रों मे से कौन-से नक्षत्र सदा दक्षिण की ओर से चन्द्रमा के साथ योगयुक्त होते है ?

कौन-से नक्षत्र सदा उत्तर की ओर से चन्द्रमा के साथ योगयुक्त होते है ?

कौन-से नक्षत्र दक्षिण एवं उत्तर (दोनों दिशाओं) से प्रमर्दयोग करते है ?

कौन-से नक्षत्र चन्द्र के दक्षिण से प्रमर्द योग करते हैं ?

कौन-से नक्षत्र सदैव चन्द्र के साथ प्रमर्द योग करते है ?

उ०—गौतम ! इन २८ नक्षत्रों में से सदैव चन्द्र के दक्षिण से योगयुक्त होने वाले नक्षत्र छह है, यथा—१-मृगशीर्ष, २-आर्द्रा, ३-पुष्य, ४-आश्लेषा, ५-हस्त और ६-मूल। ये छहों नक्षत्र (चन्द्र के) बाह्य मडल से बाहर हैं।

इनमे सदैव चन्द्र के उत्तर से योगयुक्त होने वाले नक्षत्र बारह है, यथा-१-अभिजित, २-श्रवण, ३-घनिष्ठा, ४-शतभिषा, ५-पूर्वभाद्रपदा, ६-उत्तरभाद्रपदा, ७-रेवती, ८-अश्विनी, ९-भरणी, १०-पूर्वफाल्गुनी, ११-उत्तरफाल्गुनी और १२-स्वाति।

इनमे से सदैव चन्द्र के दक्षिण और उत्तर से प्रमर्द योग करने वाले नक्षत्र सात है, यथा-१-कृत्तिका, २-रोहिणी, ३-पुनर्वसु, ४ मघा, ५-चित्रा, ६-विशाखा और ७-अनुराधा।

इनमे से सदैव चन्द्र के दक्षिण से प्रमर्दयोग करने वाले दो आषाढ़ा (पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा) नक्षत्र हैं। ये सर्वबाह्य मडल मे योगयुक्त होते है।

इनमें सदैव चन्द्र के साथ प्रमर्दयोग करने वाला एक ज्येष्ठा नक्षत्र है।

नक्षत्रों का योग, भोग और परिमाण

[१०][१] प्र०—ता कहं ते णक्खत्तविजये आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अयण्णं जंबुद्दीवे २ -जाव-परिक्खेवेणं,

ता जंबुद्दीवे णं दीवे दो चंदा पभासेंसु वा, पभासंति वा, पभासिस्संति वा,

दो सूरिया तविंसु वा, तवेंति वा, तविस्संति वा,

छप्पण्णं णक्खत्ता जोयं जोएंसु वा[1] ३, तंजहा—

दो अभीई, दो सवणा, दो धणिट्ठा, दो सतभिसया,

दो पुव्वापोट्ठवता, दो उत्तरापोट्ठवता, दो रेवती,

दो अस्सिणी, दो भरणी, दो कत्तिया दो रोहिणी,

दो संठाणा (मियसिरा), दो अद्दा, दो पुणव्वसू,

दो पुस्सा, दो अस्सेसाओ, दो महा, दो पुव्वाफग्गुणी,

दो उत्तराफग्गुणी, दो हत्था, दो चित्ता, दो साई,

दो विसाहा, दो अणुराधा, दो जेट्ठा, दो मूला,

दो पुव्वासाढा, दो उत्तरासाढा,

ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

---

१ सम. ५६ सूत्र १

१–अत्थि णक्खत्ता जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ।
२–अत्थि णक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति,
३–अत्थि णक्खत्ता जे णं तीसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति,
४–अत्थि णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति,
ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—
१–कतरे णक्खत्ते जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसंच सतसट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जायं जोएंति ?
२–कतरे णक्खत्ता जे ण पन्नरसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ?
३–कतरे णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ?
४–कतरे णक्खत्ता जे णं पणतालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ?
ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—
१–तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं दो अभीयी[1],
२–तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पण्णरस मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएति ते णं बारस, तंजहा–दो सतभिसया, दो भरणी, दो अद्दा, दो अस्सेसा, दो साती, दो जेट्ठा[2] ।
३–तत्थ जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं तीसं, तंजहा—
दो सवणा, दो धणिट्ठा, दो पुव्वभद्दवता, दो रेवती, दो अस्सिणी, दो कत्तिया, दो संठाणा दो पुस्सा, दो महा, दो पुव्वाफग्गुणी, दो हत्था, दो चित्ता, दो अणुराधा, दो मूला, दो पुव्वासाढा ।
४–तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पणतालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोएंति ते णं बारस, तंजहा—
दो उत्तरापोट्ठवता, दो रोहिणी, दो पुणव्वसू, दो उत्तराफग्गुणी, दो विसाहा दो, उत्तरासाढा ।[3]

—सूर्य. सूत्र ६०, पृ. १७५
—चन्द्र. ,, ,,

[१०][१] प्र०—नक्षत्रविचय का स्वरूप क्या है ?

उ०—यह जम्बूद्वीप यावत्–परिधि वाला है । इस जम्बूद्वीप मे दो चन्द्र प्रकाशित हुए है, प्रकाशित होते है और प्रकाशित होंगे । दो सूर्य तपे है तपते है और तपेंगे ।

छप्पन नक्षत्र योगयुक्त हुए है, होते है और होंगे । यथा—

दो अभिजित, दो श्रवण, दो धनिष्ठा, दो शतभिषा, दो पूर्वभाद्रपदा, दो उत्तरभाद्रपदा, दो रेवती, दो अश्विनी, दो भरणी, दो कृत्तिका, दो रोहिणी, दो मृगशीर्ष, दो आर्द्रा, दो पुनर्वसु, दो पुष्य, दो आश्लेषा, दो मघा, दो पूर्वफाल्गुनी, दो उत्तरफाल्गुनी, दो हस्त, दो चित्रा, दो स्वाति, दो विशाखा, दो अनुराधा, दो ज्येष्ठा, दो मूल, दो पूर्वाषाढा और दो उत्तराषाढा ।

इन ५६ नक्षत्रों में ऐसे भी नक्षत्र हैं जो ९$\frac{2}{67}$ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त होते हैं । ऐसे भी नक्षत्र है जो १५ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते हैं । ऐसे भी नक्षत्र हैं जो ३० मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते है । ऐसे भी नक्षत्र हैं जो ४५ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते हैं ।

इन छप्पन नक्षत्रों मे कौन–से नक्षत्र ९$\frac{2}{67}$ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते है ? कौन–से नक्षत्र १५ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते हैं ? कौन–से नक्षत्र ३० मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते है ? कौन–से नक्षत्र ४५ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते हैं ?

१—सम. ९ सूत्र ५
२—सम. १५ सूत्र ४
३—सम. ४५ सूत्र ७

इन छप्पन नक्षत्रों में से ६$\frac{३७}{६७}$ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहने वाले दो अभिजित नक्षत्र हैं।
पन्द्रह मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहने वाले नक्षत्र बारह हैं, यथा–दो शतभिषा, दो भरणी, दो आर्द्रा, दो आश्लेषा, दो स्वाति और दो ज्येष्ठा।
तीस मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहने वाले नक्षत्र तीस हैं, यथा–दो श्रवण, दो धनिष्ठा, दो पूर्वभाद्रपदा, दो रेवती, दो अश्विनी, दो कृत्तिका, दो मृगशीर्ष, दो पुष्य, दो मघा, दो पूर्वफाल्गुनी, दो हस्त, दो चित्रा, दो अनुराधा, दो मूल एवं दो पूर्वाषाढा।
पैंतालीस मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहने वाले नक्षत्र बारह हैं, यथा—दो उत्तर भाद्रपदा, दो रोहिणी, दो पुनर्वसु, दो उत्तर फाल्गुनी, दो विशाखा और दो उत्तराषाढा।

[११] **ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताण—**

१–अत्थि णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति,
२–अत्थि णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एकवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति,
३–अत्थि णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते बारस मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति,
४–अत्थि णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिन्नि य मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति।

[१] प्र०—एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताण कयरे णक्खत्ता जे णं तं चेव उच्चारेयव्वं ?

उ०—ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

१ तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं दो अभीयी।

२–तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एकवीसं च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं बारस, तंजहा—
दो सतभिसया, दो अद्दा, दो अस्सेसा, दो साती, दो विसाहा, दो जेट्ठा।

३–तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते बारस मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोयं जोएंति, ते णं तीसं, तंजहा—
दो सवणा—जाव—दो पुव्वासाढा।

४–तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरेण जोयं जोएंति, ते णं बारस, तंजहा—
दो उत्तरापोट्ठवता—जाव—उत्तरासाढा।

—सूर्य. सूत्र ६० पृ. १७५-१७६
—चन्द्र. ,, ,,

[११] इन छप्पन नक्षत्रों में ऐसे भी नक्षत्र हैं जो चार अहोरात्र तथा छह मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहते है। ऐसे भी नक्षत्र है जो छह अहोरात्र एवं २१ मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहते है। ऐसे भी नक्षत्र है जो तेरह अहोरात्र व १२ मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहते हैं। ऐसे भी नक्षत्र है जो वीस अहोरात्र व तीन मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहते हैं।

[१] प्र०—इन ५६ नक्षत्रों में कौन-से नक्षत्र—यावत्—(२० अहोरात्र व तीन मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ) योगयुक्त रहते हैं ?

उ०—इन ५६ नक्षत्रों में से दो अभिजित नक्षत्र चार अहोरात्र तथा छह मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहते हैं। छह अहोरात्र व इक्कीस मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहने वाले नक्षत्र बारह है, यथा—दो शतभिषा, दो आर्द्रा, दो आश्लेषा, दो स्वाति, दो विशाखा और दो ज्येष्ठा।

तेरह अहोरात्र तथा बारह मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहने वाले नक्षत्र तीस है, यथा–दो श्रवण—यावत्—दो पूर्वाषाढ़ा। बीस अहोरात्र एवं तीन मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहने वाले नक्षत्र बारह है, यथा—दो उत्तरभाद्रपदा—यावत्—(दो) उत्तराषाढ़ा।

[१२][१] प्र०—ता कहं ते सीमाविक्खंभे आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

१–अत्थि णक्खत्ता जेसि णं छ सया तीसा सत्तट्ठिभागतीसतिभागाण सीमाविक्खंभो,

२–अत्थि णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचोत्तरं सतसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो,

३–अत्थि णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा बसुत्तरा सतसट्ठिभागतीसतितिभागाणं सीमाविक्खंभो,

४–अत्थि णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सतसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो[1]।

[२] प्र०—ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं कतरे णक्खत्ता जेसि णं छ सया तीसा तं चेव उच्चारेतव्वं —जाव—ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताण कयरे णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सतसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो ?

उ०—ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं—

१–तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं छसता तीसा सत्तट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, ते णं दो अभीयी।

२–तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचुत्तरं सतसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, ते णं बारस, तंजहा—
दो सतभिसया—जाव—दो जेट्ठा।

३–तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा बसुत्तरा सतसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, ते णं तीस, तंजहा—
दो सवणा—जाव—दो पुव्वासाढा।

४–तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं तिण्णि सहस्सा पण्णरसुत्तरा सतसट्ठिभागतीसतिभागाणं सीमाविक्खंभो, ते णं बारस, तंजहा—
दो उत्तारा पोट्ठवता—जाव—उत्तरासाढा वा[1]।

—सूर्य. सूत्र ६१ पृ. १७६
—चन्द्र. ,, ,,

[१२][१] प्र०—सीमाविष्कंभ का स्वरूप क्या है ?

उ०—इन ५६ नक्षत्रों मे ऐसे भी नक्षत्र है जिनका सीमाविष्कंभ (सीमा की चौड़ाई) $\frac{६३०}{३० \times ६७}$ (मंडल) है। ऐसे भी नक्षत्र है जिनका सीमा विष्कंभ $\frac{१००५}{३० \times ६७}$ (मंडल) है। ऐसे भी नक्षत्र है जिनका सीमा विष्कंभ $\frac{२०१०}{३० \times ६७}$ (मडल) है। ऐसे भी नक्षत्र हैं जिनका सीमाविष्कम्भ $\frac{३०१५}{३० \times ६७}$ (मंडल) है।

[२] प्र०—इन छप्पन नक्षत्रो मे कौन-से नक्षत्र ऐसे है जिनका सीमाविष्कंभ $\frac{६३०}{३० \times ६७}$ (मंडल) है ? –यावत्– इन छप्पन नक्षत्रों में कौन-से नक्षत्र ऐसे है जिनका सीमाविष्कंभ $\frac{३०१५}{३० \times ६७}$ (मंडल) है ?

---

१. सम. ६७ सूत्र ४.

उ०—इन छप्पन नक्षत्रों में से $\frac{६३०}{३०\times६७}$ (मंडल) के सीमाविष्कंभ वाले दो अभिजित नक्षत्र हैं ।

$\frac{१००५}{३०\times६७}$ (मंडल) सीमाविष्कंभ वाले बारह नक्षत्र हैं, यथा -दो शतभिषा-यावत्-दो ज्येष्ठा ।

$\frac{२०१०}{३०\times६७}$ (मंडल) के सीमाविष्कंभ वाले तीन नक्षत्र है, यथा–दो श्रवण–यावत्–दो पूर्वाषाढा ।

$\frac{३०१५}{३०\times६७}$ (मंडल) के सीमाविष्कंभ वाले बारह नक्षत्र हैं, यथा-दो उत्तरभाद्रपदा-यावत् (दो) उत्तराषाढा ।

[१३][१] प्र०—एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं किं सता पादो चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ?
ता एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं किं सया सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ?
एतेसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं किं सया दुहा पविसिय २ चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ?

उ०—ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं न किंपि
तं जं सया पादो चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ।
नो सया सागं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ।
नो सया दुहओ पविसित्ता २ चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, णण्णत्थ दोहिं अभीयीहिं ।
ता एते णं दो अभीयी पायंचिय २ चोत्तालीसं-चोत्तालीसं अमावासं जोएंति,
णो चेव णं पुण्णिमासिणिं ।

—सूर्य० सूत्र ६२ पृ० १७७
—चन्द्र० ,, ,,

[१३][१] प्र०—इन ५६ नक्षत्रों मे से कौन सदैव प्रातःकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होते है ?
इन ५६ नक्षत्रों मे से कौन सदैव सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त रहते हैं ?
इन ५६ नक्षत्रों में से कौन सदैव दोनों समय प्रविष्ट होकर चन्द्र के साथ योगयुक्त होते है ?

उ०—इन ५६ नक्षत्रों मे कोई भी ऐसा नहीं है जो सदैव प्रातःकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता हो, सदैव सायंकाल चन्द्र के साथ योगयुक्त होता हो अथवा दोनों समय प्रविष्ट हो चन्द्र के साथ योग-युक्त होता हो ।

यहां दो अभिजितों का अपवाद है । ये दो अभिजित (युग में) ४४ वीं अमावस्या को योग करते हैं, पूर्णिमा को नही ।

चन्द्र के साथ नक्षत्रों का योगकाल

[१४][१] प्र०—एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं [1] अभिई णक्खत्ते कतिमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ ?

उ०—गोयमा ! णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ,
एवं इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्वं—
अभिइस्स चंदजोगो, सत्तट्ठिखंडिओ अहोरत्तो ।
ते हुंति णव मुहुत्ता, सत्तावीसं कलाओ अ ।।१।।
सयभिसया भरणीओ, अद्दा अस्सेव साइ जेट्ठा य ।
एते छण्णक्खत्ता, पण्णरसमुहुत्तसंजोगा ।।२।।

१–सम० ६; ठा० सूत्र ६६६

तिण्णेव उत्तराइं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
एए छण्णक्खत्ता, पणयालमुहुत्तसंजोगा ।।३।।
अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरसवि हुंति तीसइमुहुत्ता ।
चंदंमि एस जोगो, णक्खत्ताणं मुणेअव्वो ।।४।।

[१४][१] प्र०—भगवन् ! इन २८ नक्षत्रों मे से अभिजित नक्षत्र कितने मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहता है ?

उ०—गौतम ! ९$\frac{3}{67}$ मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ योगयुक्त रहता है । इस विषय मे ये गाथाएँ समझनी चाहिए—

अभिजित का चन्द्र के साथ योग ९$\frac{3}{67}$ मुहूर्त्त तक होता है । शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति, और ज्येष्ठा, ये छह नक्षत्र १५ मुहूर्त्त तक (चन्द्र के साथ) योगयुक्त रहत है । तीन उत्तरा अर्थात् उत्तरभाद्रपदा, उत्तरफाल्गुनी ओर उत्तरापाढा तथा पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा—ये छह नक्षत्र ४५ मुहूर्त्त तक (चन्द्र के साथ) योग करते है । शेष १५ नक्षत्र ३० मुहूर्त्त तक (चन्द्र के साथ योगयुक्त) रहते है ।

चन्द्र के साथ नक्षत्रों का इस प्रकार योग समझना चाहिए ।

नक्षत्रों के साथ सूर्य का योगकाल

[१५][१] **प्र०—एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते कति अहोरत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ ?**

उ०—गोयमा ! चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ ।

एवं इमाहिं गाहाहिं णेअव्वं—

अभिई छच्च मुहुत्ते, चत्तारि अ केवले अहोरत्ते ।
सूरेण समं गच्छइ, एत्तो सेसाण वोच्छामि ।।१।।
सयभिसया भरणीओ, अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य ।
वच्चंति मुहुत्ते इक्कवीस छच्चेवऽहोरत्ते ।।२।।
तिण्णेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
वच्चंति मुहुत्ते तिण्णि चेव वीसं अहोरत्ते ।।३।।
अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरसवि सूरसहगया जंति ।
बारस चेव मुहुत्ते, तेरस य समे अहोरत्ते ।।४।।

—जंबू. सूत्र १६० पृ. ५०१
—सूर्य. सूत्र ३३–३४ पृ. १००–१०३
—चन्द्र. ,, ,,

[१५][१] प्र०—भगवन् ! इन २८ नक्षत्रों मे से अभिजित नक्षत्र कितने अहोरात्र तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहता है ?

उ०—गौतम ! ४ अहोरात्र और ६ मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योगयुक्त रहता है । इस विषय मे ये गाथाएं समझनी चाहिए—

अभिजित केवल ४ अहोरात्र और छह मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योग करता है । शेष का (योग) इस प्रकार है—

शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा ६ अहोरात्र तथा २१ मुहूर्त्त तक (सूर्य के साथ) योग करते हैं । तीन उत्तरा अर्थात् उत्तरभाद्रपदा, उत्तरफाल्गुनी और उत्तराषाढा तथा पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा २० अहोरात्र एवं ३ मुहूर्त्त तक (सूर्य के साथ) योगयुक्त रहते हैं । शेष १५ नक्षत्र १३ अहोरात्र एवं १२ मुहूर्त्त तक सूर्य के साथ योग करते हैं ।

युग में अमावस्या एवं पूर्णिमा

[१६] तत्थ खलु इमाओ बावट्ठि पुण्णिमासिणीओ, बावट्ठि अमावासाओ पण्णत्ताओ ।
बावट्ठि एते कसिणा रागा, बावट्ठि एते कसिणा विरागा ।
एते चउव्वीसे पव्वसते, एते चउव्वीसे कसिणराग-विरागसते ।
जावतिया णं पंचण्हं संवच्छराणं समया एगेणं चउव्वीसेणं समयसतेणूणका एवतिया परित्ता असंखेज्जा देसराग-विरागसता भवंतीतिमक्खाया ।
अमावासातो णं पुण्णिमासिणी, चत्तारि बाताले मुहुत्तसते छत्तालीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा ।
ता पुण्णिमासिणीओ णं अमावासा,
चत्तारि बायाले मुहुत्तसते छत्तालीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा ।
ता अमावासातो णं अमावासा,
अट्ठपंचासीते मुहुत्तसते तीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा ।
ता पुण्णिमासिणीतो णं पुण्णिमासिणी
अट्ठपंचासीते मुहुत्तसते तीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा ।
एस णं एवतिए चंदे मासे,
एस णं एवतिए जुगे ।

—सूर्य. सूत्र ८० पृ. २३६
—चन्द्र. ,, ,,

[१६] (इस प्रकार एक युग मे) ये ६२ पूर्णिमाएं और ६२ अमावस्याएं होती हैं। इनमें ६२ कृत्स्न रक्त होती है व ६२ कृत्स्न विरक्त होती हैं। इस प्रकार ये १२४ पर्व होते हैं। ये १२४ पर्व कृत्स्न रक्त एवं विरक्त होते हैं। इन पांच संवत्सरों के जितने समय है (उन में एक पक्ष के एक समय के हिसाब से) उक्त १२४ समयों को छोड़कर शेष असंख्य समय देशरक्त एवं देश विरक्त होते है। अमावस्या से पूर्णिमा तक ४४२$\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त्त होते हैं। पूर्णिमा से अमावस्या तक ४४२$\frac{४६}{६२}$ मुहूर्त्त होते है। अमावस्या से अमावस्या तक ८८५$\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त्त होते है। पूर्णिमा से पूर्णिमा तक ८८५$\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त्त होते हैं।

यही (८८५$\frac{३०}{६२}$ मुहूर्त्त) चन्द्रमास है। यही खण्डरूप युग (चन्द्रमास प्रमित युगखण्ड) है।

पूर्णिमा-अमावस्या में नक्षत्रों का योग

[१७][१] प्र०—कति णं भंते ! पुण्णिमाओ, कति अमावासाओ पण्णत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! बारस पुण्णिमाओ, बारस अमावासाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

सावित्ठी, पोट्ठवई, आसोई, कत्तिगी, मग्गसिरी, पोसी, माही, फग्गुणी, चेती, वइसाही, जेट्ठामूली, आसाढी ।

[२] प्र०—सावित्ठिण्णं भंते ! पुण्णिमासिं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता जोगं जोएंति, तंजहा—अभिई, सवणो, धणिट्ठा ।

[३] प्र०—पोट्ठवइण्णं भंते ! पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोगं जोएंति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तंजहा—

सयभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया ।

[४] प्र०—अस्सोइण्णं भंते ! पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति ?

उ०—गोयमा ! दो जोएंति, तंजहा—रेवई, अस्सिणी य ।

कत्तिइण्णं दो—भरणी, कत्तिआ य,

मग्गसिरिण्ण दो—रोहिणी, मग्गसिरं च,

पोसिं तिण्णि—अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो,

माघिण्णं दो—अस्सेसा, मघा य,

फग्गुणि ण दो-पुव्वाफग्गुणी य, उत्तराफग्गुणी य,

चेतिण्णं दो—हत्थो, चित्ता य,

विसाहिण्णं दो—साई, विसाहा य,

जेट्ठामूलिण्णं तिण्णि—अणुराहा, जेट्ठा, मूलो,

आसाढिण्णं दो—पुव्वासाढा, उत्तरासाढा ।

—जम्बू. सू. १६१ पृ. ५०४
—सूर्य. सू. ३८ पृ. ११२
—चन्द्र. ,, ,,

[१७][१] प्र०—भगवन् ! कितनी पूर्णिमाएँ और कितनी अमावस्याएं होती है ?

उ०—गौतम ! बारह पूर्णिमाएं और बारह अमावस्याएं होती हैं, यथा—श्राविष्ठी, प्रौष्ठपदी, आश्विनी, कार्तिकी, मार्गशीर्षिकी, पौषी, माघी, फाल्गुनी, चैत्री, वैशाखी, ज्येष्ठामूली और आसाढी ।

[२[प्र०—भगवन् ! श्राविष्ठी (श्रावण मास सम्बन्धी) पूर्णिमा को कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

उ०—गौतम ! तीन नक्षत्रों का योग होता है, यथा—अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा ।

[३] प्र०—भगवन् ! प्रौष्ठपदी (भाद्रपद सम्बन्धी) पूर्णिमा को कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

उ०—गौतम ! तीन नक्षत्रों का योग होता है, यथा—शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा ।

[४] प्र०—भगवन् ! आश्विन मास की पूर्णिमा को कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

उ०—गौतम ! दो (नक्षत्रों) का योग होता है, यथा—रेवती और अश्विनी । कार्तिकी पूर्णिमा को भरणी और कृत्तिका, इन दो (नक्षत्रों) का, मार्गशीर्ष-पूर्णिमा को रोहिणी और मृगशीर्ष, इन दो (नक्षत्रों) का, पौषी (पूर्णिमा) को आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य, इन तीन नक्षत्रों का, माघी (पूर्णिमा) को आश्लेषा और मघा, इन दो (नक्षत्रो) का, फाल्गुनी (पूर्णिमा) को पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी, इन दो (नक्षत्रों) का, चैत्री (पूर्णिमा) को हस्त और चित्रा, इन दो (नक्षत्रो) का, वैशाखी (पूर्णिमा) को स्वाति और विशाखा, इन दो (नक्षत्रों) का, ज्येष्ठामूली (पूर्णिमा) को अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल, इन तीन (नक्षत्रों) का तथा आषाढी (पूर्णिमा) को पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा, इन दो (नक्षत्रों) का (योग होता है) ।

पूर्णिमा-अमावस्याओं का नक्षत्रसम्बन्ध

[१८][१] प्र०—जया णं भंते ! साविट्ठी पुण्णिमा भवइ तया णं माही अमावासा भवइ ?

जया णं भंते ! माही पुण्णिमा भवइ तयाणं साविट्ठी अमावासा भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! जया णं साविट्ठी तं चेव वत्तव्वं ।

[२] प्र०—जया णं भंते ! पोट्ठवई पुण्णिमा भवइ तया णं फग्गुणी अमावासा भवइ ?
जया णं फग्गुणी पुण्णिमा भवइ तया णं पोट्ठवई अमावासा भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! तं चेव ।
एवं एतेणं अभिलावेणं इमाओ पुण्णिमाओ अमावासाओ णेअव्वाओ—
अस्सिणी पुण्णिमा चेती अमावासा, कत्तिगी पुण्णिमा वइसाही अमावासा,
मग्गसिरी पुण्णिमा जेट्ठा-मूली अमावासा, पोसी पुण्णिमा आसाढी अमावासा ।

—जम्बू. सूत्र १६१ पृ. ५०५
—सूर्य. सूत्र ४० पृ. १२८
—चन्द्र. ,, ,,

[१८][१] प्र०—भगवन् ! जब श्राविष्ठी (श्रवण नक्षत्र से युक्त) पूर्णिमा होती है तब (उससे पन्द्रह दिन पूर्व की) क्या माधी अर्थात् मघा नक्षत्र से युक्त अमावस्या होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! जब श्राविष्ठी—यावत्—(अमावस्या) होती है ।

[२] प्र०—भगवन् ! जब प्रोष्ठपदी (उत्तर भाद्रपदा से युक्त) पूर्णिमा होती है तब क्या फाल्गुनी (उत्तर-फाल्गुन नक्षत्र से युक्त) अमावस्या होती है ? एवं जब फाल्गुनी पूर्णिमा होती है तब क्या प्रोष्ठ-पदी अमावस्या होती है ?

उ०—हाँ, गौतम ! होती है ।

इसी प्रकार निम्नलिखित पूर्णिमाएं एवं अमावस्याएं समझनी चाहिए—आश्विनी पूर्णिमा और चैत्री अमावस्या, कार्तिकी पूर्णिमा एवं वैशाखी अमावस्या, मृगशीर्ष-पूर्णिमा एव ज्येष्ठामूली अमावस्या, पौषी पूर्णिमा एवं आषाढी अमावस्या ।

अमावस्याओं में नक्षत्रयोग

[१९][१] प्र०—साविट्ठिण्णं अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—गोयमा ! दो णक्खत्ता जोएंति, तंजहा—अस्सेसा य महा य ।

[२] प्र०—पोट्ठवइण्णं भंते ! अमावासं कति णक्खत्ता जोएंति ?

उ०—गोअमा ! दो–पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी अ ।
अस्सोइण्णं भंते ! दो–हत्थे चित्ता य,
कत्तिइण्णं दो–साई विसाहा य,
मग्गसिरिण्णं तिण्णि–अणुराहा जेट्ठा मूलो अ,
पोसिण्णं दो–पुव्वासाढा उत्तरासाढा,
माहिण्णं तिण्णि–अभिई सवणे धणिट्ठा,
फग्गुणिं तिण्णि–सयभिया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया
चेतिण्णं दो–रेवई अस्सिणी य,
वइसाहिण्णं दो–भरणी कत्तिआ य,
जेट्ठामूलिण्णं दो–रोहिणी मग्गसिरं च,
आसाढिण्णं तिण्णि–अद्दा पुणव्वसू पुस्सो इति ।

[१९][१] प्र०—भगवन् ! श्राविष्ठी अमावस्या को कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

उ०—गौतम ! दो नक्षत्रों का योग होता है, यथा–आश्लेषा और मघा ।

[२] प्र०—भगवन् ! प्रोष्ठपदी अमावस्या को कितने नक्षत्रों का योग होता है ?

उ०—गौतम ! दो (नक्षत्रों का योग होता है)—पूर्वफाल्गुनी और उत्तरफाल्गुनी ।

आश्विनी (अमावस्या) को हस्त और चित्रा, कार्तिकी (अमावस्या) को स्वाति और विशाखा का, मृगशीर्षिकी (अमावस्या) को अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल इन तीन (नक्षत्रों) का, पौषी (अमावस्या) को पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा का, माघी (अमावस्या) को अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा का, फाल्गुनी (अमावस्या) को शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा–इन तीन का, चैत्री (अमावस्या) को रेवती और अश्विनी का, वैशाखी (अमावस्या) को भरणी और कृत्तिका का, ज्येष्ठामूली (अमावस्या) को रोहिणी और मृगशीर्ष–इन दो नक्षत्रों का तथा आषाढी (अमावस्या) को आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य–इन तीन नक्षत्रों का (योग होता है)।

नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुल

[२०][१] प्र०—कति णं भंते ! कुला, कति उवकुला, कति कुलोवकुला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! बारस कुला, बारस उवकुला, चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता।

बारस कुला, तंजहा—

धणिट्ठाकुलं १, उत्तरभद्दवयाकुलं २, अस्सिणीकुलं ३, कत्तियाकुलं ४, मिगसिरकुलं ५, पुस्सो कुलं ६. मघाकुलं ७, उत्तरफग्गुणीकुलं ८, चित्ताकुलं ९, विसाहाकुलं १०, मूलो कुलं ११, उत्तरासाढाकुलं।

गाहा—मासाणं परिणामा होंति कुला उवकुला उ हेट्ठिमगा।
होंति पुण कुलोवकुला अभीयि सय अद्द अणुराहा ॥१॥

बारस उवकुला, तंजहा—

सवणो उवकुलं, पुव्वभद्दवया उवकुलं, रेवई उवकुलं, भरणी उवकुलं, रोहिणी उवकुलं, पुणव्वसू उवकुलं, अस्सेसा उवकुलं, पुव्वफग्गुणी उवकुल, हत्थो उवकुलं, साई उवकुलं, जेट्ठा उवकुलं, पुव्वासाढा उवकुलं।

चत्तारि कुलोवकुला, तंजहा—

अभिई कुलोवकुला, सयभिसया कुलोवकुला, अद्दा कुलोवकुला, अणुराहा कुलोवकुला।

जंबू. सूत्र १६१ पृ. ५०४
—सूर्य. सूत्र ३७ पृ. १११
—चन्द्र. ,, ,,

[२०][१] प्र०—भगवन् ! (इन नक्षत्रों मे) कितने कुलनक्षत्र (कुल संज्ञा वाले नक्षत्र), कितने उपकुलनक्षत्र और कितने कुलोपकुलनक्षत्र है ?

उ०—गौतम ! बारह कुलनक्षत्र, बारह उपकुलनक्षत्र एवं चार कुलोपकुलनक्षत्र हैं।

बारह कुल इस प्रकार है—१–धनिष्ठाकुल, २–उत्तरभाद्रपदाकुल, ३–अश्विनीकुल, ४–कृत्तिकाकुल, ५–मृगशीर्षकुल, ६–पुष्यकुल, ७–मघाकुल, ८–उत्तरफाल्गुनीकुल, ९–चित्राकुल, १०–विशाखाकुल, ११–मूलकुल और १२–उत्तराषाढाकुल।

कुल मासों के परिणाम होते हैं अर्थात् महीनों के अन्त में आते है। उपकुल कुल के बाद आते हैं। अभिजित, शतभिषा, आर्द्रा और अनुराधा (उपकुल के भी बाद आते हैं।)

बारह उपकुलनक्षत्र इस प्रकार है—१–श्रवणोपकुल, २–पूर्वभाद्रपदोपकुल, ३–रेवती-उपकुल, ४–भरणी-उपकुल, ५–रोहिणी-उपकुल, ६–पुनर्वसु-उपकुल, ७–आश्लेषोपकुल, ८–पूर्वफाल्गुनी-उपकुल, ९–हस्तोपकुल, १०–स्वाति-उपकुल,१ १–ज्येष्ठोपकुल और १२–पूर्वाषाढोपकुल।

चार कुलोपकुल इस प्रकार हैं—१–अभिजित-कुलोपकुल, २–शतभिषाकुलोपकुल, ३–आर्द्राकुलोपकुल और ४–अनुराधाकुलोपकुल।

अमावस्याओं में कुलों का योग

[२१][१] प्र०—साविट्ठिण्णं भंते ! अमावासं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—गोयमा ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, णो लब्भइ कुलोवकुलं ।

कुलं जोएमाणे महाणक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे अस्सेसाणक्खत्ते जोएइ,

साविट्ठिण्णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठि-अमावासा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ ।

पोट्ठवइण्णं अमावासं तं चेव,

दो जोएति-कुलं वा जोएइ, उवकुलं०,

कुलं जोएमाणे उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते जोएइ, उव० पुव्वाफग्गुणी,

पोट्ठवइण्णं अमावासं जाव वत्तव्वं सिया,

मग्गसिरिण्णं तं चेव कुलं मूले णक्खत्ते जोएइ,

उव० जेट्ठा, कुलोवकु०, अणुराहा—जाव–जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ,

एवं माहीए फग्गुणीए आसाढीए कुलं वा उवकुलं वा, कुलोवकुलं वा,

अवसेसियाणं कुलं वा उवकुलं वा जोएइ ।

—जंबू. सूत्र १६१, पृ. ५०४–५०५
—सूर्य. सूत्र ३६ पृ १२०
—चन्द्र. ,, ,,

[२१][१] प्र०—भगवन् ! श्राविष्ठी अमावस्या को कुल (कुलनक्षत्र) का योग होता है, उपकुल–(नक्षत्र) का योग होता है अथवा कुलोपकुल (नक्षत्र) का योग होता है ?

उ०—गौतम ! कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, किन्तु कुलोपकुल का योग (लाभ) नहीं होता ।

कुल का योग होने पर मघानक्षत्र का योग होता है । उपकुल का योग होने पर आश्लेषा नक्षत्र का योग होता है । (इस प्रकार) श्राविष्ठी अमावस्या को कुल का योग होता है एवं उपकुल का योग होता है । (अर्थात्) कुल से युक्त होकर अथवा उपकुल से युक्त होकर श्राविष्ठी अमावस्या योगयुक्त होती है ।

प्रौष्ठपदी अमावस्या को इन्ही दो का योग होता है अर्थात् कुल एवं उपकुल का योग होता है । कुल का योग होने पर उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र योगयुक्त होता है । उपकुल का योग होने पर पूर्व-फाल्गुनी नक्षत्र योगयुक्त होता है । प्रौष्ठपदी अमावस्या को–यावत्–योग होता है ।

मार्गशीर्ष–(अमावस्या) को इसी प्रकार कुल का योग होने पर मूल नक्षत्र योगयुक्त होता है, उपकुल का योग होने पर ज्येष्ठा (नक्षत्र) योगयुक्त होता है । कुलोपकुल का योग होने पर अनुराधा (नक्षत्र)–यावत्–योगयुक्त होता है । इसी प्रकार माघी, फाल्गुनी एव आषाढी (अमावस्या) को कुल उपकुल अथवा कुलोपकुल का योग होता है । शेष (अमावस्याओं) को कुल अथवा उपकुल का योग होता है ।

पूर्णिमाओं में कुल–उपकुल का योग

[२२][१] प्र०—साविट्ठिण्णं भन्ते ! पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ?

उ०—गोयमा ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ ।

कुलं जोएमाणे धणिट्ठा णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे सवणे णक्खत्ते जोएइ, कुलोवकुलं जोएमाणे अभिई णक्खत्ते जोएइ ।

सावित्थिण्णं पुण्णिमासिं णं कुलं वा जोएइ—जाव—कुलोवकुलं वा जोएइ,
कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, कुलोवकुलेण वा जुत्ता,
सावित्थी पुण्णिमा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ ।

[२] प्र०—पोट्ठवदिण्णं भंते ! पुण्णिमं किं कुलं ३ पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! कुलं वा उपकुलं वा कुलोवकुलं वा जो एइ,
कुलं जोएमाणे उत्तरभद्दवया णक्खत्ते जोएइ, उ० पुव्वभद्दवया० कुलोव० सयभिसया णक्खत्ते जोएइ ।
पोट्ठवइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ—जाव—कुलोवकुलं वा जोएइ,
कुलेण वा जुत्ता—जाव—कुलोवकुलेण वा जुत्ता पोट्ठवई पुण्णमासी जुत्तत्ति वत्तव्व सिया ।

[३] प्र०—आसोइण्णं भंते ! पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, णो लभई कुलोवकुलं ।
कुलं जोएमाणे अस्सिणीणक्खत्ते जोएइ,
उवकुलं जोएमाणे रेवइणक्खत्ते जोएइ,
अस्सोइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता
अस्सोई पुण्णिमा जुत्तत्ति वत्तव्वं सिआ ।

[४] प्र०—कत्तिइण्णं भंते ! पुण्णिमं किं कुलं ३ पुच्छा ?

उ०—गोयमा ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, णो कुलोवकुलं जोएइ,
कुलं जोएमाणे कत्तिआणक्खत्ते जोएइ, उव० भरणी, कत्तिइण्णं—जाव—वत्तव्वं ।

[५] प्र०—मग्गसिरिण्णं भंते ! पुण्णिमं किं कुलं तं चेव ?

उ०—वो जोएइ, णो भवइ कुलोवकुलं,
कुलं जोएमाणे मग्गसिरणक्खत्ते जोएइ,
उव० रोहिणी, मग्गसिरिण्णं पुण्णिमं—जाव—वत्तव्वं सिआ इति ।
एवं सेसिआओ वि—जाव—आसाढि ।
पोसि जेट्ठामूलि च कुलं वा उव० कुलोवकुलं वा,
सेसिआण कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं ण भण्णइ ।

—जम्बू० सूत्र १६१ पृ. ५०४—५०५
—सूर्य० सूत्र ३६ पृ. १२०
—चन्द्र० ,, ,,

[२२][१] प्र०—भगवन् ! श्राविष्ठी पूर्णिमा को कुल (नक्षत्र) का योग होता है, उपकुल (नक्षत्र) का योग होता है अथवा कुलोपकुल (नक्षत्र) का योग होता है ?

उ०—गौतम ! कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है एवं कुलोपकुल का योग होता है ।
कुल का योग होने पर धनिष्ठा नक्षत्र योगयुक्त होता है । उपकुल का योग होने पर श्रवण नक्षत्र योगयुक्त होता है । कुलोपकुल का योग होने पर अभिजित नक्षत्र योगयुक्त होता है ।
(इस प्रकार) श्राविष्ठी पूर्णिमा को कुल का योग होता है—यावत्—कुलोपकुल का योग होता है ।
(अर्थात्) कुल से युक्त होकर, उपकुल से युक्त होकर अथवा कुलोपकुल से युक्त होकर श्राविष्ठी पूर्णिमा योगयुक्त होती है ।

[२] प्र०—भगवन् ! प्रौष्ठपदी पूर्णिमा को कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है अथवा कुलोपकुल का योग होता है ?

उ०—गौतम ! कुल, उपकुल अथवा कुलोपकुल का योग होता है।

कुल का योग होने पर उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र योगयुक्त होता है। उपकुल का योग होने पर पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र योगयुक्त होता है। कुलोपकुल का योग होने पर शतभिषा नक्षत्र योगयुक्त होता है।

(इस प्रकार) प्रौष्ठपदी पूर्णिमा को कुल का योग होता है—यावत्—कुलोपकुल का योग होता है।

(अर्थात्) कुल से युक्त होकर—यावत्—कुलोपकुल से युक्त होकर प्रौष्ठपदी पूर्णिमा योगयुक्त होती है।

[३] प्र०—भगवन् ! आश्विनी (पूर्णिमा) को (कुल, उपकुल अथवा कुलोपकुल का योग होता है) ?

उ०—गौतम ! कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग (लाभ) नहीं होता, कुल का योग होने पर अश्विनी नक्षत्र योग करता है। उपकुल का योग होने पर रेवती नक्षत्र योग करता है।

(इस प्रकार) आश्विनी पूर्णिमा को कुल का योग होता है अथवा उपकुल का योग होता है।

(अर्थात्) कुल से युक्त होकर अथवा उपकुल से युक्त होकर आश्विनी पूर्णिमा योगयुक्त होती है।

[४] प्र०—भगवन् ! कार्तिकी पूर्णिमा को कुल, उपकुल अथवा कुलोपकुल का योग होता है ?

उ०—गौतम ! कुल का योग होता है, उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का योग नही होता। कुल का योग होने पर कृत्तिका नक्षत्र योग करता है। उपकुल का योग होने पर भरणी (नक्षत्र योग करता है)।

(इस प्रकार) कार्तिकी पूर्णिमा—यावत्—योगयुक्त होती है।

[५] प्र०—भगवन् ! मार्गशीर्षी पूर्णिमा को कुल (अथवा उपकुल) का योग होता है, इत्यादि ?

उ०—(कुल और उपकुल) दो का ही योग होता है, कुलोपकुल का योग नहीं होता।

कुल का योग होने पर मृगशीर्ष नक्षत्र योगयुक्त होता है। उपकुल का योग होने पर रोहिणी (नक्षत्र योगयुक्त होता है)।

इस प्रकार मार्गशीर्षी पूर्णिमा—यावत्—योगयुक्त होती है।

इसी प्रकार शेष—यावत्—आषाढी पूर्णिमा के विषय में भी समझना चाहिए। पौषी एवं ज्येष्ठामूली (पूर्णिमा) को कुल, उपकुल और कुलोपकुल का योग होता है। शेष (पूर्णिमाओं) को कुल अथवा उपकुल का योग होता है, कुलोपकुल का नहीं।

रात्रि पूर्ण करने वाले नक्षत्र

[२३][१] प्र०—वासाणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि णक्खत्ता णंति, तंजहा—उत्तरासाढा, अभिई, सवणो, धणिट्ठा।

उत्तरासाढा चउद्दस अहोरत्ते णेइ, अभिई सत्त अहोरत्ते णेइ, सवणो अट्ठऽहोरत्ते णेइ, धणिट्ठा अहोरत्तं णेइ।

तंसि च णं मासंसि चउरंगुलपोरसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ,[1]

तस्स णं मासस्स चरिमदिवसे दो पया चत्तारि अ अंगुला पोरिसी भवइ।

[२] प्र०—वासाणं भंते ! दोच्चं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि—धणिट्ठा, सयभिसया पुव्वभद्दवया, उत्तराभद्दवया।

धणिट्ठा णं चउद्दस अहोरत्ते णेइ, सयभिसया सत्त अहोरत्ते णेइ, पुव्वाभद्दवया अट्ठ अहोरत्ते णेइ, उत्तराभद्दवया एगं।

---

१. (क) **सावणसुद्धसत्तमीसु णं सूरिए सत्तावीसंगुलियं पोरिसिच्छायं णिव्वत्तइत्ता णं दिवसखेत्तं णिवड्ढेमाणे रयणिखेत्तं अभिणिवड्ढमाणे चारं चरति। —सम० २७**

श्रावण, शुक्ला सप्तमी को सूर्य सत्ताईस अगुल की पौरुषी छाया करता हुआ दिवसक्षेत्र को कम करता हुआ और रजनीक्षेत्र को बढ़ाता हुआ गति करता है।

(ख) **उत्तरा० अ. २६ गा० १३-१४**

तंसि च णं मासंसि अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,
तस्स मासस्स चरिमे दिवसे दो पया अट्ठ य अंगुला पोरिसी भवइ ।

[३] प्र०—वासाणं भंते ! तइअं मासं कइ णक्खत्ता णेति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेति, तंजहा—
उत्तरभद्दवया, रेवई, अस्सिणी ।
उत्तरभद्दवया चउद्दस राइंदिए णेइ, रेवई पण्णरस, अस्सिणी एगं ।
तंसि च णं मासंसि दुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ,
तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइ तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ ।[1]

[४] प्र०—वासाणं भंते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि–अस्सिणी, भरणी, कत्तिआ ।
अस्सिणी चउद्दस, भरणी पण्णरस, कत्तिआ एगं ।
तंसि च णं मासंसि सोलसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।
तस्स णं मासस्स चरमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।[2]

[२३][१] प्र०—वर्षा के प्रथम मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते है ?

उ०—गौतम ! चार नक्षत्र पूर्ण करते है, यथा—उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा।
उत्तराषाढा चौदह अहोरात्र पर्यन्त रहता है। अभिजित सात अहोरात्र पर्यन्त रहता है। श्रवण आठ अहोरात्र पर्यन्त रहता है। धनिष्ठा एक अहोरात्र पर्यन्त रहता है।
इस मास मे सूर्य चतुरगुल पौरुषी से परिभ्रमण करता है। इस मास में अन्तिम दिन दो पद व चार अगुल की पौरुषी होती है।

[२] प्र०—भगवन् ! वर्षा के द्वितीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते है ?

उ०—गौतम ! चार (नक्षत्र पूर्ण करते है), यथा-धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा।
धनिष्ठा चौदह अहोरात्र पर्यन्त रहता है। शतभिषा सात अहोरात्र तक रहता है। पूर्वाभाद्रपदा आठ अहोरात्र तक रहता है। उत्तराभाद्रपदा एक (अहोरात्र पर्यन्त रहता है)।
इस मास मे अष्टांगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है। इस मास में अन्तिम दिन दो पद और आठ अगुल की पौरुषी होती है।

[३] प्र०—भगवन् ! वर्षा के तृतीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते है ?

उ०—गौतम ! तीन नक्षत्र पूर्ण करते है, यथा-उत्तरा-भाद्रपदा, रेवती और अश्विनी।

उत्तरभाद्रपदा चौदह रात्रि-दिन तक रहता है। रेवती पन्द्रह एवं अश्विनी एक (रात्रि-दिन तक रहता है)। इस मास में द्वादशागुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है। इस मास मे अन्तिम दिन पुरे तीन पद की पौरुषी होती है।

---

१. चेत्तासोएसु णं मासेसु सइ छत्तीसंगुलियं सूरिए पोरिसिच्छायं निव्वत्तेइ । —सम० ३६
चैत्र एवं आश्विन मास में सूर्य छत्तीस अंगुल की पौरुषी छाया करता है।

२. (क) कत्तियबहुलसत्तमीए णं सूरिए सत्ततीसंगुलियं पोरिसिच्छायं निव्वत्ताइत्ता णं चारं चरइ । —सम० ३७
कार्तिक कृष्णा सप्तमी को सूर्य सैंतीस अंगुल की पौरुषी छाया का निर्माण करता हुआ गति करता है।
(ख) सम० ४० सूत्र ७

[४] प्र०—भगवन् ! वर्षा के चतुर्थ मास (कार्तिक) को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—गौतम ! तीन (नक्षत्र पूर्ण करते हैं)—अश्विनी, भरणी और कृत्तिका । अश्विनी चौदह, भरणी पन्द्रह और कृत्तिका एक (अहोरात्र पर्यन्त रहता है) ।

इस मास मे सूर्य षोडशांगुल पौरुषी छाया से परिभ्रमण करता है । इस मास में अन्तिम दिन तीन पद व चार अंगुल की पौरुषी होती है ।

[२४][१] प्र०—हेमंताणं भंते ! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

ऊ०—गोयमा ! तिण्णि–कत्तिआ, रोहिणी, मिगसिरं ।

कत्तिआ चउद्दस, रोहिणी पण्णरस, मिगसिरं एगं अहोरत्तं णेइ ।

तंसि च णं मासंसि वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ,

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठ य अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

[२] प्र०—हेमंताणं भंते ! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तंजहा—

मिअसिरं, अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो ।

मिअसिरं चउद्दस राइंदिआइं णेइ, अद्दा अट्ठ णेइ, पुणव्वसू सत्त राइंदिआइं- पुस्सो एगं राइंदिअं, णेइ । तया णं चउव्वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं चत्तारि पयाइं पोरिसी भवइ ।

[३] प्र०—हेमंताणं भंते ! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि–पुस्सो, असिलेसा, महा । पुस्सो चोद्दस राइंदियाणं णेइ, असिलेसा पण्णरस, महा एक्कं ।

तया णं वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ,

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

[४] प्र०—हेमंताणं भंते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि पण्णत्ता, तंजहा—

महा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तरफग्गुणी ।

महा चउद्दस राइंदिआइं णेइ, पुव्वाफग्गुणी पण्णरस राइंदिराइं णेइ, उत्तराफग्गुणी एगं राइंदिअं णेइ ।

तया णं सोलसंगुलपोरिसीए सूरिए अणुपरिअट्टइ ।

तस्स ण मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।[1]

[२४][१] प्र०—भगवन् ! हेमन्त के प्रथम मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—गौतम ! तीन (नक्षत्र पूर्ण करते हैं)–कृत्तिका, रोहिणी और मृगशीर्ष । कृत्तिका चौदह, रोहिणी पन्द्रह एवं मृगशीर्ष एक अहोरात्र पर्यन्त रहता है । इस मास में सूर्य वीस अंगुल की पौरुषी छाया से परिभ्रमण करता है । इस मास में अन्तिम दिन तीन पद और आठ अंगुल की पौरुषी होती है ।

१– सम० ४० सूत्र ६

[२] प्र०—भगवन् ! हेमन्त के द्वितीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ।

उ०—गौतम ! चार नक्षत्र पूर्ण करते हैं, यथा—मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य । मृगशीर्ष चौदह रात्रि-दिन तक रहता है । आर्द्रा आठ (अहोरात्र तक) रहता है । पुनर्वसु सात रात-दिन तक (रहता) है । पुष्य एक रात-दिन रहता है ।

इसमें सूर्य चौवीस अंगुल की पौरुषी छाया से परिभ्रमण करता है । इस मास मे अन्तिम पूरे दिन चार पद की पौरुषी होती है ।

[३] प्र०—भगवन् ! हेमन्त के तृतीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते है ?

उ०—गौतम ! तीन (नक्षत्र पूर्ण करते है)—पुष्य, आश्लेषा और मघा । पुष्य चौदह रात-दिन तक रहता है । आश्लेषा पन्द्रह एवं मघा एक रात-दिन तक रहता है ।

इसमें सूर्य बीस अंगुल की पौरुषी छाया से परिभ्रमण करता है । इस मास मे अन्तिम दिन तीन पद और आठ अंगुल की पौरुषी होती है ।

[४] प्र०—भगवन् ! हेमन्त के चतुर्थ मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते है ?

उ०—गौतम ! तीन नक्षत्र पूर्ण करते है, यथा—मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तरफाल्गुनी । मघा चौदह रात्रि-दिन तक रहता है । पूर्वाफाल्गुनी पन्द्रह रात्रि-दिवस तक रहता है । उत्तरफाल्गुनी एक रात्रि-दिवस रहता है ।

इस समय सूर्य सोलह अगुल पौरुषी छाया से परिभ्रमण करता है । इस मास में अन्तिम दिन तीन पद व चार अंगुल की पौरुषी होती है ।

[२५][१] प्र०—गिम्हाणं भंते ! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेति-उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता ।

उत्तराफग्गुणी चउद्दस राइंदियाइं णेइ, हत्थो पण्णरस राइंदियाइं णेइ, चित्ता एगं राइंदिअं णेइ ।

तया णं बुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ,

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं तिण्णि[1] पयाइं पोरिसी भवइ ।

[२] प्र०—गिम्हाणं भंते ! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तंजहा—चित्ता, साई, विसाहा ।

चित्ता चउद्दस राइंदियाइं णेइ, साई पण्णरस राइंदियाइं णेइ, विसाहा एगं राइंदिअं णेइ ।

तया णं अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ,

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

[३] प्र०—गिम्हाणं भंते ! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?

उ०—गोयमा ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तंजहा—विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो ।

विसाहा चउद्दस राइंदियाइं णेइ, अणुराहा अट्ठ राइंदियाइं णेइ, जेट्ठा सत्त राइंदियाइं णेइ, मूलो एक्कं राइंदिअं ।

तया णं चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ,

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं चत्तारि अ अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।

---

१. सम० ३६

[४] प्र०—गिम्हाणं भंते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेति ?

उ०—गोयमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेति, तंजहा—मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा ।

मूलो चउद्दस्स राइंदियाइं णेइ, पुव्वासाढा पण्णरस राइंदियाइं णेइ, उत्तरासाढा एगं राइंदिअं णेइ ।

तया णं वट्टाए समचउरंससंठाणसंठिआए णग्गोहपरिमंडलाए सकायमणुरंगिआए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ,

तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाणं दो पयाइं पोरिसी भवइ ।

—जंबू० सूत्र १६२ पृ. ५१५–५१६
—सूर्य० सूत्र ४३ पृ. १३१–१३३
—चन्द्र० " "

[२५][१] प्र०—भगवन् ! ग्रीष्म के प्रथम मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—गौतम ! तीन नक्षत्र पूर्ण करते है—उत्तरफाल्गुनी, हस्त और चित्रा । उत्तरफाल्गुनी चौदह रात्रि-दिन तक रहता है । हस्त पन्द्रह रात्रि-दिन पर्यन्त रहता है । चित्रा एक दिन रहता है । इस समय सूर्य द्वादशांगुल पौरुषी छाया से परिभ्रमण करता है । इस महीने में अन्तिम दिन तीन पद की पौरुषी होती है ।

[२] प्र०—भगवन् ! ग्रीष्म के द्वितीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते है ?

उ०—गौतम ! तीन नक्षत्र पूर्ण करते हैं, यथा—चित्रा, स्वाति और विशाखा । चित्रा चौदह रात्रि–दिन तक रहता है । स्वाति पन्द्रह रात–दिन तक रहता है । विशाखा एक रात्रि–दिन रहता है । इस समय अष्टांगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है । इस मास में अन्तिम दिन दो पद तथा आठ अंगुल की पौरुषी होती है ।

[३] प्र०—भगवन् ! ग्रीष्म के तृतीय मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—गौतम ! चार नक्षत्र पूर्ण करते हैं, यथा—विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल । विशाखा चौदह रात–दिन तक रहता है । अनुराधा आठ रात्रि–दिन रहता है । ज्येष्ठा सात रात्रि–दिन पर्यन्त रहता है । मूल एक रात–दिन रहता है । इस समय चतुरंगुल पौरुषी छाया से सूर्य परिभ्रमण करता है ।

[४] प्र०—भगवन् ! ग्रीष्म के चतुर्थ मास को कितने नक्षत्र पूर्ण करते हैं ?

उ०—गौतम ! तीन नक्षत्र पूर्ण करते हैं, यथा—मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा । मूल चौदह रात्रि–दिन पर्यन्त रहता है । पूर्वाषाढा पन्द्रह रात्रि–दिन पर्यन्त रहता है । उत्तराषाढा एक रात्रि–दिन तक रहता है । इस समय सूर्य वृत्ताकार, समचतुरस्र एवं न्यग्रोधपरिमडल संस्थान वाली स्वकाया-नुरंजित छाया से परिभ्रमण करता है । इस मास मे अन्तिम दिन पूरे दो पद पौरुषी होती है ।

नक्षत्र-मासों के मुहूर्त्तों की हानि-वृद्धि

[२६][१] प्र०—ता कहं ते वड्ढोवड्ढी मुहुत्ताणं आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता अट्ठएकूणवीसे मुहुत्तसते सत्तावीसं च सट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहितेति वदेज्जा ।

—सूर्य. सूत्र ८ पृ. ६
—चन्द्र. " "

[२६][१] प्र०—(नक्षत्रमासों के) मुहूर्त्तों की वृद्धि-हानि कितनी होती है ?

उ०—यह ८१९$\frac{२७}{६०}$ मुहूर्त्त की होती है ।

नक्षत्रों का चार-प्रकार

[२७][१] प्र०—जंबुद्दीवे णं दीवे अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ते सव्वब्भंतरिल्लं चारं चरइ ?
कयरे णक्खत्ते सव्वबाहिरं चारं चरइ ?
कयरे सव्वहिट्ठिल्लं चारं चरइ ?
कयरे सव्वउवरिल्लं चारं चरइ ?

उ०—गोयमा ! अभिई णक्खत्ते सव्वब्भंतरचारं चरइ, मूलो सव्वबाहिरं चारं चरइ,
भरणी सव्वहिट्ठिल्लं, साई सव्वुवरिल्लं चारं चरइ ।

—जम्बू. सूत्र १६५ पृ. ५२४
—सूर्य. सूत्र ९३ पृ. २५९
—चन्द्र. ,, ,,
—जीवा. सूत्र १९६ पृ. ३७७

[२७][१] प्र०—जम्बूद्वीप में २८ नक्षत्रों मे से कौन-सा नक्षत्र सबसे भीतर गति करता है ?
कौन-सा नक्षत्र सब से बाहर गति करता है ?
कौन-सा नक्षत्र सब मे नीचे गति करता है ?
कौन-सा नक्षत्र सब से ऊपर गति करता है ?

उ०—गौतम ! अभिजित नक्षत्र सब से भीतर गति करता है । मूल नक्षत्र सब से बाहर गति करता है ।
भरणी सब मे नीचे (गति करता है) एवं स्वाति सब से ऊपर गति करता है ।

नक्षत्रों का दिशाभाग

[२८][१] प्र०—ता कहं ते एवभागा आहितेति वदेज्जा ?

उ०—ता एतेसिणं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं

१–अत्थि णक्खत्ता पुव्वभागा समखेत्ता तीसमुहुत्ता पण्णत्ता,

२–अत्थि णक्खत्ता पच्छंभागा समखेत्ता तीसमुहुत्ता पण्णत्ता,

३–अत्थि णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता,

४–अत्थि णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणतालीसंमुहुत्ता पण्णत्ता ।

[२] प्र०—ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कतरे णक्खत्ता पुव्वंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता ?
कतरे णक्खत्ता पच्छंभागा समखेत्ता तीसमुहुत्ता पण्णत्ता ?
कतरे णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता ?
कतरे णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणतालीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता ?

उ०—ता एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं

१–तत्थ जे ते णक्खत्ता पुव्वंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं छ, तंजहा—
पुव्वापोट्ठवता, कत्तिया, मघा, पुव्वाफग्गुणी, मूलो, पुव्वासाढा ।

२–तत्थ जे ते णक्खत्ता पच्छंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं दस, तंजहा-अभिई, सवणो, धणिट्ठा, रेवती, अस्सिणी, मिगसिरं, पूसो, हत्थो, चित्ता, अणुराधा ।

३–तत्थ जे ते णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं छ, तंजहा-सयभिसया, भरणी, अद्दा, अस्सेसा, साती, जेट्ठा ।

४-तत्थ जे ते णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणतालीसं मुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं छ, तंजहा-उत्तरापोट्ठवता, रोहिणी, पुणव्वसू, उत्तराफग्गुणी, विसाहा, उत्तरासाढा ।

—सूर्य. सूत्र ३५ पृ. १०४
—चन्द्र. ,, ,,
—ठा. सूत्र ५१७
—सम. १५ सूत्र ४५

[२८][१] प्र०—इन (नक्षत्रों) के भाग किस प्रकार बताए गए है ?

उ०—इन २८ नक्षत्रो में ऐसे भी नक्षत्र है जो पूर्वभाग सम क्षेत्र वाले हैं एव तीस मुहूर्त्त के हैं। ऐसे भी नक्षत्र है जो पश्चाद्भाग समक्षेत्र वाले एव तीस मुहूर्त्त के है। ऐसे भी नक्षत्र हैं जो नक्तभाग (रात्रि में चन्द्र के साथ योग की आदि करने वाले) अपार्ध क्षेत्र वाले एवं पन्द्रह मुहूर्त्त के है। तथा ऐसे भी नक्षत्र है जो उभयभाग (अहोरात्रि) डेढ़ क्षेत्र वाले हैं एवं पैतालीस मुहूर्त्त के हैं।

[२] प्र०—इन २८ नक्षत्रों में से कौन-से नक्षत्र पूर्वभाग समक्षेत्र वाले तीस मुहूर्त्त के है ? कौन-से नक्षत्र पश्चाद्भाग समक्षेत्र वाले तीस मुहूर्त्त के हैं ? कौन-से नक्षत्र नक्त (रात्रि) भाग अर्ध क्षेत्र वाले पन्द्रह मुहूर्त्त के हैं ? तथा कौन-से नक्षत्र उभयभाग डेढ क्षेत्र (सार्ध अहोरात्र) पैतालीस मुहूर्त्त के हैं ?

उ०—इन २८ नक्षत्रों में से पूर्वभाग समक्षेत्र वाले तीस मुहूर्त्त के छह नक्षत्र हैं, यथा—पूर्वभाद्रपदा, कृत्तिका, मघा, पूर्वफाल्गुनी, मूल और पूर्वाषाढा ।

पश्चाद्भाग समक्षेत्र वाले तीस मुहूर्त्त के दस नक्षत्र है, यथा—अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशीर्ष, पुष्य, हस्त, चित्रा और अनुराधा ।

नक्त भाग अर्ध क्षेत्र वाले पन्द्रह मुहूर्त्त के छह नक्षत्र है, यथा—शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा ।

उभयभाग डेढ़ क्षेत्र वाले पैतालीस मुहूर्त्त के छह नक्षत्र हैं, यथा—उत्तरभाद्रपदा, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढा ।

चारों दिशाओं के नक्षत्र

[२९][१] प्र०—ता कहं ते जोतिसस्स दारा आहिता वदेज्जा ?

उ०—तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ—

१-तत्थेगे एवमाहंसु
ता कत्तियादी[1] णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु

२-एगे पुण एवमाहंसु
ता महादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

३-एगे पुण एवमाहंसु
ता धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

४-एगे पुण एवमाहंसु
अस्सिणीयादी णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।

५-एगे पुण एवमाहंसु
ता भरणीयादीया णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिआ पण्णत्ता ।

१-सम० ७ ।

१–तत्थ जे ते एवमाहंसु

ता कत्तियादी[1] णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ते एवमाहंसु तंजहा—
कत्तिया, रोहिणी, संठाणा, अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो, असिलेसा ।
महादीया सत्त[2] णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
महा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता, साई, विसाहा ।
अणुराधादीया[3] सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
अणुराधा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा, अभियी, सवणो ।
धणिट्ठादीया[4] सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वापोट्ठवता, उत्तरापोट्ठवता, रेवती, अस्सिणी, भरणी ।

२–तत्थ जे ते एवमाहंसु

ता महादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तंजहा—
महा, पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी हत्थो, चित्ता, साती, विसाहा ।
अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
अणुराधा, जेट्ठा, मूले, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा, अभियी, सवणे ।
धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वापोट्ठवता, उत्तरापोट्ठवता, रेवती, अस्सिणी, भरणी ।
कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
कत्तिया, रोहिणी, संठाणा, अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो, अस्सेसा ।

३–तत्थ जे ते एवमाहंसु

ता धणिट्ठादीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तंजहा—
धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वाभद्दवया, उत्तराभद्दवया, रेवती, अस्सिणी, भरणी ।
कत्तियादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
कत्तिया, रोहिणी, संठाणा, अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो, अस्सेसा ।
महादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
महा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता, साती, विसाहा ।
अणुराधादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
अणुराधा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा, अभीयी, सवणो ।

४–तत्थ जे ते एवमाहंसु

ता अस्सिणीआदीया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तंजहा—
अस्सिणी, भरणी, कत्तिया, रोहिणी, संठाणा, अद्दा, पुणव्वसू ।
पुस्सादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
पुस्सा, अस्सेसा, महा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता ।
सादीयादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
साती, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा ।
अभीयीआदि सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
अभिई, सवणो, धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया, रेवती ।

१–सम० ७ ।
२–सम० ७ ।
३–सम० ७ ।
४–सम० ७ ।

५–तत्थ जे ते एवमाहंसु

ता भरणियादिया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
भरणी, कत्तिया, रोहिणी, संठाणा, अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो ।
अस्सेसादीया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
अस्सेसा, महा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता, साई ।
विसाहादीया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा, अभिई ।
सवणादीया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
सवणो, धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वापोट्ठवया, उत्तरापोट्ठवया, रेवती, अस्सिणी, एते एवमाहंसु ।

वयं पुण एवं वदामो

ता[1] अभिईयादि सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
अभियी, सवणो, धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वापोट्ठवता, उत्तरापोट्ठवया, रेवती ।
अस्सिणीआदीया[2] सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
अस्सिणी, भरणी, कत्तिया, रोहिणी, संठाणा, अद्दा, पुणव्वसू ।
पुस्सादीया[3] सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
पुस्सो, अस्सेसा, महा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तरफग्गुणी, हत्थो, चित्ता ।
सातिआदीया[4] सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तंजहा—
साती, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूले, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा ।

—सूर्य० सू. ५९ पृ० १७३-७४
—चन्द्र० सू. ५९

[२९] ज्योतिष (नक्षत्रों) के द्वार किस प्रकार बताए गए हैं ?

उ०—इस विषय मे पाँच मान्यताएँ है—

१–कुछ लोगों की मान्यता है कि कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं ।

२–किसी की मान्यता है कि मघा आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं ।

३–कुछ मानते हैं कि धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले है ।

४–किसी की मान्यता है कि अश्विनी आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं ।

५–कोई कहते है कि भरणी आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं ।

१–इनमें से जिनकी मान्यता यह है कि कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले है उनका कथन है कि (निम्नलिखित सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं) यथा–कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ।

सात नक्षत्र दक्षिणी द्वार वाले है, यथा—मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा ।

अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिमी द्वार वाले हैं, यथा—अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित और श्रवण ।

घनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तरी द्वार वाले हैं, यथा–घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी ।

१–ठा० सूत्र ५८९ पृ० ३९३
२– " " "
३– " " "
४– " " "

२–जिनकी मान्यता यह है कि मघा आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं, उनका कथन है कि (ये नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले है–) यथा-मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा ।

अनुराधा आदि सात नक्षत्र दक्षिणी द्वार वाले है, यथा-अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित और श्रवण ।

धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पश्चिमी द्वार वाले है, यथा-धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तर-भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी ।

कृत्तिका आदि सात नक्षत्र उत्तरी द्वार वाले हैं, यथा-कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ।

३–जिनकी मान्यता यह है कि धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले है, उनका कथन है कि (ये नक्षत्र पूर्वीद्वार वाले हैं) यथा-धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी ।

कृत्तिका आदि सात नक्षत्र दक्षिणी द्वार वाले है, यथा-कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ।

मघा, आदि सात नक्षत्र पश्चिमी द्वार वाले है, यथा-मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा ।

अनुराधा आदि सात नक्षत्र उत्तरी द्वार वाले है, यथा-अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित और श्रवण ।

४–जिनकी मान्यता यह है कि अश्विनी आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले है, उनका कथन है कि (ये नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले है) यथा-अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा और पुनर्वसु ।

पुष्यादि सात नक्षत्र दक्षिणी द्वार वाले है, यथा-पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त और चित्रा ।

स्वाति आदि सात नक्षत्र पश्चिमी द्वार वाले है, यथा-स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा ।

अभिजित आदि सात नक्षत्र उत्तरी द्वार वाले हैं, यथा-अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा और रेवती ।

५–जिनकी मान्यता यह है कि भरणी आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं, उनका कथन है कि (ये नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले है) यथा-भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य ।

आश्लेषा आदि सात नक्षत्र दक्षिणी द्वार वाले हैं, यथा-आश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तर-फाल्गुनी, हस्त, चित्रा और स्वाति ।

विशाखादि सात नक्षत्र पश्चिमी द्वार वाले हैं, यथा-विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा और अभिजित ।

श्रवणादि सात नक्षत्र उत्तरी द्वार वाले है, यथा-श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तर-भाद्रपदा, रेवती और अश्विनी ।

हम इस प्रकार कहते हैं—

अभिजित आदि सात नक्षत्र पूर्वी द्वार वाले हैं, यथा—अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा और रेवती । अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिणी द्वार वाले है, यथा-अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा और पुनर्वसु ।

पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिमी द्वार वाले हैं, यथा—पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तर-फाल्गुनी, हस्त और चित्रा ।

स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तरी द्वार वाले हैं, यथा-स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा।

नक्षत्रमंडलों की संख्या

[३०][१] प्र०—कइ णं भंते ! णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता।

[२] प्र०—जंबुद्दीवे केवइयं ओगाहित्ता केवइआ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे असीअं जोयणसयं ओगाहेत्ता एत्थ णं दो णक्खत्तमंडला पण्णत्ता।

[३] प्र०—लवणे णं समुद्दे केवइयं ओगाहेत्ता केवइआ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं छ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता। एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणसमुद्दे अट्ठ णक्खत्तमंडला भवंतीतिमक्खायमिति।

—जंबू. सूत्र १४९ पृ. ४७४

[३०][१] प्र०—भगवन् ! नक्षत्रमंडल कितने हैं ?

उ०—गौतम ! नक्षत्रमडल आठ है।

[२] प्र०—जंबूद्वीप के कितने क्षेत्र को अवगाहन करने पर कितने नक्षत्र मडल है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के १८० योजन के क्षेत्र को अवगाहन करने पर दो नक्षत्रमंडल हैं।

[३] प्र०—लवणसमुद्र के कितने क्षेत्र को अवगाहन करके कितने नक्षत्रमंडल हैं ?

उ०—गौतम ! लवणसमुद्र के ३३० योजन के क्षेत्र को अवगाहन करने पर छह नक्षत्रमंडल हैं। इस प्रकार सब मिलाकर जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र मे आठ नक्षत्रमडल हैं।

नक्षत्रमंडलों का क्षेत्र

[३१][१] प्र०—सव्वब्भंतराओ णं भंते ! णक्खत्तमंडलाओ केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते इति।

—जम्बू. सूत्र १४९ पृ. ४७४

[३१][१] प्र०—भगवन् ! सब से भीतरी नक्षत्रमंडल से सब से बाहर का नक्षत्रमंडल कितनी दूरी पर है ?

उ०—गौतम ! (सब से भीतर के नक्षत्रमंडल से) ५१० योजन की दूरी पर सब से बाहर का नक्षत्रमंडल है।

नक्षत्रमंडलों की लम्बाई-चौड़ाई

[३२][१] प्र०—णक्खत्तमंडले णं भंते ! केवइअं आयाम-विक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं, केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! गाउयं आयाम-विक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अद्धगाउयं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

—जम्बू. सूत्र १४९ पृ. ४७४

[३२][१] प्र०—भगवन् ! नक्षत्रमंडल कितना लम्बा-चौड़ा, कितनी परिधि वाला और कितना मोटा है ?

उ०—गौतम ! एक कोस लम्बा-चौड़ा, इससे तिगुनी से कुछ अधिक परिधि वाला एवं आधा कोस मोटा है।

नक्षत्र मंडलों का अन्तर

[३३][१] प्र०—णक्खत्तमंडलस्स णं भंते ! णक्खत्तमंडलस्स य एस णं केवइआए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! दो जोअणाइं णक्खत्तमंडलस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—जम्बू. सूत्र १४६ पृ. ४७४

[३३][१] प्र०—भगवन् ! एक नक्षत्रमंडल से दूसरे नक्षत्रमंडल में कितना अन्तर है ?

उ०—गौतम ! एक नक्षत्रमंडल से दूसरे नक्षत्रमंडल में दो योजन का अन्तर है ।

मेरु से नक्षत्रमंडलों का अन्तर

[३४][१] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! चोयालीसं जोयणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोयणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ।

[२] प्र०—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पणयालीसं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तीसे जोयणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते इति ।

[३] प्र०—सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले केवइअं आयामविक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! णवणउतिं जोअणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस सहस्साइं एगूणणवतिं च जोअणाइं किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ।

[४] प्र०—सव्वबाहिरए णं भंते ! णक्खत्तमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं ।

—जम्बू. सूत्र १४६ पृ. ४७४

[३४][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमंडल कितनी दूर है ?

उ०—गौतम ! (जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से) सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमंडल ४४८२० योजन दूर है ।

[२] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सर्वबाह्य नक्षत्रमंडल कितनी दूर है ?

उ०—गौतम (जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से) सर्वबाह्य नक्षत्रमंडल ४५३३० योजन दूर है ।

[३] प्र०—सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमंडल कितना लम्बा-चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! ९९६४० योजन लम्बा-चौड़ा है और ३१५०८९ योजन से किंचित् विशेषाधिक परिधि वाला है ।

[४] प्र०—भगवन् ! सर्वबाह्य नक्षत्रमंडल कितना लंबा-चौड़ा एवं कितनी परिधि वाला है ?

उ०—गौतम ! १००६६० योजन लंबा-चौड़ा एवं ३१८३१५ योजन की परिधि वाला है ।

एक मुहूर्त्त में नक्षत्र की गति

[३५][१] प्र०—जया णं भंते ! णक्खत्ते सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि य पण्णट्ठे जोअणसए अट्ठारस य भागसहस्से दोण्णि य तेवट्ठे भागसए गच्छइ, मंडलं एक्कवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता ।

[२] प्र०—जया णं भंते ! णक्खत्ते सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोअणसए सोलस य भागसहस्सेहिं तिण्णि य पणट्ठे भागसए गच्छइ,
मंडलं एगवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठिहिं सएहिं छेत्ता ।

[३] प्र०—एते णं भंते ! अट्ठ णक्खत्तमंडला कतिहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति ?

उ०—गोयमा ! अट्ठहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति, तंजहा-पढमे चंदमंडले, ततिए, छट्ठे, सत्तमे, अट्ठमे, दसमे, इक्कारसमे, पण्णरसमे चंदमंडले ।

[३५][१] प्र०—भगवन् ! जब नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर मंडल पर आरूढ़ होकर गति करता है तब प्रत्येक मुहूर्त्त में कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! ५२६५$\frac{१५२६३}{२१९६०}$ योजन चलता है ।

[२] प्र०—भगवन् ! जब नक्षत्र सर्वबाह्य मंडल पर आरूढ होकर गति करता है तब प्रतिमुहूर्त्त कितना क्षेत्र चलता है ?

उ०—गौतम ! ५३१९$\frac{१६३६५}{२१९६०}$ योजन चलता है ।

[३] प्र०—भगवन् ! ये आठ नक्षत्रमडल कितने चन्द्रमंडलों के साथ मिले हुए हैं—अन्तर्गत है अर्थात् चन्द्र और नक्षत्रों के साधारण मंडल कितने है ?

उ०—गौतम ! आठ चन्द्रमंडलों में अन्तर्गत होते हैं, यथा-प्रथम, तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, दशम, एकादश और पचदश चन्द्रमंडल ।

नक्षत्रों की (मंडलों में) गति

[३६][१] प्र०—एगमेगेणं भंते ! मुहुत्तेणं णक्खत्ते केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?

उ०—गोयमा ! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारस पणतीसे भागसए गच्छइ मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउईए अ सएहिं छेत्ता ।

—जम्बू. सूत्र १४९ पृ. ४७४

[३६][१] प्र०—भगवन् ! प्रतिमुहूर्त्त नक्षत्र (अपने मंडल का) कितना भाग चलता है ?

उ०—गौतम ! जिस-जिस मंडल पर आरूढ होकर गति करता है, उस-उस मंडल की परिधि का $\frac{१८३५}{१०९८००}$ भाग चलता है ।

चन्द्र-सूर्य के नीचे और ऊपर तारों के स्थान

[३७][१] प्र०—अत्थि णं भंते ! चंदिम-सूरिआणं हिट्ठि पि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि,
समेवि तारारूवा अणुवि तुल्लावि,
उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि ?

उ०—हंता गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं ।

[२] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

उ०—अत्थि णं जहा जहा णं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेराणि ऊसिआइं भवंति
तहा तहा णं तेसि णं देवाणं पण्णायए, तंजहा-अणुते वा तुल्लते वा, जहा जहा णं तेसिं देवाणं तव-

नियम-बंभचेराणि णो ऊसिआइं भवंति तहा तहा णं तेसिं देवाणं एवं णो पण्णायए, तंजहा-अणुते वा तुल्लते वा ।

—जम्बू० सूत्र १६२ पृ० ५२१
—सूर्य० सूत्र ६० पृ० २५६
—चन्द्र० ,, ,,
—जीवा० सूत्र १६३ पृ० ३७५

[३७][१] प्र०—भगवन् ! क्या चन्द्र-सूर्य के नीचे छोटे एवं तुल्य तारे हैं ? (चन्द्र-सूर्य के) समकक्ष छोटे एवं तुल्य तारे है ? तथा ऊपर छोटे एव तुल्य तारे है ?

उ०—हां, गौतम ! ऐसा ही है ।

[२] प्र०—भगवन् ! ऐसा क्यों ?

उ०—उन देवों ने (पूर्वभव मे) जिस-जिस प्रकार के उत्कृष्ट तप, नियम और ब्रह्मचर्य आदि का पालन किया है, उस-उस प्रकार की उन देवों को (ऋद्धि आदि) प्राप्त हुई है, यथा—छोटे अथवा तुल्य (विमान) । जिस-जिस प्रकार उन देवों के तप, नियम, ब्रह्मचर्य आदि उत्कृष्ट नही होते, उस-उस प्रकार उन देवो को (ऋद्धि आदि की) प्राप्ति नही होती है, यथा-छोटे अथवा तुल्य (विमान) ।

ताराओं का परस्पर अन्तर

[३८][१] प्र०—**जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे ताराए अ ताराए अ केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?**

उ०—**गोयमा ! दुविहे—वाघाइए अ निव्वाघाइए अ ।**
निव्वाघाइए जहण्णेणं पंचधणुसयाइं उक्कोसेणं दो गाउयाइं,
वाघाइए जहण्णेणं दोण्णि छावट्ठे जोअणसए,
उक्कोसेणं बारस जोअणसहस्साइं, दोण्णि अ बायाले जोअणसए तारारूवस्स २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

—जबू०, सूत्र १६७ पृ० ५३१
—जीवा० सूत्र २०१ पृ० ३८३
—सूर्य० सूत्र ६६ पृ० २६५
—चन्द्र० ,,

[३८][१] प्र०—भगवन् ! जम्बूद्वीप में एक तारे का दूसरे तारे से कितना अन्तर है ?

उ०—गौतम ! (यह अन्तर) दो प्रकार का है—व्याघाती और निर्व्याघाती । निर्व्याघाती अन्तर जघन्य पांच सौ धनुष एवं उत्कृष्ट दो कोस है । व्याघाती अन्तर जघन्य २६६ योजन एवं उत्कृष्ट १२२४२ योजन है । यही तारागण में परस्पर अन्तर है ।

उपरितन तारक-परिभ्रमण

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ णवजोयणसताइं उड्ढं अबहाए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति ।

—ठा. ६, सूत्र ६७० पृ. ६७२

इस रत्नप्रभा पृथिवी के अति सम एवं रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन ऊपर अबाध रूप से ऊपर के तारे परिभ्रमण करते हैं ।

तारक-ग्रह

छ तारग्गहा पण्णत्ता, तंजहा—
सुक्के, बुहे, बहस्सति, अंगारए, सनिच्चरे, केतू ।

—ठा. ६, सूत्र ४८१ पृ. ३३६

छह तारक-ग्रह अर्थात् तारा के आकार के ग्रह कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—
(१)शुक्र (२)बुध (३)बृहस्पति (४)अंगारक (मंगल) (५)शनैश्चर और (६)केतु ।

शुक्रमहाग्रह की वीथियां

सुक्कस्स णं महागहस्स णव वीहीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—
(१)हयवीही (२)गयवीही (३)णागवीही (४) वसहवीही (५) गोवीही (६) उरगवीही (७) अयवीही (८) मियवीही (९) वेसाणरवीही ।

—ठा. ९, सूत्र ६९९ पृ. ४४४

शुक्र महाग्रह की नौ वीथियाँ (क्षेत्रभाग) हैं, यथा—
१–हयवीथी, २–गजवीथी, ३–नागवीथी, ४–वृषभवीथी, ५–गोवीथी, ६–उरगवीथी, ७–अजवीथी, ८–मृगवीथी, ९–वैश्वानरवीथी ।

शुक्र का उदय-अस्तमन

सुक्के णं महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एगूणवीसं णक्खत्ताइं समं चारं चरित्ता अवरेणं अत्थमणं उवागच्छइ ।

—सम. १९ सूत्र ३

शुक्र महाग्रह पश्चिम में उदित होकर उन्नीस नक्षत्रों के साथ विचरण करके पश्चिम में ही अस्त होता है ।

१—(क) सम. ९ सूत्र ७
(ख) „ ११२ सूत्र ५

ऊर्ध्वलोक

ऊर्ध्वलोक : भेद, संस्थान, मध्य

[१] [१] प्र०—उड्ढलोयखेत्तलोए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! पन्नरसविहे पण्णत्ते तंजहा—

सोहम्मकप्प-उड्ढलोयखेत्तलोए—जाव—अच्चुयउड्ढलोए, गेविज्जविमाण-उड्ढलोए, अनुत्तरविमाण-उड्ढलोए, ईसिपब्भारपुढवि-उड्ढलोगखेत्तलोए ।

[१] [१] प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ?

गौतम ! पन्द्रह प्रकार का है, यथा—सौधर्मकल्प-ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक-यावत्-अच्युत-उर्ध्वलोक, ग्रैवेयक-विमान-ऊर्ध्वलोक, अनुत्तरविमान-ऊर्ध्वलोक, ईषप्राग्भारपृथ्वी-ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक ।

[२] [१] प्र०—उड्ढलोयखेत्तलोए णं भंते किंसठिए पण्णत्ते ?

उ०—उड्ढमुइंगाकारसंठिए पण्णत्ते ।

—विवा. भाग ३ श. ११ उ. १० प्र ५, पृ. २२८-२९

[२] [१] प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोकक्षेत्रलोक किस आकार का है ?

उ०—गौतम ! खड़े मृदग के आकार का है ।

[३] [१] प्र०—कहि णं भंते ! उड्ढलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं, हेट्ठिं बंभलोए कप्पे रिट्ठविमाणे पत्थडे एत्थ णं उड्ढलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ।

—विवा० भाग ३ श० १३ उ० ४ प्र० ८ पृ० ३१४

[३] [१] प्र०—भगवन् ! ऊर्ध्वलोक के आयाम का मध्य कहाँ है ?

उ०—गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों के ऊपर तथा ब्रह्मलोक नामक कल्प के नीचे रिष्ट नामक तीसरे प्रतर में ऊर्ध्वलोक के आयाम का मध्य है ।

वैमानिक देवों के स्थान

[४] [१] प्र०—कहि णं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?

कहि णं भंते ! वेमाणिया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं,

चंदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसय-सहस्साइं, बहुगाओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता,

एत्थ णं सोहम्मी-साण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-च्चुयगेवेज्ज-णुत्तरेसु एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं,

चउरासीइ विमाणावाससयसहस्सा, सत्ताणउइं च सहस्सा, तेवीसं च विमाणा भवन्तीति मक्खायं ।[1]

ते णं विमाणा सव्वरयणामया, अच्छा, सण्हा, लण्हा, घट्ठा, मट्ठा, नीरया, निम्मला, निप्पंका, निक्कंडच्छाया, सप्पभा सस्सिरिया, सउज्जोया, पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा ।

१—समः ८४, सूत्र १७

एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ।
तिसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे ।[1]

प्रज्ञा० स्थान २, पृ० ३००

[४] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त वैमानिक देवों के स्थान कहाँ कहे हैं ? भगवन् ! वैमानिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम और रमणीय भूमिभाग के ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं संबंधी बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजारों योजन, बहुत लाखों योजन, बहुत करोड़ों योजन, बहुत कोड़ाकोड़ी योजन ऊपर दूर जाकर वहाँ सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर (विमानों) में वैमानिक देवों के चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस विमानावास है, ऐसा कहा है ।

वे विमान सर्वरत्नमय, स्वच्छ, कोमल, चिकने, घिसे हुए, साफ किए हुए, रजहीन, निर्मल, निष्पंक, निरावरण दीप्ति वाले, प्रभायुक्त, शोभायुक्त, उद्योतयुक्त, प्रसादजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है ।

वहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त देवों के स्थान हैं । तीनों (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान) की अपेक्षा से वे लोक के असंख्यातवें भाग में है ।

सौधर्म देवों के स्थान

[५] [१] प्र०—कहि णं भंते ! सोहम्मगदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! सोहम्मगदेवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं,
इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ—जाव-उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सोहम्मे णामं कप्पे पन्नत्ते ।
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिन्ने, अद्धचंदसंठाणसंठिए[2], अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे,
असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं,
सव्वरयणामए, अच्छे—जाव—पडिरूवे ।
तत्थ णं सोहम्मगदेवाणं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सा भवन्तीतिमक्खायं ।[3]
ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा ।
तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभाए पंच वडिंसया पन्नत्ता, तंजहा—
असोगवडिंसए, सत्तवण्णवडिंसए, चंपगवडिंसए चूयवडिंसए, मज्झे इत्थ सोहम्मवडिंसए ।[4]
ते णं वडिंसया सव्वरयणामया अच्छा—जाव—पडिरूवा ।[5]
एत्थ णं सोहम्मगदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ।
तीसु वि लोगस्स असंखिज्जइभागे ।

—प्रज्ञा० स्थान २, पृ० ३०२

१—जीवा० सूत्र २०७ पृ० ३८६

२—ठा. ४ उ. ४ सूत्र ३८३ पृ० २७४

३—सम. ३२ सूत्र ४

४—सम. ६५ सूत्र ३

५—सोहम्मवडिंसगे णं विमाणे णं अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते एवं ईसाणवडिंसगे वि ।

—सम. १३ सूत्र ३

[५] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्म देवों के स्थान कहां हैं ? सौधर्मक देव कहां निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से दक्षिण मे, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अति सम एवं रमणीय भूमिभाग से—यावत्—ऊपर दूर जाकर वहां सौधर्म नामक कल्प कहा गया है। वह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा, उत्तर-दक्षिण मे चौड़ा, अर्धचन्द्र के आकार का तथा किरणों की माला और कान्ति के समूह जैसे वर्ण का है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई असख्यात कोड़ाकोड़ी योजन की है। परिधि असख्यात कोडाकोड़ी योजन की है। वह सर्वरत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है। वहां सौधर्म देवों के बत्तीस लाख विमान कहे गए है। वे विमान सर्वरत्नमय—यावत्—प्रतिरूप है। उन विमानों के बीचोबीच पांच अवतसक (विमान) कहे है, यथा—अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चम्पकावतसक, चूतावतसक और उनके मध्य में सौधर्मावतसक है। वे अवतंसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है। वहा पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मक देवों के स्थान है। उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग मे है।

ईशान देवों के स्थान

[६] [१] प्र०—कहि णं भंते ! ईसाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! ईसाणगदेवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं—जाव—उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं ईसाणे णामं कप्पे पन्नत्ते। पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे,
एवं जहा सोहम्मे—जाव—पडिरूवे।
तत्थ ण ईसाणगदेवाणं अट्ठावीसं विमाणावाससयसहस्सा भवन्तीति मक्खायं[1]।
ते णं विमाणा सव्वरयणामया—जाव—पडिरूवा।
तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पंच वडिंसया पण्णत्ता,
तंजहा—अंकवडिंसए, फलिहवडिंसए, रयणवडिंसए, जातरूववडिंसए, मज्झे इत्थ ईसाणवडिंसए[2]।
ते णं वडिंसया सव्वरयणामया—जाव—पडिरूवा।
एत्थ णं ईसाणगदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।
तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे।

—प्रज्ञा० स्थान २, पृ. ३०५-६

[६] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ईशान देवों के स्थान कहां कहे है ? ईशानक देव कहां निवास करते है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत से उत्तर मे, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त सम एवं रमणीय भूमिभाग से ऊपर चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र और ताराओं सबंधी बहुत सैकड़ों योजन, बहुत हजारो योजन—यावत्—ऊपर जाकर वहां ईशान नामक कल्प कहा है। वह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे चौड़ा है। इस प्रकार सौधर्म कल्प के समान—यावत्—प्रतिरूप है। वहां ईशानक देवो के अट्ठाईस लाख विमानावास है, ऐसा कहा गया है। वे विमान सर्वरत्नमय—यावत्—

१—(क) सम. २८ सूत्र ४
(ख) सम. ६० सूत्र ६

२—देखो टिप्पणी ३ पृ. ४२२

प्रतिरूप हैं। उनके मध्य में पांच अवतंसक (विमान) हैं, यथा—अंकावतंसक, स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक, जातरूपावतंसक और मध्य में ईशानावतंसक।

वे अवतंसक सर्वरत्नमय—यावत्—प्रतिरूप हैं। यहां पर्याप्त और अपर्याप्त ईशानक देवों के स्थान है। वे (उपपात आदि) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

सनत्कुमारदेवों के स्थान

[७] [१] प्र०—कहि णं भंते ! सणंकुमारदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! सणंकुमारा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सोहम्मस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं, बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूगाओ जोयणकोडीओ, बहुगाओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं सणंकुमारे णामं कप्पे पन्नत्ते ।
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणविच्छिण्णे, जहा सोहम्मे—जाव—पडिरूवे ।
तत्थ णं सणंकुमाराणं देवाणं बारस विमाणावाससयसहस्सा भवन्तीतिमक्खायं । ते णं विमाणा सव्वरयणामया-जाव-पडिरूवा ।
तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभागे पंच वडिंसगा पन्नत्ता, तंजहा-असोयवडिंसए, सत्तवन्नवडिंसए, चंपगवडिंसए, चूयवडिंसए, मज्झे एत्थ सणंकुमारवडिंसए । ते णं वडिंसया सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।
एत्थ णं सणंकुमारदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता, तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे ।

—प्रज्ञा० २, पृ० ३०८–९

[७] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सनत्कुमार देवों के स्थान कहाँ है ?
भगवन् ! सनत्कुमार देव कहाँ निवास करते है ?

उ०—गौतम ! सौधर्म कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में बहुत योजन, बहुत सौ योजन, बहुत हजार योजन, बहुत लाख योजन, बहुत करोड़ योजन, बहुत कोड़ाकोड़ी योजन ऊपर दूर जाने पर सनत्कुमार नामक कल्प है।
वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है जैसे सौधर्म कल्प, यावत्-प्रतिरूप है।
वहाँ सनत्कुमार देवों के बारह लाख विमान हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान सर्वरत्नमय-यावत्-प्रतिरूप हैं।
उन विमानों के बीचोंबीच पांच अवतंसक हैं, यथा-अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चम्पकावतंसक, चूतावतंसक और इनके मध्य में सनत्कुमारावतंसक। ये अवतंसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप है।
यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त सनत्कुमार देवों के स्थान हैं। तीनों (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान) की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

महेन्द्र देवों के स्थान

[८] [१] प्र०—कहि णं भंते ! माहिंददेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! माहिंदगदेवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! ईसाणस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं, बहूइं जोयणाइं-जाव-बहुयाओ जोयण-कोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं माहिंदे नामं कप्पे पन्नत्ते, पाईण-पडीणायए-जाव-एवं जहेव सणंकुमारे ।

नवरं-अट्ठ विमाणावाससयसहस्सा ।[1]
वडिंसया जहा ईसाणे ।
नवरं-मज्झे इत्थ माहिंदवडेंसए ।

—प्रज्ञा० स्थान २, पृ० ३१०

[८] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त माहेन्द्र देवों के स्थान कहाँ हैं ? माहेन्द्रक देव कहाँ रहते हैं ?

उ०—गौतम ! ईशान कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में बहुत योजन-यावत्-बहुत कोटाकोटी योजन दूर जाकर वहाँ माहेन्द्र नामक कल्प है। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा-यावत्-सनत्कुमार जैसा है। विशेष यह कि इसमें आठ लाख विमान है। अवतंसक ईशान के समान हैं किन्तु यहां मध्य में माहेन्द्रावतंसक है ।

ब्रह्मलोक देवों के स्थान

[९] [१] **प्र०—कहि णं भंते ! बंभलोगदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?**
कहि णं भंते ! बंभलोगदेवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं-जाव-उप्पइत्ता एत्थ णं बंभलोए नामं कप्पे पण्णत्ते,
पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिण्णे, पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए, अच्चिमालीभासरासिप्पभे,
अवसेसं जहा सणंकुमाराणं, नवरं-चत्तारि विमाणावाससयसहस्सा,[2]
वडिंसा जहा सोहम्मवडिंसया, नवरं-मज्झे इत्थ बंभलोयवडिंसए ।
एत्थ णं बंभलोगदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

—प्रज्ञा० स्थान २, पृ० ३१०–११

[९] [१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहाँ हैं ?
भगवन् ! ब्रह्मलोक देव कहाँ निवास करते है ?

उ०—गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में बहुत योजन-यावत्-जाने पर यहाँ ब्रह्मलोक नामक कल्प है। वह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार का तथा किरणों की माला के समान कान्तिसमूह से युक्त है। शेष सब सनत्कुमार कल्प के समान जानना चाहिए, विशेषता यह है कि यहाँ चार लाख विमानावास है। अवतसक सौधर्मकल्प के अवतंसकों के समान हैं किन्तु यहाँ मध्य में ब्रह्मलोकावतंसक है। यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहे हैं।

तमस्काय

[१०][१] **प्र०—किमियं भंते ! तमुक्काएत्ति पव्वुच्चति ?**
किं पुढवी तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति, आउ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति ?

उ०—गोयमा ! नो पुढवी तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति, आउ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चइ ।

[२] **प्र०—से केणट्ठेणं ?**

उ०—गोयमा ! पुढविकाए णं अत्थेगइए सुभे देसं पकासेइ, अत्थेगइए देसं नो पकासेइ—से तेणट्ठेणं ।

१—सम. १३१ सूत्र १
२—सम. ६४ सूत्र ५

[३] प्र०—तमुक्काए णं भंते ! कहिं समुट्ठिए, कहिं संनिविट्ठिए ?

उ०—गोयमा ! जंबूदीवस्स दीवस्स बहिया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता उवरिल्लाओ जलंताओ एगपएसियाए सेढीए, एत्थ णं तमुक्काए समुट्ठिए

सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता तओ पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे २ सोहम्मी-साण-सणंकुमार-माहिंदे चत्तारि वि कप्पे आवरित्ता[1] णं उड्ढं पि य णं बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणपत्थडं संपत्ते, एत्थ णं तमुक्काए सन्निविट्ठिए ।

[१०][१] प्र०—भगवन् ! यह तमस्काय क्या कहलाता है ? क्या पृथिवी तमस्काय कहलाती है ? क्या अप् (जल) तमस्काय कहलाता है ?

उ०—गौतम ! पृथिवी तमस्काय नही कहलाती, अप् तमस्काय कहलाता है ।

[२] प्र०—(भगवन् !) किस कारण से ?

उ०—कोई पृथ्वीकाय ऐसा शुभ होता है जो देश-भाग को प्रकाशित करता है, कोई देश को प्रकाशित नहीं करता; इस कारण से ।

[३] प्र०—भगवन् ! तमस्काय कहां से उठा है और कहां उसका अंत होता है ?

उ०—गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के बाहर, तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लांघने पर, अरुणवरद्वीप की बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणोदय समुद्र में बयालीस हजार योजन अवगाहन करके, ऊपरी जलान्त से एक प्रदेश की श्रेणी से यहां तमस्काय समुत्थित होता है—प्रारम्भ होता है । फिर १७२१ योजन ऊपर उठकर तत्पश्चात् विस्तार पाता-पाता सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र, इन चारों कल्पों को आवृत करके ऊँचे ब्रह्मलोक कल्प में रिष्ट विमान के पाथड़े को प्राप्त हुआ है । यहां तमस्काय का अन्त होता है ।

तमस्काय का संस्थान विस्तार आदि

[११][१] प्र०—तमुक्काए णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! अहे मल्लगमूलसंठिए, उप्पिं कुक्कुडपंजरसंठिए पण्णत्ते ।

२] प्र०—तमुक्काए णं भंते ! केवतियं विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पन्नत्ते ?

उ०—गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तंजहा—संखेज्जवित्थडे य, असंखेज्जवित्थडे य,

तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पन्नत्ते,

तत्थ णं जे से असंखेज्जवित्थडे से णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पन्नत्ते ।

[३] प्र०—तमुक्काए णं भंते ! केमहालए पन्नत्ते ?

उ०—गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए,—जाव—परिक्खेवेणं पन्नत्ते,

देवे णं महिड्ढिए—जाव—महाणुभावे 'इणमेव इणमेव' त्ति कट्टु केवलकप्पं जंबूदीवं दीवं तिहिं

१—स्था. ४ उ. २ सूत्र २९१ पृ. २०५

अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वं आगच्छेज्जा,
से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए—जाव—देवगईए वीईवयमाणे २—जाव—एकाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा, उक्कोसेणं छम्मासे वीईवएज्जा,
अत्थेगतियं तमुक्कायं वीईवइज्जा, अत्थेगतियं नो तमुक्कायं वीतिवएज्जा,
एमहालए णं गोयमा ! तमुक्काए पन्नत्ते [1] ।

[११][१] प्र०—भगवन् ! तमस्काय किस आकार का है ?

उ०—गौतम ! नीचे मल्लकमूल—सिकोरे के नीचे के भाग के आकार का और ऊपर मुर्गा के पींजरे के आकार का है ।

[२] प्र०—भगवन् ! तमस्काय का विष्कंभ—विस्तार और परिक्षेप कितना है ?

उ०—गौतम ! (तमस्काय) दो प्रकार का है, यथा—संख्येयविस्तृत और असंख्येयविस्तृत।
इसमे जो संख्येयविस्तृत है उसका विष्कंभ संख्यात हजार योजन का है और परिक्षेप असंख्यात हजार योजन का है । इसमे जो असंख्येयविस्तृत है उसका विष्कंभ असंख्यात योजन का और परिक्षेप असंख्यात योजन का है ।

[३] प्र० —भगवन् ! तमस्काय कितना विशाल है ?

उ०—गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सर्व द्वीप-समुद्रों के बीच में है—यावत्—परिधि वाला कहा गया है । कोई महर्द्धिक—यावत्—महानुभाव देव 'ये चला २' ऐसा कह कर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप नामक द्वीप के तीन चुटकियों मे सत्ताईस बार चक्कर काट कर शीघ्र आ जाय, ऐसा देव उस उत्कृष्ट, त्वरित—यावत्—देवगति से चलता-चलता—यावत्—एक दिन, दो दिन या तीन दिन, उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो किसी तमस्काय तक पहुंचे, किसी तमस्काय तक न पहुंचे। गौतम ! तमस्काय इतना विशाल है ।

तमस्काय संबंधी शेष वक्तव्यता

]१२] [१] **प्र०—अत्थि ण भंते ! तमुकाए गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?**
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[२] **प्र०—अत्थि णं भंते ! तमुकाए गामा इ वा-जाव-सन्निवेसा इ वा ?**
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[३] **प्र०—अत्थि णं भंते ! तमुकाए उराला बलाहया संसेयंति, सम्मुच्छंति, वासं वासंति ?**
उ०—हंता, अत्थि ।

[४] **प्र०—तं भंते ! किं देवो पकरेति, असुरो पकरेति, नागो पकरेति ?**
उ०—गोयमा ! देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, णागो वि पकरेति ।

[५] **प्र०—अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बादरे थणियसद्दे ? बादरे विज्जुए ?**
उ०—हंता, अत्थि ।

[६] **प्र० – तं भंते ! किं देवो पकरेति० ?**
उ०—तिन्नि वि पकरेंति ।

१—भग. भा. ३ श. १४ उ. २ पृ. ३४४

[७] प्र०—अत्थि णं भंते ! तमुकाए बादरे पुढविकाए, बादरे अगणिकाए ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं ।

[८] प्र०—अत्थि णं भंते ! तमुकाए चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे, पलियस्स ओ पुण (अत्थि) ।

[९] प्र०—अत्थि णं भंते ! तमुकाए चंदाभा ति वा, सूराभा ति वा ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे, कादूसणिया पुण सा ।

[१०] प्र०—तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वन्नएणं पन्नत्ते ?
उ०—गोयमा ! काले कालावभासे, गंभीर-हरिसलोमजणणे, भीमे, उत्तासणए, परमकिण्हे वण्णे पन्नत्ते । देवे णं अत्थेगतिए जे णं तप्पढमयाए पासित्ता णं खुभाएज्जा, अहे णं अभिसमागच्छेज्जा, तओ पच्छा सीहं-सीहं, तुरियं-तुरियं खिप्पामेव वीतीवएज्जा ।

[११] प्र०—तमुक्कायस्स णं भंते ! कति नामधेज्जा पन्नत्ता ?
उ०—गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पन्नत्ता, तंजहा—
तमे ति वा, तमुकाए ति वा, अंधकारे इ वा, महांधकारे इ वा, लोगंधकारे इ वा, लोगतमिसे इ वा, देवंधकारे इ वा, देवतमिसे इ वा, देवरण्णे इ वा, देववूहे इ वा, देवफलिहे इ वा, देवपडिक्खोभे इ वा, अरुणोदए इ वा समुद्दे[1] ।

[१२] प्र०—तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे, आउपरिणामे, जीवपरिणामे, पोग्गलपरिणामे ?
उ०—गोयमा ! नो पुढविपरिणामे, आउपरिणामे वि, जीवपरिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि ।

[१३] प्र०—तमुक्काए णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढवीकाइयत्ताए-जाव-तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?
उ०—हंता, गोयमा ! असति, अदुवा अणंतखुत्तो,
णो चेव णं बादरपुढविकाइयत्ताए बादरअगणिकाइयत्ताए वा ।
—भग. भा. २ श. ६ उ. ५ पृ. ३०१–३०६

[१२] [१] प्र०—भगवन् ! तमस्काय में गृह या गृहापण हैं ?
उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् नहीं हैं ।

[२] प्र०—भगवन् ! तमस्काय मे ग्राम–यावत्–सन्निवेश हैं ।
उ०—यह अर्थ समर्थ नही ।

[३] प्र०—भगवन् ! तमस्काय में उदार मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, संमूछित होते हैं, वर्षा करते हैं ?
उ०—हाँ ऐसा है ।

[४] प्र०—भगवन् ! उसे क्या देव करता है, असुर करता है या नाग करता है ?
उ०—गौतम ! देव भी करता है, असुर भी करता है, नाग भी करता है ।

१—तमुक्कायस्स णं चत्तारि नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा—(१) तमिति वा (२) तमुक्काएति वा (३) अंधकारेति वा (४) महंधकारेति वा ।
तमुक्कायस्स णं चत्तारि नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा–(५-१) लोगंधकारेति वा (६-२) लोकतमसेति वा (७-३) देवंधगारेति वा (८-४) देवतमसेति वा ।
तमुक्कायस्स णं चत्तारि नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा–(९-१) वातफलिहेति वा (१०-२) वातफलिहखोभेति वा (११-३) देवरन्नेति वा (१२-४) देववूढेति वा । —स्था. ४ उ. २ सूत्र २९१ पृ. २०५

[५] प्र०—भगवन् ! तमस्काय में बादर स्तनित शब्द (मेघध्वनि) है ? बादर विद्युत् है ?

उ०—हाँ, है ।

[६] प्र०—भगवन् ! उसे क्या देव करता है ?

उ०—तीनों (देव, असुर, नाग) करते है ।

[७] प्र०—भगवन् ! तमस्काय में बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय हैं ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नही है, विग्रहगतिसमापन्न के सिवाय अर्थात् विग्रहगतिप्राप्त जीव वहाँ हो सकता है ।

[८] प्र०—भगवन् ! तमस्काय मे चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र एवं तारारूप है ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नही, किन्तु चन्द्र आदि उसके पार्श्व मे हैं ।

[९] प्र०—भगवन् ! तमस्काय मे चन्द्रमा की आभा और सूर्य की आभा है ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योकि (वह प्रभा तमस्काय मे है) किन्तु आत्मा को दूषित करने वाली है ।

[१०] प्र०—भगवन् ! तमस्काय का वर्ण कैसा है ?

उ०—गौतम ! काला, काली कान्ति वाला, गंभीर, रोंगटे खडा करने वाला, भयानक, त्रासजनक और अत्यन्त कृष्ण है । कोई-कोई देव भी उसे देखकर पहले-पहल क्षुब्ध हो जाता है । कदाचित् कोई देव तमस्काय मे प्रवेश करता है तो उसके पश्चात् शरीर की त्वरा और मन की त्वरा से जल्दी ही उसे पार कर जाता है ।

[११] प्र०—भगवन् ! तमस्काय के कितने नाम हैं ?

उ०—गौतम ! तेरह नाम कहे गए हैं, यथा–(१) तम (२) तमस्काय (३) अन्धकार (४) महान्धकार (५) लोकान्धकार (६) लोकतमिस्र (७) देवान्धकार (८) देवतमिस्र (९) देवारण्य (१०) देवव्यूह (११)देवपरिघ (१२) देवप्रतिक्षोभ और (१३) अरुणोद समुद्र ।

[१२] प्र०—भगवन् ! तमस्काय पृथिवी का परिणमन है, जल का परिणमन है, जीव का परिणमन है या पुद्गल का परिणमन है ?

उ०—गौतम ! पृथिवी का परिणमन नहीं है, जल का परिणमन है, जीव का भी परिणमन है, पुद्गल का भी परिणमन है ।

[१३] प्र०—भगवन् ! तमस्काय में सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्व, पृथ्वीकाय के रूप मे–यावत्–त्रसकाय के रूप में पहले उत्पन्न हुए है ?

उ०—हाँ गौतम ! अनेक वार अथवा अनन्त वार उत्पन्न हुए है, किन्तु बादर पृथ्वीकाय अथवा बादर अग्निकाय के रूप मे नही ।

[१३][१] प्र०—कइ णं भंते ! कण्हराईओ पन्नत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठ कण्हराईओ पन्नत्ताओ ।

[२] प्र०—कहि णं भंते ! एयाओ अट्ठ कण्हराईओ पन्नत्ताओ ?

उ०—गोयमा ! उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं,
हिट्ठिं बंभलोए कप्पे (अ) रिट्ठे विमाणपत्थडे,

एत्थ णं अक्खाडगसम चउरंस-संठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हराईओ पन्नत्ताओ, तंजहा-
पुरत्थिमेणं दो, पच्चत्थिमेणं दो, दाहिणेणं दो, उत्तरेणं दो,
पुरत्थिमऽब्भंतरा कण्हराई दाहिण-बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा,
दाहिणऽब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिम-बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा,
पच्चत्थिमऽब्भंतरा कण्हराई उत्तर-बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा,
उत्तरमब्भंतरा कण्हराई पुरत्थिम-बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा,
दो पुरत्थिम-पच्चत्थियाओ बाहिराओ कण्हराईओ छलंसाओ,
दो उत्तर-दाहिणबाहिराओ कण्हराईओ तंसाओ,
दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ अब्भितराओ कण्हराइओ चउरंसाओ,
दो उत्तर-दाहिणाओ अब्भितराओ कण्हराइओ चउरंसाओ ।
पुव्वाऽवरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा वज्झा ।
अब्भितर चउरंस, सव्वा वि य कण्हरातीओ ।।

[३] प्र०—कण्हराईओ णं भंते ! केवतियं आयामेणं, केवइयं विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पन्नत्ता ?
उ०—गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामेणं,
असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,
असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पन्नत्ताओ ।

[४] प्र०—कण्हराईओ णं भंते ! केमहालियाओ पन्नत्ताओ ?
उ०—गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे-जाव-अद्धमासं वीईवएज्जा, अत्थेगइयं कण्हराइं वीईवएज्जा,
अत्थेगइयं कण्हराइं णो वीईवएज्जा,
एमहालियाओ णं गोयमा ! कण्हराईओ पन्नत्ताओ ।

[५] प्र०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?
उ०—णो इणट्ठे समट्ठे ।

[६] प्र०—अत्थि णं भंते ! कण्हराइसु गामा इ वा ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[७] प्र०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईणं उराला बलाहया संसेयंति, सम्मुच्छंति, वासं वासंति ?
उ०—हंता, अत्थि ।

[८] प्र०—तं भंते ! किं देवो पकरेति, असुरो पकरेति, नागो पकरेति ?
उ०—गोयमा ! देवो पकरेति, नो असुरो, नो नागो पकरेइ ।

[९] प्र०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु बादरे थणियसद्दे ?
उ०—जहा उराला तहा ।

[१०] प्र०—अत्थि णं भंते ! कण्हराईसु बादरे आउकाए, बादरे अगणिकाए, बादरे वणस्सइकाए ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नगं ।

[११] प्र०—अत्थि णं चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[१२] प्र०—अत्थि णं कण्हराईणं चंदाभा ति वा, सूराभा ति वा ?
उ०—णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[१३] प्र०—कण्हराईओ णं भंते ! केरिसियाओ वन्नेणं पन्नत्ताओ ?

उ०—कालाओ–जाव–खिप्पामेव वीतीवएज्जा ।

[१४] प्र०—कण्हराईओ णं भंते ! कतिनामधेज्जा पन्नत्ता ?

उ०—गोयमा ! अट्ठनामधेज्जा पन्नत्ता, तंजहा–कण्हराई वा, मेहराई वा, मघा इ वा, माघवई वा, वायफलिहा इ वा, वायपलिक्खोभा इ वा, देवफलिहा इ वा, देवपलिक्खोभा इ वा ।

[१५] प्र०—कण्हराईओ णं भंते ! किं पुढविपरिणामाओ, आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ, पोग्गल-परिणामाओ ?

उ०—गोयमा ! पुढविपरिणामाओ, नो आउपरिणामाओ वि, जीवपरिणामाओ वि, पुग्गलपरिणामाओ वि ।

[१६] प्र०—कण्हराईसु णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता उववण्णपुव्वा ?

उ०—हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, नो चेव णं बादरआउकाइयत्ताए, बादरअगणिकाइयत्ताए वा, बायरवणस्सईकाइयत्ताए वा [1] ।

—भग. भा. २ श. ६ उ. ५ पृ. ३०७–३१०

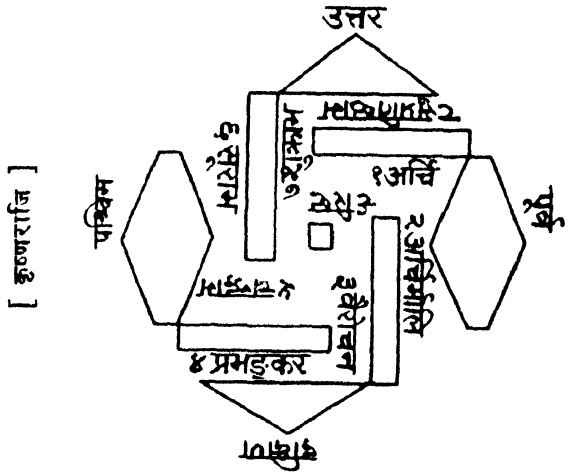

[१३][१] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी है ?

उ०—गौतम ! कृष्णराजियाँ आठ कही गई है ।

[२] प्र०—भगवन् ! ये आठ कृष्णराजियाँ कहाँ है ?

उ०—गौतम ! ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पो मे, नीचे ब्रह्मलोक कल्प मे, (अ) रिष्ट विमान के पाथड़े मे, अखाडे के समान समचौरस आकार की आठ कृष्णराजियाँ है, वे इस प्रकार है—

पूर्व में दो, पश्चिम में दो, दक्षिण मे दो, उत्तर मे दो । पूर्व की भीतरी कृष्णराजि दक्षिण की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है, दक्षिण की भीतरी कृष्णराजि पश्चिम की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है, पश्चिम की भीतरी कृष्णराजि उत्तर की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है । उत्तर की भीतरी कृष्णराजि पूर्व की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है ।

पूर्व-पश्चिम की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षट्कोण हैं, उत्तर-दक्षिण की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्रिकोण हैं ।

पूर्व-पश्चिम की दो भीतरी कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं, उत्तर-दक्षिण की दो भीतरी कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं । (गाथार्थ–)पूर्व और पश्चिम की कृष्णराजि छह कोने वाली है और दक्षिण तथा उत्तर की बाह्य कृष्णराजि त्रिकोण है । शेष सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चौकोर है ।

---

१. ठाणा. ८ सूत्र ६२३ पृ. ४०९

[३] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी लम्बी, कितनी चौड़ी और कितनी परिधि वाली हैं ?

उ०—गौतम ! असंख्यात हजार योजन लम्बी, असंख्यात हजार योजन चौड़ी और असंख्यात हजार योजन परिधि वाली हैं ।

[४] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी विशाल हैं ?

उ०—गौतम ! इस जम्बूद्वीप के तीन चुटकियों में इक्कीस वार चक्कर लगा लेने वाला कोई देव अर्द्ध मास तक चलता जाय तो किसी कृष्णराजि को पार करे, किसी कृष्णराजि को पार न कर सके । गौतम ! ये कृष्णराजियाँ इतनी विशाल हैं ।

[५] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में गृह अथवा गृहापण है ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं ।

[६] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में ग्राम हैं ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं ।

[७] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में उदार मेघ संस्वेदित होते हैं, संमूर्छित होते है, वर्षा वरसाते हैं ?

उ०—हाँ, हैं ।

[८] प्र०—भगवन् ! वह (वर्षा आदि) क्या देव करता है, असुर करता है या नाग करता है ?

उ०—गौतम ! देव करता है, असुर नही करता, नाग नही करता ।

[९] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में बादर स्तनितशब्द (मेघगर्जना) है ?

उ०—उदार मेघों के समान कहना चाहिए ।

[१०] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में बादर अप्काय, बादर अग्निकाय, और बादर वनस्पतिकाय है ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं, सिवाय विग्रहगतिसमापन्न के ।

[११] प्र०—क्या चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

[१२] प्र०—कृष्णराजियों में चन्द्र की आभा या सूर्य की आभा है ?

उ०—यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

[१३] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियाँ कैसे वर्ण की कही गई हैं ?

उ०—काली—यावत्—(देव देख कर घबरा जाते हैं, कोई उनमें प्रवेश करे तो) शीघ्र ही पार करता है ।

[१४] उ०—भगवन् ! कृष्णराजियों के कितने नाम हैं ?

उ०—गौतम ! आठ नाम कहे हैं, यथा—

(१) कृष्णराजि (२) मेघराजि (३) मघा (४) माघवती
(५) वातपरिघा (६) वातपरिक्षोभा (७) देवपरिघा (८) देवपरिक्षोभा ।

[१५] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियाँ क्या पृथ्वी का परिणमन हैं, अप् का परिणमन हैं, जीव का परिणमन हैं या पुद्गल का परिणमन हैं ?

उ०—गौतम ! पृथ्वी का परिणमन हैं, अप् का परिणमन नहीं, जीव का भी परिणमन हैं, पुद्गल का भी परिणमन हैं ।

[१६] प्र०—भगवन् ! कृष्णराजियों में सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पहले उत्पन्न हो चुके हैं ?

उ०—हाँ, गौतम ! अनेकों बार अथवा अनन्त [illegible] बादर अप्काय के रूप में, बादर अग्निकाय के रूप में और बादर वनस्पति काय के रूप मे उत्पन्न नहीं हुए ।

लान्तक देवों के स्थान

[१४][१] प्र०—कहि णं भंते ! लंतगदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! लंतगदेवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! बंभलोगस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसं बहूइं जोयणाइं-जाव:बहुगाओ जोयणकोडा-कोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं लंतए नामं कप्पे पन्नत्ते ।
पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए ।
नवरं-पण्णासं विमाणावाससहस्सा भवन्तीतिमक्खायं[1] ।
वडिंसगा जहा ईसाणवडिंसगा, नवरं मज्झे इत्थ लंतगवडिंसए ।

[१४][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त लान्तक देवों के स्थान कहाँ है ?
भगवन् ! लान्तक देव कहाँ निवास करते है ?

उ०—गौतम ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे बहुत योजन-यावत्-बहुत कोडाकोडी योजन ऊपर दूर जाकर यहाँ लान्तक नामक कल्प है । वह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा ब्रह्मलोक के समान है । विशेष यह है कि वहाँ पचास हजार विमानावास है, ऐसा कहा है । अवतंसक (विमान) ईशान कल्प के समान है किन्तु यहाँ मध्य में लान्तकावतंसक है ।

महाशुक्र देवों के स्थान

[१५][१] प्र०—कहि ण भंते ! महासुक्काणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि ण भते ! महासुक्का देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! लंतगस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं-जाव-उप्पइत्ता, एत्थ णं महासुक्के नामं कप्पे पन्नत्ते, पाईण-पडीणायए, उदीण-दाहिणवित्थिण्णे, जहा बभलोए ।
नवरं-चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा भवन्तीति मक्खायं[2] ।
वडिंसगा जहा सोहम्मवडिंसए ।

[१५][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त महाशुक्र देवों के स्थान कहाँ हैं ?
भगवन् ! महाशुक्र देव कहाँ निवास करते है ?

उ०—गौतम ! लान्तक कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में—यावत्—ऊपर जाकर यहाँ महाशुक्र नामक कल्प है । वह पूर्व-पश्चिम में लंबा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है, जैसे ब्रह्मलोक कल्प ।
विशेष—यहाँ चालीस हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है । अवतंसक सौधर्मावतंसकों के समान हैं ।

सहस्रार देवों के स्थान

[१६][१] प्र०—कहि णं भंते ! सहस्सारदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! सहस्सारदेवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! महासुक्कस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसं-जाव- उप्पइत्ता, एत्थ णं सहस्सारे नामं कप्पे पण्णत्ते ।

---

१. सम. ५० सूत्र ५
२. सम. ४० सूत्र ८

पाईण-पडीणायए, जहा बंभलोए ।
नवरं-छव्विमाणावाससहस्सा भवन्तीतिमक्खायं[1] ।
देवा तहेव-जाव-वडिंसगा जहा ईसाणस्स वडिंसगा ।
नवरं-मज्झे इत्थ सहस्सारवडिंसए ।

[१६][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सहस्रार देवों के स्थान कहाँ है ?
भगवन् ! सहस्रार देव कहाँ निवास करते है ?

उ०—गौतम ! महाशुक्र कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे-यावत्-ऊपर जाकर यहाँ सहस्रार नामक कल्प है । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा ब्रह्मलोक के समान है ।
विशेष यह है कि इसमें छह हजार विमानावास है, ऐसा कहा गया है । देव उसी प्रकार हैं-यावत्-अवतंसक ईशानकल्प के अवतसकों के समान है, किन्तु यहाँ मध्य में सहस्रारावतंसक है ।

आनत-प्राणत देवों के स्थान

[१७][१] प्र०—कहि णं भंते ! आणय-पाणयाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! आणय-पाणया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सहस्सारस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं-जाव-उप्पइत्ता, एत्थ णं आणय-पाणयनामा दुवे कप्पा पन्नत्ता ।
पाईण- पडीणायया, उदीण-दाहिणवित्थिण्णा, अद्धचंदसंठाणसंठिया, अच्चिमालीभासरासिप्पभा
सेसं जहा सणंकुमारे-जाव-पडिरूवा ।
तत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं चत्तारि विमाणावाससया भवन्तीति मक्खायं[2] —जाव पडिरूवा ।
वडिंसगा जहा सोहम्मे कप्पे, नवर-मज्झे इत्थ पाणयवडिंसए ।
ते णं वडिंसगा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।
एत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे ।

[२७][२] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त आनत-प्राणत देवों के स्थान कहाँ है ?
भगवन् ! आनत-प्राणत देव कहाँ निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! सहस्रार कल्प के ऊपर, समान दिशा और समान विदिशा में—यावत्—ऊपर जाकर यहाँ आनत और प्राणत नामक दो कल्प है । वे पूर्व-पश्चिम में लम्बे, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्द्ध-चन्द्राकार, किरणों की माला और कान्तिसमूह जैसी प्रभा वाले है । शेष सनत्कुमार कल्प के समान-यावत्-प्रतिरूप है । वहाँ आनत और प्राणत देवों के चार सौ विमान है, ऐसा कहा है-यावत्-प्रतिरूप है । अवतंसक सौधर्म के समान है, किंतु यहाँ प्राणतावतंसक है । वे अवतंसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ-यावत्-प्रतिरूप है । यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त आनत-प्राणत देवों के स्थान है । उपपात आदि तीनो से लोक के असंख्यातवें भाग मे है ।

आरण-अच्युत देवों के स्थान

[१८][१] प्र०—कहि णं भंते ! आरणच्चुयाणं देवाणं पज्जात्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?
कहि णं भंते ! आरणच्चुया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! आणयपाणयाणं कप्पाणं उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं एत्थ णं आरणच्चुया नामं दुवे कप्पा पन्नत्ता ।
पाईण—पडीणायया, उदीण—दाहिणवित्थिण्णा, अद्धचंदसंठाण-संठिया, अच्चिमालीभासरासिवण्णाभा

---

१. सम. ११९ सूत्र १
२ सम० १०६ सूत्र ४

असंखिज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं, असंखिज्जाओ जोयण-कोडाकोडीओ परिक्खेवेणं,

सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरिया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

एत्थ णं आरणच्चुयाणं देवाणं तिन्नि विमाणावाससया भवंतीतिमक्खायं ।[1]

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरिया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

तेसि णं विमाणाणं कप्पाणं बहुमज्झदेसभाए पंच वडिंसया पन्नत्ता, तंजहा—

अंकवडिंसए, फलिहवडिंसए, रयणवडिंसए, जायरूववडिंसए, मज्झे इत्थ अच्चुयवडिंसए ।

ते णं वडिंसया सव्वरयणामया—जाव—पडिरूवा ।

एत्थ णं आरणच्चुयाणं देवाण पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे ।

बत्तीस अट्ठवीसा, बारस अट्ठ चउरो (य) सयसहस्सा ।

पन्ना चत्तालीसा, छच्च सहस्सा सहस्सारे ।।१।।

आणय पाणयकप्पे, चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिन्नि ।

सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु ।।२।।

[१८][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त आरण और अच्युत देवों के स्थान कहाँ है ?

भगवन् ! आरण और अच्युत देव कहां निवास करते है ?

उ०—गौतम ! आनत और प्राणत कल्पो के ऊपर समान दिशा एवं विदिशा में आरण और अच्युत नामक दो कल्प है । वे पूर्व-पश्चिम में लम्बे, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्ध चन्द्राकार और किरणों की माला एवं कान्तिसमूह जैसी प्रभा वाले हैं । उनकी लम्बाई-चौड़ाई असंख्यात कोड़ा-कोडी योजन की और परिधि भी असंख्यात कोडाकोडी योजन की है । वे सर्वरत्नमय, स्वच्छ, कोमल, सुकुमार, घिसे हुए, मृष्ट, रजरहित, निष्पंक, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीयुक्त, उद्योतयुक्त, प्रसादजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं । यहाँ आरण और अच्युत देवों के तीन सौ विमानावास है, ऐसा कहा गया है ।

वे विमानावास सर्वरत्नमय, स्वच्छ, कोमल, सुकुमार, घटारे, मठारे, रजोहीन, निर्मल, निष्पंक, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, शोभायुक्त, उद्योतयुक्त, प्रसादजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है । इन कल्पों के विमानों के मध्य में पाच अवतंसक विमान है, यथा-अंकावतंसक स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक, जातरूपावतंसक और मध्यभाग में अच्युतावतंसक है ।

ये अवतंसक सर्वरत्नमय-यावत्-प्रतिरूप है । यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त आरण एवं अच्युत देवों के स्थान हैं । वे उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में हैं । विमानों की संख्या का निरूपण करने वाली गाथाओं का अर्थ इस प्रकार है—

बत्तीस लाख, अट्ठाईस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चार लाख, पचास हजार, चालीस हजार और सहस्रारकल्प में छह हजार (विमान है) ।।१।।

आनत और प्राणत कल्प में चार सौ तथा आरण और अच्युत में तीन सौ, इस प्रकार इन कल्पों में सात सौ विमान हैं ।।२।।

१—सम. १०१, सूत्र २-३

अधस्तन ग्रैवेयक देवों के स्थान

[१९][१] प्र०—कहि णं भंते ! हिट्ठिमगेविज्जगाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?
कहि णं भंते ! हिट्ठिमगेविज्जगा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! आरण-च्चुयाणं कप्पाणं उप्पिं-जाव-उड्ढं दूरं उप्पइत्ता, एत्थ णं हिट्ठिमगेविज्जगाणं देवाणं तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता ।
पाईण-पडीणायता, उदीण-दाहिणविथिन्ना, पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिया, अच्चिमालीभासरासि-वण्णाभा, सेसं जहा बभलोगे-जाव-पडिरूवा ।
तत्थ णं हेट्ठिमगेविज्जगाणं देवाणं एक्कारसुत्तरे विमाणावाससए भवन्तीति मक्खायं [1]
ते ण विमाणा सव्वरयणामया-जाव-पडिरूवा । एत्थ णं हेट्ठिमगेविज्जगाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे ।

[१९][१] प्र०—भगवन् ! अधस्तन-निचले पर्याप्त और अपर्याप्त ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ है ?
भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! आरण अच्युत कल्पों के ऊपर—यावत्—ऊपर दूर जाकर यहाँ अधस्तन ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक विमानों के प्रस्तट (पाथड़े) हैं । वे पूर्व-पश्चिम में लम्बे, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, परिपूर्ण चन्द्र के आकार वाले, किरणों की माला एवं कान्तिसमूह जैसे वर्ण वाले हैं, शेष सब ब्रह्मलोक के समान-यावत्-प्रतिरूप हैं ।
वहाँ निचले ग्रैवेयक देवों के एक सौ ग्यारह विमानावास है, ऐसा कहा है । वे विमान सर्वरत्नमय यावत्-प्रतिरूप है । यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त अधस्तन ग्रैवेयक देवों के स्थान हैं । वे उपपात आदि तीनों अपेक्षाओं से लोक के असख्यातवें भाग मे है ।

मध्यम ग्रैवेयक देवों के स्थान

[२०][१] प्र०—कहि णं भंते ! मज्झिमगाणं गेविज्जगाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! मज्झिमगेविज्जगा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! हेट्ठिमगेविज्जगाणं उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं-जाव-उप्पइत्ता, एत्थ ण मज्झिमगेविज्ज-गदेवाणं तओ गेविज्जविमाणपत्थडा पन्नत्ता ।
पाईण-पडीणायया जहा हेट्ठिमगेविज्जगाण ।
नवरं-सत्तुत्तरे विमाणावाससए हवतीति मक्खायं ।
ते णं विमाणा-जाव-पडिरूवा ।
एत्थ णं मज्झिमगेविज्जगाणं-जाव—तिसुवि लोगस्स असंखेज्जइभागे ।

[२०][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ हैं ?
भगवन् ! मध्यम ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! अधस्तन ग्रैवेयको के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में-यावत्-जाकर मध्यम ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट (पाथड़े) कहे है । वे पूर्व-पश्चिम में लम्बे है आदि अधस्तन ग्रैवेयकों के समान कह लेना चाहिए । किंतु यहाँ एक सौ सात विमान हैं ऐसा कहा गया है । वे विमान-यावत् प्रतिरूप हैं । यहाँ मध्यम ग्रैवेयक देवो के (स्थान है)—यावत्—तीनों अपेक्षाओ से लोक के असंख्यातवें भाग मे हैं ।

१—सम. ११ सूत्र ६

उपरितन ग्रैवेयक देवों के स्थान

[२१][१] प्र०—कहि णं भंते ! उवरिमगेविज्जगाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?
कहि णं भंते ! उवरिमगेविज्जगा देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! मज्झिमगेविज्जगाणं उप्पि—जाव—उप्पइत्ता,
एत्थ णं उवरिमगेविज्जगाणं तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पन्नत्ता ।
पाईण-पडीणायया, सेसं जहा हेट्ठिमगेविज्जगाणं ।
नवरं-एगे विमाणावाससए भवतीति मक्खायं ।
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए ।
सयमेगं उवरिमए, पंचेव अणुत्तरविमाणा ।।१।।

[२१][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उपरितन (ऊपरी) ग्रैवेयक देवों के स्थान कहां हैं ?
भगवन् ! उपरितन ग्रैवेयक देव कहां निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! मध्यम ग्रैवेयकों के ऊपर—यावत्—जाने पर उपरितन ग्रैवेयकों के तीन ग्रैवेयक-पाथड़े है । वे पूर्व-पश्चिम मे लम्बे है, इत्यादि वक्तव्यता अधस्तन ग्रैवेयक के समान समझना । किन्तु यहां एक सौ विमान है, ऐसा कहा गया है ।

(गाथार्थ) एक सौ ग्यारह विमान नीचे के ग्रैवेयको में, एक सौ सात विमान मध्य के ग्रैवेयकों में, एक सौ विमान ऊपर के ग्रैवेयकों मे है तथा अनुत्तर विमान पाँच है ।

अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान

[२२][१] प्र०—कहि णं भंते ! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं—जाव—उड्ढं दूरं उप्पइत्ता,
सोहम्मीसाणसणंकुमार—जाव—आरणच्चुयकप्पा तिन्नि अट्ठारसुत्तरे गेविज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता, तेण परं दूरं गया,
नीरया निम्मला वितिमिरा विसुद्धा पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाविमाणा पन्नत्ता, तंजहा—
विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए, सव्वट्ठसिद्धे ।
णं विमाणा सव्वरयणामया—जाव—पडिरूवा ।
एत्थ णं अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।
तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइ भागे

[२२][१] प्र०—भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान कहां है ?
भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक देव कहां निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत सम एवं रमणीय भूमिभाग से ऊपर, चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र और तारारूप से बहुत सैकडों योजन—यावत्—ऊपर जाने पर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार—यावत्—आरण और अच्युत कल्पों और तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानों को उल्लंघन करके उससे बहुत दूर जाने पर नीरज, निर्मल, अंधकाररहित, विशुद्ध, पांच दिशाओं में बहुत विशाल पांच महाविमान कहे है । यथा—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध ।

वे विमान सर्वरत्नमय—यावत्—प्रतिरूप है । यहां पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान हैं । उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

वैमानिक इन्द्रों के उत्पातपर्वत

[२३] सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सक्कप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसहस्साइं उद्धं उच्चत्तेणं, दस गाउयसहस्साइं उव्वेहेणं,
मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते ।
सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारन्नो जहा सक्कस्स तहा सव्वेसिं लोगपालाणं, सव्वेसिं च इंदाणं—जाव—अच्चुय त्ति । सव्वेसिं पमाणमेगं ।

—ठा. १० सूत्र ७२८ पृ. ४५७

[२३] देवेन्द्र देवराज शक्र का उत्पातपर्वत दस हजार योजन ऊँचा, दस गव्यूति गहरा और मूल मे दस हजार योजन विष्कंभ वाला है ।
देवेन्द्र देवराज शक्र के सोम नामक महाराज का उत्पातपर्वत शक्रेन्द्र के बराबर है । सभी लोकपालों और अच्युत पर्यन्त सभी इन्द्रों के उत्पातपर्वत भी ऐसे ही है । सब का प्रमाण एक बराबर है ।

विमानापृथ्वियों का आधार

[२४][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! घणोदहिपइट्ठिया ।

[२] प्र०—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ?
उ०—गोयमा ! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता ।

[३] प्र०—बंभलोए णं भंते ! कप्पे विमाणपुढवी णं पुच्छा ?
उ०—घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता ।

[४] प्र०—लंतए णं भंते ! पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! तदुभयपइट्ठिया ।
महासुक्क-सहस्सारेसु वि तदुभयपइट्ठिया ।

[५] प्र०—आणय—जाव—अच्चुएसु णं भंते ! कप्पेसु पुच्छा ?
उ०—ओवासंतरपइट्ठिया ।

[६] प्र०—गेविज्जविमाणपुढवी णं पुच्छा ?
उ०—गोयमा ! ओवासंतरपइट्ठिया ।

[७] प्र०—अणुत्तरोववाइय पुच्छा ?
उ०—ओवासंतरपइट्ठिया ।[1]

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र २०९ पृ: ३९४

[२४][१] प्र०—सौधर्म और ईशान कल्पों में विमान-पृथ्वी किस पर आश्रित है ?
उ०—गौतम ! घनोदधि पर आश्रित है ।

१—ठा. ३ उ. ३ सूत्र १८० पृ. १३९

[२] प्र०—सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पो में विमान-पृथ्वी किस पर आश्रित है ?
उ०—गौतम ! घनवात पर आश्रित है ।

[३] प्र०—भगवन् ! ब्रह्मलोक कल्प में विमान-पृथ्वी की पृच्छा ?
उ०—घनवात पर आश्रित है ।

[४] प्र०—भगवन् ! लान्तक मे पृच्छा ?
उ०—गौतम ! दोनो—घनोदधि एव घनवात पर आश्रित है ।
महाशुक्र और सहस्रार कल्पो मे भी दोनों पर आश्रित है ।

[५] प्र०—भगवन् ! आनत—यावत्—अच्युत कल्पों मे पृच्छा ?
उ०—अवकाशान्तर-आकाश-पर आश्रित है ।

[६] प्र०—ग्रैवेयक विमानो के विषय मे पृच्छा ?
उ०—गौतम ! अवकाशान्तर पर आश्रित है ।

[७] प्र०—अनुत्तरौपपातिक विमानो सबधी पृच्छा ?
उ०—(वे) अवकाशान्तर-आकाश-पर आश्रित है ।

कल्पविमानों में प्रस्तट

[२५] **सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु तेरस विमाणपत्थडा पण्णत्ता ।**

—सम. १३ सूत्र २

[२५] सौधर्म तथा ईशानकल्पो मे तेरह विमानप्रस्तट (पाथड़े) कहे हैं ।

[२६] **बम्भलोगे णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पण्णत्ता, तंजहा-अरए, विरए, णीरए, निम्मले, वितिमिरे, विसुद्धे ।**

—स्था. ६ उ. ३ सूत्र ५१६ पृ. ३४८

[२६] ब्रह्मलोक कल्प में छह विमानप्रस्तट है, यथा-अरज, विरज, नीरज, निर्मल, वितिमिर और विशुद्ध ।

[२७] **णव गेवेज्जविमाणपत्थडा पण्णत्ता, तंजहा[1]—**

हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे, हेट्ठिममज्झिमगेविज्जविमाणपत्थडे, हेट्ठिमउवरिमगेविज्जविमाणपत्थडे, मज्झिमहेट्ठिमगेविज्जविमाणपत्थडे, मज्झिममज्झिमगेवेज्जविमाणपत्थडे, मज्झिमउवरिमगेविज्जविमाण-पत्थडे,
उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जविमाणपत्थडे, उवरिममज्झिमगेवेज्जविमानपत्थडे, उवरिमउवरिमगेवेज्जविमाणपत्थडे ।
एतेसि णं णवण्हं गेविज्जविमाणपत्थडाणं णव नामधिज्जा पण्णत्ता, तंजहा—

भद्दे सुभद्दे सुजाते, सोमणसे पियदरिसणे ।
सुदंसणे अमोहे य, सुप्पबुद्धे जसोधरे ।।१।।

—ठाणा. ९ सूत्र ६८५

[२७] ग्रैवेयकविमानों के नौ प्रस्तट है, यथा—

(१) अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयकविमानप्रस्तट (२) अधस्तन-मध्यमग्रैवेयकविमानप्रस्तट (३) अधस्तन-उपरितन ग्रै० (४) मध्यम-अधस्तन ग्रै० (५) मध्यम-मध्यम ग्रै० (६) मध्यम-उपरितन ग्रै० (७) उपरितन-अधस्तन ग्रै० (८) उपरितन-मध्यम ग्रै० (९) उपरितन-उपरितन ग्रैवेयकविमानप्रस्तट ।

१—ठा. ३ उ. ४ २३२ पृ. १६८

इन नौ ग्रैवेयक-प्रस्तटों के नौ नाम हैं, यथा—
(१) भद्र (२) सुभद्र (३) सुजात (४) सौमनस (५) प्रियदर्शन (६) सुदर्शन (७) अमोघ (८) सुप्रबुद्ध और (९) यशोधर।

[२८] **सव्वे वेमाणियाणं वासट्ठि विमाणपत्थडा पत्थडग्गेणं पण्णत्ता।**

—सम. ६२ सूत्र ५

[२८] सब वैमानिकों के विमानप्रस्तट प्रस्तट-परिमाण से ६२ कहे गए हैं।

विमानपृथ्वियों का बाहल्य

[२९][१] **प्र०—सोहम्मीसाणकप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता ?**

उ०—गोयमा ! सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।[1]

प्र०—एवं पुच्छा ?

सणंकुमार–माहिंदेसु छव्वीसं जोयणसयाइं,
बंभ–लंतए पंचवीसं,
महासुक्क–सहस्सारेसु चउवीसं,
आणय–पाणया–रणा–च्चुएसु तेवीसं सयाइं,
गेविज्जविमाणपुढवी बावीसं,
अणुत्तरविमाणपुढवी एक्कवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं।

—जीवा० प्रति० ३ सूत्र २१० पृ० ३९४

[२९][१] प्र०—सौधर्म और ईशान कल्पों में विमानपृथ्वी कितनी मोटी है ?

उ०—गौतम ! सत्ताईस सौ योजन मोटी है।

[२] प्र०—इसी प्रकार (अगले कल्पों के विषय में) प्रश्न (समझ लेना) ?

उ०—सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में (विमानपृथ्वी) छब्बीस सौ योजन (मोटी है)।
ब्रह्मलोक और लान्तक में पच्चीस सौ, महाशुक्र और सहस्रार में चौबीस सौ, आनत प्राणत आरण और अच्युत में तेईस सौ, ग्रैवेयकविमानों में पृथ्वी बाईस सौ और अनुत्तर विमानों की पृथ्वी इक्कीस सौ योजन मोटी है।

कल्पविमानों की ऊँचाई

[३०][१] **प्र०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं ?**

उ०—गोयमा ! पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।[2]
सणंकुमार–माहिंदेसु छ जोयणसयाइं,[3]
बंभ–लंतएसु सत्त,[4]
महासुक्क-सहस्सारेसु अट्ठ,
आणय-पाणएसु० नव,[6]

---

१. सम. २७ सूक्ष ४
२. ठा० ५ उ० ३ सूत्र ४६९
३. ठा० ६, सूत्र ५३२ पृ० ३५२
४. „ ७, सूत्र ५७८ पृ० ३८४
५. „ ८, सूत्र ६५० पृ० ४१८
६. „ ९ „ ६९५ पृ० ४४४

[२] प्र०—गोविज्जविमाणा णं भंते ! केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ०—दस जोयणसयाइं ।[1]

अणुत्तरविमाणा णं एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं ।[2]

—जीवा० प्रति० ३ सूत्र २११ पृ० २१३

[३०][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म ओर ईशान कल्पों मे विमान कितने ऊँचे हैं ?

उ०—गौतम ! पाँच सौ योजन ऊँचे हैं ।

सनत्कुमार –माहेन्द्र कल्पों में छह सौ योजन ऊँचे हैं । ब्रह्मलोक–लान्तक कल्पों में सात (सौ योजन ऊँचे है) । महाशुक्र–सहस्रार कल्पों में आठ (सौ योजन ऊँचे है) । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में नौ (सौ योजन ऊँचे हैं) ।

[२] प्र०—भगवन् ! ग्रैवेयक विमान कितने ऊँचे हैं ?

उ०—दस सौ योजन (ऊँचे है) ।

अनुत्तर विमान ग्यारह सौ योजन ऊँचे हैं ।

कल्पविमानों की लम्बाई, चौड़ाई, परिधि

[३०][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केवतियं आयाम-विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य ।

जहा णरगा तहा-जाव-अणुत्तरोववातिया संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य ।

तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे ते जंबुद्दीवप्पमाणे,

असंखेज्जवित्थडा असंखेज्जाइं जोयणसयाइं-जाव-परिक्खेवेणं पण्णत्ता ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र २१३ पृ. ३९५

[३०][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्पों में विमान कितने लम्बे-चौड़े और कितनी परिधि वाले हैं ?

उ०—गौतम ! दो प्रकार के (विमान) कहे गए हैं, यथा-संख्येयविस्तृत और असंख्येयविस्तृत ।

नरकों के समान अनुत्तरौपपातिक विमानों पर्यन्त संख्येयविस्तृत अर्थात् संख्यात योजन विस्तार वाले और असंख्येयविस्तृत अर्थात् असंख्यात योजन विस्तार वाले (विमान) हैं ।

उनमें जो संख्येयविस्तृत हैं वे जम्बूद्वीप के प्रमाण के (एक लाख योजन) हैं । असंख्येयविस्तृत असंख्य सौ योजन-यावत्-परिक्षेप वाले हैं ।

कल्पविमानों के प्राकारों की ऊँचाई

[३१] वेमाणियाणं देवाणं विमाणपागारा तिण्णि २ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

—सम ३०० सूत्र ३

[३१] वैमानिक देवों के विमानों के प्राकारों की ऊंचाई तीन-तीन सौ योजन कही गई है ।

१—ठा. १० सूत्र ७७५ पृ० ४९३;

२—(क) सम० ११४ सूत्र १
(ख) सम० १०९ सूत्र १
(ग) सम० ११० सूत्र १
(घ) सम० १११ सूत्र १
(ङ) सम० ११२ सूत्र १
(च) सम० ११३ सूत्र १

कल्पविमानों का संस्थान

[३२][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आवलियापविट्ठा बाहिरा य ।

तत्थ णं जे ते आवलियापविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टा, तंसा, चउरंसा[1] ।

तत्थ णं जे ते आवलियाबाहिरा ते ण णाणासंठिया पण्णत्ता, एवं जाव गेविज्जविमाणा ।

अणुत्तरोववाइयविमाणा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा-वट्टे य तंसा य ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र २१२ पृ. ३७५

[३२][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्पों में विमान किस आकार के हैं ?

उ०—गौतम ! दो प्रकार के है, यथा—आवलिकाप्रविष्ट और (आवलिका-) बाह्य ।

उनमें जो आवलिकाप्रविष्ट है, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा-वृत्त (गोलाकार), त्र्यस्र (तिकोने) और चतुरस्र (चौकोर) ।

उनमें जो आवलिकाबाह्य (विमान) हैं, वे नाना आकार के हैं । इस प्रकार-यावत्-ग्रैवेयक-विमान (जान लेना चाहिए) ।

अनुत्तरौपपातिक विमान दो प्रकार के कहे गए है, यथा-वृत्त और त्र्यस्र ।

कल्पविमानों का वर्ण

[३३][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! विमाणा कतिवण्णा पन्नत्ता ?

उ०—गोयमा ! पंचवण्णा पण्णत्ता, तंजहा-किण्हा, नीला, लोहिया, हालिद्दा, सुक्किल्ला ।[2]

सणंकुमार-माहिंदेसु चउवण्णा-नीला-जाव-सुक्किल्ला[3]

बंभलोय-लंतएसुवि तिवण्णा-लोहिया-जाव-सुक्किल्ला ।[4]

महासुक्क-सहस्सारेसु दुवण्णा-हालिद्दा य सुक्किल्ला य ।[5]

आणय पाणया-रण च्चुएसु सुक्किल्ला ।

गेविज्जविमाणा सुक्किल्ला ।

अणुत्तरोववातियविमाणा परमसुक्किल्ला वण्णेणं पण्णत्ता ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र २१३ पृ ३९५

[३३][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्पों में विमान कितने वर्ण के हैं ?

उ०—गौतम ! पांच वर्णों के हैं, यथा—कृष्ण, नील, लाल, पीत, और शुक्ल ।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में चार वर्णों के हैं, यथा-नील-यावत्-शुक्ल ।

ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पों में तीन वर्ण के हैं—लोहित—यावत्—शुक्ल ।

महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में दो वर्ण के हैं—पीत और शुक्ल ।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में शुक्ल वर्ण के (विमान) है ।

ग्रैवेयक विमान शुक्ल हैं ।

अनुत्तरौपपातिक विमान परम शुक्ल वर्ण वाले हैं ।

१—ठा. ३ उ. ३ सूत्र १८० पृ. १३८

२—ठा. ५ उ. ३ सूत्र ४६९ पृ. ३३३

३—ठा. ४ उ. ४ सूत्र ३७५ पृ. २७१

४—ठा. ३ उ. १ सूत्र १५१ पृ. १२०

५—ठा, २ उ. ३ सूत्र ९४ पृ. ८०

कल्पविमानों की प्रभा

[३४][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केरिसया पभाए पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! णिच्चालोआ णिच्चुज्जोआ सयं पभाए पण्णत्ता-जाव-अणुत्तरोववातियविमाणा णिच्चालोआ णिच्चुज्जोता सयं पभाए पण्णत्ता ।

[३४][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पों में विमान प्रभा से किस प्रकार के हैं ?

उ०—गौतम ! अपनी निज की प्रभा से नित्य आलोक वाले, नित्य उद्योत वाले कहे गए हैं—यावत्-अनुत्तरविमान भी नित्य आलोक एवं उद्योत वाले हैं ।

कल्पविमानों की गंध

[३५][१] प्र०—सोधम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! से जहानामए कोट्ठपुडाण वा-जाव-गंधेणं पण्णत्ता । एवं-जाव-एतो इट्ठयरागा चेव जाव-अणुत्तरविमाणा ।

[३५][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्पों में (विमान) किस प्रकार की गंध वाले हैं ?

उ०—गौतम ! कोष्ठपुट-यावत्-जैसी गंध वाले हैं । इस प्रकार-यावत्-इससे भी अधिक इष्ट गंध वाले हैं । अनुत्तर विमानों तक इसी प्रकार समझना ।

कल्पविमानों का स्पर्श

[३६][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु विमाणा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?

उ०—से जहाणामए आइणेति वा रूतेति वा सव्वो फासो भाणियव्वो—जाव—अणुत्तरोववातियविमाणा ।

[३६][१] प्र०—सौधर्म और ईशान कल्पों मे विमान कैसे स्पर्श वाले हैं ?

उ०—जैसे आजिनक या रुई हो, ऐसा सर्व स्पर्श कहना चाहिए,—यावत्—अनुत्तरौपपातिक विमानों तक (इसी प्रकार का स्पर्श है) ।

कल्पविमानों की महत्ता

[३७][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! (कप्पेसु) विमाणा केमहालिया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं-सो चेव गमो—जाव—छम्मासे वीइवएज्जा—जाव—अत्थेगतिया विमाणावासा नो वीइवएज्जा—जाव—अणुत्तरोववातियविमाणा अत्थेगतियं विमाणं वीतिवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा ।

[३७][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पों मे विमान कितने बड़े है ?

उ०—गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के बीच में है—वही गम समझना,—यावत्—(देव शीघ्र गति से) छह मास तक चलता जाय तो—यावत्—कितनेक विमानों को पार न कर पाए । अनुत्तरौपपातिक विमानों तक इसी प्रकार कहना चाहिए कि (शीघ्रगति देव छह मास तक चलने पर) किसी विमान को पार करे और किसी को पार न कर सके ।

कल्पविमानों का उपादान

[३८][१] प्र०—सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! विमाणा किमया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! सव्वरयणामया पण्णत्ता ।

तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उवचयंति ।
सासया णं ते विमाणा दव्वट्ठयाए—जाव—फासपज्जवेहिं असासता—जाव—अणुत्तरोववातिया विमाणा ।

—जीवा. प्रति. ३ सूत्र २१३ पृ. ९५

[३८][१] प्र०—भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्पों में विमान किससे बने हैं ?

उ०—गौतम ! सर्वरत्नमय कहे हैं ।

वहां बहुत-से जीव और पुद्गल जाते हैं, उत्पन्न होते हैं, चय एवं उपचय को प्राप्त होते हैं ।
वे विमान द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत हैं,—यावत्—स्पर्श-पर्यायों से अशाश्वत हैं ।—यावत्—अनुत्तरौपपातिक विमान इसी प्रकार समझना चाहिए ।

सिद्धस्थान

[३९][१] प्र०—कहि णं भंते ! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता ?
कहि णं भंते ! सिद्धा परिवसंति ?

उ०—गोयमा ! सव्वट्ठसिद्धस्स महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणे उड्ढं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णामं पुढवी पन्नत्ता ।
पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं,
एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोन्नि य अउणापन्ने जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पन्नत्ता ।
ईसिपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पन्नत्ते ।[1] तओ अणंतरं च णं मायाए-मायाए पएसपरिहाणीए परिहायमाणी-परिहायमाणी सव्वेसु चरमंतेसु मच्छियपत्ताओ तणुयतरी, अंगुलस्स असंखेज्जइभागं बाहल्लेणं पन्नत्ता ।

[३९][१] प्र०—भगवन् ! सिद्धों के स्थान कहां हैं ?
भगवन् ! सिद्ध कहां निवास करते हैं ?

उ०—गौतम ! सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपरी स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन दूर ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी है । वह पैंतालीस लाख योजन लम्बी-चौड़ी है । एक करोड़, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक परिधि वाली है ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के ठीक बीच में आठ योजन प्रमाण क्षेत्र मोटाई में आठ योजन है । उसके बाद थोड़ी-थोड़ी प्रदेशों की परिहानि होती हुई सबसे अन्तिम (प्रदेशों) में मक्खी के पंख से भी पतली हो गई है और मोटाई में अंगुल के असंख्यातवां भाग है ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के पर्यायशब्द

[४०] ईसिपब्भाराए णं पुढवीए णं दुवालस नामधिज्जा पन्नत्ता, तंजहा—(१) ईसि इ वा (२) ईसिपब्भारा इ वा (३) तणू इ वा (४) तणु-तणू इ वा (५) सिद्धिति वा (६) सिद्धालए वा (७) मुत्तित्ति वा (८) मुत्तालए इ वा (९) लोयग्गेति वा (१०) लोयग्गथूभियति वा (११) लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा (१२) सव्वपाण-भूय-जीव-सत्तसुहावहा इ वा ।[2]

१—ठा. ८ सूत्र ६४८ पृ. ४१७

२—(क) ठा. ८ सूत्र ६४८ पृ. ४१७
(ख) उववाई.

[४१] ईसीपब्भारा णं पुढवी सेया संखदलविमलसोत्तिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हारवण्णा, उत्ताणयछत्त-संठाणसंठिया, सव्वज्जुणसुवन्नमई, अच्छा, सण्हा-जाव-पडिरूवा।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए सीआए जोयणम्मि लोगंतो,

तस्स जे उवरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे, एत्थ णं सिद्धा भगवंतो साइया अपज्जवसिया अणेगजाइ-मरण-जोणि-संसार-कलंकलीभाव-पुणब्भव-गब्भवासवसहि-पवंचसमइक्कंता सास-यमणागयकालं चिट्ठंति।

—प्रज्ञा. २ सूत्र ५८ पृ. ३२४–२५

[४०] ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम कहे है, यथा-(१) ईषत् (२) ईषत्प्राग्भारा (३) तन्वी (४) तनु-तन्वी (५) सिद्धि (६) सिद्धालय (७) मुक्ति (८) मुक्तालय (९) लोकाग्र (१०) लोकाग्रस्तूपिका (११) लोकाग्रप्रतिवाहिनी और (१२) सर्वप्राण-भूत-जीव-सत्वसुखावहा।

[४१] ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी श्वेत, शंखदल के चूर्ण के निर्मल स्वस्तिक, कमलदंड, जलकण, बर्फ, गोक्षीर एवं हार जैसे वर्ण वाली, स्वच्छ, चिकनी-यावत्-प्रतिरूप है।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी से नसैनी की गति से एक योजन ऊपर लोकान्त है। उस योजन के एक गव्यूति और उस गव्यूति के छठे भाग में सिद्ध भगवान् आदिसहित, अन्तरहित, सब जन्म, जरा, मरण और योनियों में परिभ्रमण के क्लेश, पुनर्भव एवं गर्भवास में रहने के प्रपंच से रहित, शाश्वत अनागत काल तक विराजमान रहते हैं।

माप-निरूपण

अंगुल के भेद और परिमाण

प्र०—से किं तं अंगुले ?

उ०—अंगुले तिविहे पण्णत्ते, तंजहा-आयंगुले, उस्सेहंगुले, पमाणंगुले ।

प्र०—से किं तं आयंगुले ?

उ०—आयंगुले जे णं जया मणुस्सा भवंति, तेसि णं तया अप्पणो अंगुलेणं दुवालस अंगुलाइं मुहं, नवमुहाइं पुरिसे पमाणजुत्ते भवति, दोण्णि पुरिसे माणजुत्ते भवति, अद्धभारं तुलमाणे पुरिसे उम्माणजुत्ते भवति ।

एतेणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पादो, दो पाया विहत्थी, दो विहत्थीओ रयणी, दो रयणीओ कुच्छी, दो कुच्छीओ दंडं, धणू, जुगे, नालिया, अक्खमुसले, दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं ।

प्र०—एएणं आयंगुलप्पमाणेणं किं पओयणं ?

उ०—एतेणं आयंगुलप्पमाणेणं जे णं जया मणुस्सा भवंति, तेसि णं तया अप्पणो अंगुलेणं अगड-दह-नदी-तलाग-वावी पुक्खरिणि-दीहिया-गुंजालियाओ, सरा, सरपंतियाओ, सरसरपंतियाओ, आरामु-ज्जाण-काणण-वण-वणसंड-वणराईओ, देवकुल-सभा-पवा-थूभ-खाइय-परिहाओ, पागारऽट्टालग-चरिय-दार-गोपुर-तोरण-पासाद-घर-सरण-लेण-आवण-सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापह-पहा, सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणिय-लोही-लोहकडाह-कडुच्छुय-आसण-सयण-खंभ-भंड-मत्तो-वगरणमादीणि अज्ज-कालिगाइं च जोयणाइं मविज्जंति ।

से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा-सूतिअंगुले, पयरंगुले, घणंगुले ।

अंगुलायता एगपदेसिया सेढी सूइअंगुले,

सूई सूईए गुणिया पयरंगुले,

पयरं सूईए गुणितं घणंगुले ।

प्र०—एतेसि णं भंते ! सूतिअंगुल-पयरंगुल-घणंगुलाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?

उ०—सव्वत्थोवे सूतिअंगुले, पतरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे । से तं आयंगुले ।

प्र०—से किं तं उस्सेहंगुले ?

उ०—उस्सेहंगुले अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा—

परमाणू तसरेणू रहरेणू अग्गयं च वालस्स ।

लिक्खा जूया य जवो, अट्ठगुणविवड्ढिया कमसो ।।१।।

.....अणंताणं ववहारियपरमाणुपोग्गलाणं समुदयसमितिसमागमेणं सा एगा उस्सण्हसण्हिया ति वा, सण्हसण्हिया ति वा, उड्ढरेणू ति वा, तसरेणू ति वा, रहरेणू ति वा ।

अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया,

अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू,

अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू,

अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू,

अट्ठ रहरेणूओ देवकुरु-उत्तरकुरुयाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे,
अट्ठ देवकुरु-उत्तरकुरुयाणं मणुयाणं वालग्गा हरिवासरम्मगवासाणं मणुयाणं से एगे वालग्गे,
अट्ठ हरिवास-रम्मगवासाणं मणुस्साणं वालग्गा हेमवय-हेरण्णवयवासाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे,
अट्ठ हेमवय-हेरण्णवयवासाणं मणुस्साणं वालग्गा पुव्वविदेह-अवरविदेहाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे,
अट्ठ पुव्वविदेह-अवरविदेहाणं मणूसाणं वालग्गा भरहेरवयाणं मणुस्साणं से एगे वालग्गे,
अट्ठ भरहेरवयाणं मणूसाणं वालग्गा सा एगा लिक्खा,
अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया,
अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे,
अट्ठ जवमज्झे से एगे उस्सेहंगुले ।
एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पादो, बारस अंगुलाइं विहत्थी, चउवीसं अंगुलाइं रयणी, अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी, छन्नउती अंगुलाइं से एगे दंडे इ वा, धणू इ वा, जुगे इ वा, नालिया इ वा, अक्खे इ वा, मुसले इ वा,[1] एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं[2] ।

प्र०—एएणं उस्सेहंगुलेणं किं पओयणं ?

उ०—एएणं उस्सेहंगुलेणं णेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणूस-देवाणं सरीरोगाहणाओ मविज्जंति ।
से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—सूईअंगुले, पयरंगुले, घणंगुले ।
अंगुलायता एगपदेसिया सेढी सूईअंगुले, सूई सूईए गुणिया पयरंगुले, पयरं सूईए गुणियं घणंगुले ।

प्र०—एएसि णं सूचीअंगुल-पयरंगुल-घणंगुलाणं कतरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?

उ०—सव्वत्थोवे सूईअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे; से तं उस्सेहंगुले ।

प्र०—से किं तं पमाणंगुले ?

उ०—पमाणंगुले एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ सोवण्णिए कागणिरयणे छत्तले दुवालससंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणिसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तस्स ण एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा, तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं, तं सहस्सगुणं पमाणंगुलं भवति ।
एतेणं पमाणंगुलेणं छ अंगुलाइं पादो, दो पाया दुवालसअंगुलाइं विहत्थी, दो विहत्थीओ रयणी, दो रयणीओ कुच्छी, दो कुच्छीओ धणू, दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं जोयणं ।

प्र०—एतेणं पमाणंगुलेणं किं पओयणं ?

उ०—एएणं पमाणंगुलेणं पुढवीणं कंडाणं पायालाणं भवणाणं भवणपत्थडाणं निरयाणं निरयावलियाणं निरयपत्थडाणं कप्पाणं विमाणाणं विमाणावलियाणं विमाणपत्थडाणं टंकाणं कूडाणं सेलाणं सिहरीणं पब्भाराणं विजयाणं वक्खाराणं वासाणं वासहराणं वासहरपव्वयाणं वेलाणं वेइयाण दाराणं तोरणाणं दीवाणं समुद्दाणं आयामविक्खंभ-उच्चत्तो-व्वेह-परिक्खेवा मविज्जंति ।
से समासओ तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—सेढीअंगुले, पयरंगुले, घणंगुले ।
असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ सेढीए, सेढी सेढी गुणिया पतरं, पतरं सेढीए गुणितं लोगो, संखेज्जएणं लोगो गुणितो संखेज्जा लोगा । असंखेज्जएणं लोगो गुणिओ असंखेज्जा लोगा ।

१—सम० ९६ सूत्र ३
२—(क) सम ,, सूत्र ४
(ख) ठा. अ. ८, सूत्र ६३४, पृ० ४११,
(ग) जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स कलाओ एगूणवीसं जोअणाओ पण्णत्ता । —सम० १९ सूत्र ४
अर्थात् जम्बूद्वीप के गणित में कला अर्थात् योजन का १९ वाँ भाग,

प्र०—एतेसि णं सेढीअंगुल-पयरंगुल-घणंगुलाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पे वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ?

उ०—सव्वत्थोवे सेढिअंगुले, पयरंगुले असंखेज्जगुणे, घणंगुले असंखेज्जगुणे । से तं पमाणंगुले ।

—अनुयोग० सूत्र ३३३-३४२, २४४-३४६, ३५७-३६२

प्र०—अंगुल क्या है ?

उ०—अंगुल तीन प्रकार का है, यथा—आत्मांगुल, उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल ।

प्र०—आत्मांगुल क्या है ?

उ०—आत्मांगुल यह है—जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उस काल में उनके अपने अंगुल से बारह अंगुल का मुख होता है । ऐसे नौ मुखों से पुरुष प्रमाणयुक्त होता है । द्रोणिक पुरुष मानयुक्त होता है और तोल में अर्धभार प्रमाण वाला पुरुष उन्मानयुक्त होता है ।

इस अंगुल प्रमाण से छह अंगुल का पाद होता है, दो पाद की वितस्ति, दो वितस्तियों की रत्नि, दो रत्नियों की कुक्षि, दो कुक्षियों का दंड, धनुष, युग, नालिका और अक्षमुसल होता है । दो हजार धनुष का गव्यूति और चार गव्यूति का एक योजन होता है ।

प्र०—इस आत्मांगुल प्रमाण से क्या प्रयोजन है ?

उ०—जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उस काल में उनके आत्मांगुल से कूप, द्रह, नदी, तालाब, वावड़ी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुञ्जालिका, सर, सरपंक्ति, सर-सरपंक्ति, आराम, उद्यान, कानन, वन, वनखण्ड, वनराजि, देवगृह, सभा, प्रपा, स्तूप, खाई, परिखा, प्राकार, अट्टालक, चरिया, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद, घर, शरण, लयन, आपण, शृंगाटक, त्रिक, चौक, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ, पथ, शकट, रथ, यान, युग्य, गिल्लि, थिल्लि, शिविका, स्यंदमानिका, लोही, लोहकडाह, कडुच्छुय, आसन, शयन, स्तंभ, भाण्डमात्रोपकरण आज-कल (समय-समय) के योजन आत्मांगुल से मापे जाते हैं ।

वह आत्मांगुल तीन प्रकार का है—सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल ।
एक अंगुल लम्बी एक प्रदेश की श्रेणी सूच्यंगुल कहलाती है । सूची से सूची का गुणाकार करने से प्रतरांगुल होता है । प्रतर को सूची से गुणित करने पर घनांगुल होता है ।

प्र०—भगवन् ! इन सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

उ०—सूच्यंगुल सबसे छोटा है, प्रतरांगुल उससे असंख्यात गुणा है, घनांगुल उससे भी असंख्यातगुणा है ।

प्र०—उत्सेधांगुल क्या है ?

उ०—उत्सेधांगुल अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा—परमाणु, त्रसरेणु, रथरेणु, वालाग्र, लीख, यूका और यव ये सब क्रमशः आठ-आठ गुणा होते हैं ।
अनन्त व्यावहारिक परमाणुपुद्गलों के मिलकर एकमेक होने पर एक उस्सण्हसण्हिया होती है । फिर सण्हसण्हिया, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु एवं रथरेणु होता है ।
आठ उस्सण्हसण्हिया की एक सण्हसण्हिया, आठ सण्हसण्हिया का एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणु का एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु, आठ रथरेणु का देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक वालाग्र, देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के आठ वालाग्र का हरिवर्ष-रम्यकवर्ष के मनुष्यों का एक

वालाग्र, हरिवर्ष-रम्यकवर्ष के मनुष्यों के आठ वालाग्र का हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों का एक वालाग्र, हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों के आठ वालाग्र का पूर्वविदेह अपरविदेह के मनुष्यों का एक वालाग्र, पूर्वविदेह-अपरविदेह के मनुष्यों के आठ वालाग्र का भरत-ऐरवत क्षेत्र के मनुष्यों का एक वालाग्र, भरत-ऐरवत के मनुष्यो के आठ वालाग्र की एक लिक्षा (लीख), आठ लिक्षा की एक यूका, आठ यूका का एक यवमध्य और आठ यवमध्य का एक उत्सेधागुल होता है।

इस (उत्सेध) अंगुलप्रमाण से छह अंगुल का पाद, बारह अंगुल की वितस्ति, चौवीस अंगुल की रत्नि, अड़तालीस अंगुल की कुक्षि और छियानवे अंगुल का एक दण्ड, धनुप, युग, नालिका, अक्ष या मुसल होता है। इस धनुपप्रमाण से दो हजार धनुप का एक गव्यूति और चार गव्यूति का एक योजन होता है।

प्र०—इस उत्सेधांगुल से क्या प्रयोजन है ?

उ०—इस उत्सेधांगुल से नारकों, तिर्यचों, मनुष्यों और देवों के शरीर की अवगाहना मापी जाती है। उत्सेधांगुल संक्षेप से तीन प्रकार का है—सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल।

एक अंगुल लम्बी एक प्रदेश की श्रेणी सूच्यंगुल है, सूची से सूची को गुणित करने पर प्रतरांगुल होता है और प्रतर का सूची से गुणाकार करने से घनांगुल होता है।

प्र०—इस सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है।

उ०—सूच्यंगुल सब से छोटा है, प्रतरांगुल उससे असंख्यात गुणा है और घनांगुल उससे भी असंख्यात गुणा है। यह उत्सेधांगुल का कथन है।

प्र०—प्रमाणांगुल क्या है ?

उ०—प्रत्येक चक्रवर्ती राजा का काकणीरत्न आठ सौवर्णिक (सौनैया भर वजन) का, छह तल वाला, बारह कोनों का, आठ कर्णिका वाला एवं (सुनार के) ऐरन के आकार का होता है। उसकी एक-एक कोटि उत्सेधांगुल प्रमाण विस्तार वाली होती है। श्रमण भगवान् महावीर का वह आधा अंगुल है। उसका हजारगुणा प्रमाणांगुल होता है।

इस प्रमाणांगुल से छह अंगुल का पाद, दो पाद अर्थात् बारह अंगुल की वितस्ति, दो वितस्ति की रत्नि, दो रत्नि की कुक्षि, दो कुक्षि का धनुष, दो हजार धनुष का गव्यूति और चार गव्यूति का योजन होता है।

प्र०—इस प्रमाणांगुल से क्या प्रयोजन है ?

उ०—इस प्रमाणांगुल से पृथ्वी, काण्ड, पाताल, भवन, भवनप्रस्तट, नरक, नरकावली, नरकप्रस्तट, कल्प, विमान, विमानावली, विमानप्रस्तट, टंक, कूट, शैल, शिखरी, प्राग्भार, विजय, वक्षस्कार, वर्ष, वर्षधर-वर्षधर पर्वत, वेला, वेदिका, द्वार, तोरण, द्वीप, समुद्र—इनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, और परिधि मापी जाती है। वह प्रमाणांगुल संक्षेप से तीन प्रकार का है—श्रेण्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल।

असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन की एक श्रेणी, श्रेणी से गुणित श्रेणी प्रतर और श्रेणी से गुणित प्रतर 'लोक' कहलाता है। संख्यात से गुणित लोक 'संख्यात लोक' कहलाता है और असंख्यात से गुणित लोक 'असंख्यात लोक' कहलाता है।

प्र०—इन श्रेण्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

उ०—श्रेण्यंगुल सब से अल्प (छोटा) है, प्रतरांगुल उससे असंख्यात गुणा है और घनांगुल उससे भी असंख्यात गुणा है। यह प्रमाणांगुल की वक्तव्यता है।

विशिष्ट शब्द

पृ० १,	पं. १२—	अगुरुलहुए—	जिसमें गुरुता और लघुता दोनों नहीं, अर्थात् अमूर्त ।
पृ० ८८,	पं. १—	अट्ठट्ठमंगलगा—	स्वस्तिक, श्रीवत्स ।
पृ० २५,	पं. २९—	अणाणुपुव्वी—	पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी से रहित—अनुक्रम हीन ।
पृ० १,	पं. ११—	अद्धासमय—	काल रूप समय ।
पृ० १,	पं. ३—	अलोए—	वह आकाश खण्ड जो सूना है—जहां अन्य कोई द्रव्य विद्यमान न हो ।
पृ० २,	पं. १—	असब्भावपट्ठवणा—	असत्कल्पना ।
पृ० ६,	पं. ३४—	अहम्मत्थिकाए	स्थिति का माध्यम एक अमूर्त द्रव्य ।
पृ० १५,	प. ३९—	आसव—	कर्मों के बन्ध का कारण—मिथ्यात्व आदि ।
पृ० २९,	पं. १५—	उज्जुसुत्त—	वर्तमान कालिक पर्याय को ही वस्तु मानने वाला दृष्टि-कोण—नयविशेष ।
पृ० १३,	पं. ३८—	उस्सप्पिणी—	उत्सर्पिणी काल-चक्र का एक विभाग, जिसमें जीवों की देह, आयु आदि की निरंतर वृद्धि होती रहती है ।
पृ० १३,	पं. ३८—	ओसप्पिणी—	उत्सर्पिणी काल से विपरीत, जिसमें देह, आयु आदि का लगातार ह्रास होता है ।
पृ० ७३,	पं ११—	जगई—	द्वीप—समुद्र का सीमा विभाजक वज्रमय प्राकार विशेष ।
पृ० ९५,	पं. ३१—	जीवा—	प्रत्यंचा—धनुषाकार क्षेत्र की प्रत्यंचा—स्थानीय सरल प्रदेश—पंक्ति ।
पृ० २९,	पं. १५—	णेगम—	नैगम—वह दृष्टिकोण जो लोक-रूढि में भी वास्तविकता स्वीकार करता है, सत् और असत् को भी वस्तु मानता है ।
पृ० १५,	पं. ४०—	निज्जरा	उदय के अनन्तर कर्म-दलिकों का जीव-प्रदेशों से पृथक हो जाना ।
पृ० ९६,	पं. १—	धणु—	धनुष—चार हाथ लम्बा परिमाण विशेष ।
पृ० ११६,	पं. ११—	धणुपट्ठ—	परिधि का वह भाग जो धनुष के-पृष्ठ भाग का स्थानीय हो ।
पृ० १,	पं. २०—	धम्मत्थिकाय—	जीवों और पुदगलों की गतिका माध्यम एक द्रव्य ।
पृ० ६,	पं. ४—	पोग्गलत्थिकाय—	रूपी—द्रव्य ।
पृ० ९५,	पं, २९—	बाहा—	भुजा, भुजाकार क्षेत्र विशेष ।
पृ० २९,	पं. १५—	संगह—	अभेद-प्रधान दृष्टिकोण ।
पृ० ११५,	पं. ११—	संघयण—	अस्थियो की रचना ।
पृ० ११५,	पं. ११—	संठाण—	आकृति ।
पृ० १५,	पं. ३९—	संवर—	आस्रव का रुकना ।
पृ० २९,	पं. १५—	सद्दनय—	वह दृष्टिकोण जो लिग, कारक, वचन, पुरुष आदि के भेद से पर्यायवाची समझे जाने वाले शब्दों के भी अर्थ में भेद मानता है ।
पृ० १,	पं. २४—	समयखेत्त—	जंबूद्वीप, लवण—समुद्र, धातकीखंड-द्वीप, कालोदधि-समुद्र और अर्धपुष्कर-द्वीप, जहां चंद्र-सूर्य की गतिशीलता के कारण दिवस-रात्रि आदि काल का विभाग होता है ।

परिशिष्ट [३]

विशेष-सूचना

इस गणितानुयोग के कतिपय पृष्ठों में कुछ आगम-पाठ ऐसे भी हैं जिनके नीचे किसी भी आगम का स्थल-निर्देश अंकित नहीं है। ऐसे आगम पाठों को क्रमशः देखने पर जिस मूलपाठ के नीचे किसी आगम का स्थल निर्देश अधिक मिले, उस पाठ तक जितने आगम पाठ हैं वे सब स्थल-निर्देश में अंकित आगम के ही पाठ है—ऐसा समझें।

उदाहरण के लिये देखिए पृष्ठ ४६४ का टिप्पण।

अलोक

संकलन में प्रयुक्त आगमों के स्थल-निर्देश

ठाणांग-सूत्र

पृ. १—ठा. १, ६

पृ. ३—ठा. अ. ४, उ. ३, सूत्र ३३७, पृ. २४१

समवायांग-सूत्र

पृ. १—सम. १, १.

विवाह—प्रज्ञप्ति

पृ. १—विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,	प्र. १०,	पृ. २२६
पृ. १—विवा. भा. १,	श. २,	उ. १,		पृ. २३५
पृ. १—विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,	प्र. १६,	पृ. २३१
पृ. २—विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,	प्र. २०,	पृ. २३२
पृ. २—विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,	प्र. १६,	पृ. २३१
पृ. २—विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,	प्र. १६,	पृ. २३१
पृ. ३—विवा. भा. ४,	श. १६,	उ. ८,	प्र. ६,	पृ. २५
पृ. ३—विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,		पृ. २३०-३१
पृ. ३—विवा. भा. १,	श. २,	उ. १०,	प्र. ६७,	पृ. ३१०
पृ. ३—विवा. भा. १,	श. १,	उ. १०,		पृ. २३५
पृ. ३—विवा. भा. १,	श. १,	उ. १०,		पृ. २३५
पृ. ३—विवा. भा. १;	श. २,	उ. १०,	प्र. ६७,	पृ. ३१०
पृ. ४—विवा. भा. १,	श. १,	उ. १०,	प्र. ६७,	पृ. ३१०
पृ. ४—विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,	प्र. १५-१७,	पृ. २३०
पृ. ४—विवा. भा. १,	श. १,	उ. १०,	प्र. ६६,	पृ. ३१०
पृ. ४—विवा. भा. १,	श. १,	उ. १०,	प्र. ६७,	पृ. ३१०

प्रज्ञापना-सूत्र

पृ. १—पण्ण. १५,	इन्द्रियपद,	पृ. ६३४
पृ. १—पण्ण. १५,	इन्द्रियपद,	पृ. ६३०
पृ. १—पण्ण. १५,	इन्द्रियपद,	पृ. ६३०

लोक

संकलन में प्रयुक्त आगमों के स्थल-निर्देश

ठाणांग-सूत्र

पृ ५— ठा. १,५,
पृ. ५— ठा. अ. ३, उ २, सू. १५३, पृ. १२१
पृ. ५— ठा. अ. ३, उ. २, सू. १५३
पृ. ५— ठा. अ. ३, उ. २, सू. १५३, पृ. १२१
पृ. ६— ठा. अ. २, उ. ४, सू. १०३, पृ. ९०
पृ. ९— ठा. अ. ३, उ. २, सू. १६३, पृ. १२६
पृ. ९— ठा. अ. ४, उ. २, सू २८६, पृ. २०२
पृ. ९— ठा. अ. ६, सू. ४९८, पृ ३४०
पृ. ९— ठा. अ. ८, सू. ६००, पृ. ४००
पृ. ११— ठा. अ. १०, सू. ७०४, पृ. ४४६
पृ १२— ठा. अ. ४, उ. ३, सू. ३३३, पृ. २३९
पृ. १५— ठा. अ २, उ ४, सू १०३, पृ. ९०
पृ. १५— ठा. अ. २, सू. ५७, पृ. ३५
पृ. १५— ठा. अ. २, सू. ५८, पृ. ३६
पृ. १५— ठा. अ. २, सू. ५९, पृ ३६
पृ. २०— ठा. अ. ५, उ. ३, सू. ४४४, पृ. ३१८
पृ. २०— ठा. अ. ५, उ. ३, सू. ४५१, पृ. ३२४
पृ २०— ठा. अ. ४, उ. ३, सू. ३२९, पृ. २३८
पृ. २४— ठा. अ ४, उ. ३, सू. ३२८, पृ. २३८
पृ. २४— ठा. अ. ३, उ. १, सू. १३४, पृ. ११०
पृ. २४— ठा. अ. ४, उ. ३, सू. ३२४, पृ. २३३
पृ. २४— ठा. अ. ३, उ. १, सू. १४८, पृ. ११९
पृ. २५— ठा. अ. ३, उ. १, सू. १३४, पृ. ११०
पृ. २५— ठा. अ. ४, उ. ३, सू. ३३९, पृ. २५०
पृ. २५— ठा. अ. ३, उ. १, सू. १३४, पृ ११०
पृ. २५— ठा. अ. ४, उ. ३, सू. ३२४, पृ. २३३
पृ. २५— ठा. अ. ३, उ. १, सू. १३४, पृ. ११०
पृ. २५— ठा. अ. ४, उ. ३, सू. ३३९, पृ. २५०

समवायांग—सूत्र

पृ. ५— सम. १, १,
पृ. २४— सम. १,

विवाह-प्रज्ञप्ति

पृ. ५— विवा. भा. ३, श. ११, उ. ११, प्र. २, पृ. २३४
पृ. ५— विवा. भा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. १-५ पृ. २२८
पृ. ६— विवा. भा. ३, श. १३, उ. ४, प्र. १३, पृ. ३१५
पृ. ६— विवा. भा. ३, श. ७, उ. १, प्र. ४, पृ. २
पृ. ६— विवा. भा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. ६, पृ. २२६
पृ. ६— विवा. भा. ३, श. १३, उ. ४, प्र. ४७, पृ. ३२३
पृ. ७— विवा. भा. २, श. ५, उ. ६, प्र. १५-१६, पृ. २४६-५०
पृ. ७— विवा. भा. ३, श. १२, उ. ७, प्र. १, पृ. २८२
पृ. ७— विवा. भा. ४, श. १६, उ. ८, प्र. १, पृ. २१
पृ. ८— विवा. भा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. १६, पृ. २३१
पृ. ६— विवा. भा. १, श. २, उ. १, पृ. २३५
पृ. ६— विवा. भा. १, श. १, उ. ६, प्र. २२४, पृ. १६६-७०
पृ. १२— विवा. भा. १, श. १, उ. ६, प्र. २०२-३, पृ. १६३-६४
पृ. १२— विवा. भा. १, श. २, उ. १०, प्र. ७०-७२, पृ. ३१३
पृ. १३— विवा. भा ३. श. ६, उ. ३३, पृ १८१
पृ १४— विवा. भा. ४, श. २०, उ. २, प्र. ३, पृ. १७
पृ. १६— विवा. भा. ३, श. २, उ. १०, प्र. ६६, पृ. ३१०
पृ. १७ - विवा. भा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. ११,१२,१३, पृ. २२६
पृ. १८— विवा. भा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. १५,१७, पृ. २३०
पृ. १६— विवा. भा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. २१, पृ. २३२
पृ. २१— विवा. भा. ३, श. १६, उ. ८, प्र. २,-५, पृ. २१-२३
पृ. २५— विवा. भा. १, श. १, उ. ३, प्र. २१६, पृ. १६७
पृ. २६— विवा. भा. १, श. १, उ. १, प्र. २१६-२१, पृ. १६८

अनुत्तरोपपातिक-सूत्र

पृ. ५—अनु. सूत्र १४५, पृ. ५५१

उत्तराध्ययन-सूत्र

पृ. ५—उत्तरा. अ. २८, गाथा ७

आचारांग-सूत्र

पृ. १३—आचा. श्रु. १, अ. २, उ. ५
पृ. १४—आचा. श्रु. १, अ. ८, उ. १

सूत्रकृतांग-सूत्र

पृ. १३—सूत्र. श्रु. २, अ. ६, उ. २, गाथा ४६-५०
पृ. १३—सूत्र. श्रु, २, अ ५, उ. २, गाथा २-३
पृ. १४—सूत्र. श्रु, १, अ. १, उ. ३, गाथा ५-६

भगवती-सूत्र

पृ. २२—भग. शतक १०, १. उ, प्र. ७, पृ. १८६

प्रज्ञापना-सूत्र

पृ. २३—पन्न. पद १०, सूत्र ७७६, पृ २३—पन्न. पद १०, सूत्र ७८०,

अधोलोक

नरक-वर्णन

विवाह-प्रज्ञप्ति

पृ. २७ —	विवा. भा. ३,	श. ११,	उ. १०,	प्र. ३,	पृ. २२८
पृ. २७—	विवा. भा. ३,	श. १२,	उ. ३,	प्र. १,२,	पृ. २६१
पृ. २७—	विवा. भा. ३,	श. १२,	उ. ३,	प्र. १,२,	पृ. २६१
पृ. २८—	विवा. भा. २,	श. ६,	उ. ८,	प्र. १-८,	प्र. ३२७-३२८
पृ. २८—	विवा. भा. ३,	श. ८,	उ. ३,		पृ. ७८
पृ. २८—	विवा. भा. ३,	श. १३,	उ. १,		पृ. ३०१
पृ. ३७ —	विवा. भा. ३,	श. १३,	उ. ४,	प्र. ४,	पृ. ३१३
पृ. ३८—	विवा. भा. ३,	श. १४,	उ. ८,	प्र. १-३,	पृ. ३५८
पृ. ४३—	बिवा. भा. २,	श. ६,		प्र. १,	पृ. ३१५
पृ. ४४—	विवा. भा. १,	श. १,	उ. ५,	प्र. १६४-१६५,	पृ. १४१
पृ. ४५—	विवा. भा. ३,	श. १३,	उ. १,	प्र. ३,	पृ. ३०१
पृ. ४५—	विवा. भा. ४,	श. १५,		प्र. ६१,	पृ. २१४
पृ. ४५—	विवा. भा. २,	श. ६,	उ. ६,	प्र. १,	पृ ३१५
पृ. ५०—	विवा. भा. ३,	श. १३,	उ. १,	प्र. ३,८,१३,	पृ. ३०१-५

जीवाभिगम-सूत्र

पृ. २७—	जीवा. सू. ६७,	पृ. ८८
पृ. २९—	जीवा. सू ७१,	पृ. ९०
पृ. ३०—	जीवा. सू. ७२,	पृ. ९२
पृ. ३०—	जीवा. सू. ७६,	पृ. ९५
पृ. ३१—	जीवा. सू. ७६,	पृ. ९५-९६
पृ. ३१—	जीवा. सू. ७४,	पृ. ९३
पृ. ३२—	जीवा. सू. ७६,	पृ. ९५-९६
पृ. ३२—	जीवा. सू. ७६,	पृ. ९५
पृ. ३२—	जीवा. सू. ७३,	पृ. ९२
पृ. ३२—	जीवा. सू. ७३,	पृ. ९२
पृ. ३३—	जीवा. सू. ७६,	पृ. ९५
पृ. ३३—	जीवा. सू. ६९,	पृ. ८९

पृ. ३३— जीवा. सू. ७३, पृ. ९२
पृ. ३४— जीवा. सू. ७२, पृ. ९२
पृ. ३६— जीवा. सू. ७३, पृ. ९२-९३
पृ. ३७— जीवा. सू. ७६, पृ. ९६
पृ. ३७— जीवा सू. ९२, पृ. १२७
पृ. ३८— जीवा. सू. ८०, पृ. १०१
पृ. ३९— जीवा. सू. ७९, पृ. १००
पृ. ३९— जीवा. सू. ७९, पृ. १००
पृ. ४०— जीवा. सू. ७५, पृ. ८४
पृ. ४१— जीवा. सू. ७९, पृ. ९९
पृ. ४२— जीवा. सू. ७५, पृ. ९४
पृ. ४३— जीवा. सू. ७८, पृ. ९८
पृ. ४३— जीवा. सू. ८५, पृ. १०९
पृ. ४४— जीवा. सू. ८१, प्र. ३, पृ. १०२; प्र. ३, सू. ६८, पृ. ८८
पृ. ४४— जीवा. सू. ८७, पृ. ११४
पृ. ४४— जीवा. सू. ८९, पृ. ११७
पृ. ४५— जीवा. सू. ८१, प्र. ३, पृ. १०२
पृ. ४५— जीवा. सू. ८१, प्र. ३, पृ. १०२
पृ. ४६— जीवा. सू. ८१, प्रति. ३, पृ. १०२
पृ. ४६— जीवा. सू. ८१, प्रति. ३,
पृ. ४६— जीवा. सू. ८१, प्रति. ३, पृ. १०२
पृ. ४७— जीवा. सू. ८१, प्रति. ३, पृ. १०२
पृ. ४९— जीवा. सू. ८२, पृ. १०४
पृ. ५०— जीवा. सू. ८२, पृ. १०४-५
पृ. ५१— जीवा. सू. ८४, पृ. १०८
पृ. ५२— जीवा. सू. ८३, पृ. १०६-७
पृ. ५२— जीवा. सू. ८५, पृ. १०९

स्थानांग—सूत्र

पृ. २७— ठा. अ. ७, सू. ५४६ पृ. ३६८
पृ. २८— ठा. अ. ८, सू. ६४८
पृ. २९— ठा. अ. ३, उ. ३, सू. १८६, पृ. १४२
पृ. ३०— ठा. अ. ३, उ. ४, सू २४४, पृ. १६६
पृ. ३३— ठा. अ. १०, सू. ७७८, पृ. ४९७
पृ. ५७— ठा. अ. १०, सू. ७२८, पृ. ४५७
पृ. ५८— ठा. अ. ५, उ. ३, सू. ४७२, पृ. ३३३
पृ. ६०— ठा. अ. १०, सू. ७२८, पृ. ४५७
पृ. ६०— ठा. अ. १०, सू. ७२८, पृ. ४५७
पृ. ६१— ठा. अ. १०, सू. ७२८, पृ. ४५७
पृ. ६४— ठा. अ. २, उ. २, सू. ९४, पृ. ८०
पृ. ६५— ठा. अ. २, उ. ३, सू. ९४, पृ. ८०
पृ. ६६— ठा अ. १०, सू. ७२८, पृ. ४५७

समवायांग-सूत्र

पृ. २६—सम. २०, सू. ३
पृ. ३४—सम. ८०,
पृ. ३४—सम. स. ८४, सू. ६
पृ. ३६—सम. ८३, सू. ३
पृ. ४१—सम. स. ३०००, सू. ११६
पृ. ४२—सम. स. ७००७, सू. १२०
पृ. ४३—सम. ८४,
पृ. ४४—सम १४६,
पृ. ४४—सम. ३०, सू. ८
पृ. ४५—सम. २५,
पृ. ४५—सम. स. २५, सू. ४
पृ. ४६—सम. १८, सू. ७
पृ. ४६—सम. १०, सू. ११
पृ. ४७—सम. ३४,
पृ. ४७—सम. ३५,
पृ. ४७—सम. ३६,
पृ. ४७—सम. ४१,
पृ. ४७—सम. ४३,
पृ. ४७—सम. ५५,
पृ. ४७—सम. ५८,
पृ. ४७—सम. ७४,
पृ. ४६—सम. ४५, सू. २
पृ. ५०—सम. १, सू. २०

प्रज्ञापना-सूत्र

पृ. ४३—पण्ण. पद १, सू. १८, पृ. २३६
पृ. ४४—पण्ण. पद २, पृ. २३६—२४१
पृ. ४४—पण्ण. पद २, सू. १६, पृ. २४३-४४
पृ. ४५—पण्ण. पद २, सू. २०, पृ. २४४-४५
पृ. ४५—पण्ण. पद २, सू. २१, पृ. २४६
पृ. ४६—पण्ण. पद २, सू. २२, पृ. २४७
पृ. ४६—पण्ण. पद २, सू. २३, पृ. २४८
पृ. ४६—पण्ण. पद २, सू. २४, पृ. २४६
पृ. ४७—पण्ण. पद २, सू. २५, पृ. २५१

भवनावास

प्रज्ञापना-सूत्र

पृ. ५३—पण्ण पद २, पृ. २५५-२५६
पृ. ५३—पण्ण. पद २, पृ. २६५-२६८
पृ. ५४—पण्ण. पद २, पृ. २६५-२६८
पृ. ५५—पण्ण. पद २, पृ. २५५,
पृ. ६१—पण्ण. पद २, पृ. २७१-२७२
पृ. ६२—पण्ण. पद २, पृ. २७३
पृ. ६२—पण्ण. पद २, पृ. २७५
पृ. ६३—पण्ण. पद २, पृ. २७५-२७६
पृ. ६३—पण्ण. पद २, पृ. २७७
पृ. ६४—पण्ण. पद २, पृ. २७८
पृ. ६५—पण्ण. पद २, पृ. २७९
पृ. ६५—पण्ण. पद २, पृ. २८०
पृ. ६६—पण्ण. पद २, पृ. २८१

विवाह-पन्नत्ति-सूत्र

पृ. ५३—विवा. भा. २, श. ३, उ. १, प्र. १-३, पृ. ८४
पृ. ५३—विवा. भा. १, श. २, उ. ७, प्र. ५०, पृ. २९५
पृ. ५४—विवा. भा. १, श. १, उ. ५, प्र. १६६, पृ. १४२
पृ. ५४—विवा. भा. ४, श. १९, उ. ७, प्र. १, पृ. ८९
पृ. ५४—विवा. भा. ३, श. १३, उ. २, प्र. ३, पृ. ३०७
पृ. ५५—विवा. भा. १, श. २, उ. ८, प्र. ५१, पृ. २९७
पृ. ५६—विवा. भा. ३, श. १३, उ. ६, प्र. २-३, पृ. ३२५
पृ. ५६—विवा. भा. १, श. २, उ. ८, प्र. ५१, पृ २९७
पृ. ५९—विवा. भा. १, श. २, उ. ८, प्र. ५१, पृ. २९७-२९९
पृ. ६०—विवा. भा. ४, श. १६, उ. ९, प्र. १, पृ. २६
पृ. ६६—विवा. श. १, उ. ५, प्र. १६६, पृ. १४२
पृ. ६६—विवा. भा. ३, श. १३, उ. ४, प्र. ७, पृ. ३१३

जीवाभिगम-सूत्र

पृ. ५३—जीवा. सू ११६, पृ १५८
पृ. ५४—जीवा. सू. ११७, पृ. १५९
पृ. ५५—जीवा सू. ११६, पृ. १५८
पृ. ५९—जीवा. प्रति, ३,
पृ. ६१—जीवा. सू. ११७, पृ. १५९
पृ. ६२—जीवा. सू. ११९, पृ. १६६
पृ. ६२—जीवा. सू. १२०, पृ. १६७
पृ. ६३—जीवा. सू. १२०, पृ. १६७
पृ. ६३—जीवा. सू. १२०, पृ. १६८

समवायांग-सूत्र

पृ. ५३—सम. १५०,
पृ. ५४—सम. ६४,
पृ. ५५—सम. १४६,
पृ. ५७—सम. १७, सू. ७
पृ. ५८—सम. १०३,
पृ. ५८—सम. ३३,
पृ. ५८—सम. १६, सू. ६
पृ. ५८—सम. ३६,
पृ. ५८—सम. ५१,
पृ. ६०—सम. १७,
पृ. ६१—सम. ३४, सू. ५
पृ. ६२—सम. ८४, सू. ११
पृ. ६३—सम. ४०, सू. ४
पृ. ६४—सम. ७२, सू. १

रायप्रसेणी-सूत्र

पृ. ५६—राय. पद ७६, सू. ३२

स्थानांग-सूत्र

पृ. ५७—ठा. अ. १०,				सू. ७२८,	पृ. ४५७
पृ. ५८—ठा. अ. ५,	उ.	३,		सू. ४७२,	पृ. ३३३
पृ. ६०—ठा. अ. १०,				सू. ७२८,	पृ. ४५७
पृ. ६०—ठा. अ. १०,				सू. ७२८,	पृ. ४५७
पृ. ६१—ठा. अ. १०,				सू. ७२८,	पृ. ४५७
पृ. ६४—ठा. अ. २,	उ.	२,		सू. ९४,	पृ. ८०
पृ. ६५—ठा. अ. २,	उ.	३,		सू. ९४,	पृ. ८०
पृ. ६६—ठा. अ १०,				सू. ७२८,	पृ. ४५७

मध्य-लोक

वानव्यंतर देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ६७—पण्ण. पद २, पृ. २८४-२८६

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ६७—जीवा. सू. १२१

समवायांग-सूत्र—

पृ. ६७—सम. सू. १५०, पृ. १७१

पृ. ६७—सम. सू. १११, सू. २

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ६७—विवा. मा. ४, श. १६, उ. ८, प्र. ३, पृ. ६०

पृ. ६८—विवा. मा. १, श. १, उ. १, प्र. ६२, पृ. ८४—८५

पिशाच-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ६८—पण्ण. पद २, पृ. २८६—२६०

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ६८—जीवा. सू. १२१, पृ १७१

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ६८—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ६४, पृ. ८०

दाक्षिणात्य पिशाच-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ.६६—पण्ण. पद २, पृ. २६०—२६१

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ६६—जीवा. सू. १२१, पृ. १७१

उत्तरीय पिशाच-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ६६—पण्ण. पद २, पृ. २६१—६२

वाणव्यन्तर देवों की सुधर्मा-सभा

समवायांग-सूत्र—

पृ. ७१—सम. ६, सू. १०

तिर्यक् लोकः भेद, संस्थान, मध्य

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ७१—विवा. मा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. ४—७, पृ. २२८—२२६

पृ. ७१—विवा. मा. ३, श. १३, उ. ४, प्र. ६ पृ. ३१

जंबूद्वीप

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ७२— जंबू. वक्ष. १, सू. ३, पृ. १४—१५
पृ. ७२— जंबू. सूत्र १७४, पृ. ५३८

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ७२— ठा. १, सू. ५२

समवायांग-सूत्र—

पृ. ७२— सम. १, सू. १६
पृ. ७२— सम. १ लाख, सू. १२४, पृ. ११८

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ७२— विवा. भा ३, श. ६, उ. १, प्र. २, पृ. १२५

जंबूद्वीप की जगती

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ७३— जंबू. वक्ष. १, सू. ४, पृ. २०

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ७३— ठा. ८, सू. ६४२, पृ. ४१३
पृ. ७३— ठा. २, उ. ३, सू. ९३, पृ. ७६

समवायांग-सूत्र—

पृ. ७३— सम. ८, सू. ६, पृ. १५
पृ. ७३— सम. १२, सू. ६, पृ. २४
पृ. ७५— सम. सू. १३०

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ७३—जीवा. प्र. ३, उ. १, सू. १२४
पृ. ७५—जीवा. प्रति. ३, सू. १२५, पृ. १७९-१८०
पृ. ७६—जीवा. प्र. ३, उ. १, सू. १२६-२७

जगती-पर वन-खंड

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ७६— जम्बू. वक्ष. १, सू. ५, पृ. २७
पृ. ७६— जंबू, वक्ष. १, सू. ६, पृ. ३०—३१

जम्बू द्वीप के द्वार

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ७७— जंबू, वक्ष. १, सू. ७-८, पृ. ४७
पृ. ७८— जंबू, वक्ष. १, सू, ९, पृ. ६५

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ७७— जीवा, प्र. ३, उ. १, सू १२८, १४३
पृ. ७८— जीवा, प्रति ३, सू. १४४-१४५, पृ. २६०

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ७७—ठा. ४, उ. २, सू. ३०३, पृ. २१४
पृ. ७७—ठा. ८, सू. ६५७, पृ. ४२०

समवायांग-सूत्र—

पृ. ७७—सम. ३७, सू. ३

'जंबूद्वीप' नाम का हेतु

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ७६—जंबू. वक्ष. ७, सू. १७७, पृ. ५४०

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ७६—जीवा. प्र. ३, उ. २, सू. १५२, पृ. २६५
पृ. ७६—जीवा. प्र. ३, उ. २, सू. १५२

जंबूद्वीप की नित्यानित्यता

जंबूद्वीप प्रज्ञाप्ति-सूत्र—

पृ. ७६—जंबू. वक्ष. ७, सू. १७५, पृ. ५३८

जंबूद्वीप में वर्षधर-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८०—ठा. ६, उ. ३, सू. ५२२, पृ. ३५०
पृ. ८०—ठा. ७, सू. ५५५, पृ. ३७७
पृ. ८०—ठा. ३, उ. ४, सू. १६७, पृ. १५०

चुल्लहिमवन्त-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८०—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५
पृ. ८०—ठा. अ. ३, उ. ४, सू. १६७, पृ. १५१
पृ. ८०—ठा. ७, सू. ५५५, पृ. ३७७

समवायांग सूत्र—

पृ. ८०—सम. १००, सू. ७
पृ. ८१—सम. २४, सू. २

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ८१—जंबू. वक्ष. ४, सू. ७२, पृ. २८१

छः द्रह

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८१—ठा. ६, उ. ३, सू. ५२२, पृ. ३५०

द्रहवर्तिनी-देवियाँ

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८२—ठा. ६, उ. ३, सू ५२२, पृ. ३५०
पृ. ८२—ठा. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८
पृ. ८२—ठा. ३, उ. ४, सू. १९७, पृ. १५०

पद्म—द्रह

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८२—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८
पृ. ८२—ठा. अ. ३, उ. ४, सू. १९७, पृ. १५०
पृ. ८२—ठा. १०, सू. ७७९, पृ. ४९८

समवायांग-सूत्र—

पृ. ८२—सम. २१३, सू. १०

'पद्मद्रह' संज्ञा का कारण

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ८५— जंबू. वक्ष. ४, सू. ७३, पृ. २८३-८४

गंगा का उद्गम और प्रपात

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८५—ठा. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८
पृ. ८५—ठा. २, उ. ३, सू. १९७
पृ. ८५—ठा. ८, सू. ६३९, पृ. ४१३
पृ. ८६—ठा. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८
पृ. ८६—ठा. १०, सू. ७७९, पृ. ४९८

समवायांग-सूत्र—

पृ. ८६—सम. २५, सू. ७, पृ. ५१

गंगा-द्वीप

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८८—ठा. ८, सू. ६२९, पृ. ४११

गंगा-संगम

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ८९—ठा. ५, उ. ३, सू. ४७०, पृ. ३३३
पृ. ८९—ठा. १०, सू. ७१७, पृ. ४५३

समवायांग-सूत्र—

पृ. ८९—सम. २४, सू. ५, पृ. ४९

सिन्धु-नदी

स्थानांग-सूत्र—

पृ ६०—ठा ८, सू. ६३६, पृ. ४१३
पृ. ६०—ठा. ८, सू. ६३६, पृ. ४१३
पृ ६०—ठा. ८, सू. ६२६, पृ. ४११
पृ. ६०—ठा. ५, उ. ३, सू. ४७०, पृ. ३३३
पृ. ६०—ठा. १०, सू. ७१७, पृ. ४५३

रोहितांसा-महानदी

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ६०—ठा. ३, उ. ४, सू. १६७, पृ. १५१

रोहितांसा का संगम

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ६१—ठा. ३, उ. ४, सू. १६७, पृ. १५१

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ६२—जंबू. वक्ष. ४, सू. ७४[1], पृ. २८६—६०

चुल्लहिमवन्त पर्वत के कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ६२—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

कूट-वर्णन

समवायांग-सूत्र—

पृ. ६२—सम. १०८, सू. २

चुल्लहिमवन्त-कूट

समवायांग-सूत्र—

पृ. ६३—सम. ६००, सू. २

'चुल्लहिमवन्त वर्षधर-पर्वत' संज्ञा का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति—सूत्र—

पृ. ६५—जंबू. वक्ष. ४, सू ७५,[2] पृ. २६६

---

१. पृ. ८५-"गंगा का उद्गम और प्रपात" पृ. ८७- "गंगा प्रपात कुंड के सोपान" "तोरण वर्णन", पृ. ८८- गंगा द्वीप", पृ. ८६- "गंगा-संगम", पृ. ६०- "सिन्धु-नदी," रोहितांसा महानदी," पृ. ६१- "रोहितांसा द्वीप," "रोहितांसा का संगम" —इन शीर्षकों के नीचे का मूल पाठ इस सूत्र के अंतर्गत है।

२. पृ. ६२—"चुल्लहिमवन्त पर्वत के कूट," 'कूटवर्णन," पृ० ६३—"चुल्लहिमवन्त कूट," पृ० ६४—"चुल्ल-हिमवन्ता राजधानी," "अवशेष कूट," पृ० ६५—"चुल्लहिमवन्त वर्ष-धर-पर्वत संज्ञा का हेतु"—इन शीर्षकों के नीचे का मूलपाठ—इस सूत्र के अंतर्गत है।

महाहिमवन्त वर्षधर-पर्वत

समवायांग सूत्र—

पृ. ९५—सम. १०२, सू. २
पृ. ९५—सम. ५३, सू. २
पृ. ९६—सम. ५७, सू. ५

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ९६—जंबू. वक्ष. ४, सू. ७९, पृ. ३०१

महापद्म-द्रह

समवायांग-सूत्र—

पृ. ९६—सम. ११५

रोहिता-महानदी का उद्गम

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ९७—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८

हरिकान्ता महानदी का उद्गम

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ९९—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ३८

हरिकांता-नदी का संगम

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १००—जंबू. वक्ष ४, सू. ८०, पृ. ३०२

महाहिमवन्त-पर्वत के कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १००—ठा. ८, उ. ३, सू. ६४३, पृ. ४१३
पृ. १००—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

समवायांग-सूत्र—

पृ. १००—सम. ८७, सू. ६
पृ. १००—सम. ११०, सू. ५

महाहिमवन्त नाम का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १०१—जंबू. वक्ष. ४, सू. ८१, पृ. ३०४

निषध-पर्वत

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०१—सम. १०६, सू. २
पृ. १०१—सम. ९४, सू. १

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०१—ठा ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२

तिगिच्छ-द्रह

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १०२—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ८३, पृ. ३०६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०२—ठा. उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०२—सम. ४०००, सू. ११७

हरसलिला-महानदी

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०३—ठा. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८

शीतोदा-महानदी-उद्गम

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०४—सम. ७४, सू. २

शीतोदा-संगम

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०५—ठा. १०, सू. ७७६, पृ. ४६८

निषध-पर्वत के कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ १०५—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

पृ. १०५—ठा. ६, सू. ६८६, पृ. ४३०-३१

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०५—सम. ११२, सू. ६

जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १०५—जंबू. वक्ष. ४, सू. ८४, पृ. ३०८

नीलवन्त-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०६—ठा. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६८

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०६—सम. ७४, सू. ३

नीलवन्त-पर्वत के कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०७—ठा. ६, सू. ६८६, पृ. ४३१

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०७—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

'नीलवंत' का नाम हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र —

पृ. १०७—जंबू. वक्ष. ४, सू. ११०, पृ. ३७६

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०७—सम. ११२, सू. ७

रुक्मी-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०८—ठा. २, उ. ३, सू. ८८ पृ. ६८

रुक्मी-पर्वत के कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०८—ठा. ८, उ. ३, सू. ६४३, पृ. ४१३

पृ. १०८—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०८—सम. ८७, सू. ७

पृ. १०८—सम. ११०, सू. ६

'रुक्मी'-संज्ञा का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १०९—जंबू. वक्ष. ४, सू. १११, पृ. ३७८

शिखरी-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १०९—ठा. ६, सू. ५२२, पृ. ३५०

पृ. १०९—ठा. ३, उ. ३, सू. १९७, पृ. १५०

पृ. १०९—ठा. ५, उ. ३, सू. ४७०, पृ. ३३३

पृ १०९—ठा. ५, उ. १०, सू. ७१७, पृ. ४५३

समवायांग-सूत्र—

पृ. १०९—सम. २५, सू. ८

शिखरी-पर्वत के कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ११०—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

पृ. ११०—ठा. ६, सू. ५२२, पृ. ३५०

समवायांग-सूत्र—

पृ. ११०—सम. १०८, सू. २

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११०—जंबू. वक्ष. सू. १११, पृ. ३७९

जंबू-द्वीप में वर्ष

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १११—जंबू. वक्ष. ६, सू. १२५, पृ. ४२६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १११—ठा. ७, सू ५५५, पृ. ३७७

समवायांग-सूत्र—

पृ १११—सम. ७, सू. ५

कर्म-भूमियां

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १११—ठा. ३, उ. ३, सू. १८३, पृ. १४०

अकर्म-भूमियां

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १११—ठा. ६, सू. ५२२, पृ. ३५०

उत्तर-दक्षिण के क्षेत्रों की समानता

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १११—ठा. ६, सू. ५२२, पृ. ३५०
पृ. १११—ठा. १०, सू. ७२३, पृ. ४५३
पृ. १११—ठा. ३, उ. ४, सू. १९७, पृ. १५०
पृ. १११—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२
पृ. ११२—ठा. २, उ. ३, सू. ८५, पृ. ३३

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११२—जंबू. वक्ष. १, सू. १०, पृ. ६५-६६

'भरत' संज्ञा का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११३—जंबू. वक्ष. ३, सू. ४१-४२, पृ. १७९-८०
पृ. ११४—जंबू. वक्ष. ३, सू. ७१, पृ. २८०

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ११३—ठा. १०, सू. ७१८, पृ. ४५३

दक्षिणार्ध-भरत की अवस्थिति

समवायांग-सूत्र—

पृ. ११४—सम. ९०००, सू. १२२
पृ. ११४—सम. ९८, सू. ४

दक्षिणार्ध-भरत का आकार-भाव

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११५—जंबू. वक्ष. १, सू. ११, पृ. ६८

उत्तरार्ध-भरत का आकार-भाव-स्वरूप

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११६—जंबू. वक्ष. १, सू. १६, पृ. ८५

समवायांग-सूत्र—

पृ. ११६—सम. १४, सू. ६

ऋषभकूट-पर्वत

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११७—जंबू. वक्ष. १, सू. १७, पृ. ८६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ११७—ठा. ८, सू. ६३६, पृ. ४१३

वैताढ्य-पर्वत

समवायांग-सूत्र—

पृ. ११८—सम. १००, सू. ६, पृ. १०८
पृ. ११८—सम. २५, सू. ३, पृ. ५१
पृ. ११८—सम. ५०, सू. ४, पृ. ८२

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११६—जंबू. वक्ष. १, सू. १२, पृ. ७०

तमिस्र-गुफा और खण्ड-प्रपात-गुफा

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ११६—जंबू. वक्ष. १, सू. १२, पृ. ७१

समवायांग-सूत्र—

पृ. ११६—सम. ५०, सू. ६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ११६—ठा. ८, सू. ६३६, पृ. ४१२
पृ. ११६—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

विद्याधर-श्रेणियां

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२०—जंबू. वक्ष. १, सू. १२, पृ. ७१

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १२०—ठा. १०, सू. ७७४, पृ. ४६३

आभियोग्य-श्रेणियां

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १२१—ठा. १०, सू. ७७४, पृ. ४६३

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२२—जंबू. वक्ष. १, सू. १२, पृ. ७१

वैताढय का शिखर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२२—जंबू. वक्ष. १, सू. १२ पृ. ७२

वैताढय के कूट

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२३—जंबू. वक्ष. १, सू. १२, पृ. ७२

सिद्धायतन-कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १२३—ठा. ९, सू. ६८९, पृ. ४३०

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२४—जंबू. वक्ष. १, सू. १३, पृ. ७७-७८

शेष-कूट

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२६—जंबू. वक्ष. १, सू. १४, पृ, ८३

'वैताढ्य' नाम का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र

पृ. १२७—जंबू. वक्ष १, सू. १५, पृ. ८४

ऐरावत-वर्ष

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२७—जंबू. वक्ष. ४, सू १११

महाविदेह-वर्ष

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १२८—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२

'महाविदेह' संज्ञा का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १२९—जंबू. वक्ष. ४, सू. ८५, पृ. ३११

गंधमादन-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १३०—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

पृ. १३०—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२

पृ. १३०—ठा. ५, उ. २, सू. ४३४, पृ. ३१०

समवायांग-सूत्र—

पृ. १३०—सम. ५००, सू. १-५, पृ. ११२

गंधमादन–पर्वत के कूट

स्थानांग-सूत्र

पृ. १३१—ठा. ७, सू. ५९०, पृ. ३९३

'गंधमादन' संज्ञा का कारण

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १३२—जंबू. वक्ष. ४, सू. ८६, पृ. ३१३

महाविदेह में माल्यवन्त–पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १३२—ठा. ९, सू. ६८९, पृ. ४३०

समवायांग-सूत्र—

पृ. १३२—सम. ११३, सू. ५

माल्यवन्त का सागर–कूट

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १३३—जंबू. वक्ष. ४, सू. ९१, पृ. ३३७

'माल्यवन्त' संज्ञा का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १३४—जंबू. वक्ष. ४, सू. ९२, पृ. ३६८–३६९

सोमनस–पर्वत के कूट

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १३५—जंबू. वक्ष. ४, सू. ९७, पृ. ३५३

विद्युत्प्रभ–पर्वत के कूट

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १३६—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०१, पृ. ३५५

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १३६—ठा. ९, सू. ६८९, पृ. ४३०

मन्दर–पर्वत

समवायांग-सूत्र—

पृ. १३७ सम. ९९, सू. १
पृ. १३७—सम. ८५, सू. २
पृ. १३७—सम. ८४, सू. ६
पृ. १३७—सम. १०, सू. ३
पृ. १३७—सम. —, सू. १२३
पृ. १३७—सम. ११, सू. ७
पृ. १३७—सम. ३१, सू. २
पृ. १३७—सम. ४५, सू. ६
पृ. १३७—सम. ५५, सू. २–३

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १३७—ठा. १०, सू. ७२१, पृ ४५३
पृ. १३७—ठा. १०, सू. ७१६, पृ. ४५३

भद्रशाल-वन

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १३८—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२

दिशाहस्ति-कूट

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १४१—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०३, पृ. ३६०

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १४१—ठा. ८, सू. ६४२, पृ. ४१३

नन्दन-वन

समवायांग-सूत्र—

पृ. १४२—सम. ८५, सू. ४
पृ. १४२—सम. ६८, सू. १
पृ. १४२—सम. ६६, सू. २

नन्दन-वन के कूट

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १४३—ठा. ६, सू. ६८६, पृ. ४३०

समवायांग-सूत्र—

पृ. १४३—सम. ११३, सू. ६

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १४४—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०४, पृ. १६६-१६७

सौमनस-वन

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १४५—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०५, पृ. ३६६
पृ. १४६—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०६, पृ. ३७०

समवायांग-सूत्र—

पृ. १४६—सम. ४०, सू. २
पृ. १४६—सम. १२, सू. ६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १४६—ठा. ८, उ. ३, सू. ६४०, पृ. ४१३

अभिषेक-शिलासें

पाण्डु-शिला

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १४७—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२

रक्तकंबल-शिला

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १४६—जंबू. वक्ष ४, सू. १०७, पृ. ३७२

मन्दर-पर्वत के काण्ड

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १५०—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०८

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १५०—ठा. १०, सू. ७१६, पृ. ४५३
पृ. १५०—ठा. १०, सू. ७१६, पृ. ४५३

समवायांग-सूत्र—

पृ. १५०—सम. ६१, सू. २
पृ. १५०—सम. ३८, सू. ३

मन्दर-पर्वत के नाम

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १५१—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०६, पृ. ३७५

समवायांग-सूत्र—

पृ. १५१—सम. १६, सू. ३

कच्छ-विजय

समवायांग-सूत्र—

पृ. १५१—सम. ३४, सू. २

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १५१—ठा. ८, सू. ६३७, पृ. ४१३

कच्छ-विजय का वैताढ्य-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १५३—ठा. ६, सू. ६८६, पृ. ४३०

'कच्छ' संज्ञा का कारण

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १५६—जंबू. वक्ष. ४, सू. ६३, पृ. ३४१

चित्रकूट-वक्षस्कार-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १५६—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२

समवायांग-सूत्र—

पृ. १५६—सम. ११३, सू. ३

चित्रकूट के कूट

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १५७—जंबू. वक्ष, ४, सू. ९४, पृ. ३४४

उत्तरीय-शीता-मुखवन

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १६३—ठा. ८, उ. ३, सू. ६३७, पृ. ४१३

उत्तर की शेष वक्तव्यता

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १६४—जंबू. वक्ष. ४, सू. ९५, पृ. ३४७

वत्स आदि विजय

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १६६—जंबू. वक्ष. ४, सू. ९६, पृ. ३५२

शेष विजयादि-वक्तव्यता

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १६७—जंबू. वक्ष. ४, सू. १०२, पृ. ३५७

हैमवत-वर्ष

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १६९—जंबू. वक्ष. ४, सू. ७६, पृ. २९८

समवायांग-सूत्र—

पृ. १६९—सम. ६७, सू. २

पृ. १६९—सम. ३७, सू. २

पृ. १६९—सम. ३८, सू. २

शब्दापाती-पर्वत

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १७०—जंबू. वक्ष. ४, सू. ७७, पृ. २९९

समवायांग-सूत्र—

पृ. १७०—सम. ९०, सू. ५

पृ. १७०—सम. ११३

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १७०—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

पृ. १७०—ठा. १०, सू. ७२२, पृ ४५३

'हैमवत' संज्ञा का हेतु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र —

पृ. १७१—जंबू. वक्ष. ४, सू. ७८, पृ. ३००

हैरण्यवत-वर्ष

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र —

पृ. १७१—जंबू. वक्ष. ४, सू. १११, पृ. ३७८-७९

हरि-वर्ष

समवायांग-सूत्र —

पृ. १७३—सम. १२१
पृ. १७३—सम. ७३, सू. १
पृ. १७३—सम. ८४, सू. ८

'हरि-वर्ष' संज्ञा का हेतु

जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १७४—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ८२, पृ. ३०४

उत्तर-कुरु की अवस्थिति

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १७६—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ८७, पृ. ३१३

जीवाभिगम-सूत्र —

पृ. १७६—जीवा. सू. १४७, प. २६२

उत्तर-कुरु का स्वरूप

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति—सूत्र—

पृ. १७६—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ८७, पृ. ३१३

उत्तर-कुरु में यमक-पर्वत

समवायांग-सूत्र —

पृ. १७७—सम. ११३, सू. २

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. १७७—जीवा. सू. १४८, पृ. २८६-८७

यमक-देवों की राजधानियां

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १८१—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ८८, पृ. ३१८

उत्तर-कुरु में नीलवन्त-द्रह

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १८३—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ८६, पृ. ३२६

समवायांग-सूत्र—

पृ. १८३—सम. १०२, सू. ३
पृ. १८३—सम. ५०, सू. ३
पृ. १८३—सम. १००, सू. ८

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १८३—ठा. ५, उ. २, सू. ४३४, पृ. ३१०

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. १८३—जीवा. सू. १४०-१५०, पृ. २८८-६१

जम्बू-पीठ

समवायांग-सूत्र—

पृ. १८४—सम. ८, सू. ५

अनादृत देव की राजधानी

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १८८—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ६०, पृ. ३३०-३३२

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. १८८—जीवा. सू. १५१-५२, पृ. २६२-६७

देव-कुरु

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ १८८—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ६७

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. १८८—जीवा. प्र. ३, सू. १४७, पृ. २६२

चित्रकूट-विचित्रकूट-पर्वत

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १८६—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ६८

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १८६—ठा. अ. १०, सू. ७६८, पृ. ४६१

निषधादि पांच-द्रह

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १८६—जम्बू. वक्ष. ४, सू. ६६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १८६—ठा. अ. ५, उ. २, सू. ४३४, पृ. ३१०

कूट-शाल्मली-पीठ

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १९०—जम्बू. वक्ष. ४, सू. १००, पृ. ३५५

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १९०—ठा. अ. १०, सू. ७६४, पृ. ४९०

जंबू-द्वीपवर्ती-पदार्थ

समवायांग-सूत्र—

पृ. १९१—सम. १०२, सू. ३

पृ. १९१—सम. ३४, सू. ३

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १९१—ठा. २, उ. ३, सू. ८७, पृ. ६५

पृ. १९१—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. ३१२

पृ. १९१—ठा. ५, उ. २, सू. ४३४, पृ. ३१०

पृ. १९१—ठा. ८, सू. ६३७, पृ. ४११-४१२

पृ. १९१—ठा. १०, सू. ७६८, पृ. ४९१

पृ. १९१—ठा. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१२-१३

पृ. १९१—ठा. ३, उ. १, सू. १४२, पृ. ११६

पृ. १९१—ठा. ६, सू. ५२२, पृ. ३५०

जंबू-द्वीप में नदियां

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १९३—ठा. ६, सू. ५२२, पृ. ३५०

पृ. १९३—ठा. ७, सू. ५५५, पृ. ३७७

पृ. १९३—ठा. २, उ. ३, सू. ८८, पृ. ६५

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १९४—जंबू. वक्ष. ६, सू. १२५, पृ. ४२५-४२७

जंबू-द्वीप-लवण-समुद्र के प्रदेशों का स्पर्श

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. १९५—जंबू. वक्ष. ६, सू. १२४, पृ. १२४

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. १९५—जीवा. सू. १४६, पृ. २६१

लवण-समुद्र वर्णन

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १९६—ठा. २, उ. ३, सू. ९१, पृ. ७४

पृ. १९६—ठा. २, उ. ३, सू. ९१, पृ. ७४

समवायांग-सूत्र—

पृ. १९६—सम. सू. १२५, पृ. ११८

पृ. १९६—सम. १२८

लवण-समुद्र की गहराई

समवायांग-सूत्र—

पृ. १९७—सम. ९५, सू. ३, (संक्षिप्त)
पृ. १९७—सम. १६, पृ. २, (संक्षिप्त)

लवण-समुद्र के जल की हानि-वृद्धि

समवायांग-सूत्र—

पृ. १९७—सम. ९५, सू. २

स्थानांग-सूत्र—

पृ. १९७—ठा. ४, उ. २, सू. ३०५, पृ. २१५
पृ. १९८—ठा. अ. १०, सू. ७२०, पृ. ४५३

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. १९९—जीवा. सू. १५६, पृ. ३०४-५

लवण-समुद्र का वेलाधारण

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २०१—जीवा. सू. १५६, पृ. ३०४-५

समवायांग-सूत्र—

पृ. २०१—सम. ४२, सू. ७
पृ. २०१—सम. ७२, सू. २
पृ. २०१—सम. ६०, सू. २

लवण-समुद्र में वेलंधर आदि

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २०१—जीवा. सू १६८, पृ. ३२०

वेलंधर-नागराज

समवायांग-सूत्र—

पृ. २०२—सम. ४२, सू. २-३
पृ. २०२—सम. ४३, सू. ३-४
पृ. २०२—सम. ५२, सू. २-३
पृ. २०२—सम. ५७, सू. २-३
पृ. २०२—सम. ५८, सू. ३-४
पृ. २०२—सम. ८७, सू. १-४
पृ. २०२—सम. ९२, सू. ३ ४
पृ. २०२—सम. ९७, सू. १-२
पृ. २०२—सम. ९८, सू. २-३
पृ. २०२—सम. १७, सू. ४

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २०२—ठा. ४, उ. २, सू. ३०५, पृ. २१५

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २०४—जीवा. सू. १५९, पृ. ३०९-१०

अनुवेलंधर नागराज

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २०६—जीवा. सू. १६०, पृ. ३१३

लवण-समुद्र का विस्तार

समवायांग-सूत्र—

पृ. २०७—सम. १६, सू. ७
पृ. २०७—सम. १७, सू. ३

जंबू-द्वीप को जलमग्न न करने के हेतु

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २०८—जीवा. सू. १५४-१७३, पृ. ३००-३२५

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २०८—विवा. भा. २, श. ३, उ. ३, प्र. १८ पृ. ८२,
पृ. २०८—विवा. भा. २, श. ५, उ. २, प्र. १९ पृ. १६३,

गोतीर्थ

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २०९—ठा. १०, उ. १, सू. ७२०, पृ. ४५३

छप्पन अन्तर-द्वीप

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २१०—ठा. ४, उ. २, सू. ३०४, पृ. २१४-१५
पृ. २१०—ठा. ८, सू. ६३०, पृ. ४११
पृ. २१०—ठा. ९, सू. ६९८, पृ. ४४४

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २१०—जीवा. प्रति. २, सू. १०९-११२, पृ. १४४-१५६

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २१०—विवा. भा. ३, श. ९, उ. ३-३०, पृ. १२७
पृ. २१०—विवा. भा. ३, श. १०, उ. ७-३४, पृ. २०५

गौतम-द्वीप

समवायांग-सूत्र—

पृ. २११—सम. ६७, सू. ३
पृ. २११—सम. ९६, सू. ३

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २१२—जीवा. सू. १६१, पृ. ११४

लवण-समुद्र के द्वार

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २१३—ठा. ४, उ. २, सू. ३०५, पृ. २१५

लवणादि समुद्रों के जल की विशेषता

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २१५—विवा. श. ६, उ. ८, प्र. १६, पृ. ३३३-३४

धातकी-खण्ड-द्वीप

समवायांग-सूत्र—

पृ. २१६—सम. ४, सू. १२७, पृ. ११८
पृ. २१७—सम. ६८, सू. ४
पृ. २१७—सम. ३७, सू. ३

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २१६—ठा. अ. ४, उ. २, सू. ३०६, पृ. २१५
पृ. २१६—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ६२, पृ. ७५
पृ. २१७—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ६२, पृ. ७५
पृ. २१७—ठा. अ. ३, उ. १, सू. १४२, पृ. ११६
पृ. २१७—ठा. अ. ३, उ. ३, सू. १८३, पृ. १४०
पृ. २१७—ठा. अ. ३, उ. ४, सू. १६७, पृ. १५०
पृ. २१७—ठा. अ. ४, उ. २, सू. ३०२, पृ. २१३
पृ. २१७—ठा. अ. ५, उ. २, सू. ४३४, पृ. ३०६
पृ. २१७—ठा. अ. ७, सू. ५५५, पृ. ३३७
पृ. २१७—ठा. अ. ८, सू. ६४१, पृ. ४१३
पृ. २१७—ठा. अ. १०, सू. ७६८, पृ. ४६१

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २१७—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १७४

कालोद-समुद्र

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २१८—ठा. अ. ८, सू. ६३१, पृ. ४११
पृ. २१८—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ६३, पृ. ७५

समवायांग-सूत्र—

पृ. २१८—सम. ६१, सू. २, पृ. १०३

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २१६—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १७५

पुष्करवर-द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२१—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १७६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २२१—ठा. अ. ८, सू. ६३२, पृ. ४११
पृ. २२१—ठा. अ. २, उ. ३, सू. ९३, पृ. ७५
पृ. २२१—ठा. अ. ३, उ. १, सू. १४२-१४३, पृ. ११६
पृ. २२१—ठा. अ. ३, उ. ३, सू. १८३, पृ. १४०
पृ. २२१—ठा. अ. ३, उ. ४, सू. १९७, पृ. १५०
पृ. २२१—ठा. अ. ५, उ. २, सू. ४३४, ०९
पृ. २२१—ठा. अ. ६, सू. ५२२, पृ. ३५०
पृ. २२१—ठा. अ. ७, सू. ५५५, पृ. ३७७
पृ. २२१—ठा. अ. ८, सू. ६४१, पृ. ४१३
पृ. २२१—ठा. अ. १०, सू. ७६८, पृ. ४९१
पृ. २२१—ठा. अ. १०, सू. ७२१, पृ. ४५३

समवायांग-सूत्र—

पृ. २२१—सम. ६८, सू. १, पृ. ९०
पृ. २२१—सम. ३७, सू. ३, पृ. ७५

समय-क्षेत्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२२—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १७६

समवायांग-सूत्र—

पृ. २२२—सम. ४५, सू. १, पृ ८०
पृ. २२२—सम. ३९, सू. २,
पृ. २२२—सम. ६९, सू. १

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २२२—ठा. ३, उ. २, सू. १४८, पृ. ११९
पृ. २२२—ठा. ४, उ. ३, सू. ३२८, पृ. २३८

'मनुष्य-क्षेत्र' संज्ञा का हेतु

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२३—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १७६

मानुषोत्तर-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २२३—ठा. २, उ. ४, सू. १११, पृ. ९३
पृ. २२३—ठा. ५, उ. २, सू. ४३४, पृ. ३१०
पृ. २२३—ठा. १०, सू. ७६४, पृ. ४९०
पृ. २२३—ठा. १०, सू. ७२४, पृ. ४५३
पृ. २२४—ठा. ३, उ. ४, सू. २०४, पृ. १५६

समवायांग-सूत्र—

पृ. २२३—सम. १७, सू. ३, पृ. ३४

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२४—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १७८

पुष्करोद-समुद्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२५—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८०

वरुणवर-द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२६—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८०

वरुणोद-समुद्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२७—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८०

क्षीरवर-द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२७—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८१

क्षीरोद-समुद्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२८—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८१

घृतवर-द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२८—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८२

घृतोद-समुद्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२९—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८२

क्षोदवर-द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २२९—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८२

क्षोदोद-समुद्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २३०—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८२

नंदीश्वरवर-द्वीप

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २३०—ठा. ७, सू. ५८०, पृ. ३८५
पृ. २३१—ठा. अ. १०, सू. ७२५, पृ. ४५४
पृ. २३३—ठा. ४, उ. २, सू. ३०७

समवायांग-सूत्र—

पृ. २३०—सम. ८४, सू. ७, पृ. ९९
पृ. २३२—सम. ६४, सू. ४, पृ. ८९

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २३३—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८३

नन्दीश्वरोद-समुद्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २३५—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८४

शेष द्वीप और समुद्र

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २३६—ठा. अ. १०, सू. ७२६, पृ. ४५२
पृ. २३७—ठा. १०, सू. ७२६, पृ. ४५२

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २३७—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८५
पृ. २३७—जीवा. सू. १२३, पृ. १७६

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २३७—सूर्य. सू. १०३

समुद्रों के जल का स्वाद

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४०—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८७

द्वीप-समुद्रों की संख्या

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४०—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८९

एक नाम के अनेक द्वीप-समुद्र

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४१—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १८६

द्वीप-समुद्रों का उपादान

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४२—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १९०

जंबूद्वीपवर्ती सूर्यों के सूर्य-द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४३—जीवा. सू. १६२, पृ. ३१६

लवण–समुद्रवर्ती चन्द्र–सूर्यों के द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४५—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १६३, पृ. ३१६

धातकी–खण्डवर्ती चन्द्र–सूर्यों के द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४५—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १६४, पृ. ३१७

कालोदवर्ती आदि चन्द्र–सूर्यों के द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४६—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १६५–६६, पृ. ३१७

देव, द्वीप–समुद्र आदि के चन्द्र–सूर्य देवों के द्वीप

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २४८—जीवा. प्रति. ३, उ. २, सू. १६७, पृ. ३२०

भूकम्प के कारण

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २४८—ठा. ३, उ. ४, सू. १९८, पृ. १५१

ज्योतिष्क-निरुपण

ज्योतिष्कों के भेद

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. २५०—पण्ण. पद १, पृ. २१२

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २५०—ठा. ५, उ. १ सू. ४०१ पृ. २८७

भगवती-सूत्र—

पृ. २५०—मग. शत. ५, उ. ९, प्र. १७, पृ. २५२

ज्योतिष्क देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. २५०—पण्ण. पद. २, पृ. २९४

समवायांग-सूत्र—

पृ. २५०—सम. सू. १५०

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २५०—ठा. २, उ. ३, सू. ९४, पृ. ८०

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५०—जीवा. सू. १२२, पृ. १७४

पृ. २५०—जीवा. सू. १९९, पृ. ३९८

भगवती-सूत्र—

पृ. २५०—भग. भा. ४, शत. १९, उ. ८, प्र. ५, पृ. ९०

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

प. २५०—सूर्य. सू. ९४, पृ. २६२

ज्योतिष्क–विमानों का संस्थान

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५१—सूर्य. सू. १९

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५१—चद्र. सू १९,

जंबूद्वीप में ज्योतिष्क

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५२—सूर्य. सू. १००, पृ. २६८

पृ २५२—सूर्य. सू. ९१, पृ. २५९

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५२—चन्द्र. सू. १००

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५२—जंबू. सू. १२६, पृ. ४३३

पृ. २५२—जंबू. सू. १६३, पृ. ५२१

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५२—जीवा. सू. १५३, पृ. ३००

पृ. २५२—जीवा. सू. १९४, पृ. ३७५

भगवती-सूत्र—

पृ. २५२—भग. भा. ३, श. ९, उ. १, पृ. १२६

लवण–समुद्र में ज्योतिष्क

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५३—जीवा. सू. १५५, पृ. ३०३

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २५३—ठा. ४, उ २, सू. ३०५, पृ. २२५

धातकी–खण्ड में ज्योतिष्क

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५४—जीवा. सू. १७४, पृ. ३२७

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५४—सूर्य. सू. १००, पृ. २६९

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५४—चंद्र. सू. १००

भगवती-सूत्र—

पृ. २५४—भग. भा. ३, श. ९, उ. २, प्र. २, पृ. १२६

कालोद-समुद्र में ज्योतिष्क

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५४—जीवा. सू. १७५, पृ. ३३०

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५४—सूर्य. सू. १००, पृ. २६६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५४—चंद्र. सू. १००

भगवती-सूत्र—

पृ. २५४—भग. भा. ३, श. ६, उ. २, प्र. २, पृ. १२६

समवायांगसूत्र—

पृ. २५४—सम. ४२, सू. ४

पुष्करवर-द्वीप में ज्योतिष्क

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५५—जीवा. सू. १७६, पृ ३३२

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५५—सूर्य. सू. १००, पृ. २६६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५५—चंद्र. सू. १००

भगवती-सूत्र—

पृ २५५—भग. भा. ३, श. ६, उ. २, प्र. २, पृ. १२६

समवायांग-सूत्र—

पृ. २५५—सम. ७२, सू. ५, पृ. ६२

आभ्यंतर-पुष्करार्ध में ज्योतिष्क

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५६—जीवा. सू. १७६, पृ. ३३२

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५६—सूर्य सू. १००, पृ. २६६

भगवती-सूत्र—

पृ. २५६—भग. भा. ३, श. ६, उ. २, प्र. २, पृ. १२६

समवायांग-सूत्र—

पृ. २५६—सम. ७२, सू. ४, पृ. ६२

मनुष्य-क्षेत्र में ज्योतिष्क

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५६—जीवा. सू. १७७, पृ. ३३४

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५६—सूर्य. सू. १००, पृ. २७०

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५६—चंद्र. सू. १००

भगवती-सूत्र—

पृ. २५६—भग. भा. ३, श. ६, उ. २, प्र. २, पृ. १२६

ज्योतिष्कों की ऊँचाई

समवायांग-सूत्र—

पृ २५७—सम. ६६, सू. १–४, पृ. ८६–६०
पृ. २५६—सम. सू. १११–११२

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५६—सूर्य. सू. ८६, पृ. २५८–२५६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ, २५६—चंद्र. सू. ८६

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २५६—जीवा. सू. १६५ पृ. ३७६–३७७

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २५६—जंबू. सू. १६४, पृ. ५२१

भगवती-सूत्र—

पृ. २५६—भग. भा ३, श. १४, उ. ८, प्र. ४, पृ. ३५८

स्थानांग-सूत्र—

पृ. २५६—ठा. अ. ६, सू. ६७०, पृ. ४२४

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. २५६—पण्ण. पद. २, सू. ४२, पृ. २६४

मेरु और लोकान्त से ज्योतिष्कों की दूरी

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६०—जंबू. सू. १६४, पृ. ५२१

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६०—सूर्य. सू. ६२, पृ. २५६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६०—चंद्र. सू. ६२

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २६०—जीवा. सू. १६६, पृ. ३७६

समवायांग-सूत्र—

पृ. २६०—सम. ११, सू. २

चंद्र–विमान का परिवहन

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २६१—जीवा. सू. १६८, पृ. ३८०
पृ. २६२—जीवा. सू. १६८, पृ. ३८०
पृ. २६३—जीवा. सू. १६८, पृ. ३८०–३८१
पृ. २६४—जीवा. सू. १६८, पृ. ३८१
पृ. २६५—जीवा. सू. १६८, पृ. ३८१–३८२

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६१—सूर्य. सू. ९४, पृ. २६२–२६३

पृ. २६५—सूर्य. सू. ९४, पृ. २६२–२६३

पृ. २६५—सूर्य. सू. ९४, पृ. २६३

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६१—चन्द्र. सू. ९४

पृ. २६५—चन्द्र. सू. ९४

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६५—जंबू. सू. १६६, पृ. ५२५–५२६

ज्योतिष्क–विमानों का परिमाण

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २६६—जीवा. सू. १९७, पृ. ३७८

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र —

पृ. २६६—जंबू. सू. १६५, पृ. ५२४

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६६—सूर्य. सू. ९४, पृ. २६२

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६६—चंद्र. सू. ९४

समवायांग-सूत्र—

पृ. २६६—सम. ६१, सू. ३

पृ. २६६—सम. ६१, सू. ४

पृ. २६६—सम. १३, सू. ८

एक युग में ज्योतिष्क चार

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७२—सूर्य. सू. ८३–८६, पृ. २४५–२५४

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७२—चंद्र. सू. ८३–८६

ज्योतिष्क–गति का तारतम्य

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७३—जंबू. सू. १६७, पृ. ५३१

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. २७३—जीवा. सू. १९९, पृ. ३८२

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७३—सूर्य. सू. ८३, पृ. २४५

पृ. २७४—सूर्य. सू. ६४-७० पृ. १८१–१९७

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७३—चंद्र. सू. ८३

पृ- २७४—चंद्र. सू. ६४–७०

ज्योतिष्कों का अल्प-बहुत्व

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७४—सूर्य. सू. ९९, पृ. २६६
चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७४—चंद्र. सू. ९९
जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७४—जंबू. सू. १७२, पृ. ५३६
जीवाभिगम-सूत्र—
पृ. २७४—जीवा. सू. २०६, पृ. ३८५

ज्योतिष्कों की ऋद्धि का अल्प-बहुत्व

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७५—जंबू. सू. १६८, पृ. ५३१
जीवाभिगम-सूत्र—
पृ. २७५—जीवा. सू. २००, पृ. ३८२
स्थानांग-सूत्र—
पृ. २७५—ठा. अ. ३, उ. ४, सू. २१४, पृ. १६१
सूर्य-प्रज्ञप्तिसूत्र—
पृ. २७५—सूर्य. सू. ९५, पृ. २६३
चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७५—चंद्र. सू. ९५

चंद्र-वर्णन

चंद्रमा का उदय-अस्तमन

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७६—जंबू. सू. १५०, पृ. ४८०
भगवती-सूत्र—
पृ. २७६—भग. भा. २, श. ५, उ. १०, प्र. १, पृ. २५३

चंद्रमा की वृद्धि-हानि

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७६—सूर्य. सू. ७९, पृ. २३४
चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—
पृ. २७६—चंद्र. सू. ७९
समवायांग-सूत्र—
पृ. २७६—सम. ६२

ज्योत्स्ना का अल्प-बहुत्व

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७७—सूर्य. सू. ८२, पृ. २४४

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७७—चंद्र. सू. ८२

चंद्र-मण्डलों की संख्या

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७८—सूर्य. सू. ४५, पृ. १३८

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७८—चंद्र. सू. ४५

चंद्र-मंडलों का अंतर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र —

पृ. २७८—जंबू. सू. १४२, पृ. ४६५

चंद्र-मण्डलों का विस्तार

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७९—जंबू. सू. १४३, पृ. ४६५

आभ्यंतर और बाह्य चंद्र-मंडलों का विस्तार

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २८०—जंबू. सू. १४७, पृ. ४६८-४६९

चंद्र-मण्डलों का अंतर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २८१—जंबू. सू. १४४, पृ. ४६५

पृ. २८१—जंबू. सू. १४९, पृ. ४७४

एक मुहूर्त में चन्द्र की गति

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २८२—जंबू. सू. १४८, पृ. ४७०-४७१

मेरु से चन्द्र-मंडलों का अंतर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २८४—जंबू. सू. १४६, पृ. ४६६-४६७

पक्ष में चन्द्र-मंडल गति

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २८७—सूर्य. सू. ८१, पृ. २३६-२३८

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २८७—चंद्र. सू. ८१

अहोरात्र आदि में चन्द्रादि की गतिचार

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६०—सूर्य. सू. ८६, पृ. २५४

चंद्रादि की गति की विशेषता

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६२—सूर्य. सू. ८४, पृ. २४८

चंद्र का नक्षत्रों से योग

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६३—सूर्य. सू. ७८, पृ. २३३
पृ. २६४—सूर्य. सू ७६, पृ. २१६–२२०
पृ. २६६—सूर्य. सू. ७७, पृ. २२६–२२६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६३—चंद्र. सू. ७८,
पृ. २६४—चद्र. सू. ७६,
पृ. २६६—चद्र. सू. ७७,

पूर्णिमा में चंद्र का नक्षत्रों के साथ योग

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६८—सूर्य. सू. ६७, पृ. १८५–८६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६८—चद्र. सू. ६७,

अमावस्या में चन्द्र का नक्षत्रों के साथ योग

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६६—सूर्य. सू. ६८, पृ. १६०—६१
पृ. ३०१—सूर्य. सू. ६६, पृ. १६४

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २६६—चंद्र. सू. ६८,
पृ. ३०१—चंद्र. सू. ६६, पृ. १६४

पूर्णिमा में चन्द्र-योग

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०२—चंद्र. सू. ६३,

पूर्णिमा में सूर्य-योग

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०३—सूर्य. सू ६४, पृ १८२

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०३—चंद्र. सू. ६४,

अमावस्या में सूर्य-योग

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०५—सूर्य. सू. ६६, पृ. १८२

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०५—चंद्र. सू. ६६,

सूर्य-वर्णन

सूर्य-दर्शन

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०६—जंबू. सू. १३६, पृ. ४५८

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०६—विवा. भा. १, श. १, उ. ६, प्र. १६७–१६८, पृ. १६१

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३०७—सम. ३१, सू ३

पृ. ३०७—सम. ३३, सू. ४

पृ. ३०७—सम. ४७, सू. १

सूर्य-बिम्ब की लम्बाई-चौड़ाई

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३०७—सम. ४८, सू. ३, पृ. ८१

सूर्य का उदय और अस्तमन

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०६—सूर्य. सू. २६, पृ. ८४–८५

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३०६—चंद्र. सू. २६,

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३१२—विवा. भा. २, श. ५, उ. १, प्र. १–६, पृ. १४५-१४८

धातकी-खण्ड आदि में उदयास्त-वर्णन

भगवती-सूत्र—

पृ. ३१६—भग. भा. २, श. ५, उ. १, प्र १०–२१, पृ. १५१-१५६

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३१६—जंबू. सू. १५० पृ. ४८०

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३१६—सूर्य. सू. २६. पृ. ८५–८६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३१६—चंद्र. सू. २६

सूर्यों के प्रकाश का वर्णन

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३१६—सूर्य. सू. २७, पृ. ७६-८०

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३१६—चंद्र. सू २७,

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३१६—सम. ६२, सू ३

सूर्य का वरण

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३२१—सूर्य. सू. २८, पृ. ८३

पृ. ३२१—सूर्य. सू. २६, पृ. ७७

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३२१—चंद्र सू. २८,

सूर्य-प्रकाश का प्रतिरोध

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३२२—सूर्य सू. २६, पृ. ७६-७७

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३२२—चंद्र. सू. २६,

सूर्य-गति का क्षेत्र

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३२३—जबू. सू. १३७-३८, पृ. ४५८-४५६

सूर्यों का परस्पर-अन्तर

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३२५—सम. ७१, सू. १

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३२६—सूर्य. सू. १५, पृ. २४-२५

पृ. ३२८—सूर्य. सू ३०, पृ. ६२-६३

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३२६—चंद्र. सू. १५,

पृ. ३२८—चंद्र. सू. ३०,

पुरुष की छाया का परिमाण

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३१—सूर्य. सू. ३१, पृ. ६४-६५

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३१—चंद्र. सू. ३१,

अर्धमण्डल-भ्रमण-व्यवस्था

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३५—सूर्य. सू. १२-१३, पृ. १६-१७

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३५—चंद्र. सू. १२-१३

लवण-समुद्र में सूर्य-मण्डलों की संख्या

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३६—जंबू. सू. १२७, पृ. ४३४

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३३६—सम. ६५, सू. १

निषध और नीलवंत-पर्वत पर सूर्य-मण्डलों की संख्या

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३३७—सम. ६३, सू. ३-४

सूर्य-मण्डलों का क्षेत्र

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३७—जंबू. सू. १२८, पृ. ४३४

मण्डलों का क्षेत्र

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३८—सूर्य. सू. १४, पृ. २१-२२

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३३८—चंद्र. सू. १४,

मंडलों का परिमाण

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३३९—सम. ४८, सू. ३

पृ. ३३९—सम. ९९, सू. ४-५-६

पृ. ३४१—सम. ४८, सू. ३

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४१—सूर्य. सू. २०, पृ ३७-३९

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४१—चंद्र. सू. २०,

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४१—जंबू. सू. १३२, पृ. ४३८

सूर्य-मण्डलों की लंबाई-चौडाई, हानि-वृद्धि

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४४—जंबू. सू. १३२, पृ. ४३८

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४४—सूर्य. सू. २०, पृ. ३७-३६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४४—चंद्र. सू. २०,

सूर्य-मंडलों का अंतर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४४—जंबू. सू. १२६, पृ. ४३४

मेरु-पर्वत से सूर्य-मंडलों का अंतर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४५—जंबू. सू. १३१, पृ. ४३६

मंडलों में सूर्य-गति

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४६—सूर्य. सू. ६-१०, पृ. ११

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ ३४६—चंद्र. सू. ६-१०,

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३४६—सम. ८२, सू. १

सूर्य का मण्डल-संक्रमण

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४७—सूर्य. सू. २२, पृ. ४८-४६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४७—चंद्र. सू. २२,

अहोरात्र में सूर्य द्वारा मंडलों का स्पर्श

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४६—सूर्य सू. १८, पृ. ३१-३३

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३४६—चद्र. सू. १८,

द्वीप आदि में सूर्य-गति का अंतर

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३५२—सूर्य. सू. १६-१७, पृ. २६-३१

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३५२—चंद्र. सू. १६-१७,

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३५२—सम. ८०, सू. ७,

सूर्य की तिर्छी-गति का परिणाम

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३५५—सूर्य. सू. २१, पृ. ४५-४६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३५५—चंद्र. सू. २१

सूर्य की प्रति मुहूर्त-गति

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३५८—सम. ४७, सू. १

पृ. ३५९—सम. ३१,

पृ. ३५९—सम. ३३,

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—सूर्य. २३, पृ. ५१-५२

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—चंद्र. सू. २३

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—जंबू. सू. १३३, पृ. ४४०-४४१

नक्षत्र-मडल के भाग में सूर्य की एक मुहूर्त में गति

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६२—जंबू. सू. १४९, पृ. ४७४

दिन-रात्रि का परिमाण

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६३—जंबू. सू. १३४, पृ. ४४९-४५०

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६३—सूर्य. सू. ११, पृ. ११-१२

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६३—चंद्र. सू. ११

सूर्य का ताप-क्षेत्र

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६५—जंबू. सू. १३९, पृ. ४६२

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६५—सूर्य. सू. २५, पृ. ६८

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६५—चंद्र. सू. २५,

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६५—विवा. भा. ३, श. ८, उ. ८, प्र. ४५, पृ. १००

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३६५—सम. १९, सू. २

चंद्र–सूर्य का संस्थान

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६६—सूर्य. सू. २५, पृ ६७

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६६—चंद्र. सू. २५,

ताप–क्षेत्र का संस्थान

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र —

पृ. ३६६—सूर्य. सू. २५, पृ. ६७

पृ. ३६८—सूर्य. सू. २५, पृ. ६७–६८

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६६—चंद्र. सू. २५,

पृ. ३६८—चंद्र. सू. २५,

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

प. ३६८—जंबू. सू १३५, पृ ४५३

अंधकार का संस्थान

जंबूद्वी-पप्रज्ञप्ति-सूत्र—

प. ३७१—जंबू सू. १३५, पृ. ४५३

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७१—सूर्य. सू. २५, पृ. ६७–६८

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७१—चंद्र. सू. २५,

चंद्र–सूर्य का स्वरूप

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७२- सूर्य. सू. १०४, पृ. २८५–२८६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. २७२—चंद्र. सू १०४,

चंद्र–सूर्य का व्युत्पत्ति-मूलक स्वरूप

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

प. ३७३—सूर्य. सू. १०६, पृ. २६१

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७३—चंद्र. सू. १०६,

भगवती-सूत्र—

पृ. ३७३—भग. भा. ३, श. १२. उ. ६, प्र. ३–४, पृ. २८०

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७३—विवा. भा. ३, श. १४, उ ६, प्र. १०–११, पृ. ३६३

चंद्र–सूर्यों की संख्या

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७४ –सूर्य. सू. १००, पृ. २६८

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७४—चंद्र. सू. १००,

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७५—सूर्य. सू. ५२, पृ. १५७

चंद्र और सूर्य की गति

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७७—सूर्य. सू. २४, पृ ६३-६४

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७७—चंद्र. सू. २४,

उद्योत का लक्षण

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७८—सूर्य. सू. ८७, पृ. २२५

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७८—चंद्र. सू. ८७,

ग्रह-निरूपण

अठ्यासी महा-ग्रहों के नाम

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७९—सूर्य. सू. १०७, पृ. २९४-९५

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३७९—चंद्र. सू. १०७,

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३७९—सम. १९, सू. ३

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ३७९—ठा. २, उ. ३, सू. ९०, पृ. ७३

राहु के भेद

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८०—सूर्य. सू. १०५, पृ. २८६-२८८

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८०—चंद्र. सू. १०५,

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८०—विवा. श. ३, श. १२, उ. ६, प्र. १-२, पृ. २७९-२८०

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३८०—सम. १५, सू. ३, पृ. ३०

राहु का स्वरूप

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८२—सूर्य. सू. १०५, पृ. २८६-८७

नक्षत्रों की संख्या एवं नाम

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८४—जंबू. सू. १५५, पृ. ४६५

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८४—सूर्य. सू. ४२, पृ. १३१

स्थानांग-सूत्र—

पृ ३८४—ठा. २, उ. ३, सू ६०, पृ. ७३

नक्षत्रों का गणना-क्रम

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८५—सूर्य. सू. ३२, पृ. ६६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८५—चद्र. सू. ३२,

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८५—जंबू. सू. १५५, पृ. ४६५

नक्षत्रों के स्वामी-देवता

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८६—जंबू. सू. १५७-१७१, पृ. ४६८

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८६—सूर्य. सू. ४६, पृ. १४५-१४६

चंद्र-प्रज्ञप्ति--सूत्र—

पृ ३८६—चंद्र. सू. ४६,

नक्षत्रों का तारा-परिवार

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३८६—सम. ३
पृ. ३८६—सम. ३
पृ. ३८६—सम. ५
पृ. ३८७—सम. १००
पृ. ३८७—सम. २
पृ. ३८७—सम. ३२
पृ. ३८७—सम. ३
पृ. ३८७—सम. ३
पृ. ३८७—सम. ६
पृ. ३८७—सम. ५
पृ. ३८७—सम. ३
पृ. ३८७—सम. १
पृ. ३८७—सम. ५

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३८७—सम. ३
पृ. ३८७—सम. ६
पृ. ३८७—सम. ७
पृ. ३८७—सम. २
पृ. ३८७—सम. ५
पृ ३८७—सम. १
पृ. ३८७—सम. १
पृ. ३८७—सम. ५
पृ. ३८८—सम. ४
पृ. ३८८—सम. ३
पृ. ३८८—सम. ११
पृ. ३८८—सम. ४
पृ. ३८८—सम. ६८

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ३८६—ठा. सू. २२७
पृ. ३८६—ठा. सू. २२७

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ३८६—ठा. सू. ४७३
पृ. ३८६—ठा. सू. ११०

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ३८६—ठा. सू. २२७
पृ. ३८६—ठा सू. २२७
पृ. ३८७—ठा. सू. ५३६
पृ. ३८७—ठा. सू. ४७३
पृ. ३८७—ठा. सू. २२७
पृ. ३८७—ठा. सू. ५५
पृ. ३८७—ठा. सू. ४७३
पृ. ३८७—ठा. सू. २२७
पृ. ३८७—ठा. सू ५३६

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ३८७—ठा सू. ५८६
पृ. ३८७—ठा. सू. ११०
पृ. ३८७—ठा. सू. ४७३
पृ. ३८७—ठा. सू. ५५
पृ. ३८७—ठा सू. ५५
पृ. ३८७—ठा. सू. ४७३
पृ. ३८८—ठा. सू. ३८६
पृ. ३८८—ठा. सू. २२७
पृ. ३८८—ठा. सू. ३८६

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८८—सूर्य. सू. ४२
पृ. ३८८—सूर्य. सू. ४२, पृ. १३१

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३८८—जंबू. सू. १५८, पृ. ४६८

नक्षत्रों के गोत्र

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—जंबू. सू. १५६, पृ. ५००

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—सूर्य. सू. ५०, पृ. १५०

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—चंद्र. सू. ५०,

नक्षत्रों के संस्थान

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—जंबू. सू. १५६, पृ. ५००

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—सूर्य. सू. ४१, पृ. १३०

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६०—चंद्र. सू. ४१,

नक्षत्रों के चन्द्र-योग की आदि

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६२—सूर्य. सू. ३६, पृ. १०५-१०६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३६२—चंद्र. सू. ३६,

नक्षत्रों काचन्द्र के साथ दिशा-योग

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३६३—सम. ६, सू. ६
पृ. ३६३—सम. ८. सू. ६

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३९४—जंबू. सू. १५६, पृ. ४९६-४९७

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३९४—सूर्य. सू. ४४, पृ. १३७

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३९४—चंद्र. सू ४४,

नक्षत्रों का योग, भोग और परिमाण

समवायांग-सूत्र

पृ. ३९४—सम. ५६, सू. १

पृ. ३९५—सम. ९, सू. ५,

पृ. ३९५—सम. १५, सू. ४,

पृ. ३९५—सम. ४५, सू. ७,

पृ. ३९७—सम. ६७, सू. ४

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र

पृ. ३९५—सूर्य. सू. ६०, पृ. १७५

पृ. ३९६—सूर्य. सू. ६०, पृ १७५-१७६

पृ. ३९७—सूर्य. सू. ६१, पृ. १७६

पृ. ३९८—सूर्य. सू. ६२, पृ. १७७

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३९५—चंद्र. सू. ६०,

पृ. ३९६—चंद्र. सू. ६०,

पृ. ३९७—चंद्र. सू. ६१,

पृ. ३९८—चंद्र. सू. ६२,

चन्द्र के साथ नक्षत्रों का योग-काल

समवायांग-सूत्र—

पृ. ३९८—सम. ९,

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ३९८—ठा. सू. ६६९,

नक्षत्रों के साथ सूर्य का योग-काल

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३९९—जंबू. सू १६०, पृ. ५०१

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३९९—सूर्य. सू. ३३-३४, पृ. १०० १०३

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ३९९—चंद्र. सू ३३-३४,

युग में अमावस्या एवं पूर्णिमा

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४००—सूर्य. सू. ८०, पृ. २३६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४००—चंद्र. सू. ८०,

पूर्णिमा-अमावस्या में नक्षत्रों का योग

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०१—जंबू. सू. १६१, पृ. ५०४

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०१—सूर्य. सू. ३८, पृ. ११२

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०१—चन्द्र. सू. ३८,

पूर्णिमा-अमावस्याओं का नक्षत्र-सम्बन्ध

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०२—जंबू. सू. १६१, पृ. ५०५

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०२—सूर्य. सू. ३७, पृ.१११

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०२— चंद्र. सू. ४०,

नक्षत्रों के कुल, उपकुल और कुलोपकुल

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०३—जबू. सू. १६१, पृ. ५०४

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०३—सूर्य. सू. ३७, पृ १११

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०३—चंद्र. सू. ३७,

अमावस्यों में कुलों का योग

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०४—जंबू. सू. १६१, पृ. ५०४-५०५

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०४—सूर्य. सू. ३९, पृ. १२०

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०४—.चंद्र सू. ३९,

पूर्णिमाओं में कुल-उपकुल का योग

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०५—जंबू. सू. १६१, पृ. ५०४-५०५

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०५—.सूर्य. सू. ३९, पृ. ११०

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४०५—चंद्र सू. ३९,

रात्रि पूर्ण करने वाले नक्षत्र

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४०६—सम. २७, पृ. ४०७—सम. ४०, सू. ७,
पृ. ४०७—सम. ३६, पृ. ४०८—सम. ४०, सू. ६,
पृ. ४०७—सम. ३७, पृ. ४०९—सम. ३६,

उत्तराध्ययन-सूत्र—

पृ. ४०६—उत्तरा. अ. २६, गा. १३-१८

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

प. ४१०—जंबू. सू. १६२, पृ. ५१५-५१६

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१०—सूर्य. सू. ४३, पृ. १३१-१३३

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१०—चंद्र. सू. ४३,

नक्षत्र-मासों के मुहूर्तों की हानि-वृद्धि

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१०—सूर्य. सू. ८, पृ. ६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१०—चंद्र. सू. ८,

नक्षत्रों के चार-प्रकार

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४११—जम्बू. सू. १६५, पृ. ५२४

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४११—सूर्य. सू. ६३, पृ. २५६

चद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

प. ४११—चंद्र. सू. ६३,

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ४११—जीवा. सू. १६६, पृ. ३७७

नक्षत्रों का दिशा-भाग

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१२—सूर्य. सू. ३५, पृ. १०४

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

प. ४१२—चन्द्र. सू ३५,

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४१२—ठा. सू. ५१७,

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४१२—सम. १५, सू. ४५,

चार-दिशाओं के नक्षत्र

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४१२—सम. ७,

सूर्य-प्रज्ञप्तिसूत्र—

प. ४१४—सूर्य. सू. ५६, पृ. १७३-७४

चंद्र-प्रज्ञप्ति—सूत्र

पृ. ४१४—चन्द्र. सू. ५६,

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४१४—ठा. सू. ५८६, पृ. ३६३

नक्षत्र—मंडलों की संख्या

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१४—जम्बू. सू. १४६, पृ. ४७४

नक्षत्र-मंडलों का क्षेत्र

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ ४१६—जम्बू. सू. १४६, पृ. ४७४

नक्षत्र-मंडलों की लम्बाई-चौडाई

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१६—जम्बू. सू. १४६, पृ. ४७४

नक्षत्र-मंडलों का अन्तर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१७—जम्बू. सू. १४६, पृ. ४७४

मेरु से नक्षत्र-मंडलों का अन्तर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१७—जम्बू. सू. १४६, पृ. ४७४

नक्षत्रों की (मंडलों में) गति

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१८—जम्बू. सू. १४६, पृ. ४७४

चंद्र-सूर्य के नीचे और ऊपर तारों के स्थान

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१६—जम्बू. सू. १६२, पृ. ५२१

सूर्य-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१६—सूर्य. सू. ६०, पृ. २५६

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१६—चन्द्र. सू. ६०,

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ४१६—जीवा. सू. १६३, पृ. ३७५

ताराओं का परस्पर अन्तर

जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१६—जंबू. सू. १६७, पृ. ५३१

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ४१६—जीवा. सू. २०१, पृ. ३८३

सूर्य-प्रज्ञप्ति सूत्र—

पृ. ४१६—सूर्य. सू. ६६, पृ. २६५

चंद्र-प्रज्ञप्ति-सूत्र—

पृ. ४१६—चंद्र सू. ६६,

उपरितन तारक-परिभ्रमण

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४१६—ठा. ६, सू. ६७०, पृ. ६७२

तारक-ग्रह

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४२०—ठा. ६, सू. ४८१, पृ. ३३६

शुक्र-महाग्रह की वीथियां

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४२०—ठा. ६, सू. ६६६, पृ ४४४

शुक्र का उदय-अस्तमन

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४२०—सम. १६, सू. ३, पृ ४२०—सम ६, सू. ७,
पृ. ४२०—सम. ११२, सू. ५,

ऊर्ध्व—लोक

ऊर्ध्वलोक : भेद, संस्थान, मध्य

विवाह-प्रज्ञप्ति-सूत्र

पृ. ४२१ — विवा. भा. ३, श. ११, उ. १०, प्र. ५, पृ. २२८-२२६
पृ. ४२१—विवा. भा. ३, श. १३, उ. ४, प्र. ८, पृ. ३१४

वैमानिक-देवों के स्थान

समवायांग-सूत्र —

पृ. ४२१—सम. ८४, सू. १७

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ४२२—प्रज्ञा. स्थान २, पृ ३००

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ४२२—जीवा. सू. २०७, पृ. ३८६

सौधर्म-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ४२२—प्रज्ञा. स्थान २, पृ. ३०२

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४२२—ठा. ४, उ. ४, सू. ३८३, पृ. २७४

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४२२—सम. ३२, सू. ४, पृ. ४२२—सम. ६५, सू. ३
पृ. ४२२—सम. १३, सू. ३,

ईशान-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ४२३—प्रज्ञा. स्थान. २, पृ. ३०५-३०६

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४२३—सम. २८. सू. ४,
पृ. ४२३—सम. ६०, सू. ६,

सनत्कुमार-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ४२४—प्रज्ञा. स्थान २, पृ. ३०८-६

महेन्द्र-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ४२५—प्रज्ञा. स्थान २, पृ. ३१०

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४२५—सम. १३१, सू. १

ब्रह्मलोक-देवों के स्थान

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ४२५—प्रज्ञा. स्थान. २, पृ. ३१०-३११

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४२५—सम. ६४, सू. ५

तमस्काय

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४२६—ठा. ४, उ. २, सू. २६१, पृ. २०५

तमस्काय का संस्थान, विस्तार आदि

भगवती-सूत्र—

पृ. ४२७—भग भा. ३, श. १४, उ. २, पृ. ३४४

तमस्काय संबंधी शेष-वक्तव्यता

भगवती-सूत्र—

पृ. ४२८—भग. भा. २, श. ६, उ. ५, पृ. ३०१-३०६

पृ. ४३१—भग. भा. २, श. ६, उ. ५, पृ. ३०७-३१०

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४२८—ठा. ४ उ. २, सू. २६१, पृ. २०५

पृ. ४३१—ठा. ८, सू. ६२३, पृ. ४०६

लान्तक-देवों के स्थान

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४३३—सम ५०, सू. ५

महाशुक-देवों के स्थान

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४३३—सम. ४०, सू. ८

सहस्रार देवों के स्थान

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४३४—सम, ११६ सू. १

आनत, प्राणत-देवों के स्थान

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४३४—सम. १०६, सू. ४,

आरण, अच्युत-देवों के स्थान

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४३५—सम. १०१, सू. २-३,

अधस्तन ग्रैवेयक-देवों के स्थान

समवायांग-सूत्र—
पृ. ४३६—सम. ११, सू. ६

वैमानिक इन्द्रों के उत्पात-पर्वत

स्थानांग-सूत्र—
पृ. ४३८—ठा. १०, सू. ७२८, पृ. ४५७

विमान-पृथ्वियों का आधार

जीवाभिगम-सूत्र—
पृ. ४३८—जीवा. प्रति. ३, सू. २०६, पृ. ३६४

स्थानांग-सूत्र—
पृ. ४३८—ठा. ३, उ. ३, सू. १८०, पृ. १३६

कल्प-विमानों में प्रस्तट

समवायांग-सूत्र—
पृ. ४३६—सम. १३, सू. २,

स्थानांग-सूत्र—
पृ. ४३६—ठा. ६, उ. ३, सू. ५१६, पृ. ३४८
पृ ४३६—ठा. ६, सू. ६८५
पृ. ४३६—ठा. ३, उ. ४, सू. २३२, पृ. १६८

समवायांगसूत्र—
पृ. ४४०—सम. ६२, सू. ५,

विमान-पृथ्वियों का बाहल्य

जीवाभिगम-सूत्र—
पृ. ४४०—जीवा. प्रति. ३, सू. २१०, पृ. ३६४

समवायांग सूत्र—
पृ. ४४०—सम. २७, सू. ४,

कल्प-विमानों की ऊँचाई

स्थानांग-सूत्र—
पृ. ४४०—ठा. ५, उ. ३, सू. ४६६
पृ. ४४०—ठा. ६, सू. ५३२, पृ. ३५२
पृ. ४४०—ठा. ७, सू. ५७८, पृ. ३८४
पृ. ४४०—ठा. ८, सू. ६५०, पृ. ४१८
पृ. ४४०—ठा. ६, सू. ६६५, पृ. ४४४
पृ. ४४१—ठा. १०, सू. ७७५, पृ. ४६३

जीवाभिगम-सूत्र—
पृ. ४४१—जीवा. प्रति. ३, सू. २११, पृ. २१३

समवायांग-सूत्र—
पृ. ४४१—सम. ११४, सू. १
पृ. ४४१—सम. १०६, सू. १
पृ ११४—सम. ११०, सू. १

समवायांगसूत्र—
पृ. ४४१—सम. १११, सू. १
पृ. ४४१—सम. ११२, सू. १
पृ. ४४१—सम. ११३, सू. १

कल्प-विमानों की लम्बाई, चौडाई, परिधि

जीवाभिगम-सूत्र—
पृ. ४४१—जीवा. प्रति. ३, सू. २१३, पृ. ३६५

कल्प-विमानों के प्राकारों की ऊँचाई

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४४१—सम. ३००, सू. ३

कल्प-विमानों का संस्थान

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ४४२—जीवा. प्रति. ३, सू. २१२, पृ. ३७५

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४४२—ठा. ३, उ. ३, सू. १८०, पृ. १३८

कल्प-विमानों का वर्ण

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ४४२—जीवा. प्रति. ३, सू. २१३, पृ. ३९५

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४४२—ठा. ५, उ. ३, सू. ४६९, पृ. ३३३
पृ. ४४२—ठा. ४, उ. ४, सू. ३७५, पृ. २७१
पृ. ४४२—ठा. ३, उ. १, सू. १५१, पृ. १२०
पृ. ४४२—ठा. २, उ. ३, सू. ९४, पृ. ८०

कल्प-विमानों का उपादान

जीवाभिगम-सूत्र—

पृ. ४४४—जीवा. प्रति ३, सू. २१३, पृ. ९५

सिद्धस्थान

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४४४—ठा. ८, सू. ६४८, पृ. ४१७

ईषत्प्रारभारा-पृथ्वी के पर्याय-शब्द

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४४४—ठा. ८, सू. ६४८, पृ. ४१७

प्रज्ञापना-सूत्र—

पृ. ४४५—प्रज्ञा. २, सू. ५८, पृ. ३२४—३२५

माप-निरूपण

अंगुल के भेद और परिमाण

समवायांग-सूत्र—

पृ. ४४७—सम. ९६, सू. ३
पृ. ४४७—सम. ९६, सू. ४
पृ. ४४७—सम. १९, सू. ४

स्थानांग-सूत्र—

पृ. ४४७—ठा. अ. ८, सू. ६३४, पृ. ४११

अनुयोग-सूत्र—

पृ. ४४८—अनु. सू. ३३३—३४२, ३४४—३४६, ३५७—३६२

शुद्धि-पत्र

गणितानुयोग-विषयानुक्रम

अशुद्ध	शुद्ध
अलोक में गति का अभाव	संख्या, संस्थान, संस्पर्श
अलोक में अन्य द्रव्यों का अभाव	अलोक की विशालता
संख्या, संस्थान, संस्पर्श	अलोक में गति का अभाव
अलोक की विशालता	अलोक में अन्य द्रव्यों का अभाव

प्राकृत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३	१७	अयोणित्तिहं	अयाणित्तहि
१८	३७	हत/ सनिपडियाओ	हंता सनिपडियाओ
२४	३०	चउहिं हणेहिं	चउहिं ठाणेहिं
२५	३३	विवा० भा० १, श० १ उ० ३	विवा० भा० १ श० १ उ० ६
३७	१७	समाबाहल्लेण	सभा बाहल्लेण
४६	२६	बाहल्लाए	वाहल्लाए
५२	३२	सव्वइरामयां	सव्य वइरामया
१४०	१६	अंजणप्पमा	अंजणप्पमा
१५५	२५	सिघ	सिधु
१६५	२३	ह चेव	तह चेव
१६६	३२	पक्खारपव्वए	वक्खारपव्वए
१६६	३६	साओआमुखवणसडे	सीओआमुखवणसडे
१६७	८	रायहाणी	रायहाणी [८]
१७२	२८	णिच्च हिरण्ण हिरणं दलइ	णिच्चं हिरणं दलइ
१७३	५	पुरत्थिमेणं	पच्चत्थिमेणं
१७७	१३	एकासोए	एकासीए
१८०.	१८	सास्हसीओ	साहस्सीओ
१९६	६	तो	नो
२३६	१८	कडुए	कडुए
२६७	३५	सिद्धि	सद्धि
२७१	२६	अद्धमंड चर त	अद्धमंडल चरत्ति
२८२	११	मुहुत्तगइं	मुहुत्तगइं
२८२	१५	उणए	णउए
२८३	२४	एगावण्णं	एगावण्णं
२८४	१२	एगट्ठिभाए	एगसट्ठिभाए
२८४	१३	एगट्ठिभाग	एदसट्ठिभागं
२८४	१५	"	"
२८५	२५	अंद्धमास	अद्धमासे
२९०	२४	सतेहिं	सतेहिं
२९४	१	पूस्स	पूसस्स
२९७	१४	बावट्ठिभागं	बावट्ठिभागं
३०५	१३	पुण्णमासिणं	पुण्णमासिणि
३१७	२६	ता अणुपक्खमे	ता अणुपक्खमेव
२१८	२३	चारं	चारं चरित
३१९	१५	णं	तया ण
३१९	१६	खलु	एव खलु
३१९	२०	गमेगेण	एगमेगेणं
३३०	४	उग्नमणमुहुतसि	उग्गमणमुत्तसि
३३१	६	क	किं
३३५	३	सव्य बाहिणं	सव्व बाहिरं
३४५	७	पव्वयस्य	पव्वयस्स
३४५	१२	अभिदद्धोमणे	अभिवद्धेमाणे
३५४	२९	ऐगे	एगे
३५५	२२	ए थ ण	एत्थणं
३५७	३६	सूरिए	सूरिए णं
३५७	२९	तता	तता णं
३५८	२२	व-उ	उव-
३६८	१८	उद्धामुंह	उद्धीमुह
३७६	१२	चंदिमसू-रिया	चदिम-सूरिया
३९५	६	जायं	जोय
३९७	६	सोमाविक्खंभो	सीमाविक्खंभो
३९७	७	सत्तसट्ठि	सत्तसट्ठि
४०६	२९	अहोरत	एगं अहोरत्तं
४१९	३३	अस्सिणीयादी	अस्सिणीयादीया
४१९	३१	अबहाए	अबाहाए

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

शुद्धि-पत्र

हिन्दी

	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२४	एक वर्ष	एक लाख वर्ष
२	२८	फर	फिर
३	२४	निमित	निमित्त
५	३६	उत्तर.	उत्तरा.
६	२१	अथ	अर्थ
१०	१६	ममक	मशक
१३	८	अषभाग	अर्धभाग
१४	२३	आधे	आधे
१५	८	लोक	लोग
१७	४	१३, ११, १२	११, १२, १३
१७	१४	जानना	जाननी
१६	१५	निनिमेष	अनिमेष
२७	२३	पृथिवियां	पृथ्वियां
३४	२	अरिष्ट	अरिष्ट
३७	६	वीस	बीस
४५	१०	वेदनाएँ	वेदनाएँ
४८	४	छव्वीस	छब्बीस
६८	१३	देवलोग	देवलोक
८६	२६	आघा	आधा
६१	५	उतर	उत्तर
१०२	३२	सूत्र ८३ ३०६	सूत्र ८३, पृ. ३०६
११०	१७	ठा. ६, उ. ३, सू. ५२२	ठा. ६. सूत्र ५२२
१२८	४०	धवल	धवल
१४२	१५	महानदी के.....में	महानदी के पश्चिम में
१५४	३०	जम्दूद्वीप	जम्बूद्वीप
१५६	४०	के	में
१६३	८	यहा	यहां
१६७	३६	प्रका	प्रकार
१८२	४	चोडे	चौडे
१८७	२	उनक	उनका
१६१	३३	सू. ७६८. ४६१	सू. ७६८ पृ. ४६१
१६३	३८	ठा. २, उ. सूत्र	ठा. २, उ. ३, सूत्र
२०८	२२	देवता	देवियां
२२८	३४	धारक	धारक
२५४	१५	सूय	सूर्य
२५६	३३	कितनी	कितने
२६३	१५	पृ. ३८०-२८१	पृ. ३८०-३८१

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६५	३६	सूर्य. पृ. ६४	सूर्य. सू. ६४
२६०	११	का	के
२६१	१६	मुहुर्त	मुहूर्त
३०२	२६	जिस	किस
३०३	२६	सूत्र ६४, पृ.	सूत्र ६४, पृ. १८२
३०७	२६	सूर्यविम्ब	सूर्यबिम्ब
३२८	३१	लेश्यए	लेश्याएँ
३३२	७	दो पौरुषी	द्वि पौरुषी
३३३	३७	छस	छब्बीस
३३३	३८	कई व्याख्यान को स्पष्ट नहीं किया।	कई पदों को स्पष्ट नहीं किया है।
३४१	३३	सूत्र	सूत्र ३
३४६	२१	सर्व बाहय	सर्व बाह्य
३६०	३८	गति वाला—उस	गति वाला होता है, उस
३६७	३	वालाग्र पोतिका	वालाग्र पोतिका
३६८	२८	चोडी	चौडी
३७६	३४	ठा. २, उ. सूत्र ६०	ठा. २, उ. ३, सूत्र ६०
३८७	१७	सस	सम
४०१	२३	अश्विनी	आश्विनी
४०३	२६	अश्विनीकुल	आश्विनी कुल
४११	१	नक्षत्रों का	नक्षत्रों के
४२४	३२	महेन्द्र देवों	माहेन्द्र देवों
४२७	१६	ये चला	यह चला
४३६	१३	विमानापृथिवयो	विमान पृथिवियों
४३८	३४	उ. ४, २३२	उ. ४, सूत्र २३२
४४०	३२	सम २७ सूक्ष ४	सम २७, सूत्र ४
४४१	५	ओर	और
४४१	२६	प्राकरो	प्राकारों
४४२	२४	सूत्र २१३ पृ ३६५	सूत्र २१३ पृ. ३६५
४४८	४	२४४-३४६	३४४-३४६
४४८	१५	द्रद	द्रह
४४६	८	मुसल	मूसल
४४६	२४	गव्यूति	गव्यूति
४५८	१६	पज्ञप्ति	प्रज्ञप्ति
४६७	२२	सर्य	सूर्य